राममक्ति शाखा

रामनिरंजन पांडेय,
साहित्यशास्त्री, वेदान्तशास्त्री, एम. ए., पीएच-डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
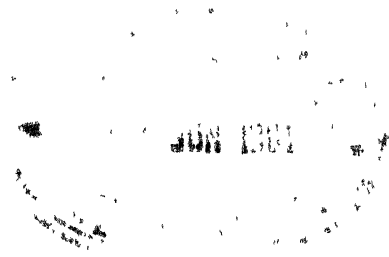
नवहिन्द पब्लिकेशन्स, हैदराबाद

प्रकाशक .

नवहिन्द पब्लिकेशन्स
८३१, बेगमबाजार, हैदराबाद

मुद्रक .

कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस
८३१, बेगमबाजार, हैदराबाद

प्रथम संस्करण

मकर संक्रान्ति, २०१६
१५ जनवरी, १९६०

मूल्य

बीस रुपये

अनुक्रम

अवतरण विधान

रामभक्तिशाखा के साधकों ने हिन्दी साहित्य-साधना के क्षेत्र मे मर्यादोपासना तथा माधुर्योपासना के द्वारा अपने हृदय के स्वच्छ बलिदान और पवित्र आनंद के पक्षों का अनुपम शृगार किया है। वास्तव मे ये दोनों पक्ष एक ही सत्य के दो पार्श्व है। पवित्र प्रेम का अकलुष आनद ही व्यक्ति के भीतर अनत प्रिय के लिए, विश्वरूप भगवान् के लिए पवित्र बलिदान की महा साधना का आनदात्मक भाव प्रस्तुत करता है। मर्यादापुरुषोत्तम का जीवन इन दोनों पार्श्वो मे समृद्ध है। उन्होंने अवतीर्ण हो कर विश्व को जितना ही प्रेम किया उतना ही उसके लिए उत्सर्ग भी किया। विश्वमंगलविधान के लिए उन्होंने अपने जीवन को बलिदानमय बना दिया था। इसी बलिदान से मुग्ध हो कर मधुरोपासकों ने उनके जीवन के आनदोपभोग को अपनी आँखों में बिठा लिया। उनके बलिदान की स्मृति की पीड़ा को वे नही सह सकते थे; इसीलिए उन्होंने विश्वमगल विधायक के जीवन के माधुर्य की उपासना में ही अपने को खो दिया! पर इस मधुरोपासना का बीजभाव तो मर्यादा पुरुषोत्तम के बलिदानमय जीवन की मर्यादाओं के साक्षात्कार के बाद भक्त-हृदय में उत्पन्न हुई उनके प्रति अनंत कृतज्ञता-बुद्धि और उसके आधार पर उत्पन्न हुआ अनंत पवित्र प्रेम ही है।

अनत जब अवतीर्ण होता है तब अपने साथ अनत मर्यादा, अनत प्रेम, अनत शक्ति, अनंत शील और अनत सौदर्य को ले कर ही आता है। अथर्ववेदीय रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, रामोत्तर तापनीय उपनिषद्, सीतोपनिषद्, शौनकीयतन्त्र, वाल्मीकि रामायण, आलवार सत शठकोप, आलवार भक्त कुलशेखर, आचार्य रामानुज, वेदान्तदेशिक, स्वामी राघवानंद, आचार्य रामानन्द, संत कबीर, सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास इत्यादि सब भक्त और सत अनंत सीताराम की अनंतता की उपासना करते है। इन सब के सीताराम सान्त और अनत दोनों हैं। शरीर चाहे सीमित हो; पर इसके भीतर रहने वाली आत्मा तो अनंत है। बिन्दु और सिन्धु का यह योग, सान्त और अनंत का यह मिलन सब संतों और भक्तों ने अनुभव किया था। कृष्णदास पयहारी, स्वामी अग्रदास, स्वामी कील्हदास तथा महात्मा नाभादास इत्यादि ने इन्हीं सान्त और अनत सीता-राम की उपासना की थी‡।

मर्यादाएँ सीमा के शरीर के भीतर ही साकार होती है। इसीलिए मर्यादा के उपासक भक्तों ने शरीरी अनंत की भी उपासना की।

---

‡ पृष्ठ १ से ५६ तक।

मर्यादोपासक सतों मे गोस्वामी तुलसीदास जी सर्वश्रेष्ठ और महनीय नेता हैं। उन्होंने मर्यादापुरुषोत्तम के अनत तेजोमय, बलिदान-सिक्त जीवन का अकन करके हृदय हृदय मे राम को आलोकित करना चाहा था। विमल सतोष, विमल विज्ञान-वैराग्य, विमल वैराग्य, विशुद्ध सतोष, विमल-ज्ञान, विमल-विज्ञान तथा अन्तिम अविरल हरिभक्ति इन सात सोपानों की ऊँचाई पर मानव-मन को ले जाने का स्तुत्य और सफल प्रयत्न गोस्वामी तुलसी दास जी ने किया। अनत राम के अद्वैत जीवन के इगित प्रस्तुत करने वाले ये सात सोपान, सीमित राम के विशिष्ट जीवन के बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किधा, सुन्दर, लका तथा उत्तरकाडो के क्रमिक विकासों के साथ जुडे हुए है। क्रिया के आधार शरीर और आदर्शों के आधार आत्मा का यही अद्वैत और पवित्र एकीकरण तुलसी को अभीष्ट था।

विमल और विशुद्ध विशेषणो को सतोष, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के साथ जोड़ कर गोस्वामी जी ने एक मौलिक क्रान्ति की स्पष्ट सूचना दी है। जीवन और अध्यात्म की एकता अवतारवाद के भीतर सहज-सुन्दर भाव भूमि पर हुई; पर उसकी इस प्रकार की जागरूक व्याख्या का श्रेय केवल गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ। ज्ञानात्मिका मुक्ति की वेदान्ती चिन्तनभूमि से भावात्मिका मुक्ति की अनुभूत्यात्मिका भूमि पर जीव को उतार कर उसे सतोष, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और अविरल हरिभक्ति का सहज गम्य अमोघ वरदान प्रेमाभक्ति मे प्राप्त कराया गया। जीवन का त्याग न करके भी इस भक्ति-क्षेत्र में वासनाओं से कृती वीर की तरह युद्ध करके नर, नारायण हो गया। नरत्व के भीतर नारायणत्व की यह अवतारणा भक्ति के कर्मठ और भावपूर्ण प्रागण में हुई। भक्ति को पा कर जीवन अपना रूप परम विकास की अवस्था तक पहुँचा कर विश्वरूप भगवान् का सेवक, सखा और सब कुछ बन गया।

वेदान्त की अरूपात्मिका चिन्तन-साधना के भीतर संतोष, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य बिना विशेषण के रह सकते थे; पर रूपात्मिका भाव-साधना के भीतर उन्हे विशेषण विशिष्ट हो कर भक्ति के भव्य भवन में रहने का अवसर मिल सका। ज्ञानात्मिका साधना रूप से अरूप की तरफ़ गयी; पर भावात्मिका साधना सीमित रूप और अनत रूप के कोमल पथ पर अवतीर्ण हुई; इसीलिए उसे विमल और विशुद्ध आभूषणों से विभूषित हो कर अभिसार यात्रा करनी पड़ी।

यद्यपि विमलानन्द और विशुद्धानन्द की धारणा वेदान्ती साधना मे भी बद्धमूल थी; पर वेदान्ती आनद "माया महा ठगिनि मैं जानी"‡ की धारणा पर आधारित था। सगुण भक्ति-साधना के भीतर माया और मायापति के अनंत शृगार की अनुभूति के भीतर से विशुद्ध

‡ कबीर बीजक : संपादक, हसराज शास्त्री, महाबीर प्रसाद, कबीर ग्रथ प्रकाशन समिति, हरक, बाराबकी, उत्तर-प्रदेश, पृष्ठ ४९, शब्द ५९।

सूचना :—इस ग्रथ के मानसोद्धरण. हिन्दी पुस्तक एजेंसी, २०३ हरिसन रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित तथा श्री रामदास जी गौड़ द्वारा संपादित रामचरितमानस के है। प्रकाशन वर्ष— तुलसी सवत् ३१२।

और विमल आनद प्राप्त हो रहा था। यह भक्ति "माया महा ठगिनि मैं जानी" को अपना आधार नही बना सकती थी। कबीर की ज्ञानात्मिका भक्ति मे तो उसको स्थान मिला; पर तुलसी की भावात्मिका भक्ति 'सीय राममय सब जग' ‡ की भावभूमि पर ही मभव थी। 'कौसल्या हितकारी' † राम से आरम्भ करके 'सीय राममय सब जग' तक पहुँचने वाली तुलसी की अभिसार यात्रा सीमित रूप और अनंत रूप के पथ की कोमल यात्रा थी। वह रूप से अरूप की ओर नही गयी। उसके पथ पर मुक्ति भी अनंत साकेतलोक मे अनत और अमित सुन्दर सीता-राम के साथ अनत निवास के रूप मे ही प्राप्त होती है।

अभाव की पूर्ति मे सन्तोष होता है। स्वार्थ के अभावों की प्राप्ति-कामना के ऊपर उठ जाना वेदान्तियों का सतोष है। स्वार्थ के अभावों को विश्व का अभाव मान कर उसे विश्वमगल के लिए प्राप्त करना भक्त का संतोष है। अपनी वासनाओं की पूर्ति से, अभाव की समाप्ति मे, जो सतोष प्राप्त होता है उसे भक्त मलज संतोष या वासनात्मज मतोष मानता है। यदि उसकी अभावपूर्ति विश्वहित-रत हो जाती है तो उसे विमल सतोष प्राप्त हो जाता है। इस सतोष मे स्वार्थगत वासना का मल नही होता। इसीलिए गोस्वामी जी ने बालकाड को विमल मतोष संपादन सोपान की संज्ञा दी है। इस काड मे विश्वप्रतिनिधि मनु और उनकी पत्नी सतरूपा ने अपने को प्रेम से तपा कर अनत प्रेममय परमात्मा को राम-सीता के रूप मे पृथ्वी पर पृथ्वी के ही शील-विकास के लिए उतार लिया था। अपने राजसी भोगैश्वर्य से विरक्त हो कर हृदय के अनासक्तियोग से विश्व-मगल विधान के लिए अनत शक्ति-शील-सौन्दर्य के निधान को धरती पर उतार लेना ही विमलसतोष का परिणाम है। मनु और सतरूपा के हृदय में विमल सतोष की सिद्धि ने उन्हे अपने स्वार्थ के ऊपर उठा कर विश्वार्थ मे लीन कर दिया था। विश्व के भीतर व्यक्ति का मंगल जब विश्व का मगल बन जाता है तब वह अपने वैयक्तिक स्वार्थ के ऊपर उठ जाता है। वैयक्तिक स्वार्थ की सिद्धि से जो सतोष होता है वह क्षुद्रवासना से संपृक्त हो कर मलिन रहता है। इस क्षुद्र वासना के ऊपर उठा हुआ विश्वमगल विधान से उत्पन्न सतोष विमल हो जाता है। विश्वार्थ के लिए मनु और सतरूपा ने अनंत शक्ति, शील और सौन्दर्य को विश्व मे अवतरित किया था; इसीलिए उनका सौजन्यपूर्ण यह प्रयास विमल सतोष का कारण बना। मानस के बालकांड में विश्वमगल विधान की समग्र योजना शक्ति, शील और सौन्दर्य के आधार पर बनी है; इसीलिए इस कांड मे गोस्वामी जी ने राम-जन्म से ले कर अन्य सब संबद्ध घटनाओं और चेष्टाओं के भीतर से विमल सतोष का अनुभव किया है। राम का बाल जीवन भी क्षुद्र स्वार्थों के ऊपर उठा हुआ है तथा विश्व-मगल-विधान का सकेत पर्याप्त मात्रा मे दे चुका है; अतः उससे भी विमल सतोष की ही सिद्धि हुई है। लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न मे भी इसी विमल सतोष विधायक विश्वमंगल विधान की योग्यता बाल्यावस्था से ही दिखाई पड़ती है $।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १७९ के बाद। $ पृष्ठ ५७ से १४५ तक।

मानस का अयोध्याकांड गोस्वामी जी के अनुसार विमल विज्ञान-वैराग्यकांड है। समत्व दर्शन विज्ञान है तथा अनासक्ति-योग वैराग्य है। विज्ञान और वैराग्य विमल तब होते है जब उनका योग प्रेम से स्थापित हो जाता है। अनुरागपूर्ण समत्व-भाव और अनुरागपूर्ण वैराग्य-भाव विमल हो जाते है। विश्वमंगल विधायक राम विश्व मे समत्व का दर्शन करता है और उसके लिए अपने हृदय मे अखड प्रेम का भाव धारण करता है। अकारण अनुराग और अकारण वैराग्य, विमल विज्ञान और विमल वैराग्य होते है। ये दोनो अवस्थाएँ आनदात्मिका हैं। आघात लगने पर जो क्षोभपूर्ण वैराग्य भाव पीडा के कारण के प्रति हो सकता है वह विमल नहीं है। अपने स्वार्थ के लिए सबसे समभाव से प्रेम करना भी विमल विज्ञान का समत्वभाव नही है। विश्वमंगल विधान के लिए सबसे समभाव की मैत्री और अपने स्वार्थो के प्रति विरक्ति ही विमल विज्ञान और विमल वैराग्य है। मानस के अयोध्याकांड मे इन्हीं दो अवस्थाओं का मानस के सब आदर्श पात्रो के शील मे विवेचन किया गया है। इन दोनों का अभाव शील के ह्रास का आधार माना गया है‡।

विमल वैराग्य के इसी आधार पर मानस का अरण्यकाड केवल विमल वैराग्य का विवेचन पात्रो के शील के आधार पर प्रस्तुत करता है†।

किष्किधाकाड मे राम का जीवन पूर्ण प्रौढावस्था मे पहुँच गया है; इसीलिए विश्वमगल विधान का जो प्रथम उन्मेष बालकांड मे विमल सतोष को साथ ले कर उत्पन्न हुआ था वह चिन्तन और अनुराग की प्रौढता प्राप्त करके विशुद्ध सतोष का रूप प्राप्त कर सका है। भवभूति के अनुसार "कालेनावरणत्ययात्परिणत यत्स्नेहसारेस्थित $"—काल के द्वारा आवरण के नष्ट हो जाने के कारण प्रेम परिणत हो कर स्नेह के अनंत तत्त्व को प्राप्त कर विशुद्ध हो जाता है। विश्वप्रेम की इसी विशुद्धता को राम के शील मे इस कांड मे पूर्ण विकास प्राप्त हो चुका है। यहाँ के सब आदर्श पात्रो में गोस्वामी जी ने विशुद्ध प्रेम के इसी अद्वैत का विवेचन किया है*।

रामचरितमानस का सुन्दरकाड विमल ज्ञान का सोपान है। ज्ञान अपने केवल चिन्तन के पक्ष को ले कर निर्गुण ब्रह्म का बौद्धिक साक्षात्कार कर सकता है, पर भक्ति की साधना शक्ति, शील और सौन्दर्य के अद्वैत का, कर्मभूमि पर, अपने हृदय के मधुर अनुराग के भीतर साक्षात्कार करना चाहती है। निर्गुण की इसी सगुण उपलब्धि को गोस्वामी जी विमल ज्ञान कहते है। मलिन जगत् के भीतर जब अनत अवतीर्ण होता है तब विमल ज्ञान उसका सहचर बन कर आता है और उसके आलोक में विश्व मे मनुष्य की सब चेष्टाएँ अनंत से सबद्ध हो कर विमल और पवित्र हो जाती है। उसका हर्ष भी अनंत को प्राप्त करके विमल हो जाता है और उसकी वेदना अनत से संबद्ध हो कर अकलुष हो जाती है। हृदय की इसी विमलावस्था का चित्रण गोस्वामी जी ने सुन्दरकांड के राम तथा अन्य आदर्श पात्रो के शील मे किया है§।

---

‡ पृष्ठ १४६ से २३० तक। † पृष्ठ २३१ से २५६ तक। $ उत्तररामचरित, अंक १, श्लोक ३९। * पृष्ठ २५६ से २६५ तक। § पृष्ठ २६४ से २७१ तक।

मानस का लंकाकाड केवल विमल विज्ञान का सोपान है। विज्ञान का समत्व भाव यहाँ मानव और राक्षस मे अन्तर नही देखता; पर उनके शील के अन्तर को अवश्य ध्यान मे रखता है। राम के भीतर राक्षसो से वैर नही है। वे भी उन्हें उतने ही प्रिय है जितने कि अयोध्या के निवासी; पर दु:शील स्वभाव के लिए दण्ड दे कर फल भोग के द्वारा उनके पापों का क्षय ही राम का लक्ष्य है। इसी दृष्टिकोण से देखने पर यहाँ युद्ध भी धर्म हो गया है और शासक राम का दडविधान विमल समत्व के प्रेम के आधार पर आधारित ही दिखाई पडता है। इस सोपान मे जितने आदर्श पात्र है सब इसी लक्ष्य की सिद्धि की दिशा मे अग्रसर होने का प्रयत्न करते हुए दृष्टिगोचर होते है ‡।

मन जब इस समत्व भाव के ऊपर उठता है, तब जगत् के समत्व के भीतर आत्मैक्य भाव के आधार पर परमात्मा मे आत्मा के लय की सिद्धि उसे प्राप्त हो जाती है। यही लय मानस के अन्तिम सोपान की 'अविरल-हरि-भक्ति' मे चित्रित हुआ है। गोस्वामी जी के द्वारा प्रस्तुत किया गया उच्चतम जीवन दर्शन 'अविरल हरि-भक्ति' ही है। इसे प्राप्त करके मानव अपने शील के सर्वोच्च विकास को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर उसका नर अपने नारायणत्व की सिद्धि तक पहुँच जाता है। इस अन्तिम सोपान मे गोस्वामी जी ने मानव जीवन के सब सूत्रों को विकसित करके नारायणत्व की भावभूमि तक पहुँचा दिया है † ।

गोस्वामी जी ने अपने मानसेतर ग्रथों मे भी जीवन दर्शन और अध्यात्म दर्शन का बडा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। इस ग्रथ के नवम अध्याय मे मानसेतर ग्रथों के जीवनदर्शन और अध्यात्मदर्शन के दृष्टिकोणो का विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। इस अध्याय मे विनय पत्रिका के दैन्य पक्ष और जीवन तथा दर्शन मे उसकी महत्ता, कृष्ण गीतावली के माधुर्य, रामलला नहछू के विवाह मगलोत्सव की पवित्र अद्वैत परिणति, वैराग्य संदीपिनी के सत-स्वभाव, सत महिमा और शान्ति के स्वरूप, बरवैरामायण मे व्यक्त हुई भक्ति, पार्वती मगल में चित्रित नारी के शील के उच्चतम निर्माण, जानकी मगल मे प्राप्त होने वाली सीताराम के पवित्र शील की विश्वव्यापिनी झाँकी, रामाज्ञाप्रश्न के शकुन शास्त्र मे भी दिखाई पडने वाले सशक्त भक्तिदर्शन, दोहावली की अनन्य प्रेमभक्ति, कवितावली के राम के विश्वमंगल विधायक शील तथा गीतावली मे दृष्टिगोचर होने वाली, आनद की समाधि के भीतर, प्रेम की मधुमय अत:साधना की मानस पूजा पर यथाशक्ति प्रकाश डाला गया है $ ।

इस ग्रथ के लेखन-काल में डॉक्टर निकॉल मैकनिकॉल, एम. ए., डी. लिट्. के विख्यात ग्रंथ 'इडियन थीइज्म' को पढने का अवसर मिला। इस ग्रंथ का अध्ययन करने पर ऐसा लगा कि सगुण उपासना के मूल रहस्यों और विशेषत: गोस्वामी जी की सगुणोपासना के भीतर विकसित हुए जीवनदर्शन और अध्यात्म दर्शन को कृती लेखक अवधी तथा ब्रज भाषा और नागरी लिपि का ज्ञान न रहने के कारण पूर्णत: हृदयगम नही कर सका

---

‡ पृष्ठ २७२ से २८८ तक। † पृष्ठ २८९ से ३१३ तक। $ पृष्ठ ३१४ से ३४४ तक।

है। अज्ञान के परिवेश से इस लेखक के द्वारा अनजान मे तुलसी के सम्बन्ध मे भ्रम प्रचारित हो गया था। उनकी अनत स्पर्शिणी साधना का पूर्ण परिचय न प्राप्त कर सकने के कारण इस विचार-साधक ने गोस्वामी जी पर जाति-पक्षपात और बहुदेववादिता का अभियोग लगा दिया था। अतः कम से कम हिन्दी समझने वाले आंग्लभाषाविदो के भीतर यह भ्रम बार-बार न प्रचारित होता चले—यह सोच कर केवल भ्रम निराकरण के लिए ही इस ग्रथ का दसवाँ अध्याय लिखना पड़ा। यदि श्री डॉक्टर निकॉल मैकनिकॉल महोदय का ग्रथ उपलब्ध न हुआ होता तो गोस्वामी जी की भक्तिसाधना के जीवनदर्शन और अध्यात्म दर्शन के कुछ पक्षों की ओर ध्यान आकर्षित न हुआ होता। अतः इस दशम अध्याय का पूरा श्रेय मै सच्चे भाव से इस कृती विचारक को देता हूँ। यों तो श्री डॉक्टर मैकनिकॉल ने तुलसी की अथाह साधना के परिणाम—रामचरितमानस—पर बहुत-सी उचित और मधुर बातें ही है, पर चन्द्रमा मे सुन्दर श्यामता की तरह उनके चिन्तन-चन्द्र मे मेरी अल्पमति के अनुसार कुछ श्यामलता रह गयी थी और उसी को दूर करने का यथाशक्ति प्रयास इस ग्रथ के दशम अध्याय मे हुआ है ‡।

अतिम ग्यारहवाँ अध्याय रामभक्ति-साधना के तुलसीतर साधकों की साधना का मूल्याकन प्रस्तुत करता है। इस अध्याय मे मर्यादोपासना तथा मधुरोपासना दोनो को स्थान प्राप्त हुआ है।

मर्यादोपासना और मधुरोपासना, दोनो का लक्ष्य निर्गुण सगुण अनत राम के विश्व-मगल विधायक व्यक्तित्व के चरणों मे उपासक के अहं का विसर्जन ही रहा है। प्रथम कोटि के साधकों ने पर-हित-निरत राम की आत्मबलिदानात्मिका विश्वमगल विधायिनी साधना पर अपने हृदय को निछावर कर दिया है और दूसरी कोटि के उपासकों ने विश्वमगल के साधक को मगलमय आनंद के शृंगार के बीच मे प्रतिष्ठित करके उसके चरणो मे अपना आत्मविसर्जन कर दिया है। दोनों प्रकार के साधको ने व्यक्ति के हृदय को विश्व का हृदय बना देने के स्तुत्य प्रयत्न किये है। मर्यादोपासको ने 'नानापुराणनिगमागम सम्मत' मर्यादा को जुटा कर राम का उससे शृंगार किया है तथा मधुरोपासकों ने अपने हृदय की शृंगार भावना को सीताराम के चरणो मे अर्पित कर दिया है। मर्यादोपासक साधको ने मर्यादापुरुषोत्तम के जीवन की मर्यादाओं की अनुभूति मे विश्वमात्र के हृदय के लिए लययोग की साधना प्रस्तुत की है पर मधुरोपासकों ने राम के हृदय को पर-दु.ख-सवेदना में निरन्तर तडपते हुए नहीं देखना चाहा है। उन्होने उस पर-दु.ख-कातर के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करने के लिए उससे अपना मधुर सम्बन्ध जोड़ लिया है—सखी या पत्नी भाव से उसकी उपासना करके।

तुलसीतर मर्यादोपासकों की तथा प्रायः सब मुख्य मधुरोपासकों की उपासना के रहस्यों को समझाने का प्रयत्न इस अन्तिम अध्याय मे किया गया है †। मधुरोपासना को हृदयगम करने का जो प्रयत्न मैंने इस ग्रथ मे किया है उसका पूरा श्रेय काशी हिन्दू

---

‡ इंडियन थीइज्म पृष्ठ ११६ से १२० तक तथा इस ग्रंथ के पृष्ठ ३४५ से ३९५ तक।

† अध्याय ग्यारह, पृष्ठ ३९६ से ५१४ तक।

विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, पद्मभूषण डाक्टर हजारीप्रसाद जी द्विवेदी को है। मेरा झुकाव मुख्यतः मर्यादोपासना की ओर था। इसके लिए प्रेरणा मुझे अपने गुरु स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल से मिली थी। इसी प्रेरणा ने मुझे गोस्वामी जी की मर्यादित साधना को समझने की दिशा मे आगे बढने की शक्ति दी थी। अब मधुरोपासना के मर्म को जो थोड़ा बहुत मैं समझ सका हूँ उसके लिए प्रेरणा मुझे श्रद्धेय द्विवेदी जी से मिली। यदि इस दिशा की ओर उन्होने मेरा ध्यान आकर्षित न किया होता तो मधुरभाव की रामभक्ति साधना का मेरा परिज्ञान सभवत अत्यल्प ही रह जाता। दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, डॉक्टर नगेन्द्र जी का भी मैं आभारी हूं, क्योंकि रामभक्ति की साधना के इस परिज्ञान की दिशा मे कुछ और आगे बढ जाने का इगित उन्होंने भी दिया था। मधुरोपासना की मेरी जानकारी एक पग भी आगे नही बढ सकी होती यदि मुझे श्रद्धेय श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' जी की पुस्तक 'राम भक्ति साहित्य मे मधुर उपासना' न प्राप्त हुई होती। माधव जी की कठोर साधना के द्वारा रामभक्ति की मधुरोपासना के दुर्गम मदिर मे जो 'वाग्द्वार' बन गया था उसमें बिना प्रयास ही मुझे प्रवेश मिल गया और 'मणो वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति' की बात चाहे कविकुलगुरु कालिदास के लिए सच्ची न रही हो, पर मुझ अबोध और अल्पमति के लिए तो सोलह आने सच हो गयी। अत. मेरे पास अग्रजकल्प मिश्र जी के प्रति और बिहार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के समक्ष आभार प्रदर्शित करने के लिए शब्द ही नहीं है। मिश्र जी की यह पुस्तक मुझे हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा से प्राप्त हो सकी। एतदर्थ सभा के पुस्तकालय के अधिकारियो, कर्मचारियों और सभा के प्रति मैं आभारी हूँ।

बचपन से ले कर आज तक जिन गुरुओं ने मुझे सम्हाला-सँवारा उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना भी धृष्टता है, तथापि स्वर्गीय ऋषि वामदेव जी मिश्र, अध्यक्ष साहित्य विभाग, प्राच्यविद्या महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, आचार्य पडित महादेव जी शास्त्री, आचार्य पडित कालीप्रसाद जी मिश्र, स्वर्गीय श्री आनद शकर बापू भाई ध्रुव, आइ. इ. एस, स्वर्गीय पूज्य पडित बटुकनाथ जी शर्मा, पूज्य डॉक्टर बलदेव जी उपाध्याय, स्वर्गीय पडित रामचन्द्र जी शुक्ल, स्वर्गीय पडित केशव प्रसाद जी मिश्र, स्वर्गीय डाक्टर पीताम्बर दत्त जी बडथ्वाल, स्वर्गीय पंडित विध्येश्वरी प्रसाद जी पाण्डेय, स्वर्गीय पडित अम्बिका प्रसाद जी पाण्डेय, पूज्य पडित रामव्यास जी पाण्डेय, स्वर्गीय पडित बलदेव जी पाठक, स्वर्गीय पडित रामयत्न जी ओझा, स्वर्गीय पडित भास्कर दत्त जी मिश्र, पूज्य डॉक्टर एस. के बेल्वेल्कर स्वर्गीय पडित राजनीति जी पाडेय इत्यादि सब गुरुजनों के चरणों मे मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। इन कृती आचार्यो से प्रकाश न मिला होता तो मेरी जड़ता कैसे कम हुई होती। स्वर्गीय महामना पडित मदनमोहन मालवीय जी के चरणो पर मेरा मस्तक है, जिनके आठ साल के साथ ने न जाने कितना उपकार किया।

हैदराबाद मे भी स्नेहियों की प्रेरणाशक्ति का मुझे बहुत बडा सहारा मिला। यदि डॉक्टर सत्यनारायण सिंह, एम एस-सी., पी-एच. डी., डी. एस-सी. (लदन), प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष जीवविज्ञान विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, का अथक तगादा मेरे साथ न

होता तो यह कार्य अधिक विलबित हो जाता । उस्मानिया विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉक्टर वशीधर जी विद्यामार्तण्ड की अटूट शुभकामना से मुझे निरन्तर मबल मिलता गया था । इन महानुभावों को मै किन शब्दो मे धन्यवाद दूँ । मेरे सहयोगी अनुजकल्प श्री रामकुमार जी खण्डेलवाल के भी अथक परिश्रम ने इस कार्य को सभव बनाया । चिरजीव श्रीकृष्ण ने प्राय: सम्पूर्ण ग्रथ टाइप किया । मै इन लोगों का पूरा आभार किसी प्रकार नही व्यक्त कर सकता । मेरे अनुसधेता छात्र अनतपुर कॉलेज के हिन्दी प्राध्यापक श्री वेकटरमण तथा बी. ए. कक्षा के श्री शुकदेव से भी इस कार्य में बडी सहायता मिली है । उनका भी आभार मुझ पर है और वह व्यक्त नही किया जा सकता ।

मुझे प्रोफेसर सरस्वती प्रसाद जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य, एम्. ए, विद्या महाविद्यालय, रायपुर, मध्य प्रदेश तथा प्रोफेसर डॉक्टर शुकदेव प्रसाद जी तिवारी, प्राचार्य, गवर्नमेंट कला तथा विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ का सहज स्नेह और आशीर्वाद निरन्तर प्राप्त होता रहा, जिससे मेरा यह कार्य पूरा हो गया । मै इन महानुभावों के इतने निकट हूँ कि इन्हे धन्यवाद देने से भी वचित होना पड रहा है । सेवाकाल के आरम्भ से अब तक का मेरा पूरा जीवन ही इन दो पूज्य स्नेहियों ने बनाया है । गुरु, डॉक्टर पडित बलदेव प्रसाद जी मिश्र, एम् ए डी लिट्., एल एल् बी. के प्रति आभार प्रदर्शित करने के समय भी मुझे इसी सकट का सामना करना पड रहा है । उनके निर्देशन मे मैने यह पूरा काम किया है और बचपन से मैं उनके इतने निकट हूँ कि भारतीय शिष्टाचार मुझे आभार व्यक्त करने से रोक रहा है । इस आभारी हृदय को गुप्त रखना ही ठीक है । अपने दोनों अनुजो चिरजीव आचार्य श्री अलखनिरजन पाण्डेय प्राध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय गवर्नमेंट सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, और चिरजीव माहेश्वर प्रसाद पाण्डेय को भी उनकी श्रद्धा और स्नेहपूर्ण सहायताओ के लिए मै आशीर्वाद प्रदान करता हूं । चिरजीव भाई रविशकर जी भार्गव, प्राध्यापक, वाणिज्य-विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय को भी समय-समय पर प्राप्त उनकी स्नेह पूर्ण सहायताओं के लिए अनेक धन्यवाद । श्रीयुत डॉक्टर उमावर मिश्र भूतपूर्व रजिस्ट्रार, नागपुर विश्वविद्यालय तथा डॉक्टर एम्. एस् मोडक, रजिस्ट्रार, नागपुर विश्वविद्यालय तथा महामहोपाध्याय डॉक्टर वी. वी मिराशी जी, नागपुर, के प्रति भी मै अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनकी वैध सहायता मे इस ग्रथ को मै नागपुर विश्वविद्यालय की पीएच् डी. उपाधि के लिए यथासमय प्रस्तुत कर सका । नागपुर विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं आभारी हूँ ।

इस ग्रथ के अन्तिम पृष्ठ लिखने के समय सौभाग्य से चाचा जी संत गुरुदयाल मलिक का पाँच दिन का अमूल्य सत्सग मिला और उनके द्वारा विकिरित प्रकाश का प्रभाव उन पृष्ठो पर है । इसके लिए मैं अपनी श्रद्धांजलि उनके चरणों पर अर्पित करता हूँ । भाई श्री बैजनाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी, रीडर, भूगोल-विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा श्रद्धेय श्री बी. के. भट्ट जी, रीडर, सस्कृत-विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, मेरे मथर पगों को निरन्तर गति देते रहे है, अत: उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ । मेरे सहयोगी श्री डॉक्टर राजकिशोर जी पाण्डय को भी इस ग्रथ के प्रकाशन मे दिलचस्पी थी । उनका

भी मै हृदय से आभार मानता हूँ। मध्य प्रदेश, रायगढ़, के वयोवृद्ध साहित्यकार तथा अनुसध्येता, विद्यावाचस्पति, इतिहास पारंगत, स्वर्गीय पंडित लोचन प्रसाद जी पाण्डेय, ने अभी हाल ही मे अपनी इहलीला संवृत की है। इस ग्रथ को देखने की उनकी बडी अभिलाषा थी। उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। स्वर्गस्थ पितामही, पितामह तथा पितृव्य की वात्सल्य पूर्ण अथक सेवाओं से मैं इस योग्य हो सका। उनकी आत्माओं को कोटि वन्दना। पूज्य जननी, पूज्य जनक तथा विधुरा पितृव्या मेरे बचपन से ले कर आज तक अपनी कठोर साधना की छाया मुझ पर रख रहे है। मैं उनकी आत्मा हूँ; अतः उनके प्रति मै अपने भाव कैसे व्यक्त करूँ। उनके भक्ति-पावन हृदय से ही मुझे सब कुछ मिला है। मेरे सहायक शिष्यों की एक लम्बी सूची है। उन सब ने मेरे इस कार्य को सभव बनाया है। बिना नाम निर्देश के मैं उन्हे सामूहिक आशीर्वाद देता हूँ। कुछ और कोमल करो ने मेरी सेवा करके इस प्रयत्न-पथ पर अग्रसर होने मे मुझे सहायता दी है। मेरे मूक भाव उनके प्रति व्यक्त होने मे सहम रहे है। विश्वात्मा उन्हें सुखी रखे यही मेरी उनके लिए हार्दिक कामना है।

अब मैं नवहिन्द पब्लिकेशन्स के संचालक, श्री बद्रीविशाल जी पित्ती के प्रति आभार निवेदन को अपना सबसे आवश्यक कर्तव्य मानता हूँ। आपने हिन्दी की जो मौन सेवा की है वह सर्वविदित है तथा इस ग्रथ के प्रकाशन का भार उठा कर भी आपने अपनी अनन्य सहृदयता का परिचय दिया है। प्रकाशन के व्यवस्थापक श्री मुनीन्द्र जी के कठोर श्रम और अटूट लगन से भी यह ग्रथ इतनी उत्तमता से छप सका। अस्वस्थता के समय भी इस ग्रथ का प्रूफ़ देख कर मुनीन्द्र जी ने अपना नाम सार्थक किया है। इसके लिए मैं उन्हे हार्दिक धन्यवाद और साधुवाद देता हूँ। प्रकाशन के उप-व्यवस्थापक श्री बलदेव प्रसाद जी गुप्त का भी मैं आभारी हूँ। यदि वे कसम खा कर मेरे पीछे न पड़ गये होते तो इस ग्रथ को मैं प्रकाशन के उपयुक्त रूप न दे सका होता और सम्भवतः इसे प्रकाशित भी न कराता। नवहिन्द प्रकाशन तथा कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस के उन सब कर्मचारियों के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके कर्मठ हाथों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस ग्रथ को यह मुद्रित रूप प्राप्त हो सका है। मेरा आभारी हृदय उन सब सज्जनों के प्रति कृतज्ञ है जिनकी सहायता मुझे इस प्रयास मे प्राप्त हुई हो और अपनी सीमित स्मरणशक्ति के कारण मैंने उन्हें विस्मृत कर दिया हो।

भावनिवेदन के इस प्रयास को पूर्णता प्रदान करने के लिए मैं विश्व के कण-कण में व्याप्त 'उर-प्रेरक रघुवश-विभूषण' और जगज्जननी विदेह-नन्दिनी के चरण कमलों क पराग को अपने मस्तक पर धारण करता हूँ; क्योंकि यदि उनके बलिदानपूर्ण विश्वप्रेमी नर-जीवन ने मुझे अपनी ओर बलात् आकृष्ट न किया होता, तो मैं उनके चिन्तन और अनुभूति के पथ की यह क्षीण आभा भी कैसे प्राप्त कर सका होता।

मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा, मंगलवार, लेखक
विक्रम संवत् २०१६

आ मु ख

आचार्य श्री रामनिरंजन जी पाण्डेय, एम. ए., एल्‌एल्‌ बी., पीएच्‌-डी. उस्मानिया विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष है। वे आरंभ से ही चिन्तनशील सज्जन रहे हैं और उनका यह शोधग्रथ, जिस पर उन्हें पीएच्‌-डी. की उपाधि मिली है, उनके अनेक वर्षों के चिन्तन का परिणाम है।

ग्रथ ग्यारह अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय विषय की पूर्व पीठिका का कार्य कर रहा है। इसमें भी अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का अच्छा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तदनन्तर द्वितीय से अष्टम अध्याय तक रामचरित मानस का विवरणात्मक अध्ययन अंकित है। आचार्य पाण्डेय जी ने इस अध्ययन का आधार उन नामों को माना है, जो श्री गोस्वामी जी द्वारा अपने मानस के सोपानों को दिये गये हैं। रामचरितमानस को भी रामायण कहने की परम्परा-सी चल पड़ी है और इसी भाँति उसके सोपान काण्ड कहे जाने लगे हैं—बाल काण्ड, अयोध्याकाण्ड आदि। इस परम्परा के कारण, 'विमल संतोष सम्पादन', 'विमल विज्ञान-वैराग्य सम्पादन', 'अविरल हरिभक्ति सम्पादन' आदि नामों की जो विशेषता रही है और इन तत्वों को ध्यान में रख कर ही गोस्वामी जी ने अपनी मानसी रामकथा का जैसा विकास कराया है, उस ओर सर्वसाधारण का ध्यान ही नहीं जाने पाता। सर्वसाधारण ही नही, ऐसे विद्वज्जन भी कम ही हैं, जिन्होंने गोस्वामी जी द्वारा दिये गये इन नामों का महत्त्व समझा हो और उस दृष्टिकोण से उनके 'मानस' का अध्ययन किया हो। अतएव इस विषय का आचार्य पाण्डेय जी का यह अध्ययन अपनी विशेष महत्ता रखता है। नवें अध्याय में तुलसी के मानसेतर ग्रंथों का अध्ययन है।

दसवें अध्याय में श्री पाण्डेय जी ने डॉक्टर निकॉल मैकनिकॉल के 'इण्डियन थीइज़्म" के उन अंशों का सप्रमाण विद्वत्तापूर्ण उत्तर दिया है, जो अंश गोस्वामी जी के विरुद्ध आक्षेप-रूप में रखे गये थे। डॉक्टर निकॉल मैकनिकॉल के समान ऐसे कुछ

विद्वान् हुए है, और होगे भी, जिन्हें प्रायः दोषोद्भावना मे ही रस मिलता है। यदि दोष वस्तुत. है और उसका उद्घाटन किया जा रहा है, तब तो वह प्रयत्न किसी सीमा तक क्षम्य भी कहा जा सकता है। परन्तु जब अपने अभिमान अथवा अपने अपूर्ण ज्ञान, अपने पूर्वाग्रह, अपनी मनोवृत्ति, आदि के कारण दोष की कल्पना करके उस पर आलोचनाओं के भवन खड़े कर दिये जाते हैं तब वह प्रयत्न कुछ ऐसा ही बाल-प्रयत्न-सा जँचता है जो धूल की मुट्ठियाँ फेंक कर सूर्य-प्रभा ढँक लेने की चेष्टा में देखा जाता है। कालप्रवाह की वायु ऐसे राजस मालिन्य को आप ही दूर कर दिया करती है। परन्तु कभी-कभी विद्वज्जनों को भी इस दूरीकरण का निमित्त बनना पड़ता है। अतएव श्री पाण्डेय जी ने डॉक्टर मैकनिकॉल को समुचित उत्तर दे कर उत्तम ही कार्य किया है।

इस शोधग्रथ के अन्तिम ग्यारहवें अध्याय मे उत्तर-तुलसी-युग के रामभक्त कवियो की चर्चा है और यह चर्चा भी शोधग्रंथ की महत्ता के अनुरूप ही हुई है।

आचार्य पाण्डेय जी ने यह शोधग्रथ लिख कर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है और मानस-विषयक चिन्तनधारा को स्पृहणीय गति दी है, इसमे कोई संदेह नहीं। मुझे विश्वास है कि आचार्यो और सतों— दोनों ही वर्गो में यह ग्रंथ यथेष्ट समादृत होगा।

बलदेवप्रसाद मिश्र

राजनाँद गाँव,
वसन्त पचमी,
१२ फरवरी, १९५९

अध्याय १

पूर्व परम्पराएँ

भारत मे राम का अवतार साधारण मनुष्य के रूप मे हुआ था। इसीलिए राम साधारण मनुष्य के हृदय के पास अधिक स्वाभाविक और अधिक स्पष्ट रूप से आ सके। कृष्ण के अवतार के साथ जन्म से ही पारमात्मिक शक्तियो का इतना अधिक सम्बन्ध है कि साधारण मनुष्य उन्हे न तो अविकल रूप से अपने हृदय मे रख सकता है, और न इस अवतार के जीवन के रहस्यो को पूरी तरह से समझ ही सकता है। कृष्ण के अवतार को समझने मे गलती करने के कारण ही साधारण भारतीय जनता कभी-कभी, राधाकृष्ण ओर गोपीकृष्ण के सम्बन्धो से भ्रान्त धारणा और भावना ग्रहण करके विलासी और अमर्यादित जीवन की ओर चली गयी। पर राम के जीवन मे ऐसी कोई जटिलता नही थी जो जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाले मानव को भ्रम मे डाल देती। राम का अवतार पूर्णतः बोधगम्य था और उसके सहारे जीवन-पथ का पथिक कभी भ्रान्त नही हुआ, बराबर शील के विकास की ओर ही बढा। हिन्दी कविता के क्षेत्र मे 'नानापुराणनिगमागम' से चुने हुए, भाव-सम्पत्ति और विचार-सम्पत्ति के रत्नों को समुचित और स्वाभाविक स्थान पर सँजो कर गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के जीवन को साधारण मनुष्य के चलने के लायक एक भव्य राजमार्ग का रूप प्रदान किया।

अथर्ववेदीय रामपूर्वतापनीय उपनिषद् 'राम' शब्द के विविध अर्थ प्रस्तुत करती है। इसने 'राति राजते वा महीस्थित सन् इति रामः' की धारणा का प्रचार किया है। शक्ति, शील और सौन्दर्य के आधार पर यहाँ राम शब्द की व्युत्पत्ति की गयी है। संस्कृत की 'रा' धातु का अर्थ दान देना होता है। राम की दानशीलता तथा विश्व मे हर तरह की पीडा को, साधु प्रकृति के मनुष्यों के भीतर से निकाल देने के स्वभाव के कारण 'राम' शब्द का 'रा' अक्षर 'रा' धातु मे लिया गया है। सज्जनो के सब अभावो तथा उनकी हर तरह की पीडाओं को दूर करने वाला 'राम' होता है। संसार को सुखी बनाने के लिए, उसके अभावो को दूर करने के लिए राम ने अपने को जीवन भर तप की अग्नि मे तपाया। दूसरो के लिए तप की अग्नि मे अपनी चेतना को तपाना ही राम का शील था। इस शील के विकास के लिए जिस अनत शक्ति की आवश्यकता होती है, वह राम मे थी।

संस्कृत की 'राज्' धातु का अर्थ 'चमकना' होता है। राम तेजस्वी, प्रतापवान् तथा रूप-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य के समाहित स्वरूप थे। राजा मे इन्ही गुणों की आवश्यकता

होती है। प्रताप और सौन्दर्य के पुजीभूत रूप राम, शक्ति, शील और सौन्दर्य को एक साथ अपने व्यक्तित्व मे धारण किये हुए एक आदर्श राजा थे। सस्कृत की इन दो धातुओ के प्रारम्भिक अक्षर 'रा' से 'राम' शब्द के 'रा' अक्षर की उत्पत्ति रामपूर्वतापनीय उपनिषद् मानती है । 'मही' शब्द के 'म' से राम का 'म' बना हुआ है । 'मही', पृथ्वी पर राम की यह आदर्श लीला प्रसारित हुई थी । वे दुष्टों और राक्षसो का मरण बन कर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे । इसीलिए 'राक्षस' के 'रा' और 'मरण' के 'म' से भी यह उपनिषद् राम शब्द की व्युत्पत्ति समझाती है। अभिराम (सुन्दर) शब्द से भी 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति इस उपनिषद् मे दी गयी है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी सौन्दर्य के द्वारा जगत् को आकर्षित कर लेने वाला, राम का गुण व्यजित होता है। राहु के समान, मनसिज (चन्द्रमा) को ग्रस्त कर लेने वाला अर्थ बतलाने के लिए भी 'राहु' से 'रा' और 'मनसिज' से 'म' अक्षर को ले कर इस उपनिषद् ने 'राम' शब्द की योजना की है। जिस तरह राहु, मनसिज (चन्द्रमा) को ग्रस्त कर लेता है उसी तरह अपने अनासक्तिमय स्वभाव से राम ने मनसिज (काम) को पराजित कर लिया था। अपनी इसी अनासक्तिमय लोकसेवा से राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। इस प्रकरण मे मनसिज शब्द का चन्द्रमा के पर्याय की तरह प्रयोग है। इसका कारण यह है कि यजुर्वेद के पुरुषसूक्त मे चन्द्रमा, विराट् पुरुष के मन से उत्पन्न होने वाला माना गया है—'चन्द्रमा मनसोजात.' ‡।

राक्षसों को मनुष्य-रूप धारण करके दण्ड देने के कारण भी 'राम' नाम की व्युत्पत्ति इस उपनिषद् ने समझायी है।' राक्षस' के 'रा' और 'मनुष्य' के 'म' से यह उपनिषद् 'राम' शब्द को बना हुआ मानती है।

राज्य पाने वाले महीपालों को अपने आदर्श शील से आदर्श व्यक्ति बनाने वाले पुरुषोत्तम को 'राम' का नाम, यह उपनिषद् देती है। इस स्थिति मे 'राज्य' मे 'रा' और 'महीपाल' से 'म' को ले कर इस उपनिषद् में 'राम' शब्द की योजना की गयी है।

इस तरह राम की समग्रता के आधार पर यह उपनिषद् 'राम' शब्द के अर्थ को व्युत्पत्ति के आधार पर समझाती है। इन सब व्युत्पत्तियो के समाहित उपसहार के रूप मे यह उपनिषद् मानती है कि ज्ञानी राम के नाम के उच्चारण से ज्ञान, अनासक्तिमय राम के शील के ध्यान से वैराग्य तथा परम सुन्दर और समग्र ऐश्वर्यो की निवासभूमि उनके सुन्दर शरीर की मूर्ति की उपासना से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

इस प्रकरण के अत मे 'राम' का शुद्ध दार्शनिक अर्थ बताते हुए यह उपनिषद् कहती है कि शाश्वत आनन्द के रूप, विश्व के समग्र चैतन्य के केन्द्र, जिस सनातन ब्रह्म मे, ध्यानमग्न हो कर योगी लोग परमानन्द मे लीन हो कर, रमण करते है, वह परब्रह्म परमात्मा ही राम है, और वही पृथ्वी पर राम के नाम से अवतीर्ण होता है । यहाँ

‡ यजुर्वेद, अध्याय ३१, मत्र १२।

'रम्' (खेलना) धातु से विराट् ब्रह्म राम की व्युत्पत्ति करके अनत की आनन्दमयी अभेदानुभूति का प्रतिपादन किया गया है। विराट् के अनतव्यापी एकत्व की अनुभूति मे खो जाना ही वेदान्ती दार्शनिक की मुक्ति है। इसी मुक्ति-तत्व को यह उपनिषद्, 'राम' शब्द के आधार पर, इस प्रकरण के अन्त मे समझाती है‡।

इस उपनिषद् की यह मान्यता है कि परम चैतन्यमय, अद्वितीय, पाञ्चभौतिक अवयवयुक्त शरीर मे न बँधने वाला ब्रह्म ही भक्तों की इच्छा-पूर्ति के लिए, उनके स्नेह से आकृष्ट हो कर, निराकार होने पर भी चैतन्यमय नराकार शरीर धारण कर लेता है†।

यह उपनिषद् इस तथ्य का प्रचार करती है कि सब देवता भगवान् राम के स्वरूप मे ही अन्तर्भूत है। वे ही पुरुष या स्त्री रूप मे प्रकट हुआ करते है। वे ही भगवान् की सेवा किया करते है। जिस प्रकार हाथ, पैर इत्यादि अग सम्पूर्ण शरीर की सेवा करते हुए उस शरीर के ही भाग है, और उस शरीर से अलग नही है, उसी प्रकार ये सब देवता भगवान् की सेवा करते है और अभेद-सम्बन्ध से उन्ही के अग है। ये उनसे पृथक् नही है। ये ही देवता भगवान् के रूप के अनुसार उनके चार, छह, आठ, दस, बारह, सोलह या अट्ठारह हाथ बन जाते है और उन हाथों मे रहने वाले शस्त्र इत्यादि का रूप धारण कर लेते है। ये ही देवगण भगवान् के विश्वरूप या विराट् रूप मे उनकी सहस्रो भुजाओ के रूप मे परिणत हो जाते है। भगवान् के इन सभी रूपो के रग और वाहन इत्यादि पृथक्-पृथक् हो जाते है। यह देवताओं के ही रूपान्तर से सम्भव होता है। ये ही देवता भगवान् की विविध शक्तियों और सेनाओं के रूप मे भी परिणत हो जाते है। परब्रह्म राम के विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश इत्यादि पचविध रूपो और उपकरणो का यही रहस्य है$। इसी प्रक्रिया से विराट् राम के सर्वदेवमय रूप की उपस्थापना रामपूर्वतापनीय उपनिषद् करती है।

यह उपनिषद् इस तथ्य को स्वीकार करती है कि 'राम' मन्त्र ब्रह्मा से ले कर वृक्ष तक समस्त जड-चेतन जगत् के ज्ञान से ओतप्रोत है। इसका प्रभाव अनन्त है। साधक को इसका ध्यान निरन्तर करना चाहिए। इस मन्त्र के निरन्तर ध्यान से साधक के लिए सब रहस्य प्रकट सत्य के रूप मे बदल जाते है। कोई बात उससे छिपी नही रह जाती। मनन और त्राणन (चिन्तन होने पर रक्षाकारक) के कारण मन्त्र कहलाने वाले शक्तिपुज मन्त्रो के सब गुण 'राम' मन्त्र मे है। स्त्री तथा पुरुष रूप मे व्यक्त होने वाले भगवान् की उपासना के लिए निर्मित यन्त्र उनके विराट् शरीर का प्रतीक होता है। अत इस उपनिषद् के अनुसार उनके अनत शरीर का ध्यान यन्त्र की सहायता से कर उसी यन्त्र की पूजा होनी चाहिए। यन्त्र पर भगवान् के विराट् शरीर का रहस्य और

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड १, श्लोक १ से ६ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड १, श्लोक ७। $ रामपूर्वतापनीय उपनिषद, खड १, श्लोक ८ से १० तक।

रहती है, इसीलिए यन्त्रपूजन से उपनिषद् के अनुसार भगवान् का अनन्त शरीर पूजित हो जाता है‡।

भगवान् राम स्वय उत्पन्न होने वाले (स्वभू) तथा शाश्वत है। ज्ञानमय प्रकाश के अपने रूप के कारण वे ज्योतिर्मय है। रूपवान् होते हुए भी वे देश, काल और वस्तु को अतिक्रान्त करके असीम रूप मे भी रहते है। वे स्वत प्रकाशित तथा स्वतन्त्र है। अपने नियन्त्रण मे रहने वाले त्रिगुणो का उपयोग करके इस व्यक्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयावस्था को वे ही सचालित करते रहते है। अपने चैतन्य को ले कर वे ही समस्त जीवों के अन्तर्यामी बनते है। उनके न रहने पर जीव भी नही रह जाता। परमात्मस्वरूप ॐकार का विराट् रूप यह जगत् उन्ही का रूप है।

अणु-बीज मे वट वृक्ष की तरह 'राम्' बीज-मन्त्र मे जगत् का सम्पूर्ण विकास अन्तर्निहित रहता है। 'राम्' के 'र्' पर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का निवास रहता है। 'र्' इस त्रिमूर्ति शक्ति से ऊर्जस्वित है। इस 'र्' मे इतनी शक्ति है कि त्रिमूर्ति की पूरी शक्ति इसी से प्राप्त होती रहती है। उत्पत्ति पालन और सहार की शक्तियाँ तथा बिन्दु, नाद और बीज से उत्पन्न रौद्री, ज्येष्ठा और वामा शक्तियाँ 'र्' मे ही प्रसूत होती है।

र्, आ, अ, म् से 'राम्' का बीज निर्मित होता है। 'र्' रामवाचक तथा आ, अ और म् मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियाँ रहती है। 'राम्' बीज मे प्रकृति-पुरुष-रूप सीता-राम की ही उपासना होती है। इसी 'राम्' बीज मे चौदह भुवनो की उत्पत्ति, स्थिति और लय हुआ करते है। यह 'राम्' बीज ब्रह्म राम का ध्वनिविग्रह या ध्वनिमय शरीर है।

लीला (माया) के लिए भगवान् राम मानव हो गये। इसी अनन्त राम मे तदाकार परिणति का प्रचार रामपूर्वतापनीय उपनिषद् करती है। जीव की मुक्ति इसी मे है कि वह अपने को श्रीराम ब्रह्म का स्वरूप अनुभव करके जगत् की स्वार्थमयी सकुचित भावना से ऊपर उठ जाए†।

यह उपनिषद् 'रामाय नम.' मन्त्र का बडा रहस्यात्मक और दार्शनिक अर्थ बताती है। इसके अनुसार 'नम.' जीववाचक है; क्योकि जीव के हृदय मे रहने वाली नमस्कार की भक्ति भावना इसी के भीतर है। 'राम' शब्द आत्मा का बोधक है। सर्वव्यापी आत्मा (परमात्मा) का इसी नाम मे जीव ध्यान करता है। चतुर्थी की 'आय' विभक्ति को यह उपनिषद् जीव और आत्मा (परमात्मा) मे एकत्व स्थापित करने वाली मानती है; क्योकि इसी चतुर्थी विभक्ति के द्वारा जीव अपने भक्ति-प्रवण हृदय को राम के लिए समर्पित कर देता है।

यह सम्पूर्ण मन्त्र 'रामाय नम.' जीवात्मा और परमात्मा के अभेद रूप राम का बोध कराता है। इस उपनिषद् ने मन्त्र और परमात्म-सिद्धि का एक बड़ा ही

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड १, श्लोक ११ मे १३ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड २, श्लोक १ से ४ तक।

स्वाभाविक सम्बन्ध बताया है। इसके अनुसार मन्त्र के द्वारा बार-बार परमात्मा को बुलाने से भगवान् राम जीव के सम्मुख ठीक उसी प्रकार उपस्थित हो जाते है जिस प्रकार किसी व्यक्ति को उसके नाम के द्वारा पुकारने से वह व्यक्ति आ जाता है।

दशरथपुत्र राम के सगुण-निर्गुण रूप की उपासना का प्रचार यह उपनिषद् भी करती है। एक तरफ राम को यह दशरथपुत्र मानती है और दूसरी तरफ उन्हे अनत और परम आत्मा मानती है।

इस उपनिषद् ने तान्त्रिक विचार-परम्परा और योजना का उपयोग करके बडे तर्कपूर्ण ढंग से राम की व्यापकता सिद्ध की है। सस्कृत मे 'आ' अनतवाची शब्द है। 'र्' को तन्त्रो ने अग्नि-शक्ति का रूप माना है। यह अक्षर अग्नि-शक्ति से गर्भित अग्नि-बीज माना गया है। अतः 'र्' और 'आ' युक्त राम अनन तेजोमय अग्नि-रूप है।

सीता से युक्त राम सम्पूर्ण विश्व के रूप है। और उनके नाम का 'म्' वर्ण सीता का ही वाचक है। तन्त्रो मे 'म्' बीज सोम (चन्द्र) की शक्तियों से गर्भित माना गया है। नारी की प्रकृति शीतल मानी गयी है और पुरुष की तप्तागार की तरह—'घृतकुभ-समा नारी तप्तागारसम. पुमान्'। ज्योतिष-शास्त्र भी शीतल चन्द्रमा को स्त्री ग्रह मानता है। इसीलिए यह चन्द्र बीज 'म्' सौम्यकान्ति और शीतल स्वभाव वाली सीता का बोधक है। ब्रह्म राम अपने भीतर अग्नि क अनत तेज 'रा' और सोम की अनत शीतलता 'म्' को धारण किये हुए जगत् के अनत स्त्री-पुरुषो की उत्पत्ति के मूल स्रोत है। उनका यह अनत अग्निषोमात्मक रूप अनत जगत् के स्त्रीत्व और पुरुषत्व को अपने भीतर ही रखता है‡।

इस उपनिषद् के अनुसार 'सीता' राम की प्रकृति और उनकी ह्लादिनी शक्ति है। वे ही राम ब्रह्म की वह शक्ति है जिससे जगत् की सृष्टि होती है। वे मूलप्रकृति-रूपा परमेश्वरी शक्ति है, जिसमे सम्पूर्ण जगत् सूक्ष्म रूप से प्रलय की अवस्था मे जा कर विलीन हो जाता है। वे परम चैतन्यमयी और परम आनन्दमयी है†।

रामपूर्वतापनीय उपनिषद् मे दिये गये राम के पूजा-यन्त्र पर सम्पूर्ण विश्वशक्तियो की अभेदोपासना होती है। इस पूजा-यन्त्र पर लक्ष्मी और सीता मे अभेद-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए रमाबीज 'श्री' स्थापित किया गया है। राम और नारायण का अभेद दिखाने के लिए 'ॐ नमो नारायणाय' तथा 'ॐ नमो वासुदेवाय' नारायण मन्त्र इस यन्त्र पर रखे गये है। सम्पूर्ण जीवो की इच्छाओं मे प्रेरक रूप से निवास करने वाले राम की सूचना देने के लिए यन्त्र पर कामबीज (इच्छा बीज) 'क्ली' का भी समावेश है। प्रकृति के अधीश्वर मायापति राम की ओर लक्ष्य करने के लिए यन्त्र पर मायाबीज 'ह्री' भी रखा गया है। राम के सात्त्विक क्रोध से पवित्र बुद्धि, लोकमगल और आदर्शो की स्थापना होती है। इसीलिए राम की पूजा के यन्त्र पर क्रोध बीज 'हुम्' के दोनों पार्श्वो पर सरस्वती का 'ऐं' बीज

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खण्ड ३, श्लोक १ से ६ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड ३, श्लोक ७ से ९ तक।

लिखा जाता है। राम का सात्विक क्रोध अपनी दोनों भुजाओ से सरस्वती (पवित्र आदर्श और पावन बुद्धि) का प्रचार करता रहता है। इसीलिए मन्त्र पर क्रोधबीज 'हुम्' के दोनों पार्श्वों मे सारस्वत बीज 'ऐं' है‡।

इस पूजा-यन्त्र पर राम की शक्तियो के रूप मे हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अगद, जाम्बवान् तथा शत्रुघ्न सम्मिलित किये गये है। इनके अतिरिक्त पाचरात्र के चतुर्व्यूह† अपनी शक्तियो $ के साथ यन्त्र पर रखे गये है। अष्ट लोकपाल* और दस दिक्पाल § भी इस राम यन्त्र पर पूजित होते है। दस दिक्पालो के आयुधो× की भी इस यन्त्र पर स्थापना और पूजा होती है। इनके अतिरिक्त वानरों तथा+ ऋषियो* की भी पूजा इस यन्त्र पर होती है¶। अष्ट वसु|⊕ ग्यारह रुद्र|‡ बारह सूर्य|† और वषट्कार (ब्रह्मा) की स्थापना और पूजा भी राम यन्त्र पर होती है। इनके अतिरिक्त शेषनाग तथा आठ और नाग|$ भी राम यन्त्र पर स्थापित और पूजित होते है‡*।

रामपूजायन्त्र पर नृसिह का 'क्ष्रौं' बीज-मन्त्र तथा वराह का 'हुम्' बीज-मन्त्र भी लिखा जाता है। 'क्ष्रौं' का 'क्ष्' अमोघा शक्ति का, 'र्' क्रोधिनी शक्ति का, 'औ' अनुग्रह शक्ति का तथा अनुस्वार ब्रह्मज्ञान की ओर ले जाने वाले अनाहत नाद का प्रतिनिधि है।

इस तरह विश्व भर मे व्याप्त अनत शक्तियाँ जो विभिन्न रूपो मे दिखाई देती है, रामपूजायन्त्र पर अभेद-सम्बन्ध से सम्बद्ध करके एक ही विराट् अनत राम के अग की तरह देखी गयी है।

राम-सम्बन्धी मालामन्त्र तथा उसके अक्षरो मे गर्भित शक्तियो का विवेचन रामपूर्वतापनीय उपनिषद् मे बडे आश्चर्यमय ढग से किया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार रामोपासना का मालामन्त्र इस प्रकार है —

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड ७, श्लोक १ से ८ तक। † वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। $ शान्ति, श्री, सरस्वती तथा रति। * धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। § इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्रमा, ईशान, ब्रह्मा और अनत। × वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अकुश, गदा, शूल, पद्म तथा चक्र। + नल, नील, सुषेण, मैन्द, शरभ, द्विविद, धनद, गवाक्ष, किरीट, कुण्डल, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शख, चक्र, गदा और पद्म इत्यादि। * वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि, नारद, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इत्यादि। ¶ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड ६, श्लोक १२ से १६ तक। |⊕ ध्रुव, धर, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। |‡ हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, शम्भु, वृषाकपि, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली। |† धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, तथा विष्णु। |$ अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म शंख और कुलिक। ‡* रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड ८, श्लोक १ से ६ तक।

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलायरामाय विष्णवे नमः ॐ ‡ ।

परमात्मा की सगुण-निर्गुण उपासना के भीतर सगुण-रूप का निर्देश करने वाले मन्त्रो के अक्षरो की शक्तियो के द्वारा उपनिषदों ने तान्त्रिक पद्धति से मन्त्रों के द्वारा निर्गुण अनतशक्ति की भी सिद्धि की है। तन्त्रों ने अक्षरों की जिन मूलभूत शक्तियों का निर्धारण कर दिया है उनके आधार पर सगुण-सूचक उपासना-मन्त्र भी निर्गुण का बोध कराने लगते है। तन्त्रो ने वर्णमाला के सब अक्षरो की अन्तर्निहित शक्तियो के अनुभव के रहस्य का प्रतिपादन करते हुए विराट् ब्रह्म के भीतर विकसित हुए शब्दब्रह्मात्मक अक्षरों को भी ब्रह्म की विभिन्न शक्तियो से सम्पन्न माना है।

उल्लिखित मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ॐकार' विराट् ब्रह्म का सूचक है। तान्त्रिक चिन्तन-पद्धति के आधार पर मन्त्र के 'म' अक्षर को इस उपनिषद् ने निद्रावाचक माना है, 'ग' स्मृति का केन्द्र है, 'व' भेद का स्वरूप है, 'त्' कामिका शक्ति है, 'ए' रुद्र शक्ति है, 'र्' अग्नि शक्ति है, 'घ्' मेधा शक्ति है, 'उ' अमरता है, 'न' दीर्घकला शक्ति है, 'आ' मानदा कला है, अनुस्वार (चन्द्रमा) सौम्यशक्ति है, 'द' ह्लादिनी शक्ति है, 'न्' फिर दीर्घकला शक्ति है, 'आ' मानदा शक्ति है, 'य' क्षुधा शक्ति है, 'र्' क्रोधिनी शक्ति है, 'क्ष्' अमोघा शक्ति है, 'ओ' विश्व शक्ति है, 'य्' मेधा शक्ति है, 'न्' फिर दीर्घ कला है, 'व' ज्वालिनी या वह्नि कला है, 'इ' सूक्ष्म रुद्र है, 'श्' मृत्यु प्रणव कला है, 'अ' उससे लगी हुई प्रतिष्ठा या उच्चारण की आधार-स्वरूपा शक्ति है, 'दा' फिर अनत 'आ' से युक्त ह्लादिनी शक्ति है, 'य' त्वक् शक्ति है, 'म' विष शक्ति है, 'ध' प्रीति शक्ति है, 'उ' अमर शक्ति है, 'र' ज्योति शक्ति है, 'प्' तीक्ष्णा शक्ति 'र्' अग्नि शक्ति से युक्त है, 'स' श्वेता शक्ति अनुस्वार (चन्द्रमा) सौम्य शक्ति से युक्त है, फिर 'न' कामिका शक्ति है। इसके बाद पूर्व सूचित 'व', 'द' और 'न' है, जिनके अन्त मे अनन्त वाची 'आ' है। इसके बाद 'आ' से युक्त 'या अनन्त वायु शक्ति है, इसके बाद ह्रस्व 'इ' रुद्र शक्ति से युक्त 'म्' विष शक्ति है। 'ते' मे कामिका 'त्' तथा रुद्र 'ए' शक्तियाँ है, 'से' मे 'स्' श्वेता तथा 'ए' रुद्र शक्तियाँ है, 'ब' मे तापिनी तथा 'ला' के 'ल्' मे भू, और 'आ' मे अनत शक्तियाँ है, 'रा' के 'र्' मे अग्नि तथा 'आ' मे अनत शक्तियाँ है, 'मा' के 'म्' मे विष (काल) तथा 'आ' मे नारायण (अनत) शक्तियाँ है, 'य' वायु (प्राण) शक्ति है, 'वि' मे 'व्' जल शक्ति तथा 'इ' विद्या शक्ति है, 'ष्ण' मे 'ष्' पीला शक्ति तथा 'ण' रति या प्रेम शक्ति है, 'वे' मे 'व्' जल शक्ति तथा 'ए' विश्व की सृष्टि करने वाली शक्ति है, 'नम' के 'न' मे दीर्घकला शक्ति और 'म' मे काल शक्ति है तथा ॐकार अन्त मे पुनः विराट् ब्रह्म का सूचक है।

इस तान्त्रिक पद्धति से मन्त्र के आदि और अत मे ॐकार की ध्वनि, आदि और अत मे, सृष्टि के पूर्व तथा अन्त मे विराट् ब्रह्म की स्थिति की सूचना देती है तथा बीच के शक्ति-गर्भित सब अक्षर व्यक्त जगत् की विभिन्न स्थितियो मे दिखाई पडने वाले

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड १, श्लोक ४ से १० तक।

तथा अनुभूत होने वाले शक्तिपुजो की सूचना देते है। भगवान् राम की सगुण उपासना का यह मन्त्र उपनिषद् के तान्त्रिक दृष्टिकोण से निर्गुण की अनत व्यापकता के भीतर शाश्वत जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय की सूचना देते हुए यह स्पष्टत घोषित करता है कि अनत शक्तियाँ विराट् से ही उत्पन्न होती है, विराट् मे ही स्थित रहती है और विराट् मे ही प्रलय की दशा मे लीन हो जाती है। इस तरह रामपूर्वतापनीय उपनिषद् का यह मन्त्र-रहस्य, राम की सगुण-निर्गुण उपासना का बडा स्पष्ट सकेत देता है तथा नवम खड के अत मे यह सूचना भी देता है कि मन्त्र के भीतर निहित शक्तिया धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यमय सम्पूर्ण जगत् मे सम्बन्ध रखती है और इनमे युक्त अनत सत् (अस्तित्व) अनत चित् (चेतना) और अनत आनन्दमय इस मन्त्र के सतत ध्यान मे धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य की सिद्धि होती है‡।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार—(१) रा रामाय नमः, (२) रामचन्द्रायनम और (३) रामभद्राय नम—तारक मन्त्र के तीन स्वरूप है। ये ही क्रम से ॐकारस्वरूप, तत्स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप है। ये ही 'सत्' स्वरूप, 'चित्' स्वरूप तथा 'आनन्द' स्वरूप है। 'रा' और 'ॐ' मे कोई अन्तर नही है। दोनो तारक ब्रह्म है। 'रा' मे 'र्' अग्नि तत्त्व, 'आ' अनत तत्त्व और 'म्' काल तत्त्व है। अनत काल और अनत देश मे व्याप्त निर्गुण ज्योति-तत्त्व (ज्ञान) ही ॐकार स्वरूप ब्रह्म है। इसीलिए 'रा रामाय नम' ॐकार स्वरूप है। 'रामचन्द्राय नम' मे 'चन्द्र' मनवाचक तथा अनत ज्योति का ही एक स्थूल तथा मन के लिए गम्य वस्तु-पिड है। अनत को तत् (वह) शब्द मे निर्देश नही कर सकते; क्योकि वह बोध का विषय नही बन सकता। निश्चयात्मिका बुद्धि उसे निश्चय के भीतर ला कर बाँध नही सकती। 'यो बुद्धे परतस्तु सः'|। इसीलिए अनत ॐकार को निश्चय के भीतर नही बाँध सकते। उसका सगुण स्थूल रूप 'चन्द्र' मन और बुद्धि के लिए गम्य हो जाता है। उसके लिए निश्चयवाचक सर्वनाम तत् (वह) का प्रयोग किया जा सकता है। 'रामचन्द्राय नम' इसीलिए तत्स्वरूप है। 'रामभद्राय नम' में भद्र (मगल) की स्थिति लोकमगल विधान की सूचना देती है। स्वार्थ से ऊपर उठ कर अभेदानुभूति की ब्राह्मी स्थिति पर पहुँचा हुआ शीलविकास ही लोकमगल विधान कर सकता है। यही ब्राह्मी स्थिति परम मगला भद्रा स्थिति है। इसीलिए 'भद्र' युक्त 'रामभद्राय नम.' मन्त्र ब्रह्मस्वरूप है। पूर्वकथित 'रा रामाय नम' अनतव्यापी ॐकार-स्वरूप अस्तित्व होने के कारण ब्रह्म का सत्स्वरूप है, 'रामचन्द्राय नम' चेतन बोध के भीतर आने वाले 'चन्द्र' मे युक्त होने के कारण ब्रह्म का चित्स्वरूप है; क्योंकि 'चन्द्रमा मनसो जात' के अनुसार भी ब्रह्म के चित्स्वरूप से उसका सम्बन्ध है और मन, प्रकाश युक्त सूक्ष्मेन्द्रिय भी माना जाता है। चन्द्र ब्रह्म की चित् शक्ति (मन) मे सम्बन्ध रखता है इसीलिए 'रामचन्द्राय नम' ब्रह्म का चित्स्वरूप है। भद्र और मगल का सम्बन्ध आनन्द से है। इसीलिए 'रामभद्राय नम.' मन्त्र को यह उपनिषद्, ब्रह्म का आनन्द स्वरूप मानती है $।

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खड ९, श्लोक ११ से १२ तक। | गीता, अध्याय ३, श्लोक ४२। $ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका २।

यह उपनिषद् इस स्वाभाविक सत्य को स्वीकार करती है कि निरन्तर उपासना और पवित्र चिन्तन के कारण व्यक्ति स्वय ही पवित्र नही होता अपितु वह अपनी पवित्रता को प्रसारित भी करता रहता है । अपनी अधिकना के कारण वह पवित्रता उसके शरीर के बाहर जा कर उस स्थान को बहुत दूर तक पवित्र कर देती है, जहाँ कोई पवित्रात्मा रहती है । यह उपनिषद्, शिव को राम का अनत उपासक मानती है और शकर की यह उपासना काशी की भूमि पर होती रहती है । इसी उपासना की शिवगत पवित्रता के कारण काशी के भीतर भी शाश्वत पवित्रता उत्पन्न हो गयी है । राम के तारक मत्र के साथ वह भी जगत्तारणी हो गयी है‡ । इसी सत्य के आधार पर परम रामभक्त शिव और उनकी पुरी काशी का साथ गोस्वामी जी ने अपने जीवन के अत तक नही छोड़ा । इन्ही स्रोतों से गोस्वामी जी के शिव की रामभक्ति भी परिवर्धित हुई होगी ।

पाचरात्र के सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वासुदेव के सिद्धान्त को माण्डूक्योपनिषद् के चतुष्पाद् ब्रह्म से सम्बद्ध करके इस उपनिषद् ने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को भी चतुष्पाद् ब्रह्म के वासुदेव, सकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न रूपों से सम्बद्ध कर दिया है । भारतीय धर्मसाधना की इस परम्परा मे कृष्णोपासना से सम्बद्ध ये चतुर्व्यूह के नाम रामोपासना से सम्बद्ध कर दिये गये । इस तरह राम और कृष्ण मे, अभेदोपासना के दृष्टिकोण से भारतीय भक्तो ने साम्य स्थापित कर अभेदानुभूति की अपनी उदार साधना का परिचय दिया । इन दो उपासनाओं को एक केन्द्रीय सूत्र से सम्बद्ध करने के लिए रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने माण्डूक्य उपनिषद् का पूरा उपयोग किया है । इस तरह के उपयोग का इस उपनिषद् को अधिकार भी स्वभावतः प्राप्त था; क्योकि ये दोनों उपनिषद् अथर्ववेद के ही है । अतः अथर्ववेद का साहित्य भारतीय धर्मसाधना के भीतर समन्वय साहित्य की एक कडी है । माण्डूक्य उपनिषद् का सम्पूर्ण शरीर केवल बारह गद्यवाक्यो से बना हुआ है । रामोत्तरतापनीय उपनिषद् मे इन बारहो वाक्यों की विचार-परपरा का उपयोग करके चतुर्व्यूह का सिद्धान्त चतुष्पाद् ब्रह्म के सिद्धान्त से सम्बद्ध किया गया है, और उसके साथ ही साथ राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के अवतारो को भी चतुर्व्यूह का रूप सिद्ध किया गया है ।

रामोत्तरतापनीय के अनुसार लक्ष्मण ॐकार के 'अ' अक्षर से उत्पन्न हुए है । ये जाग्रत अवस्था के स्वरूप है तथा विश्व के रूप मे इनका ध्यान किया जा सकता है। चतुर्व्यूहों के सकर्षण ये ही है—'अकाराक्षरसम्भूत· सौमित्रिर्विश्वभावन·'† ।

इस उपनिषद् के अनुसार लक्ष्मण, रामब्रह्म के प्रथम पाद हैं । ब्रह्म के प्रथम पाद का लक्षण, माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार निम्नाकित है—

"जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञ सप्ताग एकोनविशतिमुख. स्थूलभुग्वैश्वानर. प्रथम पाद·"$।

---

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ४ । † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ३ ।
$ माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ३ ।

जागता हुआ जीव अपने चारों तरफ के ससार को देखता रहता है, उसका ज्ञान बाह्य जगत् से सम्बद्ध होता रहता है, सिर से पैर तक के अपने सातों अगो का तथा अपनी पाच कर्मेन्द्रियो, पाँच ज्ञानेन्द्रियो, पाँच प्राणो ओर मन, बुद्धि, अहकार तथा चित्त इन चार प्रकार के अन्तःकरणों का, उन्नीस मुखो की तरह, स्थूल जगत् का उपभोग करने मे उपयोग करता रहता है, उसी तरह वैश्वानर ब्रह्म जाग्रत अवस्था (अपनी चित् शक्ति) मे सम्पूर्ण जगत् को देखता है। अनत ज्ञान और अनत चैतन्य रूप मे वह सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त रहता है। भू, भुव., स्व', मह', जन', तप तथा सत्य लोको के सात स्तरो को व्याप्त करके, वह पाताल के सात लोकों मे फैला हुआ रहता है। तथा उन्नीस इन्द्रियो की विश्व समष्टि मे व्याप्त हो कर इस सम्पूर्ण स्थूल जगत् का स्वय उपभोग करता रहता हे। विश्व को धारण करने वाला विश्वरूप ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रथम चरण, वैश्वानर ब्रह्म है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् लक्ष्मण को इसी सर्वव्यापी, अनत तथा निर्गुण वैश्वानर का सगुण रूप मानती है और यह बताती है कि अनत ब्रह्म राम के लीलापुरुषोत्तम रूप के प्रथम पाद यही है। इनमे वैश्वानर ब्रह्म के सब लक्षण मिलते हे। श्रीराम की प्राप्ति के लिए प्रथम साधन इन्ही की उपासना है। ये अनंत शेष के रूप मे जगत् को धारण करते है, इसलिए भी ये विश्वधारक या वैश्वानर कहलाते है। वैश्वानर ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप, परम चेतन और जागरित स्थान है। लक्ष्मण भी परम ज्ञानी, सचेत ओर जागृत रहते है। अपने इन्ही तीन गुणो की सम्पत्ति की सहायता से इन्होने भगवान् राम की सेवा की। अपने चारो तरफ के बाह्य जगत् की अवस्थाओ को ये बडी सतर्कता से ध्यान मे रखते थे। इसीलिए वैश्वानर ब्रह्म की बहि प्रज्ञता का लक्षण इनमे माना गया है। सात ऊपर के तथा सात नीचे के लोकों को धारण करने के कारण ये शेषनाग के रूप मे सप्ताग है। वैश्वानर ब्रह्म भी सप्ताग होता है। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प, शिक्षा, निरुक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थशास्त्र और दर्शन की समष्टि के रूप मे उन्नीस विद्याओ के पारगत लक्ष्मण, वैश्वानर ब्रह्म की तरह उन्नीस मुख वाले कहे जाते है। प्रलयकाल मे शेष रूप से अपने मुख की आग से ये समस्त स्थूल जगत् को अपने भीतर खीच लेते हैं, इसीलिए ये पांचरात्र के सकर्षण और स्थूलभुक् है।

इसी विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म को लक्षित करते हुए गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने नामकरण के प्रकरण मे सक्षेप मे कहा है—"लच्छन धाम रामप्रिय सकल-जगत आधार, गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार ‡।" गोस्वामी जी के 'सकल-जगत-आधार' मे लक्ष्मण के शेषावतार और विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म दोनो का बडी सुन्दरता से समन्वय हो गया है।

---

‡ रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १९७।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने इनको ॐकार के 'अ' अक्षर से पैदा हुआ माना है। माण्डूक्य उपनिषद् भी सम्पूर्ण विश्व को ॐकार से उत्पन्न तथा ॐकार-स्वरूप मानती है—"ओमित्येतदक्षरमिदम् सर्वतस्योपव्याख्यान भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीत तदप्योंकार एव" ‡ ।

अविनाशी ब्रह्म है। यह सम्पूर्ग जगत् उसी का परिचायक है। अतीत, वर्तमान और भविष्य जगत् सब ॐकार के भीतर ही रहता है। त्रिकालातीत ब्रह्म भी ॐकार ही है।

इसी ॐकार स्वरूप अनत ब्रह्म के 'अ' अक्षर से लक्ष्मण की उत्पत्ति रामोत्तर-तापनीय उपनिषद् ने मानी है † ।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् शत्रुघ्न को ॐकार के 'उ' अक्षर से उत्पन्न हुआ मानती है। "उकाराक्षर सम्भूत शत्रुघ्नस्तैजसात्मक:" $ । 'उ' अक्षर से उत्पन्न शत्रुघ्न तैजस स्वभाव के है। ये रामब्रह्म के द्वितीय पाद है। ब्रह्म के द्वितीय पाद का लक्षण बताते हुए माण्डूक्य उपनिषद् कहती है—"स्वप्नस्थान· अन्त प्रज्ञ सप्ताग. एकोनविशतिमुख प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीय पाद." *—स्वप्न के स्वभाव वाले सूक्ष्म जगत् को व्याप्त करने वाला, सात अगो और उन्नीस मुखो से सूक्ष्म जगत् का अनुभव करने वाला तैजस ब्रह्म (ज्ञानमय प्रकाश का स्वामी) ब्रह्म का द्वितीय पाद है। जिस तरह सम्पूर्ण स्थूल जगत् मे वैश्वानर ब्रह्म व्याप्त रहता है वैसे ही समस्त सूक्ष्म (मनोमय) जगत् मे तैजस ब्रह्म व्याप्त रहता है।

तैजस ब्रह्म के इन्ही लक्षणो को ले कर रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने शत्रुघ्न के लक्षणों की परीक्षा की है। चतुर्व्यूह के सकर्षण के बाद प्रद्युम्न ये ही है। प्रद्युम्न (काम या मनोमय जगत्) का अश होने के कारण ये विश्व भर के मन मे स्थित रहते है। मनोमय सूक्ष्म जगत् मे अन्तर्व्यामी ब्रह्म के ये सगुण रूप है। मनोमय जगत् के अधिष्ठाता होने के कारण वे अन्त:प्रज्ञ है, सबके मन की बात जानते है। सूक्ष्म मनोमय जगत् का सम्पूर्ण तत्र शत्रुघ्न की शक्ति से चलता है। विश्वसमष्टि मन इन्हीं की शक्ति पर आधारित है। लक्ष्मण के सगुण विशेषणों की तरह ये भी सप्ताग और उन्नीस मुख वाले है। काम-शक्ति का मूल स्रोत होने के कारण ये परम सुन्दर है। अत उपनिषदों के तैजस तथा पाचरात्र के प्रद्युम्न ब्रह्म शत्रुघ्न ही है।

सम्पूर्ण जगत् के मनोमय कोष मे व्याप्त इसी तैजस ब्रह्म का लक्षण शत्रुघ्न में बताने के लिए गोस्वामी जी ने नामकरण के समय वसिष्ठ से कहवाया है—"जाकें सुमरिन ते रिपु नासा, नाम शत्रुहन बेद प्रकासा §"। यहाँ सुमिरन शब्द मनोमय अनत कोष

‡ माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य १। † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ३। $ रामोत्तर-तापनीय उपनिषद्, कडिका ३। * माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ४। § रामचरित मानस, बालकाड, दोहा १९७ के पहले।

ध्यान करने से मन पवित्र हो जाता है। उसके भीतर रहने वाले शत्रु, मनुष्य के काम इत्यादि पवित्र हो जाते है। इस तैजस ब्रह्म का सगुण अवतार, शत्रुघ्न इतना प्रतापी है कि उसके सामने बाहरी शत्रु भी नही टिक सकता। इसीलिए उसका नाम शत्रुघ्न रखा गया।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार भरत ॐ के 'म्' अक्षर से उत्पन्न हुए है। "प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भव." ‡ प्रज्ञास्वरूप भरत 'म्' अक्षर से उत्पन्न हुए है। रामब्रह्म के ये तृतीय पाद है। ब्रह्म के इस तृतीय पाद का लक्षण बतलाते हुए माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है—"यत्र सुप्तो न कचन काम कामयते न कचन स्वप्न पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूत. प्रज्ञानघन एवानदमयो ह्यानदभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीय: पाद:" †। सुषुप्ति की अवस्था मे सोया हुआ मनुष्य चेतना की लहरो से प्रभावित नही रहता। उसके भीतर चेतना की लहरे नही उठती। न तो वह किसी स्थूल भोग की कामना करता है और न मन की सूक्ष्मावस्था में उत्पन्न होने वाला कोई स्वप्न ही देखता है। इस अवस्था मे मन भी शान्त हो जाता है। जीव की इस सुषुप्ति अवस्था के समान ही प्राज्ञब्रह्म का लक्षण होता है। जिस तरह जीव सुषुप्ति की अवस्था मे मन और इद्रियो के ऊपर उठ जाता है, न तो इद्रियों के स्थूलभोग ही उसके साथ रहते है और न सूक्ष्म मन के स्वप्न ही, उसी तरह प्राज्ञ ब्रह्म मन और इद्रियों के धर्मो के ऊपर रहता है। वह प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाश से भरा हुआ, आनद मे निवास करने वाला, आनद ही का अनुभव करने वाला तथा एकमात्र चैतन्यस्वरूप और चैतन्य रहता है। उपर्युक्त दो प्रकार के स्वभावो के समान उन्नीस मुख वाला वह नही होता; क्योंकि ये मुख मन और इद्रियो के है। प्राज्ञब्रह्म केवल चेतोमुख होता है। इस ब्रह्म पर मन और इद्रियों का निरोध नही रहता। इसीलिए पाचरात्र आगम इसे अनिरुद्ध कहता है। वह अनिरुद्ध ब्रह्म किसी आवरण के आधार से सम्बद्ध नहीं है, सबसे परे है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार भरत ही रामब्रह्म के तृतीय पाद, माण्डूक्य उपनिषद् के प्राज्ञब्रह्म तथा पाचरात्र आगम के अनिरुद्ध ब्रह्म हैं। अनिरुद्ध ब्रह्म के ये ही सगुणरूप है। प्राज्ञब्रह्म के इसी प्रज्ञानघन अनिर्लिप्त स्वभाव के कारण भरत जी किसी वस्तु से लिप्त नही होते। मिले हुए राज्य और ऐश्वर्य को भी उन्होंने छोड़ दिया। रामब्रह्म के प्रेम मे वे अपने परम ज्ञान के साथ लीन रहे। प्रेम की इसी लीनता की समाधि में वे नन्दिग्राम में रहने लगे। वे परम ज्ञानी और कुशाग्र बुद्धि के थे। प्राज्ञ ब्रह्म का यह धर्म उनमें असीम रूप से विद्यमान था। अपने विवेक के कारण वे एकमात्र चैतन्य मुख थे। चैतन्यावस्था का परम ज्ञान ही उनके हर पग का संचालन करता था। अतः प्राज्ञब्रह्म का यह सगुण रूप अपनी समग्र साधनाओं से महाप्राज्ञ था। विश्व मे व्याप्त सच्चिदानन्द की इसी 'चित्' शक्ति के द्वारा विश्व का भरण-पोषण होता रहता

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ३। † माण्डक्य, वाक्य ५।

है। इस चैतन्य के न रहने पर विश्व का क्षरण और नाश होने लगता है। चैतन्य की इसी शक्ति के सगुणरूप भरत का ज्ञान कराने के लिए गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने नामकरण सस्कार के समय कहा है—"बिस्वभरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई" ‡। जिस शरीर को चैतन्य छोड देता है वह क्षरित हो कर नष्ट हो जाता है। जगत् के भीतर सब पिडो के साथ यही नियम लागू है। गोस्वामी जी ने 'चित्' शक्ति के इमी लक्षण को चेतोमुख प्राज्ञ ब्रह्म के सगुणरूप भरत मे दिखाया है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार ॐकार के 'म्' के बाद उच्चरित होने वाली अर्धमात्रा से राम की उत्पत्ति हुई है—"अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह" †। ॐकार की अर्धमात्रा राम का ही स्वरूप है। राम केवल ब्रह्मानन्दस्वरूप है। सगुण स्वर और व्यजनों के बाद की अर्धमात्रा का उच्चारण निर्गुण हो जाता है। यही निर्गुण ब्रह्म राम का द्योतक है। विराट् की इसी सर्वातीत अवस्था से राम ब्रह्म का सकेत दिया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम इसी आनन्दमयी ब्राह्मी अवस्था के अधिदेव है। इसी निर्गुणावस्था के भीतर से वे सगुण हो जाते है। ब्रह्म की यह अवस्था ब्रह्म का चतुर्थ पाद मानी जाती है। पांचरात्र आगम का 'वासुदेव' ब्रह्म यही है।

माण्डूक्य उपनिषद् ने ब्रह्म के इस लक्षण को बतलाते हुए कहा है—"नान्त. प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञ नोभयत प्रज्ञं न प्रज्ञानघन न प्रज्ञ नाप्रज्ञ। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यम व्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसार प्रपचोपशम शान्त शिवमद्वैतम् चतुर्थ मन्यन्ते स आत्मास विज्ञेय" $।

यह ब्रह्म न अन्त.प्रज्ञ, न उभयत प्रज्ञ, न प्रज्ञान घन, न प्रज्ञ, न अप्रज्ञ, अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपंचोपशम, शान्त, शिव तथा अद्वैत है। चतुष्पाद् ब्रह्म का यह विज्ञान रामोत्तरतापनीय उपनिषद् मे अविकल उद्धृत है *।

निर्गुण तो अचिन्त्य, अदृष्ट, अव्यवहार्य है तथा वह बुद्धि के भीतर नही आ सकता। शब्दों के द्वारा उसे समझाने का केवल प्रयत्न किया जाता है। वह एक ऐसी स्थिति है जो केवल अनुभवगम्य होती है। बुद्धि के भीतर आने वाला कोई ज्ञान और दृश्य उसे पूर्णत नही समझा सकता।

यही असीम और अचिन्त्य निर्गुण, सगुण हो कर सीमा मे भी अपने व्यक्त सम्बन्ध स्थापित करता रहता है। यही शान्त, शिव तथा अद्वैत आत्मा सगुण राम के रूप मे व्यक्त होता है। यही पाचरात्र का वासुदेव ब्रह्म है। ब्रह्म की ये चारों अवस्थाएँ विराट् ॐकार ब्रह्म की ही अवस्थाएँ है। इनमे कोई अधिक भेद नही है।

इस तरह औपनिषद ब्रह्म की चार अवस्थाओं से चतुर्व्यूह के चार प्रकार के अवतारों को सम्बद्ध करके रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने उन सबसे राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का समन्वय स्थापित किया है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९७ के पूर्व। † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ३। $ माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ४। * रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कडिका ३।

विश्व मे चार प्रकार से व्याप्त एक ही अनत की चार विश्वव्यापिनी अवस्थाओं का वर्णन उपनिषदो ने चतुष्पाद् ब्रह्म के रूप मे किया है। इस निर्गुण की सगुण उपासना के भीतर भक्तो ने यह अनुभव किया कि अपनी इन चार अवस्थाओं को चार भागो मे विभक्त करके इनमें से एक-एक को प्रधान बना कर ब्रह्म चार प्रकार के रूपो में अवतीर्ण होता है। पाचरात्र आगम के अनिरुद्ध, संकर्षण, प्रद्युम्न, और वासुदेव इसी प्रक्रिया मे आने वाले, अनत ब्रह्म के चार प्रकार के सगुण अवतार हे। बहुत प्राचीन काल में पाचरात्र आगम कृष्णोपासना मे सम्बद्ध भक्ति-शास्त्र मालूम पडता है, क्योंकि उसने ब्रह्म के सगुण अवतारों के प्रकारों का उन्ही नामो के द्वारा निर्देश किया है जो कृष्णावतार के समय वासुदेव (श्री कृष्ण), सकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के थे। अथवा यह भी माना जा सकता हे कि ये नाम कृष्णावतार के भी पहले वैष्णव साधना के भीतर सम्भवत. आ गये हों ओर कृष्ण-जन्म के समय गुणो के अनुसार कृष्ण इत्यादि को दे दिये गये हो। अस्तु, इन चार नामों के सगुण ब्रह्म के आधार पर रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने राम. लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के अवतारों के रहस्य को समझाया तथा इसी पाचरात्र और ओपनिषद परम्परा का अनुसरण करते हुए गोस्वामी जी ने भी राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को एक ही अनत के चार रूपों की तरह देखा है और उन सब को अलग-अलग भी अनत ही माना है तथा भगवान् राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए उनके भीतर चारों तरह के स्वभावो को एक ही केन्द्र मे केन्द्रित भी देखा है।

बालकाड मे रामजन्म के बाद ही गोस्वामी जी ने लिखा है—"जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल-लोक-बिस्राम" ‡ और इसके बाद ही 'भये प्रगट कृपाला' स्तुति मे गोस्वामी जी ने राम के लिए 'अनत', 'सोभासिन्धु', 'माया-गुन-ज्ञानातीत', 'अमान', 'सब-गुन-आगर' 'रोम रोम प्रति मायानिर्मित ब्रह्माण्ड निकाया' और 'माया-गुन-गोपार' तथा 'सुजाना' इत्यादि शब्दों का उपयोग किया है। इनमे से 'जगनिवास', 'सब-गुन-आगर' 'रोम रोम प्रति मायानिर्मित ब्रह्माण्ड निकाया' विशेषण विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म के है; 'अखिल लोक बिस्राम', 'माया-गुन-ज्ञानातीत' तथा 'मायागुन-गोपार' विशेषण वासुदेव ब्रह्म के हे, जिसका वर्णन माण्डूक्य उपनिषद् ने प्रपंचोपशम, शान्त, शिव, अग्राह्य अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य इत्यादि विशेषणों के द्वारा किया है; 'सोभासिन्धु' विशेषण तेजोमय प्रद्युम्न ब्रह्म का है; 'सुजाना' और दूसरे स्थानों में 'मोहपर' इत्यादि विशेषण प्राज्ञ (अनिरुद्ध) ब्रह्म के है तथा 'अनत' और 'अमान' विशेषण ब्रह्म की चारो अवस्थाओं के है। इस तरह गोस्वामी जी ने राम के भीतर ब्रह्म की सब अवस्थाओं का अन्तर्भाव करके एकत्व का सिद्धान्त स्थापित किया है और बाद मे चारों अवस्थाओ के सगुण अवतारों को अलग-अलग स्वीकार करते हुए, उन सब को फिर एकत्व की दृष्टि से अपना ईश ही माना है—

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९१।

"सकल तनय चिर जीवहु तुलसिदास के ईश ‡।" दशरथ के चारों पुत्रों को अपना ईश मान कर उन सबको गोस्वामी जी ने अनत ब्रह्म के चार प्रकार के अवतार मान लिया है। नामकरण के समय भी गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने कहा है—"इन्हके नाम अनेक अनूपा, मै नृप कहब स्वमति अनुरूपा" † । चारो के नाम की अनेकता और अनुपमता की चर्चा करके गोस्वामी जी ने चारो की अनतता ही व्यक्त की है। ब्रह्म के इन चार प्रकार के अवतारो के जन्म के समय सम्पूर्ण वातावरण ब्रह्मानन्द से आप्लावित था। गोस्वामी जी जगत् मे उत्पन्न हुए इस परिवर्तन के प्रति जागरूक है। उन्होंने लिखा है—"सुमन वृष्टि अकास ते होई, ब्रह्मानन्द मगन सब कोई $ ।" उनके शिव और कागभुशुडि भी ब्रह्मानन्द से पूर्ण वायुमडल मे परामनन्द मे मग्न हो कर और राम के प्रेमसुख मे फूल कर अयोध्या की वीथियो मे घूम रहे थे। उन्हे अपने अस्तित्व तक का ज्ञान न था। उनके शिव कहते है—"काकभुशुडि सग हम दोऊ, मनुजरूप जानइ नहि कोऊ। परमान्द प्रेम-सुख-फूले, बीथिन्ह फिरहि मगन मन भूले * ।"

एक ही अनत, अयोध्या मे चार रूपो मे अवतीर्ण हुआ है। इसीलिए उन चारों का वर्णन करते हुए भी उनमे से उस एक के प्रति उनका ध्यान विशेष केन्द्रित है और उसी एक पुरुषोतम के विकास का चित्रण करने मे उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कलात्मक और भावात्मक योग्यता को केन्द्रित कर दिया है। बालको के सौन्दर्य-वर्णन के समय ही अपने इस एक-केन्द्र-केन्द्रित ध्यान की सूचना गोस्वामी जी ने दे दी है—"स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी, निरखहि छवि जननी तृन तोरी। चारिउ सील-रूप-गुन-धामा, तदपि अधिक सुखसागर रामा § ।" राम के एक केन्द्र मे केन्द्रित अपने इस ध्यान के भीतर गोस्वामी जी उनके अनत शील, शक्ति और सौन्दर्य का दर्शन कर लिया है।

इस उपनिषद् ने भगवान् श्री रामचन्द्र को पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश के सम्पूर्ण विस्तार मे व्याप्त अद्वैतपरमानन्दात्मा, अखडेकरसात्मा, ब्रह्मानन्दामृत, तारक ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप, सब वेद, वेदाग, वेदशाखा और पुराणस्वरूप, जीवात्मास्वरूप, सर्वभूतान्तरात्मा, देव, असुर तथा मनुष्य इत्यादि के रूप मे व्याप्त, मत्स्य कूर्मादि अवतारो मे व्यक्त होने वाला, पचप्राणस्वरूप, चार प्रकार के अन्तःकरणो मे व्याप्त रहने वाला, यम, अंतक, मृत्यु तथा अमृतस्वरूप पचमहाभूत तथा समस्त स्थावर-जगम की आत्मा, पचाग्नि तथा सप्तमहाव्याहुतियो मे व्याप्त रहने वाला, विद्या, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी तथा जानकी के रूप मे व्यक्त होने वाला, त्रैलोक्य रूप, सूर्य, सोम, नक्षत्र, ग्रह, आठ लोकपाल, आठ वसु, ग्यारह रुद्र तथा बारह आदित्यो मे व्याप्त रहने वाला, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विस्तार मे विस्तृत, ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर विराट् रूप मे स्थित रहने वाला अनुभव किया है। जो हिरण्यगर्भ सृष्टि का आदि कारण, विराट्, स्वर्णिम अडाकार

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९६। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९६ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९३ के बाद। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९५ के बाद। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १९८ के पहले।

स्वरूप राम का उसने साक्षात्कार किया है। चार अर्धमात्राओं के भीतर निवास करने वाले राम का उसे ज्ञान है। परमपुरुषस्वरूप, महेश्वर तथा महादेव के रूप में रहने वाले राम को वह जानती है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र तथा महाविष्णु में शक्तिरूप से वर्तमान रहने वाले, परमात्मा, विज्ञानात्मा तथा सच्चिदानन्देकरसात्मा राम की उपलब्धि उसने की है ‡।

उसी विराट् राम की सगुण-निर्गुण भक्ति की सिद्धि में यह उपनिषद् चतुर्वर्ग की सिद्धि का मूल बीज देखती है।

इस उपनिषद् के अनुसार सीता जगदानन्ददायिनी, सब शरीरों की उत्पत्ति स्थिति और संहारकारिणी मूल प्रकृति है—"श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्। सा सीता भवति ज्ञेयामूलप्रकृतिसंज्ञिका। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन:"†।

जिस तरह सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति पुरुष के सम्बन्ध में ही अपना कार्य कर सकती है उसी प्रकार सीता भी परमपुरुष राम की ही शक्ति है और उनसे अभिन्न है, विराट् ॐकार स्वरूप ब्रह्म का वह अंग ही है और उससे अभिन्न है। प्रकृति और पुरुष की अभिन्नता, माया और ब्रह्म की अभिन्नता का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत के मायाविशिष्ट ब्रह्म के सिद्धान्त के समान ही है। इस सिद्धान्त में माया और ब्रह्म दोनों एक तत्त्व और सत्य है। ये दोनों ऐसे ही अभिन्न है जैसे शरीर और शरीरी। राम और सीता दोनों एक ही तत्त्व है और दोनों विराट् ॐकार के ही स्वरूप है।

गोस्वामी जी ने भी सीता को नमस्कार करते हुए राम के साथ उनका इसी तरह का सम्बन्ध स्थापित किया है—"उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी। सर्वश्रेयस्करी सीता नतोहं रामवल्लभाम् $।"

सीता और राम को एक साथ नमस्कार करते हुए उन्होंने यही अभेद-सम्बन्ध उनमें देखा है—"गिरा अरथ, जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न, बन्दउँ सीता रामपद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न" *।

सीता और राम का सम्बन्ध गोस्वामी जी ने वाणी और अर्थ के सम्बन्ध तथा जल और लहर के अभेद-सम्बन्ध के समान ही माना है।

अथर्ववेद के सीतोपनिषद् में सीता के स्वरूप का ही मुख्यत: विवेचन किया गया है; इसलिए इसमें विस्तार से सीता शक्ति का रहस्य समझाया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार भी सीता ॐकार से उत्पन्न हुई, ब्रह्म की शक्ति और प्रकृति स्वरूप है। व्यक्त प्रकृति को रूप देने वाली मूलप्रकृति शक्ति सीता ही है।

---

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ५ † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। $ रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक ५। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १८।

इस उपनिषद् ने 'सीता' शब्द के तीन खड किये है—स्, ई और ता। 'स्' सत्य तथा अमृत शब्द का सूचक है। अष्टसिद्धियों मे प्राप्ति-सिद्धि का भी यही सूचक है। 'प्राप्ति'-सिद्धि से साधक कही भी पहुँच सकता है। यही ध्वनि चन्द्र शक्ति से भी गर्भित मानी जाती है। चन्द्र शक्ति अनत मनोमय कोष (जगत् भर का मन) पर नियन्त्रण रख कर उसका स्वभाव बनती है। इतनी सब शक्तियाँ सीता के एक अश केवल 'स्' मे निहित है। 'प्राप्ति' से उनकी सर्वव्यापी शक्ति का सकेत मिलता है। उनके लिए यह सम्भव है कि सगुण रूप में भी जहाँ चाहे वहाँ किसी भी समय पहुँच और रह सकती है। इस पद्धति से सीता के नाम के ही आधार पर सीतोपनिषद् ने उनकी शक्तियों का विवेचन किया है।

सीता के नाम का ईकार सम्पूर्ण जगत् के प्रपच के बीज-स्वरूप भगवान् विष्णु की योगमाया या अव्यक्तरूपा महामाया है। यही योगमाया 'स्' (चन्द्र) के समान अपने धवल अगों और उज्ज्वल आभूषणों के साथ व्यक्त रूप की सगुणता मे सीता के रूप मे आती है।

दीर्घ 'आ' की मात्रा के साथ रहने वाला 'त्' अक्षर महालक्ष्मी का स्वरूप है। वह प्रकाशमय तथा 'आ' (विस्तार) को सम्भव बनाने वाले, सृष्टि का विस्तार करने वाले शक्तिपुज से ओत-प्रोत है।

सीतोपनिषद् सीता के तीन स्वरूप मानती है। उनका प्रथम स्वरूप शब्द ब्रह्म है। वे बुद्धि-स्वरूपा है। अध्ययन-काल मे विद्यार्थियो पर प्रसन्न हो कर उन्हे बोध प्रदान करती है। उनका दूसरा स्वरूप सगुण है। इस स्वरूप मे राजा सीरध्वज की कन्या के रूप मे उनका आविर्भाव होता है। उनका तीसरा रूप 'ईकार'-रूपिणी अव्यक्त सत्ता महामाया योगमाया का है। इस रूप से वे जगत् के विस्तार को सम्भव बनाती रहती है।

सीतोपनिषद् ने शौनकीय तन्त्र के आधार पर सीता को सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सबकी आधारभूता, कार्य और कारण के स्वभावो मे व्याप्त रहने वाली, चेतन और जड दोनों मे निवास करने वाली, देवता, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्वो मे व्याप्त रहने वाली, असुर, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि प्राणियों में अव्यक्त रूप से निवास करने वाली पचमहाभूतों, दस इन्द्रियों, मन और प्राण की शक्तियों मे व्याप्त रह कर विश्वरूपा महालक्ष्मी माना है। उन्हे देवाधिदेव भगवान् से भिन्न और अभिन्न दोनो माना है।

ऐसे ही आधारों पर सीताराम के सम्बन्ध का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने भेदाभेद सिद्धान्त के अनुसार 'कहियत भिन्न न भिन्न' ‡ कहा है।

शौनकीय तन्त्र शक्तिरूप मे भी सीता के तीन स्वरूप मानता है—इच्छाशक्ति रूप, क्रियाशक्ति रूप तथा साक्षात्शक्ति रूप। इन तीन शक्ति-रूपों मे सीताशक्ति विकसित होती रहती है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १८।

मे, भूदेवी के रूप मे तथा नीलादेवी के रूप मे। इच्छाशक्ति कल्याणरूपिणी, प्रभावरूपिणी तथा सूर्य, चन्द्र और अग्निरूपिणी हो कर प्रकट होती है। सीता की चन्द्रशक्ति से औषधियाँ पुष्ट होती रहती है। चन्द्रशक्ति ही अमृत की मूलभूता शक्ति है। इसी से अमृत उत्पन्न हो कर देवताओ को पोषित करता रहता है। अन्न और तृण के द्वारा सीताशक्ति ही अपनी चन्द्रशक्ति से सब जीवो का पालन करती रहती है।

ब्रह्म की यही सीताशक्ति सूर्यादि समस्त ज्योतिर्पिण्डों को प्रकाशित करती है। काल की समस्त प्रकार की कल्पनाओं मे काल बन कर सीताशक्ति का ही अनत विस्तार विस्तृत रहता है। अत: सीता प्रकाशरूपा और कालरूपा भी है। उनका अग्निरूप, विभिन्न तापमानों मे जगत् की विभिन्न वस्तुओ के भीतर-बाहर स्थित रह कर उनका पोषण और सहार दोनों करता रहता है। समस्त जीवों मे भूख और प्यास बन कर वही व्यक्त होता रहता है। हवि ले जाने के लिए वही देवताओं का मुख बनता है। नित्य व्यापक अग्नि-तत्त्व उन्ही की शक्ति है तथा सीमित काल मे जलने वाली आग मे उन्ही का निवास है।

सम्भवतः इसी आधार पर गोस्वामी जी के राम ने पचवटी में सीताहरण के पहले असली सीता को अग्नि मे निवास करने के लिए भेज दिया और माया सीता के साथ रहने लगे, जो रावण की लका मे गयी और रावण-वध के बाद जो अग्नि मे जल गयी तथा मूलभूता सीताशक्ति उसी आग मे से पुन आविर्भूत हो गयी।

इस प्रकार भगवान् के सकल्प का सकेत पा कर सीतादेवी, लक्ष्मी, भू और नीलादेवी के रूप मे रूपान्तरित हो जाती है। लक्ष्मी के रूप मे वह अनत जगत् का पालन करती है, भूदेवी के रूप मे चौदह भुवनों के और सप्तद्वीपों तथा सप्तसमुद्रों के रूप मे प्रणवस्वरूपा यही सीता व्यक्त हो जाती है तथा विद्युत्माला के रूप मे समस्त प्राणियों के अस्तित्व को सम्भव बनाती है। ससस्त भुवनों के आधार के लिए जलाकार और मण्डूकमय रूप मे यही शक्ति परिवर्तित हो जाती है।

सीतोपनिषद् द्वारा उद्धृत शौनकीय तन्त्र के अनुसार श्रीहरि के मुख से व्यक्त हुए 'नाद' के रूप मे सीता का क्रियाशक्ति रूप व्यक्त हुआ। उस नाद से बिन्दु प्रकट हुआ।

नाद और बिन्दु के रहस्य को समझने के लिए श्रीमधुसूदन सरस्वती का 'प्रस्थानत्रय' ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। इस ग्रन्थ ने सृष्टि के रहस्य को समझाने के लिए उपनिषदों और तन्त्र-ग्रन्थों के आधार पर नाद और बिन्दु का बड़ा स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार प्रलयावस्था मे स्वय प्रकाश, अखड, एकरस अद्वैत ब्रह्म ही रहता है। 'स्पन्दन' और 'अस्पन्दन' नामक दो शक्तियाँ इस ब्रह्म मे अव्यक्त रूप में लीन रहती हैं।

प्राणियों के कर्मो के अनुसार प्रलय के बाद पुनः सृष्टि होती है। जीवों के कर्मो के अनुसार प्रलय के विश्राम के पश्चात् उन्हे फिर से सुख-दु ख के चक्र में चलाने के लिए ब्रह्म मे सृष्टि करने का सकल्प उत्पन्न होता है। सकल्प के स्फुरण से ईक्षणा शक्ति के द्वारा स्पन्दन और अस्पन्दन शक्तियों का सयोग (सम्मिलन) होने लगता है। इस सम्मिलन

से गुणत्रय की साम्यावस्था वाली, जड-चेतन विभाग के साथ महाशक्ति (प्रकृति) उत्पन्न होती है। ब्रह्म का शुद्ध चेतनांश (चिदात्मा) जब प्रकृति मे प्रतिबिम्बित होता है तब प्रकृति के दो रूप हो जाते है। स्पन्दनाशमय प्रकृति का जड अंश 'परा प्रकृति' कहलाता है और उसका अस्पन्दनशील चेतन अश 'अपरा प्रकृति' कहलाता है। शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली मे स्पन्दनाश को 'पर प्रणव' और अस्पन्दनाश को 'अपर प्रणव' का नाम दिया जाता है। 'पर प्रणव' वाच्य होता है और 'अपर प्रणव' वाचक। पहला अपवाद रूप है, और दूसरा अध्यारोप रूप।

मायावाद के अनुसार मिथ्या का निवारण करने के लिए अपवाद का प्रयोग होता है—"मिथ्याभूतपदार्थनिवारणार्थमुपदेशविशेषः" ‡। 'पर प्रणव' या 'परा प्रकृति' प्रकृति की वह अवस्था है जिसमे चैतन्य का योग नही हुआ रहता। चैतन्य के योग के बिना वह एकत्व-रूप रहती है। उसमें बहुत्व की कल्पना नही उत्पन्न हो सकती। एकत्व अद्वैत का स्वरूप है। मायावाद के अनुसार बहुत्व मिथ्या है और एकत्व सत्य (ब्रह्म) है। इसी के एकत्व-रूप उपदेश को मायावाद 'अपवाद' कहता है। 'परा प्रकृति' या 'पर प्रणव' के एकत्वमूलक अस्तित्व को समझाने के लिए 'सर्वदर्शन सग्रह' कहता है—"विकारापगमे सत्य सुवर्ण कुण्डले यथा। विकारापगमो यत्र तामाहुः प्रकृति पराम्" †। सुवर्ण एकत्व की अवस्था है। उसके विकार, कुण्डल इत्यादि बहुत्व के परिचायक है। 'परा प्रकृति' एकत्व सम्पन्न सुवर्ण की अवस्था के समान बहुत्वमय विकार से अस्पृष्ट रहती है। इसीलिए एकत्वमय 'परा प्रकृति' या 'पर प्रणव' को मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'प्रस्थानत्रय' मे अपवादरूप कहा है, क्योंकि मायावाद का 'अपवाद' मिथ्या ज्ञान को दूर करने के लिए एकत्व का ही उपदेश करता है। मिथ्या का अपवाद, सत्य या ज्ञान है। मिथ्या के निवारण के बाद ज्ञान उत्पन्न होता है। मिथ्या की अपवाद-स्थिति को उत्पन्न करने के लिए जो ज्ञानात्मक उपदेश दिया जाता है उस उपदेश को, मिथ्या की अपवाद-स्थिति को उत्पन्न करने का हेतु बनने के कारण, अपवाद कहते है।

'अपरा प्रकृति' या 'अपर प्रणव' प्रकृति का चेतन अश है। इसी के योग मे बहुत्व की कल्पना उत्पन्न हो सकती है। इस कल्पना को वेदान्त मिथ्या कल्पना मानता है। वेदान्त के अनुसार वस्तु (सत्य) मे अवस्तु (असत्य) की कल्पना करना अवस्तु का वस्तु पर आरोप करना 'अध्यारोप' कहलाता है। 'असर्पभूतरज्जौसर्पारोपवत् अजगद्रूपे ब्रह्मणिजगद्रूपारोपवत् वस्तुनि अवस्त्वारोप अध्यारोप' $ जिस तरह रस्सी सर्प नही रहती, पर भ्रमवश मनुष्य उस पर सर्प का आरोप कर उसे सर्प समझने लगता है, उसी तरह ब्रह्म जगत् नही रहता, पर भ्रमवश उसे अज्ञानी मनुष्य जगत् समझने लगता है। सत्य ब्रह्म पर असत्य जगत् का आरोप अध्यारोप कहलाता है। मूलत यह अध्यारोप ब्रह्म के एकत्व पर जगत् के बहुत्व का आरोप है। 'अपरा प्रकृति' बहुत्व कल्पना की ओर झुकी हुई ब्रह्म की स्थिति है, इसीलिए इस बहुत्व कल्पना की स्थिति को मधुसूदन सरस्वती ने अध्यारोप रूप माना है।

---

‡ न्यायकोश (महामहोपाध्याय भीमाचार्य द्वारा सपादित), पृष्ठ ५५। † सर्वदर्शन सग्रह (महामहोपाध्याय वासुदेव शास्त्री अभ्यकर द्वारा सपादित), पृष्ठ ३०९। $ सदानन्द-लिखित वेदान्तसार, अध्याय २, सूत्र ३२।

विवृच्छक्ति कहता है। इस विवृच्छक्ति को, विकास की प्रकृति रखने वाली या व्यक्त होने की प्रकृति रखने वाली शक्ति की तरह समझ सकते है। यही शक्ति जगत् की उत्पत्ति का निकटतम कारण बनती है। परब्रह्म की ईक्षणा शक्ति जगत् का महाकारण है। ईक्षणा शक्ति की प्रेरणा से ही अभिव्यक्ति की यह शक्ति उत्पन्न होती है और अव्यक्त के भीतर मे प्रकृति व्यक्त होने लगती है। ब्रह्म की यही शक्ति सृष्टि का आयोजन और सकल्प करती है। सृष्टिसकल्प की यह प्रक्रिया 'पर्यालोचना' कहलाती है।

'पर प्रणव' या 'परा प्रकृति' के सान्निध्य से ही 'अपर प्रणव' या 'अपरा प्रकृति' मे सकल्प की विवृति 'अभिव्यक्ति' प्रारम्भ होती है और वह 'अकार', 'उकार', और 'मकार' के तीन रूपों मे विभक्त हो जाती है। यह सकल्प की विवृति 'एकोऽह बहुस्याम्' के रूप मे होती है। इसमे 'एकोऽह' 'पर प्रणव' के एकत्व की और 'बहुस्याम्' 'अपर प्रणव' या 'अपरा प्रकृति' के बहुत्व की स्थिति है।

इस तरह अद्वैत ब्रह्म स्वय प्रकृति के द्वारा तीन विभागो मे अभिव्यक्त होता है। ये तीन विभाग ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी शक्तियो के रूप मे सृष्टि, स्थिति और लय के कार्य को प्रारम्भ करने के लिए अभिव्यक्त होते है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन्ही तीन महाशक्तियो के शासक देव है। इन तीन महाशक्तियों को शास्त्र 'सृष्टि संकल्पशक्तयः' भी कहते है।

सृष्टि, स्थिति और लय के अनत रूप इन्ही तीन शक्तियो के भीतर पैदा हुए सक्षोभों से उत्पन्न होते है। ये सक्षोभ ब्रह्म की ईक्षणा शक्ति के द्वारा उत्पन्न हुई विवृत् शक्ति की प्रेरणा से उत्पन्न होते है।

इसी सक्षोभ के कारण अकार मे से एक सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होती है। उकार मे से एक स्थूल ध्वनि उत्पन्न होती है और मकार मे से अत्यन्त स्थूल ध्वनि उत्पन्न होती है। इन्ही ध्वनियों को यौगिक विज्ञान मे 'नाद' कहते है।

नाद की इन तीन महाशक्तियों से क्रम से मनोबीज, प्राणबीज और अहंबीज उत्पन्न होते है। ये ही तीनों, क्रम से सृष्टि, स्थिति और लय के कारण-बीज है। इन्ही बीजो को नादशास्त्र मे बिन्दु कहते है ‡।

मूलप्रकृति की ये नादबिन्दु-रूपिणी महाशक्तियाँ सीता के क्रियाशक्ति रूप से ही प्रकट होती है। सीता के इसी क्रियाशक्ति रूप से सृष्टि, स्थिति और लयात्मक विराट् ॐकार उत्पन्न होता है। इसी क्रियाशक्ति के भीतर से चतुर्वेद, छह वेदाग, मीमासा और न्यायशास्त्र के विस्तार के रूप मे वेदो के उपाग, शास्त्र के रहस्यों को समझाने वाले निबन्ध, धर्मशास्त्र, इतिहास-पुराण से प्रारम्भ करके वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा आयुर्वेद इत्यादि पाँच उपवेद, दण्ड-नीति, व्यापार-विद्या तथा समाधि की मुक्तावस्था भी

‡ कल्याण, योगाक पृष्ठ ६१९–२०, श्री सुदरलाल नाथामल जोशी, विद्यावारिधि, एम्०आर०ए०एस्० के लेख के आधार पर।

सीता की इसी क्रियाशक्ति से उत्पन्न होती है । यह सनातन ब्रह्ममय अनत रूप धारण करने वाली क्रियाशक्ति भगवान् की साक्षात् शक्ति मानी जाती है। भगवान् के सकल्प-मात्र से सीता अपनी क्रियाशक्ति से जगत् को उत्पन्न करके स्वय सगुण रूप में अवतीर्ण हो जाती है । भगवान् का सकेत पा कर समस्त व्यक्त जगत् और अव्यक्त देवादि जगत् की सृष्टि वे स्वय अपनी क्रियाशक्ति से करती है । वे स्वय अविनाशिनी है और भगवान् से पृथक् कभी नही होती। निमेष, उन्मेष, सृष्टि, स्थिति, सहार, तिरोधान तथा अनुग्रह आदि समस्त शक्तियों मे रहने के कारण वे भगवान् की अभिन्न शक्ति मानी जाती है।

सीता के इच्छाशक्ति रूप के तीन प्रकार है। पहला प्रकार योगशक्तिरूप है। यह स्वरूप प्रलय के समय भगवान् के दाहिने वक्ष स्थल पर श्रीवत्स (भृगु के चरण-चिह्न) का रूप धारण करके विश्राम करता रहता है। दूसरा प्रकार भोगशक्तिरूप है। इस रूप से सीता कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि तथा शख मे प्रारम्भ करके पद्म इत्यादि नव-निधियो के रूपों मे निवास करती है तथा किसी भी प्रकार भगवान् की उपासना करने वाले भक्तों के लिए उपासना तथा उपभोग की अनत प्रकार की सामग्रियाँ प्रस्तुत करती रहती है। तीसरा प्रकार वीरशक्ति रूप है। उनकी यह शक्ति चार भुजाओ वाली रहती है। ये भुजाएँ अभय और वरदान की मुद्राओ और दो कमलों से युक्त रहती है। इस शक्ति की समस्त देवता वन्दना करते है। सूर्य और चन्द्र दीपक बन कर इस शक्ति के पास प्रकाश करते है। राका और सिनी वाली (दुर्गा, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, एक वैदिक देवी) देवियाँ इसे छत्र लगाती है। ह्लादिनी और माया इसकी चामरग्राहिणी है। स्वाहा और स्वधा पखा झलती है। सब महात्मा इसकी पूजा करते है। सीता का यह वीरलक्ष्मी रूप है। कल्पवृक्ष के नीचे देवताओ से घिरी हुई इस वीरशक्ति का, चार श्वेत हाथी, अमृत से अभिषेक करते है।

सीता के इन अनत शक्तिमय रूपो का सकेत तुलसी-साहित्य मे 'मानस' और 'विनय-पत्रिका' इत्यादि ग्रन्थो के द्वारा बार-बार मिलता है। रामभक्ति मे सम्बद्ध इसी तरह की पूर्व परम्परा ने अपनी अपार ज्ञान और भाव-राशि के साथ हिन्दी की रामभक्ति शाखा और गोस्वामी जी के साहित्य को प्रभावित किया है।

वाल्मीकि-रामायण भी अवतारी राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को ही प्रस्तुत करती है। लेकिन तुलसी और वाल्मीकि की साहित्यिक शैलीगत भाव-प्रक्रिया मे कुछ अन्तर है। गोस्वामी जी के मानस मे भक्ति और जीवन के आदर्शों की धाराएँ समानान्तर रेखाओं की तरह आदि से अत तक अविच्छिन्न प्रवाह से प्रवाहित होती रहती है। मर्यादा पुरुषोत्तम के नर और नारायण रूपो को गोस्वामी जी कभी ओझल नही होने देते। पर वाल्मीकि बालकाड मे राम के नारायणत्व और पुरुषोत्तमत्व की स्थापना कर लेने के बाद जब उनके नर रूप को ले कर चलते है तब राम नरमात्र रह जाते है। उनके नारायणत्व की चर्चा बीच मे वे कभी नही करते। केवल इतना ही होता है कि कभी-कभी राम के कार्यो

से पुरुषोत्तम राम के नारायणत्व का आभासमात्र मिलता है, अन्यथा एक महापुरुष की ही तरह राम के जीवन की धारा प्रवाहित होती रहती है। अत मे उत्तरकाड मे पहुंच कर और कुछ पहले से युद्धकाड मे ही पूर्ण नारायणत्व को पुनः विकसित करके वाल्मीकि स्वर्गारोहण के समय राम को पूर्ण नारायण बना देते है। बालकाड के ७७ सर्गो में से केवल प्रारम्भ के अट्ठारहवे सर्ग तक वाल्मीकि ने राम के नारायणत्व को रहने दिया है। उनमे से भी दस सर्गो मे दशरथ से सम्बन्ध रखने वाली कथाएं है। प्रारम्भ के इन अट्ठारह सर्गो मे से प्रथम चार और अतिम चार मे ही राम का नारायणत्व दिखाई पडता है। इसके बाद प्राय सम्पूर्ण ग्रन्थ समाप्त हो जाने पर युद्धकाड मे पुन. नारायणत्व विकसित होने लगता है और पूर्ण नारायण के रूप मे उत्तरकाड मे राम का स्वर्गारोहण होता है। यह भी एक स्वाभाविक भाव-प्रक्रिया ही है। नारायण जब अवतीर्ण होने की तैयारी म रहता है तब सब देवताओं के बीच मे उसकी तैयारी को वाल्मीकि देख लेते है। अवतार ले लेने के बाद तो विष्णु और सब देवता नर और वानरो के रूप मे परिवर्तित हो जाते है, तब उनके विष्णुत्व और देवत्व की चर्चा बार-बार क्यों की जाए, यही सोच कर वाल्मीकि दिव्य शक्तियों की नर-वानर लीला को प्राय नर-वानरो की भूमि पर ही रहने देते है। इस लीला का जब सवरण होने लगता है, तब फिर स्वाभाविक हो जाता है कि विष्णुत्व और देवत्व पुन दृष्टिगोचर हों, क्योकि यहाँ से नर और वानर अपने देवरूप की ओर प्रस्थान करने के लिए प्रस्तुत होते है। इसीलिए वाल्मीकि-रामायण का आदि और अत देवत्व की अभिव्यक्ति करता है और उसका अवशिष्ट अश उसी के नरत्व और वानरत्व की। लेकिन गोस्वामी जी नारायण और देवताओं के प्रति बडे कृतज्ञ है। इन शक्तियो ने अवतीर्ण हो कर राक्षसत्व का विनाश किया था और आदर्श का प्रचार। उनके इस त्याग का साक्षात्कार करके गोस्वामी जी को अन्त.सुख का अनुभव प्राप्त हुआ है। उन्होंने यह अनुभव किया है कि देवों और देवाधिदेव ने साधुता की रक्षा के लिए नर और वानर रूपो मे तप-तप कर आदर्श के प्रचार के लिए बडे कष्ट उठाये, इसीलिए अपने 'मानस' मे उनके प्रति कृतज्ञता बार-बार व्यक्त करने मे उन्हें तनिक भी सकोच नही होता। प्रातिभासिक के आवरण के पीछे से सत्य का दर्शन, वे बार-बार लोगो को इसी कृतज्ञता-बुद्धि के कारण कराना चाहते है और यह भी चाहते है कि रामायण के माध्यम से आदर्श जीवन की साधना करने वाला साधक भी इस कृतज्ञ बुद्धि को अपनी साधना के पथ पर कभी न छोडे। यह सब भक्ति के पथ पर नति और विनय उत्पन्न करने के लिए किया गया है। वाल्मीकि अधिकाशत इतिहास की शक्ति ले कर मानवता को उसकी भूलों की स्मृति दिला कर उसे दानवत्व की ओर जाने से बचाने का प्रयत्न करते है, पर तुलसी अधकार मे भक्ति के निरन्तर जलते हुए दीपक के प्रकाश को ले कर मानवता को पूर्णता और देवत्व की ओर बढ़ने के लिए मार्ग बताते हुए चलते है। वाल्मीकि ने भक्ति को इतिहास के हाथों मे दे दिया है और तुलसी ने इतिहास को भक्ति की गोद मे डाल दिया है, दोनों के साथ दो भिन्न-भिन्न भाव-प्रक्रियाओ ने कार्य किया है। वाल्मीकि प्रातिभासिक की स्वाभाविकता की ओर अधिक झुके हुए है और विशिष्टाद्वैती

तुलसी सत्य तथा प्रातिभासिक मे बहुत अतर न देखते हुए दोनो को अपना हृदय प्रदान करते हुए चलते है। वाल्मीकि की योजना अधिकाशत. बुद्धि-बीज पर विकसित हुई है और तुलसी की योजना मुख्यत भाव-बीज का विकसित रूप है। वाल्मीकि की बुद्धि हृदय को अपने हाथो की अजलि मे ले कर चलती है और तुलसी का भाव-निकुज बुद्धि को अपनी शीतल छाया मे बिठा कर परितृप्त, शीतल, शान्त और सुरक्षित बना लेता है। अपने-अपने मार्ग पर दोनो महान् है।

चौबीस हजार श्लोकों मे प्रस्तुत किये गये अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में मगलाचरण के लिए वाल्मीकि ने केवल दो श्लोको का उपयोग किया है। वे निम्नाकित है.

श्रीमद्राघवपादपद्मयुगल पद्मार्चित पद्मया,
पद्मस्थेन तु पद्मजेन विनुत पद्माश्रयस्याप्तये।
यद् वेदैश्च नतु सुखैकनिलय सर्वाश्रय निष्क्रिय
शश्वच्छकरशकर मुहुरहो सन्नौमि ब्रह्मलब्धये ।।१।।
श्रीमद्ब्रह्म तदेव बीजममल यस्याकुरश्चिन्मय
काडै. सप्तभिरन्वितोऽति विवतश्चर्ष्यालवालोदित.
पत्रै. तत्त्वसहस्रकै· सुविलसच्छाखाशतै
पचभिश्चात्मप्राप्तिफलप्रदो विजयते रामायणस्वस्तरु:।।२।।

"जो वेदों के द्वारा प्रशसित, सर्वाश्रय, निष्क्रिय, सुख का एकमात्र निलय है, उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए मै राघव के उन सुन्दर चरणकमलो की बार-बार वन्दना करता हूँ, जिसकी पूजा लक्ष्मी कमलों से करती है, जिसके नाभिकमल पर बैठे हुए ब्रह्मा उस पद्माश्रय की निरन्तर प्राप्ति के लिए या उनकी शक्ति पद्मा से, सृष्टि करने की शक्ति का आश्रय प्राप्त करने के लिए, जिन चरणकमलो की वन्दना करते है और जो निरन्तर शकर का भी मगल किया करते है।

"वह रामायणरूपी कल्पतरु धन्य है जिसका धवल बीज स्वय तेजोमय ब्रह्म है, जिसका चैतन्यमय व्यापक अकुर सात काडो (गाठों और रामायण के कांडो) से युक्त हो कर ऋषि-रूपी थाले मे उदय हुआ हे, जो चौबीस हजार पत्तों और पाँच सौशाखाओं मे सुशोभित है और जो आत्मप्राप्तिरूप फल को उत्पन्न करता है।"

इस सक्षिप्त मगलाचरण के प्रथम श्लोक का अनुवाद देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शाश्वत सगुण की उपासना को वाल्मीकि शाश्वत निर्गुण की प्राप्ति का सुगम और स्वाभाविक उपाय मानते है। इसीलिए निर्गुण, निष्क्रिय तथा सर्वाश्रय ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे सगुण राघव के उन सुन्दर चरणकमलों की उपासना करते है, जिनकी उपासना लक्ष्मी और ब्रह्मा दोनों करते है, जो शकर की भी मगलकारिणी शक्ति को बल प्रदान करते रहते है तथा जिनमे निर्गुणता, नैष्कर्म्य और सर्वाश्रयता स्वभाव बन कर बैठे हुए है। गोस्वामी जी की राम-शिव-ऐक्य की योजना का बीज वाल्मीकि मे भी इसी रूप मे दिखाई पडता है। राम और शिव का सेव्य-सेवक-भाव वाल्मीकि-रामायण के प्रथम श्लोक मे ही

दिखाई पडता है, यद्यपि उसके विकास की आवश्यकता सम्भवत वाल्मीकि के युग में न रहने के कारण वह बीजरूप प्राय. अपरिवर्तित ही रह जाता है । उसका विकास प्रायः अकुरित अवस्था तक ही पहुँच कर युग की आवश्यकता पूर्ण कर लेता है । पर तुलसी का युग उसके पूर्ण विकास की अपेक्षा रखता था और गोस्वामी जी ने वैसा किया भी । इस स्थिति की व्यजनामात्र कर लेने पर वाल्मीकि ने यह इशारा इस प्रथम मगलाचरण श्लोक में दिया है कि अनत निर्गुण की प्राप्ति के लिए अनत सगुण की उपासना स्वाभाविक और आवश्यक है तथा अनत सगुण स्वतः निर्गुण, निष्कर्म और सर्वाश्रय है ।

मगलाचरण का दूसरा श्लोक भी यही बताता है कि ब्रह्म-बीज के चैतन्यमय अंकुर (राम) का ही विकास रामायण के सात काडों में दिखाया गया है । इस रामायण-रूपी कल्पतरु की छाया मे पहुँच जाने पर आत्मप्राप्ति का फल प्राप्त हो जाता है । वाल्मीकि भी यही मानते है कि शरीरी मानव के लिए अपने विचारो और भावो को पूर्ण के साथ जोड कर ब्राह्मी स्थिति मे पहुँचना, आत्मप्राप्ति करना, तभी सम्भव है जब वह ब्रह्म के मर्यादा पुरुषोत्तम नररूप राम के आदर्शों को अपने शील के भीतर उतार ले । इसीलिए ब्राह्मीस्थिति मे पहुँचे हुए इस शील का विवेचन वाल्मीकि के समान ब्रह्मनिष्ठ महात्मा ने किया है । उनके भीतर वह व्यक्तित्व था जिसका इतना दयामय विकास हो चुका था कि पक्षी की पीडा को भी वह नही देख सकता था । वाल्मीकि के हृदय का विकास जड-चेतन की समग्र सृष्टि से जुड गया था । वे स्वय भावरूप मे विश्वरूप हो गये थे ।

रामायणरूपी कल्पतरु के चौबीस हजार पत्ते ही उसके २४,००० श्लोक है । उसकी पाँच सौ शाखाएँ रामायण के पाँच सौ सर्ग है । यद्यपि रामायण मे ६४७ सर्ग हे, पर राम की कथा से सीधे सम्बद्ध रहने वाले पाँच सौ सर्ग ही है । बाकी के सर्गों मे सदर्भ मे आने वाली दूसरी कथाएँ है ।

वाल्मीकि-रामायण के बालकाड के सोलहवे सर्ग मे पुत्रेष्टि यज्ञ के कुड मे प्रकट हो कर दिव्य प्राजापत्य पुरुष देवनिर्मित पायस दशरथ को देता है‡ । इसके पहले ही पन्द्रहवे सर्ग मे सनातन ब्रह्म, विष्णु, रावण को मारने के लिए नर रूप मे अपने अवतीर्ण होने का वरदान रावणपीडित देवताओ को दे चुकते है । इस सर्ग के इकतीसवे और बत्तीसवे श्लोक मे विष्णु स्वय अपने को चार प्रकारो मे विभाजित कर दशरथ के पुत्रो के रूपों मे अवतीर्ण होने की इच्छा व्यक्त करते है—"एव दत्वा वर देवो देवाना विष्णु-रात्मवान् । मनुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मन. । ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मान चतुर्विधम् । पितर रोचयामास तदा दशरथ नृपम् † ।" इस तरह अनत शक्तिवान् विष्णु देवों को वर दे कर मनुष्यों के बीच में अपनी जन्मभूमि का स्थान सोचने लगे । इसके बाद ही कमलनयन नारायण ने अपने को चार प्रकारों मे विभक्त करके राजा दशरथ को अपने पिता की तरह प्राप्त करना चाहा ।

---

‡ वाल्मीकि-रामायण, बालकांड, सर्ग १६, श्लोक ११ से २० तक । † वाल्मीकि-रामायण, बालकाड, सर्ग १६, श्लोक ३० से ३२ तक ।

चार प्रकार के अनत अस्तित्व के भीतर उपनिषदों ने ब्रह्म की चार अवस्थाओ का दर्शन किया है। इन्ही अनत अस्तित्वों के स्वभाव को ले कर उसके चार प्रकार के सगुण अवतारों का पता पाचरात्र आगम ने लगाया है। उसी का समर्थन अपनी रामायण मे वाल्मीकि ने किया है। इसी प्रक्रिया का दर्शन हमे रामचरित मानस मे भी मिलता है। राम के जन्म की सूचना देते हुए वाल्मीकि ने लिखा है—"प्रोद्यमाने जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत कौसल्या जनयद्राम दिव्यलक्षणसयुतम्। विष्णोरर्ध महाभाग पुत्रमिक्ष्वाकुनदनम्' ‡। —'दिव्य लक्षणों से युक्त, विष्णु के अर्धभाग, महाभाग सर्वलोकनमस्कृत, जगन्नाथ, इक्ष्वाकुनन्दन को कौसल्या ने ग्रह नक्षत्रों की उक्त स्थिति मे जन्म दिया।' यहाँ वाल्मीकि ने राम को विष्णु का आधा भाग माना है।

इसी तरह भरत के जन्म की सूचना देते हुए वाल्मीकि ने लिखा है–"भरतो नाम कैकेय्या जज्ञे सत्यपराक्रमः साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सः सर्वैः मुदितो गुणैः" †। साक्षात् विष्णु के चतुर्थाश. सर्वगुणसम्पन्न, सत्यपराक्रम भरत ने कैकेयी मे जन्म लिया।

लक्ष्मण और शत्रुघ्न के जन्म की चर्चा करते हुए वाल्मीकि ने उन दोनों को भी विष्णु के आधे अश से उत्पन्न हुआ माना है—"अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा जनयत्सुतौ वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ" $। 'वीर, सर्वास्त्रकुशल तथा विष्णु के अर्धांश मे युक्त लक्ष्मण और शत्रुघ्न को सुमित्रा ने जन्म दिया।

इस तरह चतुष्पाद् ब्रह्म या चतुर्व्यूह का सिद्धान्त वाल्मीकि को भी मान्य था। इसी मान्यता के आधार पर उन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के जन्म के रहस्य को समझाया है।

इस चतुष्पाद् ब्रह्म की अभिव्यक्ति का रहस्य बालकाड के तेरहवें सर्ग से ही कुछ-कुछ व्यक्त होना आरम्भ होता है। इस सर्ग मे ऋश्यशृग की सहायता से राजा दशरथ अश्वमेध यज्ञ की तैयारी करते है—चौदहवे सर्ग मे यज्ञ होता है और उसी समय ब्रह्मवत् वातावरण चारों तरफ उत्पन्न हो जाता है—"दृश्यते ब्रह्मवत्सर्व क्षेमयुक्त हि चक्रिरे" *। 'सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्मवत् देख कर राजा ने हर तरह सुखी बनाया और यज्ञकार्य पूरा किया।' पन्द्रहवे सर्ग मे ऋश्यशृग ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया और उसी समय देवनाओ की प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् नारायण ने दशरथपुत्र हो कर मानवरूप मे रावण का वध करने का वचन दिया §। इस तरह ब्रह्मवत् जगत् को देखने वाले दशरथ के हृदय ने नारायण ब्रह्म को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। इसके बाद पुत्रेष्टि के फलस्वरूप नारायण के चार रूप—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—जगत् मे अवतीर्ण हुए और उनकी सहायता के लिए सब देवता वानर-रूप हो गये ×।

---

‡ वाल्मीकि-रामायण बालकाड, सर्ग १८, श्लोक १०-११। † बालकाड, सर्ग १८, श्लोक १३। $ बालकाड, सर्ग १८, श्लोक १४। * बालकाड, सर्ग १४, श्लोक १०। § बालकांड, सर्ग १५, श्लोक १६ से ३० तक। × बालकाड, सर्ग १७, श्लोक १ से ३७ तक।

अब यहाँ से वाल्मीकि अपने नर राम को ले कर चलते है, पर युद्धकाड मे नारायणत्व का रहस्य फिर व्यक्त होने लगता है। इसके पूर्व भी शबरी के शब्दो से भी वाल्मीकि ने राम के देवत्व को स्पर्श किया है। राम को देख कर योगिनी शबरी ने कहा है—"अद्य मे सफल तप्त स्वर्गश्चैव भविष्यति। त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ'‡—'हे पुरुषश्रेष्ठ और देव-श्रेष्ठ राम, आज मेरी तपस्या सफल हो गयी। तुम्हारी पूजा करके मै स्वर्ग भी प्राप्त करूँगी।' उसने यह भी कहा कि स्वर्ग की ओर जाने वाले ऋषियो ने मेरी स्वागतपूर्ण पूजा से प्रसन्न हो कर मुझे सूचना दी थी कि लक्ष्मण के साथ, राम तुम्हारे आश्रम मे आएँगे। उनका दर्शन कर लेने के बाद तुम्हे श्रेष्ठ और अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी—"त च दृष्ट्वा वराल्लोकानक्षयास्त्व गमिष्यसि†।" अत अरण्यकाड के अत मे भी राम का देवत्व फिर से प्रकाश मे आ गया है। इसके बाद किष्किंधाकाड और सुन्दरकाड मे राम का शक्तिसम्पन्न नरत्व ही प्रायः चित्रित हुआ है।

लकाकाड मे नारायणत्व को वाल्मीकि ने पुनः प्रकाश मे लाने की स्थिति उत्पन्न कर ली है। रावण की मृत्यु के बाद विलाप करती हुई मन्दोदरी ने बीती हुई बातों को स्मरण करके अपने मृत पति से कहा है—"मुझे यह विश्वास नही होता है कि त्रैलोक्य विजयी राम तुम्हे मार सकते है। यह हो सकता है कि स्वय यमराज ने ही राम का छद्मवेश धारण करके तुम्हे मारा हो अथवा इन्द्र ने तुम्हारा वध इस रामरूप से किया हो या यह भी सम्भव नही दिखाई पड़ता। युद्ध मे तो इन्द्र तुम्हारी तरफ दृष्टि भी नही डाल सकता था।" "व्यक्तमेप महायोगी परमात्मा सनातन। अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्। तमस परमो धाता शखचक्रगदाधरः। श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः। मानुष रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रम.। सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्व-मुपागतैः सर्वलोकेश्वर. श्रीमान् लोकाना हितकाम्यया।...यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्ब-हुभिर्वृतः। खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुष.।" इन श्लोकों मे मन्दोदरी ने राम को महायोगी, आदि, मध्य तथा अतहीन, प्रकृति से भी अत्यन्त विराट्, अज्ञान से अस्पृष्ट, शख, चक्र और गदा धारण करने वाला, हृदय पर भृगु का चरण-चिह्न रक्षित रखने वाला, शाश्वत सौन्दर्यवान्, नित्यस्थित, अविचल, सत्यपराक्रम सनातन परमात्मा ही माना है। उसने यह भी कहा है कि संसार की रक्षा के लिए देवताओं के वानर रूपों से घिर कर सर्वलोकेश्वर परम सुन्दर नारायण ही नर रूप में अवतीर्ण हुए हैं। रावण को उसने यह भी स्मरण करने को कहा है कि जनस्थान में राक्षसों की बडी सेना से घिरे हुए तुम्हारे भाई खर को मारने वाले राम मनुष्य कैसे हो सकते है $।

इसी युद्धकांड मे जब रावण की मृत्यु के बाद राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा की और सीता जलती हुई चिता पर बैठ गयी तब त्रिनयन वृषध्वज महादेव तथा ब्रह्मा इत्यादि देवताओ ने राम से कहना आरम्भ किया—"आप सब लोको की सृष्टि करने

‡ वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाड, सर्ग ७४, श्लोक ११। † अरण्यकाड, सर्ग ७४, श्लोक १४ से १६ तक। $ युद्धकाड, सर्ग ११३, श्लोक ११ से १७ तक।

वाले, विभु तथा ज्ञानियो मे श्रेष्ठ है। जलती हुई चिता पर बैठी हुई सीता की आप अज्ञानी की तरह कैसे उपेक्षा कर रहे है ? देवगणों मे श्रेष्ठ होते हुए भी आप अपने को क्यो भूले हुए है। वसुओं मे ऋतधामा वसु आप ही है। तीनों लोकों के आदिस्रष्टा परमात्मा आप ही है। आप स्वतः शक्तिवान् है। रुद्रों में से आठवें रुद्र आप ही है। साध्यों मे से पचम साध्य देवता—नारायण—आप ही है। अश्विनी और कुमार ये दोनों देववैद्य आपके कान है, सूर्य और चन्द्रमा आपके दो नयन है। इस सृष्टि के आदि, मध्य और अत में आप ही रहते है। आप प्राकृत और अज्ञानी मनुष्य की तरह वैदेही की उपेक्षा कैसे कर रहे है"‡ ?

देवताओं के इस प्रश्न के बाद भी आदिकवि ने राम के भीतर एक स्वाभाविक प्रक्रिया से स्वाभाविक नरत्व का भोलापन फिर से उभारा है। उन्होंने लिखा है—"देवताओं के ऐसा कहने के बाद समग्र लोकों के स्वामी धर्मनिष्ठों में श्रेष्ठ राघव ने उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा—'मै तो अपने को दशरथ का पुत्र तथा मनुष्य समझता हूँ, इसीलिए मैं जो हूँ और जहाँ से आया हूँ, आप लोग मुझे बताइए† ' अपने को इस तरह मनुष्य समझने वाले राम से ब्रह्मा ने कहा—'सत्य पराक्रम राम, आप मेरी सत्य वाणी पर ध्यान दीजिए। आप श्रीमान् चक्रायुध परमात्मा नारायण है। आप एक शृंग वाले वराह भगवान् है। आप अतीत और भविष्यत् शत्रुओं को जीतने वाले अजेय परमात्मा है। सत्यस्वरूप अक्षर ब्रह्म आप ही है। आदि, मध्य और अत मे आप ही रहते है। विश्व के मूल कारण आप ही है। विष्वक्सेन, चतुर्भुज, शार्ङ्धन्वा, हृषीकेश, पुरुष, पुरुषोत्तम, अजित, खड्गधृक्, विष्णु, कृष्ण, वृहद्बल सेनानी, ग्रामणी इत्यादि विष्णु के अनत नाम आप ही के है। सम्पूर्ण विश्व आप ही है। बुद्धि, क्षमा और दम आप ही है। प्रभव, अव्यय, उपेन्द्र और मधुसूदन आप ही है। इन्द्रकर्मा, महेन्द्र, पद्मनाभ तथा रणांतकृत् आप ही है। दिव्य महर्षियों ने आपको शरण और शरण्य दोनों माना है। वेद, यज्ञ और ॐकार आप ही है। कारणों के भी कारण आप ही है। जन्म और मृत्यु दोनों आप ही हैं। हम लोग स्वय नही जानते कि आप और क्या-क्या है। आप सब प्राणियों मे दिखाई पडते है। गायों और ब्राह्मणों मे आप ही है। आप सब दिशाओं मे, आकाश में, पर्वतो मे, तथा नदियों मे व्याप्त हैं। आप अनत चरण, अनत शीर्ष और अनत नेत्र है। आप सब तत्त्वों को, सम्पूर्ण पृथ्वी और सब पर्वतों को धारण करते है। पृथ्वी के अंत मे जल के भीतर अनत शेषनाग के रूप मे आप ही रहते है। देव, गन्धर्व, दानव तथा त्रिलोक, सब आपके ही सहारे रहते हैं। मै आपका हृदय हूँ, देवी सरस्वती आपकी जिह्वा है। देवता और ब्राह्मण आपके शरीर के रोम है। आपकी पलको का उठना ही दिन है और उनका गिरना रात्रि। आपके संस्कार वेद के रूप मे व्यक्त हुए। सम्पूर्ण जगत् आपका शरीर है। पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि ही आपका क्रोध है। चन्द्रमा ही आपकी प्रसन्नता है। प्राचीन काल में आपके द्वारा ही तीन पगों मे त्रिलोक नाप लिया गया था और उसके बाद बलि को बधन दे कर आप ही ने इन्द्र

‡ युद्धकांड, सर्ग ११९, श्लोक १ से ९ तक। † युद्धकाड, सर्ग ११९, श्लोक ९ से ११ तक।

को स्वर्ग का राजा बनाया था। सीता लक्ष्मी है और आप भगवान् विष्णु है, कृष्ण है तथा सम्पूर्ण विश्व की प्रजा के स्वामी है। रावण-वध करने के लिए इस पृथ्वी पर आपने मानव-शरीर मे प्रवेश किया था। हम लोगों का वह कार्य आपने करके अपने श्रेष्ठ धर्म-रक्षक पद को जगत् के सामने सिद्ध कर दिया है। अब रावण मारा गया। आप प्रसन्नता से स्वर्ग चलिए। आपका तेज अव्यर्थ है। आपका पराक्रम कभी व्यर्थ नही होता। आपका दर्शन तथा आपका यशोगान अमोघ है। ससार में आपके भक्त भी सर्वदा अमोघ-शक्ति-सम्पन्न होंगे। जो लोग पुराण, पुरुषोत्तम तथा अविचल ब्रह्म को आपमे प्राप्त कर लेगे वे भुक्ति और मुक्ति दोनो को अपने लिए करतलगत कर लेगे ‡।"

इस तरह उपनिषदों के विश्वरूप ब्रह्म को अनंत विश्व मे व्याप्त राम की तरह वाल्मीकि ने भी देखा है। इसी विश्वरूप ब्रह्म को वेदों ने भी देखा है। इसी परम्परा मे रामानुजाचार्य ने माया को ब्रह्म का अग मान कर विश्व को ब्रह्म का शरीर तथा इस अनत शरीर मे व्याप्त अनत चेतना को ब्रह्म का अनत चैतन्याश आत्मरूप माना है। उनके अनुसार जगत् शरीर की तरह तथा परमात्मा, परब्रह्म, उसमे चैतन्य रूप से व्याप्त शरीरी की तरह है, ठीक उसी तरह जिस तरह एक मनुष्य के व्यक्तित्व मे जीवात्मा शरीरी है और उसका भौतिक अधिष्ठान शरीर।

सीता के भूमि-प्रवेश के बाद राम के क्रोध को शान्त करने के लिए उत्तरकाड मे ब्रह्मा ने उन्हे फिर से स्मरण दिलाया है—"इम मुहूर्त दुर्धर्ष स्मर त्व जन्म वैष्णवम् †"। 'हे दुर्धर्ष, इस क्षण मे आप विष्णु के अपने मानव रूप अवतार का स्मरण कीजिए।' उन्होने यही पर आगे और कहा है—"सीता पवित्र और साध्वी है। वह निरन्तर आपके ही ध्यान मे मग्न रहती है। आपके आश्रय और अपने तपोबल के प्रभाव से वह आनन्दमग्न हो कर सुखपूर्वक नागलोक जा रही है और स्वर्ग मे लक्ष्मी रूप से आपसे पुन. मिल जाएगी $"।

'महाप्रस्थान की सब विधियों को पूर्ण करके सरयू की ओर भगवान् राम चले। उनका अग्निहोत्र प्रज्ज्वलित हो कर उनके सामने जा रहा था। ब्राह्मण उस अग्निहोत्र के साथ थे। उस महापथ पर बाजपेय छत्र शोभित हो रहा था। राम अपनी ब्राह्मी चेतना में मग्न थे। उनके दोनों हाथों मे यज्ञीय कुश थे। सूर्य की तरह चमकते हुए तेज के साथ वे अपने महल से निकले। उनके दक्षिण पार्श्व मे लक्ष्मी, वाम पार्श्व में पृथ्वी तथा उनके सामने अपने देवरूपों को धारण कर उनके सब अस्त्र-शस्त्र जा रहे थे। ये ही सात्त्विक दैवी शक्तियाँ अस्त्रो का रूप धारण कर जगत् में ब्रह्म के मानव रूप के साथ धर्म की स्थापना और दुष्टों का सहार करने के लिए अवतीर्ण होती है। ब्राह्मण-रूप मे वेद भी राम के साथ जा रहे थे। सर्वरक्षिणी गायत्री, ॐकार तथा वषट्कार यज्ञ तेजस्वी देवरूप मे उनके साथ थे। सब ऋषि और ब्राह्मण स्वर्ग के खुले हुए द्वार की ओर राम के साथ जा रहे थे। लक्ष्मण ने इसके पूर्व ही सशरीर स्वर्गारोहण किया था। भरत तथा शत्रुघ्न

‡ युद्धकाड, सर्ग ११९, श्लोक १२ से ३१ तक। † उत्तरकाड, सर्ग ९८, श्लोक १३।
$ उत्तरकाड, सर्ग ९८, श्लोक १४–१५।

दोनो अपने-अपने अग्निहोत्रो को ले कर राम के साथ थे। सब रानियाँ, मन्त्री तथा भृत्य-वर्ग इस महाप्रस्थान के लिए राम के साथ थे। अयोध्या की पूरी प्रजा, वानर, भालू, राक्षस, पशु, पक्षी, कीट, पतग तक आनन्द के अनत सागर मे मग्न हो कर महाप्रस्थान के लिए राम के साथ थे। यह सारा समाज सरयू के तट पर पहुँच गया।

ब्रह्मा के साथ सब देवता अपने-अपने विमानों मे आकाश मे छा गये। सब दिशाएँ दिव्य तेज से भर गयी। राम सरयू के जल मे आगे बढने लगे।

इसी समय ब्रह्मा ने कहा—"आगच्छ विष्णो भद्र ते दिष्टया प्राप्तोऽसि राघव। भ्रातृभि सह देवाभैः प्रविशस्व स्विका तनुम। यामिच्छसिमहाबाहो तां तनु प्रविश स्विकाम्। वैष्णवी ता महातेजो यद्वाकाश सनातनम्। त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वा केचित्प्रजानते। ऋते माया विशालाक्षी तव पूर्वपरिग्रहाम्। त्वामचित्य महद्भूतमक्षय चाजर तथा ‡।"

इन पक्तियो मे वाल्मीकि के ब्रह्मा ने राघव राम को विष्णु नाम से सबोधित करके उनके भाइयो को देवरूप कहा है। यहाँ वाल्मीकि ने विष्णु का ध्यान उनके दो शरीरों की ओर आकृष्ट किया है—एक विराट् तेजयुक्त नारायण का रूप तथा दूसरा अनत तेजो का आधार विराट् आकाश का अनत रूप। इसमे से पहला सगुण रूप है तथा दूसरा निर्गुण।

पवित्र शील के रूप मे ब्रह्म की उपासना के लिए उसके सगुण रूप का आधार नितान्त आवश्यक है। इसीलिए आदर्श की इस भक्तिमयी उपासना के भीतर वाल्मीकि ने सगुण की रक्षा अत तक करते हुए उसी से अपने रामायण का उपसहार किया है। उन्होंने कहा है—"पितामहवच श्रुत्वा विनिश्चित्य महामति। विवेश वैष्णव तेज सशरीरः सहानुज। ततो विष्णुमय देव पूजयन्तिस्म देवता। साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमा †।"

ब्रह्मा ने राम के सामने दो विकल्प रखे थे। एक सगुण शरीर का तथा दूसरा अनत व्यापी निर्गुण शरीर का। राम ने निर्गुण शरीर की अपेक्षा नारायण के अपने सगुण रूप का ही चुनाव अपने लिए किया। अत. वाल्मीकि की रामायण का प्रारभ ब्रह्म के सगुण रूप नारायण से हुआ और अत भी उसी रूप से। सगुण रूप से ही ये चार अवतार हुए थे और ये चारो उसी रूप मे पुनः परिवर्तित हो कर तदाकार हो गये तथा नारायण के उस रूप की उपासना इन्द्र और अग्नि के साथ सब देवताओं ने की। उपासना के लिए रूप का आधार परमावश्यक होता है। इस रूप के चुनाव के रहस्य को ध्यान मे रख कर ही वाल्मीकि ने इस चुनाव के लिए अपने राम को महामति के विशेषण से अलकृत किया है। उनके अनुसार आदर्श को साकार करने वाले ब्रह्म के सगुण रूप का आधार स्वीकार करने का निश्चय महामतित्व का लक्षण है। इस प्रकार

‡ उत्तरकाड, सर्ग ११०, श्लोक ८ से १३ तक। † उत्तरकाड, सर्ग ११०, श्लोक १२–१३।

वाल्मीकि भी भक्ति की साधना मे निर्गुण की अपेक्षा मगुण ब्रह्म को ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझते है ।

वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ ही आदर्श के माथ होता है। मगलाचरण के दो श्लोकों मे भी वाल्मीकि लोकरक्षक आदर्शों की ओर सकेत करते है, पर तीसरे श्लोक मे, जो मुख्य रामायण का प्रथम श्लोक है और जहाँ से कथाभाग प्रारम्भ होता है, आदर्शो की विराट् योजना आरम्भ हो जाती है। स्वाध्याय और तप जीवन के आदर्शो के वीज हे। इन्ही मे रत नारद मुनि से वाल्मीकि का यह प्रश्न आदर्शो का ही प्रश्न है—"कोन्वस्मिन्मा-प्रत लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत । चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेपु को हित. विद्वान् कः क समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शन. । आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोपस्य सयुगे ‡ ।" इमी प्रश्न मे वाल्मीकि ने नारद से एक ऐसे शीलवान् मनुष्य का परिचय चाहा है जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवाक्, दृढव्रत, चरित्रयुक्त, सर्वभूतहित, विद्वान्, समर्थ, मवमे मुन्दर, आत्मज्ञानी, जितक्रोध, कान्तिवान् तथा अनसूयक हो और युद्धक्षेत्र पर जिमके क्रोध को देख कर देवता भी भयभीत हो जाते हों। इस प्रश्न के प्रारम्भ ही मे वाल्मीकि का ध्यान गुणों पर है। लोकमगल विधान की भावना 'सर्वभूतहित' शब्द मे है । आत्मवान् शब्द मे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की समत्वयुक्त भावना है । 'धर्मज्ञ' और 'सत्यवाक्' शब्द इस बात की सूचना देते है कि आदर्श व्यक्ति के सब कार्य विश्वधर्म और मत्य के द्वारा परिचालित होते रहते है ।

वाल्मीकि का उत्तर देते हुए नारद ने उपर्युक्त मब आदर्शों के केन्द्र राम की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया और बताया कि राम नियतात्मा, अतुल पराक्रमी, कान्तिवान्, धैर्यशाली, वशी, बुद्धिमान्, नीतिवान्, वाग्मी, परम सुन्दर तथा शत्रुविनाशक है। नियतात्मा, धैर्यशाली, वशी, और नीतिवान् योद्धा का शत्रु विश्वशत्रु ही हो मकता है, इस पर विस्तृत प्रकाश डालने की आवश्यकता नही है। उपर्युक्त विशेषणों के द्वारा राम की शक्ति, शील और सौन्दर्य पर समाहित दृष्टि डाली गयी है। नारद ने वाल्मीकि को यह भी बताया कि राम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजा के हित मे रत रहने वाले, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, पवित्र, वश्य तथा योगनिष्ठ है। उन्होंने यह भी बताया है कि राम प्रजापति के समान सृष्टि करने की शक्ति रखने वाले, सम्पूर्ण जीवलोक के रक्षक तथा धर्म के रक्षक है। वे अपने धर्म के तथा स्वजनों के भी रक्षक है। अनत शक्तिवान् होने के कारण वाल्मीकि के राम जीवलोक के रक्षक है तथा शरीरी अवतार होने के कारण कुछ स्वजनों की सीमा से भी वे सम्बद्ध है, इसीलिए उनकी भी रक्षा करते है। वे वेदों तथा वेदागों के रहस्यों को जानते है। धनुर्वेद के ज्ञान की उनमे विशेष योग्यता है। सब शास्त्रों के अर्थ और तत्त्व को वे जानते हैं। उनमें अतुलनीय स्मरणशक्ति और प्रतिभा है। वे सर्वलोकप्रिय, साधु स्वभाव वाले, तेजस्वी तथा कार्यकुशल है। वे सदा सज्जनों के माथ रहते है । आर्य

‡ वाल्मीकि-रामायण, बालकाड, सर्ग १, श्लोक २ से ४ तक ।

स्वभाव वाले वे सर्वदा सबसे समानता का व्यवहार करते है। ऐसा कोई सद्गुण नही है जो उनमे न हो। गाभीर्य मे वे समुद्र के समान, धैर्य मे हिमालय की तरह, शक्ति और पराक्रम मे विष्णु के समान, चन्द्रमा के समान सुन्दर, क्रोध मे प्रलयाग्नि के समान, क्षमा मे पृथ्वी के समान, त्याग मे कुबेर के बराबर तथा सत्य के लिए दूसरे धर्मराज की तरह है। सत्य को ही वे अपना बल समझते है ‡।

इस तरह वाल्मीकि के नारद ने एक आदर्श व्यक्ति मे लोकरक्षा और लोकमगल विधान के लिए जितने गुणो की आवश्यकता होती है, उन सबको राम के व्यक्तित्व मे देखा है। अयोध्याकाड मे कैकेयी को समझाते हुए दशरथ ने कहा है—"न वेत्ति राम परुषाणि भाषितुम्" †—'राम कठोर शब्द बोलना ही नही जानते।' इस तरह वाल्मीकि के राम भी सर्वथा आदर्श पुरुष है। इसी सिद्धान्त के आधार पर रामायण की आदर्शात्मक पृष्ठभूमि को लेकर वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ के भीतर राम से सम्बद्ध सब आदर्श व्यक्तियों के शील की सृष्टि की है। इन्ही आदर्शो के माधुर्य से भक्ति की निरन्तर प्रवाहित होने वाली पृष्ठभूमि पर गोस्वामी जी ने अपने मानस में राम, और रामायण के सब आदर्श पात्रो के भीतर शील का निर्माण किया है।

त्रिदेव मे ब्रह्मा की उपासना बहुत पहले से ही सीमित हो ग ी। इस परिसीमन के लिए पुराणो मे कई कारण यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते है। पर अभी भी सावित्री के साथ ब्रह्मा की उपासना सावित्री-व्रतों के अवसर पर होती है। यज्ञों मे भी ब्रह्मा का स्थान रहता है। सन्तानार्थ विधियों के आरम्भ मे भी ब्रह्मा की उपासना का विधान है। कालिदास ने महाराजा दिलीप और उनकी रानी सुदक्षिणा को सन्तानार्थ उपासना के लिए भेजने के पहले उनसे विधाता की उपासना करायी है। "अथाभ्यर्च्य विधातारम्" $ की सूचना इसी प्रकरण मे वे अपने 'रघुवश' में देते है। पर विष्णु और शिव की उपासना मनुष्य के जीवन मे उसके प्रत्येक क्षण कें साथ आज तक सम्बद्ध है। साधनारत साधक इनकी उपासना अपने प्रत्येक प्राण के साथ करने की इच्छा रखता है।

इस प्रवृत्ति के अनुसार शैव और वैष्णव सम्प्रदाय अपने व्यापक रूप से भारतवर्ष मे बराबर रहते चले आये है और अपनी दुर्बलता के कारण इन दो बडे-बडे सम्प्रदायों मे विभक्त हो कर उपासना के स्थान पर मनुष्य ने कई बार द्वेप की ही सिद्धि की है। इस द्वेष को मिटाने के लिए महामानवों ने इस प्रकार के प्रत्येक युग मे, सर्ववाद और अद्वैतवाद की अभेदोपासना के प्रकाश से मनुष्य को अज्ञान की निद्रा मे जगाने के स्तुत्य प्रयत्न किये है।

यद्यपि इस तरह की किसी समस्या का स्पष्ट सकेत वाल्मीकि के युग मे नही मिलता, जैसा कि तुलसी के युग मे स्पष्टत· दिखाई पड़ता है, तथापि इतना तो अवश्य प्रतीत होता है कि वाल्मीकि भी वैसे युगो से परिचित थे जिनमे भेदोपासना के आधार

‡ वाल्मीकि-रामायण, बालकाड, सर्ग १, श्लोक ८ से १९ तक। † अयोध्याकाड, सर्ग १३, श्लोक १०८। $ रघुवश, सर्ग १, श्लोक ३५।

पर मानवता विभक्त हो गयी थी और भेद-दृष्टि की सम्भावना को रोकने के लिए उन्होंने मुख्यत विष्णु से सम्बद्ध अपने इस रामकाव्य मे शिव और ब्रह्मा को भी सर्ववाद और अद्वैतवाद की उदार भाव-साधना के आधार पर समान महत्त्व के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे क्रौंच-वध के बाद शोक के श्लोकत्व मे परिणत हो जाने पर ब्रह्मा से ही मार्गदर्शन प्राप्त किया है और ये ब्रह्मा लोककर्ता, महातेजस्वी, चतुर्मुख ब्रह्मा ही है। लोकपितामह ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा है कि मेरी इच्छा से ही शोक से पवित्र तुम्हारे हृदय मे सरस्वती उत्पन्न हो कर श्लोक बन गयी है। तुम राम की पावन तथा रमणीय कथा की श्लोकमयी सृष्टि करो। इस पुण्य कार्य के फल से तुम मेरे लोकों मे निवास करोगे। ऐसा कह कर भगवान् ब्रह्मा अंतर्हित हो गये ‡। इस तरह ब्रह्मा को सर्वशक्तिवान् त्रिदेव के एक घटक की तरह मान कर वाल्मीकि ने सम्मान दिया है। रामायण के अंत मे उत्तरकांड मे भी ब्रह्मा का यही महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। सन्तानकलोक उन्ही के अधीन दिखाये गये हैं, जिनमे सुग्रीव इत्यादि राम के सब भक्त भेजे गये। स्वर्गारोहण के समय लोकपितामह ब्रह्मा ने ही मर्यादा पुरुषोत्तम अनंत शक्तिवान् विष्णु के सब कार्यों का उपसंहार कराके स्वर्ग-प्रवेश के लिए उनका स्वागत किया है।

इसी तरह का महत्त्व वाल्मीकि ने महेश्वर शिव को भी रामायण मे दिया है। पहले बताया जा चुका है कि शंकर की चर्चा वाल्मीकि ने रामायण के मंगल श्लोक में ही की है। इसके बाद सब देवताओ के द्वारा रावण का वध करने के लिए विष्णु की स्तुति की चर्चा वाल्मीकि ने की है—"ततो देवर्षिगन्धर्वा सरुद्रा साप्सरोगण स्तुतिभिर्दिव्य-रूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् †"। यहाँ सब देवताओं, ऋषियो तथा गन्धर्वों के साथ शिव के रूप रुद्र से भी नारायण की स्तुति कराके वाल्मीकि ने शिव और नारायण की परस्पर अनुकूलता प्रदर्शित की है। इसी सर्ग मे वाल्मीकि ने 'उग्रेण तपसा युक्ता ददौ शैलवर सुताम्। रुद्रायाप्रतिरूपाय उमा लोकनमस्कृताम् $' कह कर रुद्र को अप्रतिरूप और उमा को लोकवन्दनीया रूप मे प्रस्तुत किया है। इस तरह तेजस्वी रुद्र और जगद्वन्द्या उमा के विवाह की सूचना दे कर वाल्मीकि ने कार्तिकेय के जन्म तक की सब परिस्थितियो का वर्णन किया है। इसी प्रकरण मे वाल्मीकि ने शिव के लिए 'देवदेव', 'महादेव', 'सर्वलोक महेश्वर' इत्यादि विशेषणों का प्रयोग करके विष्णु के समान ही उनके महत्त्व को भी स्वीकार और प्रतिपादित किया है *। इसी कथाप्रसंग को गोस्वामी जी ने विस्तार के साथ प्रस्तुत करके शिव के गौरव को और अधिक महत्त्व प्रदान किया है। त्रिदेव के गौरव को वाल्मीकि के आधार पर ही चित्रित करते हुए गोस्वामी जी ने अपने मौलिक कौशल से उसे एक नये ढंग से प्रस्तुत किया है।

---

‡ बालकांड, सर्ग २, श्लोक १ से ३८ तक। † बालकांड, सर्ग १५, श्लोक ३२। $ बालकांड, सर्ग ३५, श्लोक २०। * बालकांड, सर्ग ३६ और ३७।

धनुर्वेद की प्राप्ति के लिए वाल्मीकि के विश्वामित्र ने महादेव की उपासना हिमालय मे की है‡। अयोध्याकाड से कैकेयी के भवन मे पडे हुए शोकाकुल दशरथ को प्रबुद्ध करने के लिए सुमन्त्र ने उन्हे आशीर्वाद देते हुए कहा है—"मोमसूर्यौ च काकुत्स्थ शिव-वैश्रवणावपि। वरुणश्चाग्निरिद्रश्च विजय प्रदिशन्तु ते"†। वहाँ भी शिव, विजयप्रद देव की तरह सुमन्त्र के द्वारा प्रस्तुत किये गये है। शिव का कैलास वाल्मीकि के ध्यान मे निरन्तर बना रहता है। उच्च धवल प्रासादो की उपमा उन्होंने बार-बार कैलास से दी है। वन जाने के समय राम की मगलविधि के अत मे वाल्मीकि की कौसल्या ने कहा है—"मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः मुरोरगा। अभिप्रयातस्य वन चिराय ते हितानि काक्षन्तु दिशश्च राघव"$—'शिव इत्यादि देवगण, महर्षिगण, भूतगण (पचमहाभूत) मुर तथा नागगण मेरे द्वारा पूजित हुए है। वे तथा सब दिशाएँ चिरकाल तक वन मे रहने के समय तुम्हारे लिए मगल कामना करें'। यहाँ भी वाल्मीकि की कौसल्या शिव को नही भूलती।

अरण्यकाड मे भी सुतीक्ष्ण के आश्रम मे 'सुरेश्वर महादेव' आ कर उन्हे तपस्या के परिणामस्वरूप सब पुण्यलोको की प्राप्ति की सूचना दे जाते है। सुतीक्ष्ण ने राम से कहा है—"उपागम्य च मे देवो महादेव सुरेश्वर। सर्वान्लोकान् जितानाह मम पुण्येन कर्मणा* 'देव, महादेव, सुरेश्वर ने मेरे पास आ कर कहा कि मैने अपने पवित्र कर्मो से सब लोको को जीत लिया है'। इसी काड मे राम से जटायु ने प्रजापतियों के नामों की चर्चा करते हुए स्थाणु का नाम भी बताया है। ये स्थाणु शिव ही है। अदिति से रुद्रों की उत्पत्ति की चर्चा भी जटायु ने की है। ये रुद्र शिव के ही रूप है§। इसी काड मे पचवटी मे गोदावरी मे राम, सीता और लक्ष्मण ने जब प्रथम बार स्नान किया तब उनकी तुलना वाल्मीकि ने शिव, उमा तथा नन्दी से की है—"कृताभिषेकः स रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन। कृताभिषेकस्त्वगराज पुत्र्या रुद्रः सनदिर्भगवानिवेशः×।" 'सीता और लक्ष्मण के साथ स्नान कर लेने पर राम इस प्रकार शोभित हुए, जैसे शैल-पुत्री और नन्दी के साथ स्नान करके भगवान् शिव शोभित होते है'। शिव मे सम्बद्ध अन्तर्कथाओं के सकेत भी वाल्मीकि ने बराबर दिये है। खर के वध का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है—"स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना। रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्यये यथाधक" "बाण की अग्नि से जल कर खर इस तरह भूमि पर गिरा जिस तरह रुद्र के द्वारा जलाया जा कर श्वेतवन मे अधकासुर गिरा+।"

किष्किधाकाड मे भी वाल्मीकि ने शकर की चर्चा के लिए स्थान बना लिया है। जिस दुदुभि राक्षस के द्वारा बालि को मारा हुआ समझ कर सुग्रीव ने गुफा का द्वार बन्द

‡ बालकाड, सर्ग ५५, श्लोक १२। † अयोध्याकाड, सर्ग १४, श्लोक ५१ के बाद। $ अयोध्याकाड, सर्ग २६, श्लोक ४३। * अरण्यकाड, सर्ग ७, श्लोक ११। § अरण्यकाड, सर्ग १४, श्लोक ८ से १५ तक। × अरण्यकाड, सर्ग १६, श्लोक ४३। + अरण्यकाड, सर्ग ३०, श्लोक २७।

कर दिया था वही अपने युद्धोन्माद के कारण लडने के लिए योद्धा ढूँढता हुआ चला आ रहा था। उसके युद्धाह्वान से त्रस्त हो कर समुद्र ने दुदुभि से कहा—'समर्थो नास्मि ते दातु युद्ध युद्धविशारद। श्रूयता त्वभिधास्यामि यस्ते युद्ध प्रदास्यति। शैलराजो महारण्ये तपस्विशरण परम्। शकरश्वशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः महा प्रस्रवणोपेतो बहुकदर निर्झरः। स समर्थस्तव प्रीतिमतुला कर्तुमर्हति ‡।" 'हे युद्ध विशारद, मैं तुमसे युद्ध करने मे समर्थ नही हूँ। जो तुम्हे युद्धक्रीडा का उपहार दे सकता है उसका नाम सुनो। महावन मे तपस्वियों को अनन्य शरण देने वाला बडे-बडे निर्झरो, प्रपातों और गुफाओं वाला पर्वत जो शिव का श्वशुर है और हिमवान् नाम से विश्रुत है, वही तुम्हे युद्धक्रीडा मे पूर्ण सन्तुष्ट कर सकता है।' यहाँ समुद्र ने हिमवान् का परिचय 'शकरश्वशुर' कह कर दिया है। इस बहाने से शैव वातावरण वाल्मीकि ने यहाँ भी उत्पन्न कर लिया है। इसी काड मे सुग्रीव के आदेश से पृथ्वी भर के वानरो की सेना एकत्रित करने के प्रकरण मे हिमालय पर एक प्रभावशाली माहेश्वर यज्ञ की भी चर्चा वाल्मीकि ने की है—"ये तु त्वरयितु याता वानरा· सर्ववानरान्। ते वीरा हिमवच्छैले ददशुस्त महाद्रुमम्। तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये यज्ञो माहेश्वर पुरा। सर्वदेवमनस्तोषो बभूव सुमनोरम.। अन्ननिष्यन्दयानानि मूलानि च फलानि च। अमृतस्वादुकल्पानि ददृशुस्तत्र वानरा·। तदन्नसभव दिव्य फल मूल मनोहरम्। य. कश्चित्सकृदश्नाति मास भवति तर्पित" †—'जो वानर सब वानरों को शीघ्रता मे ले आने के लिए गये थे, उन्होंने हिमालय पर उस विशाल वृक्ष को देखा, जिसके पास प्राचीन काल मे सब देवताओ को तुष्ट करने वाला पवित्र माहेश्वर यज्ञ हुआ था। इस यज्ञ के अन्न के रस से उत्पन्न, अमृत के समान स्वाद वाले मूलों और फलो को वानरों ने देखा। उस अन्न से उत्पन्न दिव्य और सुन्दर फल तथा मूल को जो एक बार भी खा लेता है उसे इतनी तृप्ति और पुष्टि प्राप्त हो जाती है कि एक मास तक भोजन करने की आवश्यकता नही रहती।"

इस तरह इस महाप्रभावशाली माहेश्वर यज्ञ की चर्चा करके वाल्मीकि ने इस पूरे कांड के अवशिष्ट ३० सर्गों तक व्याप्त रहने वाला शैव वातावरण उत्पन्न कर लिया है।

सुन्दरकांड में भी सीता की खोज मे एक बार असफल हो कर अवशिष्ट अशोक वाटिका मे दुबारा खोजने की तैयारी करते हुए हनुमान् ने रुद्र को नमस्कार करके प्रस्थान करने का सकल्प किया है। वाल्मीकि के हनुमान् कहते है—"अशोकवनिका चापि महतीय महाद्रुमा। इमामधिगमिष्यामि नहीय विचिता मया। वसून्रुद्रास्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च। नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसा शोकवर्धन."। यहाँ वसुओ, रुद्रों, आदित्यो, अश्विनी और कुमार तथा मरुतों को नमस्कार करने का निश्चय हनुमान् ने किया है। अशोक-वाटिका की ओर प्रस्थान करते हुए उन्होंने नमस्कार किया—"नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै। नमोऽस्तु रुद्रेंद्रयमानिलेभ्यो नमोस्तु चद्राग्नि-

‡ वाल्मीकि-रामायण किष्किधाकाड, सर्ग ११, श्लोक ११ से १३ तक। † किष्किधाकाड, सर्ग ३७, श्लोक २७ से ३० तक।

मरुद्‌गणेभ्यः" ‡—यहाँ हनुमान् ने राम, सीता, लक्ष्मण, रुद्र, इन्द्र, यम, अनिल, अग्नि, चन्द्र तथा मरुद्‌गण को नमस्कार किया है ।

इसके बाद सीता के मिल जाने पर उनसे परिचय पूछते हुए भी वाल्मीकि के हनुमान कहते है—"का त्व भवसि रुद्राणा मरुता वा वरानने"†—'आप कौन है ? रुद्रो या मरुतों के कुल की तो नही है ?' यहाँ भी वाल्मीकि को शिव के रूप रुद्रों का ध्यान है।

अशोक वाटिका का विनाश करते हुए जब हनुमान् बहुत से राक्षसों के साथ रावण के पुत्र अक्ष को मार कर अत मे ब्रह्मास्त्र से बद्ध होना स्वीकार करके रावण के सामने लाये गये तब उन्हे देख कर रावण बडे सन्देह मे पड गया । उसकी दशा का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है—"शकाहतात्मा दध्यौ स. कपीन्द्र तेजसा वृतम् । किमेष भगवान्नदी भवेत् साक्षादिहागत "$ । तेज से आवृत कपीन्द्र को देख कर रावण बहुत शकाकुल हो गया और उसने सोचा कि साक्षात् भगवान् नन्दी ही तो यहाँ नही चले आये है । शकर के गण नन्दी के प्रति रावण की श्रद्धा की व्यजना करके वाल्मीकि ने यहाँ शैव वातावरण फिर से उत्पन्न कर लिया है ।

लकाकाड मे इन्द्रजित् के द्वारा किये गये माहेश्वर यज्ञ और उससे प्राप्त शक्ति की चर्चा रावण के मन्त्रियों ने उसे उत्साहित करने के लिए की है * । इसी कांड से राम और लक्ष्मण मे विष्णु का अश देखना वाल्मीकि ने पुन प्रारम्भ किया है । रावण की शक्ति लगने पर वाल्मीकि के लक्ष्मण ने अपने को विष्णु के अतर्कित अश की तरह स्मरण किया और इसी प्रभाव से रावण उन्हे पृथ्वी पर गिर जाने के बाद उठा न सका § । यही पर राम को भी विष्णु के अनिर्वचनीय अश से अपनी उत्पत्ति का स्मरण हो आता है × । अत. वाल्मीकि के प्रायः सब काडो मे शैव-वैष्णव वातावरण साथ-साथ चलते है ।

इसी सर्ग में हनुमान् जब मृत-सजीवनी इत्यादि बूटियों को लाने हिमालय गये तब वहाँ कैलास मे उन्होंने शकर के धनुष को देखा । इस चर्चा से वाल्मीकि ने अपने पाठकों की कल्पना मे शिव को पुन· जागृत कर लिया है + । इसके बाद राम, लक्ष्मण तथा वानर सेना के स्वस्थ हो जाने पर रात्रियुद्ध मे रावण के क्रोध की चर्चा करते हुए उसके क्रुद्ध रूप की वाल्मीकि ने रुद्र से तुलना की है ⚜ । इसी काड मे मेघनाद के द्वारा माहेश्वरास्त्र के प्रयोग की चर्चा की गयी है ¶ । मेघनाद की मृत्यु का समाचार पा कर क्रुद्ध रावण के मुख की तुलना वाल्मीकि ने पुनः रुद्र के रूप से की है ‡⊕ । रावण की मृत्यु के पहले अगस्त्य ऋषि ने आ कर राम को आदित्यहृदय स्तोत्र दिया है । उस स्तोत्र में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, महेन्द्र, धनद, काल, यम, सोम, वरुण इत्यादि आदित्य के

---

‡ सुन्दरकाड, सर्ग १३, श्लोक ५४–५५ और ५८ । † सुन्दरकाड, सर्ग ६, श्लोक ६ $ सुन्दरकाड, सर्ग ५०, श्लोक २ । * युद्धकाड, सर्ग ७, श्लोक १८ । § युद्धकाड, सर्ग ५९, श्लोक ११० से ११२ तक । × युद्धकाड, सर्ग ५९, श्लोक १२० । + युद्धकाड, सर्ग ७४, श्लोक ४५ । ⚜ युद्धकाड, सर्ग ७५, श्लोक ४५ । ¶ युद्धकांड, सर्ग ९१, श्लोक ५५ और ६० । ‡⊕ युद्धकांड, सर्ग ९३, श्लोक २१ ।

रूप माने गये है । इस आदित्य हृदय मे भी वाल्मीकि ने शैव वातावरण की रक्षा शिव, स्कन्द, ईशान के नामस्मरण से कर ली है‡ ।

रावण-वध के बाद सीता ने अग्नि-परीक्षा देने के लिए जब चितारोहण किया, उस समय ब्रह्मा इत्यादि सब देवताओ के साथ वाल्मीकि की रामायण मे 'त्रिनयन वृषध्वज महादेव' भी आ कर सीता के शुद्ध चरित्र की गवाही देते है† । यहा शिव तथा विष्णु की एकता की घोषणा सर्ववाद के आधार पर देवताओं ने की है, राम को सर्वदेवमय मान कर उन्होने राम को रुद्रो मे अष्टम रुद्र माना है$ । इसी प्रकरण मे महेश्वर शिव ने राम से विमानस्थ दशरथ की भेट करायी* । अयोध्या पहुँचने के पहले भरत के पास अपने वापस लौटने का समाचार भेजते हुए राम ने शिव के द्वारा प्राप्त इस सहायता की जानकारी भी भरत को करायी§ ।

अपने इस वैष्णव ग्रन्थ के उत्तरकाड मे भी वाल्मीकि ने रामायण का उपसहार करते हुए शैव वातावरण का भी उपसहार किया है, और इसीलिए इस काड मे पर्याप्त शैव वातावरण उत्पन्न कर लिया है । इस काड मे सुकेश राक्षस को शिव ने आकाशगामी नगर दिया है× । सुकेश के पुत्र माली, सुमाली, माल्यवान् के अत्याचारो से उद्विग्न हो कर देवताओ और ऋषियो ने देवदेव महेश्वर से सहायता की प्रार्थना की है । इस प्रकरण मे वाल्मीकि ने शिव को कामारि, त्रिपुरारि और त्रिलोचन विशेषणो के साथ जगत् की सृष्टि और उसका सहार करने वाला, अजन्मा और अव्यक्तस्वरूप, सब लोको का आधार तथा परम गुरु माना है+ । इस तरह विष्णु के सब विशेषण यहाँ शिव को भी दे कर उन दोनों में वाल्मीकि ने अभेद दर्शन की सिद्धि की है । इसी काड मे वाल्मीकि ने अगस्त्य और राम के वार्तालाप के समय अगस्त्य के द्वारा बताये हुए इतिहास मे रावण के भाई कुबेर के द्वारा रावण के देवद्रोह को शान्त करने के लिए उसके पास भेजे गये दूत से यह सवाद रावण को दिलवाया है कि रुद्र का व्रत करने के प्रभाव से मेरे सम्मुख जब उमा-महेश्वर प्रकट हुए तब दुर्योग से मेरी दाहिनी आँख वासना से प्रेरित हो कर उमा पर पडी और पीली हो कर निष्क्रिय हो गयी । बाद मे शिव के द्वारा निर्मित समधार व्रत करने से मैने शिव की कृपा प्राप्त कर ली । देवद्रोह विनाश का कारण बनता है । पर मदान्ध रावण पर इसका कोई प्रभाव नही पडा❋ ।

इसी प्रकरण मे रावण का इतिहास बताते हुए अगस्त्य ने राम से यह भी बताया है कि शिव के क्रीडास्थल कैलास के प्रतिषिद्ध क्षेत्र मे रावण ससैन्य पहुँचा । नन्दीश्वर ने उसे आगे बढने से रोका और रावण ने नन्दीश्वर की आज्ञा की अवहेलना करते हुए उनकी वानराकृति का उपहास किया । क्रुद्ध नन्दीश्वर ने वानरों के द्वारा उसकी मृत्यु होने का

---

‡ युद्धकाड, सर्ग १०५, श्लोक ८ । † युद्धकाड, सर्ग ११९, श्लोक ३ । $ युद्धकाड, सर्ग ११९, श्लोक ८ । * युद्धकाड, सर्ग १२१, श्लोक १ से ८ तक । § युद्धकाड, सर्ग १२७, श्लोक ११ । × उत्तरकांड, सर्ग ४, श्लोक २७ से ३२ तक । + उत्तरकाड, सर्ग ५, श्लोक १–२ । ❋ उत्तरकाड, स॰ १३, श्लोक ११ से ३१ ।

शाप दिया। कैलास पर रखा हुआ कुबेर का पुष्पक विमान जब रावण की आज्ञा मे नही चला तब उसने कैलास को ही उठा कर शिव का अपमान करना चाहा। उठते हुए कैलास को शिव ने अगूठे से स्पर्श किया और रावण की भुजाएँ स्तब्ध हो गयी। पीडा से वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। अत मे मन्त्रियों के परामर्श से उसने महादेव को प्रसन्न कर लिया। इस रोने की घटना के कारण शिव ने रावण नाम से उसका नामकरण किया। रावण ने मनुष्य और वानरों को छोड और लोगों से अपनी अवध्यता का वरदान, चन्द्रहास खड्ग तथा पुष्पक विमान शिव के द्वारा प्राप्त किया‡। इस प्रकरण से भी वाल्मीकि ने अपने वैष्णव काव्य मे शिव को देवश्रेष्ठ बता कर उनके प्रभाव को विष्णु के प्रभाव के साथ समन्वित कर लिया है।

अगस्त्य के द्वारा राम से इतिहास-वर्णन के इसी प्रकरण मे यम-रावण युद्ध का वर्णन करते हुए अप्रस्तुत विधान के रूप मे अगस्त्य ने त्रिपुरासुर और शकर के युद्ध की ओर सकेत करके शैव वातावरण के प्रवाह की रक्षा की है†। इसी काड मे वाल्मीकि के भार्गव ऋषि ने शिव से प्राप्त मधुराक्षस के शूल की चर्चा की है और यह बता कर कि उसके पुत्र लवणासुर ने वह शूल उससे प्राप्त करके बडा अत्याचार प्रारम्भ कर दिया है, उन्होने राम से रक्षा की प्रार्थना की है और राम के आदेश से शत्रुघ्न ने उसका वध किया है$।

इस प्रकरण से भी शैव वातावरण की रक्षा हुई है और शिव की अमोघ शक्तियो का विकास आगे बढाया गया है।

इस काड मे अश्वमेध यज्ञ का प्रभाव बताते हुए राम ने लक्ष्मण से प्रजापति कर्दम के पुत्र वाह्लीक देश के राजा इल की चर्चा की है। शिव के स्त्रीवन मे जा कर इल भी स्त्री हो कर इला हो गये और शिव तथा पार्वती की कृपा से एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष रहने का वर प्राप्त किया। अत मे अपने पिता कर्दम, भृगु के पुत्र यवन तथा अन्य ऋषियों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ करके स्थायी पुरुषत्व को इल ने प्राप्त कर लिया। इल के पिता कर्दम ने ऋषियो से कहा—"द्विजा. शृणुत मद्वाक्य यच्छ्रेय पार्थिवस्य हि। नान्य पश्यामि भैषज्यमतरा वृषभध्वजम्।" हे ब्राह्मणो, राजा इल के लिए शिव के अतिरिक्त कोई दूसरा उपचार नही दिखाई पडता। इस घटना को बता कर भगवान् राम ने लक्ष्मण से कहा—"कर्दमेनैव युक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभा। रोचयन्स्मि त यज्ञ रुद्रस्याराधन प्रति"—'कर्दम के द्वारा ऐसा कहा जाने पर श्रेष्ठ ब्राह्मणो ने अश्वमेध यज्ञ को ही रुद्र की आराधना का उत्तम उपाय निश्चित किया।" अश्वमेध की समाप्ति की चर्चा करते हुए राम ने लक्ष्मण से कहा है—"अथ यज्ञे समाप्ते तु प्रीत परमया मुदा। उमापतिर्द्विजान्सर्वानुवाच इलसन्निधौ। प्रीतोस्मि हयमेधेन भक्तया च द्विजसत्तमा"—'यज्ञ की समाप्ति पर परम प्रसन्न उमापति ने ब्राह्मणो मे कहा—अश्वमेध

‡ उत्तरकाड, सर्ग १६, श्लोक ८ से ४९ तक। † उत्तरकाड, सर्ग २२, श्लोक ४१।
$ उत्तरकाड, सर्ग ६१ और ६२।

यज्ञ और तुम्हारी भक्ति से मै प्रसन्न हूँ।' इसके बाद शिव ने इल को निरन्तर स्थायी रहने वाला पुरुषत्व प्रदान किया ‡।

इस तरह लक्ष्मण से चर्चा करने के बाद राम ने वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, तथा कश्यप इत्यादि ऋषियो से अश्वमेध यज्ञ कराने की प्रार्थना की। इस निश्चय की सूचना दे कर वाल्मीकि ने लिखा है—"तेऽपि रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम्। अश्वमेध द्विजा सर्वे पूजयन्तिस्म सर्वश"†—'राम से एसा सुन कर ब्राह्मणो ने वृषध्वज शिव को नमस्कार किया और अश्वमेध की अर्चना की।'

इस तरह राम को शिवोपासक की तरह वाल्मीकि ने भी प्रस्तुत किया है और समन्वय का यही वातावरण गोस्वामी जी के साहित्य मे अधिक महत्त्वपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया गया है। अपने इस वैष्णव काव्य मे राम के जीवन के आरम्भ से अत तक वाल्मीकि ने शैव वातावरण की भी रक्षा की है। यहाँ तक कि सीता के पाताल-प्रवेश और शपथ के समय भी सब देवताओं के साथ रुद्र भी आये हुए है $। इस तरह भक्ति-साधना के क्षेत्र मे अद्वैत बुद्धि को स्थान दे कर मानव चेतना को अभेद-दर्शन के द्वारा वाल्मीकि ने भी परमोच्च उदारता का आदर्श दिया था और इसी आदर्श का एक विस्तृत और अधिक स्पष्ट रूप गोस्वामी जी ने अपने साहित्य के द्वारा प्रस्तुत किया है।

वाल्मीकि के पर्वत के समान व्यक्तित्व से जो कथानदी निकल कर रामसागर तक प्रवाहित हुई, उसका स्रोत कभी सूखा नही। वैसे तो रामायण का स्रोत वाल्मीकि से भी प्राचीन है। लौकिक सस्कृत भाषा के इस कवि के पहले भी वेद ओर उपनिषद् के ऋषियो ने भी राम की चर्चा की है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व महाभारत के टीकाकार नीलकठ चतुर्धर ने वेदों के भीतर मिलने वाले राम-सम्बन्धी मन्त्रों को सगृहीत करके मत्र रामायण' की रचना की। पर वेदों के बाद वाल्मीकि ने तो रामायण की पवित्र, धवल और अजवती गगा ही बहा दी। महाभारत और अन्य पुराणों मे भी राम के जीवन की चर्चा रामायण के क्रम से ही दिखाई पड़ती है। जैन और बौद्ध साहित्यों मे भी रामचर्चा है। बौद्ध साहित्य मे तो दशरथ जातक एक स्वतत्र जातक ही है जिसमे रामचर्चा एक दृष्टिकोण से की गयी है। इनके अतिरिक्त कालिदास, भवभूति, भर्तृमेठ, मुरारि इत्यादि सस्कृत कवियों की परम्परा में राम साहित्य का बडा सुन्दर प्रवाह एक स्वस्थ गति से आगे बढता चला आया है। यद्यपि तमिल देश के बारह आलवार सतो का समय भी बहुत प्राचीन माना जाता है, तब भी यह समय सातवी से ले कर दसवी शताब्दी से अधिक अर्वाचीन तो कदापि नही है। डा० जे० एन्० फार्कुहर, एम्०ए०, डी० लिट्० भी यही समय आलवारो का मानते है *।

इन आलवारों मे शठकोप या नम्मालवार पाँचवें आलवार संत थे। इनके ग्रन्थ तिरुवाय मोलि के संस्कृत अनुवाद सहस्रगीति मे रामसम्बन्धी ये पक्तियाँ है—"दुःखमात्रो-

---

‡ उत्तरकांड, सर्ग ८९ और ९०। † उत्तरकाड, सर्ग ९० और ९१। $ उत्तरकाड, सर्ग ९७, श्लोक ७। * आउट लाइन्स-ऑफ़ द रिलीजस लिटरेचर ऑफ इडिया, पृष्ठ १८८।

त्पादक सदसत् कर्मभूत तद्रहित उच्चै स्थितमेक ज्योतिः लोकान् सप्त निगीर्योदीर्णवन्त मोहहेत्वापकर्षणकर्तृयमभटाना क्रूरविषमच्युत दशरथस्य सुत तं बिना अन्यशरणवान् नास्मि"‡—'सत् और असत् कर्मो का समुदाय केवल दुख ही उत्पन्न करता है। उससे रहित और उसे अतिक्रान्त करके स्थित रहने वाली एक ज्योति है, जो सात लोको को अतिक्रान्त करके उनके ऊपर उठ रही है। वह ज्योति अज्ञान मे बँधे हुए जीवों को घसीट कर ले जाने वाले यम-दूतों के लिए क्रूर विष के समान है। वह ज्योति अच्युत है। उसकी अनत शक्ति कभी कम नहीं होती। वही ज्योति दशरथ के पुत्र राम है। उन्हे छोड मै किसी दूसरे की शरण मे नही जाता।' इन पक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शठकोप आलवार रामभक्त ही थे। कहा जाता है कि तमिल भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबन् की रामायण को भगवान् रगनाथ ने तब तक स्वीकार नही किया जब तक आरम्भ मे उन्होंने शठकोप की स्तुति नही की†।

केरल देश के राजा भक्त कुलशेखर सातवे प्रसिद्ध आलवार सत हो गये है। एक बार ये रामायण की कथा सुन रहे थे। खरदूषण के साथ रामयुद्ध के वर्णन मे जब उन्होंने वाल्मीकि का यह श्लोक सुना—"चतुर्दशसहस्राणि राक्षसा भीमकर्मणा एकश्च रामो धर्मात्मा कथ युद्ध करिष्यति"$—'भयानक कर्म करने वाले चौदह सहस्र राक्षसो से धर्मात्मा राम अकेले युद्ध कैसे करेगे', तब अपनी तन्मयता मे उन्होने अपने सेनापति को राम की तरफ से राक्षसो से युद्ध करने के लिए तुरन्त तैयार हो जाने को कहा, पर जब कथावाचक ने यह सुनाया कि भगवान् राम ने सब राक्षसों का अत कर दिया, तब उन्हे शान्ति मिली*। अतः आलवार सतों मे भी राम-भक्ति की परम्परा चल रही थी और उसका आधार-साहित्य वाल्मीकि-रामायण ही था।

शठकोप की शिष्य-परम्परा मे रगनाथ मुनि (ई० ८२४–९२४ ई०) का 'न्यायतत्त्व' ग्रन्थ विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का प्रथम मान्य ग्रन्थ है। रगनाथ मुनि त्रिचनापल्ली के श्रीरगम् की गद्दी के प्रथम आचार्य हुए§। रगनाथ मुनि के बाद पुडरीकाक्ष और राममिश्र श्रीरगम् की गद्दी पर आये। राममिश्र नाम ही उन परिवारों पर रामभक्ति का प्रभाव सूचित करता है। आलबदार यामुनाचार्य को राजसी वैभव की लिप्तता से हटा कर भक्ति की ओर लाने वाले राममिश्र ही है। राममिश्र के बाद रगनाथ मुनि के पौत्र यही यामुनाचार्य श्रीरगम् की गद्दी पर आये। ये भी विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के साहित्यनिर्माता, प्रसिद्ध आचार्य है।

वैष्णव मत के सर्वश्रेष्ठ आचार्य रामानुज (ई० १०७४–११३७) इन्ही यामुनाचार्य जी के पौत्र श्री शैल जी के भानजे थे। रामानुज ने मुख्यत नारायण की भक्ति का

---

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २६१–२६२। † डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १९०। $ अरण्यकाड, सर्ग २४, श्लोक २३। * डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १९२। § डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २००।

प्रचार किया, पर उन्होंने अपने गद्यात्मक स्तोत्रों में काकुत्स्थ नाम से राम की स्तुति की है। आचार्य रामानुज का नाम भी राम के साथ होने के कारण रामभक्ति का संकेत देता है। यदि इनके द्वारा लिखे हुए राम के स्तोत्र न भी होते तब भी केवल उनका नाम ही रामभक्ति का संकेत देने को पर्याप्त होता। व्यंकटाद्रि के तिरुपति का राममन्दिर रामानुज के व्यंकटाद्रि मठ का है। व्यंकटाद्रि की श्रीवैष्णव गद्दी दूसरी प्रधान गद्दी है। यह भी श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में रामोपासना के महत्त्व को पर्याप्त प्रदर्शित करती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस वैष्णव तत्त्व का उपदेश श्री (लक्ष्मी) को दिया, वही 'श्री' के द्वारा प्रचारित हो कर श्रीवैष्णव सम्प्रदाय हुआ।

आचार्य रामानुज के बाद चौदहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध श्री वैष्णव आचार्य वेदान्त देशिक हुए। इस शताब्दी के मध्य के बाद वे श्रीरंगम् की गद्दी पर आये। उपासना के पथ पर गुरु के महत्त्व को समझाने के लिए उन्होंने रामायण की कथा का उपयोग किया है। उनके अनुसार जानकी जीव है, हनुमान् गुरु है, लंका शरीर है जिसमें जानकीरूपी जीव बन्द रहता है। लंका के राक्षस, दर्प से प्रचंड दस इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ और मन हैं, जो लंकारूपी शरीर में रहते हैं और जानकीरूपी जीव को घेरे रहते हैं। लंका के चारों तरफ का समुद्र देह को घेरे रहने वाला भवसिन्धु है। राम परमात्मा हैं। हनुमान्-रूपी गुरु जब जानकी-रूपी जीव को परमात्मा राम का संदेश देता है तब जीव के मन का भार हल्का हो जाता है। उसकी भवपीडा कम हो जाती है और गुरु की बतायी हुई साधना के द्वारा अपने हृदय पर भगवान् की मुद्रा लगा कर उसे वह प्राप्त कर लेता है‡।

आचार्य वेदान्त देशिक के बाद रामभक्ति के प्रसिद्ध प्रचारक आचार्य रामानन्द का समय आता है, परन्तु डा० बलदेव उपाध्याय, रामभक्ति के प्रचार के विकास में, रामानन्द जी के गुरु स्वामी राघवानन्द जी को एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मानते हैं। उनके अनुसार 'मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन के इतिहास का परिचय स्वामी राघवानन्द जी के परिचय के बिना कथमपि पूरा नहीं हो सकता।' उपाध्याय जी के अनुसार 'ये रामानुज सम्प्रदाय के महात्मा तथा योग-विद्या के पारंगत पंडित माने जाते थे।' एक किंवदन्ती के अनुसार राघवानन्द जी ने, अपनी योग-विद्या के बल से, स्वामी रामानन्द जी को मृत्यु-योग से बचाया था†।

स्वामी राघवानन्द जी के विषय में अपना मत देते हुए नाभादास जी ने कहा है—"देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानंद। तस्य राघवानंद भये भक्तन को मानद। पत्रावलंब करी बस कासी स्थाई। चारी बरन आश्रम सब ही को भक्ति दृढाई। तिनके रामानंद प्रगट विश्वमंगल जिन वपु धर्‍यौ। रामानुज पद्धति प्रताप अवनी अमृत ह्वै अनुसर्‍यौ $।"

अनंत स्वामी की 'हरिभक्ति सिन्धुवेला' में भी राघवानन्द जी के लिए एक बहुत सुन्दर वन्दना-श्लोक मिलता है—"वन्दे श्री राघवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम्। याम्यादुत्त-

‡ डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २१९। † डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २४३। $ भक्तमाल, छप्पय ३०।

रमागत्य राममत्रप्रचारकम् ‡ ।" इससे यह निश्चित हो जाता है कि राघवानन्द जी रामानुज के कुल मे उत्पन्न हुए थे और दक्षिण से आ कर उन्होंने उत्तर मे राममन्त्र का प्रचार किया था। राघवानन्द जी का नाम भी उनकी राघवभक्ति की गवाही देता है, क्योंकि आचार्यों के नाम प्रायः उनके सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुरूप ही हुआ करते थे। राघवानन्द जी काशी मे पचगगा घाट पर रहते थे। रामानन्द जी को इन्होंने अपना मत्रशिष्य बनाया था। उनके नाम से एक गढी का ध्वसावशेष पचगगा घाट पर आज भी अवशिष्ट है। नागरी प्रचारिणी के हस्तलेख-सग्रह मे राघवानन्द जी का 'सिद्धान्त तन्मात्रा' ग्रन्थ सगृहीत है। यह छोटा-सा ग्रन्थ योग और भक्ति का समन्वय करता है। राघवानन्द जी दत्तात्रेय के उपासक, 'अवधूत' महात्मा बताये गये है †। इस तरह रामभक्ति का यह अरुणोदय रामानन्द के उद्दीप्त सूर्य को उदित करके स्वय लुप्त हो गया। इस विषय की जानकारी बहुत कम है।

डा० मैक् निकाल रामानन्द जी को आचार्य रामानुज की पाँचवी पीढी में मानते पर डा० बलदेव उपाध्याय ने स्वामी रामानन्द के सस्कृत गद्य-पद्यात्मक ग्रन्थ 'रामार्चन द्धति' से रामानन्द जी के द्वारा दी गयी, उनकी निम्नाकित गुरु-परम्परा उद्धृत की है :

(१) रामचन्द्र (२) सीता (३) विष्वक्सेन (४) शठकोप (५) श्री नाथमुनि (६) पुडरीकाक्ष (७) राममिश्र (८) यामुनाचार्य (९) महापूर्णाचार्य (१०) श्री रामानुज (११) कूरेश (१२) माधवाचार्य (१३) बोपदेवाचार्य। (१४) देवाधिप (१५) पुरुषोत्तम (१६) गगाधर (१७) रामेश्वर (१८) द्वारानद (१९) देवानद (२०) श्रीयानद (२१) हरियानद (२२) राघवानद (२३) रामानद *।

अतः स्वय रामानन्द जी के द्वारा दी गयी इस विश्वस्त गुरु-परम्परा के अनुसार आचार्य रामानन्द, रामानुज की पाँचवी पीढ़ी में न हो कर चौदहवी पीढी मे आते है।

इसी तरह डा० मैक् निकाल, रामानन्द जी का समय ईसा की चौदहवी शताब्दी का अत तथा पन्द्रहवी शताब्दी का आरम्भ मानते है। पर डा० बलदेव उपाध्याय इन्हें रामानुज की चौदहवी पीढी मे सिद्ध करके इनका अतिम समय पन्द्रहवी शताब्दी के अत या सोलहवी शताब्दी के आरम्भ मे मानते है। आचार्य रामानुज का स्वर्गवास ११३९ ई. मे हुआ था। उनके बाद की एक पीढी के लिए यदि २५ वर्ष का भी समय दिया जाए, तो चौदहवी पीढ़ी मे आने वाले स्वामी रामानन्द का समय पन्द्रहवीं शताब्दी के अत में तो सरलता से स्थिर किया जा सकता है §। डा० फार्कुहर का भी प्रायः यही मत है। वे कहते हैं—"देयर सीम्स टु बी सफ़ीशिएण्ट एविडेंस टु शो दैट् रामानन्द फ्लरिश्ड इन दि सेकड एण्ड थर्ड क्वार्टर्स आफ दि फिफ्टीन्थ सेंचुरी ×।" रामानन्द जी भी पचगगा घाट पर ही रहते थे।

‡ हरिभक्ति सिन्धुवेला, मन्त्र-प्रकरण, तरंग ४। † डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २४५ से २४७ तक। $ इडियन थीइज्म्, पृष्ठ ११५। * भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २४८। § वही, पृष्ठ २५३। × आउटलाइन्स ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इंडिया, पृ० २११–२९९।

डा० मैक् निकाल्ल ने लिखा है कि जनश्रुति के अनुसार रामानुज सम्प्रदाय की जातिभेद की मान्यता और कट्टरता से ऊब कर रामानन्द जी दक्षिण से काशी चले आये‡। पर डा० बल्देव उपाध्याय जी के अनुसार इनका जन्म प्रयाग के कान्यकुब्ज परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम पुण्य सदन तथा माता का नाम सुशीला देवी था†। डा० फार्कुहर भी रामानन्द जी को दक्षिण से ही आया हुआ बताते है$। सम्भव है, राघवानन्द जी से दीक्षा लेने के बाद स्वामी रामानन्द ने अपना कुछ समय दक्षिण मे बिताया हो और वहा से भक्ति का एक पुष्ट वायुमडल अपने साथ ला कर उन्होने उत्तर मे व्यापक और अधिक उदार ढग से उसका प्रचार किया हो।

स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का बडा प्रबल प्रचार किया। उनके जीवन का सिद्धान्त था—"जाति पाँति पूछौ नहि कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।" स्वामी जी की शिष्य-परम्परा में आने वाले तुलसीदास जी की शबरी ने भी जब भगवान् राम से 'अधम जाति मै जड मति भारी'* कहा तब उन्होने भी यही कहा—"मानउं एक भगति कर नाता"×। गोस्वामी जी के राम की दृष्टि मे 'जाति पाति कुल धर्म बडाई'+ इत्यादि का कोई महत्त्व नही है, यदि व्यक्ति मे भक्ति का पावन प्रकाश आलोकित न हुआ हो।

रामानन्द जी के बारह शिष्यों मे से कबीर मुसलमान थे, दादू (ई० १५४४–१६०४) अहमदाबाद के ब्राह्मण थे, पर अपना अधिक समय इन्होने राजपूताने मे बिताया, रैदास चमार थे, पीपा (ई० १४२५) राजपूताने के राजपूत राजा थे, धन्ना सम्भवतः जाट थे, सेना रीवा-नरेश के नाई थे और पद्मावती स्त्री थी।

नाभादास जी के अनुसार रामानन्द जी के बारह शिष्यो के नाम ये है —

(१) अनतानन्द (२) सुखानन्द (३) सुरसुरानन्द (४) नरहर्यानन्द (५) भावानन्द (६) पीपा (७) कबीर (८) सेना (९) धन्ना (१०) रैदास (११) पद्मावती (१२) सुरसुरी (सुरसुरानन्द की पत्नी)।

रूपकला जी के 'भक्ति सुधाबिन्दु' के अनुसार रामानन्द जी के साढ़े बारह शिष्य है :—

(१) कबीर (२) रैदास (३) सेना (४) पीपा (५) धन्ना (६) पद्मावती (स्त्री होने के कारण ये आधी है), रूपकला जी ने इन लोगो को जितेन्द्रिय कहा है।

(१) अनतानन्द (२) सुरसुरानन्द (३) नरहर्यानन्द (४) योगानन्द (५) सुखानन्द (६) भावानन्द और (७) गालवानन्द, इन सात को रूपकला जी ने रामानन्द जी के नन्दन शिष्य कहा है। इस सूची मे सुरसुरा के स्थान पर योगानन्द आ गये है।

---

‡ इडियन थीइज़्म, पृष्ठ ११५। † भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २५४। $ आउटलाइन्स ऑफ़ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ इंडिया, पृष्ठ ३२४। * रामचरितमानस, अरण्यकाड दोहा ३४ के बाद। § रामचरितमानस। × वही। + वही।

स्वामी जी के शिष्य कबीर पर तो इस्लामी प्रभाव स्वभावतः आया पर इन्होंने अपनी भक्ति-साधना के प्रचार मे इसलामी प्रभाव को अलग रखा । गुरु ग्रन्थसाहब मे नामदेव के साथ इनके पद सगृहीत है । सिक्खों के पाँचवे गुरु अर्जुन (ई० १५६३–१६०६) ने १६०४ में पाँच गुरुओं की वाणियों के साथ इनके, नामदेव के तथा कबीर के भी, पदो को आदिग्रन्थ मे सम्मिलित कर लिया ‡ । डा० फार्कुहर ने तेरहवी शताब्दी के आरम्भ मे रहने वाले भक्त नामदेव दर्जी के विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—"ही इज रिगार्डेड ऐज वन् आफ दि फ्यू भक्ताज, हू कमिंग जस्ट बिफोर रामानन्द प्रिपेयर्ड दि वे फार हिम्"—ये कुछ ऐसे थोडे से भक्तों में माने जाते है, जो रामानन्द के ठीक पहले आ कर उनके लिए मार्ग निर्मित कर गये । नामदेव इत्यादि की परम्परा मे उन्ही की प्रचार-शैली का अनुसरण करके रामानन्द जी ने भी भक्ति का प्रचार किया । इसी धारा के भीतर रह कर गोस्वामी जी भी इस्लामी प्रभाव से अलग रहे ।

रामानन्द जी का सम्प्रदाय वैरागी सम्प्रदाय कहलाता है । रामदेव और त्रिलोचन रामानन्द के पूर्व के महाराष्ट्र वैष्णव सत है । उत्तर भारत मे सदन और बेनी दो वैष्णव मत रामानन्द जी के पूर्व हो चुके थे । विष्णु के अवतारो में से केवल राम और उनकी शक्ति सीता की उपासना स्वामी रामानन्द जी ने की और इसी उपासना का उन्होंने प्रचार भी किया ।

रामानुज सम्प्रदाय के श्रीवैष्णव मुख्यत. विष्णु और उनके अवतार श्री कृष्ण की भी उपासना करते है । पर राम और नृसिह की उपासना भी इस सम्प्रदाय में होती है । श्रीवैष्णवों का मन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' है । इस सम्प्रदाय में शिव पूजा सर्वथा निषिद्ध है । यह सम्प्रदाय राधा को भी नही स्वीकार करता । सम्भवतः भागवत में राधा का अस्पष्ट उल्लेख न होने के कारण ही ऐसा हुआ है ।

रामानुज के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के भीतर से उभर कर भी स्वामी रामानन्द जी ने अपने सम्प्रदाय के भीतर उदारता को स्थान दिया । उन्होने 'वैष्णव' शब्द को छोड कर अपने सम्प्रदाय का नाम 'श्री' के आधार पर केवल श्रीसम्प्रदाय रखा । ऐसा प्रतीत होता है कि केवल विष्णु के नाम के साथ सम्प्रदाय को जोड कर वे उस पर एकागिता का रग नही आने देना चाहते थे । इसी उदार दृष्टिकोण को सुन्दर मान कर सौन्दर्य की देवी विष्णु-पत्नी 'श्री' को उन्होंने अपने सम्प्रदाय का सकेत बना लिया । इस परिवर्तन से विष्णु की उदार और सौन्दर्यमयी जगद्व्यापिनी शक्ति की उपासना का सकेत सुरक्षित रह गया और श्रीवैष्णवों की एकागिता का वातावरण भी नही रहने पाया । रामानन्द जी का यह सम्प्रदाय सब पुराणों की उपासना-पद्धति के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते हुए अदृश्य, परमात्मा, एकेश्वर राम पर विश्वास करता है, और इन्ही राम की उपासना करता है ।

रामानन्द सम्प्रदाय का मन्त्र 'ॐ रामाय नमः' है । इस सम्प्रदाय का तिलक भी श्रीवैष्णव सम्प्रदाय से कुछ भिन्न है । श्रीवैष्णवों की तरह रामानन्द त्रिदडी सन्यासी

---

‡ डा० मैक् निकाल,इडियन थीइज़्म, पृष्ठ १५२ ।

नहीं थे। डा० फार्कुहर का अनुमान है कि तमिल देश के रामभक्त श्रीवैष्णवों की एक शाखा के रूप में थे और रामानन्द उन्हीं में से थे। यदि रामानन्द का उत्तरभारतीय होना निश्चित है, तब भी उनके गुरु राघवानन्द जी तो दक्षिण से अवश्य ही आये थे। डा० फार्कुहर का यह भी अनुमान है कि 'अध्यात्म रामायण' और 'अगस्त्य सुतीक्ष्ण सवाद' ग्रन्थों को रामानन्द जी ही दक्षिण से उत्तरभारत ले आये होंगे। गोस्वामी जी के 'रामचरित मानस' पर 'अध्यात्म रामायण' का पर्याप्त प्रभाव है। रामानन्दियों के मुख्य ग्रन्थों मे से 'अध्यात्म रामायण' भी एक है। डा० सर रामकृष्ण भडारकर के एक पत्र का हवाला देते हुए डा० फार्कुहर ने सूचित किया है कि उस पत्र के अनुसार 'अगस्त्य सुतीक्ष्ण सवाद' रामानन्द जी की जीवनी के साथ छपा हुआ है‡। डा० फार्कुहर का यह भी अनुमान है कि रामानन्द आचार्य रामानुज के श्रीभाष्य का बराबर अध्ययन किया करते थे। रामानन्दी आज भी इसी का उपयोग करते हैं और इस सम्प्रदाय मे बादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों का कोई दूसरा भाष्य लिखना आवश्यक नहीं समझा गया।

रामानन्द सम्प्रदाय मे श्रम के आधार पर जातीय सगठन का विरोध नहीं किया जाता, पर यह सम्प्रदाय ऊँच-नीच की भावना से दूर रहना चाहता है। भक्ति के आधार पर सब भक्तों को इस सम्प्रदाय ने एक जाति का मान लिया है।

रामानन्दी सम्प्रदाय में सस्कृत के स्थान पर जनभाषा को, भक्ति-साधना के माध्यम की तरह स्थान मिल गया। यह युग की आवश्यकता थी; इसलिए उस युग के सब आचार्य और भक्तों ने जनवाणी को माध्यम बनाया। यही प्रक्रिया प्रत्येक युग मे विशिष्टों की वाणी और जनवाणी का सम्बन्ध निश्चित करती चली आती है। स्वामी रामानन्द ने भक्ति प्रचार के कार्य में सस्कृत का प्रयोग प्राय: बन्द कर दिया।

रामानन्द की साधना के भीतर अद्वैत और विशिष्टाद्वैत दोनों तत्त्व दृष्टिगोचर होते है। रामानन्द की अद्वैत भावना अध्यात्म रामायण के उनके अध्ययन का परिणाम है। उनकी विशिष्टाद्वैती प्रवृत्ति, आचार्य रामानुज के श्रीभाष्य पर आजीवन मनन के कारण उत्पन्न हुई होगी।

आचार्य रामानन्द के विषय मे डा० फार्कुहर ने लिखा है—"लाइक दि मराठा भक्ताज रामानन्द मे हैव क्रिटिसाइज्ड आइडल्स सिवियरली बट देयर इज नाट दि स्लाइटेस्ट साइन दैट हि ऑर हिज इम्मीडियेट फॉलोअर्स गेव अप हिन्दू वर्शिप"—'मराठा भक्तों के समान ही रामानन्द ने मूर्तियों की चाहे कड़ी आलोचना की हो, पर यह कही भी नहीं दिखाई पडता कि उन्होंने या उनके निकटतम अनुयायियों ने हिन्दू उपासना की इस पद्धति को छोड़ दिया हो†।

रामानन्द तथा उनके पहले या बाद के भी सतों ने जहाँ कहीं भी मूर्ति की उपासना की निन्दा की है वहीं पाश्चात्य और उनके अनुयायी एतद्देशीय आलोचक ऐसी समस्या मे

‡ आउटलाइन्स ऑफ द रिलीजस लिटरेचर ऑफ इंडिया, पृष्ठ ३२४। † आउटलाइन्स ऑफ़ दि रिलीजस लिटरेचर ऑफ़ इंडिया, पृष्ठ ३२६।

उलझ गये है कि उनसे उसका हल खोजते ही नही बना है। एक तरफ मर्तिपूजा की निन्दा करने वाला सत जब दूसरी तरफ मूर्तिपूजा करते हुए दिखाई पडता है, तब ऐसे आलोचकों की बुद्धि कुठित हो जाती है; क्योंकि उन्हे इन सतो की वाणी ओर क्रिया मे सामजस्य नही दिखाई पडता। पर प्रश्न बिलकुल सीधा है। कोई भी संत ऐसी किसी भी उपासना-पद्धति की निन्दा नही करता जो प्रेम पर आधारित हो। जब कोई उपासना-पद्धति किसी युग मे प्रेम के पथ से अलग हट कर निरर्थक और निर्जीव बन जाती है, तभी सत उसकी निन्दा करके उसका प्रेमात्मक रहस्य उपासको को समझा देते है।

मूर्तिपूजा की कडी आलोचना के भीतर भी इन सतों की यही अन्तर्दृष्टि निहित है। अनत की उपासना जब केवल मूर्ति की एक क्षुद्र सीमा के भीतर ही होने लगती है, तब सत इस बात को नही सह सकता। यदि अनत की अनतता के रहस्य को समझ कर मूर्तिपूजा की जाए तो मूर्ति केवल प्रतीकमात्र रहती है। उसके माध्यम से उपासना परम विराट् की ही होती रहती है। ऐसी स्थिति ही सतों को अभीष्ट होती है, और जब कभी इस दृष्टिकोण का लोप होने लगता है तब वे सोये हुए उपासकों को कशाघात से जगा देते है। यही उनकी कडी आलोचना का रहस्य है। इस तरह उस उपासना-शैली को वे पुन: सार्थक और सजीव बना देते है।

इसके अतिरिक्त भी आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी और अर्थार्थी उपासकों मे से अंतिम का सत लोग समूल उच्छेद कर देना चाहते है। पीडित अपनी पीडा दूर करने के लिए उपासना करे तो बात कुछ समझ मे आ सकती है और इस पीडित उपासक के प्रति सतों की सहानुभूति भी स्वभावतः हो जाती है और भवसागर की पीडा एक दिन आध्यात्मिक विरह की पीडा को स्थान दे सकती है, यह सतों का मत है। अपनी उपासना के द्वारा परमात्मा की अनंत शक्ति के सहारे जब सासारिक जीव व्याधियों की पीडा मे मुक्त हो जाता है, तब निरभिमान हो कर दीनता की व्याकुलता की पवित्र जागृति के भीतर उस परम कृपासागर के विरह मे वह कातर हो जाता है। जिज्ञासु और ज्ञानी की उपासना तो सब दृष्टियो से वैध है, पर अर्थार्थी के घोर स्वार्थभाव को सत नही सह सकते। वे तो इस क्षुद्र स्वार्थ को परमार्थ के रूप मे परिणत करके नर के विकास को नारायण के पास तक पहुँचा देना चाहते है। इसीलिए वे अनत के प्रेम की पीडा सीमित जीव के भीतर जागृत कर देने की चेष्टा मे निरन्तर सलग्न रहते है। जब वे मूर्तिपूजा बन्द करने हुए प्रतीत होते है तब उनके भीतर यही क्षोभ काम करता रहता है। ये अर्थपरायण और घोर स्वार्थपरायण भाव से मूर्तिपूजा का होना नही देखना चाहते। प्रेम और पीडा की उपासना ही उनकी दृष्टि मे विकासोन्मुखी उपासना है और जिसके भीतर प्रेम और पीडा है, उसकी मूर्तिपूजा की साध की प्रवृत्ति की सत स्वय उपासना करता है। ऐसे उपासक को वह वन्दनीय मानता है और इसी अनत प्रेम और पीडा को ले कर वह स्वय भी मूर्ति के माध्यम से अनंत की उपासना करता है। सतों के द्वारा की गयी मूर्तिपूजा, और मूर्तिपूजा की उनके द्वारा की गयी कडी आलोचना का यही रहस्य है।

पूर्व परम्पराएँ

रामानन्दी वैरागी 'अवधूत' भी कहाते है। दत्तात्रेय की उपासना भी इस सम्प्रदाय मे प्रचलित हो जाने से योग और ज्ञान की सम्मिलित अभिव्यक्ति के लिए दत्तात्रेय की यह उपाधि रामानन्दी वैरागियों को भी दे दी गयी होगी। योग और ज्ञान के प्रकाश मे जिसने सासारिक वासनाओं को अतिक्रान्त कर लिया हो, उसे अवधूत कहते है। वैसे यह उपाधि किसी भी सम्प्रदाय के इस तरह के अनासक्त मन को दी जा सकती है। इसके लिए केवल दत्तात्रेय सम्प्रदाय का सम्बन्ध ही आवश्यक नही है।

बनारस तथा अयोध्या इत्यादि स्थानों मे रामानन्दियों के मठ है। शकराचार्य के दशनामी सन्यासियों के बराबर ही अपने को रामानन्दी वैरागी मानने वाले साधुओं की सख्या है। वैसे तो जहा-जहा गोस्वामी जी के रामचरित मानस का प्रभाव है, वहाँ-वहाँ हमे रामानन्द का ही प्रभाव मानना होगा, क्योंकि जनभाषा के इस युग के, तुलसी के पहले के, राम-भक्ति के प्रमुख प्रचारक वे ही है। उनका प्रभाव गोस्वामी जी पर निश्चित ही दिखाई पडता है।

रामानन्द जी मुख्यत: प्रचारक मत थे। कोई निश्चित सम्प्रदाय बनाने की ओर उनका झुकाव न था। पर ऐसे मतों के बाद उनके नाम का सुदृढ सहारा पा कर मनुष्यों के समूह एक विचारधारा को ले कर सगठित हो जाते है, और उसकी एक परम्परा स्थिर हो जाने से सम्प्रदाय बन जाता है।

रामानन्दी सतों मे से धन्ना और पीपा के भी पद मिलते है. तथा कुछ निश्चित सम्प्रदाय भी रामानन्द को अपना आधार मान कर बन गये है। इनमे से रामानन्द जी के शिष्य रैदास (ई० १४७०) के नाम पर रैदासी सम्प्रदाय है। सेना (ई० १४७०) के नाम पर सेनापथी सम्प्रदाय रेवा मे है तथा मलूकदास (ई० १६३०) के नाम पर मलूकदासी सम्प्रदाय कड़ा मानिकपुर मे है।

नरहरिदास जी रामानन्द जी की छठी पीढी मे माने जाते है। उनके शिष्य गोस्वामी तुलसीदास जी है, जिन्होंने अपनी भक्ति-साधना के भीतर अपनी पूर्व-परम्पराओं को राम के जीवन-स्रोत के ऐसे स्वाभाविक और पवित्र प्रवाह मे प्रवाहित कर लिया है कि यह धारा कभी सूख नही सकती। जनभाषा के माध्यम से गोस्वामी जी ने रामभक्ति के बीज धरती पर बो दिये है और पृथ्वी उन बीजों की रक्षा स्वत. करती रहेगी।

रामानुज सम्प्रदाय में नारायण की उपासना मे केवल देवत्व का समावेश होने के कारण लोक-हृदय मे उसका स्वाभाविक स्थान बन कर अपनी शाश्वतिक सत्ता नही प्राप्त कर सकता था। प्रेममयी कृष्णोपासना भी अधिक रहस्यात्मकता के कारण आदर्शवादी मानव मन के लिए दुरूह और साधारण बुद्धि वालों के लिए कई बार असफल पथ-निर्देशिका सिद्ध हुई। पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन, पूर्ण जीवन परमोच्च भूमि पर रहते हुए भी, हर तरह के मानव-मन का सफल मार्गनिर्देशन कर सकता था। इस राम को घर-घर में, द्वार-द्वार पर तथा हृदय-हृदय में पहुँचा देने के लिए अपने जीवन के प्रत्येक क्षण की बलि दे कर तुलसी अमर हो गये और साथ ही साथ उन्होंने रामानुज और रामानन्द की

पवित्र भावनाओं को अपनी समग्र शक्ति लगा कर अमर बना दिया । उन्होंने अपनी रामायण के भीतर, अध्यात्म रामायण, योगवासिष्ठ, अवधूत रामायण, भुशुण्डि रामायण, अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-सवाद, श्रीभाष्य, गीता, कुमारसभव तथा हनुमन्नाटक इत्यादि भक्ति, योग, दार्शनिक चिन्तन और साहित्य के सब स्रोतों को एक मे मिला कर मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन की गगा को प्रवाहित किया है और इन सब पवित्र स्रोतो को जनता के हृदय मे, उनके न जानते हुए भी, जागृत कर दिया है । साधारण जनता को इन स्रोतों के नाम भी नही मालूम है, पर गोस्वामी जी की अखड साधना ने उन सबके पवित्र प्रभावो का वरदान तो मानव के हृदय को अवश्य ही दे दिया है । ऐसा लगता है कि भारत के भीतर विराट् का जो पवित्र चिन्तनमय और पवित्र अनुभूतिमय तेज अतीत मे अन्य भाषाओ के माध्यम से व्यक्त हुआ था, उसी ने उत्तर भारत की तुलसी-युग की जन-भाषाओं के माध्यम से व्यक्त होने के लिए गोस्वामी जी को अपना वरेण्य दूत बना लिया ।

अद्वैत और विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तो के अंतर को समझने के लिए शकर, रामानुज तथा रामानन्द के सिद्धान्तो मे जो भेद है उसे समझ लेना आवश्यक है । रामानन्द जी के 'वैष्णवमताब्जभास्कर' के अध्ययन से यह बात स्पष्ट लक्षित होती है कि सिद्धान्त की दृष्टि से स्वामी रामानन्द विशिष्टाद्वैती ही है । आचार्य रामानुज और उनकी उपासना-पद्धति मे भेद केवल मन्त्र का ही है । रामानुज जी के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र द्वादशाक्षर मन्त्र कहा जाता है । इस मन्त्र के स्थान पर रामानन्द जी ने श्रीसम्प्रदाय के लिए 'ॐ रा रामायनम.' मन्त्र निश्चित कर दिया और इस मन्त्र को 'राम षडक्षर' मन्त्र कहते है । जैसा पहले बताया जा चुका है, श्रीवैष्णवो मे रामोपासना बडे प्राचीन काल से चली आ रही थी, पर उसका प्रचार इतना व्यापक नही था । स्वामी रामानन्द जी ने अपने युग मे बडे विस्तृत क्षेत्र पर उसका प्रचार किया ।

स्वामी रामानन्द जी ने अपने चिन्तन के द्वारा तीन पदार्थो का विवेचन किया है । वे तीन तत्त्व है—(१) चित् (२) अचित् और (३) ईश्वर । विशिष्टाद्वैत चिन्तनधारा के अनुसार ही रामानन्द जी ने भी चित् और अचित् को ईश्वर का ही विशेषण माना है, विशेषण अपने विशेष्य से अलग नही रहता । लाल गाय का 'लाल' विशेषण उसके साथ ही लगा रहता है । उससे दूर नही रह सकता । मीठे फल का 'मीठा' विशेषण उसके साथ ही बना रहता है । यह धर्म उससे अलग नही रह सकता । इसी नियम के अनुसार रामानन्द जी ईश्वर के विशेषण चित् और अचित् को, चेतन आत्मा और जड प्रकृति को ईश्वर के भीतर उससे अभिन्न मानते है । उनके अनुसार ईश्वर का चैतन्य विशेषण वाला तत्त्व और जड विशेषण वाला तत्त्व एक ही है । रामानन्द जी के अनुसार ईश्वर जगत् का कारण भी है और कार्यरूप जगत् भी वही है । दोनो अवस्थाओ मे, कारण-अवस्था और कार्य-अवस्था की दोनों स्थितियो मे वह पूर्ण ही रहता है । रामानन्द जी के अनुसार यही चित्, अचित् और ईश्वर, तीन नित्य तत्त्व है ।

स्वामी रामानन्द जी ने अपने 'वैष्णवमताब्जभास्कर' मे रामोपासना के तीन मन्त्रो को रहस्यत्रय का नाम दे कर योजित किया है ।

पहले मन्त्र का नाम श्री रामषडक्षर तारक मूलमन्त्र है। उसका स्वरूप है पूर्ण निर्दिष्ट 'ॐ रा रामाय नम'—'श्री राम के लिए नमस्कार है।'

दूसरा मन्त्र 'रामद्वय मन्त्र' या 'पंचविंशत्यक्षर मन्त्र' कहलाता है। इस मन्त्र मे 'राम' शब्द का उच्चारण दो बार होता है, इसीलिए इस मन्त्र को 'रामद्वय मन्त्र' कहते है। पच्चीस अक्षरो के कारण इस मन्त्र को 'पंचविंशत्यक्षर मन्त्र' कहते है। इस मन्त्र की योजना इस प्रकार है—"श्रीमद्रामचन्द्रचरणौशरण प्रपद्ये. श्रीमते रामचन्द्राय नमः"—'श्री राम के चरणो की शरण मे जाता हूँ, श्री रामचन्द्र के लिए नमस्कार।'

तीसरे मन्त्र को 'चरम मन्त्र' नाम दिया गया है। यह मन्त्र इस प्रकार है—"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभय सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम"—'मैं तुम्हारा हूँ, यह कह कर, जो एक बार भी मेरी शरण मे आ जाता है, उसे मै पाँच भौतिक जगत् के भीतर के सम्पूर्ण अस्तित्व मे सभावित भय से मुक्त कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।' भगवान् राम की यह प्रतिज्ञा ही 'चरम मन्त्र' है‡।

'वैष्णव-मताब्जभास्कर' के अनुसार, राम, सीता और लक्ष्मण की त्रिमूर्ति का ध्यान ही परम लक्ष्य है। स्वामी रामानन्द जी इस त्रिमूर्ति को चित्, अचित् और ईश्वर की बाह्य अभिव्यक्ति मानते है। उनके अनुसार लक्ष्मण चित्-जीव है। सीता अचित्-प्रकृति है। राम को, स्वामी रामानन्द जी अव्यक्त ईश्वर की बाह्य अभिव्यक्ति मानते है। "आगे रामु लषन बने पाछे, तापस वेष बिराजत काछे। उभय बीच सिय सोहित कैसे, ब्रह्म जीव बिच माया जैसे†। से रामानन्द जी के द्वारा प्रतिपादित इसी सत्य की ओर गोस्वामी जी ने सकेत किया है। "राम वाम दिसि जानकी लषन दाहिनी ओर, ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।"$ मे रामानन्द जी के सिद्धान्त के अनुसार ही गोस्वामी जी ने भी त्रिमूर्ति का ही ध्यान किया है। "सीता लषनु समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास, हरषत सुर बरषत सुमन सगुन सुमगल बास।", "पचवटी वट विटप तर सीता लषन समेत, सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत" और "चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय-लषन-समेत, राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत।"* मे भी त्रिमूर्ति के ही ध्यान की गोस्वामी जी की प्रवृत्ति स्पष्टत. दिखाई पडती है। 'वैष्णव मताब्जभास्कर' लक्ष्मण के बिना सीताराम की मूर्तियों की, मन्दिरो मे, स्थापना का पक्षपाती नही है§।

स्वामी रामानन्द जी भक्ति को ही वह परम पदार्थ मानते है जिससे मुक्ति की सिद्धि होती है। स्वामी जी के अनुसार परम अनुराग के साथ श्री रामचन्द्र का सतत स्मरण ही भक्ति है। भक्ति सात उपायों से उत्पन्न होती है, वे उपाय है—(१) विवेक (२) विमोक (३) अभ्यास (४) क्रिया (५) कल्याण (६) अनवसाद और (७) अनुद्धर्ष।

---

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २६२—२६३। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १२१ के बाद। $ दोहावली, दोहा १। * दोहावली, दोहा २ से ४ तक। § भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २६३।

दुष्ट आहार और सात्त्विक आहार का ज्ञान ही विवेक है । कामजन्य वासना के प्रति अनासक्ति के भाव को विमोक कहते है । भगवान् रामचन्द्र का निरन्तर चिन्तन ही अभ्यास है । पचमहायज्ञो के अनुष्ठान को क्रिया कहते है । सत्य, आर्जव, दान, दया इत्यादि ही कल्याण है । रामचन्द्र की प्राप्ति के लिए सदा उत्साह ही अनवसाद है । सांसारिक अभिलाषाओं की पूर्ति से उत्पन्न हर्ष को उद्धर्ष कहते है । इस उद्धर्ष का अभाव ही अनुद्धर्ष है । यमनियमादि अष्टाग योग के द्वारा भक्ति की प्राप्ति पर स्वामी रामानन्द जी का विश्वास है ‡ । गोस्वामी तुलसीदास के मानस मे चित्रित शबरी, शरभग इत्यादि सतों मे योगाधारित भक्ति के ये लक्षण दिखाई पडते है । 'कहि कथा सकल बिलोकि हरिमुख हृदय पदपकज धरे । तजि जोग पावक देह, हरिपद लीन भइ जह नहि फिरे † ।' मे शबरी के भीतर योग और भक्ति का गोस्वामी जी ने एकत्र दर्शन किया है, तथा भक्ति की मुक्ति में भी भगवान् के मुख की शोभा का ध्यान और हृदय मे पदपकज का प्रेम रहता है, इस बात की सूचना गोस्वामी जी ने दी है । आनन्दमयी यह मुक्ति भी शाश्वत है । इसकी सूचना गीता के 'य प्राप्य न निवर्तन्ते तद् धाम परम मम $' के अनुसार 'हरिपद लीन भइ, जह नहि फिरे' कह कर गोस्वामी जी ने दी है । मुक्ति की यही धारणा श्रीवैष्णव तथा श्रीसम्प्रदायो को मान्य है ।

शरभग प्रकरण मे रामानन्द जी के द्वारा प्रतिपादित, ध्यान की पद्धति के अनुसार ही भक्ति और योग का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है—

"सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम । मम हिय बसहु निरन्तर सगुन रूप सियराम । अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, रामकृपा बैकुंठ सिधारा * ।' मे रामानन्द जी के द्वारा स्वीकृत और प्रतिपादित त्रिमूर्ति के भक्तिपूर्ण ध्यान के साथ योगाग्नि की सहायता से शरभग शरीर छोड़ कर मुक्ति प्राप्त कर लेते है । अत: यहाँ भी रामानन्दी ढग का, हठ-योग और भक्ति का, समन्वय है । 'मानस' के शकर भी सदा योगी है— 'हमरे जान सदा सिव जोगी § ।' उमा के ये शब्द इस बात की सिद्धि के लिए पर्याप्त है । सती ने जब सीता के वेश मे राम की परीक्षा ली और शकर के द्वारा जन्म भर के लिए परित्यक्त हुई तब भी योगी शकर की समाधि का वर्णन गोस्वामी जी ने किया है—"बैठे बट तर करि कमलासन । सकर सहज सरूप सभारा, लागि समाधि अखंड अपारा × ।" योगीश शकर की समाधि भी साधारण नही है—"बीते सबत सहस सतासी । तजी समाधि सभु अबिनासी + ।" सतासी हजार वर्षो

---

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २६३—६४ । † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३६ के पहले । $ गीता, अध्याय ८, श्लोक २१ । * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ८ और बाद की पक्ति १ । § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८९ के बाद । × रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ५८ के पहले । + रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ५६ के बाद ।

की समाधि मे रहने वाले शिव 'रामभगत समरथ भगवाना' भी हैं‡। वे जितने बडे सिद्ध योगी हे उतने ही बडे सिद्ध भक्त भी। सती ने भी 'अस कहि जोग अगिनि तनु जारा'† के अनुसार, योगाग्नि मे सदा के दक्ष मे अपना शरीर भस्म कर दिया था। इस योगसिद्धि के अतिरिक्त सती को भी भक्ति की सिद्धि प्राप्त है। विवाह के बाद जब उमा ने शिव से सगुण-निर्गुण समस्या उनके सामने रख कर रामकथा का रहस्य समझना चाहा तब गोस्वामी जी के शिव ने 'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी, कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी $।' के द्वारा उमा को भक्ति का प्रमाण-पत्र दिया है। इस तरह गोस्वामी जी की उमा को भी योग और भक्ति की सिद्धि प्राप्त है। अत गोस्वामी जी के मानस के प्रारम्भ से अत तक योग और भक्ति का समन्वय, रामानन्द जी की भक्ति-पद्धित के अनुसार ही दिखाई देता है।

स्वामी रामानन्द जी के 'वैष्णवमताब्जभास्कर' के अनुसार परम प्राप्य वस्तु भगवान् राम ही है। वे एक, चेतनो के भीतर चैतन्य शक्ति की तरह निवास करने वाले, ससार के पालन-कर्त्ता, स्वतन्त्र, वशी, समस्त दिव्य गुणो के सागर, उपनिषदो के द्वारा प्रतिपाद्य, सबको शरण देने वाले तथा प्रभु है। उनकी प्राप्ति के लिए रामानन्द जी गुरु को अनिवार्य सहायक मानते है। गुरु के बताये हुए मार्ग से साधना करके साधक को अपनी सिद्धि के रूप मे, दिव्य अयोध्यापुरी मे राम की प्राप्ति हो जाती है। वह उस दिव्यलोक मे फिर नही लौटता। ये सब सिद्धान्त गोस्वामी जी के मानस मे मिलते है।

अपने हिन्दी ग्रन्थ 'रामरक्षा' मे स्वामी रामानन्द जी ने हठयोग निर्गुण भक्ति तथा सगुण भक्ति के सब तत्त्व एक साथ रख दिये है। कोई भी सत किसी सच्ची उपासना-पद्धति का विरोधी नही होता। इसीलिए स्वामी रामानन्द जी ने भी योग, सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति को एक साथ ही अपनी स्वीकृति दे कर सत्य को स्वीकार करने की अपनी उदारता का परिचय दिया है तथा हर तरह की प्रवृत्ति वाले साधको का, उन्होने, सच्चे गुरु की तरह, मार्गनिर्देशन किया है। समन्वय की यही पूर्व परम्परा गोस्वामी तुलसीदास ने भी स्वीकार की है। रामानन्द जी की इसी उदारता के कारण नाभादास जी ने उनकी प्रशस्ति मे लिखा है—"श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यो दुतिय सेतु जग तरन कियौ *"—'रघुनाथ की तरह ही रामानन्द जी ने भी सब पवित्र तत्त्वों को भक्ति मे सम्मिलित करके भवसागर को पार करने के लिए एक दूसरा सेतु निर्मित कर दिया'।

इस तरह तुलसी-युग के पहले रामानन्द जी ने रामभक्ति के प्रचार के क्षेत्र मे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

कृष्णदास पयहारी रामानन्द जी के शिष्य अनतानन्द जी के शिष्य थे। इन्होंने गलता (जयपुर रियासत) मे रामानन्दी गद्दी स्थापित की थी। गलता की यह गद्दी दक्षिण

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ५६ के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड दोहा ६४ के पहले। $ वही, दोहा ११२ के पहले। * डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २८७।

की तोताद्रि गद्दी के बराबर प्रसिद्ध हो गयी । इस गद्दी की प्रसिद्धि यहाँ तक बढी कि लोग इसे उत्तर तोताद्रि कहने लगे ।

नाभादास जी ने इसके विषय मे कहा है : 'निर्वेद अवधि, कलि, कृष्णदास, अन परिहरि, पय पान कियो ‡" "वैराग्य की अतिम सीमा पर पहुँचे हुए कृष्णदास कलियुग मे अन्न खाना छोड कर केवल दूध पर रहने लगे ।" कृष्णदास जी भी योगी और शक्तिसम्पन्न भक्त थे । इनके चौबीस शिष्यो मे से अग्रदास और कील्हदास अधिक प्रसिद्ध हुए ।

अग्रदास (स १६३२ के आसपास) मानस पूजा करने वाले सिद्ध भक्त थे । इन्होंने ध्यानमजरी, अष्टयाम, कुडलियाँ और पदावली इत्यादि ग्रन्थों की सृष्टि की । नाभादास जी इनके शिष्य थे और इन्ही की आज्ञा से नाभादास जी ने 'भक्तमाल' की रचना की । रामभक्ति को इनसे भी पर्याप्त बल मिला । कृष्णदास जी के बाद गलता की गद्दी का प्रबन्ध इन्होंने ही सम्हाला ।

कील्हदास जी एक प्रसिद्ध योगी और भक्त थे । इसके पिता सुमेरदेव गुजरात के सूबेदार होते हुए भी योगी और भक्त थे । 'भक्तमाल' के अनुसार ये भीष्म पितामह की तरह इच्छा-मृत्यु थे । इन्होंने भक्ति मे योगसाधना को प्रधानता दे कर रामानन्दी वष्णवों की तपसी शाखा को जन्म दिया । साख्ययोग के ये प्रसिद्ध ज्ञाता थे और ब्रह्मरध्र के मार्ग से इन्होंने प्राण-त्याग किया था । इनके विषय की इन जानकारियों के अतिरिक्त नाभादास जी ने लिखा है—"राम चरन चितवनि रहति निसि दिन तौ लागी । सर्वभूत सिर नमित सूर भजनानद भागी † ।" राम के चरणो का अखड चिन्तन और 'सर्वभूत सिर नमित' से गोस्वामी जी के 'सियाराममय सब जग जानी, करहु प्रनाम जोरि जुग पानी' का स्मरण हो आता है $ ।

अपनी इसी सुदीर्घ पूर्व परम्परा का गोस्वामी जी ने मौलिक ढग से उपयोग किया था ।

शकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त और आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म के लक्षणों मे कुछ अतर है । शकराचार्य के अनुसार ब्रह्म एक, अखड, अद्वितीय, स्वजातीय, विजातीय और स्वगत—इन त्रिविध भेदों से शून्य है । ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ है ही नही । 'सर्व खल्विद ब्रह्म', * 'नेह नानास्ति किंचन' § इत्यादि श्रुतियों के आधार पर आचार्य शकर एक ही अद्वैत तत्त्व को स्वीकार करते है ।

रामानुज भी ब्रह्म को एक और अद्वितीय तो मानते है, पर उनके अनुसार ब्रह्म निरश नही, साश है । उसमे स्वजातीय और विजातीय भेद तो नही होते, पर स्वगत भेद अवश्य होता है । ब्रह्म के एक और अद्वितीय होने के कारण उसकी जाति में कोई दूसरा तो सम्भव

‡ भक्तमाल, छप्पय ३३ । † भक्तमाल, छप्पय ३५ तथा भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २७६ से २७९ तक । $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद । * त्रिपाद्विभूति महा-नारायण उपनिषद्, अध्याय १, कडिका ३ । § कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली १, छन्द ११ ।

ही नही हो सकता कि उस स्वजातीय व्यक्ति से ब्रह्म का भेद बताया जा सके । जब वह एक और अद्वितीय है तब विजातीय भेद का भी प्रश्न नही उठता । हा, स्वगत भेद उसमें अवश्य रहता है, क्योंकि उसी के भीतर रहने वाले जीव और जगत् उससे भिन्न है । वे केवल उसके विशेषण है । जिस तरह लाल गाय मे 'लाल रग', गाय का विशेषण होने के कारण उसके भीतर है, पर वह स्वय गाय नही है, गाय से भिन्न धर्म है, उसी तरह जीव (चित्) और जगत् (जड) ब्रह्म के ही विशेषण है, उसके अश है, पर है उससे भिन्न ही । इस भेद के कारण ही जीव उपासक हो सकता है और ब्रह्म उपास्य । भेद मे भक्ति और प्रेम की सम्भावना हो सकती है, अद्वैतता मे ऐसा सम्भव नही ।

आचार्य शकर के अनुसार ब्रह्म केवल साक्षी, उदासीन, निर्गुण, निर्विशेष और शुद्ध चैतन्य है ।

आचार्य रामानुज ब्रह्म को निर्गुण और निर्विशेष नही मानते । उनके अनुसार ब्रह्म सगुण और सविशेष है । वे कहते है कि ज्ञान, आनन्द, दया इत्यादि विशेषताओं का मूल कोष निर्गुण कैसे हो सकता है । बिना आधार के ये सब गुण आखिर रहेगे कहाँ ? आचार्य रामानुज हेय और प्राकृतिक गुणो का सम्बन्ध ब्रह्म से नही मानते । उनके अनुसार सब उपादेय और अतिप्राकृतिक गुण ही ब्रह्म मे होते है तथा चेतन और अचेतन जगत् ब्रह्म का विशेषण और शरीर है । इसीलिए गोस्वामी जी ने बालक राम के मुख मे कागभुशुडि को अनत जगत् दिखाया है ।

आचार्य शकर के अनुसार जगत् मिथ्या और माया है । वे कहते हैं कि ब्रह्म की शक्ति माया, अनिर्वचनीय होते हुए भी तुच्छ है । यह दृष्टिकोण सगुण उपासना की सम्भावना को समाप्त कर देता है और यदि उपासना हो भी सकी तो जगत् के रूपरग की ही होगी । ऐसी दशा मे तुच्छ की उपासना करने वाला भी तुच्छ ही होगा और उसकी उपासना भी तुच्छ हो जाएगी । सगुण उपासना का कोई महत्त्व न रह जाएगा ।

काफी दिनो से चली आती हुई सगुण उपासना के मार्ग मे 'तुच्छता' की इस बाधा को आचार्य रामानुज ने दूर कर दिया । उनका यही तर्क था कि ब्रह्म का शरीर जगत्, मिथ्या कैसे हो सकता है ? परम महत्त्वमय का शरीर भी महत्त्वमय ही होता है, वह तुच्छ नही हो सकता । माया मिथ्या नही हो सकती । ब्रह्म का अश होने के कारण वह सत्य ही है । जगत्, प्रकृति या माया की सत्यता की घोषणा करके आचार्य रामानुज ने सगुण उपासना को प्रत्येक अवस्था मे गौरवशालिनी बना दिया । आचार्य रामानुज ने तर्क के आधार पर यह घोषित किया कि सगुण उपासना असत्य की नही, सत्य की ही होती है । गोस्वामी जी के 'जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू' ‡ से ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित जगत् की सत्यता ही घोषित की गयी है ।

आचार्य शकर के अनुसार जीव और ब्रह्म दोनों एक ही है । यह धारणा उन्होने 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'—जीव ब्रह्म ही है और कोई दूसरी वस्तु नही—इत्यादि श्रुति-

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ११७ के पहले ।

वाक्यों के आधार पर बनायी थी। उन्होंने कहा था कि जीव शाश्वत, मुक्त और स्वप्रकाश है।

आचार्य रामानुज ने यह सिद्ध किया कि जीव और ब्रह्म मे एकत्व नही है। वह सदा मुक्त नही रहता। जीव ब्रह्म का अशमात्र है। जिस तरह अग्नि से निकला हुआ अग्निकण पूर्ण अग्नि नही होता, अपितु उसका एक क्षुद्र अश ही होता है, उसी तरह जीव भी अणु है और विभु तथा व्यापक ब्रह्म का एक क्षुद्र अंश ही है। जीव अल्पज्ञ तथा अल्प शक्तिवान् है तथा ब्रह्म सर्वज्ञ और सर्वशक्तिवान्। जीव अर्जुन से ब्रह्म श्रीकृष्ण ने भी यही कहा था—"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि। तव चार्जुन, तान्यह वेद्मि सर्वाणि, न त्व वेत्थ परतप ‡।"—मैं अपने सब अवतारों को जानता हूँ, पर तुम नही जानते—कह कर श्री कृष्ण ने जीव की अल्पज्ञता और ब्रह्म की सर्वज्ञता की सूचना ही अर्जुन को दी थी। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल, सहज सुखरासी। सो माया बस भएउ गोसाईं, बधेउ कीर मरकट की नाई।' † से जीव को माया से बद्ध अल्पज्ञ और ईश्वर का अशमात्र माना है।

आचार्य शकर का यह मत है कि जगत् के भेद को देखने वाली, जीव की बुद्धि जब समाप्त हो जाती है, तब जीव और ब्रह्म मे एकत्व का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यही जीवब्रह्मैक्य मुक्ति है।

आचार्य रामानुज के अनुसार आनन्दानुभव मुक्ति है, एकत्व नही। उनके अनुसार जीव ब्रह्म से मिल कर एक तो हो ही नही सकता। मुक्ति की दशा मे भी वह ब्रह्म से अलग रह कर ही आनन्द का अनुभव करता रहता है। उसे कोई क्लेश स्पर्श नही कर सकता।

आचार्य शंकर ने माया, अविद्या और अज्ञान को भी एक ही के भिन्न-भिन्न नाम की तरह देखा है। तत्त्वतः उन सबको एक माना है।

आचार्य रामानुज का मत इस सम्बन्ध मे भिन्न है। वे कहते है कि माया भगवान् की शक्ति है और अज्ञान जीव का लक्षण है। माया भावमय अस्तित्व है और अज्ञान, ज्ञान का अभाव है। वह केवल शून्यता की सूचना देता है। पर माया अस्तित्व की सूचना देती है। माया का कभी नाश नही होता, पर अज्ञान का नाश भगवान् की कृपा से हो जाता है। गोस्वामी जी ने भी 'हरि माया अति दुस्तर $।' कह कर माया को स्वीकार किया है।

आचार्य शकर के अनुसार अभेद-प्रतिपादक उपनिषद्-वाक्यों को निरन्तर सुनने और मनन करने से अभेदानुभूति हो जाती है। यही मुक्ति है।

आचार्य रामानुज का मत इससे भिन्न है। वे भक्ति को ही मुक्ति का साधन मानते है। उनके अनुसार मुक्ति की प्राप्ति के लिए कोई दूसरा उपाय नही है। आचार्य शकर

‡ गीता, अध्याय ४, श्लोक ५। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ११६ के बाद।
$ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ११८।

का अभेदवाद 'तत्वमसि' ‡—तुम वही हो—इत्यादि श्रुति-वाक्यों पर आधारित है। आचार्य रामानुज 'तत्वमसि' का पद विग्रह 'तत् त्व असि'—वही तुम हो—की तरह न करके 'तस्य त्व असि'—उसके तुम ही—की तरह करके श्रुतियों में भी स्वामि-सेवक भाव ही सिद्ध करते है। वे, श्रुतियों के 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्यों को साधक को प्रोत्साहन देने मात्र के लिए मानते है।

मुक्ति के साधन और अभेदवाद के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने विशिष्टाद्वैत दृष्टि-कोण ही स्वीकार किया है। उनके 'रामभजत सोइ मुक्ति गोसाईं, अन इच्छित आवइ बरिआई †। से भक्ति ही मुक्ति का साधन सिद्ध होती है। आचार्य शंकर के अभेदवाद की मुक्ति को स्वीकार न करके आचार्य रामानुज के 'सेवक-सेव्य भाव' की सिद्धि को ही गोस्वामी जी ने मुक्ति माना है। उनके 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि' $ का यही लक्ष्य है।

आचार्य शंकर मानते है कि ज्ञान हो जाने पर शरीर में रहते हुए भी जीव वासनाओं से मुक्त हो जाता है और शरीर छूटते ही वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

आचार्य रामानुज के अनुसार शरीर के रहते हुए क्लेशों का नाश सम्भव नही है। शरीर के न रहने पर ही मनुष्य क्लेशमुक्त हो सकता है और इस भौतिक शरीर के बाद भी जीव को दिव्य शरीर मिल जाता है और उसी को ले कर भगवान् के निकट वह शाश्वतिक आनन्द का अनुभव करता है, उनसे एकत्व नही प्राप्त करता।

आचार्य शंकर के मत से, नित्य और अनित्य का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला ही ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकारी होता है।

आचार्य रामानुज यह मानते है कि नित्य का ज्ञान ही तो ब्रह्मज्ञान है। यदि नित्य का ज्ञान हो गया तब तो ब्रह्म को जानने की इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता। वे कहते है कि कर्म और कर्मफल की अनित्यता को जान लेने पर व्यक्ति ब्रह्म को जानने की इच्छा की ओर बढ सकता है *।

अपनी साधना-पद्धति के अनुसार आचार्य रामानुज भगवान् और जीव के बीच में अनंत शेषशेषिभाव का सम्बन्ध मानते है। वे दास को शेष कहते है, क्योंकि वह पूर्ण भगवान् का एक अवशिष्ट अंशमात्र है। भगवान् शेषी, पूर्ण तथा स्वामी है। भक्त की दास्यभावना को आचार्य रामानुज शेषभूतता की भावना कहते है। इस भावना में पहुँचा हुआ साधक बडी दीनता से अपने को भगवान् का एक क्षुद्र अंश—शेष—मानता रहता है। शेष नियाम्य होता है। उस पर सम्पूर्ण नियन्त्रण नियामक शेषी का होता है। गोस्वामी जी के 'चाहै कीन करावै सोई' तथा गीता के 'ईश्वरः सर्वभूताना हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।

‡ छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६, खंड ८, कडिका ७। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११८ के बाद। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११९। * डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २१२ से २१६ तक।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' ‡ का यही अभिप्राय है। भक्त के लिए भगवान् के दासो की उपासना भी आवश्यक और अनिवार्य है। भगवान् के दासों के प्रति इस पूज्य भाव की वृत्ति को आचार्य रामानुज शेषवृत्तिपरता कहते है। भगवान् की दासता तभी प्राप्त होती है, जब भक्त उसके दासों का दास हो जाता है। यह स्थिति पूर्ण निरभिमानता की अवस्था है †। गोस्वामी जी के 'जागबलिक मुनि परम विवेकी, भरद्वाज राखे पद टेकी। सादर चरन-सरोज पखारे, अति पुनीत आसन बैठारे। करि पूजा मुनि सुजस बखानी' $ मे भरद्वाज की इसी शेषवृत्तिपरता की ओर सकेत है। भक्त भगवान् के दासों का दास स्वभाव से ही बन जाता है। अपने इसी स्वभाव के कारण भक्त भरद्वाज ने भक्त याज्ञवल्क्य की उपासना की है। गोस्वामी जी के 'मानस' मे यह वातावरण प्रारम्भ से ले कर अत तक है। गोस्वामी जी के अनुसार भी आदर्श का प्रेमी वही है, जो उसकी उपासना प्रत्येक माध्यम के भीतर करने को प्रस्तुत हो। ऐसी स्थिति उसे जब प्राप्त हो जाती है, तभी पूर्ण आदर्शमय भगवान् उसे प्राप्त होता है, इसके पहले नही।

आचार्य रामानुज की साधना-पद्धति के भीतर भगवान् ही जगत् के निर्माण की सामग्री तथा निर्माता दोनों माने जाते है। जगत् के उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों यही माने जाते है। आचार्य रामानुज के अनुसार भगवान् ही जगत् के प्रपच के रूप मे परिणत हो जाते है। यह सिद्धान्त ब्रह्मपरिणामवाद कहलाता है।

नर, पुरुष या ब्रह्म से उत्पन्न साख्य के पच्चीस तत्त्व (पचभूत, पचतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहकार, प्रकृति और जीव) नार कहलाते है। नर से उत्पन्न हुए तत्त्व तद्धित वृत्ति से नार ही कहे जा सकते है। इनमे अपना स्थान (अयन) बना कर निवास करने वाला परमात्मा नारायण कहलाता है। नित्य जीव, आचार्य रामानुज के अनुसार, प्रलय-काल मे ब्रह्म मे अव्यक्त रहता है और सृष्टिकाल मे फिर उसी मे से उत्पन्न हो जाता है। जीव का परम पुरुषार्थ, आचार्य रामानुज के अनुसार, यही है कि वह अपने स्वामी, नारायण के चरणो मे अनुराग की भावना के साथ समर्पित हो जाए। दास्यभाव की भक्ति ही श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति है। भक्ति का सार प्रपत्ति या आत्मनिवेदन है। यही प्रेम ही भक्ति की आत्मा है और दूसरी साधनाएँ केवल बहिरग मानी जाती है।

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार प्रपत्ति की तीन अवस्थाएँ होती है। (१) एक अवस्था को अनन्य शेषत्व की अवस्था कहते है। इस अवस्था वाला भक्त अपने को केवल एक का ही दास समझता है (२) प्रपत्ति की दूसरी अवस्था अनन्य साधनत्व की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था वाला भक्त केवल भगवान् को ही अपना हर तरह का सहायक मानता है, तथा भक्ति की सिद्धि के लिए भी उन्ही को अपना सहायक मानता है। प्रपत्ति की तीसरी अवस्था है, अनन्य भोग्यत्व की अवस्था। इस स्थिति मे पहुँचा हुआ भक्त यह अनुभव करता है कि उसका सब कुछ केवल भगवान् का ही उपभोग्य है, सब कुछ केवल उन्ही के लिए है।

‡ गीता, अध्याय १८, श्लोक ६१। † डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २१६।
$ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ४५ के पहले।

आचार्य रामानुज के अनुसार प्रपत्ति के इन तीन प्रकारो मे से यदि एक की भी सिद्धि हो जाए तो भगवान् की कृपा से भक्ति के पूर्ण फल के रूप मे भगवान् की प्राप्ति हो जाती है, भक्ति मे न्यूनता नही आने पाती। प्रपत्ति की ये तीनो अवस्थाएं हमे गोस्वामी जी मे तथा उनके 'मानस' मे दिखाई पडती है। आचार्य रामानुज इस प्रपत्ति को भी दूर का ही साधन मानते है। उनके अनुसार प्रपत्ति की सिद्धि मे भगवान् की कृपा प्राप्त होती है और भगवान् की कृपा से भगवान् स्वय प्राप्त हो जाते है। अत. भगवान् की कृपा ही उनकी प्राप्ति के लिए मुख्य कारण बनती है। इस कृपा की प्राप्ति के लिए साधक को गुरु के आश्रय मे जाना पडता है और गुरु के बताये हुए पथ से चल कर वह सर्व की, पूर्ण की, अपने भगवान् की प्राप्ति कर लेता है‡।

---

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत संम्प्रदाय, पृष्ठ २१८।

अध्याय २

रामभक्ति में विमल सन्तोष

आज तक जीवन और अध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाला जितना साहित्य दुनिया के विद्वानों, साहित्यकारों और कवियों ने प्रस्तुत किया है, उसमें गोस्वामी जी के 'रामचरितमानस' का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'नानापुराण निगमागमसम्मत‡' भाव और विचारो को सम्पूर्ण जीवन के एक सूत्र मे स्वाभाविकता से पिरो कर गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा रामायण के और सब आदर्श पात्रों का जीवन इतना सुन्दर बना कर प्रस्तुत किया है कि जीवन के शाश्वत सत्य की तरह वे सब पात्र अध्यात्म की जीवनमय झाँकी प्रस्तुत कर अनतकाल तक ससार के मानव का जीवनदर्शन और अध्यात्मदर्शन के आदर्श पथ पर मार्गदर्शन करते रहेगे। गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, शत्रुघ्न, दशरथ, हनुमान् इत्यादि पात्रों को जीवन के ऐसे स्वाभाविक सौन्दर्य से विभूषित किया है कि उनका आकर्षण कभी कम नही हो सकता। जीवन और चिन्तन के जो आदर्श, उलझनों के अन्धकार मे अनतकाल तक मानव को प्रकाश देने की क्षमता रखते है, उन्ही को गोस्वामी जी ने 'मानस' के पात्रो मे जीवन की स्वाभाविक विकास-प्रक्रिया से विकसित किया है। 'नानापुराण निगमागम' मे जो जीवन-सौन्दर्य और चिन्तन की गहराई और ऊँचाई बिखरी हुई पडी थी उसके समाहित रूप से तुलसी की सौन्दर्यभावना और चिन्तन-प्रणाली विकसित हुई थी। विकास के पथ पर अनत सौन्दर्य की ओर बहुत दूर तक बढ़ा हुआ यह महामानव अपने से पीछे छूटे हुए लोगों को अपने साथ ले लेने के लिए करुणासिक्त और व्यथित था। अपनी इस व्यथा को दूर करने के लिए ही अनत सुन्दर, अनत शक्तिवान् तथा अनत शीलवान् मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सर्वतोमुखी सौन्दर्य के सन्देश को उन्होने अपनी शक्तिमती वाणी के प्रभाव से अगणित हृदयो तक पहुँचाया और स्वान्त सुख का अनुभव किया।

व्यक्ति सीमित कभी नही होता। अनत सिन्धु की सर्वाभिभाविनी अनत शक्ति की परिस्थितियों के कारण कुछ काल के लिए अपने भीतर कुठित रूप मे धारण करने वाला बिन्दु, सिन्धु बन जाने के लिए छटपटाता रहता है। परमात्मा को, अनत सौन्दर्य के बोध को अपने भीतर पा लेने के लिए कुठित बोध वाला मानव व्यथित रहता है। सत्यतः तो वह अनत के भीतर ही रहता है; पर क्षुद्र स्वार्थ की सीमाएँ उसे घेर-घेर

‡ रामचरितमानम, बालकाड का मगलाचरण, श्लोक ७।

कर क्षुद्र बना देती है। अपने इसस्वार्थ को जगत् के महत्तर स्वार्थ से वह जितना अधिक सम्बद्ध करता जाता है उतना ही अधिक आगे वह अनन्त प्रिय के पथ पर बढ़ता जाताहै। परदों के उठते-उठते उसकी जीवन-लीला की रगभूमि विस्तृत होती जाती है। जब तक अपनी लीला के क्षेत्र को वह अनत नही बना लेता, तब तक उसकी व्यथा शान्त नही होती, अनत के वियोग की वेदना उसका साथ नही छोडती। मानव के महामानव रूप मे परिणत होने का यही रहस्य है और उसकी प्रक्रिया भी यही है। इसीलिए महामानव का स्वान्त:सुख जगत् के सुख के साथ जुडा हुआ रहता है। वह सीमित व्यक्ति न हो कर विराट् बन जाता है। वह केवल आत्मा न रह कर महात्मा बन जाता है।

इसी प्रक्रिया के अनुसार प्रत्येक व्यक्तित्व मे अतर्निहित सीमित अनत अपनी ही अनतता को प्राप्त करने के लिए व्याकुल रहता है और उसे प्राप्त कर सत, महात्मा, कवि और कलाकार इत्यादि रूपों के द्वारा वह अपने स्वान्त:सुख को जगत् के सुख के रूप मे परिणत कर लेता है। अन्तर्यामी सत्य, शिव और सौन्दर्य को बहिर्यामी बना कर सब पिछडे हुए लोगो के हृदयो पर पडे हुए स्वार्थजनित वासनाओ के आवरण को काटता हुआ, वह उन्हे भी महात्मा बनाता चलता है। यदि उसका स्वान्त:सुख सीमित सुख ही होता तो उसकी मूकता ही उसका स्वभाव रहती। वह सुख वाणी के ओज मे मुखर न बनता। वह अनत रहता है और अनत तक पहुँच जाना चाहता है, इसीलिए उसे मुखर होना पडता है। अनत सौन्दर्य की भावना का मौन व्याख्यान आचरण की स्थूलता मे सीमित ही रह जाता है। इसीलिए सौन्दर्य-सिद्ध प्रत्येक सत, महात्मा, कवि तथा कलाकार उस सौन्दर्य को काल मे स्थिर और देश मे व्यापक बनाने के लिए, मूर्ति, चित्र तथा अन्य प्रकार की कलाकृतियो का सर्जन करता रहता है। इसीलिए उसे वाणी की आवश्यकता पडती है। 'रघुवीरगाथा' को 'अति मजुल भाषानिबन्ध ‡' के माध्यम मे विस्तार प्रदान करने का उसका लक्ष्य यही होता है। इस लक्ष्य की पूर्ति करके उसकी रसवती सरस्वती 'रसो वै स:' उस रसस्वरूप के अनत मधुर विकास को अपने भीतर प्राप्त करके धन्य हो जाती है। अविकसित 'प्राकृतजन' † की गाथा गा कर उसे 'सिर धुनने' की नौबत नही आती। यही विराट् रूप तुलसी की भावसाधना और विचारसाधना का है। इसकी सिद्धि उन्हे जहाँ और जिस व्यक्ति मे परिलक्षित होती है, वही उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव होता है।

यद्यपि सगुण उपासना का इतिहास ऋग्वेद के साथ प्राचीन हो चुका है और निर्गुण-सगुण ब्रह्म की उपासना उसी प्राचीन युग से भारतवर्ष मे होती आयी है, पर बीच मे बौद्ध और जैन मतों के निरीश्वरवाद तथा कणाद के प्राचीन वैशेषिक दर्शन की ईश्वर के सम्बन्ध मे चुप्पी, चार्वाक-दर्शन की घोर भौतिकता तथा आचार्य शकर के अद्वैतवाद और मायावाद के देशव्यापी प्रभाव ने भक्ति की सगुण धारा को सरस्वती के अव्यक्त स्रोत मे भेज दिया था। इस कुठा की प्रतिक्रिया मे दक्षिण भारत मे आलवार सतों के

‡ रामचरितमानस, बालकाड का मंगलाचरण, श्लोक ७। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ११ के पहले।

भीतर सगुण भक्ति ने अपने उद्दाम तरगों को पुनः तरगित किया । उसी परम्परा मे शकर के अद्वैतवाद और मायावाद के प्रभाव को तथा सगुणभक्ति-विरोधी पूर्ववर्ती सब प्रभावों को समाप्त करने के लिए आचार्य रामानुज ने अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । आचार्य रामानुज के अनुसार यह सिद्धान्त केवल उनका नही है । उन्होंने यह स्पष्टत स्वीकार किया है कि उनके द्वारा प्राचीन आचार्यो के मत ही पुनः प्रचारित किये गये है । आचार्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैत के अतीत परम्परा मे बोधायन, टक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि, भारुच इत्यादि आचार्यो के नाम गिनाये है और उन्होंने यह सूचित किया है कि वेद और उपनिषद् के ज्ञान को जिस दृष्टिकोण से इन पूर्वाचार्यो ने समझा था उसी दृष्टिकोण को विशद रूप मे ससार के सामने रखने का कार्य मैने किया ‡ ।

रामानुज का विशिष्टाद्वैत मत केवल तीन पदार्थो का विश्लेषण, विवेचन और प्रतिपादन करता है । वे तीन पदार्थ है—चित्, अचित् और ईश्वर । चित् वह चैतन्य शक्ति है जो जीव के भीतर रह कर सुख-दुःख का अनुभव करती है । वही जीव का अन्तरिक भावमय रूप है । अपने इसी चित् को जब वह परमात्म-सौन्दर्य के ध्यान मे मग्न कर देता है तब वह पूर्ण पुरुष हो जाता है । परमात्म-सौन्दर्य परमात्मा के रूप-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य का समाहित स्वरूप है । इसी मे जब भक्त अपने चित् को लय कर देता है, तब भक्ति-सिद्धान्त के अनुसार वह पूर्ण भक्त हो जाता है । इसी अवस्था को समझाने के लिए गोस्वामी जी ने 'तुम अपनाग्रो तब जानिहौ जब मन फिरि परिहै' कहा है । मन का यही फिर पडना, चित् का परमात्म-सौन्दर्य मे लीन हो जाना है । जगत् की स्वार्थमयी वासना से हट कर मन जब विश्व के स्वार्थ के साथ जुड जाता है, परमात्मा के विश्वरूप के सुख-दुःख के साथ सम्बद्ध हो जाता है, तब भक्त समझता है कि उसके दोषों को दूर करके परमात्मा ने उसे अपना लिया । जीव के दोषों से मुक्त होकर इसी स्थिति मे वह परमात्म-स्वरूप मर्यादा पुरुषोतम हो जाता है । इसी स्थिति की प्राप्ति के लिए तुलसी का मन छटपटाता हुआ साधना के पथ पर तीव्रता से आगे बढता हुआ दिखाई पडता है ।

विशिष्टाद्वैत दर्शन का अचित् पदार्थ जीव के द्वारा अनुभूत जगत् है । इस जगत् के सुख-दु.ख सब 'अचित्' (जड वस्तुओं) से सम्बन्ध रखते है । इस जड जगत् का अनुभव जीव करता रहता है । यह जड जगत् और चेतन जीव दोनों ईश्वर के द्वारा व्याप्त रहते है । अन्तर्यामी ईश्वर, जड तथा चेतन दोनों के भीतर निवास करता है और ये दोनो शाश्वत तथा सत्य है । इन दोनों को गोस्वामी जी ने भी सत्य और शाश्वत माना है, पर इनके पारस्परिक सम्बन्ध को मिथ्या माना है । जीव भेदरूप से जगत् को देखता हुआ उसके प्रति राग-द्वेष पैदा करता रहता है । 'सिया-राममय सब जग' † की अनुभूति यदि उसे हो जाए तो वह अपने जन्म के लक्ष्य को पूर्णत. प्राप्त कर लेता है । भेद के आधार पर टिकी

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भावगत सम्प्रदाय, पृष्ठ २०५ । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद ।

विमल सन्तोष

हुई इसी वासनात्मिका ग्रन्थि को तुलसीदास जी 'मृषा' (असत्य) मानते है--"जड चेतनहि ग्रन्थि परि गई, जदपि मृषा छूटत कठिनई ‡"।

जड और चेतन को इस तरह शाश्वत और सत्य मान कर गोस्वामी जी ने 'सियाराम मय' मान लिया है। ऐसी अनुभूति जीव को जब प्राप्त हो जाती है तब उसका चित्, जगत् के साथ अपनी वासनात्मिका ग्रन्थि से मुक्त हो जाता है। जड और चेतन के 'सियाराममय' रूप का साक्षात्कार न करके जब तक वह उसके व्यापक प्रसार के भीतर शत्रु-मित्र, सुख-दुःख इत्यादि की कल्पनाएँ करता रहता है तब तक वासना की झूठी ग्रन्थि उसे जगत् के साथ झूठे सम्बन्ध मे बाँध रखती है। इस तरह की कल्पना के समाप्त होते ही वह अद्वैत के अभेद को प्राप्त करके जगत् के भीतर 'सियाराम' को देख कर, उससे सच्चे सम्बन्ध की भावना से सम्बद्ध हो जाता है और मिथ्या ग्रन्थि टूट जाती है। 'सियाराम' की इसी अद्वैत भावना मे मानव के मन को लीन करने के लिए विशिष्टाद्वैत मत प्रचारित किया गया। अपनी अनतव्यापिनी शक्ति के कारण विष्णु अद्वैत है, पर अपने सगुण रूपात्मक अवतारों के रूप मे विशिष्ट हो कर केवल निर्गुण नही रह जाते। उनकी यह सगुणता और निर्गुणता शाश्वत रूप मे उनके साथ निवास करती है। रूप मे व्यक्त हो कर सगुण रहते हुए भी शक्ति की अपनी अनत व्यापकता के कारण एक ही समय मे वे निर्गुण भी रहते है।

इसी ईश्वर का ध्यान विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय करता है। यह सम्प्रदाय अनुभव करता है कि ईश्वर जगत् की सृष्टि का निमित्त बन कर भी उसके भीतर समाया हुआ रहता है। जगत् की सृष्टि करने के कारण वह उसका निमित्त कारण बन जाता है ओर उसमे व्याप्त रहने के कारण जगत् के निर्माण की सामग्री के अणु-अणु मे उपादान का काम भी शक्तिरूप मे वही करता है। 'सियाराममय सब जग' की भावना का यही मूल है। समग्र के ऊपर इस तरह अधिकार रख कर ईश्वर की क्रीडा निरन्तर जारी रहती है। यही क्रीडा उसे व्यक्त और अव्यक्त अवस्थाओं मे पहुँचाती रहती है। शाश्वत आनन्द का मूल स्रोत, परमात्मा जगत् को इसी तरह व्यक्त और अव्यक्त दशाओं मे परिवर्तित करता रहता है। यह सब वह अपने निरन्तर आनन्दस्वरूप से करता है, इसीलिए उसका सृष्टि-सहार कार्य, 'लीला' कहलाता है। अपनी अनत शक्ति के द्वारा अनत सृष्टि, स्थिति और सहार का कार्य करता हुआ परमात्मा यह अनत लीला करता रहता है। अवतार के शरीर मे आ कर सीमा के भीतर भी वह नर-लीला करता है, पर यह आदर्शप्रवण आनन्द को प्रवाहित करने वाली नर-लीला भी अनत है, क्योंकि इस तरह कल्प-कल्प मे बार-बार अवतीर्ण हो कर अनत क्रम के प्रवाह के भीतर वह अपनी नरलीला भी करता रहता है। तुलसी का 'हरि अनत हरि कथा अनता †'। इसी बात का सकेत दे रहा है। कबीर 'प्रह्लाद उबार्यो अनेक बार' कह कर इसी अनंतता के भीतर होने वाली अनत सगुण लीला की ओर

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११६ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १३९ के बाद।

सकेत करते है। दार्शनिक जब एक रूप की बात न कह कर अनंन रूपों के भीतर प्रविष्ट अन्तर्यामी की अनत लीला की चर्चा करता है तब यह लीला सगुण-निर्गुण हो जाती है।

लय और सृष्टि की अवस्थाओं के साथ ईश्वर का सम्बन्ध समझाने के लिए विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय ब्रह्म की दो सज्ञाओं—कारणावस्थ ब्रह्म और कार्यावस्थ ब्रह्म—को स्वीकार करता है। इस अनत अस्तित्व के भीतर अभाव नाम की कोई वस्तु नही है। लय की स्थिति अभाव की स्थिति नही, भाव की अव्यक्तता की स्थिति है। जगत् की सृष्टि के सब उपादान अपनी सूक्ष्म अव्यक्तावस्था मे ईश्वर के भीतर रहते है। जीव और जगत् अथवा अस्तित्व के चित् और अचित् तत्त्व अपनी सूक्ष्मावस्था को प्राप्त करके लयकाल में ईश्वर मे लीन हो जाते है। अतः सृष्टि के सब कारणों को समेट कर स्थित रहने वाला ईश्वर सब कारणों का कारण माना जाता है और यही ईश्वर चित् तथा अचित् से विशिष्ट रह कर लय की अवस्था मे कारण-ब्रह्म कहलाता है। इस मूल अव्यक्त कारण के भीतर से जब अस्तित्व व्यक्त हो कर जगत् के रूप मे आ जाता है, तब मूल कारण के इस कार्यरूप को कार्य-ब्रह्म कहते है। विशिष्टाद्वैत मत यह मानता है कि लय की अवस्था में सब चित् और अचित् को अपने भीतर समेट कर ब्रह्म कारण-ब्रह्म हो जाता है तथा सृष्टि की अवस्था मे अनत अस्तित्व के भीतर अतर्यामी की तरह बैठा हुआ वही कार्य ब्रह्म हो जाता है। सम्पूर्ण व्यक्त जगत् उसके शरीर के रूप मे रहता है तथा उस अनत शरीर मे अनत अतर्यामी रूप से उस अनत शरीर की अनत चैतन्ययुक्त आत्मा बन कर वह बैठा रहता है। कबीर का 'तेरा साई तुज्झमे' इसी स्थिति का सकेत कर रहा है। जिस तरह कारण ही कार्यरूप मे परिवर्तित हो जाता है, उसी तरह लयकाल का कारण-ब्रह्म सृष्टिकाल के कार्य-ब्रह्म के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, विश्वरूप बन जाता है। विशिष्टाद्वैत मत इस बात को स्पष्टत अनुभव करता है कि उपनिषदो के अद्वैत ब्रह्म का यही रूप है—'एकमेवाद्वितीयम्' ‡। इसी कारण ब्रह्म की लयकालीन स्थिति को उपनिषद्-ग्रन्थों मे प्रतिपादित करता है। यही अनत शक्तिवान् ईश्वर जो भक्तों के लिए सगुण होता है, (१) पर (२) व्यूह (३) विभव (४) अतर्यामी और (५) अर्चावतार की पाँच अवस्थाओं मे रहता है †।

ब्रह्म का पररूप उसका अति लौकिक रूप है, जिसकी जगत् के भीतर दिखाई पडने वाले शरीरों से तुलना नही की जा सकती। वह सर्वव्यापी, सर्व शक्तिवान् अनत और अचिन्त्य, अनिर्वचनीय रूप है। 'मत्त परतर नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय' $—गीता की इस उक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने इसी अतिलौकिक परतम रूप की ओर अर्जुन से सकेत किया है। इस पर रूप से परतर दूसरा कोई रूप नही होता। यही रूप सम्पूर्ण विश्व पर, अनत अस्तित्व पर अधिकार रखता है।

---

‡ छन्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६, खड २, कडिका १। † डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २१०। $ गीता, अध्याय ७, श्लोक ७।

ज्ञान तथा बल-प्रधान सकर्षण, ऐश्वर्य तथा वीर्य-प्रधान प्रद्युम्न, शक्ति तथा तेज प्रधान अनिरुद्ध तथा सब गुणो के केन्द्र वासुदेव को मिला कर व्यूहावतार चार प्रकार के माने जाते हैं। सकर्षण जगत् की सृष्टि और पाचरात्र सिद्धान्त का उपदेश करते है। प्रद्युम्न पाचरात्र क्रियाओ की शिक्षा देते है। अनिरुद्ध कर्म के परिणाम मोक्ष का रहस्य बताते है। वासुदेव इन सब कार्यो को एक साथ ही करते रहते है ‡ ।

विभव उन अवतारो को कहते है जो ससार मे व्यक्तिरूप मे अवतीर्ण होते है। इनकी सख्या ३९ होती है। इनके मुख्य और गौण दो प्रकार होते है। मुख्य की उपासना मे मुक्ति और गौण की उपासना से भुक्ति (भोग तथा ऐश्वर्य) की प्राप्ति होती है। पद्मनाभ, ध्रुव, त्रिविक्रम, कपिल, मधुसूदन आदि विभवातार है † ।

पाचरात्र आगम भगवान् की शक्ति को उपासना की मूर्तियों मे उतार लेने पर विश्वास करता है। उसके अनुसार विधिपूर्वक प्रतिष्ठित (स्थापित) मूर्ति मे भगवान् की शक्ति अवतीर्ण हो कर निवास करती है। "मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।" भागवत मे भगवान् का नारद से यह कहना भी इसी बात की पुष्टि करता है। भगवान् को पुकार कर भक्त उसे जहाँ बैठने को कहता है वह उसके प्रेम के लिए वही रह कर उसकी भक्तिमयी उपासना को स्वीकार करता रहता है। सात से अनत इसी तरह कई रूपों में सम्बद्ध होता रहता है। इस तरह सब मूर्तियाँ अर्चावतार है। उनमे भगवान् अवतीर्ण हो जाता है $ । इसी सिद्धान्त के आधार पर गोस्वामी जी के साहित्य में भी मूर्तियाँ उपासना के प्रकार के भीतर स्वीकार की गयी है। सीता के द्वारा विवाह के पहले गौरी-पूजन तथा राम के द्वारा रामेश्वर की स्थापना और पूजा इत्यादि बहुत से प्रकरण इस बात की पुष्टि करते है। तुलसी के राम ने अपने ईश्वर (रामेश्वर) शिव की मूर्ति सेतु पर स्थापित की थी।

यह जड-चेतन के भीतर शक्तिरूप मे प्रविष्ट होने वाला परमात्मा का रूप है। यह हर जगह निवास करता है *। भीतर रह कर यही रूप जड-चेतन को नियन्त्रित और सचालित करता रहता है। यह विश्वास वैदिक काल से इसी रूप में चला आ रहा है। गीता मे भी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से 'ईश्वरः सर्वभूताना हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति' § कह कर इसी अन्तर्यामी ईश्वर की सूचना देते हैं। गोस्वामी जी भी 'उर प्रेरक रघुवश विभूषण' × तथा 'यदपि बिरज व्यापकु अबिनासी, सबके हृदय निरतर बासी' और 'जे जानहि ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर-अन्तरजामी' + इत्यादि उक्तियों के द्वारा इसी मत का बहुशः समर्थन करते है।

इस सम्प्रदाय के अनुसार चेतन जीव देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा बुद्धि से अलग स्वभाव रखने वाला, अजड, आनन्दरूप, शाश्वत, अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव,

‡ डा० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १२४। † भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १२५। $ भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १२५। * भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ १२५। § गीता, अध्याय १८, श्लोक ६१। × रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ११२ के बाद। + रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ११ के पहले।

निर्विकार तथा ज्ञान का आश्रय है। इतने गुण जोव के ईश्वर से मिलते है । एक गुण उसका अलग होता है। वह बद्ध तथा ईश्वर के अधीन होता है । इस अधीनत्व को विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त शेषत्त्व कहता है। इसीलिए वह जीव को शेष तथा ईश्वर को शेषी कहता है। 'शेष' (जीव) 'शेषी' (ईश्वर) का अश है। जिस तरह अग्नि और चिनगारी का सम्बन्ध है उसी तरह का सम्बन्ध ईश्वर और जीव का है । 'ईश्वर अश जीव अबिनासी' ‡ कह कर गोस्वामी जी भी इसी मत का समर्थन करते हैं।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार अचित् (जडता) के भीतर ज्ञान नही रहता और वह परिवर्तन की विभिन्न अवस्थाओ मे पहुँचता रहता है। गोस्वामी जी के कागभुशुडि के शब्द 'पुनि रघुवीरहि भगति पियारी, माया खलु नर्तकी बिचारी †', माया या जडता के इसी परिवर्तनशील रूप की ओर सकेत करते है। जिस तरह नर्तकी अपने रूप बदला करती है, उसी तरह माया या जडता भी । गोस्वामी जी ने इस माया को जड भी माना है। उनके भुशुडि ने गरुड को बताया है—"माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ, नारिबर्ग जानहि सब कोऊ $ ।", "ज्ञान, विराग, जोग विज्ञाना, ये सब पुरुष सुनहु हरि जाना *" और "अबला अबल सहज जड जाती § ।" अत नारी वर्ग की माया को गोस्वामी जी ने नैसर्गिक जडता के धर्म से युक्त अनुभव किया है। इस जडता मे बराबर परिवर्तन सम्भव है, पर शाश्वत चैतन्य के अविरल स्वभाव मे निवास करने वाली अविरल भक्ति निरन्तर समरस रहती है। उसमे परिवर्तन नही होता ।

जिस व्यापक अचित् तत्त्व का विवेचन रामानुज के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के सिद्धान्त-ग्रन्थों मे हुआ है, उसके तीन भेद है—(१) शुद्ध सत्व, (२) मिश्र सत्त्व और (३) सत्त्वशून्य। सत्त्वशून्य अचित् तत्त्व 'काल' है। अत: काल जड तथा सत्त्व (अस्तित्व) शून्य होता है। प्राकृत सृष्टि की सामग्री मिश्र सत्त्व से उत्पन्न होती है । यह अस्तित्व मिश्र सत्त्व इसीलिए कहलाता है कि परमात्मा के इस सवत्ताश के भीतर रजोगुण भी मिले रहते है। इनके साथ मिश्रित हो कर परमात्मा का सत्त्वगुण मिश्र सत्त्व कहलाता है और इसी से त्रिगुणात्मिका सृष्टि उत्पन्न होती है। इसी मिश्र सत्त्व को माया, अविद्या या प्रकृति कहते है। इसको भेद दृष्टि से जब तक जीव परमात्मा से अलग देखता रहता है, तब तक वह इससे वासनात्मक दृष्टि के सम्बन्ध से बँध कर सीमित रहता है और जब इसको अद्वैत दृष्टि से परमात्मा के अभिन्न विशेषण की तरह देख लेता है तब उसकी वासना उपासना को स्थान दे देती है। माया का स्थान तब भक्ति ले लेती है। इस अवस्था को प्राप्त करके जीव परमात्मा का रूप हो जाता है। सीमित, विराट् हो जाता है—अपने और अनत के भीतर एकत्व को देख कर। गोस्वामी जी के वाल्मीकि का कथन 'जाने तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई' × इसी अवस्था का सकेत देता है।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ११६ के बाद । † उत्तरकांड, दोहा ११५ के बाद ।
$ उत्तरकांड, दोहा ११५ के बाद । * उत्तरकाड, दोहा ११५ के पहले । § वही ।
× अयोध्याकांड, दोहा १२६ के पहले ।

शुद्ध सत्त्व मे रजोगुण और तमोगुण का सर्वथा अभाव होता है। इसीलिए उसे शुद्ध सत्त्व कहते हैं। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार, नित्य प्रवाहित होने वाला ज्ञान का आनन्द इसी शुद्ध सत्त्व के माध्यम से उत्पन्न होता है। शुद्ध सत्त्व का जब उदय होता है तब अज्ञान-जन्य रजोगुण और अज्ञानरूप तमोगुण नष्ट हो जाते है। इसी अवस्था मे परमात्मा का अतिम रहस्य 'अद्वैत' ज्ञात हो जाता है और साधक ज्ञान के अद्वैत तथा शाश्वत आनन्द मे मग्न हो जाता है। यह शुद्ध सत्त्व अनत है, क्योकि अज्ञान की अवस्था मे उत्पन्न हुए भेदज्ञान के भीतर की खड कल्पनाओ का सीमा-विधान नष्ट हो कर एकत्व की अनतता मे विलीन हो जाता है। जो अकल (एकत्वरूप) को देख सकता है, वही व्यापक अनत का दर्शन कर सकता है। 'व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप' मे गोस्वामी जी ने इसी तथ्य को अनावृत्त किया है ‡।

शुद्ध सत्त्व के इसी अनत तेजोरूप द्रव्य से नित्य तथा मुक्त पुरुषो का शरीर बनता है है तथा उनके सत्कर्मो के सत्परिणामो के उपभोग को सम्भव बनाने के लिए स्वर्ग इत्यादि शाश्वत लोको की सृष्टि होती है। परमात्मा के व्यूहावतार इत्यादि के रूप भी इसी तत्त्व के बने हुए होते है। रामानुज के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुसार शरीर के आधार के बिना आत्मा की स्थिति कदापि सम्भव नही होती। बद्ध आत्माएँ मिश्र सत्त्व मे उत्पन्न हुए शरीर मे तथा मुक्त पुरुषों की आत्माएँ शुद्ध सत्त्व से उत्पन्न शरीर मे रहती है। इस तरह शुद्ध सत्त्व के पवित्र गुणो की उपासना हर अवस्था मे, रामानुज के सिद्धान्त के अनुसार, निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। यही गोस्वामी जी की अविरल हरिभक्ति है, जो शुद्ध सात्त्विकता की ही उपासना राम के भीतर करती है। जिस तरह शुद्ध सत्त्व के तेजोरूप द्रव्य से मुक्तात्माओं के तेजोरूप शरीर बनते है, उसी तरह शुद्ध सत्त्व की पवित्रता से प्रेरित हो कर उनके सुन्दर कर्म भी स्वार्थ से ऊपर उठ कर विश्व की रक्षा करते है। इसी शुद्ध-सत्त्व से सभूत राम के शील की उपासना गोस्वामी जी ने की है, इसी शुद्ध सत्त्व से परमात्मा की शाश्वत शक्ति का ऐश्वर्य, उसके अनिरुद्ध, सकर्षण तथा प्रद्युम्न रूप मे जगत् पर व्याप्त रहने वाले और अवतीर्ण होने वाले व्यूहावतारों के ऐश्वर्य, परमात्मा का परमपद—उसका परम स्थान, वह महाकाश जहाँ यह परमधाम स्थित रहता है तथा वैकुण्ठ और अयोध्या इत्यादि इसी शुद्ध सत्त्व के द्रव्य से निर्मित होते हैं।

तमिल भाषा को रामानुज के मत का अनुकूल माध्यम समझने वाला टेकलइ मत इस शुद्ध सत्त्व को जड मानता है तथा सस्कृत को इस मत का पवित्र माध्यम मानने वाला बडकलै मत इसे चित् (चैतन्ययुक्त) मानता है। गोस्वामी जी बडकलै मत के समर्थक प्रतीत होते है, क्योकि उनके वाल्मीकि ने राम से कहा है—"चिदानन्दमय देह तुम्हारी, बिगत बिकार जान अधिकारी"। अतः उनके अनुसार परमात्मा का शरीर चिन्मय, चैतन्ययुक्त तथा आनन्दमय तत्त्व के इसी शुद्ध सत्त्व से बनता है। उनके अनुसार इस अचिन्त्य अवस्था को, जो मिश्र सत्त्व के भौतिक शरीर से बिलकुल अलग है, अधिकारी तथा

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २०५। † अयोध्याकांड, दोहा १२६ के पहले।

रहस्यज्ञ व्यक्ति ही अनुभव कर सकते है। इस तरह गोस्वामी जी शुद्ध सत्त्व को चैतन्ययुक्त मानते है, जड नही।

इस तरह अपनी पूर्व परम्पराओं से आवश्यक तथा अनुकूल सामग्री जुटा कर गोस्वामी जी ने 'मानस' की सृष्टि की है। इस सृष्टि के भीतर उन्होंने शक्ति, शील और सौन्दर्य की अनुपम और सात्त्विक झाँकी राम तथा रामायण के आदर्श पात्रों के अन्य माध्यम से प्रस्तुत की है। पूर्णमानव मर्यादा पुरुषोतम के पूर्ण विकास का प्रथम सोपान बालकाड है, जिसे गोस्वामी जी जीवन के भीतर का विमल सन्तोष कहते है। उनके अनुसार जीवन का प्रारम्भ ऐसे कार्यो से होना चाहिए, जिनसे विमल सन्तोष की अनुभूति हो सके। अपने इस विमल सन्तोष की योजना का विस्तार गोस्वामी जी ने बालकांड के मगलश्लोको से प्रारम्भ करके अत तक एक अविरल प्रवाह मे प्रवाहित रखा है।

अपने 'मानस' के प्रारम्भ मे गोस्वामी जी ने वाणी और विनायक की प्रार्थना की है। सरस्वती और गणेश की इस प्रार्थना में गोस्वामी जी ने लोकमगल-विधायक अपने आदर्श राजा राम के जीवन मे विकसित होने वाले सब बीजो को एक साथ रख कर वाणी और विनायक की उपासना के साथ ही साथ राम की उपासना भी प्रारम्भ कर दी है। विनायक का नाम राम के लिए भी सार्थक है। विनायक का अर्थ विशिष्ट नेता होता है। वह विशिष्ट नेता आदर्श राजा ही है। इस सार्थकता के साथ विनायक शब्द राजा राम के आदर्श स्वरूप की भी व्यजना करता है। 'यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ‡' के नियम के अनुसार श्रेष्ठ आचरण वाले लोकमगल-विधायक राम अपने आदर्श शील के द्वारा लोक का आदर्श नेतृत्व करते है।

'मानस' के प्रथम मगलश्लोक में वाणी और विनायक वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मगल का विधान करने वाले अपने स्वभाव के कारण तुलसी के द्वारा पूजित हुए है। वाणी और विनायक दोनों वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मगल के स्रष्टा माने जाते है। वाणी, सरस्वती या बुद्धि के द्वारा मगल का विधान होता है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश मे काव्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है :—

काव्य यशसे अर्थकृते, व्यवहार विदे, शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे †।

काव्य या सरस्वती (वाणी) के द्वारा इन आचार्य ने यश, धन, शील, मगल, मुक्ति और प्रभावशाली हृदयग्राही उपदेश की सिद्धि का दर्शन किया है। भाव-साधना के द्वारा वाणी परमभाव 'मुक्ति' तक मनुष्य के विकास को पहुँचा देती है। इसी विकास के पथ पर उसे यश, धन, शील और मगल आप से आप प्राप्त हो जाते है। और वाणी ने जीवन के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के माध्यम से आकर्षक उपदेशों की व्यजना करके दुनिया मे असख्य बार मनुष्य के शील में क्रान्ति उत्पन्न की है। उसका प्रमाण मानव इतिहास के असख्य पृष्ठ

---

‡ गीता, अध्याय ३, श्लोक २१। † काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका २।

बराबर देते चले आये है। जिस मनुष्य के जीवन मे शब्द, अर्थ भाव, 'रस' और संगीत के माधुर्य 'छन्द' की संगति नही रहती वह मगल का दर्शन कभी नही कर सकता। अर्थसगत शब्दों का प्रयोग करने वाला शीलवान् मनुष्य अपनी मधुर वाणी के द्वारा ससार भर के हृदय पर राज्य करता है। वह स्वय मगलमय होता है और अपने प्रभाव के कारण मगल की निरन्तर सृष्टि करता रहता है। गोस्वामी जी के राम का स्वभाव उसी तरह का है। रामायण भर मे अपने राम के भीतर इसी शील के पूर्ण विकास की झाकी गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है। शिवपुत्र विनायक को भी शब्द, अर्थ, भाव, ध्वनि-माधुर्य और मगल की सिद्धि सहज प्राप्त है। निसर्ग मे ही उनका शील इस तरह का है, तभी वे विनायक है।

तुलसी के राजा राम के लिए वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मगल शब्द एक तरह से और अधिक सार्थक है। एक आदर्श नायक 'राजा' श्रम, वित्त, शील, स्वातन्त्र्य, और मगल के एक आदर्श सन्तुलन का विधान करता रहता है। श्रम, वित्त, शील, स्वातन्त्र्य के आदर्श सन्तुलन के पीछे चलने के लिए ही मगल बना हुआ है। किसी भी समाज मे मगल का विधान बिना इस सतुलन के हो ही नही सकता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने अपने आदर्श नायक राम के स्वभाव की व्यजना, वाणी और विनायक की स्तुति के रूप मे ही रामायण की सर्वप्रथम पक्तियों मे आरंभ कर दी है। समाज मे वर्ण-विभाजन श्रम के ही यथोचित विभाजन के लिए हुआ है। बिना इस विभाजन के किसी भी समाज को वित्त की सिद्धि नही प्राप्त हो सकती। बिना वित्त की सिद्धि के रस-सिद्धि 'शील का विकास' सम्भव नही है। दरिद्रता के भीतर कोई सद्‌गुण स्थिर ही नही रह सकता। यह साधारण मनुष्य का स्वभाव है कि सम्पन्नता मे ही उसका शील सुरक्षित रहता है। असाधारण के शील का व्याकरण दूसरा होता है, पर यह असाधारणता स्वभावतः ही सर्वसाधारण का स्वभाव नही बन सकती। बिना शील के स्वातन्त्र्य की कल्पना ही नही की जा सकती। चरित्रहीन स्वतन्त्र (अपने वश मे) कैसे रह सकता है। वह तो दुर्बलताओं की परवशता मे पड कर परतन्त्र ही रहता है। उसकी दुर्बलताएँ ही उस पर शासन करती रहती है और स्वार्थजन्य दुर्बलता के कारण मनुष्य सबसे दब कर हीनभावयुक्त दासता मे ही जीवन बिताता रहता है। गोस्वामी जी के राम ने इस दृष्टि से भी वर्ण, अर्थ, रस और छन्द के विनियोग मे अपनी प्रजा के भीतर मगल का विधान किया था। श्रम, वित्त, शील और स्वातन्त्र्य की सिद्धि प्राप्त करके मगलमय राजा राम के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति मगलमय हो गया था। रामचरितमानस भर मे इसी आदर्श श्रमसाधना, आदर्श वित्तसाधना, आदर्शशील भावना तथा आदर्श स्वातन्त्र्यसाधना का विकास गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है और अपनी इस योजना का पूर्वरूप बालकाड के इस प्रथम सोपान मे सृष्टि करके उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चतुर्वर्ग की सिद्धि के विश्वमंगल-विधान की यह आदर्श भारतीय पद्धति तुलसी का आदर्श है। इस आदर्श का पवित्र सकल्प वाणी और विनायक की अपने द्वारा की हुई स्तुति मे उन्होंने कर लिया है। विराट् विश्व की रक्षा की धर्म-भावना से परिचालित श्रमभावना ही तुलसी की आदर्श वर्णभावना, श्रमभावना तथा धर्मभावना है। इसी विश्वमगल विधान के द्वारा प्रेरित विश्वरक्षिका

वित्तभावना गोस्वामी जी की आदर्श वित्त भावना है। विश्व भर के कर्मों को सौन्दर्य प्रदान करने वाली रसभावना या शील भावना ही तुलसी की कामभावना है तथा विश्व भर की स्वतन्त्रता की भावना ही तुलसी की मोक्ष-भावना है। इसी विराट् व्यापिनी जीवन योजना को सभव बना कर एक विश्वाद्वैत मे प्रत्येक व्यक्ति को ढाल देने का सकल्प गोस्वामी जी ने इस प्रथम सोपान मे किया है तथा इस सकल्प की आशिक झाँकी को राम के बाल्यकाल मे प्राप्त करके उन्होंने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। राम चरित के मानस को उन्होने इसीलिए कलिकलुष विध्वसक माना है और उसके इस विशेषण को प्रत्येक सोपान के अंत की सूचना देने के समय उन्होंने 'कलिकलुषविध्वंसने रामचरितमानसे' कह कर दुहराया है। विश्वात्मैक्य के आधार पर स्थापित विश्मगल, कलियुग (कलह, युग) के कलुषो को, सघर्ष के अभिशापो को शान्त करके विरोध-विश्रान्ति को सभव बनाता है।

विमल सन्तोष की सिद्धि प्रदान करने वाली अपनी विश्वमगल विधान की भावना के आधार पर ही गोस्वामी जी ने इस सोपान के मगलाचरण के दूसरे श्लोक मे भवानी और शकर की प्रार्थना की है। भवसागर के विराट् रूप भव (शिव या स्रष्टा) की पत्नी भवानी (जगदम्बा) की भावना तुलसी ने विश्व की विराट् रक्षा-भावना को दृष्टि मे रख कर की है। शिव का भव रूप उनका स्रष्टा या रक्षक रूप है। उनका हर या रुद्र रूप प्रलयकर स्वभाव वाला है। शिव के भव रूप की पत्नी भवानी जगद्रक्षक शिव की जगद्रक्षिका शक्ति है। इस भावना के साथ गोस्वामी जी ने मगलमय या मगल विधान करने वाले शकर का ध्यान किया है। 'श' मगल और 'कर' करने वाले शिव का रूप ही शकर स्वरूप है और वह स्वय शिव या मगलमय है। भवानी श्रद्धा का रूप है। उसके भीतर शकर के लिए अटूट श्रद्धा है। श्रद्धा विचारजन्य वह भावना है जिसके भीतर श्रद्धेय के आदर्श कर्मो का निश्चय बराबर बना रहता है। इस निश्चय के साथ श्रद्धेय के प्रति पूज्य बुद्धि मिल कर श्रद्धा की सृष्टि करती है। श्रद्धा वह पवित्र भाव है जो श्रद्धेय से कुछ नही चाहता। वह केवल उसकी हृदय से उपासना करना चाहता है। भवानी जीवन की इसी ऊँचाई पर है। विश्वमगलविधान के सद्गुण को शकर मे देख कर ही भवानी उन पर श्रद्धा करती है। उनकी श्रद्धा का कोई दूसरा आधार नही है। उनके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए जब कामदहन के बाद सप्तऋषि आ कर कहते है—

कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ काम महेस।

तब तुलसी की उमा कहती है—

तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सविकारा।
हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।‡

गोस्वामी जी की उमा, शकर के इसी रूप को सामने रखती है। शकर विश्वमगल

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८९ और उसके बाद।

बराबर देते चले आये है। जिस मनुष्य के जीवन मे शब्द, अर्थ भाव, 'रस' और सगीत के माधुर्य 'छन्द' की सगति नही रहती वह मगल का दर्शन कभी नही कर सकता। अर्थमगत शब्दो का प्रयोग करने वाला शीलवान् मनुष्य अपनी मधुर वाणी के द्वारा ससार भर के हृदय पर राज्य करता हैं। वह स्वय मगलमय होता है और अपने प्रभाव के कारण मगल की निरन्तर सृष्टि करता रहता हैं। गोस्वामी जी के राम का स्वभाव इसी तरह का है। रामायण भर मे अपने राम के भीतर इसी शील के पूर्ण विकास की झाँकी गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है। शिवपुत्र विनायक को भी शब्द, अर्थ, भाव, ध्वनि-माधुर्य और मगल की सिद्धि सहज प्राप्त है। निसर्ग मे ही उनका शील इस तरह का है, तभी वे विनायक है।

तुलसी के राजा राम के लिए वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल शब्द एक तरह मे और अधिक सार्थक है। एक आदर्श नायक 'राजा' श्रम, वित्त, शील, स्वातन्त्र्य, और मगल के एक आदर्श सन्तुलन का विधान करता रहता है। श्रम, वित्त, शील, स्वातन्त्र्य के आदर्श सन्तुलन के पीछे चलने के लिए ही मगल बना हुआ है। किसी भी समाज मे मगल का विधान बिना इस सतुलन के हो ही नही सकता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने अपने आदर्श नायक राम के स्वभाव की व्यजना, वाणी और विनायक की स्तुति के रूप मे ही रामायण की सर्वप्रथम पक्तियो मे आरभ कर दी है। समाज मे वर्ण-विभाजन श्रम के ही यथोचित विभाजन के लिए हुआ है। बिना इस विभाजन के किसी भी समाज को वित्त की सिद्धि नही प्राप्त हो सकती। बिना वित्त की सिद्धि के रस-सिद्धि 'शील का विकास' सम्भव नही है। दरिद्रता के भीतर कोई सद्गुण स्थिर ही नही रह सकता। यह साधारण मनुष्य का स्वभाव है कि सम्पन्नता मे ही उसका शील सुरक्षित रहता है। असाधारण के शील का व्याकरण दूसरा होता है, पर यह असाधारणता स्वभावतः ही सर्वसाधारण का स्वभाव नही बन सकती। बिना शील के स्वातन्त्र्य की कल्पना ही नही की जा सकती। चरित्रहीन स्वतन्त्र (अपने वश मे) कैसे रह सकता है। वह तो दुर्बलताओं की परवशता मे पड कर परतन्त्र ही रहता है। उसकी दुर्बलताएँ ही उस पर शासन करती रहती है और स्वार्थजन्य दुर्बलता के कारण मनुष्य सबसे दब कर हीनभावयुक्त दासता मे ही जीवन बिताता रहता है। गोस्वामी जी के राम ने इस दृष्टि से भी वर्ण, अर्थ, रस और छन्द के विनियोग मे अपनी प्रजा के भीतर मगल का विधान किया था। श्रम, वित्त, शील और स्वातन्त्र्य की सिद्धि प्राप्त करके मगलमय राजा राम के राज्य मे प्रत्येक व्यक्ति मगलमय हो गया था। रामचरितमानस भर मे इसी आदर्श श्रमसाधना, आदर्श वित्तसाधना, आदर्शशील भावना तथा आदर्श स्वातन्त्र्यसाधना का विकास गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है और अपनी इस योजना का पूर्वरूप बालकाड के इस प्रथम सोपान मे सृष्टि करके उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चतुर्वर्ग की सिद्धि के विश्वमगल-विधान की यह आदर्श भारतीय पद्धति तुलसी का आदर्श है। इस आदर्श का पवित्र सकल्प वाणी और विनायक की अपने द्वारा की हुई स्तुति मे उन्होंने कर लिया है। विराट् विश्व की रक्षा की धर्म-भावना मे परिचालित श्रमभावना ही तुलसी की आदर्श वर्णभावना, श्रमभावना तथा धर्मभावना है। इसी विश्वमगल विधान के द्वारा प्रेरित विश्वरक्षिका

वित्तभावना गोस्वामी जी की आदर्श वित्त भावना है। विश्व भर के कर्मों को सौन्दर्य प्रदान करने वाली रसभावना या शील भावना ही तुलसी की कामभावना है तथा विश्व भर की स्वतन्त्रता की भावना ही तुलसी की मोक्ष-भावना है। इसी विराट् व्यापिनी जीवन योजना को सभव बना कर एक विश्वाद्वैत मे प्रत्येक व्यक्ति को ढाल देने का सकल्प गोस्वामी जी ने इस प्रथम सोपान मे किया है तथा इस सकल्प की आशिक झाँकी को राम के बाल्यकाल मे प्राप्त करके उन्होंने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। राम चरित के मानस को उन्होने इसीलिए कलिकलुष विध्वसक माना है और उसके इस विशेषण को प्रत्येक सोपान के अंत की सूचना देने के समय उन्होंने 'कलिकलुषविध्वंसने रामचरितमानसे' कह कर दुहराया है। विश्वात्मैक्य के आधार पर स्थापित विश्मगल, कलियुग (कलह, युग) के कलुषों को, सघर्ष के अभिशापो को शान्त करके विरोध-विश्रान्ति को सभव बनाता है।

विमल सन्तोष की सिद्धि प्रदान करने वाली अपनी विश्वमगल विधान की भावना के आधार पर ही गोस्वामी जी ने इस सोपान के मगलाचरण के दूसरे श्लोक मे भवानी और शकर की प्रार्थना की है। भवसागर के विराट् रूप भव (शिव या स्रष्टा) की पत्नी भवानी (जगदम्बा) की भावना तुलसी ने विश्व की विराट् रक्षा-भावना को दृष्टि मे रख कर की है। शिव का भव रूप उनका स्रष्टा या रक्षक रूप है। उनका हर या रुद्र रूप प्रलयकर स्वभाव वाला है। शिव के भव रूप की पत्नी भवानी जगद्रक्षक शिव की जगद्रक्षिका शक्ति है। इस भावना के साथ गोस्वामी जी ने मगलमय या मगल विधान करने वाले शकर का ध्यान किया है। 'श' मगल और 'कर' करने वाले शिव का रूप ही शकर स्वरूप है और वह स्वय शिव या मगलमय है। भवानी श्रद्धा का रूप है। उसके भीतर शकर के लिए अटूट श्रद्धा है। श्रद्धा विचारजन्य वह भावना है जिसके भीतर श्रद्धेय के आदर्श कर्मो का निश्चय बराबर बना रहता है। इस निश्चय के साथ श्रद्धेय के प्रति पूज्य बुद्धि मिल कर श्रद्धा की सृष्टि करती है। श्रद्धा वह पवित्र भाव है जो श्रद्धेय से कुछ नही चाहता। वह केवल उसकी हृदय से उपासना करना चाहता है। भवानी जीवन की इसी ऊँचाई पर है। विश्वमगलविधान के सद्गुण को शकर मे देख कर ही भवानी उन पर श्रद्धा करती है। उनकी श्रद्धा का कोई दूसरा आधार नही है। उनके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए जब कामदहन के बाद सप्तऋषि आ कर कहते है—

कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ काम महेस।

तब तुलसी की उमा कहती है—

तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सविकारा।
हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।‡

गोस्वामी जी की उमा, शकर के इसी रूप को सामने रखती है। शकर विश्वमगल

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८९ और उसके बाद।

विधाता है। अकाम और अभोगी रह कर, स्वार्थ की वासना से ऊपर उठ कर वे प्रत्येक कार्य सदा विश्वमगल को ध्यान मे रख कर करते है। इसीलिए वे शिव है। उमा की श्रद्धा शिव के मगलमय रूप के लिए है, अपने किसी स्वार्थ के लिए नही। उनके शिव विश्वरूप भगवान् की सेवा मे लीन हो कर योगस्थ हो गये है, इसीलिए वे शकर है और उनके इसी रूप की उपासना उमा करती है।

सन्देह विभाजक धर्म है और विश्वास सयोजक धर्म। सन्देह सघर्ष और भेद को उत्पन्न करता है तथा विश्वास शान्ति और अभेद की सृष्टि करता है। शान्ति और अभेद की स्थिति ही योग की स्थिति है, जिसमे व्यक्ति अपने को विराट् के साथ जोड कर सघर्ष से विरत हो जाता है, शान्ति की प्राप्ति कर लेता है।

विश्व का मगल-विधान वही साधक कर सकता है जिसके भीतर विश्वास के प्रकाश मे शान्ति और अभेद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गोस्वामी जी ने शकर के इसी विश्वासमय स्वरूप का दर्शन करके तथा उमा को श्रद्धास्वरूपिणी भावित करके विमल सन्तोष का अनुभव किया है। विश्वमगल-विधायक शकर के प्रति प्रत्येक व्यक्ति के भीतर उमा की श्रद्धा-भावना के समान ही भावना होनी चाहिए। विश्वमगल-विधायक परमात्मा की सिद्धि भी मनुष्य इसी अभेद के विश्वास और स्वार्थ रहित श्रद्धा के द्वारा ही कर सकता है। स्वान्त.स्थ ईश्वर—विराट् आत्मा—का अभेददर्शन व्यक्ति को श्रद्धास्वरूपिणी उमा और विश्वासरूप शिव की भक्ति के द्वारा ही हो सकता है। उनकी इस भक्ति के द्वारा श्रद्धा और विश्वास के पवित्र भावो को प्राप्त करने के बाद ही निश्छल हृदय मे अभेददर्शन उत्पन्न होता है।

श्रद्धा, विश्वास और बोध को ले कर ही जीवन पूर्ण होता है। श्रद्धा के भीतर निवास करने वाली वासनाहीन प्रवृत्ति, विश्वास के भीतर की अभेद भावना से मिल कर पूर्ण के बोध को उत्पन्न करती है। उमा-महेश्वर के ऐक्य के भीतर श्रद्धा और विश्वास एक ही स्थान मे निवास करते है। इसीलिए इस सोपान के प्रार्थना-श्लोकों के तीसरे श्लोक मे शकर को बोधमय मान कर गोस्वामी जी ने उन्हे अपना गुरु मान लिया है। पूर्णसत्य (परमात्मा) को इसी बोध से देख कर साधक जीवन की पूर्णता प्राप्त करके पूर्ण और वन्दनीय हो जाता है। उसके जीवन की वक्रता 'दुर्बलता' मगलमयी पूर्णता मे परिणत हो जाती है। वक्र चन्द्र की वन्दनीयता शकर के मस्तक पर पहुँच जाने से ही उत्पन्न होती है। इस सकेत के आधार से गोस्वामी जी एक और सत्य की ओर इगित करते हुए दिखाई पडते है। चन्द्र मन का प्रतीक और उस पर प्रभाव डालने वाला भी माना गया है। 'चन्द्रमा मनसोजात.' ‡ विराट् के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति की गवाही दे कर श्रुति (वेद) ने मन से चन्द्रमा के स्वाभाविक सम्बन्ध की सूचना दी है। शीतल मन, जब शकर (विश्वमगल विधान की भावना) और बोध (अभेद की अनासक्तिमय स्वार्थहीनता की स्थिति) को साथ ले कर वक्र (कठोर) होता है, तब उसकी वक्रता भी वन्दनीय हो जाती है। इस

‡ यजुर्वेद, अध्याय ३१, मन्त्र १२।

तरह विश्वमगल विधान के लिए कुछ दुष्टों का, करुणापूर्ण स्वार्थरहित क्रोध से, शासन करना वन्दनीय स्वभाव है। इसीलिए तुलसी के राम का क्रोध पूज्य है। यह क्रोध बोधमय और शकर होता है। इस बोधमय शकर के रूप का नित्यदर्शन गोस्वामी जी प्राप्त करना चाहते है और शकर के इसी रूप को वे अपना गुरु मानते है। उनके अनुसार लोकमगल विधायक को विश्वमगल विधान के अपने प्रयत्न मे शीतल मन को एक ही साथ शीतल और कठोर दोनो रूपो मे परिणत करना पडता है। एक ही समय वह साधुओं के लिए शीतल और दुष्टों के लिए वक्र होता है। ऐसा लोगमगल विधान करने वाला, तुलसी का जीवन भी शिवमय हो गया है। भोगों से दूर रह कर, स्वार्थ से अनासक्त रह कर उन्होने परमार्थमयी लोकमगल विधान की भावना की सिद्धि की है और उसी का प्रचार किया है। उनके अनुसार द्वितीया के वक्र चन्द्र को शिव ने अपने मस्तक पर इसीलिए धारण कर लिया है कि उसके भीतर जगत् के लिए वर्धिष्णु प्रकाश का सन्देह रहता है। शील की शीतलता के भीतर से उत्पन्न हुए जगन्मगल विधायक क्रोध की वक्रता को विश्वमगल का साधक अपने मस्तिष्क का श्रृंगार समझता है। यह क्रोध उसके बोध का सौन्दर्य होता है। इसीलिए इस सात्त्विक क्रोध की वक्रता को वह अपने हृदय और मस्तिष्क मे निरन्तर स्थान दे कर सुरक्षित रखता है। उसके बोध और भावना के भीतर जगन्मगल विधायक क्रोध की सात्त्विक और शीतल वक्रता निरन्तर निवास करती है। तुलसी के 'वन्दे बोधमय नित्य गुरु शकररूपिणम्। यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र. सर्वत्र वन्द्यते'‡ का यही अभिप्राय है। ऐसे पावन क्रोध की वक्रता जगत् मे सर्वत्र वन्दनीय होती है।

प्रायः भारत तथा विश्व भर के कवियों की यह प्रथा रही है कि अपने प्रारम्भिक शब्दों मे वे प्रबन्ध-काव्यों के विस्तार मे विकसित होने वाले आदर्शो का सकेत बीजरूप मे रख लिया करते थे। इसी नियम के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर शील के जिस विकास को गोस्वामी जी ने 'मानस' मे दिखाया है उसके बीज उन्होंने मंगलाचरण के अपने श्लोको मे रख लिया है। हमे शकर का आश्रय पा कर वक्र चन्द्र की जगद्वन्द्यता के भीतर रामचन्द्र की जगद्वन्द्यता का स्पष्ट सकेत इस तीसरे श्लोक मे अवश्य मिलता है। पूर्ण-शान्तस्वरूप राम तो जगद्वन्द्य है ही, पर उनका लोकमगल-विधायक वक्ररूप भी जगद्वन्द्य है। सात्त्विक क्रोध के तेज की वक्रता को लोकमगल के लिए अपने साथ रख कर वक्र रामचन्द्र भी सर्वत्र पूजित होते है। 'यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र· सर्वत्र वन्द्यते' से निश्चित ही उपर्युक्त ध्वनि होती है।

इस तरह राजा राम का जो आदर्शरूप रामचरितमानस के सब सोपानों मे आगे विकसित होने वाला है उसका बीज गोस्वामी जी ने वाणी, विनायक, भवानी और शकर की प्रार्थना के भीतर सुरक्षित करके रख लिया है। धर्मभावना, अर्थभावना, कामभावना (आदर्श शील या रस की भावना, क्योंकि भारतीय रससिद्धान्त आदर्श शील को ही रस के भीतर स्वीकार करता है, अनुचित अनुभूति उसके अनुसार रसाभास है) और मोक्ष-

‡ रामचरितमानस, बालकाड, श्लोक ३।

भावना का सम्यक् निर्देशन करके लोक के भीतर मगलविधान करने वाले राम आदर्श राजा है। अपने हृदय का पूर्ण श्रद्धा से शृगार करके सीता लोकमगल विधान के कार्य मे परम-विश्वासमय राम की सहयोगिनी बनती है। वह उनके शकररूप मे (लोकमगल विधायक रूप से) भवानी के समान, अपने जगद्रक्षक रूप का तादात्म्य स्थापित किये रहती है। भारतीय नारी के श्रद्धात्मक तथा स्वार्थरहित रूप के साथ सीता राम की उपासना करती है। ये सब सकेत वाणी, विनायक, भवानी और शकर की प्रार्थना के भीतर गोस्वामी जी ने आर्थी व्यजना के रूप मे गर्भित कर लिये है।

कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमान् की प्रार्थना करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है —

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।‡

इस प्रार्थना के द्वारा भी उन्होने सीताराम के आदर्शो की गहराई की आर्थी व्यजना की है। गोस्वामी जी के अनुसार जीवन की गहराई मे उतरे हुए आदर्श पुरुष ही वन्दनीय नही होते अपितु वे लोग भी वन्दनीय है जो उस गहराई का उन आदर्श पुरुषों मे दर्शन करके मुग्ध होते है। पुरुष और नारी के शील पर निखार चढाने के लिए भारतीय धर्मसाधना मे परमात्मा भी युगल रूप मे ससार मे उतारा गया है। गोस्वामी जी केवल राम के गुणो पर निछावर हो जाने वाले वाल्मीकि और हनुमान् की वन्दना नही करते। उनकी श्रद्धा इन दो महापुरुषो को इसलिए भी प्राप्त हो रही है कि सीता भी इनकी पूज्य है। सीता के आदर्श शील की बडी उच्च अनुभूति इनके हृदय मे है। अपने आत्म-विलोपन से राम की शक्ति को अमोघता प्रदान करने वाली सीता भी इनकी पूज्य हैं। राम की लोकमगल विधान की योजना की पूर्ति के लिए अपने को मिटा कर सीता ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाया है। रावण की अशोक वाटिका मे जीवन की पवित्रता की साधना करती हुई सीता ने राम के गौरव को परिवर्धित किया है। धोबी के सन्देह पर निर्वासन स्वीकार करके भी उन्होंने पुरुषोत्तम राम के त्याग मे अपूर्व ज्योति का सचार किया है, अपने पवित्र त्याग और पवित्र बलिदान से। विशुद्ध विज्ञान का यही लक्षण है। विशुद्ध विज्ञान की पवित्र समता को प्राप्त करके आदर्श पुरुष और नारी लोक के शील को पुरुषोत्तमता की मर्यादा की ओर आकृष्ट करने के लिए अपने जीवन को तप और त्याग के आदर्श सौन्दर्य की ज्योति से आलोकित करते है। सीता और राम यही करने के लिए जगत् मे अवतीर्ण हुए थे। और उनके जीवन की इसी पवित्रता को देख कर वाल्मीकि और हनुमान् विशुद्ध विज्ञान के प्रकाश से विभूषित हो उठे थे। श्रद्धालु और श्रद्धेय के इसी निश्छल सम्बन्ध का दर्शन करके गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ था। गोस्वामी जी के विमल सन्तोष का आधार श्रद्धालु और श्रद्धेय के विमल शील की अनुभूति भी है। इसी शील की अनुभूति को प्राप्त करके वाल्मीकि

‡ रामचरितमानस, बालकांड का मगलाचरण, श्लोक ४।

कवियों के ईश्वर हो गये तथा हनुमान् कपियों के । शील की उच्चतम अनुभूति की भावना करके तथा उससे मुग्ध हो कर वाल्मीकि कविश्रेष्ठ हो गये और हनुमान् कपिश्रेष्ठ ।

जो सन्तोष अपने वैयक्तिक स्वार्थ की सिद्धि मे प्राप्त होता है वह वासना से कलुषित हो कर मलिन होता है। जिस सन्तोष मे वैयक्तिक वासना की अनुभूति न हो कर विश्व के स्वार्थ की भावना निहित रहती है, वह विमल सन्तोष है । राम और सीता का जीवन विश्वमगलविधायक जीवन है। इस विराट् जीवन के सौन्दर्य का अनुभव करके गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है । राम और सीता के इसी जीवन को प्रत्येक नर-नारी के भीतर उत्पन्न करके लोकमगल विधान के अपने कार्य द्वारा वे भी विमल सन्तोष का अनुभव कर लेना चाहते है और उनका यह दावा है कि बालकाड के भीतर चित्रित जीवन के सौन्दर्य से जो अपने जीवन को विभूषित कर लेगा उसे विमल सन्तोष की सिद्धि हो जाएगी ।

अशुद्ध विज्ञान केवल अपने स्वार्थ को देखता रहता है, पर विशुद्ध विज्ञान सम्पूर्ण जगत् के सुख को देखता है। राम और सीता के व्यक्तित्व के भीतर लोकमगल-विधायक आदर्शों के पवित्र सौन्दर्य का दर्शन करने वाले कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमान् विशुद्ध विज्ञान स्वरूप है। इसीलिए इस विशुद्ध विज्ञान की वन्दना करके गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है।

रामचरितमानस के इसी मगलाचरण के प्रकरण मे रामवल्लभा सीता के विराट् स्वरूप को अभिवादन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है :—

उद्भवस्थितिसहारकारिणी क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करी सीता नतो ऽहं रामवल्लभाम् ।‡

इस वन्दना मे गोस्वामी जी ने अनत राम की वल्लभा, अनत शक्तिमती सीता का चित्र प्रस्तुत किया है। विराट् राम की अनत शक्ति के रूप मे सीता सृष्टि, स्थिति और सहार का कार्य किया करती है। राम की यह अनत शक्ति, सीता, उद्भव, स्थिति और संहार के तीनो कार्यो के द्वारा क्लेशो का नाश ही करती रहती है । विराट् जगत् में व्याप्त उसके इन तीनो कार्यो से सबका श्रेय (मगल) ही होता रहता है। अपने इन तीनों प्रकार के कार्यो को करती हुई वह सर्वश्रेयस्करी है । सृष्टि, स्थिति और सहार की प्रक्रियाओं के भीतर वह जीवों के सत्कर्मो और दुष्कर्मो के पुरस्कार और दण्ड दे कर उन्हे कर्मफल से मुक्त करती जाती है और बद्ध जीवो को भी प्रलय के समय सामूहिक दण्ड दे कर प्रलय की शाति मे विश्राम के लिए भेज देती है । अपने सगुणरूप मे भी सीता, आदर्शो का उद्भव करती है और उनकी रक्षा करके उन्हे स्थित रखती है तथा दुष्टो के सहार का कारण बनती है। राम और सीता का जीवन, लोक के भीतर व्याप्त उनके सब आदर्शो को समाहित और अग्रसर करता रहता है । आदर्शो की रक्षा

‡ रामचरितमानस, बालकाड का मगलाचरण, श्लोक ५ ।

और पापों के सहार मे सीता निरन्तर राम की सहयोगिनी बनी रहती हे । रावण के विनाश मे राम की सहायता करने के अपने कार्य के द्वारा मीता ने अपने जीवन भर के सुखो को तिलाजलि दे दी थी। सीता इसीलिए रामवल्लभा है, क्योंकि उन्होने अपने समग्र अस्तित्व को उपादान बना कर राम के आदर्शो के निर्माण मे अखड योग दिया है । उनके इसी सम्पूर्ण आत्मबलि करने वाले व्यक्तित्व को गोस्वामी जी ने नमस्कार किया है । उनके इसी रूप को ध्यान मे ला कर गोस्वामी जी को विमल सन्तोप का अनुभव हुआ है। वे नारी की इसी अनत पवित्रता के उपासक है।

रामायण के मगलाचरण मे तुलसी ने अवतारी राम के भी विराट् स्वरूप को ही नमस्कार किया है। राम के नाम और रूप को स्वीकार करके अवतीर्ण होने वाले विराट् ब्रह्म को नमस्कार करके, निर्गुण और सगुण के समन्वित रूप का ध्यान करके, गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। अपनी सगुणता के भीतर भी उनके राम अपने नरत्व के द्वारा नारायणत्व की उदारता को अपने विश्वजीवन के भीतर निरन्तर सुरक्षित रखते है। यह स्थिति भी तुलसी के विमल सन्तोष की आधारभूमि है। मीमा के भीतर रहने वाले मानव को वे असीम आदर्शो के असीम रूप मे देखना चाहते थे । अनंत नारायण, राम के मानव रूप के भीतर असीम आदर्शो को लेकर अवतीर्ण हुआ था, इसीलिए गोस्वामी जी ने राम की उपासना की । अपने विराट् राम की प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा है :—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिल ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्वादमृषेव भाति सकल रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्पावता
वन्दे ऽहं तमशेषकारणपर रामाख्यमीश हरिम् ।‡

बालकाड के मगलाचरण का यह श्लोक अवतारी राम के उपर्युक्त विराट् रूप का प्रतिपादन करता है। जिस विराट् की माया ब्रह्म और शिव की भी सृष्टि कर उनका नियन्त्रण करती रहती है, जिसका अस्तित्व समस्त जगत् मे व्याप्त है, पर अज्ञानी जीव उसे न पहचान कर जगत् को ही देखता रहता है, ठीक उसी तरह जिस तरह रस्सी को न पहचान कर अन्धकार मे देखने वाला, भ्रम से उसे सर्प समझ लेता है, जिसके चरणों का सहारा ससार-सागर को पार करने वाले के लिए एकमात्र नौका का काम करता है, अशेप कारणों के भी कारण उसी रामरूपी नारायण की उपासना गोस्वामी जी करते है।

उनके राम का सगुण रूप भी अपनी इन सब शक्तियों के साथ अवतीर्ण हुआ है। तुलसी के राम के सगुण रूप की उपासना भी ब्रह्मा, शिव तथा वेद इत्यादि देवशक्तियाँ करती है और उसकी अनंत शक्ति का अनुभव करके आश्चर्यचकित रहती है । उसके मायामय रूप को देख कर भ्रम के कारण रावण इत्यादि उसे मनुष्य ही समझते रहते है। दशरथ, कौसल्या, वाल्मीकि, भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् तथा विभीपण इत्यादि

‡ रामचरितमानस, बालकाड का मगलाचरण, श्लोक ६ ।

उसके चरणो की नौका का सहारा ले कर स्वार्थमय ससार-सागर को पार करके विराट् शील के मुक्तिलोक को प्राप्त कर लेते है। विराट् के इसी मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की वन्दना करके गोस्वामी जी को विमल संतोष का अनुभव हुआ है।

विमल सन्तोष की यह व्याप्ति गोस्वामी जी को एक लम्बी परम्परा के भीतर मिलने वाले राम के रूप से प्राप्त हुई है।

नानापुराण निगम और शास्त्रों मे शील का जो आदर्श रूप गोस्वामी जी ने प्राप्त किया, भारतीय भावधारा और विचारधारा के प्रवाह मे सत्त्वगुण की धारा के गम्भीर प्रवाह के साथ बहने वाली त्रिगुण की जिस पवित्र त्रिपथगा का दर्शन उन्हे हुआ, इस लम्बी परम्परा के भीतर राम के रूप की जो झाँकियाँ उन्हे दिखाई पड़ी तथा वाल्मीकि की रामायण मे राम के कर्मसौन्दर्य और रूपसौन्दर्य की जिस पराकोटि का दर्शन उन्होंने किया, उन सबकी समाहित साधना से उन्होंने अपने राम के व्यक्तित्व के भीतर शक्ति, शील और सौन्दर्य के व्यापक विकास का विधान करके एक अनुपम मर्यादा पुरुषोत्तम की सृष्टि की। लोकजीवन के भीतर भी आदर्श का सौन्दर्य गोस्वामी जी को जहाँ-जहाँ दिखाई पडा वहाँ-वहाँ से उसका सकलन और सचयन करके उससे भी उन्होंने अपने मर्यादापुरुषोत्तम के व्यक्तित्व की श्रीवृद्धि की है। उनके 'क्वचिदन्यतो ऽपि' ‡ का यह भी अर्थ हो सकता है। विश्वमानव की विराट् व्याप्ति के भीतर राम और सीता के व्यक्तित्व का सौन्दर्य-विधान करने के उपयुक्त शील और सौन्दर्य की सामग्री गोस्वामी जी को जहाँ कही भी मिली वहाँ से उन्होने उसका सग्रह अवश्य किया। गोस्वामी जी के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी है जो इस बात की साक्षी देती है कि तुलसी के साधक ने राम और सीता को खोजते हुए कई पुरुषों और स्त्रियों के दर्शन पा कर उनके शील के माधुर्य के आलोक से आलोकित हो अपने को धन्य माना था। आदर्श के दर्शन की अपनी इस प्रवृत्ति के कारण भी गोस्वामी जी ने 'सियाराममय सब जग' † की कामना और भावना की है। वे राम और सीता के शील को प्रत्येक पुरुष और स्त्री में देख लेना चाहते थे। इस कार्य के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष मे उनको शील की जितनी आवश्यक बाते दखने की इच्छा थी, उन सबको अपनी पूर्व-परम्पराओ तथा लोक के भीतर दिखाई पडने वाले उच्च शील के भीतर से उन्होंने चुन-चुन कर एकत्रित किया और शील तथा सौन्दर्य के इस कोष से उन्होंने अपने सीता और राम का शृगार कर दिया।

कला के लक्ष्य को कलाकार तक ही सीमित कर लेने की प्रवृत्ति एक समय चल पडी थी और यह माना जाने लगा था कि अपने आनन्द के लिए ही कलाकार कला को अभिव्यक्त करता है। इस सिद्धान्त को इसकी पूरी व्याप्ति के साथ समझा जाए तब तो कोई हानि नही, पर केवल अक्षरार्थ तक ही अपने चिन्तन को सीमित कर लेने वालों ने कला और साहित्य की व्याप्ति को ही खडित कर डाला। साहित्य के 'सहित' अश के उस

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड का मगलाचरण, श्लोक ७। † रामचरित मानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद।

अर्थ को भी उन्होंने ध्यान मे न रखा जो साहित्य को विश्व भर से सम्बद्ध कर देता है तथा वे साहित्य के उस अर्थ को भी भूल गये जो सम्पूर्ण विश्व की हितभावना को अपने साथ निरन्तर आबद्ध किये रहता है।

भारतीय दृष्टि, कवि और कलाकार उसी को मानती है जिसका हृदय नारायण का विश्वव्यापी हृदय हो जाए, तथा कला और साहित्य को वह पूर्ण जीवित तभी तक मानती है जब तक वह प्राकृत जन को अतिप्राकृत अवस्था तक पहुँचाने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम के शील के आलोक को विश्व भर मे फैलाने का प्रयास करती रहती है। कवि की अन्तर्वेदना लोकजीवन के भीतर शील का ह्रास देख कर उसके मर्म को पीडित करने लगती है, तब वह विश्व-जीवन के भीतर सीताराम को उत्पन्न करके स्वान्त सुख का अनुभव करता है। गोस्वामी जी का स्वान्तःसुख यही विश्वसुख है। महात्मा विश्वात्मा को सुखी बनाने का प्रयास करता रहता है और उसी प्रयास मे उसे विमल सन्तोष की अनुभूति होती रहती है।

सस्कृत की दीर्घकाल-व्यापिनी परम्परा जब लोकजीवन मे विच्छिन्न हो गयी तब रामकथा भी स्वाभाविक रूप से लोकजीवन के भीतर उस सरिता की तरह नही प्रवाहित हो रही थी, जिसमे जो जब चाहे तभी आदर्श का जल पी कर अपने सतप्त हृदय को शीतल बना सके। गोस्वामी जी का हृदय इस अवस्था को देख कर भी पीडित हुआ था। कुठा की इस स्थिति को समाप्त करने के लिए भी उन्होंने 'रघुनाथ गाथा' को 'अतिमंजुल भाषा निबन्ध'‡ का रूप दिया और रामकथा को सूखी हुई सरिता द्वार-द्वार पर प्रवाहित होने लगी। इसीलिए गोस्वामी जी ने यह संकल्प किया था—"भाषाबन्ध करबि मै सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई†" राम के शील को भाषा के द्वारा सर्वसुलभ बना कर ही गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया। अपनी इसी सार्थक प्रवृत्ति की सूचना गोस्वामी जी ने दोहावली मे 'का भाषा का सस्कृत प्रेम चाहिए साँच, काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच$।' से दी है। वे राम के शील के लिए सच्चे प्रेम का व्यापक प्रचार करना चाहते थे। उन्होने यह अनुभव किया कि इस प्रेम की व्यापकता के प्रचार के लिए एक युग मे सस्कृत उपयुक्त माध्यम थी। उनके युग मे स्थिति बदल गयी थी। सस्कृत समझने वाले कम रह गये थे। इसीलिए प्रेम के प्रचार के लिए उन्हे जनवाणी अवधी अधिक उपयुक्त जान पडी। भाषा और सस्कृत मे उनके सत हृदय को कोई अन्तर नही प्रतीत हुआ। सस्कृत को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान ही उन्होने दिया, उसे कुमाच 'रेशमी वस्त्र' कह कर। पर दुर्दिन मे रेशमी वस्त्र की अपेक्षा कम्बल ही अधिक उपयोगी होता है। वर्षा से वही रक्षा कर सकता है। भारत के उस दुर्दिन मे अवधी और ब्रजभाषा की कामरी से ही राम-प्रेम लोगों के हृदय मे रक्षित रह सकता था। सस्कृत का रेशमी वस्त्र महँगा हो गया था। उसके माध्यम से रामकथा का रसास्वाद लेना अर्थसाध्य था। इसीलिए युगवाणी अवधी और ब्रजभाषा का चुनाव गोस्वामी जी ने राम-प्रेम का प्रचार

‡ रामचरितमानस, बालकाड का मंगलाचरण, श्लोक ७। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३० के बाद। $ तुलसी दोहावली, दोहा ५७२।

करने के लिए किया। मस्कृत के ह्रास से राम-प्रेम का प्रचार जिस सीमित अवस्था मे पडा हुआ था उसे देख कर गोस्वामी जी सन्तप्त हो रहे थे। अपने इस ताप को स्वान्तःसुख और विमल सन्तोष के रूप मे परिवर्तित कर लेने के लिए, उन्होंने जनवाणियो का सहारा लिया। इस भाषा-चुनाव के पीछे राम-प्रेम का प्रचार करने की उनके हृदय की व्याकुलता ही छिपी है। अपनी इस प्रवृत्ति के द्वारा सीताराम को हज़ारों स्त्री-पुरुषों के हृदय तक पहुँचा कर उन्होंने स्वान्त.सुख और विमल सन्तोष का अनुभव किया। रामप्रेम की सरिता जब जनवाणी के प्रवाह मे प्रवाहित होने लगी तब लोकवाणी भी उन्हे 'अति मजुल' अनुभव होने लगी।

तुलसी की भक्ति का स्वरूप स्वार्थ की वासना के अभाव से बनता है और इसमे विश्वहित-साधना ही तुलसी के अनुसार परम मगलमय 'सुभ गुन' है और उनके अनुसार बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो मार्ग की बाधाओं को लाँघता हुआ विश्वहितसाधना तक पहुँचने का प्रयत्न करता रहे। ऐसा मनुष्य अपने क्रोध इत्यादि की कठोर वृत्तियों को भी मगल 'शिव' का अनुगामी बना सकता है। उन्होने गणेश की वन्दना जब भाषा मे की है तब उन्हे इन्ही गुणो से देखा है। वे 'बुद्धिरासि' तथा 'सुभ गुन सदन' है, क्योंकि उन्होंने सब उग्र स्वभाव वाले गुणो को, उचित मार्गदर्शन के द्वारा, शिव का अनुचर बना दिया है। विश्वमगल-विधान के कार्य मे अपने पिता शिव की सहायता गणेश ने सब उग्र स्वभाव वाली शक्तियो को मगलोन्मुखी बना कर की। उन सब को शिव का गण बना दिया। इसीलिए वे, गणेश 'गणों पर शासन करने वाले' या गणनायक 'गणों के नेता' कहलाये ‡। अपने मर्यादा-पुरुषोतम के भीतर भी गोस्वामी जी ने इसी मगलमयी शिव प्रवृत्ति का दर्शन किया है। उनके राम भी राक्षसी प्रवृत्तियों का दमन कर अपने शील के प्रभाव से उन्हे दैवी प्रकृति की ओर मोड़ देने मे पूर्ण सफल हुए है। मर्यादा पुरुषोत्तम के स्वभाव में भी हृदय की सब कठोर वृत्तियाँ सत्त्व से परिचालित हो कर सात्त्विक और कोमल हो गयी है। राम मे, शिव मे, गणनायक मे हमे स्वार्थ की वासना के दर्शन ही नही होते। गोस्वामी जी के 'गननायक' 'दयाल' और 'सकल-कलि-मल-दहन' है †। कलि के मल का स्वभाव ही स्वार्थजन्य लोभ है। उस स्वार्थजन्य लोभ को मगलकरण गणेश भस्म कर देते है।

गोस्वामी जी ने राम के मूलाधिदेवस्वरूप नारायण की वन्दना करने के समय भी उन्हे 'सदा छीरसागर-सयन' कहा है। छीरसागर अनंत धवलिमा का प्रतीक भी है। नारायण का स्वरूप अनत पवित्रता की अनत सात्त्विकता का उज्ज्वल स्वरूप है। विश्व-पालक नारायण अनत सात्त्विकता का केन्द्र है। इसीलिए गोस्वामी जी ने उसके 'सदा-छीर-सागर-सयन' रूप का ध्यान किया है। विश्वमगलविधान करने वाली शक्ति स्वार्थ से अस्पृष्ट रहती है। गोस्वामी जी का ध्यान इसी प्रकार के अनासक्ति योग की तरफ निरन्तर उन्मुख रहता है, इसीलिए नारायण के उस रूप का उन्होंने ध्यान किया है जो सदा सात्त्विकता के अनासक्ति योग का परमोच्च शिखर है। इसी अनासक्ति की पराकोटि

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा १। † रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा २।

को अपने हृदय मे सदा के लिए बिठा लेने को ही गोस्वामी जी ने कहा है—"करउ सो मम उर धाम सदा छीर-सागर-सयन ‡ ।" इस प्रकार नारायण मे भी स्वार्थ की वासना के अभाव की ही वन्दना गोस्वामी जी ने की है ।

नर के भी नारायणरूप के द्वारा प्रस्तुत होने वाला यह विश्वमगल विधान, साधक की करुणा और विश्वप्रेम तथा अपने स्वार्थो के प्रति अनासक्ति से होता है । इसीलिए विश्व-शक्तियों से गोस्वामी जी ने अपने लिए उनका अनुग्रह, उनकी कृपा, दया और उनका 'नेह' ही माँगा है तथा उनके स्वरूप के भीतर इन अपेक्षित गुणो की अनतता का उन्होंने दर्शन किया है । वे 'बुद्धिरासि', 'गननायक' से भी 'करउ अनुग्रह' ही कहते है, क्योकि उनकी कृपा से मूक भी वाचाल हो जाता है तथा पगु भी 'गहन गिरिवर' पर चढ जाता है । उनका यह आदर्श 'गननायक', 'दयाल' है † । उनके शिव भी 'करुना अयन' विश्ववेदना के निवास स्थल तथा 'मयन मर्दन' मदन, काम या आसक्तिजन्य इच्छा को मर्दित कर देने वाले या अपनी स्वार्थमयी वासनाओ के प्रति परम विरागी है । उन्हे 'दीन पर नेह' रहता है, इसीलिए उनसे भी गोस्वामी जी 'करउ कृपा' ही कहते है $ । क्योकि उनकी कृपा साधक को उन्ही के समान दयालु बना देती है ।

गोस्वामी जी के द्वारा अपने गुरु नरहरिदास मे भी करुणा और अनासक्ति का ही दर्शन किया गया है । उनमे भी गोस्वामी जी ने अनासक्त और कृपामय लोकमगल साधक का ही रूप देखा है । नर के रूप मे रहते हुए भी वे 'नररूपहरि' है । उनके नर का रूप विकसित हो कर नारायणत्व की अनत उदारता को प्राप्त कर चुका है । इसीलिए तो उन्होंने आश्रयहीन बालक रामबोला को महामहिम तुलसीदास के रूप मे परिवर्तित कर दिया । अपने स्वार्थो के छोटे ससार मे घिरे हुए व्यक्ति के हृदय मे सीमित करुणा अपने विशेष लोगों के लिए होती है, पर गोस्वामी जी के गुरु नरहरिदास नर से नारायण हो कर 'कृपासिन्धु' हो गये है । विश्वमगल विधायक को अपने भीतर अनतगामिनी कृपा की सिद्धि करके कृपासिन्धु हो जाना पडता है, अन्यथा सीमित कृपा से वह विश्वमगल विधान कैसे कर सकेगा । इस नारायणस्वरूप नर के भीतर क्रियाशक्ति से सम्बद्ध हो कर वाणी सर्वथा सत्यानुगामिनी और अमोघ हो जाती है । कहनी और करनी की यह एकाकारता विश्वमगल विधायक साधक के शब्दो को अमोघशक्ति-सम्पन्न मत्र के रूप से परिणत कर देती है । इसीलिए गोस्वामी जी के गुरु विश्वमगल नरहरिदास के 'बचन' 'महामोह-तम पुज' के लिए 'रवि कर निकर' के समान है । उनकी वाणी की अमोघ शक्ति सूर्य की किरणो के समूह 'रवि कर निकर' के समान है, जिसके सामने अपार अज्ञान के भी अधकार की राशि (महामोह तम पुज) विलीन हो जाती है * । नारायण के इसी नर रूप को देख कर गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव होता है । उनके राम भी नारायण के वही

‡ रामचरितमानस, बालकांड, सोरठा ३ । † रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा १–२ ।
$ रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा ३–४ । * रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा ५ ।

नर रूप है, जिनके भीतर विश्वमगलविधान की भावना प्रत्येक क्षण मे निवास करती है। जिसने अपने नारायण रूप की अनतता को विश्वमगलविधान के लिए नररूप मे सीमित कर लेने मे भी सकोच का अनुभव नही किया है। अपने गुरु के भीतर भी राम के इसी आदर्श का गोस्वामी जी ने दर्शन किया है और उस गुरु के चरणों मे नतमस्तक हो कर वे स्वयं महान् हो गये है, आदर्श के प्रति अपने इस स्नेह के कारण।

गोस्वामी जी के अनुसार स्वार्थहीन अनासक्ति की उत्पत्ति प्रणति या दीनता से होती है। प्रणति, विनय या दीनता भक्त के भीतर निरभिमानता की जननी बनती है। निरभिमानता के भीतर से स्वार्थहीनता की अनासक्ति उत्पन्न होती है। जब तक अपने व्यक्तित्व का, अह का ज्ञान मनुष्य के भीतर रहता है तब तक इस अह के साथ 'मम' की चेतना भी बनी रहती है। यह सीमित 'मम' उसके भीतर 'स्व' की आवश्यकता (ममता या स्वार्थ) को उत्पन्न करके उसके व्यक्तित्व को सीमित करता रहता है। ऐसी स्थिति मे यह विश्वमगल विधायक महामानव नही बन सकता। अत इसी महामानवत्व की साधना के लिए भक्ति-साधक को परम विनम्र होना पडता है। गुरु के चरणों पर जितना अधिक झुकना सम्भव होता है, वह उतना अधिक झुक कर ही सन्तुष्ट होता है। गुरु के चरणों मे सबसे अधिक झुकने की अवस्था वही है जिसमे चरणो की धूल का दर्शन करके भक्त अपने सब अभिमान को विसर्जित कर दे। इसी दीनता और प्रणति की अवस्था को प्राप्त करके गोस्वामी जी ने 'बदउ गुरु-पद-पदुम-परागा' कहा है। उन्होने गुरु के चरणकमलों के पराग की वन्दना की है। प्रणति की अतिम अवस्था उन्हे प्राप्त हो गयी है। इस निरभिमानता के दैन्य के भीतर उन्हे जहाँ-जहाँ राम की पवित्रता और उनके गौरव का कुछ भी लेश रहता है दिखाई पड जाता है। अभिमानी मनुष्य केवल अपने गुणों को देखता है और दूसरो के केवल दोषों को। निरभिमानी इसके विपरीत अपने केवल दोषों को देखता है और दूसरो के गुणों को ही। उसे यह सुरुचि, सुन्दर शील और कोमल अनुराग 'सुरुचि, सुबास, सरस अनुरागा' गुरु के चरणकमलो के पराग से ही प्राप्त होता है, क्योकि कमल के पराग मे सुरुचि 'सुन्दर रूप', सुबास 'सुन्दर गध' तथा सरस अनुराग 'कोमल लाली' रहती है। इस तरह प्रणति की निरभिमानतापूर्ण गुरुभक्ति के भीतर साधक को शील की इस ऊँचाई की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

गोस्वामी जी के अनुसार यह निरभिमानता उस अमृत की जड़ी के सुन्दर चूर्ण के समान है, जिससे भवरोग का सम्पूर्ण परिवार नष्ट हो जाता है—'अमिअ मूरिमय चूरन चारू, समन सकल-भव-रुज-परिवारू ‡'। निरभिमानता प्रदान करने वाली गुरु के चरण-कमलों की धूल स्वार्थ को वासना से उत्पन्न, स्वभाव के सब दोषों को नष्ट कर देती है।

गोस्वामी जी इसी विश्वमगलविधायिनी स्वार्थहीन निरभिमानता को शिव का स्वरूप मानते है।

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के पहले।

विश्वमगल का विधान करने वाले सुकृत रूपी शिव के शरीर पर यही उज्ज्वल भस्म लगा रहता है । इससे कोमल और मगलमय आनन्द की सृष्टि होती है—'सुकृत-सभु-तन बिमल बिभूती । मजुल-मगल-मोद-प्रसूती' ‡। निरभिमानता के आलोक मे कर्त्तव्य-बुद्धि के द्वारा जिस सुकृतमय शील का विकास व्यक्ति के भीतर होता है, वही मगलविधायक 'सभु' है और आदर्श शील का यह शिव निरभिमानता प्रदान करने वाली, गुरु के चरणकमलो की धूल को अपने शरीर का शृगार बना लेता है । निरभिमानता शील का शृगार है और जिस व्यक्ति के शील मे निरभिमानता रहती है वही विश्ववेदना और विश्वप्रेम के आलोक मे कोमल और मगलमय आनन्द की सृष्टि कर सकता है । स्वाथजन्य प्रवृत्तियाँ शिव नही बनतो । उनसे सवर्ष और अमगल की मृष्टि होती है । वैयक्तिक स्वार्थ की प्रेरणा से मनुष्य केवल सीमित 'शिव' मगल की सृष्टि कर सकता है । इस मगल मे उत्पन्न आनन्द कुछ लोगों के लिए ही कोमल होता है तथा औरो के लिए कठोर हो जाता है । स्वार्थपर बुद्धि दूसरों के मगल और आनन्द का सहार करके अपने कुछ लोगों के मगल और आनन्द की ही सृष्टि कर सकती है । दूसरो के आनन्द के सहार की कठोरता के भीतर से उत्पन्न यह सीमित आनन्द भी कठोर ही होता है, मजुल नही हो सकना । पर वैयक्तिक स्वार्थ के ऊपर उठा हुआ साधक विराट् और अनत 'शिव' मगल की मृष्टि करता रहता है और विश्ववेदना तथा विश्वप्रेम की अनुभूति के मूल से उत्पन्न यह अनत मगल-विश्वमगल-गोस्वामी जी के अनुसार 'मंजुल' कोमल होता है । इमीलिए गोस्वामो जी के शिव का स्वभाव परम मगलमय तथा कोमल है । स्वार्थ के ऊपर उठ कर इन शिव ने अनंत विराट् के साथ अपने को शाश्वत काल के लिए जोड लिया है । इमीलिए गोस्वामी जी की उमा कहती है—"हमरे जान सदा शिव जोगी †" । यह शिव निरन्तर विश्वमगल का विधान करता हुआ कोमल आनन्द की मृष्टि करता रहता है ।

गोस्वामी जी के अनुसार स्वार्थहीन निरभिमानता सब आदर्श गुणो की जननी है । राम के आदर्श चरित्र के शिल्पी गोस्वामी जी के साधक हृदय की दृष्टि में आदर्श गुणों के आकर्षक चित्र अनवरत प्रतिबिम्बित होते रहते है । 'गुरु-पद-पदुम-पराग' के भीतर से सब आदर्श गुणो की सृष्टि को वे सम्भव मानते है । 'जन-मन-मजु-मुकुर-मल-हरनी, किये तिलकु गुन-गन बस करनी $।' जिस तरह दर्पण कोमल पराग से रगड देने के बाद निर्मल हो कर चमक उठता है, उसी तरह गुरु के चरणकमलो के पराग से मनुष्य के मन पर से स्वार्थजन्य वासेनाओं की मलिनता नष्ट हो जाती है । शिष्य नतमस्तक हो कर गुरु के चरणो की धूल का तिलक जब अपने मस्तक पर लगा लेता है, तब उसकी निरभिमानता सब आदर्श गुणों के समूहों को अपने वश मे कर लेती है । इस तरह स्वार्थ को सब पापों और बुराइयों की जड़ और निरभिमानता को सब आदर्श गुणो का उद्गम स्थान गोस्वामी जी ने माना है ।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के पहले । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८९ के बाद । $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के पहले ।

स्वार्थहीन निरभिमानता ही विश्व को अपने भीतर बिठा लेने वाली दिव्य दृष्टि है। अभिमान को खो कर जिन लोगों की आँखे नत हो कर गुरु के पदनखों का दर्शन करती रहती है और उन नखो की ज्योति का स्मरण, जिनके हृदय बराबर करते रहते है, उन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है—'श्रीगुरुपदनख-मनिगन-जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती' ‡। गोस्वामी जी की यह दिव्य दृष्टि कोई ऐसी दृष्टि नही है, जिसका सम्बन्ध किसी आश्चर्यजनक वस्तु से हो और जो जीवन से कोई सम्बन्ध ही न रखती हो। गुरु के भीतर शील की जो गरिमा होती है उसी के सम्मुख आदर्श शिष्य नतमस्तक होता है। गुरु के पद-नखो को अपनी आँखो मे बिठा लेने से ज्ञान की मणि (ज्योति) शिष्य को प्राप्त हो जाती है। यह ज्योति कलुष-विहीन तथा निर्मल होती है। साधारण दीपक की ज्योति के साथ अजन की कालिमा भी लगी रहती है, पर मणि की ज्योति कज्जल की कालिमा से अस्पृष्ट रहती है। इसी अकलुष निर्मल ज्ञानज्योति की प्राप्ति निरहकार प्रणति मे होती है, इसीलिए गोस्वामी जी ने गुरु के नखो की ज्योति को 'मनि-गनजोती' कहा है। गुरु की कृपा से उसकी निरभिमानता शिष्य को भी प्राप्त हो जाती है, तभी वह हृदय की भीतरी दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेता है। अज्ञान के कारण जब मनुष्य स्वार्थबद्ध रहता है तब उसकी दृष्टि साधारण लौकिक या व्यावहारिक दृष्टि रहती है। उस दृष्टि मे सकीर्णता रहती है। पर ज्ञान के प्रकाश मे जो हृदय की भीतरी दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, वह अलौकिक, स्वर्गीय और उदार होती है। उसमे स्वार्थ की सकीर्णता के स्थान मे विश्वप्रेम, विश्ववेदना तथा विश्वमगल विधान की परमार्थमय आध्यात्मिक चेतना उत्पन्न हो जाती है। वह दृष्टि केवल अपने को न देख कर सम्पूर्ण जगत् को देखने लगती है। उसमे 'स्व' के स्थान मे 'सर्व' बैठ जाता है। वह स्वार्थ के ऊपर उठ कर सर्वार्थ को देखने लगती है। इस दृष्टि को प्राप्त करके मनुष्य के जन्म लेने का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। उसके भीतर पूर्ण मानवता, राम या स्वर्गीय जीवन उत्पन्न हो जाता है। स्वार्थमुक्त इस अनासक्ति को गोस्वामी जी परम प्रकाश मानते है। इस परम प्रकाश के सम्मुख मोह का अधकार नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति को गोस्वामी जी मानव के विकास की परम-भाग्यमयी स्थिति मानते है। 'दलन मोहतम सो सुप्रकासू, बडे भाग उर आवइ जासू' †। से वे इसी सत्य को प्रत्येक मानव तक पहुँचा कर उसे पूर्ण विकसित देखना चाहते है। उनके विमल सन्तोष का यही स्वरूप है।

विश्वमगल का दर्शन करने वाली दिव्यदृष्टि को गोस्वामी जी मानव के द्वारा प्राप्य सर्वोत्तम वरदान समझते है। गोस्वामी जी यह मानते है कि बडे भाग्य से जिसे यह उदार दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है उसके हृदय के भीतर अकलुष नेत्र खुल जाते है और जगत् की

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के पहले। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के पहले।

भेदज्ञानजनित स्वार्थमयी दृष्टि से उत्पन्न अज्ञान की रात्रि मे मिलने वाले दु ख और दोष मिट जाते है। वह स्वार्थ के सीमित आनन्द को लॉघ कर सर्वार्थ के परमानन्द मे खो जाता है। उनके उघरहि बिमल बिलोचन वे ही के, मिटहि दोष दुख भव रजनी के' का अभिप्राय यही है। स्वार्थ का दर्शन करने वाले नेत्र वासना से मलिन होते है तथा सर्वार्थ के दर्शन को प्राप्त कर लेने पर वे ही नेत्र ज्ञान की विमलता प्राप्त करके विमल हो जाते है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य के शील मे दोष लेशमात्र भी अवशिष्ट नही रह जाता। उसकी इसी विमल विलोचनत्व की अकलुष स्थिति को देख कर गोस्वामी जी को विमल सन्तोष होता है और उनके अनुसार, जिसके विलोचन इस तरह स्वार्थ की वासना से मुक्त हो कर विमल हो जाते है उसे भी सर्वार्थदर्शन की इस स्थिति मे विमल सन्तोष का अनुभव होता है। गोस्वामी जी के अनुसार स्वार्थ असन्तोष को रक्षित रखता है और सर्वार्थ असन्तोष को समाप्त करके अनत सन्तोष या वासना से विरहित विमल सन्तोष को जन्म देता है।

गोस्वामी जी के अनुसार विश्वप्रेम को देख लेने वाली यही दिव्य दृष्टि विश्वप्रेमी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के मणि के समान उज्ज्वल चरितो को देख सकती है। पवित्रता का दर्शन पवित्र ही कर सकता है। उसकी कल्पना तक करने की शक्ति अपवित्र हृदय मे नही होती। दिव्य दृष्टि की पवित्रता जिस हृदय को प्राप्त हो जाती है वह राम के पवित्र शील को मानवता के भीतर से खोज-खोज कर देख लेता है। नाना पुराण, निगम, आगम तथा लोक के भीतर मिलने वाले राम के सब आदर्श उसे चारों तरफ बिखरे हुए दिखाई पडने लगते है। राम का स्पष्ट सकेत देने वाले पुराण, निगम और आगम राम के शील के ज्ञात कोष है तथा दूसरे आदर्श पात्रो और व्यक्तियो के शील के भीतर राम की ही मर्यादा पुरुषोत्तमता का विकास चित्रित करने वाले पुराण इत्यादि उनके आदर्शो की गुप्त खान है। इसी तरह लोक के भीतर मनुष्यों के शील मे भी छिपे हुए राम को खोजने का प्रयत्न गोस्वामी जी ने गुरु से प्राप्त दिव्य दृष्टि द्वारा किया है। विश्वप्रेम मे आप्लावित गोस्वामी जी की यह दिव्य दृष्टि लोकजीवन के भीतर विकसित होने वाले, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील को देख कर उन्हे आत्मविभोर करती है। मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्श चरित्र को देखने वाली इसी दिव्य दृष्टि ने गोस्वामी जी के हृदय मे 'रामचरित मानस' की अनुभूति उत्पन्न की है। आदर्श साहित्यकार और स्रष्टा के रूप में उनकी इस स्थिति का सकेत उपर्युक्त उद्धरणों तथा उनकी 'सूझहि रामचरित मनि मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक' ‡। पक्ति से मिलता है।

गोस्वामी जी गौरवमय गुरु को ही विश्वमगल विधान की दिव्य दृष्टि का प्रदाता मानते है। वे इस बात को स्वीकार करते है कि सिद्धाजन को ऑख मे लगा लेने से साधकों, सिद्धो और सत्पुरुषों को पर्वतो, वनो और पृथ्वी के गर्भ मे छिपी हुई अपार धनराशि दिखाई पडती है। इसी तरह निरभिमानता और अनासक्ति को उत्पन्न करने वाली गुरु के चरणों की धूल का अजन जिसने अपने नेत्रों मे लगा लिया उसके 'दृगदोष' दूर हो जाते

‡ रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १ के पहले।

है। तब निरभिमानता की स्थिति मे उसे पृथ्वी के ही आदर्शों से सम्बद्ध मनुष्यों के शील के भीतर गुणों के रत्नो की निधि दिखाई पडने लगती है। वह दोषदर्शन के अभिमानी स्वभाव के ऊपर उठ कर गुणदर्शन के निरभिमान-युक्त स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। विवेक के इसी 'बिमल बिलोचन' से उसे राम के भी लोकादर्शों के अपार रत्न दिखाई पडते रहते है और वह जगत् को अपनी स्वार्थबद्ध दृष्टि से न देखने के कारण उसकी वासनाओं से मुक्त हो जाता है। स्वार्थदर्शन नेत्रों के लिए विष का काम करता रहता है। यह आत्मा की विभुता को मार कर उसे जीव के स्वार्थमय सकीर्ण रूप मे आबद्ध कर लेता है। पर निरभिमानता का सर्वार्थदर्शन आँखो के लिए अमृत का काम करता है। इससे मनुष्य की आत्मा अपनी विभुता को प्राप्त कर अमर हो जाती है। वासना का आकर्षण ही जीव को बार-बार जगत् में खीच लाता है। मृत्यु के बन्धन से वह नहीं छूटता। जन्म-सापेक्ष मृत्यु उसे बार-बार अपनी गोद मे ले कर एक वासनात्मक जीवन से दूसरे वासनात्मक जीवन तक पहुँचाती रहती है। पर जब वासनाओं से जीव का मन अनासक्त हो जाता है, तब मृत्यु उसे नही पाती। उसके लिए वासनात्मक जीवन समाप्त हो जाता है। वह फिर जन्म-मरण के चक्र मे नही आता। जन्म-मरण का चक्र भोग के लिए ही चलता रहता है। वासना के अभाव मे भोग का अभाव हो जाता है और जन्म-मरण का चक्र भी समाप्त हो जाता है।

इस स्थिति मे भी भक्त अपने लिए एक दूसरी मनोदशा का वरदान चाहता है। वह वरदान है—वासना से मुक्त हृदय से भगवान् के आदर्श शील और सौन्दर्य का दर्शन करने वाली मनोदशा का वरदान। यही वरदान वह भगवान् से माँगता है। इसी पवित्र हृदय को प्राप्त करके विवेक के विमल नेत्रों से गोस्वामी जी ने 'रामचरित' का साक्षात्कार किया है और इसी कारण उन्होंने रामचरित को 'भवमोचन' माना है। "जथा सुअजन आजि दृग, साधक, सिद्ध, सुजान, कौतुक देखहि सैल, बन, भूतल भूरि निधान। गुरु-पद-रज-मृदु-मजुल-अजन, नयन अमिअ दृग-दोष-विभजन। तेहि करि बिमल-विवेक-बिलोचन, बरनउ राम चरित भव-मोचन' ‡ से उपर्युक्त सिद्धान्तों की ओर ही गोस्वामी जी ने सकेत किया है। विवेक से विमल हुए नेत्र ही, गोस्वामी जी के अनुसार, निरभिमानता के सर्वार्थ-दर्शन से प्राप्त विमल सन्तोष के पास मनुष्य को पहुँचा सकते है। वैयक्तिक जीवन की वासनाओ का उपभोग कलुषित सन्तोष की ओर ले जाता है और विश्वजीवन के सुख की अनुभूति मे प्राप्त सन्तोष वासनारहित होने के कारण विमल हो जाता है।

अनासक्तिमय ब्राह्मणशील से भी विश्वमगल विधान की प्रक्रिया का दर्शन गोस्वामी जी ने किया है। ईश्वर और गुरु की वन्दना के बाद मगलाचरण की वन्दना के इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने सबसे पहले ब्राह्मण की वन्दना एक ही पक्ति में की है। पर उस एक ही पक्ति मे अपने विश्वमगल विधान की सम्पूर्ण योजना का बीज उन्होंने ब्राह्मण के शील के

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ और उसके बाद।

भीतर रख दिया है। ब्राह्मण का शील 'मोह-जनित' सब 'सशयो' को हर लेता है। मोह का अज्ञान ही स्वार्थ और सन्देह को उत्पन्न करता है। स्वार्थ और सन्देह से अविश्वास उत्पन्न होता है। अविश्वास से स्वार्थों के सघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। इस स्वार्थमय सघर्ष की मन स्थिति मे मनुष्य विश्वमगल विधायक स्वभाव से दूर जा पडता है। आत्मा की सकीर्णता की इसी सम्भावना को ब्राह्मण का शील समाप्त कर देता है। इसीलिए ब्राह्मण-शील की वन्दना सबसे पहले करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—"बदहुँ प्रथम मही-सुर-चरना, मोह-जनित-ससय सब हरना ‡"।

गोस्वामी जी ने अपनी इस मान्यता का अनवरत प्रचार किया है कि विश्वमगल विधायिनी दृष्टि मे गुणों के प्रति पूज्य भाव और दोषों के प्रति क्षमा भाव रहता है। इसी ब्राह्मण शील के प्रकाश मे गोस्वामी जी सम्पूर्ण मानव समाज को दो ही भागों मे विभक्त करते है। वे दो बडे-बडे भाग 'सुजन समाज' और 'खलगन' के है। इसीलिए सबसे आवश्यक ब्राह्मण के शील की वन्दना करने के बाद तुरन्त ही गोस्वामी जी 'सुजन समाज' की वन्दना करते हुए कहते है—"सुजन समाज सकल-गुन-खानी, करउ प्रनाम सप्रेम सुबानी" †। सज्जनों की वन्दना मे भी विश्वमगल विधायक गुणो की खान की ओर ही गोस्वामी जी की दृष्टि है। उनके अनुसार सज्जन विश्वमगल विधायक सब गुणो की खान होते है। इसीलिए वे वन्दनीय है। इन्ही सज्जनों के उज्ज्वल शील को गोस्वामी जी ने 'साधु चरित' कहा है। इस साधु चरित की तुलना वे कपास से करते है। कपास का फल नीरस, विशद और गुणमय 'सूत्रमय' होता है। कपास स्वय कष्ट उठाता है। आघात सह कर वह सूत और कपडे के रूप मे परिणत हो जाता है और दूसरो की लज्जा ढक कर उनका शृगार भी करता है, जिससे वे यशस्वी और वन्दनीय होते है। मूर्ख भी सुन्दर वस्त्र पहन कर एक बार वन्दनीय और यशस्वी आभासित होने लगता है। सत का शील भी इसी तरह का है। वह उत्पीडित हो कर भी पीडा पहुँचाने वाले को कष्ट नही पहुँचाता, प्रत्युत उसके दोषो को छिपाता ही रहता है। यही तक नही, अपने प्रभाव मे उन्हे वन्दनीय और यशस्वी बना देता है। सत अपने स्वार्थमय उपभोगो के प्रति नीरस रहता है, उनमे आसक्त नही होता; पर अपनी इस अनासक्ति से वह ऐसे शील की साधना करता रहता है जिससे विश्वमगल विधान होता है। उसकी यह नीरसता वासना से ऊपर उठ कर त्याग की करुणामयी धवलता से उज्ज्वल होती है। सत का स्वभाव यदि दूसरों के प्रति भी कठोर और नीरस दिखाई पडता है तो उसकी इस नीरसता और कठोरता का परिणाम उन व्यक्तियो के भीतर मानवोचित आदर्श गुणो के विकास के रूप मे ही प्रकट होता है। अपने जीवन को तपा कर सत लोकमगल विधान के लिए ज्ञान और शील की सामग्री सचित करता रहता है। इसी तरह उसके विमल सन्तोष की सिद्धि होती रहती है $।

अपने चारो तरफ आनन्द और मगल का विस्तार करने वाले सत समाज के भीतर गोस्वामी जी ने त्रिवेणी की अलौकिक पवित्रता का दर्शन किया है। उन्होंने सत समाज

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद।

को जगम तीर्थराज कहा है। इस त्रिवेणी मे भी गगा, यमुना और सरस्वती की तीन धाराएँ आपस मे मिल कर त्रिवेणी का सगम बना लेती है।

राम की पवित्र निश्छल सगुण भक्ति इस जगम तीर्थराज मे रहने वाली गगा की धारा है। गगा की धारा अपनी पवित्र धवलता के लिए प्रसिद्ध है। भक्त के हृदय में रामभक्ति की धारा भी अनासक्तिमय निश्छल प्रेम की पावनता और उज्ज्वलता से आलोकित रहती है। भक्त के रामप्रेम मे कोई कलुष नही रहता। वह स्वार्थ की वासना के कालुष्य से अस्पृष्ट रहता है। सत-समाज के भीतर प्रवाहित होने वाली राम की प्रेमभक्ति की धारा के तल में लोकमगल विधान की पवित्र भावना ही वर्तमान रहती है‡।

भक्ति मुख्यत प्रेम पर आधारित रहने के कारण हृदय धर्म है। विद्या बुद्धि-प्रसूत है। यहाँ सरस्वती भी बुद्धि-देवता है। विचार, बुद्धि का धर्म है। निर्गुण उपासना के भीतर ब्रह्मचिन्तन की धारा बुद्धि की भूमि पर ही प्रवाहित होती रहती है, इसीलिए वह बुद्धि-धर्मिणी है। निर्गुण उपासना बुद्धिप्रधान होने के कारण सत-समाज के जगम तीर्थराज मे सरस्वती की धारा के समान प्रवाहित होती रहती है। विशिष्टाद्वैत की उपासना-पद्धति 'चिद्चिद्विशिष्ट ब्रह्म'† की उपासना का प्रचार करती रहती है। केवल अद्वैत तत्त्व निर्गुण होता है और द्वैत भाव सगुण। पर रामानुज का विशिष्टाद्वैत-ब्रह्म, चित् (आत्मा) और अचित् (माया या प्रकृति) दोनों का समाहित रूप है। इसीलिए विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय मे उसकी उपासना भी हृदय के प्रेम, और बुद्धि के ज्ञान, दोनों की समाहित धारा के जल के अभिषेक से की जाती है। इसीलिए गोस्वामी जी ने अपने सत-समाज के चलते-फिरते प्रयाग मे रामभक्ति की पवित्र हृदय धारा की गगा और ब्रह्मचिन्तन की पवित्र बुद्धिधारा की सरस्वती का दर्शन किया है$।

गगा और सरस्वती की धाराओं के बाद यमुना की धारा की चर्चा भी गोस्वामी जी ने बडी सार्थक उपमा के रूप मे की है। यमुना 'रविनन्दिनी' है। सूर्य भी बुद्धि का देवता है। वह बुद्धि को प्रेरणा देता है। 'भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—गायत्री मन्त्र के इस खड मे बुद्धि को सन्मार्ग पर ले जाने के लिए सूर्य से प्रार्थना की गयी है। सूर्यपुत्री यमुना में शीतलता, श्यामता और पवित्रता के तीन गुण है। गोस्वामी जी ने 'विधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी करम-कथा' को सूर्यपुत्री यमुना माना है। ज्ञान के सूत्र से प्रसूत विधि-निषेध-मय कर्मो की कथा, उन कर्मो के विवेचन की पवित्र धारा ही यमुना की धारा है। विधि, सत्कर्मो की ओर प्रवृत्त होने के लिए शास्त्रीय आदेश को कहते है। यह आदेश मगलविधायक होने के कारण जीवन मे शान्ति, सन्तोष और शीतलता की सृष्टि करता है। यही 'करमकथा' की यमुना धारा की पवित्र शीतलता है। निषेध के द्वारा शास्त्र अकर्तव्यों की ओर से निवृत्त होने का आदेश देता है। पाप और दुष्कर्म मलिन तथा

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद। † आर० वेकटेश्वर, आनन्द मुद्रालय मद्रास द्वारा प्रकाशित श्रीभाष्य, पृष्ठ १०४-१०५। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद।

श्याम होते है। पर इनकी ओर जाने से रोकने वाला शास्त्रीय निषेध पाप और दुष्कर्म की की श्यामता को भी ज्ञान के आलोक मे ला कर निवृत्ति-बुद्धि के द्वारा उनकी भी चेतना को मनुष्य के भीतर पवित्र बना लेता है। आचरण पवित्र होना चाहिए। शास्त्रीय विधिवाक्य और आचरण दूषित नही होना चाहिए—शास्त्रीय निषेधवाक्य दोनों पवित्र है। कलिमल हरण के द्वारा विश्वमगल विधान के पवित्र दृष्टिकोण के कारण 'विधि-निषेध-मय, कलिमल-हरनी करमकथा' की यमुना-धारा मे विधि की शीतलता और निषेध के भीतर आये हुए पापों की श्यामलता की चर्चा है। ये दोनों, ज्ञान के आलोक मे विश्वमगल विधान के कार्य मे उपयोगी हो कर पवित्र हो गयी है। इस तरह सूर्यपुत्री यमुना की पवित्र शीतलता और पवित्र श्यामता के गुणो को गोस्वामी जी ने 'विधि-निषेध-मय, कलिमल-हरनी करम कथा' ‡ की यमुना धारा मे पूरी तरह से उतार लिया है।

रामभक्ति की गगा, ब्रह्मचिन्तन की सरस्वती और कर्तव्याकर्तव्य के विवेचन की यमुना, इन तीनों का सगम हरि (राम या विष्णु) और हर (शिव) के जीवन पथ पर ही गोस्वामी जी ने किया है। परममगलमय शिव और मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कथाओं के द्वारा उनका सत-समाज, भक्ति, ज्ञान और शील की गगा, सरस्वती और यमुना की धाराओं का समन्वय, उनका सगम, किया करता है। इसीलिए इस विराट् समन्वय के भीतर उनके रामपरम शिवभक्त, उनके शिवपरम रामभक्त, दोनों ब्रह्मस्वरूप और ज्ञानी तथा दोनों शील की परमोच्च भूमि पर स्थित है। इन्ही दोनो आदर्श विभूतियों की जीवनगाथाओ को अपना आधार बना कर गोस्वामी जी ने भक्ति, ज्ञान और शील के त्रिवेणी-सगम का निर्माण किया है। गोस्वामी जी की उपासना-पद्धति के भीतर गगा, सरस्वती और यमुना के जल की सगमजनित पवित्र एकता की तरह भक्ति, ज्ञान और शील नाम से अलग-अलग रहते हुए भी एक हो गये है। उनकी भक्ति—ज्ञान और शील का समाहित रूप है, उनका ज्ञान—भक्ति और शील का सगम है तथा उनके द्वारा प्रचारित शील, भक्ति और ज्ञान का ही ऐक्यप्राप्त विवर्त है। 'हरिहरकथा बिराजति बेनी' † के द्वारा, भक्ति, ज्ञान और शील की इसी त्रिवेणी की ओर गोस्वामी जी ने सकेत किया है।

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः' $ गीता के इस नियम के अनुसार अपने धर्म या कर्तव्य पर अविचल विश्वास ही सत समाज के जगम तीर्थराज का अक्षयवट है। जिस तरह तीर्थराज प्रयाग के अक्षयवट का नाश नही होता, वह अविचल और अक्षय रहता है, उसी तरह सतों का समाज अपने कर्तव्य धर्मो के प्रति अविचल विश्वास की प्रतिष्ठा किये रहता है और इसी अविचल विश्वास का प्रचार करता है। इसी अविचल विश्वास से धर्म और कर्तव्य के रूप मे सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है। पूर्ण धर्म ही पूर्ण अस्तित्व (सत्), पूर्ण चैतन्य (चित्) और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति को सभव बनाता है। यही नारायणत्व की प्राप्ति है। इसी कर्मठ मार्ग से राम प्राप्त होता है। राम तक ले जाने वाला

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद। $ गीता, अध्याय १८, श्लोक ४७।

पथ आलस्य से नही, अपितु कर्मनिष्ठा से बनता है । जिसमें नारायणत्व की प्राप्ति कराने वाला यह कर्तव्य-ज्ञान नही रहता, वह ससार मे दिखाई पडते हुए भी अनस्तित्वमय, अवस्तु और नगण्य होता है, उसमें चैतन्य की स्थिति का आभासमात्र रहता है अन्यथा अवस्तु वह जड ही रहता है तथा वह आनन्दित प्रतीत होते हुए भी दु खी ही रहता है। सच्चिदानन्द की उपलब्धि वह नही कर सकता । इस तरह भगवान् के धर्म और कर्तव्यमय रूप का प्रचार ही गोस्वामी जी का सत समाज करता रहता है । 'बट-विश्वास अचल निज धर्मा' से गोस्वामी जी इसी तथ्य की ओर सकेत कर रहे है‡ ।

भक्ति, ज्ञान, शील और धर्म के प्रति अविचल विश्वास की सश्लिष्ट और समाहित परिणति गोस्वामी जी ने 'सुकर्म' मे देखी है । सतों के समाज के सुकर्म की पवित्रता ही तीर्थराज की सर्वतोमुखी सचित पवित्रता है । यह सुकर्म विश्वमगल विधायक सुकर्म है । यह वही पूर्ण कर्म है जिससे अपने किसी विशेष व्यक्ति की ही नही, विश्व भर की रक्षा होती रहती है । इन्ही सत्कर्तव्यों का प्रचार सत समाज करता रहता है । सत समाज के इस तीर्थराज के सम्पर्क मे आ जाने पर व्यक्ति को पूर्ण अर्थ, पूर्ण काम और पूर्ण मोक्ष की सिद्धि प्राप्त हो जाती है । उसके कर्म, सर्व की रक्षा करने लगते है, पूर्ण के रक्षाविधान मे जुड जाते है, उसकी सम्पत्ति पूर्ण को सम्पन्न बनाने लगती है, उसका काम, उसकी इच्छाएँ सम्पूर्ण के सुख की बात सोचने लगती है, तथा अपने वैयक्तिक स्वार्थ से वह पूर्णत मुक्त हो कर पूर्ण पुरुष बन जाता है । गोस्वामी जी के 'तीरथराज समाज सुकर्मा' † मे यही सत्य अभिव्यक्त होता है ।

इसी पूर्ण और अनत विकास को प्राप्त कर लेने वाले मानव को अपने ध्यान मे ला कर गोस्वामी जी ने कहा है—

> बिधि-हरि-हर-कबि-कोबिद-बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ।
> सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि-गुन-गन जैसे ।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और विद्वान् के शब्दो मे भी पूर्ण और अनत नही बँ सकता । साधु का शील अनत और पूर्ण शील हो जाता है । इसीलिए वाणी की सीमित शक्ति को वह लाँघ जाता है । भक्त, सत और साधु का शील देश और काल की सीमा को लाँघ कर अनत हो जाता है । वह उसके जीवन-काल मे भी 'जगत हित' करता हुआ अनत रहता है तथा एक जीवन की सीमाओ के बाद भी अनतकाल तक इतिहास के अनत पृष्ठो का सुशोभित करता हुआ अनतकाल तक मानव के शील का शृंगार करता रहता है । उसका नाम सुन कर मनुष्य शीलवान् बनते है । अनत स्वय यदि सीमा मे आ कर अपने नामों का प्रभाव बताना चाहे तो उसकी भी वाणी सीमित हो जाएगी और अपने नाम के प्रभाव को वह पूर्णत न बता सकेगा । गोस्वामी जी के 'राम न सकहि नामगुन गाई' $ का यही अभिप्राय है । इसी तरह के संत की वन्दना करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है :

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद । $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २६ के पहले ।

बन्दउ सन्त समान चित हित अनहित नहि कोउ ।
अजलि गत सुभ-सुमन जिमि, सम सुगध कर दोउ ।
सत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ मनेहु ।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम-चरन-रति देहु‡ ।

सत की इसी पूर्णता को गोस्वामी जी राम-चरन-रति का परिणाम मानते है। राम के शील मे समचित्तता, शत्रुमित्रभाव का अभाव, सरलचित्तता तथा जगतहित की कामना और स्वाभाविक स्नेह एक साथ अपनी पूर्णता पर पहुँचे हुए दिखाई देते है। राम के इन आदर्शो के लिए अपने हृदय मे जो व्यक्ति स्नेह की सिद्धि कर लेगा, वह सत हो जाएगा। सत के इसी शील विकास की वन्दना करके गोस्वामी जी पूर्ण शील की भावना के द्वारा 'राम-चरन-रति' मे मग्न हो जाते है। सतसमाज की त्रिवेणी मे सतो का यह स्वभाव 'करम-कथा' की यमुना की शीतलता और पवित्रता है। इसमे सतोष और शीतलता प्रदान करने वाला राम का शील है। 'करम-कथा' का यह पवित्र विधि-भाग है। यह स्वय प्रकाशित सत्पथ है।

जिस तरह सच्चे भाव से गोस्वामी जी ने सतों की वन्दना की है, उसी तरह दुष्टो की वन्दना भी वे सच्चे और निश्छल हृदय से करते है। 'बहुरि बन्दि खलगन सतिभाये'† से वे अपनी इसी स्थिति को स्पष्ट करते है। उनके अनुसार किसी भी साधक के लिए साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए संत और असत दोनो का ध्यान आवश्यक है। सतो के ध्यान के द्वारा वह राम के पथ पर चलने के लिए प्रकाश पाता है और असंतों के निरन्तर ध्यान से वह असत स्वभाव से बचता रहता है। इसीलिए गोस्वामी जी उपयोगी असत को भी अपना पथ प्रदर्शक मान कर उससे भी स्नेह ही करते है। निश्छल सहानुभूति वे, खल के लिए भी, अपने हृदय मे रखते है। जिस तरह वे सतो के भक्त है उसी तरह दुष्टों के भी। हरिजन तथा खलजन के लिए गोस्वामी जी का निश्छल हृदय अपने भीतर सहानुभूति का भाव ही धारण करता है। उनके भीतर हरि, सत तथा खल के लिए समान प्रेम है, क्योंकि शीलविकास के लिए ये तीनो समान उपयोगी होते है। गोस्वामी जी ने 'सग्रह त्याग न बिनु पहचाने'$ कह कर अपना यह दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। यही कारण है कि अपना निश्छल प्रेम ले कर गोस्वामी जी खलो के भी जन बन जाते है और निश्छल प्रेम से उनकी वन्दना करते है। 'जानि पानिजुग जोरि जनु बिनती करइ सप्रीति'* मे उन्होने इस सरल भाव के द्वारा खलो की वन्दना की है। खल स्वभाव का यही पवित्र चिन्तन 'करमकथा' का निषेध भाग है और यही 'करमकथा' की 'रविनन्दिनी' की पवित्र श्यामता है। गोस्वामी जी खलों से प्रेम करते है, पर उनकी दुष्टता का वर्णन वे इसीलिए करते है कि लोग उस स्वभाव से अपने को अलग रखे।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ५ के बाद। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ४।

गोस्वामी जी ब्रह्मा की सृष्टि के भीतर केवल मनुष्यों के ही गुण-अवगुण का विवेचन नही करते। एक पवित्र साधक की सरलचितना के द्वारा वे इस सम्पूर्ण सृष्टि के भीतर गुण-दोष का विभाजन कर लेते है। दुख और सुख, पाप और पुण्य दिन और रात, साधु और असाधु, सुजाति और कुजाति, दानव और देव, उच्च और नीच, अमृत और विष, माया और ब्रह्म, जीव और ईश्वर, लक्ष्मी और दरिद्र, रक और राजा, काशी और मगहर, गगा और कर्मनासा, मरु और मालव, ब्राह्मण और चाण्डाल, स्वर्ग और नरक, अनुराग और विराग इत्यादि 'गुन-दोष-विभाग' को गोस्वामी जी वेदो के लिए भी अगम मानते है। 'निगम अगम गुन-दोष बिभागा' ‡ इस अनत द्वद्वात्मक जगत् के भीतर से सग्रह और त्याग की पद्धति बतलाते हुए गोस्वामी जी ने चिन्तन, ज्ञान, विवेक और सहानुभूति की एक उदार नीति की स्थापना की है। उन्होंने कहा है—

जड चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। †

ब्रह्मा के इस गुण-दोषमय जगत् मे से गुणरूपी पय को सतरूपी हस ले लेता है और दोषमय जल को निकाल देता है। सत के स्वभाव मे चिन्तन, ज्ञान और विवेकयुक्त सहानुभूति रहती है। शील की शक्ति की इसी सामग्री को ले कर सत जगत् के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखता है। असत स्वभाव से दूर रहने के लिए वह चिन्तन, ज्ञान और विवेक का उपयोग करता रहता है तथा असतो के प्रति स्नेह भी अपनी सहानुभूति के द्वारा बनाये रखता है। उनसे घृणा नही करता। सग्रह और त्याग के इसी सहानुभूति-पूर्ण नियमन की चर्चा के बाद गोस्वामी जी ने इस पद्धति का उपसहार करते हुए 'अस बिबेक जब देइ विधाता , तब तजि दोष गुनहि मनु राता' $ कहा है।

अद्वैत का चिन्तन करने वाला साधक किसी से द्वेष नही करता। वह तो सम्पूर्ण विश्व को एक विराट् नियम के अधीन चलता हुआ देखता है और इसी लिए पापी से भी द्वेष नही करता। वह इस बात पर विश्वास करता है कि शील की अनत शक्ति काल के स्वभाव और कर्मो की प्रबल शक्ति को भी भस्म कर सकती है। सत के पास यह शक्ति होती है। दुर्बल असत, कालस्वभाव, युग के धर्म और कर्मो की प्रचड शक्ति से विवश हो जाता है। 'काल सुभाउ करम बरियाई, भलेउ प्रकृति बस चुकई भलाई' से गोस्वामी जी ने इसी तथ्य को प्रकट किया है *। वे इस बात पर बल देते है कि सत अपनी अनत शक्ति का उपयोग करके दुर्बल असत को सुधार कर अपने हृदय से लगा ले। 'सो सुधारि हरि जन जिमि लेही, दलि दुख दोषु बिमल जसु देही' § से गोस्वामी जी का यही सिद्धान्त प्रचारित होता है। उन्होंने इस बात को पूरा-पूरा अनुभव कर लिया है कि 'कुजोग' और 'सुजोग', 'कुसग' और 'सुसग' से ही दोष और गुण, हानि और लाभ उत्पन्न होते है। 'हानि कुसग

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६ के पहले। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६ के बाद। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६ के बाद। § वही।

सुसगति लाहू ‡' के सिद्धान्त को उन्होंने हृदय मे अनुभव कर लिया है। राम के शील का सुयोग प्राप्त होने पर सत विकसित होता है और कुसग का कुयोग मिलने पर खल स्वभाव का विकास होता है। इसीलिए जीव और जगत् के भीतर बैठे हुए प्रेरक राम की वन्दना करते हुए गोस्वामी जी ने खल के भीतर भी उसी का दर्शन किया है। 'जड चेतन जग जीव जस सकल राममय जानि, बंदउ सबके पद-कमल सदा जोरि जुग पानि †'। राममय जगत् को देखने वाले अभेददर्शी सत के हृदय मे खल के लिए अनत महानुभूति रहती है। उसमे राम का दर्शन करते हुए उसके भीतर सोये हुए राम को जगाने का वह सतत प्रयास करता रहता है। असाधु के भीतर भी राम के शील को जगाने की क्षमता उसे कभी प्राप्त न होती यदि वह 'आ कर चारि लाख चौरासी, जाति जीव नभ-जल-थल-वासी। सीय-राम-मय सब जग जानी, करउ प्रनाम जोरि जुग पानी $।' कह सकने की निरभिमानतापूर्ण अभेद दृष्टि की सिद्धि अपने भीतर न कर सका होता। इस अभेददर्शन के कारण ही गोस्वामी जी का सत स्वभाव खलों के लिए भी इतना सहानुभूतिपूर्ण है, उन्हे भी सुधारना चाहता है और सीताराम के शील और उनके अस्तित्व का दर्शन विश्व भर के व्यक्तित्व के भीतर कर लेने का इच्छुक है। खल के भीतर भी पूर्ण राम का विकास कर लेने की सात्त्विक वासना के कारण ही उनके भीतर खलो के लिए अनत सहानुभूति है। सत स्वभाव की इसी उदारतापूर्ण सहानुभूति को देख कर गोस्वामी जी को सतधर्म के आधार पर भी विमल सन्तोष का अनुभव होता है।

गोस्वामी जी एक प्रकार के अपरिवर्तनीय खल स्वभाव को भी सत्य मानते है। वे मानते है कि उनका अभग मलिन स्वभाव नही मिटता। 'मिटइ न मलिन सुभाउ अभगू *' से वे इसी सत्य की घोषणा करते है। इसी अभग मलिन स्वभाव वाले खलशील रावण से जगत् की रक्षा करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम को विश्ववेदनाजनित अपने सात्त्विक क्रोध का उपयोग करके राक्षसी प्रवृत्तियों का नाश भी करना पडता है। ऐसे मगलमय नाश की कल्पनामात्र से गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव होता है।

विधिनिषेध का सम्यक् सचालन करने वाले अनत शक्तिवान् राम की इस अनत नियत्रण शक्ति का अनुभव करके गोस्वामी जी कहते है—"करन चहउ रघुपति गुन गाहा, लघु मति मोरि चरित अवगाहा"। वे अनुभव करते है कि अनत गभीरता की थाह छोटी-सी बुद्धि को कैसे लग सकती है। 'रामचरितमानस' की अपनी विराट् साहित्य साधना को राम की अनंतता के सम्मुख वे 'बाल वचन' ही मानते हैं ×। सतों के 'रामपदनेह' पर विश्वास करके उन्हे यह साहस हो जाता है कि इस बाल प्रयास मे भी 'रामपदनेह' है और इससे सज्जन सुखी होंगे। जिनके भीतर 'हरि-हर-पद-रति' होगी उनके लिए 'रघुवर' की कथा अवश्य 'मधुर' होगी। गोस्वामी जी इस बात को बड़ी नम्रता से कह देते है कि कोई

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के पूर्व। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६ के बाद। × रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ८ के पहले।

कलात्मक सौन्दर्य न होते हुए भी मेरी 'भनिति' मे 'एक बिस्वबिदित गुन' है। वह गुण है राम की अनत शक्ति, उनके शील और सौन्दर्य का वर्णन करने का बाल प्रयास। सुमतिवान् और विमल विवेक वाले ऐसा विचार करके इस 'भनिति' को अवश्य सुनेगे ‡। विमल विवेक के द्वारा सुमति को प्राप्त करके जो व्यक्ति राम के शील की कथा को सुनता है उसे विमल सन्तोष का अनुभव होता है। ऐसे सत के शील को देख कर तुलसी ने भी विमल सन्तोष का अनुभव किया है। पुराणों और श्रुतियों के द्वारा प्रचारित सात्त्विक शील और सात्त्विक शक्ति के अनत भण्डार राम का उदार नाम रामचरितमानस मे है। इस नाम मे अनत पावनता है। यह नाम मगल के साधक और अमगल के विनाशक राम का है, इसीलिए यह स्वय मगलभवन और अमगलहारी है। इस नाम का उमासहित निरन्तर स्मरण करने वाले शिव ने भी त्रिपुर इत्यादि के रूप मे ससार के अमगलो का विनाश कर अमगलहारी और मगलभवन होने की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। राम की इसी अनत शक्ति और शील के द्वारा विश्वमगल-विधान और विश्वअमगल-नाश को अनुभव करके गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। यह शील उन्हे जिन-जिन शक्ति-केन्द्रों मे दिखाई पडता है उन सब का साक्षात्कार करके गास्वामी जी विमल सन्तोष का अनुभव करते है। राम के इसी उदार नाम के बल का उन्हे विश्वास है और वे समझते है कि उनकी कृति 'रामचरितमानस' सत समाज मे सम्मान प्राप्त करके अपने प्रचार के द्वारा विश्वमगल विधायिका बन जाएगी †।

विश्ववेदना के लोकमगल विधायक अभेदवादी आदर्शो की ओर निरन्तर दृष्टि रखने वाले गोस्वामी जी को साहित्य केवल कलात्मक अग के आदर्श को प्राप्त करके अपनी ओर आकृष्ट नही कर सकता। कला-सिद्ध कवि की वह वाणी जिसमे कला का सौन्दर्य अपनी सीमा पर पहुँच गया हो, गोस्वामी जी की दृष्टि में कोई महत्त्व नही रखता, यदि उसमे राम का नाम न हो। राम के शील के द्वारा प्रस्तुत जीवन की झाँकी यदि उसमे न दिखाई पडे, तो तुलसी उस साहित्य मे कोई आकर्षण नही पाते। उनके अनुसार वह कविता उस चन्द्रमुखी नारी की तरह है, जिसका शृगार तो नखशिख तक पूरा किया गया हो, पर उसे नग्न ही रखा गया हो। पूर्ण सुसज्जित हो कर भी ऐसी स्त्री परिष्कृत रुचि वाले दर्शक के भीतर जुगुप्सा का भाव ही उत्पन्न करेगी। इसी प्रकार की जुगुप्सा का अनुभव गोस्वामी जी ऐसी कविता को देख कर करते है, जिसमें कला की तो पूर्ण सज्जा हो, पर राम के शील के विश्वमगल विधायक आदर्शो के लिए कोई स्थान न हो $।

इसके ठीक विपरीत, अल्पकलात्मक सामग्री को साथ ले कर एक अनुभवहीन कवि भी राम के नाम की मुद्रा से अपनी कविता को अकित करके सतों से आदर और सम्मान प्राप्त कर लेता है। राम के आदर्श शील का अकन जिस कविता मे रहता है, सत उसे ही सम्मान देते है। सतो का ध्यान कवि की कला पर नही, उसकी लोकमगल विधायिनी आकाक्षा पर रहता है। राम के शील का प्रचार करने वाला साधक कलात्मक सिद्धि

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ९ और उसके पहले की पक्तियाँ। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ९ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ९ के बाद।

से दूर रह कर भी लोकादर्शों का सिद्ध तो रहता ही है। गोस्वामी जी आदर्श जीवन का व्यापक प्रचार करने वाले ऐसे ही कवियों को सम्मान देते है। कला की निरर्थक कारीगरी को ये कविता नही मानते। जीवन का शृगार करने की पीड़ा, जिस कवि के हृदय मे विकृत जीवन को देख कर होती है, गोस्वामी जी उसी को सच्चा कवि मानते है ‡।

स्वय रस-सिद्ध कवि होते हुए भी बडी नम्रता से गोस्वामी जी ने अपने को नीरस कवि स्वीकार कर लिया है। उन्होंने जीवन की सब स्वार्थमयी वासनात्मक अनुभूतियो को राम की लोकमगल विधायिनी अनुभूतियों मे लीन कर दिया है। अनुभूतियो की यह राम-मय एकाकारता हृदय की वह सरस मुक्ति की अवस्था है, जिसमे 'सियाराममय सब जग' की अनुभूति प्राप्त हो जाती है। इस अनुभूति के भीतर हृदय के सब धर्म लोकमगलविधान के साथ जुड जाते है। कविता को भोग और मनोरजन की दृष्टि मे जो लोग सरस मानते है, उनके मापदण्ड से गोस्वामी जी कविता का मूल्याकन नही करते, उन्हे जिस कविता में 'राम-प्रताप प्रगट' † नही दिखाई पडता, उसकी वासनात्मक तथा स्वार्थमय सब अनुभूतियों को गोस्वामी जी अनुपयोगी समझते है। उन्हे इसी बात का पूरा भरोसा है कि उनकी कविता मे 'राम-प्रताप प्रगट' है। यही उनका सहारा है। राम के गौरव को अपनी कविता मे पा कर वे उसे गौरवशालिनी मानते है। गोस्वामी जी यह मानते है कि 'भदेस भनिति' मे भी 'भलि बरनी रामकथा' वस्तु 'जगमगल करनी' $ होती है। अत गोस्वामी जी की दृष्टि कविता के कलापक्ष की ओर मुख्यतः उन्मुख न रह कर उसके जगमगलकारी पक्ष की ओर ही झुकी रहती है। गोस्वामी जी इस सिद्धान्त को प्रचारित करते है कि जिस तरह वक्रगति से प्रवाहित होने वाली पवित्र जल की नदी सबको पवित्र बनाती चलती है, उसी तरह 'मगल करनी कलिमल हरनी रघुनाथ कथा' को ले कर टेढी-मेढी चाल से बहने वाली भोडी कविता की नदी भी राम के सुयश के कारण विश्व को पवित्र करके जगद्वन्द्य हो जाती है * साहित्य के इसी आदर्श को अपने सामने रख कर गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। जो साहित्य इस आदर्श से गिर जाता है, उसे देख कर वे पीडित होते है।

निर्माण का कार्य बुद्धि से होता है। सरस्वती बुद्धि-देवता है। इसीलिए स्रष्टा ब्रह्मा उसी की बुद्धिशक्ति से सृजन का कार्य करता है। उसी की बुद्धिशक्ति को पा कर वह वेदो का ज्ञाता है। वह इसी बुद्धिशक्ति का कोष अपने पास रखने के कारण ज्ञान का भण्डार माना जाता है। सरस्वती का निवास इसी स्रष्टा के भवन मे है। गोस्वामी जी के अनुसार लोकमगल विधायिनी आदर्शशीलस्वरूपा भक्ति की व्यजना करने वाला साहित्य ही सच्चा साहित्य है। इस भक्ति के आधार पर आदर्श समाज का निर्माण करने के लिए जब कवि, बुद्धि की देवी सरस्वती का ध्यान करता है, तब वह ब्रह्मा के भवन को छोड़ कर दौड़ कर आती है। उसकी यह थकावट करोडों उपायो से भी नही जा सकती,

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ९ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ९ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ९ के बाद। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १० के पहले।

रामचरित के सरोवर मे बिना स्नान कराये वह स्वस्थ नही होती। इसी स्थिति का अपन हृदय मे अनुभव करके कवि और बुद्धिमान् लोग 'कलिमल हारी हरिजस' गाते है । जिस वाणी से विश्वमगल विधायक 'हरिजस' का प्रचार नही होता, वह व्यर्थ नष्ट हो जाती है। यही गोस्वामी जी का वाणी की सिद्धि का सिद्धान्त है‡।

गोस्वामी जी के अनुसार 'प्राकृत जन' का 'गुनगान' करने के कवि के प्रयास को देख कर सरस्वती अपना सिर पीट कर पछताने लगती है। गोस्वामी जी का यह 'प्राकृतजन' शब्द किसी भी प्रकार के प्रजातात्रिक युग मे सार्थक हो सकता है। गोस्वामी जी के अनुसार प्राकृत जन वही होता है जो 'कचन', 'कोह' और 'काम' का 'किकर' हो। सोना, सुन्दरी और क्रोध का किकर ससार मे कोई बडा काम नही कर सकता। विश्वमगल विधान के लिए जो आत्मबलि राम ने दी, वैसी आत्मबलि देने की क्षमता स्वार्थजन्य वासनाओं के दास के हृदय को कभी नही प्राप्त हो सकती। ऐसा प्राकृत जन वही है जो प्राकृतिक वासनाओं से स्वार्थबुद्धि को ले कर बँधा रहता है। प्राकृतिक आकर्षण से उत्पन्न वासनाओ के ऊपर अपने को उठा कर जो स्वार्थमुक्त हो सकता है, वही राम के आदर्श पथ पर चल सकता है। गोस्वामी जी के अनुसार स्वार्थबद्ध ऐसा प्राकृत जन एक साधुवेश-धारी वचक मनुष्य भी है, एक विलासी राजा भी है तथा लोभासक्त अकिचन दरिद्र आदमी भी। ये तीनो प्रकार के लोग राम के पथ से दूर है। विश्ववेदना जो बलिदान चाहती है वह उनमे नही है। गोस्वामी जी के अनुसार रावण के समान भक्त और पडित पूज्य नही है। भक्ति और शास्त्रज्ञान तो उन ऋषियों के सराहनीय थे, जिन्होंने राक्षसों को शरीर दे दिये, पर अहिसक ब्राह्मण स्वभाव को नहीं छोडा। स्वार्थो की बलि दे देने वाले जनक और दशरथ भी राम के पथ पर थे। राम के प्रेम में डूब कर अपने स्वार्थो को भूल जाने वाले भरत, लक्ष्मण, जटायु, हनुमान्, गुह, निषाद और शबरी पूज्य है, पर त्रिलोक विजेता राजा रावण नही। अत. राम के पथ पर चलने वाला कोई भी व्यक्ति प्रकृतिमुक्त हो कर पूर्णपुरुष आदर्श मानव हो सकता है। इसी अप्राकृत या अतिप्राकृत मानव की उपासना गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम तथा मानस के और आदर्श पात्रो मे की है। यही शील उनके विमल सन्तोष का मूल दर्शन है। इसीलिए राजा राम को छोड़ गोस्वामी जी ने किसी दूसरे राजा का 'गुनगान' नही किया। यदि यह राजा राम उन्हे गुह, निषाद और शबरी के हृदयों मे भी दिखाई पडा तो उन्होंने उनका भी 'गुनगान' मुक्तकठ से किया है। इस तरह गोस्वामी जी दुनिया के सब राजाओं, रंको और साधुवेशधारी वचक मनुष्यो को राजा राम के आत्म-बलिदानमय जीवन की ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करके उन सबकी उपासना करना चाहते थे। 'सब जग' के भीतर 'सियाराम' की सम्भावना का दर्शन करके उसी सियाराम के स्वर्गीय जीवन को वे पृथ्वी पर उतार लेना चाहते थे†।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १० के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ११ के पहले।

गोस्वामी जी के अनुसार वही कवि आदर्श कविता का जन्मदाता हो सकता है, जिसका हृदय समुद्र के समान गम्भीर, विस्तृत और उदार हो । सम्पूर्ण लोकजीवन के सुख-दुख के योग की सिद्धि, जो हृदय नही प्राप्त कर सकता, वह विश्वमगल विधान करने वाली कविता को जन्म नही दे सकता । अनुभूति के साथ अनतव्यापी हृदय की, कवि के लिए प्रथम आवश्यकता है । उज्ज्वल विचार शक्ति से सम्पन्न मति की सीपी भी उसके हृदय-सिन्धु के लिए आवश्यक है । बिना पवित्र चिन्तन के हृदय की अनत-व्यापिनी शक्ति सम्भव ही नही है । अनत को अपने पवित्र चिन्तन मे लाए बिना कोई भी साधक उसे अपनी अनुभूति से नही जोड सकता । अनत अनुभूति और अनत चिन्तन दोनो परस्पर सापेक्ष्य अन्योन्याश्रित हृदय और बुद्धिधर्म है । जब साधक इन दो प्रकार की शक्तियों मे सम्पन्न बन जाता है तब बुद्धि की देवी सरस्वती स्वाती बन कर श्रेष्ठ विचारो की वर्षा ऐसे कवि की मति पर करती है । इस तरह पवित्र अनतव्यापिनी अनुभूति और उज्ज्वल तथा सर्वव्यापी विचारो के आदर्श सन्तुलन को ले कर कविता के धवल और कान्तिमान मोती कवि की मति-सीपी मे बन जाते है । कविता के इन धवल मोतियों को विश्वमगल विधान के उपायो से छेद कर इस सम्पूर्ण मगलविधान मे व्याप्त रहने वाले 'रामचरित' के सुन्दर सूत्र मे कवि पिरो लेता है । इस साधना से सिद्ध किये हुए कविता-मुक्ता के हार को जो सज्जन अपने विमल हृदय पर धारण कर लेते है उन्हे विश्ववेदना और विश्वप्रेम का राममय जीवन प्राप्त हो जाता है । विश्ववेदना और विश्वप्रेम को उत्पन्न करने वाली इस कविता को गोस्वामी जी श्रेष्ठ कविता मानते है, जो विश्वव्यापिनी पवित्र अनुभूति और विश्वमगल विधान के पवित्र विचारों के आदर्श अनुपात की एकाकार परिणति से कवि की विश्वव्यापिनी सत्ता के भीतर प्रस्फुरित और प्रस्फुटित होती है ‡ । इस आदर्श पर खरी उतरने वाली कविता को देख कर ही गोस्वामी जी को विमल सन्तोष होता है । इस तरह राम के जीवन और अपने काव्य की भूमिका के इस काड मे कवि के सम्पूर्ण दायित्व के आदर्श रूपों और जीवन के समग्र आदर्श तत्त्वों का ध्यान करके गोस्वामी जी ने विश्वमगल से सम्बद्ध विमल सन्तोष का अनभव किया है ।

अपनी नम्रता के कारण और अनत राम के अनतशील की व्यापकता का अनुभव करके गोस्वामी जी ने अपनी सफाई देते हुए कह दिया है कि 'मति अनुरूप राम गुन गावउँ † । गोस्वामी जी इस बात को स्पष्ट घोषित कर देना चाहते है कि राम के शील का साक्षात्कार जो मनुष्य जहाँ तक अपनी शक्ति के अनुसार कर सकता है वही तक वह उसकी अभिव्यक्ति भी कर सकता है । राम के शील के भीतर स्वार्थो के प्रति अनत अनासक्ति को देख कर, तुलसी का महात्मा हृदय तुलनात्मक दृष्टि से अपने को 'निरत ससारा' ससार से आसक्त ही अनुभव करता है $ । 'रघुपति के अपार चरित' * के सामने अपनी

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ११ और उसके पहले । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १२ के पहले । $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १२ के पहले । * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १२ के पहले ।

निरभिमानता के कारण तुलसी का सत अपने को बिलकुल क्षुद्र अनुभव करता है। वह कहता है—"राम की शक्ति की असीमता को समझ कर, मेरा मन उसका वर्णन करने के पहले बडे भय और सकोच में पड गया है‡" । अनत की भावना करने के पहले सत की सीमित बुद्धि इसी कठिनाई का अनुभव करती है। गीता के 'यो बुद्धे परतस्तु स' का यही अभिप्राय है† । 'बुद्धे पर बुद्ध्वा' कह कर गीता इसी सत्य की ओर इगित करती है $ ।

बुद्धि की देवी सरस्वती, शेष, महेश, ब्रह्मा, वेद, शास्त्र और पुराण जिसके गुणो का गान, उसे अनत बता कर ही करते है, उस अनत को, सीमा के भीतर के रूप रगों को आधार बना कर सोचने वाली बुद्धि कैसे प्राप्त कर सकती है * ।

इस अनतता की अकल्पनीय व्यापकता को जानते हुए भी उसकी प्रभुता का वर्णन किये बिना किसी से रहा नही जाता। परम आकर्षणमय के सौन्दर्य का वर्णन करने से कोई अपने को रोक नही सकता, चाहे वह वर्णन अपूर्ण और आशिक ही क्यों न हो। सीमित मानव अनत बन जाने की अपनी साध को ले कर उस अनत के वर्णन के द्वारा उसे अपने हृदय और मन मे बाँध लेने का प्रयत्न करता रहता है। यह उसका शाश्वत स्वभाव है। इसीलिए भजन की यह पद्धति किसी के लिए वर्ज्य नही है। अपूर्ण प्रयत्न करता हुआ ही साधक पूर्ण को प्राप्त करता है। यह स्वाभाविक अपूर्ण प्रयत्न उसका सहज और विहित प्रयत्न है§ ।

एक स्वार्थी जीव की सब इच्छाओ से दूर रहने वाला, अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानद, परधाम, व्यापक विश्वरूप, भगवान् ही देह धारण करके नानाचरित करते है। यह तुलसी का, भक्तिसम्प्रदाय-सम्मत मत है। तुलसी के द्वारा विश्वरूप भगवान् का 'परधाम' विशेषण गीता के 'मत्तः परतर नान्यत्किंचिदस्ति धनजय'× 'अर्जुन! मेरे बाद कुछ नही है' के अनुसार ही प्रयुक्त हुआ होगा। लोकमगल विधान में आसक्त भक्तो के आग्रह से ही भगवान् दया करके उन प्रणतो को प्राप्त होता है। 'निर्ममो निरहकार स शान्तिमधिगच्छति। एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ' का यही अभिप्राय है। ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करके विश्वमगल विधान की भावना से जब भक्त भगवान् को पुकारता है तभी वह प्रकट होता है + ।

यह अनत जब 'रघुराज' हो कर अवतीर्ण होता है, तब भक्त के लिए उसके भीतर बडी ममता होती है। अपने जन के लिए अपार स्नेह को ले कर वह अवतीर्ण होता है। एक बार करुणापूर्ण नेत्रों से भक्त को देख कर फिर उस पर वह कभी क्रोध करता ही नही। वह बिगडी हुई बातों को बनाने वाला तथा दीन का रक्षक होता है। वह अपनी सर्वशक्तिमता के साथ शील की अपार सरलता को भी लेता आता है। बुद्धिमान् लोग

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १२ के पहले। † गीता, अध्याय ३, श्लोक २। $ गीता, अध्याय ३, श्लोक ४३। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १२। § रामचरित-मानस, बालकाड, दोहा १२ के बाद। × गीता, अध्याय ७, श्लोक ७। + गीता, अध्याय २, श्लोक ७१–७२।

उसके इसी शील के कारण उसका यशोगान करते हुए नही थकते । इसी यशोगान के द्वारा आदर्श अनुभूतियो तथा चिन्तनो से वे अपनी वाणी को 'सुफल' बनाते रहते है ‡ । अवतार का यही रूप गोस्वामी जी को आकृष्ट करता है । इसी रूप के साथ जो आदर्श जुडे हुए है उनकी कल्पना, इस बालकाड मे करके गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है ।

अपनी पूर्व परम्पराओं, समकालीन रामसाहित्य की साधनाओ तथा भविष्य के सम्भावित राम-साहित्य के साधकों के प्रति तुलसी की विमल सन्तोषपूर्ण अपार भक्ति है । 'सियाराममय सब जग' की भावना मे चराचर की वन्दना मे अपनी रामभक्ति को प्रतिबिंबित करते हुए गोस्वामी जी ने अपने साधक हृदय की पवित्रता की बडी मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है । अपनी निश्छल निरभिमानता के भीतर वे उन सब साधकों के प्रति आभारी है, जिनके पवित्र श्रम से राम के आदर्श रूप पर कान्ति की आभा चढ़ायी गयी है । वे बडी नम्रता से इस बात को स्वीकार करते है कि अतीत के मुनियो के 'हरिकीरति' गान से उपासना का मेरा पथ 'सुगम' हो गया है तथा इस दुर्गम पथ पर चलने के लिए मुझे बल मिल गया है । राम के सर्वतोमुख सौन्दर्य के वर्णन की अपनी सफलता का पूरा श्रेय गोस्वामी जी ने अतीत के अपने अग्रज साधको को ही दिया है † । व्यास इत्यादि श्रेष्ठ कवियों की वन्दना करके गोस्वामी जी ने उन साधको से साहित्यमयी अपनी उपासना के पथ पर अग्रसर होने की क्षमता का वर माँगा है । कलियुग के उन सब कवियो को गोस्वामी जी ने प्रणाम किया है, जिन्होंने 'रघुपति-गुन-ग्राम' का वर्णन किया है ।

सस्कृत की विद्वत्-सम्मत परम्परा को तोडने वाले प्राकृत कवियो को 'सयाना' मान कर उन्हे गोस्वामी जी ने अपना निश्छल प्रणाम अर्पित किया है । जो हो गये, जो है और जो कवि, राम का यशोगान करने के लिए उनके बाद पैदा होने वाले है, उन सबकी अनत व्याप्ति को गोस्वामी जी ने नमस्कार किया है । वे उनमे 'साधुसमाज' मे अपनी 'भनिति' के लिए 'सनमान' का वरदान चाहते थे । गोस्वामी जी के सामने यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस कृति को 'साधुसमाज' और 'बुधसमाज' का सम्मान प्राप्त हो गया, उसका अनुसरण दूसरे लोग अवश्य करेंगे । अपनी कृति के इस सम्मान को गोस्वामी जी अपने लिए नही चाहते, अपितु उसी कृति के लिए और विश्व के लिए चाहते है, क्योंकि उनका यह सिद्धान्त है कि 'कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुर-सरि-सम सब कह हित होई $ । वे मनुष्य की कीर्ति, वाणी और ऐश्वर्य को सबके हित की ओर मोड कर गगा के समान पावन और लोकमंगल विधायक बना देना चाहते है । इसी पूर्णमानव के अवतरण मगल की साधना ही तो उन्होंने की है । वे ऐसे पूर्ण मानव को अवतरित करना चाहते थे, जो अपनी समग्रता को विश्व भर की बना कर सर्वथा विश्व

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १२ के बाद । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद । $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १३ के पहले और बाद ।

का हो जाए। अपनी वाणी को पूर्णमानव राम के इसी विमल यश की अनुगामिनी बना देने के लिए, रामसाहित्य के सब साधको से, गोस्वामी जी अपेक्षित शक्ति का वरदान माँगते हुए कहते है—"करहु अनुग्रह अस जिय जानी, बिमल जसहि अनुहरइ सुबानी" ‡। इसी 'बिमल जस' का साक्षात्कार अपनी अन्तर्दृष्टि से करके गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है और उनका यह सिद्धान्त है कि जिस मनुष्य मे विमल यश की ओर बढने की क्षमता नही है उसे विमल सन्तोष की प्राप्ति नही होती। विश्वमगल विधान मे अपने को खो देना ही तुलसी का 'बिमल जस' है।

गोस्वामी जी इस बात को अनुभव करते है कि मनुष्य के शील की सरलता सबके लिए सरलता से बोधगम्य होती है। इसी तरह कविता को भी सरल बना कर आदर्श शील की इस वाहिनी को वे अनायास ही सबके हृदय मे प्रवाहित कर देना चाहते है। वे इस बात को स्पष्टत अनुभव कर चुके हैं कि सरल शील और 'विमलकीरति' के साथ-साथ 'सरल कबित' भी शत्रुमित्र सबको समान रूप से प्रभावित करता है। अपना नैसर्गिक वैर त्याग कर शत्रु भी सरल कविता को सुनता और सम्मान देता है। पर गोस्वामी जी इस बात को अच्छी तरह जानते है कि 'बिमल मति' के बिना सरल शील और सरल कविता दोनों सम्भव नही है। 'हरिजस' के भीतर रहने वाले सरल शील का सरल कविता मे वर्णन करने के लिए सब कवियो और साधकों मे वे इसी 'बिमल मति' का वरदान चाहते है †। 'बिमल जस' और सरल शील के मूल मे अधिष्ठित रह कर यह 'बिमल मति' विमल सन्तोष का विधान करती रहती है।

गोस्वामी जी के अनुसार कवि वही हो सकता है, जिसका शील से नैसर्गिक सम्बन्ध हो। 'कबि कोबिद रघुबरचरित-मानस-मजु-मराल' कह कर उन्होंने इसी सत्य को व्यक्त किया है कि शील का लोकव्यापी निर्माण वह कवि नही कर सकता, जिसने राम के शील की सिद्धि अपने जीवनक्रम मे न प्राप्त कर ली हो। विमल मति के धवल शील से युक्त हो कर कवि और कोविद रघुवर-चरित के मानस के सुन्दर हस की तरह हो जाते है। इसी पवित्र शील को प्राप्त करके गोस्वामी जी 'रघुवर-चरित-मानस' मे मराल की तरह क्रीडा करना चाहते है। अपनी इसी सुरुचि की पूर्ति का वरदान उन्होंने कवियों और कोविदो से माँगा है। आदिकवि वाल्मीकि की वन्दना भी गोस्वामी जी ने इसीलिए की है कि उन्होने अपने तपःपूत हृदय के भीतर अपनी स्वाभाविक पवित्रता की शक्ति के द्वारा राम के शील की विराट् भावना की है। चारों वेदों की वन्दना भी गोस्वामी जी का आदर्शप्रिय हृदय इसीलिए करता है कि उन्हें 'रघुबर' के 'बिसद जस' का वर्णन करने मे स्वप्न मे भी थकावट का अनुभव नही होता। वे ब्रह्मा को भी नमस्कार करते है, तो उन्हे राम के उसी सहानुभूतिपूर्ण स्नेह का ध्यान हो आता है, जो खल और साधु के लिए समान होता है और दोनों के आत्मोत्थान को निरतर अपनी दृष्टि मे रखता है। ब्रह्मा भी समानचित रह कर

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४ के पहले। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४।

पक्षपातरहित दृष्टि से सत और खल की सृष्टि करता रहता है। देवता, ब्राह्मण, विद्वान् और ग्रहों के भीतर बैठ कर विश्व का नियत्रण और परिष्कार करने वाली ब्रह्मा की शक्ति का दर्शन करके अपने को शील के इसी मार्ग पर ले जाने की उन सबमें गोस्वामी जी ने प्रणतिपूर्ण कामना की है।

कवि के इसी शील का विकास अपने भीतर प्राप्त कर लेने के लिए, 'पुनीत' और 'मनोहर चरित' वाली सरस्वती और गगा को भी गोस्वामी जी ने प्रणाम किया है। जीव के साथ सम्बद्ध पापों और अविवेकों को नष्ट करके रामचरित वर्णन के लिए पुनीत हो जाने को ही उन्होने गगा और सरस्वती की वन्दना की है। राम का दीनबन्धु और दानी स्वभाव अपने व्यक्तित्व के भीतर प्राप्त कर लेने के लिए तुलसी ने दीनबन्धु और दानी महेस-भवानी की वन्दना की है। शकर के भीतर राम के सेवक, स्वामी और सखा व्यक्तित्वों का दर्शन करके गोस्वामी जी ने अपनी अभेददर्शिनी दृष्टि का बडा कोमल परिचय दिया है और अपने अकारण-हित-शिव से अपने द्वारा सृष्ट रामकथा को विश्व के आनन्द और मगल का उद्भव केन्द्र बना देने की प्रार्थना की है।

शील के उच्च शिखर पर अधिष्ठित हो जाने के बाद भी अपनी नम्रता के कारण कवि के उच्चतम शील की सिद्धि ही गोस्वामी जी ने अनत जगत् के अनत रूपों और नामो मे व्याप्त राम से माँगी है। उन्हे पूरा विश्वास है कि शिव की कृपा से उनकी वाणी उसी तरह आलोक-प्रकाशित हो जाएगी, जिस तरह कई चन्द्र की समाहित ज्योत्सना से रात्रि की कान्ति का विस्तार सम्भव हो सकता है। गोस्वामी जी ने बड़े विश्वास से कहा है कि जो लोग सचेत हो कर इस कथा को स्नेह के साथ कहेगे, सुनेगे और समझेगे, उनके भीतर राम के चरणो का अनुराग उत्पन्न हो जाएगा और कलि के कलुषो से मुक्त हो कर उनका जीवन राम के शील की अनत कान्ति से आलोकित हो उठेगा। वे स्वय मगलमय और पवित्र हो जाएँगे।

इतना कह लेने के बाद गोस्वामी जी कवि के इस सात्त्विक शील के प्रभाव को सत्य करने के लिए 'हरगौरी' से पुनः प्रार्थना करते है। अपनी 'भाषाभनिति' के प्रभाव को सस्कृत वाणी के समकक्ष बना देने की कृपा वे 'हरगौरी' शिव-पार्वती मे माँगते है। देववाणी का गौरव जनवाणीको प्रदान करने वाली शक्ति कवि के आदर्श शील मे ही रहती है, जो अपनी पवित्रता से अनत की शक्ति को अपने भीतर आकर्षित करके क्षुद्र को भी महान् बना सकता है।

राम के आदर्शो का विकास गोस्वामी जी के हृदय मे उनके अवधप्रेम के रूप मे भी हुआ। पवित्र शील के केन्द्र के चरणों का स्पर्श अयोध्या ने भी किया है, इसीलिए तुलसी उसकी भी उपासना करते है। सरजू ने उन्ही चरणों का स्पर्श किया है, इसीलिए वह भी पवित्र है और उसमे भी कलि-कलुषों को नष्ट करने की शक्ति है। इसी कारण तुलसी उसकी भी उपासना करते है। अयोध्या के नर-नारियो की वन्दना करने से तो तुलसी रुक ही नही सकते, क्योंकि उनमें राम-प्रेम का अनत विकास हो गया था और राम भी उन्हे अपने हृदय मे ही रखा करते थे। ससार में, अनत शील के आलोक-केन्द्र को उतार

लेने के लिए जो कौसल्या माध्यम बनीं, उनकी कीर्ति को तुलसी जगत् भर मे प्रचारित कर देना चाहते है। दशरथ के साथ सब रानियों को 'सुकृत' और 'सुमगल' की मूर्ति मान कर 'मन बानी' से गोस्वामी जी उन्हें प्रणाम करते है। राम के माता-पिता को गौरव के उच्चतम शिखर पर अधिष्ठित करके गोस्वामी जी ने उन्हे प्रणाम किया है।

इस तरह शील की नैसर्गिक भावना को अपने भीतर प्रतिष्ठित करके गोस्वामी जी ने अपने सिद्धान्त के अनुसार विश्वमगल विधायक आदर्श कवियों के पथ का अनुसरण मात्र किया है।

शील की यही उपासना गोस्वामी जी के दशरथ मे है। गोस्वामी जी के दशरथ अनत शीलवान् के पिता और भक्त दोनों है। वात्सल्य भक्ति का आदर्श रूप उनके भीतर स्थान पा कर जगत् मे अवतीर्ण हुआ था। सामान्य पिता के वात्सल्य को अपने हृदय मे स्थान दे कर वे राम से प्रेम तो करते ही थे, पर उनके राम-प्रेम का मूल उनके आदर्शप्रेम के साथ भी रहता है। आदर्शों के प्रति इस प्रेम के कारण श्रद्धा और प्रेम के योग से, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सिद्धान्त के अनुसार दशरथ मे भक्ति की उत्पत्ति मानी जा सकती है। अपने 'अवध भुआल' की वन्दना करते हुए उनमे गोस्वामी जी ने 'रामपद' के लिए 'सत्यप्रेम' भी देखा है। यह सत्यप्रेम जब किसी के चरणों के लिए हो जाता है तब उसे दास्यभक्ति का रूप मिल जाता है। दशरथ की यह भक्ति वात्सल्य और दास्य का समाहित रूप थी। वात्सल्य के भीतर होने वाले वियोग को दशरथ सह सकते थे। बालक राम से जब उनका अधिक सम्बन्ध वात्सल्यभाव से ही था, तब विश्वामित्र के साथ राम को भेज देने के बाद उस वियोग को वे सह सके थे। पर शील का विकास हो जाने पर राम के प्रति वात्सल्य के भीतर दशरथ को 'दीनदयाल' राम के आदर्शों के प्रति भी प्रेम प्राप्त हो चुका था। विश्वामित्र की याचना ने केवल उनके वात्सल्य पर आघात किया था। उस आघात को वे सह सके थे। पर 'दीनदयाल' मर्यादा पुरुषोत्तम के विश्वमंगल विधायक शील की भावना मे सिद्धि प्राप्त कर लेने वाला दशरथ का साधक किसी के भीतर शील के विघात को नही सह सकता था, शील का यह विघात जब उनकी अपनी ही पत्नी कैकेयी में उन्हे दिखाई पड़ा तब वे व्याकुल हो गये। कैकेयी ने उनके वात्सल्य और भक्ति दोनों को विताडित किया, राम के विश्वमंगल विधायक शील का विरोध करके, वात्सल्य पर विश्वामित्र द्वारा दिये गये पवित्र धक्के को तो वे सह सके, क्योंकि उस समय राम लोक-मंगल विधान करने के लिए गये थे। उस कार्य से उनके शील का विकास हो रहा था। पर कैकेयी के नष्ट शील के द्वारा जब उनके वात्सल्य और भक्ति दोनो पर एक साथ ही क्रूर धक्का पडा तब वे शील के इस ह्रास को न देख सके। यहाँ उनकी भक्ति और वात्सल्य को एक साथ धक्का लगा। इन दोनों धक्कों को वे एक साथ न सह सके। वात्सल्य के धक्के को वे सह सकते थे, भक्ति के ह्रास को नही। कैकेयी के भीतर आदर्श के ह्रास को देख कर, राम के प्रति विद्रोह को देख कर वे अपने प्राणों से भी अनासक्त हो गये। उन्हे भी उन्होंने छोड़ दिया। आदर्श राम के बिना वे जीवित नही रह सकते थे। इससे

भी बढ कर वे इस आदर्श महामानव के लिए किसी के भीतर विरोध तो देख ही नही सकते थे ‡।

इसीलिए गोस्वामी जी ने 'दीनदयाल' शब्द भी राम के लिए बडी सतर्कता से दशरथ की इस वन्दना के भीतर रखा है। तुलसीदास जी के अनुसार दशरथ, पुत्र का वियोग तो सह लेते, पर दीनदयाल राम के प्रति कैकेयी की दुर्भावना उन्हे असह्य हो गयी। कैकेयी के द्वारा राम का यह दुर्भावनापूर्ण निर्वासन दशरथ नही सह सकते थे। दशरथ के इसी भक्तिपूर्ण हृदय को देख कर गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है। ऐसे दशरथ का दर्शन करके उन्हे स्वान्त सुख प्राप्त हुआ है और पुत्र के भीतर आदर्श का विकास देखने की इसी प्रकार की वासना रखने वाले दशरथ, लोकजीवन के भीतर पैदा करके वे अपने इस आनन्द को लोकहृदय के भीतर भी देखना चाहते थे। रामायण की हर पक्ति इसी लोकादर्श के निर्माण की ओर उन्मुख है।

राम के इसी लोकादर्श के प्रति प्रेम-भक्ति को रामायण के सब आदर्श पात्रो के भीतर सचरित होते हुए गोस्वामी जी ने देखा है। वे उन पात्रों की इसीलिए वन्दना करते है कि उनके भीतर राम के आदर्शों के लिए प्रेमभक्ति पैदा हो गयी है। विदेह की और उनके सब परिजनो की वन्दना तुलसी ने इसलिए की है कि राम के चरणो के लिए मिथिला के राजा और प्रजा सबके भीतर गूढ स्नेह है। जिन विदेह ने योग को भोग के भीतर छिपा रखा था, जिनको राज्यकार्य मे व्यस्त देख कर, परिवार मे बँधा देख कर योगी समझना कठिन था, उन्ही का योग राम को देखते ही प्रकट हो गया †। अपने हृदय के भीतर अनत के प्रति जिस प्रेम को उन्होने छिपा रखा था, वह राम को देख कर हृदय की सीमा लाँघ गया। निर्गुण के सगुण रूप पर उन्होने अपने उस प्रेम को निछावर कर दिया, जिसे ससार की आँखों से उन्होंने बचा रखा था। लोकमर्यादा की भावना के ऊपर उठ कर जिसे अद्वैत की चेतना के प्रति आनन्दमय झुकाव उनके भीतर था। अपने उस आनन्द को लोकमर्यादा का आदर्श स्थापित करने वाले निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप के चरणो मे उन्होंने अर्पित कर दिया। निर्गुण उपासना से वे सगुण उपासना की ओर चले आये। अद्वैत शक्ति के विराट् महत्त्व का चिन्तन करने वाला साधक लोकादर्श का पुजारी बन गया। तुलसी के विमल सन्तोष के भीतर हृदय के इसी धर्म का विकास किया गया है। समाज और परिवार के भीतर, व्यक्ति और विश्व के भीतर हृदय के जिस कोमल सूत्र के सम्बन्ध की सम्भावना निश्चित रूप से रहती है, उसको उत्पन्न करके तुलसी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। अद्वैत दार्शनिक चिन्तन के भीतर लोकमर्यादा के विकास की सम्भावना नही रहती। साधना की विशिष्टाद्वैती चेतना के भीतर जगत् के सत्य हो जाने पर, ब्रह्म का स्वरूप बन जाने पर भी अपने रूप की चेतना को सम्हाले रहने के कारण लोकादर्शो का विकास सभव हो सकता है। जीवन के सम्बन्धों की पवित्रता मे परमात्मा का दर्शन

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६६। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६ के बाद।

करने वाले तुलसी के समान साधकों ने जगज्जीवन के विकास को एक स्वाभाविक मार्ग दिया है, जिस पर चलने वाले साधक को रूप की पवित्र चेतना अरूप की ओर बडे स्वाभाविक ढग से ले जाती है । 'सियाराम' के आदर्शो के एक रग से सब को रग कर सगुण अद्वैत (विशिष्टाद्वैत) की लोकजीवन के भीतर स्थापना करने का सफल प्रयत्न गोस्वामी जी ने किया था । इसीलिए उनके जनक को जो आनन्द अद्वैत के चिन्तन में मिल रहा था, वही राम के पवित्र लोकादर्श के पवित्र सौन्दर्य के भीतर प्राप्त हो गया । लोकादर्श की स्थापना के भीतर से पैदा होने वाला विमल सन्तोष ही धीरे-धीरे व्यक्ति को अविरल हरिभक्ति की ओर ले जाता है । यह अविरल हरिभक्ति ही तुलसी के अनुसार जीवन का पूर्ण विकास है । इस अतिम विकास की ओर गोस्वामी जी ने बालकाड की इस भूमिका मे यत्र-तत्र सकेत किया है । उदाहरण के लिए उनकी भरत की वन्दना का विवेचन किया जा सकता है ।

भरत की वन्दना करते हुए तुलसीदास जी ने कहा है—"प्रनवउ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न बरना । राम-चरन-पकज मन जासू, लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ‡ ।" राम के आदर्शो से प्रभावित हो कर भरत के मन का भ्रमर राम के चरणकमल मे ऐसा लीन हो गया है कि उसे छोड़ता ही नही । राम के आदर्शों को अपने सम्मुख रख कर उनके सौन्दर्य के आनन्द मे निरन्तर मग्न रहना ही अविरल हरिभक्ति है । ऐसे भक्तों का ध्यान करके तुलसी को विमल सन्तोष का अनुभव होता है । ऐसे ही आदर्शो का बीज रामायण की भूमिका मे रख कर उन्होंने पाठकों के हृदय में उसके सौन्दर्य के चिन्तन की ओर उन्मुख किया है । यदि इन आदर्शो के प्रति झुकाव व्यक्ति मे पैदा हो जाए तो उसे विमल सन्तोष का अनुभव होने लगेगा ।

ऊपर-ऊपर से देखने वालों को लक्ष्मण उग्र स्वभाव के मालूम पडते हैं । पर लक्ष्मण की उग्रता भी पूज्य है । इस उग्रता की प्रेरणा, किसी व्यक्ति के भीतर राम के आदर्श के प्रति विद्रोह, विरोध या कमी देख कर ही, लक्ष्मण के हृदय मे पैदा होती है और राम के आदर्शो के विकसित होने मे योग देती है । राक्षसी प्रवृत्तियों के दमन के लिए जो उग्रता राम के स्वभाव मे पैदा होती है उसी तरह की उग्रता लक्ष्मण के भीतर भी पैदा होती है जब वे किसी भी मनुष्य के शील के भीतर राम के आदर्शो के प्रति किसी भी प्रकार की शिथिलता देखते है । रामायण भर में लक्ष्मण के शील को पहचानने के लिए इस अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है । अपने स्वभाव से लक्ष्मण शीतल हैं । वन्दना तथा नामकरण इत्यादि के प्रकरणों में लक्ष्मण के इस स्वभाव की ओर गोस्वामी जी ने लक्ष्य किया है—"बन्दउ लछिमन पद-जलजाता, सीतल-सुभग-भगत-सुखदाता †" । "लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत् आधार । गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार $" । शुभ लक्षणों के सग्रह को अपने भीतर स्वाभाविक ढंग से जन्म से ही पाने वाला व्यक्ति

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६ के बाद । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६ के बाद । $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९७ ।

व्यर्थ की उग्रता कैसे धारण कर सकता है । सार्थक उग्रता तो तुलसी के लिए विमल सन्तोष-दायिनी ही है । इस तरह की उग्रता की तुलसी उपासना करते है, जो जगत् की रक्षा करे। लक्ष्मण भगत सुखदाता है । वे विनम्र लोगों के लिए सुख का विधान तथा उद्दड आतता-यियों के लिए दण्ड की व्यवस्था करते रहते है। रामायण भर मे उनका यही स्वभाव चित्रित किया गया है । "रघुपति कीरति बिमल पताका, दण्ड समान भयेउ जम जाका । सेष सहस्रसीस जगकारन, जो अवतरेउ भूमि-भय-टारन ‡"। राम की कीर्ति की उज्ज्वल पताका के लिए लक्ष्मण का यश दण्ड की तरह था । पृथ्वी के भय को दूर करने के लिए ही ये पैदा हुए थे । राम के आदर्शो की उज्ज्वल पताका को लक्ष्मण के शुभ कार्यो ने जीवन भर सहारा दिया । मेघनाद के भय से जगत् की रक्षा के लिए लक्ष्मण ने अपने जीवन के चौदह वर्षो मे कठोर साधना की थी । लक्ष्मण के इसी कृपामय त्याग के कारण गोस्वामी जी ने उन्हे 'कृपासिन्धु सौमित्र गुनाकर' कहा है † । लक्ष्मण के इसी सर्वतोमुखी पवित्र शील का साक्षात्कार करके उनके भीतर कृपासिन्धु तथा गुणों का आकर देख कर तुलसी को विमल सन्तोष प्राप्त होता है और इसी पद्धति से उत्पन्न हुए विमल सन्तोष को वे ससार भर को बाँट देना चाहते है ।

शत्रुघ्न मे भी इसी शक्ति और शील का दर्शन करके उनके सामने गोस्वामी जी प्रणत हो गये है—"रिपुसूदन-पदकमल नमामी, सूर सुशील भरत अनुगामी $" । जगत् के बीच मे खलता की दावाग्नि के लिए ज्ञान-धन का काम करने वाले पवनकुमार की वन्दना भी इसीलिए गोस्वामी जी ने की है कि उनके हृदय में राम की लोक-रक्षिका शक्ति का निरन्तर ध्यान रहता है । 'प्रनवउ पवन कुमार खलबन पावक ग्यान धन । जासु हृदय आगार, बसहि राम सर-चाप-धर *" ।

विमल सन्तोष सम्पादन के मार्ग पर तुलसी के पग क्रमशः इसी तरह आगे बढते जाते है । ससार की स्वार्थमय चेतना के ऊपर मनुष्य को ले जाने वाली, पवित्र ज्ञान की आँखे ही होती है । ये ही ज्ञान की आँखे व्यक्ति के जीवन में विमल सन्तोष की स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं । इन्ही ज्ञान की आँखों से व्यक्ति को 'सियाराममय सब जग' की अनुभूति हो सकती है और इसी अनुभूति के बाद राम का भवमोचन चरित व्यक्ति के भीतर पैदा हो सकता है । एकत्व को देख लेने के कारण ऐसे व्यक्ति का स्वार्थ नष्ट हो जाता है और वह मर्यादा पुरुषोत्तम की तरह महामानव हो कर विमल सन्तोष मे मग्न हो जाता है ।

स्वार्थमय जगत् को देखने वाली आँखों के वासनाजन्य दोषों को दूर करके, उन्हे अमृतमय अभेददर्शन के पास पहुँचा देने की क्षमता गुरु के चरणों की धूल के अजन मे गोस्वामी जी ने देखी है । गुरुभक्ति अभिमान को दूर कर व्यक्ति मे एक ऐसी विनम्रता का प्रकाश भर देती है, जिसके सामने स्वार्थपूर्ण सब कर्म जल जाते है—"गुरु-पद-रज-मृदु

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६ के बाद । † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६ के बाद । $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १७ के पहले । * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १७ ।

मंजुल अजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन। तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन, बरनउँ रामचरित भवमोचन ‡" ।

इस प्रकार की गुरुभक्ति विमल सन्तोष की जननी के रूप मे तुलसी को दिखाई पड़ती है। इस विमल सन्तोष से विमल यश की उत्पत्ति होती है। इस विमल सन्तोष का मूल्य भी वे ही अकित कर सकते है, जिनके भीतर हरिभक्ति के कारण विमल सन्तोष पैदा हो जाता है। अपूर्ण व्यक्ति के भीतर से दोषों को निर्मूलित करके हरि के जन जो स्वय महामानव होते है, महामानव को पैदा कर लेते है और विकसित महामानव को विमल सन्तोष और विमल यश प्रदान करते है—"काल सुभाव काम-बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई। सो सुधारि हरिजन जिमि लेही। दलि दुख दोष विमल जस देही † ।"

चिन्तन के क्षेत्र मे गोस्वामी जी के अनुसार विशिष्टाद्वैत की चिन्तन-धारा ही विमल सन्तोष सम्पादन कर सकती है। इस धारा के भीतर गोस्वामी जी ने सब धाराओं का समन्वय करके चारों तरफ भटकते हुए मन को विमल सन्तोष की ओर बढने का मार्ग बताया है। जो अद्वैत ब्रह्म एक, अनीह, अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानन्द, परधाम, व्यापक, विश्वरूप भगवान है, वही देह धारण करके अनेक प्रकार की लीलाएँ करता है और वह भी केवल भक्तो के हित के लिए। वह परमकृपालु है और प्रणतों के लिए अपने हृदय मे अनुराग रखता है। वह जन के लिए ममता और अतिशय स्नेह रखता है। वह एक बार करुणा करके फिर कभी क्रोध नही करता—"गई बहोर, गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू। बुध बरनहि हरिजन अस जानी। करहि पुनीत सफल निज बानी $ ।" तुलसी का रघुराज बिगड़ी हुई बात को सुधारने वाला, गरीबों का रक्षक तथा सरल और सबल स्वामी है। उनके अनुसार रघुराज के इन्ही गुणों को जान कर उनके यश का वर्णन करते है और अपनी वाणी को पुनीत तथा सफल बना लेते है।

ब्रह्म जब चिदचिद्विशिष्ट होता है, तभी उसका अवतार संभव होता है। चित् (चेतन) आत्मा और अचित् (अचेतन) शरीर के योग से ही जीव की सृष्टि सभव होती है। साधारण मनुष्य के भीतर अचेतन शरीर से सम्बद्ध वासनाओं के कारण आत्मशक्ति का प्रकाश धूमिल पड जाता है। अवतारों के भीतर शारीरिक वासनाओं के ऊपर उठे रहने की अनासक्तिमय शक्ति होती है। इसी अनासक्ति के कारण अवतारों मे परमात्मा का पूर्ण प्रकाश माया की अज्ञानजन्य वासना से तिरोहित नही होता। शकराचार्य का मायावाद प्रकृति की बहुलता को, माया के सम्पूर्ण विकास को, जगत् के भेददर्शन को, उसकी भेदात्मिका स्थिति को मानवकल्पित और इसीलिए भ्रान्त एवं असत्य मानता है। इस सिद्धान्त की दृष्टि से सगुण उपासना हेय ही समझी जा सकती है। अवतार का रूप जब माया या भ्रम ही है, तब भ्रम या असत्य की उपासना कैसे की जा सकती है। सगुण उपासना के विरुद्ध खड़ी होने वाली इस सिद्धान्त-धारा को व्यर्थ सिद्ध करने के लिए

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १२ के बाद।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य रामानुज ने निर्गुण ब्रह्म को मायाविशिष्ट मान लिया। उन्होने जगत् के सम्पूर्ण भेदमय विकास को, जडता की सम्पूर्ण रगीनी को, माया की समग्र सृष्टि को विराट् अनत ब्रह्म के शरीर का ही अग मान कर सत्य मान लिया। उसके ऊपर से असत्य होने के दोप का उन्होंने निराकरण कर दिया। ऐसी अवस्था मे माया भ्रान्ति न हो कर सत्य हो गयी। उनके अनुमार जगत् की वासनामय दृष्टि जब माया को देखती रहती है तभी तक दोष रहता है। दोप मनुष्य की दृष्टि मे है, माया मे नही। उपासना की भक्ति-प्रवण दृष्टि से परमात्मा के प्रेम मे स्निग्ध हुई आँखे जब अवतार के रूप को देखती है, तब उस रूप मे उन्हे परमात्मा ही दिखाई देता है, वासना नही। यह दृष्टि वासना का उन्मूलन कर देती है। इस प्रकार सगुणोपासना के क्षेत्र के भीतर रूप की उपासना भी सत्य की उपासना हो जाती है, भ्रान्ति या असत्य की नही।

आचार्य रामानुज के इसी सिद्धान्त के अनुसार गोस्वामी जी ने एक, अनीह, अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानन्द, परधाम, व्यापक तथा विश्वरूप भगवान को शरीरी हो कर लोकादर्श का प्रचार करने वाला कहा है। निरभिमान भक्तो के मार्ग से बाधाओं को दूर करने के लिए ही वह पैदा होता है। ये बाधाएँ शील के ह्रास के रूप मे राक्षसी प्रवृत्तियों मे विकसित हो कर आदर्शप्रिय भक्तो के इस परमात्मप्रेम को धक्का देती रहती है। परमात्मा के भीतर अपने इन जनों के लिए बहुत ही ममता रहती है। उसका यह स्नेह इतना अपार रहता है कि वह सदा करुणा ही करता है, क्रोध कभी नही करता। रघुराज, भ्रष्ट को सत्पथ पर लाने वाला, आपत्तियो को सम्पत्ति के रूप मे बदल देने वाला, दीन का रक्षक, सरल स्वभाव, अपार शक्तिवान् तथा सर्वेश है। बुद्धिमान लोग ज्ञान के इसी दृष्टिकोण से उसका यशोगान करते है और अपनी वाणी को पवित्र तथा सफल बना लेते है। यही दृष्टिकोण उलझनों को दूर करके चिन्तनशील व्यक्ति को विमल सन्तोष प्रदान करता है। ब्रह्म और जगत् की एकता का यही सिद्धान्त, रूप और अरूप की अभिन्नता का दर्शन करने वाली यही दृष्टि तुलसी को विमल सन्तोष प्रदान करती है और रामायण भर मे यही दृष्टि विकसित होती हुई चली गयी है।

चिन्तन के क्षेत्र मे ही नही, उपासना के क्षेत्र मे बहुदेवो के भीतर भी तुलसी की यही 'सियाराममय सब जग' की अनुभूति काम कर रही है। तब देवताओं में राम का दर्शन करते हुए तुलसी ने अपने साहित्य के भीतर उन सबकी उपासना को रामोपासना की ओर उन्मुख करके विमल सन्तोष का अनुभव किया है। राम के उसी आदर्श की अनुभूति प्राप्त करने की क्षमता उन्होंने सब देवी-देवताओं से सियाराममय सम्पूर्ण जडचेतन जगत् से माँगी है।

प्राय. सब भारतीय वैदिक धार्मिक चेतनाएँ मुख्यतः दो धाराओं में प्रवाहित होती है। एक वैष्णव भक्ति धारा और दूसरी शैव भक्ति धारा है। बाकी सब धाराएँ इन्हीं के भीतर विलीन कर दी जा सकती है। शाक्त, गाणपत्य इत्यादि सब धाराएँ इन्ही मे से एक या दूसरी से सम्बद्ध हैं। बीच-बीच में स्वार्थी मनुष्य इन सम्प्रदायों को अलग-अलग

युद्धक्षेत्र बना कर संघर्ष मे प्रवृत्त हुआ है और महात्मा लोगों ने बार-बार उनमे समन्वय पैदा करने के प्रयत्न किये है। उन्होंने इन सब सम्प्रदायों को एकत्व मे परिणत करने के सफल प्रयास किये है। अपने युग की इन्ही सघर्षशील प्रवृत्तियों को शान्त करने के लिए तुलसी ने अपने साहित्य के भीतर वैष्णव और शैव मतों का समन्वय करने की एक विराट् योजना बनायी है। छिन्न-भिन्न होने वाले मानव समाज की एकता की रक्षा के लिए तुलसी का यह प्रयत्न उनके साहित्य-पथ के पग-पग पर दिखाई पडता है। अपने इस कार्य को तुलसी कभी नही भूले है। गीतावली, कवितावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, तथा रामचरितमानस इन सब मे तुलसी की यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है और मानस तथा विनय पत्रिका मे यह बहुत अधिक व्यापक रूप मे दिखाई पड़ती है। विशेषत. मानस मे तो यह प्रवृत्ति आद्योपान्त अविच्छिन्न प्रवाहित हुई है। यहाँ तक कि रामचरित के इस सग्रह का नाम भी गोस्वामी जी ने शंकर के कैलास क्षेत्र के मानसरोवर के आधार पर ही मानस रखा है। उन्होंने रामचरित को शकर के मानस में उनके हृदय मे तथा उनके प्रिय सरोवर मानस के ही रूपक में सगृहीत किया है और रामचरित का प्रथम आचार्य वे शिव को ही मानते है—"सभु कीन्ह यह चरित सोहावा ‡।" यह समन्वय भावना भी गोस्वामी जी के विमल सन्तोष सम्पादन की योजना का एक अग है।

साहित्यिक साधना के क्षेत्र मे भी विमल सन्तोष की अनुभूति गोस्वामी जी को प्राप्त हुई है। जो साहित्यिक साधना विमल वाणी के द्वारा मनुष्य के हृदय को उज्ज्वल बनाना चाहती है, वही तुलसी के अनुसार उचित साधना है। तुलसी को अपनी वाणी की साधना पर विश्वास है। वे यह समझते है कि राम के आदर्शो की ओर झुकने के लिए जिनके भीतर प्रवृत्ति है, उन्हे मानस को पढ कर सुख होगा, पर जिनके भीतर राम के पवित्र जीवन के लिए स्थान ही नही है, वे मेरे इस प्रयास का केवल उपहासमात्र करेगे। राम से विमुख लोगों के लिए भी कवि के भीतर दया है। वह कहता है कि कविता का रस और राम का स्नेह जिनके भीतर स्थान नही पाता, उनके लिए मेरी कविता सुखद हास्य रस हो कर उपयोगी ही सिद्ध होगी—"भाग छोट अभिलाषु बड करउ एक बिस्वास। पैहहि सुख सुनि सुजन सब खल करिहहि उपहास †..."हरिहर पद रति, मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की। प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी $।"

राम के आदर्शो का प्रचार जो वाणी करती है वह सफल हो जाती है—"बुध बरनहि हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी *।"

अपने पूर्वज कवियों को नमस्कार करते हुए गोस्वामी जी कहते है—"आप तो यही समझ कर हम पर कृपा कीजिए कि राम का विमल यश हमारी वाणी को सुवाणी

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २९ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८। $ रामरितमानस, बालकाड, दोहा ८ के बाद। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १२ के बाद।

बना देगा ‡।" भाषा की सरलता को भी विमल सन्तोष का कारण गोस्वामी जी ने माना है—"सरल कविता कीरति बिमल, सोई आदरहि सुजान। सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान। सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मतिबल अति थोर †।" विमल कीर्ति का प्रचार करने वाली सरल कविता ही सज्जनों से सम्मान प्राप्त करती है। उसमे इतनी शक्ति होती है कि शत्रु भी उसकी प्रशसा करता है। पर कवि के भीतर वह प्रभाव विमल मति के कारण ही सम्भव होता है। तुलसी का कवि अपनी नम्रता के कारण कहता है कि मुझमे तो मति का बल बहुत ही कम है।

इस विमल मति की प्राप्ति के लिए वह पावन बुद्धिवाली सीता की वन्दना करता है—"जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की। ताके जुग पद कमल मनावौ। जासु कृपा निर्मल मति पावौ $।" निर्मल मति वाली जगदम्बा जानकी का ध्यान कवि के भीतर निर्मल मति की सृष्टि करने मे सक्षम है। इसीलिए सीता के आदर्श का चिन्तन वह कर लेता है।

अनासक्तिपूर्ण अहैतुकी भक्ति को तुलसीदास जी ने सर्वोत्तम स्थान दिया है। इस प्रकार की भक्ति से विमल सन्तोष की सृष्टि होती है—"बन्दउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे।" निष्काम हो कर राम के चरित-चिन्तन मे खो जाना ही तुलसी की दृष्टि मे विमल सन्तोष का स्रोत है। इसीलिए रामकथा और रामचरित को ही उन्होने अपनी भक्ति-पद्धति में प्रमुख स्थान दिया है, क्योंकि इन्ही के चिन्तन के द्वारा व्यक्ति जीवन की ऊँचाई की परमावस्था प्राप्त कर सकता है। राम की पवित्र कथा से बुद्धिमान् मनुष्यों के मन को शान्ति प्राप्त होती है। समग्र समस्याओं का एक साथ हल प्रस्तुत करने वाली यह कथा सब लोगों के मन को सन्तुष्ट कर सुखी बना देती है, कलि के प्रभाव से उत्पन्न हुए मनुष्य के हृदय के सब कलुषों को यह कथा समूल उन्मूलित कर देती है—"बुध बिस्राम सकल जन-रजनि। रामकथा कलि कलुष बिभजनि *।"

भक्ति साधना के चिन्तनपक्ष और व्यवहारपक्ष, दोनों दृष्टियों से, रामकथा का विश्लेषण कर लेने पर ही तुलसी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है। पवित्र चिन्तन और पवित्र व्यवहार विश्व भर मे विकसित होने वाली भक्ति साधना का मूल रहस्य है। व्यवहार और विचार की यही पवित्रता, मन, वाणी और कर्म की त्रिविध पवित्रता का रूप भक्ति साधना के भीतर रहता है। भक्ति के इसी मूलाधार पर ससार के सब संतों और भक्तो ने मानव समाज के लोकादर्श को ऊँचाई की ओर मोड कर अपूर्ण नर को पूर्ण नारायण बनाने के प्रयत्न किये है। आदर्श समाज निर्माण का यह कार्य तुलसीदास जी ने भी इसी योजना को अपना आधार बना कर किया है। उनके राम में व्यवहार और विचार की यही पवित्रता मानस भर मे दिखाई पडती है। एक ओर तो वे अपने आदर्श व्यवहार

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४ के पहले। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४। $ रामचरितमास, बालकाड, दोहा १८ के पहले। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३० के बाद।

से ससार को मर्यादा का पथ दिखाते है और दूसरी ओर अपने आदर्श विचारों के उपदेश से पवित्र विचार लोगों के भीतर पैदा करते है। सीता के प्रथम दर्शन के बाद वे लक्ष्मण के सामने अपने आदर्श व्यवहार को रखते हुए कहते है—"मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी, जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी ‡।" उत्तरकाड मे भरत के पूछने पर वे सतों के स्वभाव के सम्बन्ध मे अपना उच्च चिन्तन उनके सामने रखते हुए कहते हैं—"सतो और असतों का व्यवहार कुठार और चन्दन के समान होता है। कुठार चन्दन को काटता है और चन्दन अपनी सुगन्ध से उसे सुवासित कर देता है। अपने इस कोमल स्वभाव के कारण चन्दन लोकप्रिय हो कर देवताओं के मस्तक पर चढता है और कुठार का काटने वाला मुख आग मे जलाया जा कर पीटा जाता है। उसके लिए इस तरह के दड का विधान होता है। सत विषयों से आसक्त नही होते। वे शील और गुण के आकर होते है। दूसरों के दुख को देख कर वे दुखी होते है और दूसरों के सुख से सुखी। वे समदर्शी, अजातशत्रु, निरभिमान, विरागी, लोभ, क्रोध, हर्ष और भय के ऊपर उठे हुए रहते है। वे कोमल चित्त, दीनों के रक्षक, तया मन, वाणी और कर्म से मेरी भक्ति मे लीन रहते है। माया के प्रलोभन उन्हे आकृष्ट नही कर सकते †।"

इसी तरह आदर्श विचार और आदर्श व्यवहार के सन्तुलन से गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर के पूर्ण पुरुष को अभिव्यक्त करके ससार के सम्मुख इसलिए रख दिया है कि उसका अनुसरण करके पूर्णता की ओर मानव अग्रसर होता हुआ चला जाए।

राम के इसी सन्तुलित विचार और व्यवहार की आदर्श पूर्णता को अपनी दृष्टि मे रख कर तुलसी ने रामकथा और रामचरित के माहात्म्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

राम की कथा कलिरूपी सर्प के लिए भरणी नक्षत्र के समान है। जिस तरह भरणी नक्षत्र की जल-वर्षा से सर्प मरते है उसी तरह राम की कथा मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्श का प्रचार करके कलि के दोषों को नष्ट कर देती है। राम की कथा पर ज्ञान की आँखों से चिन्तन करने वाला विवेक के प्रकाश को, अभेद दर्शन को, प्राप्त कर लेता है। मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन का आदर्श विश्व की रक्षा था। उनके आदर्शो के प्रचार से विश्वमानव विश्वरक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाता है। इसीलिए रामकथा विश्व का भार धारण करने मे अचला पृथ्वी की तरह सक्षम है। यह कथा शरीरी मनुष्य को जीवन के भीतर रहते हुए भी स्वार्थो के ऊपर उठा कर उनसे मुक्ति दे देती है। यह रामकथा सद्‌गुणों की जननी है। इस कथा के आदर्शो को अपने जीवन में उतार लेने वाला मनुष्य रघुवर-भक्ति की अतिम सीमा पर, राम के आदर्शो की पूर्णावस्था पर पहुँच जाता है।

राम की यह कथा उनके चरित्रों से तदाकार हो कर ही प्रवाहित होती है। राम के चरित सुन्दर चिन्तामणि के समान है। चिन्तामणि सब कामनाओं की पूर्ति करती है और राम के पथ का अनुसरण करने वाला सब कामनाओं को अनायास ही अपने आदर्श जीवन के

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३० के बाद। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ३७ के पहले और बाद।

भीतर प्राप्त कर लेता है। राम के चरित्र सती की सुमतिरूपिणी नारी के लिए शोभन शृंगार है। उन्हें अपने भीतर स्थान दे कर सती की मति मनोहर आकर्षण प्राप्त कर लेती है। राम के गुणग्राम लोकमंगल विधान के कारण बनते है। राम के चरित्र इतने महान् है कि उनके भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब स्थान पा जाते है। इसीलिए साधक का चतुर्वर्ग उन्ही के चिन्तन और व्यवहरण से सिद्ध हो जाता है। राम के जीवन मे ज्ञान, वैराग्य और योग सब एक साथ दिखाई पडते है। इसीलिए उनके चरित्र इन सबकी शिक्षा देने वाले सद्‌गुण है। ससार के भयानक सताप को शान्त करने के लिए राम के चरित्र धन्वन्तरि के समान है। ससार का ताप राम को व्याप्त नही कर सकता था। अपनी इसी क्षमता के कारण उनके चरित्र, साधक के मन पर ससार के ताप का स्पर्श तक नहीं होने देते।

राम के चरित्र सीताराम के प्रेम के माता-पिता है। राम ने अपने स्वार्थों की बलि के आधार पर जिस लोकादर्श की स्थापना की उसी से तो जनसमाज के भीतर सीताराम के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। यह प्रेम प्रिय के आदर्शो मे प्रेमी को तन्मय कर देता है। इन आदर्शो के प्रकाश मे अपने भीतर प्रेम का मधुर दर्शन करके प्रेमी, प्रिय के आदर्शो के साँचे मे ढल कर अपने और प्रिय के बीच अद्वैत की सृष्टि कर लेता है। आदर्शो के विशेषणो के आधार पर अद्वैत भूमि पर पहुँच जाना ही विशिष्टाद्वैती चिन्तनधारा का जीवनदर्शन है। इसी जीवनदर्शन के आधार पर भक्त और भगवान् मे, सीता और राम मे अद्वैत स्थापित होता है। पवित्र लोकादर्शो के व्यापक प्रकाश को जगत् के बीच सृष्ट कर महामानवो की सृष्टि करने के लिए जब पुरुषोत्तम अवतीर्ण होता है तब उसके चरित्रो की मधुर भावना करके कवि का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और वह कहता है—ये चरित्र सीताराम के प्रेम के मातापिता तथा 'सकल-व्रत-धरम-नेम के' ‡ बीज है। भगवान् के भीतर आदर्शो के ये बीज प्रस्फुटित हो कर समाज के भीतर लोकादर्श के विराट् वटवृक्ष का चिरजीवी रूप धारण कर लेते है। इन्ही आदर्शों का प्रकाश युग-युग मे फैला कर आदर्श-वादी कवि और युगपुरुष विमल सन्तोष का अनुभव करते है। तुलसी और गाँधी ने इसी विमल सन्तोष का अनुभव किया था, सियाराम के आदर्शो को सम्पूर्ण विश्व के भीतर प्रचारित करने का प्रयत्न करके।

जब इन आदर्शो का प्रचार हो जाता है, तब लोगों के पाप, सताप और शोक शान्त हो जाते है—'समन पाप-सताप-सोक के †।' ये आदर्श लोभ के अपार महासागर के लिए अगस्त्य का काम करते है—'कुभज लोभ-उदधि अपार के' $। राम के भक्त के भीतर कलि के कलुष जब काम-क्रोध के हाथी के रूप मे मदान्ध हो कर उत्पन्न हो जाते है, तब इन आदर्शों का ध्यान सिह शावक बन कर उन्हे समाप्त कर देता है। इन चरित्रों का सत्कार अपने हृदय और जीवन मे साधक शिव इस प्रकार करते है, जिस प्रकार पूज्य और प्रियतम अतिथि का सत्कार हुआ करता है। ये चरित्र दारिद्रय की दावाग्नि को शान्त करने वाले घन की तरह आ कर मनुष्य के ऊपर उसके मनोरथों की वर्षा करके अभाव मे जलते हुए उसके हृदय को शान्त और शीतल बना जाते है। राम के आदर्शो मे ढल जाने वाले महा-

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३१ के बाद। † वही वही।

मानव के भीतर अभाव से उत्पन्न होने वाली दीनता कहाँ सम्भव है। इसीलिए गोस्वामी जी ने राम के उन चरित्रों को 'अतिथि पूज्य-प्रियतम पुरारि के, कामद घन दारिद दवारि के' ‡ कहा है।

विषयरूपी सर्प के लिए राम के त्यागप्रधान चरित्र मन्त्र और महामणि का काम करते है। मनुष्य के ललाट मे लिखे हुए दुर्भाग्य की कठोर और वक्रलिपि इन आदर्शो के प्रकाश के तेज से पिघल कर कोमल और सुन्दर अक्षरों के साँचे मे ढल जाती है। दुर्भाग्य सौभाग्य के रूप मे परिणत हो जाता है। राम के आदर्श के दर्पण के सम्मुख आ कर जब अपने स्वरूप के भीतर की मलिनताओ को साधक देख लेता है, तब वह उन्हे तुरन्त मिटा कर स्वच्छ हो जाता है। उसके लिए वासना और दुर्भाग्य, सौभाग्य और उपासना के रूप मे बदल जाते है। वह विश्वप्रिय हो जाता है। रामचरित्र के इन्ही प्रभावों की सम्भावना से मुग्ध हो कर तुलसी का कवि-हृदय बोल उठा है—'मन्त्र महामनि विषय व्याल के, मेटत कठिन कुअक भाल के' † ।

जिस तरह सूर्य का प्रकाश अन्धकार को अनायास ही दूर कर देता है, उसी तरह राम के आदर्शो का तेज अज्ञान के अधकार का विरोधी है। वह अपने साधक की रक्षा और सवृद्धि इस तरह किया करता है, जिस तरह बादल धान की रक्षा और सवृद्धि जल से किया करते है। कल्पतरु की तरह राम के आदर्श सब इच्छाओ की पूर्ति कर देते है। पूर्णकाम राम के आदर्शो के रग मे डूब जाने वाले के भीतर इच्छाएँ रह ही नही जाती। उसके हृदय का इतना विकास हो जाता है कि राम की तरह वह दूसरों की इच्छाएँ पूर्ण करने मे ही अपने जीवन के स्वभाव को बदल लेता है। वह स्वतः पूर्णकाम हो जाता है। तुलसी के अनुसार राम के ये आदर्श, भक्त को सुखी बनाने मे उतने ही समर्थ रहते है जितने समर्थ भक्त को सुखी और ऐश्वर्यसम्पन्न बनाने मे विष्णु और शिव हो सकते है—'अभिमत दानि देव तरुवर से, सेवत सुलभ सुखद हरिहर से' $ । विश्व-रक्षण और मगलविधान क्रम से विष्णु और शिव के कार्य है। राम का शील भक्त मे अवतीर्ण हो कर उसकी रक्षा और उसके मगल का विधान स्वय कर लेता है। जिस प्रकार विष्णु और शिव उपासना से सुलभ हो जाते है, उसी प्रकार राम के आदर्श भी सुलभ होते है। अनुभव-गम्य होने के कारण वे दुरूह और दुर्लभ नही है।

ये पवित्र और उज्ज्वल आदर्श, शीतल हृदय के उज्ज्वल और शान्तिमय शरदाकाश मे नक्षत्रो की तरह चमकते रहते है। राम का भक्त इन आदर्शो को अपना जीवन, अपना सब कुछ समझता है। बिना पवित्रता और शान्ति की साधना किये हृदय के आकाश मे राम के आदर्शो का आलोक नही प्राप्त हो सकता। इन्ही आदर्शो की उपासना तुलसी की भक्ति-साधना का मूल है। तुलसी के राम, जीवन की पवित्रता की साधना मे लीन रहते है। स्वार्थो से ऊपर उठ कर वे अकारण जगहित मे लगे रहते है। उनकी इस प्रवृत्ति को सम्भव बनाने के लिए स्वार्थ कारण बन कर नही आता। इसी अकारण जगहित को देख कर गोस्वामी जी को विमल सन्तोष का अनुभव होता है। गगा की लहरों के समान पवित्र

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३१ के बाद। † वही। $ वही।

और शीतल, राम के ये आदर्श, सेवक के मनमानस को हस के समान अपनी धवलता से उज्ज्वल बना देते है। उसे विमल सन्तोष की प्राप्ति हो जाती है। स्वार्थ की सिद्धि मे साधारण सन्तोष होता है, पर लोकमगल विधान कर लेने से विमल सन्तोष की सिद्धि हो जाती है। तुलसी को पवित्र भावना के भीतर अनत राम के चरित का महत्त्व, अनत हो गया है। उनके अनुसार जिस तरह प्रचड आग लकडी को भस्म कर देती है, उसी तरह राम का गुण-ग्राम कलि के कुपथ, कुतर्क, कुचाल, कपट, दभ और पाखड को जला कर भस्म कर देता है। पूर्ण चन्द्र की किरणों की तरह रामचरित साधारणत. सबको सुखद होता है, कुमुद और चकोर के समान सज्जनो के मन को उससे विशेष महत्त्वपूर्ण लाभ होता है। सज्जन तो राम बन कर ही विमल सन्तोष का अनुभव करता है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म सगुण हो कर यदि लोक जीवन के भीतर अवतरित न होता तो समाज का इस तरह का आदर्श और स्वाभाविक विकास असम्भव था‡।

'सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधु लोग से।
सेवक-मन-मानस-मराल से। पावन गग-तरग-माल से।'

राम के द्वारा किया हुआ निरुपधि (अहैतुक) जग-हित ही विमल सन्तोष का सम्पादन कर सकता है। भक्त के मानस मे राम के उज्ज्वल आदर्श का हस विमल सन्तोष की सृष्टि करता है।

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दभ पाखड।
दहन राम-गुन-ग्राम जिमि ईधन अनल प्रचड।
रामचरित राकेस-कर-सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन-कुमुद-चकोर-चित हित बिसेषि बड लाहु†।

कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कलि, कपट, दभ और पाखड को राम का आदर्श शील भस्म कर देता है। चन्द्रमा की चन्द्रिका की तरह राम का शील सबको विमल सन्तोष प्रदान करता है। चकोर के चित्त की तरह सज्जनों के चित्त के लिए राम के आदर्श शील से बढ-कर कोई दूसरा लाभ नही होता। यही लाभ तुलसी की भक्ति है।

विश्वास, सम्मान और प्रेम के आधार से जो भक्ति पैदा होती है, वही विमल सन्तोष को पैदा करती है:

नाना भाँति राम अवतारा, रामायन सत कोटि अपारा।
कलप भेद हरि चरित सोहाए, भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये।
करिय न ससय अस उर जानी, सुनिय कथा सादर रति मानी $।

ये विश्वास, सम्मान और प्रेम विमल विचार से पैदा होते है। ऊपर के 'करिय न ससय', 'सादर' और 'रति' तथा निम्नांकित 'बिमल बिचार' शब्दों से गोस्वामी जी ने इसी सत्य को प्रस्तुत किया है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३१ के पहले और बाद की चौपाइयाँ। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३२। $ रामचरितमानस, बालकाड दोहा ३ के पहले।

राम अनत-अनत गुन अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहि जिनके बिमल विचार‡।

जीवन के भीतर राम के विशद् गुणों की उपासना ही रामभक्ति है। इसी पद्धति से विमल सन्तोष सम्पादन होता है :

सादर सिवहि नाइ अब माथा, बरनउ बिसद राम-गुन-गाथा†।

यही 'बिसद राम-गुन-गाथा' जब व्यक्ति के जीवन का अग बन जाती है, तब वह रामभक्त होता है .

तुम अपनायो तब जानिहौ जब मन फिरि परि है।

जगत् के द्वन्द्वात्मक स्वार्थों से निवृत्त हो कर मन जब राम के आदर्शों की तरफ प्रवृत्त होता है तब तुलसी के अनुसार राम उस मन मे बैठ कर साधक को अपना लेते है। आखिर राम अपने आदर्शों को छोड और है ही क्या ! इन्ही आदर्शों को प्राप्त करके साधक को विमल सन्तोष होता है।

ये आदर्श शरीर के माध्यम से ही साकार होते है। इसीलिए आदर्शों को वहन करने वाले राम के सुन्दर शरीर की भी उपासना भक्त लोग करते है। इस शरीर से सम्बन्ध रखने वाले नदी-पर्वत, ग्राम-नगर, वन-उद्यान, सर-सरोवर, नर-नारी सब भक्त को प्रिय लगते है। इन सबके, राम से सम्बद्ध हो कर, पवित्र और प्रिय हो जाने का यही रहस्य है, अयोध्या और सरयू, चित्रकूट और रामगिरि की पवित्रता का यही रहस्य है।

मज्जहि सज्जन बृन्द बहु पावन सरजू नीर।
जपहि राम धरि ध्यान उर सुदर स्याम सरीर$।

ये पक्तियाँ इसी बात की गवाही देती है। जीवन के भीतर इसी सर्वव्यापी सौन्दर्य का साक्षात्कार करके विमल सन्तोष का अनुभव होता है। जीवन के असीम सौन्दर्य के केन्द्र राम से सम्बद्ध हो कर सरयू का महत्त्व इतना बढ़ जाता है कि 'बिमल मति सारदा' भी उसे नही कह सकती—'नदी पुनीत अमित महिमा अति, कहि न सकइ सारदा बिमल मति*।' जगत् को पवित्र करने वाला शील जिस भूमि पर अकुरित हुआ उसमे स्वभावगत जगत्पावनत्व होना ही चाहिए। इसीलिए तुलसी का कवि अयोध्या के लिए कह उठता है—"राम धामदा पुरी सुहावनि, लोक समस्त विदित जगपावनि§"। जिस पृथ्वी की धूल मे राम के शील का विकास करने की शक्ति है, वह प्रत्येक मनुष्य को शील के उस विकास तक पहुँचा सकती है, यह 'राम धामदा' राम का धाम देने वाली हो सकती है। अयोध्या की भूमि पर जो अपना शरीर छोड़ता है, वह ससार मे लौट कर नही आता। राम के शील का वायुमडल वासनाओं के ऊपर है। वह वातावरण अयोध्या मे है। उसमे यदि मनुष्य जीवन बिता सके तो जन्म देने वाली वासना उसे फिर अपने जाल में बाँध कर

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३३। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३३ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३४। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३४ के बाद। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३४ के बाद।

जगत् के भीतर नही ला सकती—"चारि खानि जग जीव अपारा, अवध तजे तन, नहि ससारा ‡।" मनुष्य ही क्या स्वेदज अडज और उद्भिज प्रकार के प्राणी भी अयोध्या मे रह कर मुक्त हो जाते है। सर्वव्यापी राम के गोरव की यही अनुभूति तुलसी के कवि को विमल सन्तोष देती है। वह पूरे विश्वास से कहता है—"सब बिधि पुरी मनोहर जानी, सकल सिद्धिप्रद मगल खानी। बिमल कथा कर कीन्ह अरभा। सुनत नसाहि काम मद दभा †।" राम के जीवन मे काम, मद और दभ नही है। उस जीवन की 'विमल कथा' को सुनने वाले व्यक्ति में वे कैसे रह सकेगे।

मनुष्य के हृदय को विमल सन्तोप देने वाले, उसकी इद्रियो को पवित्र तृप्ति देने वाले, मानव-शील के उच्चतम उदाहरण ही होते है, इसीलिए भक्त कवियो ने विचार-प्रधान उपदेशो को छोड कर भावप्रधान चरित्र को ही अपनाया—"राम चरित-मानस एहि नामा, सुनत स्त्रवन पाइय बिस्रामा $।"

अस मानस मानस चख चाही, भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही।
भयउ हृदय आनन्द उछाहू, उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू *।

चरित के सौन्दर्य को हृदय ही अनुभव करता है। इसीलिए रामचरित मानस को अनुभव करने के लिए हृदय की आँखो की आवश्यकता है। इस मानस मे हृदय के आह्लाद को साथ ले कर डुबकी लगाने से बुद्धि विमल हो जाती है और हृदय मे राम के प्रेम का प्रवाह आनन्द और उत्साह को ले कर उमड पड़ता है।

गोस्वामी जी यह मानते है कि शंकर की कृपा से उन्हे सुमति प्राप्त हुई। यह ज्ञान प्रेम के प्रकाश को ले कर हृदय मे आनन्दात्मक रूप से उल्लसित होता है। हृदय मे सुमति के प्रकाश मे राम के आदर्श आलोकित होते है। वही आदर्श विमल सन्तोप प्रदान करते है—"सभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम-चरित-मानस कवि तुलसी §।" गम्भीर हृदय के भीतर जीवन की गहराई का अनुभव करके शान्त और पवित्र हृदय के भीतर सुमति पैदा होती है। वही राम के चरित्रो के सरोवर का आधार बनती है। 'सुमति भूमि, थल हृदय अगाधू' × ससार को पवित्र बनाने वाले आदर्शो के लिए जिस हृदय मे अगाध गहराई पैदा हो जाती है उसी मे सुमति पैदा होती है और वही सुमति राम-चरित के आदर्शो का अनुभव करके विमल सन्तोष से तृप्त हो जाती है। इस सुमति के आधार पर रामचरित का सरोवर बनता है। वेद और पुराणों के भीतर वर्णित राम के आदर्शो का विस्तार समुद्र है। साधु पुरुष मेघ बन कर उन आदर्शो को अपने हृदय की ऊँचाई पर ले जाते है—"वेद पुरान उदधि, घन साधू +।" महात्मा पुरुष इन आदर्शो की वर्षा राम के सुयशरूपी पवित्र जल के रूप मे करते है—"बरसहि राम सुजस बर बारी ⚜।" इसी आदर्श की वृष्टि में एक ऐसा माधुर्य और आकर्षण होता है जिसकी ओर जनमन के आकृष्ट हो जाने से लोकमगल विधान होता है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३४ के बाद। † वही। $ वही। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३९ के पहले। § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३५ के बाद। × वही। + वही। ⚜ वही।

विश्व में चारों तरफ माधुर्य, सौदन्र्य और मगल के दर्शन होने लगते है। कटुता, अभद्रता और अमगल का लोप हो जाता है—"मधुर मनोहर मगलकारी ‡।"

इतनी बाते तभी सम्भव हो सकती है जब सगुण लीला का पवित्र आदर्श मनुष्य के सामने हो। इस आदर्श के सम्मुख आ जाने पर मनुष्य के मन के भीतर स्वार्थ और वासना का मैल धुल जाता है। राम-चरित-मानस का यह स्वच्छ जल सगुण लीला की पवित्रता के रूप मे मन के पापों को धो देता है। यहाँ मन विमल सन्तोष का अनुभव करता है—"लीला सगुन जो कहहि बखानी, सोइ स्वच्छता, करइ मल हानी †।"

यहाँ तक आ कर मनुष्य के भीतर प्रेमभक्ति पैदा हो जाती है। उन आदर्शों के केन्द्र के प्रति वह अपने भीतर प्रेम का अनुभव करने लगता है। उनकी अनुभूति उसके हृदय को माधुर्य और शीतलता से भर देती है। स्वार्थ के भीतर मिलने वाला ताप शान्त हो जाता है। यही अवस्था राम-चरित-मानस के जल की मधुरता और शीतलता है—"प्रेम भगति जो बरनि न जाई, सोइ मधुरता सुसीतलताई $।"

इस माधुर्य और शीतलता से भरे हुए राम-प्रेम से राम के जन के भीतर सुकृत की वृद्धि होती है। रामप्रेम के भीतर वह जिस भक्ति के आनन्द के प्रवाह मे मग्न हो जाता है, उसी प्रेमभक्ति के माधुर्य से सिचे हुए हृदय के भीतर वह सम्पूर्ण जगत् को स्थान दे देता है। उदार प्रेम से भरा हुआ यही हृदय 'सियाराममय सब जग' * की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। इसी हृदय के प्रेमप्रकाश के भीतर उसके दुष्कृत नष्ट हो जाते है। राम के आदर्शो को प्रेम करने वाला राम बनने लगता है। रामचरितमानस के भीतर रहने वाला, प्रेमभक्ति के कारण मधुर और शीतल आदर्श का जल सुकृतरूपी धान के लिए हितकर होता है। राम के भक्त इस आदर्श के जल को अपना जीवन बना लेते है। जिस तरह जल प्राणी का जीवन होता है, उसी तरह राम के आदर्श रामभक्त के जीवन की भूमि बन जाते है। उन आदर्शो के बिना वह जीवित नही रह सकता। सीताराम को दुःखी जन ही प्रिय होते है। उनका भक्त भी दुःखी व्यक्तियों को अपने प्रेममय हृदय मे रख कर विमल सन्तोष का अनुभव करता है—'बन्दउ सीतारामपद जिन्हहि परम-प्रिय खिन्न §।' राम के आदर्श का यही जल भक्त के सुकृतरूपी धान को शक्ति देता हुआ उसके जीवन को भी शक्ति देता है। बिना इन आदर्शो के, बिना सुकृत के मानो भक्त का जीवन ही सकट मे पड़ कर समाप्त हो जाना चाहता है—'सो जल सुकृत सालि हित होई, रामभगत जन जीवन सोई ×।'

आदर्शो का यह आकर्षक जल कानो के मार्ग से प्रवाहित हो कर बुद्धि की भूमि पर इकट्ठा होता है वहाँ से पवित्र हृदय की ओर प्रवाहित हो कर स्थिर हो जाता है। हृदय की भावना के साथ इसका सम्बन्ध जितना अधिक प्राचीन होता जाएगा उतना ही

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३५ के बाद। † वही। $ वही। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १८। × रामचरित मानस, बालकाड, दोहा ३६ के पहले।

अधिक सुखद, मधुर और शीतल यह होगा। सत्य के सम्बन्ध की हृदय की भावना जितनी प्राचीन होती जाती है, सत्य का सौन्दर्य उतना ही अधिक निखरता जाता है। जीवन की अच्छाई का सम्बन्ध जिस व्यक्ति या जिस राष्ट्र से जितना ही देश और काल के साथ व्यापक होगा, वह व्यक्ति और राष्ट्र उतना ही महिमाशाली हो कर स्वय विमल सन्तोष का अनुभव करेगा और अपने चारों ओर भी उसी की प्रकाश-किरणें प्रसारित करता रहेगा। तुलसी के रामचरितमानस मे आदर्शो का यही जल इकट्ठा किया गया है। इसी से व्यक्ति और राष्ट्र का शृगार सम्भव है। तुलसी की योजना भी रामचरितमानस के रूप मे इसी लक्ष्य को ले कर आगे बढी है—"मेधा महिगत सो जल पावन, सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन। भरेउ सुमानस सुथल थिराना, सुखद सीत रुचि चारु चिराना ‡।"

व्यक्ति और राष्ट्रो के भीतर इन्ही आदर्शो का प्रचार करके गोस्वामी जी विमल सन्तोष को पृथ्वी पर व्यापक बना देना चाहते थे

जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउ प्रसग सब सुमिरि उमा बृपकेतु।।

भारतवर्ष मे जीवन दार्शनिक ऊँचाई की अद्वैत भूमि पर जाने के लिए था और दार्शनिक ऊँचाई का चिन्तन जीवन के स्वरूप को अभेदानुभूति के सौन्दर्य मे सजाने को था। जीवन और दर्शन अलग-अलग नही थे। इसीलिए भारतीय दर्शन समाज की उच्च विकसित अवस्था का बौद्धिक विवेचन करता था तो जीवन अपनी आदर्श अभेद की ऊँचाई से दर्शन को हृदय के मार्ग से साकार करता था। यहाँ अर्थ और काम, धर्म के पूरक थे और इनका त्रिवर्ग मुक्ति की साधना करके जीवन के चतुर्वर्ग पुरुषार्थ को सार्थक बनाना था। इनकी साधना के स्थल जीवन के चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास—थे। स्वार्थ को छोड कर विश्वार्थ मे निमग्न हो जाना ही भारतीय जीवन का लक्ष्य था।

भारतीय दर्शन इसी विराट् जीवन की बौद्धिक आलोचना है। यह बौद्धिक आलोचना निर्गुण होती है और इसके द्वारा शील निर्माण कर, जीवन निर्गुण दर्शन की सगुणता को सिद्ध करता था। भारतीय दर्शन इसी सगुण-निर्गुण के बीच में यात्रा करता हुआ विमल सन्तोष का अनुभव करता था। हृदय और मस्तिष्क के इसी सन्तुलन को गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का सम्पादक माना है। उनके अनुसार सगुण रूप तो एक निश्चित सीमा के भीतर ही कार्य कर सकता है, पर नाम मे उस रूप की भावना को अनंत जगत् के भीतर व्यापक बना देने की क्षमता है—"देखिअहि रूप नाम आधीना, रूपग्यान नहि नाम बिहीना $।" अनत के भीतर रहने वाला नाम, रूप की भावना को भी अनन्त बना देता है—"नाम रूप दुइ ईस उपाधी, अकथ अनादि सुसामुझि साधी *।" नाम और

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३६ के पहले की चौपाइया। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३५। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २० के बाद। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २० के बाद।

रूप दोनों परम मित्र हैं और एक साथ ही रहते है। परमात्मा इन दोनों का स्वामी है। ये दोनों उसी का अनुगमन करते रहते है—"समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ‡।"

राम के रूप और उनके नाम से अधिक महत्त्व गोस्वामी जी ने राम को ही दिया है। इसीलिए उनके नाम और रूप को उनका अनुगामी उन्होने माना है। भक्त जब परमात्मा को नाम और रूप से ऊपर मान लेता है तो बौद्धिक दर्शन के क्षेत्र से भी उसे विमल सन्तोष का अनुभव होता है—नाम और रूप की समस्या की उलझन का हल पा कर। परन्तु विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त को हृदय से सत्य अनुभव करने वाला तुलसी का साधक ब्रह्म को माया का साथी मानता है। इसीलिए वह नाम और रूप को भी सत्य मान कर उनमे तारतम्य नही देखना चाहता। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के भीतर माया सत्य भी है और ब्रह्म का रूप है। इसी लिए यह दर्शन उसके विकास (नाम और रूप) को ब्रह्म राम का अग मान कर छोटा-बडा नही कहना चाहता—"को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुन भेद समुझिहहि साधू †।" वह उन्हे बड़ा छोटा न कह कर केवल उनके गुणभेद को समझा देना चाहता है।

गोस्वामी जी के अनुसार विमल सन्तोष, नाम और रूप के तारतम्य के निश्चय में नही, उनके कार्यो को जान कर उनके भीतर परमात्मा की इच्छा के वशवर्तित्व के दर्शन करने में ही है। इसीलिए उन्होंने उन दोनों को प्रभु की इच्छा का अनुगामी मान कर सम्यक् ज्ञान के द्वारा विमल सन्तोष प्राप्त कर लिया है। उनके अनुसार सगुणता और निर्गुणता दोनों परमात्मा की अवस्थाएँ है और दोनों मे उसी की इच्छा चरितार्थ होती रहती है। इसीलिए सगुणता के भीतर रह कर कार्य करने वाला 'रूप' और निर्गुणता की अनंतता में प्रविष्ट हो जाने वाला 'नाम' दोनों उसी की इच्छा के अनुसार काम करते रहते है। इसी कारण सीमा और असीम दोनों के कार्यो मे प्रभु की इच्छा का ही दर्शन करके तुलसी को विमल सन्तोष की प्राप्ति हो जाती है। उन्हे किसी मे उलझन की अशान्ति का अनुभव ही नही होता। उन्हे नाम और रूप के भीतर 'अकथ' की ही कहानी दिखाई पड़ती है। जिसे वाणी और बुद्धि नहीं प्राप्त कर सकती उसी की कथा 'नाम' 'रूप' के कार्यो में दिखाई पड़ती है और उस वर्णनातीत के हाथों का उनमें दर्शन करके तुलसी का साधक सुख और सन्तोष का ही अनुभव करता है। यह सन्तोष उलझन की भ्रान्ति और सन्देह के अज्ञानमय अन्धकार से मुक्त होने के कारण और विराट् की एक ही इच्छा का चारों तरफ़ दर्शन कर लेने के कारण विमल है, ज्ञान के प्रकाश से आलोकित है— "नाम-रूप-गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परत बखानी $।" ऐसी स्थिति में अगुन और सगुन का सुन्दर सम्बन्ध स्थापित करने वाले चतुर दुभाषिये 'नाम' को तुलसीदास जी ने उपासना के भीतर सम्मानित स्थान दिया है—"अगुन-सगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २० के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २० के बाद। $ वही।

दुभाखी ‡।" सीमित सगुण की अनंतता का ज्ञान नाम ही कराता है, क्योंकि सगुण राम एक ही स्थान पर काम करते है, पर उनका नाम अनत विश्व मे कार्यक्षम दिखाई पडता है। इसी से ज्ञात होता है कि सीमा के भीतर रहने वाला सगुण राम असीम भी है। इसी नाम के मणिदीप को जीभ के द्वार पर रख कर तुलसीदास जी बाहर-भीतर दोनो को आलोकित करने का परामर्श देते है—

रामनाममनिदीप धरु जीहदेहरीद्वार ।
तुलसी भीतर बाहरउ जौ चाहसि उजियार † ।

यह भीतर और बाहर का प्रकाश वही शक्ति है जो हृदय को और बौद्धिक चिन्तन को अनत की विराट् शक्ति का अनुभव और ज्ञान सघटित करने की क्षमता देती है और बाहरी आँखों को भी हृदय और मन की वही पवित्रता देती है, जिसमे बाहर के भी सम्पूर्ण जगत् मे उस एक राम का दर्शन हो सके। इसी बात को बताने के लिए तुलसीदास जी ने आगे लिखा है—

नाम जीह जपि जागहि जोगी, बिरति बिरचि प्रपच बियोगी ।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा $ ।

एकत्व के दर्शन की समग्र निधि से गर्भित नाम मन को प्रपच की भेदानुभूति से हटा ले जाता है और अज्ञान-निशा की निद्रा मे पडे हुए मन का भेदज्ञान मिट जाता है। ऐसा योगी एकत्व के योग को प्राप्त करके अभेदानुभूति की जागृत अवस्था मे पहुँच जाता है। यही स्थिति परमानन्द की अवस्था है जो जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इसमे स्वार्थ की वासना का लोप होने पर एकत्व का प्रकाश जीव को ब्रह्मस्वरूप बना देता है। उपासना के क्षेत्र मे ज्ञान के लिए नाम का सहारा लेना, एकत्व के प्रतीक मे निमग्न हो जाना ही विमल सन्तोष का कारण बनता है—"ज्ञानी प्रभुहि बिसेषि पियारा।" "सकल कामनाहीन जे रामभगति रस लीन। नाम सुप्रेमपियूष ह्रद तिनहु किये मन मीन *।"

तुलसीदास जी की उपासना-पद्धति के भीतर नाम की महिमा अपार मानी गयी है। पर इस नाम को साधारण अक्षर वाला ध्वन्यात्मक नाम ही नही मानना चाहिए। इस नाम मे अक्षरों की ध्वनि तो सीमित और निश्चित ही है, पर इस ध्वनि के साथ हृदय के अनत प्रेम का अमृत प्रवाहित होता है। यह नाम साधारण मनुष्य के द्वारा उच्चरित 'राम' शब्द नही है। यह तो वह 'राम' शब्द है जिसे सिद्ध भक्त प्रेम के अमृत सरोवर के माधुर्य मे अपनी आत्मा को तदाकार करके अपने हृदय के भीतर के उस प्रेमामृत से सीच कर बाहर अभिव्यक्त करता है। प्रेम की समाधि के भीतर से निकली हुई इस नाम की ध्वनि में राम की भावना सजीव हो कर व्यक्त होती है। इन ध्वनियों के साथ राम के जीवन का सम्पूर्ण माधुर्य भक्त के प्रेम के माधुर्य में समा कर व्यक्त होता है। जब भक्त को अपने जीवन के स्वार्थों की कामना छोड़ देती है, तब भगवान् के आदर्शों के

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २० के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २१ से २२ तक। $ वही। * वही।

अमृतमय ह्लद मे वह निमग्न हो जाता है। ऐसी स्थिति मे पहुँचे हुए भक्त को भगवान् का नाम प्रेम का स्वरूप, एकत्व का प्रतीक तथा 'सुप्रेम-पियूष-ह्लद' हो जाता है।

इसी अवस्था में पहुँच कर गोस्वामी जी ने कहा है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड नाम दुहू ते, किय जेहि जुग निज बस निज बूते ‡।

प्रेम के अनिर्वचनीय अगाध और अनत आनन्द में डूबे हुए भक्त-हृदय को निर्गुण और सगुण, ब्रह्म के दोनों स्वरूप, अकथ, अगाध, अनत और अनुपम मालूम पडने लगते है। ये अनिर्वचनीय आनन्द के आकर्षण से भरे हुए दोनों रूप—दशरथ-पुत्र के रूप में तथा 'सियाराममय सब जग' † के रूप में—भक्त को 'अकथ, अगाध, अनादि अनूपा' अनुभूत होने लगते है। जब इन रूपों के आकर्षण के आनन्द मे डूब कर भक्त इन्हे नाम दे देता है, तब वह नाम भी परम शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूप इस नाम के वशवर्ती हो जाते है। इस स्थिति मे पैदा हुआ नाम तुलसी और कबीर के हृदय मे एक ही प्रकार के ओज से आप्लावित होता है। निर्गुण और सगुण के भीतर शक्ति, शील और सौन्दर्य की जो अनत भूमियाँ रहती हैं, सब इस नाम के भीतर समा जाती है और यह नाम प्रेम की अपार शक्ति से आलोकित हो कर प्रेम-रस के अपार आनन्द से सशक्त हो कर अनत शक्तिवान् हो जाता है।

अपने हृदय के भीतर प्रेम की इस ऊँचाई को साधक जब प्रत्यक्ष कर लेता है तब वह बडे निश्चयगर्भित सकल्प से कह उठता है—

प्रौढि सुजन जनि जानहिं जन की, कहउ प्रतीति प्रीति रुचि मन की $।

वह स्पष्ट शब्दों में कहने लगता है कि प्रेम के अगाध समुद्र मे डूब कर मेरे मन की उत्सुकता ने जबउस समुद्र की थाह लगा ली, तभी मुझे विश्वास हो गया कि 'नाम' निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म दोनों से बड़ा है, क्योकि ब्रह्म के दोनों स्वरूपों की शक्तियों का साक्षात्कार कर लेने पर जो अपार आनन्द अनुभव होता है वह इसी नाम के माध्यम से व्यक्त होता है। इसीलिए ब्रह्म के दोनों स्वरूप इस नाम के वशवर्ती हो जाते हैं। गोस्वामी जी ने इस स्थिति की अनुभूति प्राप्त कर लेने के बाद ही कहा है कि केवल अलकार के लिए नही, बल्कि अपने भीतर के अनुभव के आधार पर मै कहता हूँ कि नाम, ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण स्वरूपों से अधिक महत्त्वशाली है। इस कथन को समझाने के लिए उन्होंने एक बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है—'लकड़ी के भीतर रहने वाली आग दिखाई नही पड़ती। वह निर्गुण है। अपने जलते हुए स्वरूप मे व्यक्त हो कर वह सगुण हो जाती है। पर दोनों अवस्थाओं में आग का महत्त्व समान रहता है। आग के इन दोनों रूपों की तरह ब्रह्म के स्वरूपों का रहस्य भी समझा जा सकता है। जिस तरह आग के दोनों रूपों की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं पर नाम से आग की सच्ची धारणा मनुष्य के भीतर बन जाती है, उसी तरह ब्रह्म के दोनों अचिन्त्य

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २२ के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २२ के बाद।

स्वरूपों की धारणा नाम के द्वारा सुगम हो जाती है। इसीलिए मै राम ब्रह्म की अपेक्षा उनके नाम को ही अधिक महत्त्व देता हूँ।'

एक दारुगत, देखिय एकू, पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।
उभय अगम, जुग सुगम नाम ते, कहउ नाम बड ब्रह्म राम ते‡।

ब्रह्म, सम्पूर्ण अस्तित्व, सम्पूर्ण चैतन्य और सम्पूर्ण आनन्द की राशि होने के कारण एक, व्यापक तथा अविनाशी है। ऐसे परमात्मा को अपने भीतर रख कर भी न जानने वाला जीव दुखी रहता है†। नाम का पूरा विवेचन हो जाने पर, प्रेम के आनन्द का नाम के साथ पूरा सम्बन्ध हो जाने पर उस अनन्त का ज्ञान हो जाता है। जीव उसे देख कर उसी का स्वरूप बन जाता है। इन्ही कारणों को ध्यान मे रख कर तुलसीदास जी कहते है:

निरगुन ते एहि भाति बड नाम प्रभाउ अपार।
कहउ नाम बड राम ते निज-विचार-अनुसार$।

चिन्तन की गहराई मे से नाम और ब्रह्म के सम्बन्ध का साक्षात्कार करके नाम की शक्ति की क्षुद्रता का भ्रम दूर हो जाता है और तुलसी के कवि को इस समस्या को हल कर लेने के बाद विमल सन्तोप का अनुभव होता है। इस विमल सन्तोप में ब्रह्मानुभूति का रहस्य इसी प्रकार बैठ गया है। विराट् के निर्गुण-सगुण रहस्य को जान कर जीवन को उसका अग बना देने मे ही विमल सन्तोप की प्राप्ति होती है। अपने क्षुद्र स्वार्थ के भीतर बँधा हुआ जीवन मलिन सन्तोष का ही अनुभव करता है। उसका सन्तोप इन्द्रियों की आसक्तिमय वासना से मलिन रहता है। उसमे अकलमप ब्रह्मभाव नही पैदा हुआ रहता।

विमल सन्तोप की इसी भूमि पर आ कर तुलसी अपने भीतर कबीर को भी अन्तर्भावित कर लेते है। साधना की इस भूमि पर पहुँच कर तुलसी और कबीर मे कोई अन्तर नही रह जाता। दोनों की उपासना इस भूमि पर आ कर निर्गुण हो जाती है—

नाम जीह जपि जागहि जोगी, बिरति बिरचि-प्रपच बियोगी।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा*।

राम का यह नाम निश्छल प्रेम के अमृत का सरोवर है। यह निश्छल प्रेम, विरचि के प्रपच के ऊपर की अवस्था है। इसी मे प्रपच शान्त हो कर 'सियाराममय सब जग' § की अनुभूति होती है। प्रेम की इसी अहैतुकी अवस्था में पहुँच कर योगी अज्ञान की निद्रा को छोड देता है। उसे ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है। इस प्रकाश को प्राप्त करके वह जाग पडता है। समाधि के ब्रह्मानन्द का आस्वाद उसे यही अनुभूत होता है। वह इस प्रपच के भीतर अपरिवर्तनीय, अविनश्वर, अकथ तथा अनामय की अनुपम ज्योति को इस सम्पूर्ण अस्तित्व के भीतर देख कर आनन्दमग्न हो जाता है। तब उसके लिए रूप और रग के भेद मिट जाते है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २२ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २२ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २३। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २१ के बाद। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद।

यही ब्रह्मसुख है। सीमित रूप और रग के भीतर से, जो सुख उसकी भेद-बहुल जगत् को देखने वाली आँखों को मिलता था, वह इस भेद के भीतर अनत और अभेद को देख कर अनत और विराट् हो जाता है। भारतीय वेदान्त का ब्रह्मसुख यही है। इसीलिए सीमा के भीतर की किसी भी वस्तु से मिलने वाले सुख से इसकी तुलना नही की जा सकती। यह विराट् सुख अनुपम होता है। नाम के आधार से योगी इसी सुख को देखता है, क्योंकि इस नाम के साथ नामी के विराट् आदर्शो का सम्बन्ध है और इन आदर्शो मे विराट् जगत् का मगल निहित है।

इस दृष्टि से तुलसी, योगी की सिद्धि के भीतर, उसके परिणामस्वरूप अनुभूत होने वाले ब्रह्मसुख को, एक अनत जीवन के भीतर रहने वाले शील के अनत और मगलमय आदर्श के साक्षात्कार से मिलने वाले सुख का स्वरूप ही मानते है। इसी प्रकार का, विराट् आनद से सम्बद्ध योगी ही सार्वभौम समाज का एक आदर्श घटक हो सकता है। राजा राम भी अपने आदर्श शील के कारण सार्वभौम जागतिक समाज के एक आदर्श घटक है, इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम की ओर तुलसी आकृष्ट हुए है। मनुष्य के भावात्मक विकास तथा विचारात्मक विकास की दोनों दृष्टियों का समन्वय तुलसी के विमल सन्तोष के भीतर हुआ है। योगी का दार्शनिक चिन्तन और जीवन का आदर्शस्वरूप दोनों एक ही सत्य के दो पहलू है। ये दोनों सगुण-निर्गुण पक्ष तुलसी के मानसदर्शन के विमल सन्तोष का कारण तभी बनते है जब बुद्धि और हृदय अपने को एक साथ एक सूत्र के द्वारा ही चरितार्थ करते रहते है। जिस जीवन मे कहनी और करनी दोनों एक हो जाती है, चिन्तन और क्रिया मे जिस जीवन के भीतर द्वैत नही रह जाता वही तुलसी को विमल सन्तोष देता है। राम के शील के भीतर जीवन और दर्शन का, चिन्तन और क्रिया का यही योग दिखाई पडता है। भारतीय दर्शन की सब धाराएँ इसी तरह जीवन के स्वरूप का शृगार करने के लिए ही पैदा हुई और उन्होंने जीवन को स्वार्थ के बन्धन से मुक्ति दिला कर अधिक और अपरिसीम उदार बना कर अपने इस लक्ष्य को पूरा किया है।

अपरिसीम उदारता की इस स्थिति मे अभेदद्रष्टा ज्ञानी ही पहुँच सकता है। गीता की दृष्टि ने जिन चार प्रकार के साधकों के तारतम्य का विवेचन किया है, उससे तुलसी सर्वथा सहमत है। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भक्तों मे चौथे को वे भी अधिक महत्त्व देते है।

राम भगत जग चारि प्रकारा, सुकृती चारिउ अनघ उदारा।
चहू चतुर कहु नाम अधारा, ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पियारा‡।

यही ज्ञानी भक्त आदर्श की उपासना स्वार्थ के लिए नही केवल आदर्श के लिए करता है। अपनी सब भावनाओं को वह परमात्मा को ही समर्पित करता है। उसके हृदय के सब धर्म अनत के साथ जुडे रहते है। अनत जगत् के भीतर वह मगल विधान करना चाहता है। यह सब कार्य 'नाम' के साथ जुड़े हुए आदर्शो की साधना करके ही वह करता है। इसीलिए इस व्यापक 'नाम' को तुलसी व्याप्य सगुण राम से अधिक महत्त्व देते है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २२ के पहले।

तुलसीदास जी ने नाम को राम से भी अधिक महत्त्वशाली सिद्ध करने की अपनी तैयारी की भूमिका मे ही कह दिया है कि इस कार्य की सिद्धि में केवल शब्द और अर्थ की कारीगरी के द्वारा नही करूँगा। मैने इस बात को प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है। यह मेरे विश्वास, प्रेम और स्वभाव का अग बन गयी है—'कहउ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ‡।' इसमे कुछ सन्देह नही कि नाम का माहात्म्य अनत है। नामी के आदर्श कार्य एक सीमा के भीतर ही होते रहते हैं पर उसके लक्ष्य मे अनत समाया रहता है। वह वही कार्य अनत जगत् की रक्षा करने की प्रवृत्ति और उदारता रखने वाले हृदय से करता है—सीमा मे रहते हुए भी। यदि सम्भव हो सकता तो वह अनत जगत् के भीतर अपने रक्षाकार्य का विस्तार कर सकता। पर यह विस्तार आपसे आप हो जाता है। उसके आशय की पवित्रता, नाम पर बैठ कर अनतव्यापिनी हो जाती है। सगुण ब्रह्म की पवित्र विभूति नाम को अमोघ बना देती है। राम यदि एक जगह काम करता है, तो उसका नाम उसके आदर्शो को अनत विश्व मे व्याप्त कर देता है। उसके नाम का स्मरण करके लोग उस नाम के साथ जुडे हुए आदर्शों को प्राप्त कर लेते है। राम (धर्म या आदर्श) उनके भीतर उत्पन्न हो कर उनके जीवन को रक्षित और मगलमय बना देता है। 'धर्मो रक्षयति रक्षितः' रक्षित रखे जाने पर, पालित होने पर, धर्म रक्षा करने वाले की स्वय रक्षा कर लेता है—'सत्यमेव जयते'। सत्य ही विजयी होता है। सदाचार के रूप मे सत्य, व्यक्ति के भीतर प्रतिफलित होता है और उसकी आत्मा उदार, महनीय और रक्षित हो जाती है। नाम के आधार पर इसी विराट् जीवन-दर्शन की परिणति का सन्देश गोस्वामी तुलसीदास जी ने दिया है।

राम भगत हित नर तनु धारी, सहि सकट किय साधु सुखारी।
नाम सप्रेम जपत अनयासा, भगत होहि मुद-मगल बासा †।

राम को तो साधुओं को सुखी बनाने के लिए मानव का रूप धारण करना पडा, अनेक सकटो मे अपने को डालना पडा, पर भक्त प्रेम मे डूब कर त्याग और बलिदान के पवित्र प्रतीक 'नाम' का स्मरण करके आनन्द और मगल का निवास बन जाता है। आदर्शो से प्रकाशित यह नाम कोटि खलो को सुधारता रहता है—'राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खल कुमति सुधारी $।' समाज के भीतर आदर्शो की धारा बहा देने का सकल्प ही भक्ति की भूमिका मे दृढ बन जाता है। तुलसी की भक्ति का सरोवर, रामचरित मानस का प्रारम्भिक सोपान, इन्हीं आदर्श संकल्पों से सजल, शीतल तथा कोमल हो उठा है। खलों की कुमति को सुधारने वाले राम के नाम को अपना साथी बना कर एक पवित्र सामाजिक क्राति को गोस्वामी जी सम्भव बना सके। वेदान्ती की जीवन्मुक्ति का यह सामाजिक पहलू तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के इन सोपानों के द्वारा साकार करके दिखा दिया है। मानस के ये सात सोपान जीवन की उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २२ के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २६ के बाद। $ वही।

प्रवृत्तियों और अवस्थाओं का ही चित्रण करते है। उस विकास की पूरी योजना बालकांड के विमल सन्तोष सम्पादन सोपान मे बन गयी है। इस योजना की सिद्धि मे नाम की आवश्यकता और उसका गौरव सर्वोपरि हैं। उसका सहारा ले कर उपासना अनतमुखी तथा अनतस्रोतप्रवाहिनी बन जाती है।

रिषि हित राम सुकेतु सुता की, सहित-सेन-सुत कीन्ह बिबाकी।
सहित दोष-दुख दास दुरासा, दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा ।

विश्वामित्र की रक्षा तथा उनके यज्ञ के लिए आवश्यक शान्तिमय वातावरण को सम्भव बनाने के लिए राम ने ताड़का को उसके पुत्र तथा सेना के साथ समाप्त किया, पर नाम तो दास के दोष, दुःख और दुराशाओं को इस तरह समाप्त कर देता है जैसे सूर्य रात्रि के अन्धकार को। यहाँ भी दास के भीतर के दोष की ओर ध्यान रख कर तुलसीदास जी ने अपनी भक्ति के आदर्श समाज-निर्माण के पक्ष को ओझल नही होने दिया है।

'भजेउ राम आपु भव-चापू, भव-भय-भंजन नाम प्रतापू †।' के द्वारा भी तुलसीदास जी ने एक बडे महत्त्वपूर्ण सामाजिक आदर्श की सिद्धि की ओर इशारा किया है। शकर का धनुष भी एक भक्त के सामने आये हुए सकट को दूर करने के लिए ही तोड़ा गया था। वह कार्य पतिभक्ता सीता की समस्या को हल करने के लिए किया गया था। अनत शील को अपने हृदय मे छिपा कर सीता ने अपने को राम के समान पति के योग्य बनाया था। राम को 'सुजान सिरोमनि', 'करुनामय', 'उरअंतर जामी', 'दीनबन्धु', 'सील-सनेह-निधान', समझ कर ही तुलसी की सीता ने अपने भीतर राम के लिए भक्ति को सचित कर रखा था $। सीता के इस शील का परिचय राम को भी पूरा था। तुलसी के राम के भीतर से सीता के शील के परिचय की स्वीकृति रामायण भर मे बिखरी पड़ी है—'सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला *।' 'हा गुनखानि जानकी सीता, रूप-सील-व्रत-नेमु पुनीता §।' इत्यादि वाक्य इस बात के साक्षी है। तुलसी के राम ने सीता के लिए यह मत तो जीवन मे प्रवेश करने के बाद बनाया था। उसके पहले ही मनु-सतरूपा की तपस्या को सार्थक करने के लिए 'बिस्वबास भगवान्' जब 'प्रगट' हुए तो उनकी आदि शक्ति को भी उनके साथ तुलसी ने प्रकट किया है—'बाम भाग सोभति अनुकूला, आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला। जासु अंस उपजहि गुन खानी, अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। भृकुटि विलास जासु जग होई, राम वाम दिसि सीता सोई ×।' वहाँ राम ने मनु-सतरूपा से कहा है—'आदिसक्ति जेहि जग उपजाया, सोउ अवतरिहि मोरि यहु माया +।' सीता विराट् की पवित्रता का नारीरूप थी। लोकजीवन के भीतर मानवी सीता मे विश्वमानव राम के सम्पूर्ण आदर्श प्रतिफलित हुए थे।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २३ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ६६। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा २३ के बाद। § रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा २९ के बाद। × रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १४८ के पहले। + रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १५१ के बाद।

इस मानवी सीता को अपने पति राम का पूर्वज्ञान था। उन्हे वह हृदय से प्राप्त कर चुकी थी। पर जीवन मे इस बात के सम्भव होने मे जनक की प्रतिज्ञा का धनुष बाधक था। न जाने कौन इस धनुष को तोड दे। यही विचार सीता के भय का कारण था। सीता के भीतर का आदर्शभक्त अपने राम को ही पाना चाहता था। वासना से अनासक्त इस पावन प्रेम को राम जानते थे। भक्त के इस सकट को उन्होने स्वय धनुप तोड कर दूर किया। विश्वरक्षा के इन आदर्शो से प्रकाशवान् नाम का प्रभाव विश्वभर मे भक्तों के भय को दूर करता रहता है। अपने शील के सौन्दर्य से राम ने दण्डक वन को सुन्दर और पवित्र बनाया था, पर उनके नाम की पवित्रता ने अनत भक्तो के मन को पवित्र किया—"दण्डक बन प्रभु कीन्ह सोहावन, जनमन अमित नाम किय पावन‡।" पवित्र आदर्शो के केन्द्र राम ने राक्षसों की सेना का सहार कर शील का प्रचार किया, पर उनका नाम कलियुग के किसी कलुप को जीवित नही रहने देता—"निसिचर निकर दले रघुनन्दन, नाम सकल कलि-कलुष निकन्दन†।"

सीमित क्षेत्र के भीतर कार्य करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम ने शबरी, जटायु इत्यादि इने-गिने भक्तो को ही सद्गति दी, पर उनके आदर्शो को साथ ले कर, उनका व्यापक नाम अनत दुष्टो के हृदय को परिवर्तित कर सका—"सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ। नाम उधारे अमित खल बेद-बिदित गुनगाथ$।"

शरणागत रक्षक राम ने तो केवल सुग्रीव और विभीषण को शरण दी, पर उनके इस स्वभाव की शक्ति से अनुप्राणित उनके नाम ने अनेक दीनों की रक्षा की।

एक उदार और कर्मठ वीर की तरह राम ने वानर तथा भालुओं की सेना सज्जित की तथा समुद्र पर पुल बनाने मे भी उन्हे पर्याप्त श्रम करना पड़ा, पर उनके नाम मे इतनी शक्ति है कि उसका उच्चारण करते रहने से ससार-सागर ही सूख जाता है। नाम का उच्चारण करने वाले साधक के भीतर जब राम के आदर्श जागृत हो जाएँगे, तब उसके लिए स्वार्थी जगत् का समुद्र कहाँ बच सकता है। करुणा सागर के आदर्शो के सामने स्वार्थ का समुद्र नही टिक सकता। परमात्मा की निजी शक्ति (करुणा) को प्राप्त करके जीव इतना सबल हो जाता है कि दुर्बल स्वार्थ का पारावार उसके सामने सूख जाता है—"राम भालु-कपि-कटक बटोरा, सेतु हेतु स्रम कीन्ह न थोरा। नाम लेत भवसिधु सुखाही, करहु बिचार सुजन मन माही*।"

इतना आयोजन करने के बाद रावण को उसके परिवार के राक्षसों के साथ मारने में राम को सफलता मिली। इस सफलता के बाद ही वे सीता को ले कर अयोध्या लौट सके। पर उनके नाम में इतनी शक्ति है कि भक्त प्रेममग्न हो कर जब उस नाम का स्मरण करता है, तब बिना श्रम वह मोह की सेना को (अज्ञान के असंख्य परिणामों को) जीत लेता है। प्रेम की धारा मे हृदय को लीन करके अपने वैयक्तिक जीवन के सुख-दुख

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २३ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४ के बाद। § वही।

का विसर्जन कर देने वाले के सामने से अज्ञान की सेना तिरोहित हो जाती है। अज्ञान के किसी परिणाम का लेश भी उसके भीतर नही रह जाता। स्नेह मे डूबे हुए ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मानन्द का पवित्र आनन्द अपने मे आत्मसात् कर लेता है। फिर उसके भीतर दुःख की एक क्षीण रेखा भी अवशिष्ट नही रह जाती ‡।

सगुण ब्रह्म, राम से गोस्वामी जी ने नाम को अधिक महत्त्व दिया है। वह 'बर-दायकों' का भी 'बर-दानि' है। वरदान देने वालों को भी वरदान देने की उसमे शक्ति है। राम के अनत आदर्श चरितों मे से इस नाम को ही श्रेष्ठ मान कर शकर ने चुन लिया। वे इसी नाम के मन्त्र का उपदेश सबको करते रहते है, क्योकि वे अनत चरित्र अपनी समग्र पवित्रता की शक्ति को ले कर इस नाम के भीतर ही बैठे हुए है। इस नाम के आधार से अखिल आदर्शो की शृखला ध्यान के सामने चित्रित हो उठती है—"ब्रह्म राम ते नाम बड, बर-दायक बर-दानि। रामचरित सतकोटि मह लिय महेस जिय जानि †।"

तुलसी का कवि इस बात को अनुभव करता है कि सीमा के भीतर रहने वाली उसकी बुद्धि राम के अनत शील का वर्णन नही कर सकती, इसीलिए उस अनत शील के केन्द्र (नाम) की बड़ाई की इयत्ता को भी वह निश्चित नही कर सकती। सीमा के भीतर रहने वाले सगुण राम भी अपने नाम के असीम गुणों का वर्णन नही कर सकते। यह बात बिलकुल स्वाभाविक है। पवित्र शील वाला व्यक्ति अपने चारों ओर शील की पवित्रता को इतना फैला देता है, इतना प्रसारित कर देता है कि उसे भी उस प्रसार की सीमा का ज्ञान नही रह जाता। इसीलिए नाम के सहारे अपने प्रसारित आदर्शो की सीमा राम भी नही जान सकते। 'कहउ कहा लगि नाम बड़ाई, राम न सकहि नाम गुन गाई $।' से गोस्वामी जी ने इसी सत्य को प्रस्तुत किया है। नाम के साथ जुडी हुई गुन-गाथा के सिद्धान्त को मान कर ही गोस्वामी जी नाम के स्मरण के बाद गुनगाथा की शृखला के विस्तार का चित्रण सम्भव मानते है। नाम के आधार से ही राम की गुन-गाथा उन्हें स्मृत होती जाती है—'सुमिरि सो नाम, राम-गुन-गाथा, करउ नाइ रघुनाथहि माथा *।' से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सगुण-निर्गुण के ऊपर इस नाम की स्थापना कर तुलसी ने 'राम' शब्द को वही सार्थकता दे दी है जो सार्थकता संत कवियों ने इसे दी थी। यह नाम सर्वशक्तिमान् है। सगुण राम के इस निर्गुण सर्वव्यापी नाम के साथ आदर्शो के प्रसार का स्वाभाविक सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के बाद तुलसी ने जीवन को दार्शनिक ऊँचाई पर रहने के योग्य बना दिया है और दर्शन की ऊँचाई को जीवन का सत्य बना दिया है। सतों की उपदेशात्मिका प्रचार-पद्धति में परिवर्धन, परिवर्तन करके राम के जीवन के आदर्शपूर्ण स्वरूप को तुलसी ने अपने धर्म-प्रचार का साधन बनाया। इसी पद्धति का अवलम्बन करके उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव हुआ।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २४ के बाद † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २५। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २६ के पहले। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २७ के बाद।

केवल उपदेशात्मक वाक्यों से हृदय सन्तुष्ट नही होता। आदर्शो को जीवन के सौन्दर्य के भीतर साकार होते देख कर ही हृदय को सन्तोप होता है। राम के जीवन का साक्षात्कार करके और उसी जीवन-चित्र को लोगो के हृदयो पर अकित करके तुलसी ने स्वय भी विमल सन्तोष का अनुभव किया है और ससार के हृदय को भी उसी आनन्द के अनुभव मे मग्न कर दिया है। तुलसी के राजा राम की कृपा-भावना को कृपा करने से कभी सन्तोष ही नही होता। 'जासु कृपा नहि कृपा अघाती ‡' से गोस्वामी जी ने इसी सत्य को व्यक्त किया है। राम कितनी भी कृपा करे, उन्हे ऐसा ही अनुभव होता रहता है कि मैने बहुत कम कृपा की। तुलसी के राम, भक्त के दोषो को नही देखते, अपनी दीनबन्धुता का ध्यान रख कर वे उद्धार ही करते जाते है। भारतीय दर्शन का यह आशावाद जीवन को बड़ा ही स्वस्थ सहारा देता है। भारतीय दर्शन पतित स्वभाव वाले व्यक्ति को भी सुधार ओर सद्गति की आशा का सन्देश देता है। इसी के आधार पर तुलसी के राम उसी को अपनाते है जो पिछडा हुआ है। जो भला है उसमे सुधार अपेक्षित नही होता। यह सुधार तो पतितो के लिए है। राम इसीलिए पतितपावन है। 'राम सुस्वामि कुसेवक मोसो, निज दिसि देखि दयानिधि पोसो †' मे यही सत्य निहित है।

'धनी-निर्धन, ग्रामीण-नागरिक, पडित-मूढ, मलिनमति और प्रतिभाशाली, सुकवि और कुकवि सब पुरुष-स्त्री राजा की प्रशसा अपनी बुद्धि के अनुसार करते है। राजा, भला, सज्जन तथा सुशील होता है। वह ईश्वर के अश मे पैदा होता है। उसका स्वभाव परम कृपालु होता है। वह सबकी भाषा, भक्ति, नम्रता और योग्यता के अनुसार सम्मान देता है। यह तो 'प्राकृत-महिपाल' (साधारण राजा) का स्वभाव है। जीवों के शिरोमणि कोसलराज राम केवल स्नेह मे ही वश मे हो जाते है $।'

प्रारब्धवाद के अनुसार गोस्वामी जी 'शुचीना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' * का अनुमोदन करते हुए यह स्वीकार करते है कि योगी और चरित्रवान् के भीतर ईश्वरत्व का अश उत्पन्न हो जाता है और उन्ही अशों को ले कर जीव राजा के शरीर मे आता है। उसमे साधारण मनुष्यों से अधिक गुण होते है, पर राम विकास की अन्तिम सीमा है। मानवशील का अन्तिम विकास ही परमात्मा है। उसका अवतार मनुष्यों की साधारण योग्यताओं पर ध्यान नही देता। वह आदर्श के प्रति स्नेह रखने वाले मनुष्यों के प्रति ही आकृष्ट होता है। इसी आदर्शप्रियता का राम में दर्शन करके तुलसीदास जी उनके निर्गुण रूप पर ही अपने को निछावर नही कर देते; एक सच्चे विशिष्टाद्वैती साधक की तरह निर्गुण की सर्वव्यापकता पर ध्यान रखते हुए भी सगुण की उत्तम पुरुषता पर से ध्यान वे इसलिए नही हटाते कि उन्हे उत्तम पुरुषों के समाज को देख लेने की भूख है। इसकी गवाही मानस के प्रत्येक सोपान से मिलती है। प्रारम्भ के इस विमल सन्तोष सम्पादन सोपान में तो इसकी भूमिका ही है। इस सोपान मे एक आदर्श समाज का निर्माण करने

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २७ के बाद। † वही। $ वही। * गीता, अध्याय ६, श्लोक ४१।

का पवित्र सकल्प तुलसी का साधक करता है—"बरनउं रघुवर बिसद जसु सुनि कलिकलुष नसाइ ‡ ।" 'कलिकलुष' का नाश 'रघुवर' के 'बिसद जस' से होता है । इसका अर्थ केवल यही है कि मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शों का प्रचार कर देने से आदर्श समाज का निर्माण हो जाता है । इस कार्य को पूरा करने के लिए सगुण ब्रह्म के आदर्शों को और इन आदर्शों के प्रतीक उसके व्यापक नाम को तुलसी ने अपना अस्त्र बनाया है । मानस भर मे इसी नाम और नामी का प्रकाश जीवन के विकासपथ को आलोकित करता हुआ दिखाई पड़ता है । इस सफलता के विश्वास को स्पष्ट अनुभव करके और बालकाड मे इस विश्वास को अंशत. चरितार्थ करके भी तुलसी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है । लेकिन जीवन का जो अश, और दर्शन की जो धारा इस काड मे प्रतिपादित हुई है वह अपने में स्वत पूर्ण हो कर आगे के दूसरे विकास की ओर अग्रसर हो गयी है । यह सन्तोष तुलसी न जगज्जीवन के हर क्षेत्र मे त्याग और तपस्या का आलोक फैला कर अनुभव किया है । विश्वमगल की साधना करने के लिए जिस व्यक्तित्व के भीतर आत्मबलि का स्थान गोस्वामी जी को दिखाई पड़ा, उसे राम की तरह पूज्य उन्होंने मान लिया, और अपने हृदय की इसी प्रकार की स्वीकृति के भीतर उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है । यह विमल सन्तोष विश्वमगल विधान के लिए राम के भीतर बैठे हुए आत्मोत्सर्ग से जुड़ा हुआ है । राम-साहित्य के प्रसिद्ध साधक भवभूति ने भी अपने राम के भीतर इसी बीज-भाव के आधार पर उत्तर-रामचरित नाटक की कथावस्तु का विकास किया है । उनके राम कहते है—"दु.ख सवेदनायैव रामे चैतन्यमाहित † ।"—'दु ख का अनुभव करने के लिए ही राम के शरीर में चेतना रखी गयी है ।' उन्होंने यह भी कहा है—"स्नेह दया च सौख्य च यदि वा जानकीमपि । आराधनाय लोकाना मुचतो नास्ति मे व्यथा" $—विश्व के मगल के लिए स्नेह, दया, सौख्य और जानकी तक को छोड़ने में मुझे पीडा न होगी ।' अपनी इस प्रतिज्ञा की पूर्ति राम ने अक्षरशः की । धोबी के सन्तोष के लिए, अपने भीतर प्रतिष्ठित पुरुष के उच्चतम शील की गवाही के लिए, सीता के स्वभाव में स्थान पाये हुए नारी के उच्चतम शील की साक्षी देने के लिए, लोक के बीच मे विकसित होने वाले पुरुष के शील के विकास की रक्षा के लिए तथा नारी के भावी शीलविकास के मार्ग से बाधा हटा देने के लिए राम ने सीता को निर्वासित कर दिया । यह घटना राम और सीता के जीवन के बलिदान की उच्चतम घटना है । लोक-जीवन को आदर्श की ओर बढाने के लिए राम ने सीता को छोड़ दिया और अपने एक ही कार्य से उन्होंने अपने स्नेह, दया और सौख्य की लोकाराधन की यज्ञ-वेदी पर बलि दे दी ।

अवतारी राम का यही शील था जिस पर तुलसी ने अपने जीवन को निछावर कर दिया । इसी शील का प्रचार करके 'सब जग' के भीतर तुलसी 'सियाराम' की सगुण झाँकी देखना चाहते थे । उनकी यही इच्छा रामचरित मानस मे चरितार्थ हुई है । इसी

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २९ । † भवभूति लिखित उत्तररामचरित नाटक, अक १, श्लोक ४७ । $ भवभूति लिखित उत्तररामचरित नाटक, अक १, श्लोक १२ ।

इच्छा ने मानस को जन्म दिया। लोकमगल के लिए आत्मोत्सर्ग की सहज प्रकृति, तुलसी ने अपने सब आदर्श पात्रो मे विकसित की है। 'नाम प्रसाद सभु अबिनासी, साज अमगल मगल रासी' ‡ मे भी यही सकेत है। नाम के आधार से राम के आदर्शो को प्राप्त करके अविनाशी शिव त्याग के द्वारा स्वय तो अमगल रूप मे रहते है, पर निरन्तर विश्वमगल के कार्य मे व्यस्त रहते है। विश्व की रक्षा के लिए गरल पान करना सगुण शिव के जीवन की एक महानतम घटना है। सरल जीवन के भीतर उच्च विचार की अन्तिम सीमा शिव ने अपने जीवन के भीतर से प्रकाशित की है। जीवन के भीतर के यही दृश्य विमल सन्तोष की अनुभूति तुलसी को प्रदान करते है। इस भूमि पर जो व्यक्ति अपने जीवन के आदर्शो को पहुँचा सकेगा, वही विमल सन्तोष का अनुभव कर सकेगा। जिन मनु सतरूपा की चर्चा तुलसी ने की है, उन्होने भी तो निर्गुण पवित्रता को, लोकमगल के लिए, आदर्श स्थापित करने के लिए राम के रूप मे सगुण बना लिया और उसी कार्य लिए स्वय दशरथ और कौसल्या हो कर सगुण बनाया। उन्होने मुक्ति नही मॉगी, आदर्श का प्रचार करने वाली भक्ति को मॉग कर ही उन्हे विमल सन्तोष का अनुभव हुआ, ठीक उसी तरह जिस तरह एक सोपान अपने मे पूर्ण हो कर दूसरे से सम्बद्ध हो जाता है। आदर्श का प्रचार करने वाली भक्ति मनुष्य का अनत विकास करके उसे मुक्ति ही प्रदान करती है, अपने मे पूर्ण हो कर मुक्ति बन जाती है। जीवन और दर्शन के इस प्रथम सोपान को पूर्णता दे कर गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है।

इस विमल सन्तोष का विकास गोस्वामी जी ने दाम्पत्य जीवन के प्रेम के भीतर भी देखा है। भारतीय दाम्पत्य जीवन के भीतर का प्रेम, वासना-तृप्ति के घोर स्वार्थ के ऊपर उठ कर त्याग और माधुर्य के आलोक से सदा आलोकित रहा है। कुछ मनीषी कवियों ने इस प्रेम का विकास जीवन के भीतर दिखाई पडने वाले रूपसौन्दर्य के बोध से प्रारम्भ करके त्यागमय शील के सौन्दर्य-बोध तक पहुँचाया है। यहाँ पहुँच कर दो प्रेमियों के भीतर एकात्मता का अद्वैत स्थापित हो जाता है। कालिदास की उमा रूपसौन्दर्य के इसी बोध को ले कर शिव की उपासना करने जाती है और अनासक्त शिव के द्वारा काम-दहन के दृश्य को देख कर समझ जाती है कि वासना से अनासक्त शिव रूपसौन्दर्य की अनुभूति से आकृष्ट नही होता। परम शिव तो परम मगलकारी उस त्याग से आकृष्ट होता है, जो तपस्या की कठोर अग्नि से तप कर जगत् की रक्षा के लिए तारकासुर का वध करने वाले प्रताप की सृष्टि कर सकता है। जगत् की रक्षा व्यक्ति के भोग मे नही, उसके त्याग मे निहित है। व्यक्ति भी अपनी चेतना के भीतर जगत की रक्षा का आदर्श स्थापित करके जब सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होता है तब एक पुत्र का पिता ही नही, जगत्पिता होता है। इसी चेतना को हृदय मे स्थान दे कर नारी भी माता बनने पर केवल अपनी सन्तान की ही धात्री नही बनती, जगद्धात्री जगदम्बा बन जाती है। कालिदास की उमा माता बनने की सीमित मोहजन्य वासना से छू जाती है। इसी वासना की दृष्टि से महान्

‡ रामचरित मानस, बालकांड, दोहा २५ के बाद।

शिव उन्हें साधारण पिता की कामवासना की छुद्र सीमा के भीतर ही बन्द दिखाई पडते है। लेकिन निष्काम शिव की परमसाधना का दर्शन जब उन्हे हो जाता है, तब वह समझ जाती है कि स्वार्थ के भीतर की वासना से ऊपर उठ जाने के कारण शिव इस तरह के प्रतापी सन्तान के पिता होने के योग्य है, जो जगत् की रक्षा कर सकेगा। ऐसे जगत्पिता के सम्मुख अपने को हीन समझ कर उमा ने श्रृंगार को त्याग दिया और तपस्या के द्वारा वासना का अतिक्रम करके अपने जगन्मातृत्व की साधना करने चली गयी। उनको शिव के आदर्श के सम्मुख यह स्पष्टतः परिलक्षित हो गया कि आत्मबलि से ही जगत् की रक्षा की जा सकती है, अपने स्वार्थी भोग से नही। इस साधना के यज्ञ के फलस्वरूप जगदम्बा का स्थान पा कर उमा ने जगत्पिता शिव को प्राप्त कर तारकासुर के आतक से विश्व की रक्षा की।

कविकुलगुरु कालिदास की दाम्पत्य प्रेम के चित्रण की यह योजना महान् है। अपनी रूपराशि को प्रिय के चरणो मे अर्पित कर उमा शिव से एकाकार परिणति का सम्बन्ध चाहती थी। पर रूपसौन्दर्य के बोध की, उमा की इस भावना से साथ कविकुल-गुरु अपनी चेतना को नही बाँधते। तटस्थ रह कर वे उमा का चित्रण कर देते है। उनकी इस भावना का वे समर्थन नही करते। अनासक्त शिव का सयम वासना के प्रलोभन (काम) को जब भस्म कर देता है, तब उमा को सम्यग्बोध हो जाता है। यहाँ महाकवि उमा का साथ देता है। वह कहता है—"निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती ‡"—'पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की'। इसके बाद वह सौन्दर्य की सक्षिप्त, पर सारगर्भित व्याख्या करते हुए कहता है—"प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता †"—'प्रिय व्यक्ति की प्राप्ति के सौभाग्य का परिणाम जो सौन्दर्य दे सकता है, वही चारुता है'। जो सौन्दर्य प्रिय के प्रेम को नही जीत सकता वह किस काम का। इस भावना को अपने भीतर विकसित करके उमा ने समझ लिया कि जगद्रक्षक शिव जगद्रक्षिका से ही आकृष्ट होता है, रूपसौन्दर्य की भेट वह अपने चरणों पर नही चाहता है। वह तो शीलसौन्दर्य की भिक्षा अपने हृदय के लिए चाहता है। जगत् की रक्षा के लिए वह अन्नपूर्णा से अन्न की भिक्षा माँग सकता है, पर सौन्दर्य पर ध्यान रखने वाली उमा के रूप को अपनी पूजा के पुष्प की भेट की तरह भी नही स्वीकार कर सकता। सौन्दर्य की इसी विराट् भावना को अपने भीतर प्रज्ज्वलित करके जगत्पिता को पाने के लिए उमा जगन्माता, अन्नपूर्णा (जगत् की रक्षा की भावना) बन गयी।

लेकिन विशुद्ध सन्तोष के पवित्र प्रकाश से निरन्तर आलोकित तुलसी का साधक अपनी उमा के भीतर के इस मोह को नही सह सकता। उमा की इस पराजय को गोस्वामी जी ने स्वीकार नही किया है। उन्होंने अपनी उमा को प्रारम्भ से अत तक पवित्रता के आलोक से प्रकाशित देखा है। त्यागप्रधान तपोमय प्रेम की पवित्र झाँकी उन्होने अपनी उमा के द्वारा प्रस्तुत की है। उनका विश्वास है कि विराट् शील अपने प्रारम्भ मे भी

‡ कुमारसभव, सर्ग ५, श्लोक १। † वही।

विराट् ही होता है। अपने इस विश्वास पर गोस्वामी जी ने बहुत अधिक ध्यान रखा है। उन्होंने कहा है—'हिमालय के घर मे उमा जब से अवतीर्ण हुई तभी से वहाँ सब सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयी। हिमालय पर चारों तरफ मुनियों ने अपने पवित्र आश्रम बना लिये। विभिन्न प्रकार के नये वृक्ष उत्पन्न हो कर फूल-फल से सदा लदे रहते थे। बहुत प्रकार की मणियों की खाने उस सुन्दर शैल पर प्रकट हो गयो। नदियों मे पवित्र जल बहने लगा। पक्षी, मृग तथा मधुप सब सुखी रहने लगे। सब जीवो ने अपना नैसर्गिक बैर त्याग दिया। उस पर्वत से सब प्रेम करने लगे। गिरिजा के जन्म से हिमालय का घर इस तरह शोभित हो गया जिस तरह राम की भक्ति को पा कर मनुष्य की शोभा बढ जाती है। उस पर्वत के घर मे नित्य नये उत्सव और मगल होने लगे। ब्रह्मा इत्यादि देवता उसका यश गाने लगे ‡।'

उमा के जन्म के इस प्रभाव का 'कुमारसंभव' मे वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है—'उमा के जन्म के दिन दिशाएँ प्रसन्न हो गयी, बिना धूल के वायु बहने लगी। शखध्वनि के बाद पुष्पवृष्टि हुई। सब शरीरी स्थावर जगमों के लिए उमा का जन्मदिन सुख का दिन हो गया...जिस तरह महती प्रभा वाली शिखा से दीपक पवित्र ओर विभूषित होता है, जिस तरह स्वर्ग के मार्ग त्रिपथगा की धाराओं से पवित्र और विभूषित होते है, जिस तरह सस्कारवती वाणी से बुद्धिमान् मनुष्य पवित्र और सुन्दर मालूम पडता है, उसी तरह हिमालय भी उमा के द्वारा पूत और विभूषित हो गया †।' इसके बाद इक्कीस श्लोकों मे महाकवि ने उमा के केवल उस सौन्दर्य का वर्णन किया है, जो शिव के सयम से पराजित हो गया। उमा की पवित्रता पर महाकवि का ध्यान अवश्य है, पर वह सक्षिप्त ही रह जाता है। नारद के यह बताने पर कि उमा के पति शिव होंगे, पर्वत ने उसके लिए वर खोजने के सब प्रयत्न बन्द कर दिये। किसी दूसरे वर की अभिलाषा ही उनके भीतर न रह गयी। इस स्थिति को समझाने के लिए कवि जो कुछ कहता है उससे उमा की पवित्रता की व्यजना हो जाती है। वे कहते है, 'मत्र से पूत आहुति को स्वीकार करने की योग्यता अग्नि के ही तेज में रहती है। सुवर्ण इत्यादि दूसरे तेजस्वी पदार्थों मे यह योग्यता नही होती $।' पार्वती के भीतर मत्रपूत आहुति की पवित्रता का दर्शन महाकवि ने अपने इन शब्दो मे किया है। पर इस पवित्रता का बहुत अधिक भव्य रूप गोस्वामी जी ने अपनी उमा में देखा है। कन्या को नारद के सामने ला कर पर्वतराज हिमालय ने अपनी सुता के गुण-दोष पूछे। तुलसी के नारद ने कहा है—'आपकी पुत्री सब गुणों की खान है। इसके भीतर नैसर्गिक जन्मजात सुशीलता है। यह बड़ी ज्ञानवती है। इसके नाम उमा, अंबिका तथा भवानी है। यह कुमारी सब शुभ लक्षणों से युक्त है। इसे प्रिय का प्रेम निरन्तर मिलेगा। इसका सौभाग्य सदा अविचल रहेगा। माता-पिता इसके कारण यशस्वी होंगे। यह सम्पूर्ण जगत् में पूज्य होगी। इसकी उपासना करने से कोई वस्तु

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६५ के पहले और बाद। † कुमारसभव, सर्ग १, श्लोक २३ से २८। $ कुमारसंभव, सर्ग १, श्लोक ५१।

दुर्लभ न रह जाएगी। इसके शील और नाम का स्मरण करके ससार की सब स्त्रियाँ तलवार की धार के समान कठिन पातिव्रत के पथ पर अग्रसर होती चली जाएँगी ‡।'

समाज के भीतर विमल सन्तोष के लिए हृदय की पवित्रता और तपोमय जीवन की जो अनिवार्य आवश्यकता होती है उसका बडा भव्य रूप तुलसी ने देखा है। इसीलिए उनके नारद ने उमा के भीतर जन्मजात शील का एक परम विराट् रूप देखा। दक्ष के यज्ञ मे अपना आत्म-विसर्जन कर देने वाली सती के पूर्ण शील का विकसित रूप गोस्वामी जी ने अपनी उमा मे बाल्यावस्था के प्रारम्भ से ही देखा है। पर कालिदास ने शील के क्रमिक विकास पर आस्था रख कर अपनी उमा के भीतर इस शील को धीरे-धीरे विकसित किया है। सती के भस्म हो जाने के बाद हिमाचल के ही प्रदेश मे तपोमय सयत जीवन व्यतीत करने वाले शिव की सेवा करने के लिए कालिदास के हिमालय ने अपनी कन्या को उसकी सखियो के साथ भेज दिया। पर्वत ने यही समझा कि वशी शिव की समाधि मे उमा के कारण कोई बाधा न होगी। उमा ने बड़ी योग्यता से शिव की अनासक्तिमय सेवा की। पर समाधि से जागे हुए शिव ने काम के बाणो से विद्ध होने पर अपने भीतर जब वासना का अनुभव किया तब पार्वती के भीतर भी वासना जागृत हुई। यहाँ कालिदास ने यही सिद्ध किया है कि जगद्व्यापी काम धैर्यवान् शिव को भी क्षुब्ध कर सकता है और उमा को क्षुब्ध करना भी स्वाभाविक ही है। शिव वासना को भस्म कर देते है, तब उनकी भावी योग्य अर्धांगिनी भी वासना के मोह से जाग कर तपोमय जीवन की ओर मुड़ जाती है, अपने को शिव के योग्य पात्र बनाने के लिए।

मर्यादा की परमोच्च सीमा का साधक तुलसी, पुरुष शिव के साथ वासना के सघर्ष और उस पर शिव की विजय का चित्र तो अकित करता है, पर अपनी नारी की पवित्रता के भीतर इस सघर्ष को वह पैदा ही नही होने देता। उसकी उमा 'सहज सुशील सयानी †' है, जन्मजात आदर्श नारी है। इसीलिए नारीत्व की चेतना के विकास के साथ ही सुशीलता और विवेक की पराकाष्ठा गोस्वामी जी ने उसमे देखी है। यही देख कर उन्होंने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। वे मानते है कि मानव एक ही जन्म नही, अनत जन्मों का विकास है। इसीलिए सती का पूर्ण विकास उनकी उमा ने प्राप्त किया है। उसे पुनः नये सिरे से विकसित नही होना पड़ा है। कालिदास इस सिद्धान्त को मानते हुए भी साधारण कोटि के मनुष्य के शील से किंचित् भ्रान्त हो कर उमा के भीतर पवित्रता का अनुभव प्रारम्भ से ही कर लेने पर भी उसमे विकास को चित्रित करते है। पर विमल सन्तोष को दृष्टि मे रखते हुए तुलसी इस विमलता के भीतर आरम्भ से अंत तक नारी के भीतर पवित्रता की शुभ्र ज्योत्स्ना का दर्शन करते है। पुरुष के भीतर भी विवेक के इसी पावन तेज को तुलसी ने देखा है। शिव का 'कामदहन' और राम का 'जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी $' रूप इसी सत्य के परिचायक है। दाम्पत्य जीवन के भीतर इसी पवित्रता की

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६६ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६६ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २३१ के पहले।

तपोमय झाँकी को देख कर, आत्मा के विराट् सौन्दर्य का दर्शन करके तुलसी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है।

उन्होंने पुरुष शिव पर काम का आक्रमण तो सह लिया है, शंकर के द्वारा उसके समूल नाश का चित्र अंकित करके, पर अपनी उमा के भीतर वासना का उद्गम वे किसी प्रकार नहीं सह सकते थे। शिव पर भी अपने बाण चलाने में मदन भयभीत होता है। उसकी सब शक्ति क्षीण हो जाती है। जगत् के ऊपर से उसका प्रभाव-विस्तार समाप्त हो जाता है। पुरुष शिव पर भी गोस्वामी जी ने सहज-संयम का यह रंग कितनी स्वाभाविकता से चढाया है—"सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू, भयउ जथाथिति सब संसारू। रुद्रहि देखि मदन भय माना, दुराधर्ष दुर्गम भगवाना †।" कालिदास ने भी शिव के भीतर की इस दुर्धर्षता पर ध्यान रखा है। समाधिमग्न शिव को देख भय के मारे कालिदास का काम मूर्छित हो कर अपनी चेतना को खो बैठता है। उसके धनुष-बाण हाथ में छूट कर गिर जाते हैं, पर उसको पता नहीं चलता †। इसी बीच में कालिदास की उमा शिव की सेवा के लिए शृंगार से सज्जित शरीर में चली आती है। इस घटना के बाद काम की मूर्छा समाप्त हो जाती है और उमा की उपस्थिति से उसे बल मिलता है। शंकर की समाधि खुलने पर नन्दी ने उमा के आने की सूचना दी और तपस्वी शिव ने प्रवेश की आज्ञा दे दी। उमा ने पुष्पांजलि दे कर प्रणाम किया। शिव ने उसे अविचल शीलवाला पति पाने का आशीर्वाद दिया। उमा ने मन्दाकिनी में होने वाले कमलों के बीज की माला शिव को देने के लिए हाथ बढाये। शिव ने उस पर अनुग्रह करने के लिए माला स्वीकार करने की ज्योंही प्रवृत्ति दिखायी, काम ने अपने धनुष पर संमोहन बाण रख लिया। कला के औचित्य के पारखी महाकवि कालिदास ने लोकोत्तर चरित भगवान् शिव पर बाण छोडने के दृश्य का वर्णन नहीं किया है। बाण के प्रभाव में उमा और शिव दोनों प्रभावित हुए और शिव ने काम को भस्म कर डाला $।

परमात्मध्यान में मग्न साधक की समाधि वासना के प्रभाव से भंग नहीं हो सकती। इस सत्य की महाकवि कालिदास ने रक्षा की है—समाधि से बाहर आये हुए शिव पर वासना का प्रभाव जागृत करके। पर गोस्वामी जी ने अनंत की अनंतता के साथ काम की अनंतता का सिद्धान्त स्वीकार किया है। उन्होंने अनंत के ध्यान में मग्न शिव पर अनंत शक्तिवान् काम से आक्रमण करवा दिया है और कालिदास की कलात्मक दृष्टि को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। वे इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि अन्धा काम इतना अविवेकी होता है कि परम पूज्य शिव पर भी पूरी शक्ति से बाण चला कर उनके मर्म को विद्ध कर सकता है। उसका प्रभाव अनंत के ध्यान में मग्न साधक पर भी पड सकता है। लोकोत्तर चरित्र या पवित्र चरित्र वाले व्यक्ति के प्राणों का अंत करने वाले आघात का वर्णन भारतीय साहित्य की मर्यादा के अनुसार वर्ण्य नहीं है। यहाँ पर वैसी

---

† रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ८५ के बाद। † कुमारसंभव, सर्ग ३, श्लोक ५१।
$ कुमारसंभव सर्ग ३, श्लोक ५१ से ७२ तक।

स्थिति नही थी; इसीलिए गोस्वामी जी ने काम की उद्दंडता का प्रदर्शन करने के लिए उसके बाण चलाने की पूरी विधि का वर्णन कर दिया है—"देखि रसाल बिटपवर साखा, तेहि पर चढेउ मदन मन माखा। सुमन चाप निज सर सधाने, अति रिस ताकि स्रवन लगि ताने। छाड़ेउ बिषम बान उर लागे, छूटि समाधि सभु तब जागे ‡।" इसके बाद तुलसी के शिव काम को भस्म कर देते है। समाधि के भग होने की सम्भावना को स्वीकार कर गोस्वामी जी ने एक ओर तो समाधि के दार्शनिक महत्त्व को कम कर दिया है, पर दूसरी ओर अपने इस कार्य से उन्होंने एक बहुत बड़े महत्त्व को प्रतिपादित किया है। इस घटना से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि समाधि को भग करने की शक्ति रखने वाले काम को भी वशी पुरुष भस्म कर सकता है। तपोमय जीवन की ऊँचाई पर पहुँच कर सम्पूर्ण विश्व को अपने हृदय मे स्थान देने की शक्ति पुरुष मे रहती है, स्वार्थ की वासना उसका कुछ नही बिगाड़ सकती। इसी शक्ति का सदेश गोस्वामी जी ने इस घटना से दे कर स्वान्त सुख का, विमल सन्तोष का अनुभव किया है।

पर कामदहन के इस चित्र में गोस्वामी जी उमा को नही लाये। उन्होंने उमा का प्रयोग करना उचित नही समझा। कालिदास ने यह सिद्ध करना चाहा है कि वासना-विद्ध नारी को सम्मुख देख कर भी वासनाविद्ध पुरुष अपनी शक्ति से वासना को भस्म कर उदार और गौरवमय जीवन की ओर बढ़ सकता है। पर 'कामी स्वता पश्यति' †—कालिदास के ही अन्यत्र प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार तुलसी इस बात को मानते है कि वासना तो पुरुष के भीतर पैदा हो कर चारो तरफ उसे नारी मे वासना का ही दर्शन कराती है और कामी पुरुष परस्त्री मे अपने लिए प्रेम की कल्पना करता रहता है। पर पुरुष इस वासना को भी अपने धैर्य से पराजित कर सकता है। एक तरफ अपने शिव को वासना के इस सघर्ष को क्षणमात्र मे भस्म करते हुए दिखा कर भी नारी के शील की पराकाष्ठा उमा को उन्होंने वासना से अस्पृष्ट ही दिखाया है।

उमा के असीम गुणों को बता कर, उसके भीतर पाये जाने वाले जो केवल दो-चार दोष थे, उनको तुलसी के नारद बताने लगे। उन्होंने कहा—'इसके हाथ मे ऐसी रेखा पडी हुई है कि इसे अगुण, अमान, मातृ-पितृहीन, उदासीन, अविवेकी, योगी, जटिल, अकाम मन वाला, नग्न तथा अमगल वेश वाला पति मिलेगा। इतना सुनते ही पर्वत और मैना दुखी हुए पर उमा हर्षित हुई। उनका शरीर पुलकित हो गया। आँखों मे प्रेमाश्रु भर आये। उन्होने समझ लिया कि शिव मुझे पति की तरह मिल जाएँगे $।'

यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि उमा के भीतर प्रेम का जो प्रथम उद्गम गोस्वामी जी ने दिखाया है वह वासनात्मक नही, श्रद्धात्मक है। उन्होने कहा है—"उपजेउ शिवपद कमल सनेहू *।" श्रद्धात्मक प्रेम (भक्ति) को व्यक्त करने के लिए गोस्वामी जी चरणों के प्रति स्नेह की ही चर्चा करते है। 'बदउ अवध भुआल सत्यप्रेम जेहि रामपद §'

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८६ के बाद। † कालिदास लिखित अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक, अंक २, श्लोक २। रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६७ के पहले और बाद।
* रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६७ के बाद। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६।

इत्यादि स्थलो से इस बात की पुष्टि हो जाती है। शिव-पदकमल के लिए उमा के भीतर स्नेह का प्रथम उद्गम दिखा कर गोस्वामी जी ने अपनी उमा को वामना मे अस्पृष्ट रखते हुए शिव के लोकमगल विधायक रूप के प्रति आकृष्ट दिखाया है। वह आकर्षण बडा तीव्र है। उस वियोग के भीतर की पवित्र तीव्रता का बडा मार्मिक चित्र तुलसी ने दो-चार शब्दो मे ही व्यक्त कर दिया है। 'मिलन कठिन, मन भा सदेहू ‡' मे मिलन की उत्सुकता और शिव के समान पति को प्राप्त करने के लिए बडी कठिन साधना की अपेक्षा की ओर भी उमा का ध्यान गया। इसके अतिरिक्त 'शिव सकल्प कीन्ह मन माही, एहि तन सती भेट अब नाही † ।' का भी ध्यान पूर्वजन्म से आज तक उमा के भीतर बना हुआ था। दृढप्रतिज्ञ शिव अपने आदर्श सकल्प को कैसे छोड सकते है। सबसे बडी यही कठिनाई उमा के सामने है।

हिमालय की चिन्ता को मिटाने के लिए नारद कह देते है--वर की ये अवस्थाएँ शिव मे भी दिखाई पडती है—"जद्यपि वर अनेक जग माही, एहि कह सिव तजि दूसर नाही। जौ तपु करइ कुमारि तुम्हारी, भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी $' । कथावस्तु को इस तरह सचालित करके, कालिदास के कामदहन के चित्र मे से गोस्वामी जी अपनी उमा को अलग रख लेते है और उनके भीतर आदर्श पति की प्राप्ति के लिए प्रारम्भ मे ही तपस्या के सकल्प को पैदा कर लेते है। पर्वतराज हिमालय अपनी पत्नी से कहते है—"अब जौ तुमहि सुता पर नेहू, तौ अस जाइ सिखावन देहू। करइ सो तपु जेहि मिलहि महेसू, आन उपाय न मिटहि कलेसू ⁂।" पर मैना के हृदय मे इतनी दृढता नही थी कि अपनी कोमलागी पुत्री को तप करने की राय दे—"बारहि बार लेति उर लाई, गदगद कठ न कछु कहि जाई §।" पर तुलसी की उमा तो जगन्माता, सर्वज्ञ और भवानी है—"जगत-मातु सरबग्य भवानी, मातु सुखद बोली मृदु बानी ×।" अपनी माता को सान्त्वना देने के लिए उमा ने कहा—"मै आपसे अपना एक स्वप्न बताती हूँ। सुन्दर, गौर वर्ण वाले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने स्वप्न मे मुझे यह उपदेश दिया है कि नारद के वाक्य सत्य है। मुझे जा कर तपस्या करनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि तपस्या का प्रस्ताव तुम्हारे माता-पिता को भी उचित प्रतीत हुआ है। तप से सुखों की सृष्टि और दु खो का विनाश होता है। तप के बल से ही ब्रह्मा सृष्टि करते है, विष्णु पालन करते है तथा शिव सहार करते है। तप के बल से ही शेष पृथ्वी का भार अपने ऊपर धारण करते है। सम्पूर्ण सृष्टि तप के आधार पर ही टिकी हुई है। मन से इस सत्य का अनुभव करके तुम तप करने चली जाओ +।"

माता-पिता को समझा कर तुलसी की उमा तपस्या करने चली जाती है—"मातु-पितहि बहुबिधि समुझाई, चली उमा तप हित हरषाई ⚘।" इस तपस्या के पथ पर चलने

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ६७ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ५६ के बाद। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६९ के बाद। ⁂ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७१ के बाद। § वही। × वही। + रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७२ और उसके बाद। ⚘ वही।

मे उमा को विमल सन्तोष का अनुभव होता है। बड़ी प्रसन्नता से वह तपस्या के लिए चली जाती है। लोकमगल की साधना मे निमग्न शिव के लिए श्रद्धात्मक प्रेम को अपने भीतर स्थान दे कर उमा उनके चरणो के ध्यान के सहारे अपने सब कष्ट को भूल कर जगन्माता होने का परिचय देती है।

उर धरि उमा प्रान-पति-चरना, जाइ बिपिन लागी तप करना।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू, पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू‡।

लोकमगल के लिए विष पान कर लेने वाले शिव की अर्धांगिनी अपने को सिद्ध करने के लिए उमा ने कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या जितनी आगे बढी, उन्हे उतना ही अधिक विमल सन्तोष का अनुभव हुआ। उन्होंने अपने को शिव के लिए उतना ही अधिक योग्य पात्र समझा और पति के चरणों के लिए उनका अनुराग बढ़ता गया।

नित नव चरन उपज अनुरागा, बिसरी देह तपहि मन लागा†।

अपने शरीर को भूल कर जो कष्ट को वरण कर लेता है, वही लोकमगल विधान कर सकता है। सूखे हुए बेल के पत्ते पृथ्वी पर से उठा कर तीन हज़ार वर्ष तक उसी भोजन के सहारे उमा ने तपस्या की। अत मे उन पत्तों को भी त्याग दिया, और अपर्णा की उपाधि उन्होंने अपने लिए प्राप्त कर ली। यही उमा के जीवन की पवित्रता और भारतीय दाम्पत्य प्रेम का आदर्श है। तपोमय जीवन से अपने को स्वार्थ के ऊपर उठा कर परार्थ और परमार्थ मे लीन कर देने की साधना भारतीय दाम्पत्य प्रेम का आदर्श है। ऐसे योग्य दम्पति स्वय भी लोकत्राण करते है और अपनी सन्तति भी, वे इसी लोकरक्षा और लोक-रजन के कार्य को अपने बाद अविच्छिन्न रखने के लिए, उत्पन्न करते है। इसी दाम्पत्य जीवन के सौन्दर्य का साक्षात्कार करके तुलसी को विमल सन्तोष का अनुभव हुआ है और इन समस्त मार्गो से विमल सन्तोष के सिद्धान्त की लौकिक झाँकी उन्होंने बालकाड के प्रथम सोपान मे दिखायी है।

शैलजा की इस पवित्र और कठोर साधना से तुलसी के अनादि-अनत राम द्रवित हो जाते है। विराट् पवित्र साधना परम पवित्र विराट् को द्रवित कर देती है। उन्होंने शिव के पास आ कर—'अति पुनीत गिरजा कै करनी, बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी। अब बिनती मम सुनहु सिव जो मो पर निज नेहु। जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु$।'—शिव से वरदान माँगा और वह यही कि वे उमा को स्वीकार कर ले। राम ने उनसे कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। तुम्हारा यह मिलन सती के उस शरीर से नही, दूसरे शरीर से होगा। आदर्श के उपासक शिव ने आदर्श से किचित् गिर जाने के कारण सती को त्याग दिया था। वह सती और अधिक विकसित हो कर उमा हुई है। इसी लिए शिव ने अपने आराध्य राम के कहने पर उसे स्वीकार करने की स्वीकृति दे दी। तुलसी के शिव ने सप्तऋषियो को उमा की परीक्षा लेने को

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७३ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७६ और उसके पहले।

भेजा। उन्होने उमा को कई तरह से डिगाने के प्रयत्न किये, पर तपस्विनी उमा को अपने सत्य प्रेम पर इतना पवित्र अभिमानपूर्ण विश्वास था कि उन्होने कोरा जवाब दिया—"जनम कोटि लगि रगरि हमारी, बरउ सभु न तु रहउ कुआरी। तजउ न नारद कर उपदेसू, आपु कहहि सतबार महेसू‡।"—स्वय शिव भी सौ बार कहे तब भी उमा अपना पवित्र प्रण न छोडेगी। वह करोडो जन्म तपस्या करेगी और यदि शभु को वरण न कर सकेगी तो कुमारी रह जाएगी। यह है पवित्रता का अनन्त तेज, जिसका साक्षात्कार करके तुलसी को विमल सन्तोप का अनुभव हुआ है।

इसी बीच मे तुलसी की वस्तुयोजना मे शिव काम को भस्म कर देते है, पर देवताओ की प्रार्थना स्वीकार करके उमा से विवाह कर लेना स्वीकार कर लेते है। अपने आराध्य राम के अनुरोध पर यह स्वीकृति तो शिव ने पहले भी दे दी थी। ब्रह्मा ने इस स्वीकृति का सन्देश सप्त ऋषियों के द्वारा हिमालय के पास भेजा। सप्त ऋषियों ने पहले उमा को सन्देश सुनाया—

कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ काम महेस†।

महेश वासना से कहाँ आसक्त हो सकता है, पर सप्त ऋषियों ने जगन्माता से कुछ अच्छी बाते सुनने के लिए उन्हे छेडा था। तुलसी की उमा ने उत्तर दिया—"आप लोगों ने उचित ही कहा। आपने समझा है कि शिव ने काम को अब भस्म किया, वे अब तक विकारवान् ही रहे। लेकिन हमने तो यही समझा था कि शिव सदा के योगी, अज, विशुद्ध-अकाम और अभोगी है। अपनी इसी धारणा को ले कर प्रेम के साथ मन, वाणी और कर्म से यदि हमने शिव की सेवा की है, तो कृपानिधि परमेश्वर शिव हमारे प्रण को अवश्य सत्य करेगे $।"

दाम्पत्य प्रेम के भीतर की इसी पवित्र अनासक्ति की उपासना गोस्वामी जी ने की थी। इसी पवित्रता का अपने हृदय से साक्षात्कार करके उन्हे विमल सन्तोप का अनुभव हुआ था। साहित्य साधना के क्षेत्र में गोस्वामी जी ने महाकवि कालिदास की उमा मे यही कमी देखी। उन्होंने अपनी उमा को काम के प्रभाव से प्रभावित दिखा दिया है। तुलसी को कालिदास की उस कला की भावना से सन्तोष नही हुआ। पूर्व जन्म मे सती के भीतर दक्ष के यज्ञ की घटना तक जिस शील का विकास हुआ था, गोस्वामी जी ने अपनी उमा को उसके आगे बढ़ा कर अपनी अनेक जन्मव्यापिनी दृष्टि का परिचय दिया है। कालिदास की उमा से अपनी उमा को पवित्रता के मार्ग पर अधिक जागरूक चित्रित करके तुलसी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है। विमल प्रेम का दर्शन ही तुलसी को विमल सन्तोप प्रदान करता है। इस विमल प्रेम का प्रचार करके तुलसी ने एक विमल सन्तोषमय समाज का दर्शन करना चाहा है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ८१ के पहले। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ८९। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ८९ के बाद।

भवानी के इसी विराट् शील की पवित्रता का साक्षात्कार करके गोस्वामी जी की सीता ने भी उन्हे 'जगद्रक्षिका के रूप मे, मगलंकरण गज-बदन, तथा सुर-त्राता षडानन की जननी के रूप मे देख कर नमस्कार किया है। तुलसी की जगदम्बा सीता को भवानी का जगन्मातृत्व ही दिखाई पडा है। सीता ने भवानी के आदिमध्यअवसानहीन अनत रूप को देखा है—उनके उस प्रभाव को जिसकी सीमा वेद को भी ज्ञात नही। ससार की उत्पत्ति, रक्षा तथा विनाश का सचालन करने वाली उस स्वतन्त्र शक्ति की तरह सीता ने भवानी को देखा है जो सम्पूर्ण विश्व को अपने सकेत से संचालित करती रहती है‡।' नारी के इस अनत पवित्रता के रूप को गोस्वामी जी ने काम के वशवर्तित्व से प्रभावित दिखाने की महाकवि की प्रवृत्ति को स्वीकार नही किया है। उनकी सीता भवानी से कहती है—

पति देवता सुतीय मह मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहि कहि सहस सारदा सेख†।

पति को अपना देवता मानने वाली आदर्श नारियों मे तुलसी की सीता ने भवानी को प्रथम माना है। गोस्वामी जी की सीता ने भवानी मे पवित्रता की उस अमित महिमा का दर्शन किया है जिसका वर्णन सहस्रो शारदा और शेष नही कर सकते। वीर ही वीर के गौरव को पहचान सकता है। सती स्त्री ही सती का मूल्याकन कर सकती है। पति को देवता मानने वाली, पवित्रता की अनतता मे निवास करने वाली तुलसी की सीता भवानी का ठीक मूल्य अकित करती है।

गोस्वामी जी ने इस विमल सन्तोष सम्पादन के सोपान मे अपनी सीता के भीतर भी दाम्पत्य के इसी पावन रूप का विकास आरम्भ किया है। जनकपुर की पुष्प-वाटिका में सीता को राम के आने का समाचार सखियों से मिल जाता है।

एक कहइ नृपसुत तेइ आली, सुने जे मुनि सग आये काली।
जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।
बरनत छबि जहतह सब लोगू। अवसि देखियहि देखन जोगू$।

प्रिय की चर्चा करने वाले ये शब्द सीता को बडे सुन्दर मालूम पडे। उनकी आँखें प्रिय के दर्शन के लिए व्याकुल हो गयी—"तासु बचन अति सियहि सुहाने, दरस लागि लोचन अकुलाने। चली अग्र करि प्रिय सखि सोई, प्रीति पुरातन लखइ न कोई*।" यहाँ भी पुरातन प्रेम है, जिसे कोई नही जान सक रहा है—"सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत। चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत§।" सीता के भीतर प्रारम्भ मे ही यह प्रीति वासनाओं से अस्पृष्ट है और पुनीत है। असीम पवित्रता सीता के भीतर व्याकुल हो उठती है, असीम पवित्र राम से मिल जाने के लिए। भवानी के वरदान के भीतर भी सीता के शील से सम्बद्ध स्नेह को गोस्वामी जी नही भूलते—"मन

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २३५ और उसके पहले। † वही। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २२८ के बाद। * वही। § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २२९।

जाहि राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुन्दर सावरो। करुना निधानु सुजानु सीलु सनेहु जानत रावरो ‡ ।" करुणानिधान मर्यादा पुरुषोत्तम तुम्हारे शीलमय स्नेह को जानते है । यह भवानी की विश्वस्त गवाही सीता के शील के लिए गोस्वामी जी ने दी है।

स्वयवर के स्थान मे अपनी-अपनी भावना के अनुसार सब लोगो ने राम को अलग-अलग रूपों मे देखा। लेकिन सीता के स्नेह के लिए गोस्वामी जी कहते है—"रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया। उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ † ।" मर्यादा की सीमा का भगवान् राम मे दर्शन करके जिस अनत माधुर्य का अनुभव सीता ने किया, वह अनिर्वचनीय है। अनत सदा अनिर्वचनीय ही रहता है। वह अनत पवित्रता का प्रकाश प्राप्त कर लेने वाले हृदय मे अनुभूत हो सकता है। शब्द उसे व्यक्त नही कर सकते। सीता की अनत पवित्रता उस अनत मधुरता का अनुभव करती है पर उसके शब्द उसे व्यक्त नही कर सकते । इसीलिए कोई कवि इस कार्य मे सफल नही हो सकता।

राम के इस शील की पवित्रता के सामने विज्ञ राजा लोगो ने प्रतिस्पर्धा की भावना छोड दी, पर अन्धकार मे मस्त रहने वाला उल्लू सूर्य को कभी नही सह सकता। मूर्ख राजाओं की यही दशा थी। राम की पवित्रता को देखने के लिए उनके हृदयो को आँखे ही नही मिली थी। इसी आदर्श के लिए अपने को योग्य पात्र सिद्ध करने के लिए व्यावहारिक जगत् के भीतर अपनी सगुणता मे अवतीर्ण होने वाली सीता ने आत्मबलि दे दी।

राम के मानव-रूप के साथ तुलसी ने अपनी सीता को मानवी के ही आदर्शो से विभूषित करके उसके शील के विकास को चित्रित किया है। धनुष टूटने के पहले वह साधारण स्त्री की तरह व्याकुल हो जाती है, इस दुविधा से कि कोमल वय के राम कठोर धनुष को कैसे तोडेगे। लेकिन अपनी इस दुर्बलता से ऊपर उठ कर वह अपनी पवित्रता की शक्ति से सम्हल जाती है—सकुची व्याकुलता बडि जानी, धरि धीरज प्रतीति उर आनी $। अपनी व्याकुलता का अनुभव करके उसे अपनी दुर्बलता पर सकोच हो जाता है। अपने हृदय मे विश्वास को जागृत करके वह धैर्य का सहारा लेती है और कहती है—"यदि मन, वाणी और कर्म से हमारा प्रण सत्य होगा, यदि रघुपति के पद-सरोज मे हमारा मन अनुरक्त होगा, तो अन्तर्यामी भगवान् हमारी भावना की सत्यता को समझ कर मुझे रघुपति की दासी बना देंगे * ।" यहाँ रघुपति शब्द सार्थक है। आदर्श शील वाले रघुवश के राजाओं मे राम आदर्श की अनतता के रूप थे। इसी आदर्श के अनत रूप की दासी सीता हो जाना चाहती है। यहाँ दाम्पत्य के भीतर वही तपस्या और त्याग के मार्ग की व्यजना है जो रघुपति और जानकी के दाम्पत्य ने लोक के सामने निर्मित किया था । इसीलिए सीता

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २३६ के पहले। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४२ के पहले। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २५८ के बाद। * वही।

के भीतर राम के लिए वासनात्मक प्रेम न हो कर श्रद्धात्मक ही है। वह भक्ति का रूप पाया हुआ पुनीत प्रेम है, जो पद-सरोज के चारों तरफ दास्यभावना से मँडराता रहता है। राम के उस अनत आदर्श पर अपने को निछावर करके सीता उनकी दासी बन गयी। उन्होंने लोकमगल विधान की वही यज्ञाग्नि अपने भीतर प्रज्ज्वलित कर ली, जो उनके राम के भीतर जल रही थी। सीता के भीतर की स्नेह-भरी इसी पवित्र ज्वाला ने धनुष टूटने के पहले के क्षणों मे उनके वियोग को इतना प्रखर बना दिया था कि प्रत्येक क्षण कल्प के समान बीत रहा था।

चितई सीय कृपा यतन जानी बिकल बिसेखि।
देखी बिपुल बिकल बैदेही, निमिष बिहात कलप सम तेही ‡।

राम के रूप के लिए जो आकर्षण सीता के भीतर गोस्वामी जी ने दिखाया है उसका सम्बन्ध सीता की उसी भावना से है जो राम के शील के सौन्दर्य का साक्षात्कार करती थी। परम सुन्दर राम में आदर्श की अनंत सुन्दरता ने सीता के लिए उनके रूप को भी अनत सौन्दर्ययुक्त बना दिया था। सीता की एक ही पवित्र भावना राम के रूपसौन्दर्य और कर्मसौन्दर्य दोनों की समाहित उपासना कर रही थी। आदर्श भारतीय दाम्पत्य जीवन के भीतर की इसी पवित्रता की उपासना के प्रचार मे तुलसी ने विमल सन्तोष के प्रचार की योजना प्रस्तुत की है। उनके विमल सन्तोष की शृखला की यह भी एक कडी हैं।

गोस्वामी जी के अनुसार मानव चरित्र का विकास देवत्व का भी अतिक्रमण कर सकता है।

सन्तुलित व्यवहार के जीवन-दर्शन के भीतर भी गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है और इस मार्ग से विमल सन्तोष तक पहुँचने की पद्धति का भी विवेचन उन्होंने मानस के भीतर किया है। शूद्र के सेवा-धर्म के व्यवहार से अनंत आदर्श की प्राप्ति, वैश्य के अर्थार्जन के पवित्र और विश्वोन्मुख आदर्श व्यवहार से नारायणत्व की प्राप्ति तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्मों के व्यवहारों की विश्वव्यापिनी परिणति से ब्रह्मभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति का सिद्धान्त गोस्वामी जी मानते है। इस सोपान में विमल सन्तोष को दृष्टि में रख कर, लोकजीवन के भीतर इस आदर्श सन्तुलन के द्वारा पूर्ण जीवन के विकास की ओर, उन्होंने ध्यान रखा है। जीव का पूर्ण विकास अविरल हरिभक्ति मे होता है। यह अविरल हरिभक्ति अन्तिम सोपान मे विवेचित हुई है। इसीलिए गोस्वामी जी ने 'सप्त प्रबध सुभग सोपाना, ज्ञान-नयन निरखत मन माना †।' कह कर जीवन के विकास के इन सोपानों को केवल बाहरी आँखों से देख कर ही जीवन के सौन्दर्य को देख कर प्रसन्न होने को नही कहा है। जीवन के विकास को इन सीढियों को उन्होंने ज्ञान की आँखों से देखने को कहा है। मानस की सगुण कथा आत्मा के विकास का क्रमिक इतिहास है। जीवन के इस सगुण विकास के साथ आत्मा का सौन्दर्य विकसित होता रहता है। इस विकास मे

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २६० और उसके बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३६ के बाद।

स्वार्थ की ग्रन्थियाँ छिन्न हो जाती है और मनुष्य अपने पूर्ण स्वरूप को अविरल हरिभक्ति मे देख लेता है। मनुष्य अपने कर्तव्यों का सम्बन्ध विश्वभर से स्थापित करके अपना यह पूर्ण स्वरूप प्राप्त कर सकता है। यह स्वभाव यदि मनुष्य मे अविरल हो जाए तो वह अविरल हरिभक्त हो जाता है। सब जातियाँ अपने-अपने कर्मो मे परहित मे जुट जाएँ तो वे धर्म की पूर्णता (परमात्मा के स्वभाव) को प्राप्त कर ले। 'परहित सरिस धर्म नहि भाई, पर पीडा सम नहि अधमाई‡।' से गोस्वामी जी ने इसी सत्य पर प्रकाश डाला है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इसी परहित के लिए पैदा किये जाते है। ब्राह्मण विश्व मे विमल सन्तोप के प्रचार के लिए, विश्व की बुद्धि का विकास करने के लिए पैदा होता है। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि विश्व शान्ति के द्वारा विश्व के भीतर विमल सन्तोप का अनुभव करे और दूसरो को भी विमल सन्तोप की अनुभूति तक पहुंचाए।

वैश्य का धर्म, अर्थ को विश्व भर के लिए सुलभ करके विमल सन्तोप का विस्तार करना तथा शूद्र का धर्म है विश्व की सेवा करके जगत् के भीतर परमात्मा के सन्तोपमय रूप का विकास कर स्वयं उसी का रूप अपने भीतर अवतरित करते जाना।

इस अवस्था मे जब दोप पैदा होने लगता है, तभी परमात्मा की विशेप शक्ति सत् और चित् के भीतर आनन्द को ले कर दोपो को दूर कर देती है, और आनन्द का विस्तार कर जाती है। यह शक्ति जीवन के भीतर असन्तुलन को सुधार कर सन्तुलन पैदा कर जाती है। यही रामराज्य का परिणाम होता है। रामराज्य की यही भूमिका मानस के इस काड मे आरम्भ हो जाती है।

सन्तुलित बुद्धि का जब तक व्यापक विस्तार नही होता तब तक व्यापक शान्ति की स्थापना नही हो सकती और बिना शान्ति के विस्तार के, अर्थसग्रह तथा सेवा के कार्य भी निर्माणात्मक परिणति की ओर व्यापक ढग से अग्रसर नही हो सकते। ब्राह्मण धर्म का व्यापक विस्तार बुद्धि के सन्तुलन का विस्तार है और इसके साथ क्षात्र धर्म विकसित होता है, विश्वव्यापिनी शान्ति का प्रसार करके। स्वार्थो से ऊपर उठ कर आत्मबलि के प्रयोग से ब्राह्मण इस बुद्धि के सन्तुलन की वृद्धि का जगत् के बीच मे विस्तार करता रहता है। विश्व के बीच से पीड़ा को निर्वासित करने का कार्य क्षत्रिय करता रहता है। अपने सुखों की बलि दे कर वह जगत् को अनुचित प्रकार से पीडित होने से बचाता रहता है। उत्पीड़न का विनाश क्षात्र धर्म का परिणाम होता है और अज्ञान का विनाश ब्राह्मण धर्म का। ये दोनों धर्म वैश्य और शूद्र धर्म के आधार होते हैं। इनकी स्थापना के बाद अर्थ और सेवा कार्य स्वतः होते रहते हैं। इसीलिए मानस मे ब्राह्म और क्षात्र वृत्तियों का व्यापक विस्तार और प्रसार दिखाया गया है। ऋषि सभ्यता और क्षत्रिय सभ्यता दोनों के विकास का इतिहास मानस के सब सोपानों में विस्तार से वर्णित है। परशुराम और राम के ब्राह्मण तथा क्षत्रिय व्यक्तित्व के भीतर अवतार के इसी सन्तुलन-स्थापन कार्य का चित्र अंकित किया गया है। क्षत्रिय की शक्ति सत्त्वगुण के प्रकाश में रक्षा का कार्य करने के

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ४० के बाद।

लिए है। वह रक्षा के कार्य के लिए ही अपना उत्सर्ग करती रहती है। क्षत्रिय के भीतर शक्ति का यह आदर्श रूप जब तमोगुणी स्वार्थ से विकृत हो कर स्वार्थी विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है, तब विश्वात्मा पीडित होती है। जगत् के भीतर शील के इस पतन को रोकने के लिए परमात्मा अवतार लेता है। परशुराम के ब्राह्मण शरीर मे परमात्मा का अवतार इसीलिए हुआ था। उस युग में क्षत्रिय रक्षा-कार्य से हट कर अपनी शक्ति का उपयोग संहार कार्य के द्वारा स्वार्थसिद्धि के लिए कर रहा था। उस युग मे ब्राह्मण भी त्याग वृत्ति से हट कर सग्रहवृत्ति की ओर अधिक झुका हुआ था। आदर्श से गिरा हुआ क्षत्रिय, अर्थ और सेवा को भी ठीक तरह से संचालित न कर सकने के कारण निर्धन हो गया था। ऐसी ही अवस्था मे हयहय वशी क्षत्रियों ने अपने पुरोहित ब्राह्मणों पर ही धन के लिए आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया और गर्भस्थ बालकों तक को मार डाला। ब्राह्मणों का व्यापक सहार यहाँ तक बढ़ा कि दो भुजाओं के द्वारा ही न हो कर वह संहार सहस्रार्जुन की हजार भुजाओं से होने लगा। इसी युग मे क्षत्रिय-शक्ति को ठीक मार्ग पर ले जाने के लिए जमदग्निपुत्र परशुराम का अवतार हुआ। ब्राह्मण के शरीर में रक्षक क्षात्र धर्म अवतरित हो कर क्षत्रियों को यह शिक्षा देने लगा कि क्षात्रधर्म यदि स्वार्थी हो जाएगा तो उसका विनाश निस्पृह, अक्षात्र स्वभाव वाला ब्राह्मण भी कर सकता है। क्षत्रियों ने स्वार्थ के कारण जो दुर्दशा ब्राह्मणों की की थी, क्षत्रियो की वही दुर्दशा परशुराम ने निःस्वार्थ हो कर रक्षा कार्य का मपादन करते हुए की ।

बाल ब्रह्मचारी अति कोही, बिस्व बिदित छत्रिय-कुल-द्रोही ‡ ।

जन्म भर ब्रह्मचर्य धारण कर निःस्वार्थ भाव से परशुराम ने उन क्षत्रियों का दमन किया जो रक्षा-कार्य को छोड़ कर अपने स्वार्थ की भूख मिटाने के लिए भक्षक बन गये थे।

परशुराम के इस कार्य से जब क्षत्रिय जाति दशरथ के समय तक अपने ठीक मार्ग पर चली आयी और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अनत विनय और अनत त्याग के साथ अनत शक्ति क्षत्रिय जाति के भीतर अवतीर्ण हो गयी तब उस शक्ति के सामने परशुराम श्रद्धावनत हो गये। रक्षा के लिए जो सहार-कार्य उन्होने प्रारभ किया था, उससे विरत हो कर ब्राह्मण के तपोमय जीवन की ओर उन्होंने प्रस्थान किया। क्षात्र धर्म के सौन्दर्य की पूर्णता को चित्रित करने के लिए परशुराम और राम के इस मिलन के भव्य चित्र को तुलसी ने भूमिका की तरह प्रस्तुत किया है। क्षात्रधर्म का उनका आयोजित चित्र राम-राज्य के चित्र की पूर्णता मे, अतिम सोपान में अपने पूर्ण रूप को प्राप्त कर लेता है। जीवन दर्शन के भीतर ब्राह्मण धर्म और क्षात्र धर्म के बीच के इस सन्तुलन मे राम की परमात्म ज्योति के सौन्दर्य का दर्शन करके तुलसी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है और भारतीय जनता के सामने उन्होंने यही आदर्श प्रस्तुत किया है कि विश्व में बुद्धि, शान्ति, अर्थ और सेवा के कार्य को स्वार्थ से ऊपर उठ कर करने वाले लोगों का हृदय विश्व हृदय हो जाता है। ऐसे लोगों का रावण के रूप मे विकास कदापि नही हो सकता। वे राम के

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २७२ के पहले।

ही रूप मे विकसित होंगे । वे नर के सीमित क्षेत्र से विकसित हो कर नारायण की उदारता के अनत क्षेत्र मे पहुँच जाएँगे । तुलसी के विमल सन्तोष की यह योजना कितनी विराट् और सर्वतोमुखी है ।

अपनी इस विराट् योजना के भीतर परमोच्च आदर्श का उपयोग करके तुलसी ने मानव के चरित्र के विकास के द्वारा देव-चरित्र की सीमा को भी बहुत अधिक अतिक्रान्त करवा दिया है । उनका मानव, देव-चरित्र से भी ऊपर उठ कर नारायण हो गया है और फिर भी मर्यादा पुरुषोत्तम के अलौकिक प्रतीत होते हुए रूप मे रह कर भी लौकिक मानव रह सका है । स्वर्गीय जीवन को भूमि पर उतार लेने की तुलसी की यही प्रक्रिया है । लोकादर्श की अनत भूमि पर अपनी साधना और अपने चिन्तन को पहुँचा कर उन्होंने यह कार्य किया है। राम के भीतर निहित इसी अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य को समाज के सामने अभिव्यक्त करके तुलसी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है । गोस्वामी जी का यह सिद्धात है कि जीव जब तक अपनी असीमता को, आत्मा की अनतता को, नही देख लेता, तभी तक भय और पीडा के शूल उसे कष्ट देते रहते है । अज्ञान, मनुष्य की इस अनन्तदर्शिका दृष्टि को बन्द किये रहता है । इसी अज्ञान के कारण धनुष के सामने राम को देख कर अज्ञानी मानव सन्देह से भयभीत हुआ— आत्मा की अनत शक्ति को न जान सकने के कारण इस घटना के बाद धनुष से भी बडी शक्ति परशुराम को सामने देख कर, आत्मा की शक्ति का उसका ज्ञान, और अधिक सीमित हो गया । उसे फिर भयभीत होना पड़ा । पर उस आत्मा की अनन्त शोभा, उसके अपरिमित शील और असीम शक्ति को राम मे अनुभव करके जब परशुराम का हृदय, बन्धन तोड कर प्रेम के प्रवाह मे बह गया तब मानव के सामने से अज्ञान दूर हो गया । उसे ज्ञान की अनन्तव्यापिनी दृष्टि अनन्त के यथार्थ ज्ञान के बाद प्राप्त हो गयी । 'देवन्ह दीन्ही दुदुभी प्रभु पर बरषहि फूल । हरषे पुर-नर-नारि सब मिटा मोहमय सूल ।' से गोस्वामी जी ने इसी उपर्युक्त दार्शनिक सत्य का प्रतिपादन किया है ‡ ।

मानव के भीतर के इसी शील विकास को मर्यादा पुरुषोत्तम के व्यक्तित्व से अलग रख कर, सीता के प्रभाव मे जनकपुर के नरनारियों के भीतर से भी गोस्वामी जी ने क्षणिक आलोक के प्रकाश मे रखा है । अनत शील के आदि केन्द्र राम उनके लक्ष्य हे। इसलिए जनकपुर के नरनारियों के उस शील का विराट् प्रदर्शन उन्होने नही किया है । समयाभाव और विस्तार की निरुद्देश्यता के कारण ही केवल सक्षिप्त इगित दे कर वे आगे बढ गये है । जनकपुर की शोभा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—"जो सपदा नीच गृह सोहा, सो बिलोकि सुरनायकु मोहा । बसइ नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि बर बेषु । तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहि सारद सेषु † ।" अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य का केन्द्र जब पृथ्वी पर उतर आता है तब उसका रूप ही बदल देता है ।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २८५ । † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २८९ और उसके पहले ।

सीता और राम के विवाह को देखने देवता भी उतर आते है। मनुष्यों के शील को जनकपुर में देख कर देवता मन्द पड जाते है। इस स्थिति की ओर इशारा गोस्वामी जी की पक्तियों से मिल जाता है—"नगर नारि-नर रूप निधाना, सुघर सुधरम सुसील सुजाना। तिन्हहिं देखि सब सुर-सुर-नारी, भये नखतु जनु बिधु उजियारी‡।" यही स्थान है जहाँ मानव के आदर्श गोस्वामी जी की दृष्टि मे देवत्व का अतिक्रमण करके भी पुरुषोत्तमता के प्रकाश मे मानवता के भव्य रूप दिखाई पडते है। जहाँ अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य की एक नर-झाँकी अपने नारीरूप के अनत शील, सौन्दर्य और परिणय के सूत्र मे बँध जाने को प्रस्तुत हो, उस स्थान के मानव की दशा और हो ही क्या सकती है। इसी बात को लक्ष्य मे रख कर हतप्रभ आश्चर्यचकित देवताओं की हैरानी दूर करने के लिए शकर ने ब्रह्मा इत्यादि देवताओं को समझाया—"सिव समुझाये देव सब जनि अचरज भुलाहु। हृदय बिचारहु धीर धरि सिय-रघुबीर-बिआहु†।" सीता और राम के विवाह के रहस्य को धैर्य से समझने के लिए देवताओं को शिव के आगाह करने का यही रहस्य है। अनत स्वर्गीय शील जब पृथ्वी की पवित्रता से परिणीत हो जाता है, तब पृथ्वी का रूप ही बदल जाता है। भूतनया जानकी शक्ति, शील और सौन्दर्य की अनंतता है। उनके शील और सौन्दर्य की अनतता का विस्तृत वर्णन तो इस विमल सन्तोष सोपान में हुआ ही है, पर उनकी अनत शक्ति की ओर भी गोस्वामी जी लोगों का ध्यान बराबर आकृष्ट करते गये है, अपनी 'कहियत भिन्न न भिन्न'$ इत्यादि उक्तियों के द्वारा। विवाह के प्रकरण मे भी सीता की अनत शक्ति का इशारा देना गोस्वामी जी नही भूले हैं—"जानी सिय बरात पुर आई, कछु निज महिमा प्रगटि जनाई। हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई, भूप पहुनई करन पठाई*।

सीताराम का विवाह स्वर्गीय आदर्शो का पृथ्वी से परिणय है। इस परिणय से पृथ्वी के ऊपर आदर्शो का अनंत समुद्र उमड़ पड़ता है। 'हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु' § से तुलसी के शिव ने देवताओं के सम्मुख इसी रहस्य का सक्षिप्त प्रकाश दिखाया है। इसी रहस्य का प्रचार करके गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का प्रचार किया है। दाम्पत्य के भीतर अनंत पवित्रता, मनुष्य के शील के भीतर अनत सौन्दर्य की भावना भी तुलसी के विमल सन्तोष का कारण बनती है। इस पवित्रता के सामने देवता भी अपने को मद अनुभव करने लगते है।

विशुद्ध दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र मे भी गोस्वामी जी ने प्रायः सब दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय करके विमल सन्तोष का अनुभव किया है। जैनदर्शन के अनेकान्तवाद की तरह गोस्वामी जी ने दार्शनिक चिन्तन के अनेक निष्कर्षो को अपने ढग से ठीक समझ कर स्वीकार कर लिया है। स्वभावतः विशिष्टाद्वैती होने पर भी उन्होंने

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३१४ और उसके पहले। † वही। $ रामचरित-मानस, बालकाड, दोहा १८। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३०६ के पहले। § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३१४।

अपने दर्शन के भीतर अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि सब दार्शनिक सिद्धान्तो को स्वीकार कर लिया है।

सीता और राम के अभेद को समझाने के लिए जब गोस्वामी जी कहते हे—

गिरा अरथ जलबीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दऊँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ‡।

तब वे भेदाभेद सिद्धान्त के समीप पहुँच जाते है। वाणी और अर्थ, जल और लहर जिस तरह एक रहते हुए भी अलग-अलग शब्दो मे बाध्य होते है, उसी तरह सीता राम भी एक ही तत्त्व के दो रूपान्तर है। वे दो शब्दों मे सम्बोधित हो कर भी एक ही है। केवल कहने मे दो प्रतीत होते हैं, दो है नही। भेदाभेद का सिद्धान्त भी भेद में अभेद इसी प्रकार मानता है।

सीताराम के इसी अभेद को ले कर जब गोस्वामी जी 'सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी' † कहते हे, तब वे ईशावास्योपनिषद् के 'ईशावास्यमिद सर्व यत्कि च जगत्या जगत्' $ के अद्वैत सिद्धान्त के समीप पहुँचे हुए-से प्रतीत होते है।

राम अनत अनत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहि जिनके बिमल बिचार * ॥

मे अनत राम की कथा का अनत विस्तार देखते हुए 'कल्प-कल्प प्रति प्रभु अवतरही' § के अपने सिद्धान्त के साथ और गीता के 'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन' × के अनुसार भी सगुण ब्रह्म के अनत अवतारों को देखते हुए तुलसी विशिष्टाद्वैती हो जाते है। वैसे तो विशिष्ट अद्वैत अवतारी राम के मर्यादा पुरुषोत्तमत्व का विवेचन करने के लिए ही पूरा मानस निर्मित हुआ है।

अद्वैती दृष्टिकोण रखने वाले को यह भ्रम बराबर बना रहता है कि असीम कैसे सीमा मे आ सकता है। तुलसी की सती ऐसे ही अद्वैतियों का प्रतिनिधित्व करके सन्देह मे पड कर कहती है—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होई नर जाहि न जानत बेद + ॥

सर्वज्ञ शिव सती के इस सन्देह को जान कर कहते हे—

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ, ससय अस न धरिय उर काऊ।
जासु कथा कुभज ऋषि गाई, भगति जासु मै मुनिहि सुनाई।
सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा, सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।
मुनि धीर जोगी सिद्धि सतत बिमल मन जेहि ध्यावही।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १८। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। $ ईशोपनिषद्, श्लोक १। * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३३। § रामचरितमानस, बालकांड., दोहा १३९ के बाद। × गीता, अध्याय ४, श्लोक ५। + रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ५० और उसके बाद।

सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित, निज तत्र नित, रघु-कुल-मनी ‡ ।

यही विशिष्टाद्वैती सिद्धान्त के भीतर अवतार का रूप है। अनत सर्वशक्तिमान् अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ सीमा मे रह कर भी स्वतत्र और असीम रह सकता है। परीक्षा लेने के समय सती को राम की यही असीमता दिखाई पडी। रामायण में सीमा के भीतर असीम की असीमता कई बार दिखायी गयी है।

इसी तरह योग, ज्ञान, वैराग्य सब तुलसी के भक्ति सम्प्रदाय के भीतर स्थान पा गये है। उनके 'जोग, ज्ञान बैराग्य निधि' † शिव राम के भक्त है। उमा को राम का रहस्य बताने के लिए भक्त शिव कहते है—"जिसको बिना जाने झूठ भी उसी प्रकार सत्य मालूम पड़ता है, जिस प्रकार बिना पहचाने रस्सी सर्प के समान दिखाई पडती है, जिसको जान लेने के बाद जगत् उसी तरह खो जाता है, जिस तरह स्वप्न का भ्रम जाग जाने पर। मैं उसी बालरूप राम को नमस्कार करता हूँ जिसके नाम का स्मरण करने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती है।" § योग की सिद्धियाँ और ज्ञान मार्ग के भ्रमनाश की प्रक्रिया को तुलसी ने यहाँ स्थान दे दिया है।

सगुण-निर्गुण के द्वन्द्व को सुलझा कर तुलसी ने सन्देह नाश के भीतर से अपने विशिष्टाद्वैती सिद्धान्त की पद्धति के अनुसार विमल सन्तोष का अनुभव कराया है। पार्वती को निर्गुण-सगुण का रहस्य समझाते हुए गोस्वामी जी के शकर कहते है—"सगुण और निर्गुण मे कोई भेद नही है। जो ब्रह्म निर्गुण, अरूप, अलख और अज है, वही भक्त के प्रेम के वश मे हो कर सगुण हो जाता है। जिस तरह जल, कुहरा और बर्फ मे तात्त्विक भेद नही रहता, एक ही जल, कुहरा और बर्फ के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उसी तरह निर्गुण ही सगुण हो जाता है। उन दोनों में तात्त्विक भेद नही है। जिस राम का नाम भ्रम के अन्धकार के लिए सूर्य का काम करता है, वही राम अज्ञान से कैसे बद्ध हो सकता है। राम सच्चिदानन्द सूर्य है, उनके भीतर अज्ञान की राशि का अन्धकार अणुमात्र भी नहीं रह सकता। भगवान् के स्वभाव के भीतर ज्ञान की नैसर्गिक स्थिति है; इसीलिए राम के भीतर विज्ञान का अभाव नही रहता। हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान, अहता और अभिमान, जीव के धर्म है। समग्र ससार जानता है कि राम परमानन्द परेश, पुरातन और व्यापक ब्रह्म है। सम्पूर्ण विश्व का स्वामी, ज्ञान का अनत सागर, प्रसिद्ध पुरुष ही रघुकुल-मणि के रूप मे अवतीर्ण हुआ है। वही हमारे स्वामी है। अज्ञानी लोग अपने ही अज्ञान का आरोप परमात्मा पर कर लेते है। जिस तरह आकाश पर छाये हुए मेघ को देख कर मूर्खतावश लोग समझ लेते है कि सूर्य बन्द कर दिया गया, उसी तरह अज्ञान से निर्लिप्त ब्रह्म के साथ नासमझ लोग अज्ञान का सम्बन्ध जोड लेते है, जो लोग आँख पर उँगली रख कर चन्द्रमा को देखते है, उन्हे एक चन्द्र भी दो की तरह दिखाई पडता है। राम के

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ५० और उसके बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १०७। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १११ के बाद।

साथ अज्ञान का सम्बन्ध उसी प्रकार असत्य है जिस प्रकार आकाश के साथ धूल, धूप और तम का। विषय, इन्द्रियाँ, देवता और जीव सब एक मे एक सचेत दिखाई पडते है। जो इन सबको शक्ति देता है, वही अनादि राम अवधपति भी है। संसार प्रकाश्य है, राम उसका प्रकाशक। वह माया का स्वामी, ज्ञान तथा गुण का निवास स्थान है। जिसकी सत्यता को प्राप्त करके, जिसकी चेतनता मे चैतन्य हो कर, जड माया भी अज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होती है, सीप चादी के समान दिखाई पडती है, सूर्य की किरणे जल की तरह मालूम पडती है, और यह भ्रम कोई दूर नही कर सका है, वह राम की ही शक्ति है। इस तरह सम्पूर्ण जगत् हरि के आश्रय मे रहता है। यद्यपि यह जगत् असत्य है, फिर भी अज्ञानी इसकी असत्यता को न समझने के कारण दुखी होता है। यदि स्वप्न मे किसी का सिर काटा जाए तो उसका दुःख तब तक दूर नही होता जब तक निद्रा का अज्ञान जागरण के प्रबोध मे परिवर्तित न हो जाए। उसी तरह अज्ञानजन्य दुःख ज्ञान के प्रकाश मे ही दूर होता है। यह ज्ञान का प्रकाश जिस राम से मिलता है, वही अयोध्या का राजा भी है। जिसका आदि अन्त कोई नही पाता, अपनी बुद्धि की सीमा के अनुसार ही वेद जिसको समझाने का प्रयत्न करते है, जो बिना पैरों के चलता है, बिना कानो के सुनता है, बिना हाथ के सब कार्य करता है, बिना मुख के सब रसो का अनुभव करता है, बिना वाणी के बडा योग्य वक्ता है, बिना शरीर के स्पर्श का अनुभव करता है, बिना आँखों के देखता है, बिना घ्राण के अशेष सुगन्धों को सूँघता है, जिसकी हर तरह से अलौकिक प्रवृत्तियाँ है, जिसकी महिमा का वर्णन नही हो सकता। जिसकी इस तरह की प्रशसा वेद और बुद्धिमान् लोग करते है, मुनि लोग जिसका ध्यान करते है, वही भगवान् भक्त के लिए कोसलपति हो गया है‡।"

सान्त होकर भी अनंत, अनत ही रहता है, यही बात तुलसी के शिव ने उमा को समझायी है। यही समझ कर सब उलझनो से दूर हो कर तुलसी ने विमल सन्तोप का अनुभव किया है।

बालकाड के इस विमल सन्तोप के प्रकरण मे गोस्वामी जी ने इस सत्य की स्थापना की है कि पृथ्वी के ऊपर स्वर्गीय जीवन को उतारने का काम भक्त अपनी तपस्या के द्वारा करता है। लोकमगल की भावना उसके भीतर होती है। अपनी इस भावना को साकार करने के लिए वह स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार लेता है। अवतार का यही रहस्य है। स्वायभुव मनु और सतरूपा की तपस्या और उसके परिणामस्वरूप राम का अवतार, इसी सत्य का प्रतिपादन करते है। स्वर्गीय आदर्श को पृथ्वी पर भक्त उतार लेता है। इस आदर्श को वह ससार के मानव के सामने चारों तरफ बिछा देता है। मानव इस आदर्श का साक्षात्कार और अनुवर्तन करके अपने जीवन को धन्य बना लेता है। जगत् के आकर्पण से हट कर परमात्म-साधना की तपस्या इसी नैसर्गिक और पवित्र भावना मे भक्त करता है। शीलवान् व्यक्ति मे ही इस परमशील की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। यह

‡ रामचरित मानस, बालकाड, दोहा ११५ से ११८ तक।

सब विकास के नियम के अनुसार ही होता है। स्वायभुव मनु और सतरूपा आदर्श दम्पति थे—"स्वायंभू मनु अरु सतरूपा, जिन्ह ते भइ नरसृष्टि अनूपा। दम्पति धरम, आचरन नीका। अजहु गावश्रुति जिन्ह के लीका ‡।" इन मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद थे। उत्तानपाद के पुत्र हरिभक्त ध्रुव हुए। मनु के छोटे पुत्र प्रियव्रत हुए। वेद और पुराणों में ये प्रशसित है। इन्हीं मनु की कन्या देवहूति कर्दम ऋषि की पत्नी तथा साख्य-शास्त्र के प्रणेता भगवान् कपिल की माता हुई। इन मनु ने नीति की मर्यादा का पालन करते हुए बहुत काल तक राज्य किया। पर जीवन के इन आदर्शो से मनु को तृप्ति न मिली। इतने विख्यात वश-परम्परा के जन्मदाता बन कर भी मनु सन्तुष्ट न हुए। गृहस्थ धर्म पालन करते हुए चौथापन आ गया। वृद्धावस्था मे भी विषयों के प्रति अपने भीतर विराग न देख कर शीलवान् मनु को कष्ट हुआ—"हृदय बहुत दुख लाग जन्म गयउ हरि भगति बिनु" †। शील की पर्याप्त उच्च भूमि पर भी मनु को सन्तोष न हुआ। स्वार्थ की वासना से ऊपर उठ कर वे विराट् जीवन की ओर जाना चाहते थे। हरि भक्ति यही तो है। एक प्रकार के उच्च शील का जगत् मे प्रचार करके जब मनु को सन्तोष न हुआ तो परमोच्च स्वर्गीय शील को पृथ्वी पर उतार लाने के प्रयत्न में मनु ने पत्नी के साथ स्वार्थ का विसर्जन करके तपस्या के लिए प्रस्थान किया। मनु और सतरूपा ज्ञान और भक्ति के समाहित शक्ति के प्रतिनिधि बन कर (ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा) $ परम पावन आदर्श को पृथ्वी पर उतार लाने के लिए तपस्या मे लीन हो गये। कठोर तपस्या के भीतर उन्होने अपने हृदय में परम पावन की नरझाँकी देखने की सतत प्रवाहिणी अभिलाषा पाल रखी थी। उन्होंने अपने भीतर यह अटल विश्वास उत्पन्न कर लिया था कि 'अनादि, अनन्त, अगुन-अखड परमात्मा, जिसका चिन्तन परमार्थवादी करते है, वेद जिसे नेति नेति कहते है, जो चिदानन्द, निर्गुण और अनुपम है, जिसके अंश से अगणित ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते है, ऐसा परमात्मा भी सेवक के वश मे रहता है। भक्त के लिए लीला-शरीर धारण कर लेता है। वह हमें अवश्य प्राप्त होगा *।

उनकी अखड तपस्या को देख कर ब्रह्मा, विष्णु और शिव मनोवांछित वरदान का प्रलोभन देने आये। पर स्वार्थ से ऊपर उठे हुए ये दम्पति सासारिक आवश्यकताओं के प्रलोभनों से ऊपर उठ गये थे। उन्हे तो परम पवित्र का साक्षात्कार कर लेने की धुन लग गयी थी। उन्होने परम पावन की नरझाँकी का दर्शन किया और विश्व के मंगल के लिए अपने पुत्र राम के रूप मे उन्होंने ससार में आने के लिए, उसे अपने प्रेम से बाध्य किया। मनु ने तो परम विराट् के सामने यही प्रश्न रखा—"चाहउ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ §।" पर सतरूपा के शब्दों मे गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति के सिद्धान्त का निचोड रख दिया है—

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४२ के पहले और बाद। † वही। $ वही।
* रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४३ के बाद § रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १४९ से १५० तक।

जे निज भगत नाथ तव अहही, जो सुख पावहि जो गति लहही ।
सोइ सुख, सोइ गति, सोइ भगति, सोइ निज चरन सुनेहु ।
सोइ बिबेकु, सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु‡ ।

सतरूपा ने पूरे विवेचन के साथ परमोच्च आदर्श को प्राप्त कर लेने वाले भक्त के आनन्द, उसकी गति, उसकी भक्ति, उसके भीतर रहने वाले उपास्य के चरणों का स्नेह, उसका विवेक और उसके जीवन की मर्यादाएं (उसकी रहनी) सब कुछ मांग लिया। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुसार निर्गुण-सगुण ब्रह्म के सगुण होने की यही प्रक्रिया है। उसके सगुण होने का प्रयोजन लोक के भीतर परमोच्च शील का प्रचार है । इस सम्प्रदाय के अनुसार प्रेम-भक्ति के कारण व्यापक, निर्गुण, विगत विनोद, निरजन ब्रह्म कौसल्या की गोद मे आ जाता है† । आनन्द की राशि, मोह मे अस्पृष्ट, ज्ञान, वाणी तथा इन्द्रियों के लिए अगम्य ब्रह्म ही दशरथ-कौसल्या के लिए, प्रेम के वश मे हो कर पावन बाललीला करता है$ । इतना होने पर भी इस लीला-विग्रह मे वह अनन्त शक्ति ले कर छिपा रहता है और कभी-कभी अपना इगित देने के लिए माता तथा और लोगो को अपना वह अखड अद्भुत रूप दिखा देता है, जिसके रोम-रोम मे कोटि-कोटि ब्रह्माड लगे रहते है* । गोस्वामी जी इस सिद्धान्त पर पूरा विश्वास करते है कि अनन्त नाम और रूप वाला, व्यापक, अकल, अनीह, अज और निर्गुण ब्रह्म भक्त के लिए नाना प्रकार के अनुपम कार्य करता है । गोस्वामी जी का यह विश्वास है कि परमात्मा भक्त की तपस्या से जब अनुकूल हो जाता है तभी स्वर्गीय जीवन को ले कर वह अवतीर्ण हो जाता है । जीवन की पवित्रता की जिस अनन्तता का ध्यान योगी तक नही कर पाते, वही अनन्त पवित्रता अवतार के साथ पृथ्वी पर उतर कर जगत् के जीवों के लिए सुलभ हो जाती है । इसीलिए अवतारी राम के शील को देख कर तुलसी के वेदान्ती जनक मुग्ध हो गये । विवाह के बाद अपने जामाता राम को विदाई देते हुए उन्होंने कहा है—"मै आपकी प्रशसा किस तरह करूँ । मुनियों तथा महेश के मन-मानस मे आप हस की तरह क्रीड़ा करते है । क्रोध, मोह और ममता को त्याग कर योगी आप ही के लिए योग करते हैं—परम शील तक पहुँचने के लिए स्वार्थी, क्रोध, मोह तथा ममता अनिवार्यत. त्याज्य है । आप चिदानन्द, निर्गुण, गुणराशि, अविनाशी, अलख, व्यापक ब्रह्म है । मन को साथ ले कर आपको खोजती हुई वाणी भी असफल रहती है, आपकी अनन्तता का वर्णन नही कर सकती । दुनिया के तार्किक आपकी इयत्ता का अनुमान नही कर सकते । आप तीनों कालों मे एकरस रहते है । वेद, नेति शब्द से ही आपकी महिमा का वर्णन करते है । उसी अनन्त सुख के केन्द्र आप मेरी आँखों के सम्मुख खड़े है । आप जब अनुकूल हो जाते है तब जग के लिए सब सुलभ हो जाता है§ ।" स्वर्गीय जीवन के सौन्दर्य को मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर देख कर

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १४९ से ५० तक । † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९८ और १९९ । $ वही । * रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २०१ । § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १४१ और उसके पहले ।

विदेह जनक के इन शब्दों में इस ईश्वरीय जीवन के जगत् में उतर आने के सब सिद्धान्त निहित है। इस सौन्दर्य का प्रभाव तुलसी पर इतना अधिक है कि उसकी अभिव्यक्ति करते हुए तुलसी को पुनरुक्ति का भान तक नही होता‡। लोकादर्श और चिन्तन की इतनी बड़ी ऊँचाई की प्रस्तावना प्रस्तुत करके गोस्वामी जी ने विमल सन्तोष का अनुभव किया है और इस विमल सन्तोष की सिद्धि करने का अपना पथ विश्व के सम्मुख उन्होंने रखा है। विश्वमगल विधायक आदर्शो के दर्शन से तुलसी का यह विमल सन्तोष उत्पन्न हो कर हृदय को आसक्तियों से मुक्त कर देता है। हृदय की यही मुक्ति, दार्शनिक की मुक्ति के सिद्धान्तों से प्रसूत मुक्ति से साम्य रखती है।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २०५।

अध्याय ३

विमल विज्ञान-वैराग्य का सिद्धान्त

क्रिया और चिन्तन के पग-पग पर गोस्वामी जी विमल विज्ञान ओर विमल वैराग्य को आवश्यक मानते है। अयोध्याकाड उनके मानस का द्वितीय सोपान है। उनके अनुसार इस सोपान पर चित्रित जीवन और दर्शन के मनन से विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है।

अयोध्याकांड के इस विमल-विज्ञान-वैराग्य-सम्पादन सोपान मे जीवन के आदर्शो और विशुद्ध चिन्तन की पद्धतियों के द्वारा भी गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान ओर वैराग्य का चित्र प्रस्तुत कर, इन दोनों का विवेचन किया है। इस सोपान के मगलाचरण मे शिव और राम की स्तुति करते हुए ही इस विमल विज्ञान-वैराग्य की स्थिति का जीवन के आदर्शो के रूप मे तुलसी ने दर्शन करा दिया है। विमल विज्ञान अभेदज्ञान है और यह वैराग्य—स्वार्थ से अनासक्ति—के साथ ही रहता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने इन दोनों को साथ ही रखा है। इसी अभेददर्शन की अद्वैत भूमि पर पहुँच कर ब्रह्म को उपनिषदों ने 'विज्ञान ब्रह्म' ‡ तथा 'आनन्दो ब्रह्म' † कहा है। इसी अभेद दर्शन के कारण इस काड की मगल-योजना मे गोस्वामी जी ने शिव के चन्द्रमा और गरल तथा सर्पो का ध्यान दिला कर उनके भीतर विरोधों मे अभेदज्ञान का दर्शन कराया है। सब कुछ देने वाले, सुरश्रेष्ठ, सर्वाधिप शिव के शशिसन्निभ शरीर पर भस्म का शृगार भी इसी अभेददर्शन तथा सौन्दर्य और सौन्दर्य के प्रति अनासक्तिमय वैराग्य का सूचक है। तुलसी ने इस काड के प्रारम्भ मे अपने राम की स्तुति करते हुए उनमे वनवास और अभिषेक के लिए अभेदमय विज्ञान-दृष्टि का दर्शन किया है तथा उनकी मुखश्री मे दोनों अवस्थाओं मे समरसता को देख कर विमल वैराग्य का दर्शन किया है। तुलसी के अनुसार और सर्वसम्मत सिद्धान्त के अनुसार हृदय की सब भावनाएँ सत्त्वप्रधान या रजःप्रधान या तम प्रधान हो सकती हैं। सत्त्वप्रधान भावना ही विमल (रजस् और तमस् के मल से मुक्त) मानी जाती है। यही 'मजुल-मगलप्रदा' $ होती है। लोक के भीतर कोमलता और मगल इसी प्रकार की भावना के द्वारा उत्पन्न होते है। तामसी वैराग्य, स्वार्थजन्य क्रोध, ईर्ष्या तथा घृणा इत्यादि उद्वेजक भावों से पैदा होता है। यह वैराग्य कठोरता और अमगल की सृष्टि करता है। पर राम के भीतर का

‡ तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली, अनुवाक ५, मत्र १०। † तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली, अनुवाक ६, मंत्र ६। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, मगलाचरण-श्लोक २।

वैराग्य विज्ञान के सौम्य अभेदज्ञान की सात्त्विकता के भीतर से पैदा हुआ है। वह सृजन करने वाली अनासक्तिमय अभेद की दृष्टि से पैदा हुआ है, जिसमें न तो अभिषेक के लिए स्वार्थी सुख के प्रति लोभ है न वनवास का दुःख और उसके कारण (कैकेयी) के प्रति क्षोभ। इसी पवित्र अनासक्ति की चेतना विराट् मानव के अनतव्यापी हृदय के भीतर उत्पन्न हो कर स्वर्गीय जीवन की सृष्टि कर पुरुषोत्तम-दर्शन की नरझाँकी प्रस्तुत करती है।

अयोध्या कांड मे इसी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य को क्रिया और चिन्तन के पथों के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से उत्पन्न अनासक्ति को गोस्वामी जी ने अयोध्याकांड मे, अपने प्रत्येक आदर्श पात्र के भीतर चित्रित किया है।

जिस राज्य के लोभ से प्रेरित हो कर पिता पुत्र का और पुत्र पिता का शत्रु होता हुआ देखा गया है उसी राज्य को इस काड में दशरथ अपने मंगलमय पुत्र राम को दे देना चाहते है। उनके भीतर सात्त्विक प्रेम ने लोभ के प्रति वैराग्य पैदा किया है। राज्य, राम को दे कर दशरथ अपने जीवन और जन्म को सफल कर लेना चाहते हैं‡। अपने अभेद-दर्शी पुत्र को राज्य देने की भावना से दशरथ का शरीर प्रेम-पुलकित हो जाता है। उनका मन आनन्दविभोर हो जाता है। यहाँ दशरथ के भीतर का वैराग्य अभेद विज्ञान के भीतर पैदा हुए उस प्रेम के कारण हुआ है जिसका आधार राम का आदर्श स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति को विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की दीक्षा देने के लिए ही भारतीय सभ्यता के भीतर जीवन का विभाजन आश्रमों में कर दिया गया था। पचास वर्ष के बाद आदर्श भारतीय, जीवन से अवकाश प्राप्त करके सब अधिकारों के लोभ का विसर्जन कर देता था और शील के इस विकास को ले कर वृहत्तर शील के विकास के लिए वनों में चला जाता था। विमल विज्ञानमय विमल वैराग्य की इसी चेतना का विवेचन गोस्वामी जी ने इस कांड में किया है।

आदर्श पुत्र के प्रति निश्छल सहज स्नेह की पवित्रता का दर्शन करके तुलसी के वसिष्ठ दशरथ से बोल उठते है—'आपके नाम और यश सब कामनाओं की पूर्ति कर सकते हैं। आपके मन में उत्पन्न हुई पवित्र इच्छा बिना फल तक पहुँचे रह ही नहीं सकती†।'

दशरथ के भीतर का यह विमल वैराग्य राम के भीतर के अनत शील का विमल विज्ञान प्राप्त करके उनके भीतर एक अनुपम उत्सर्ग को जन्म देता है। उनके वैराग्य की पवित्रता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वे उस आनन्द के सम्मुख जीवन के सब स्वार्थी आनन्दों को तुच्छ समझते है। वे शरीर तक को छोड़ सकते हैं। पर राम के अभिषेक को अपनी आँखों से देखने का आनन्द नही छोड़ सकते। उस शील-केन्द्र राम को सिंहासनासीन करा के, दशरथ अनतशील की उपासना कर लेना चाहते है—'पुनि न सोचु तनु रहउ कि

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३।

जाऊ ‡" । अनंत शील की उपासना की झाँकी यदि वे देख लेने तो शरीर छोड़ने मे भी उन्हे सन्तोष होता । यदि ऐसा न हो सका तो पीछे काल के आ जाने पर पछताना पड़ेगा—'जेहि न होइ पाछे पछिताऊ † ।'

विमल विज्ञान और वैराग्य से उत्पन्न हुए दशरथ के ये शब्द वसिष्ठ को मगल और मोद के मूल के समान दिखाई पड़े $ । आदर्श के उपासक वसिष्ठ को ये शब्द बड़े भले मालूम हुए । उन्होंने विमल विज्ञान और वैराग्यपूर्ण उत्तर दिया—'जिस आदर्श के विरुद्ध रहने पर पछताना पड़ता है, जिसे बिना ध्यान में रखे मन का ताप दूर नही होता, वही, पावन प्रेम के पीछे चलने वाला आदर्श, आपका पुत्र हो कर पैदा हुआ है । जिस दिन आप उसकी उपासना अभिषेक के द्वारा कर लेंगे वही दिन मगलमय हो जाएगा । उसकी उपासना के लिए शुभ मुहूर्त की आवश्यकता नही * ।'

दशरथ की इस शासन-व्यवस्था के भीतर भी शक्ति के पवित्र त्याग के तत्त्व हैं। उन्होंने अपनी शक्ति को गुरु और राज्य सभा मे विभक्त करके उसके प्रति अपने पवित्र वैराग्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है । यह पवित्र वैराग्य भी पवित्र विज्ञान के अभेददर्शन के भीतर से ही उत्पन्न हुआ है । इसीलिए बिना गुरु और सभा से पूछे राजा कोई काम नही करते । पवित्र गुरु के भीतर और पवित्र आचरण वाले सभासदो के भीतर उन्हे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की प्रवृत्तियों के दर्शन होते है ।

अपने सुखों का सात्त्विक त्याग व्यक्ति के हृदय को इतना उदार बना देता है कि वह दूसरों के लिए सुख के साधनो की सृष्टि करने के कार्य मे निरन्तर जुटा रहता है। विमल वैराग्य का यही लक्षण है । प्रेम की सात्त्विकता का मूल भी यही है । प्रेमी प्रिय के सुख के लिए अपने सुखों के प्रति निरपेक्ष हो जाता है । राम और सीता के भीतर अपने छोटों के प्रति इसी प्रकार का स्वार्थ-त्याग से पोषित प्रेम था । अभिषेक की तैयारी एक तरफ़ हो रही थी । यह अभिषेक होने वाला नही था । पर इस अभिषेक और वनवास के द्वन्द्वों की सहिष्णुता के कारण राम और सीता के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य अपनी सीमा को छूने जा रहे थे । अपनी इस सहिष्णुता को जगत् के सम्मुख रख कर राम और सीता महान् होने जा रहे थे । पर मर्यादा पुरुषोत्तम और जगदम्बा को, मानव चेतना के स्तर पर रहने के कारण अभी न तो इस अभिषेक का ही ज्ञान था न वनवास का ही। द्वन्द्व-सहिष्णुता की विराट् विभूति को उन्होंने जगत् के सम्मुख आदर्श के उदाहरण के रूप में रखा और विश्व ने उनके शील की परम विराट्ता का अनुभव कर लिया । उनके इसी भावी गौरव की सूचना देने के लिए उनके मंगलमय अंग अभिषेक और वनवास का समाचार पाने के पहले ही फड़कने लगे थे § । इस मगलसूचक सकेत में राम और सीता को अपने स्वार्थ के भीतर स्थान पाने वाला कोई गौरव नही दिखाई पड़ा । उन्होंने इसके विपरीत, अपने स्वार्थों की कल्पना से अस्पृष्ट रह कर भरत के आगमन की शुभ सूचना ही

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३ के बाद । † वही । $ वही । * रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ४ । § रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ६ के बाद ।

इसे समझा। उनके स्वभाव में अपने गौरव की कल्पना, विमल वैराग्य और विज्ञान के कारण, स्थान ही न पा सकी थी। उन्होंने सोचा—'भरत सरिस प्रिय को जग माही, इहइ सगुन फलु दूसर नाही ‡।' गोस्वामी जी ने इस उत्सर्गमय प्रेम की ओर इशारा देने के लिए कहा है—"रामहिं बन्धु सोच दिनराती, अंडन्हि कमठहृदय जेहि भाँती †।" जिस तरह अडों के प्रेम के लिए कमठ अपने सब सुखों की इच्छा ही मिटा देता है, वैसे ही राम के भीतर भाई के लिए दिनरात चिन्ता है।

राम के भीतर का यह विमल वैराग्य अपनी सीमा को लाँघ जाता है, जब वसिष्ठ आ कर उन्हें अभिषेक का संदेश देते है। उनके चले जाने के बाद राम सोचते है—'हम सब भाइयों का जन्म एक साथ हुआ। बचपन मे हमने एक साथ भोजन, शयन और क्रीड़ा की। कर्णवेध, उपवीत और विवाह सब साथ-साथ ही हुए। इस विमल वंश में एक यही बात अनुचित हो रही है कि सब भाइयों को छोड़ कर अभिषेक एक ही का हो रहा है $।' अपने राम से इतना कहला कर गोस्वामी जी चुप नही रह जाते। राम के इस विमल वैराग्यमय प्रेम का सामाजिक मूल्य उनकी दृष्टि मे है। वे कहते है—'प्रभु का यह सप्रेम सुन्दर पश्चात्ताप भक्त के मन की कुटिलता को दूर करे *।' विमल वैराग्य और विज्ञान की इस योजना को गोस्वामी जी के विश्व-मगल विधान की योजना के भीतर ही स्थान प्राप्त है। इसीलिए गोस्वामी जी की यह अभिलाषा है कि मर्यादा पुरुषोत्तम के शील की यह त्यागमय और विज्ञानमय पवित्रता विश्व भर के शीलोन्मुख भक्तों के मन को पवित्र बनाए।

उसी समय वहाँ प्रेम के आनंद में मग्न हो कर लक्ष्मण आते है। उनके भीतर भी अनन्तशील के केन्द्र के लिए वही त्यागबुद्धि है। राम के अभिषेक का समाचार पा कर वे भी प्रेम के आनन्द में मग्न है §। उन्हें अपनी शक्ति और अपने अधिकार का भान ही नहीं है। वे उनकी कल्पना भी नही करते। राज्य के लिए भाइयों में सहज वैर दिखाई पडता है; पर मर्यादापुरुषोत्तम के शील के प्रकाश के आलोक में उस युग के हृदय में ईश्वरीय जीवन की पवित्रता उतर आयी है और चारों तरफ उसी का आलोक दिखाई पड़ता है। यह आलोक इतना मधुर है कि प्रेम के माधुर्य का प्रभाव बन्धन तोड़ चुका है। अयोध्या का सम्पूर्ण नगर उस समय भरत के आगमन के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है, जिससे अभिषेक के समय, त्याग और विज्ञानमय प्रेम का पावन आलोक राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों केन्द्रों से प्रवाहित होता हुआ उसे दिखाई पडे और इस पवित्रता का दर्शन कर, उसे अपनी आँखों का फल मिल सके ×। कितना व्यापक त्याग और विज्ञान चारों तरफ़ छाया हुआ है। इस विमल वैराग्य और विज्ञान के आनन्द में विभोर हो जाने के कारण पूरा नगर अपने स्वार्थ को छोड़ चुका है। वह लोक के आनन्द के साथ एकाकार हो कर अभेद दर्शन के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का परिचय दे रहा है।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ६ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १० और उसके पहले। * वही। § वही। × रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १० के बाद।

स्वर्गीय जीवन के पृथ्वी पर उतर आने के कारण पृथ्वी का रूप इतना मधुर और आकर्षक प्रतीत हो रहा है कि उस आकर्षण के सामने स्वर्ग के देवताओं की रावण-वध की योजना गोस्वामी जी को कुचाल की तरह ही प्रतीत होती है। आज पृथ्वी के लोगों का शील इतना पवित्र हो गया है कि उसके सम्मुख देवताओं के भीतर रावण-वध की वासना कुचाल के समान मालूम पडती है। तुलसी की दृष्टि मे यद्यपि रावण-वध लोकमगल की स्थापना के लिए आवश्यक हे, फिर भी उस कार्य की ओर देवताओं की स्वार्थमय प्रवृत्ति कुचाल की तरह दिखाई पड़ती है। उन्होने कहा है—'हाट, बाट, घर, गली तथा अथाइयों मे नर-नारी सब परस्पर यही बात कर रहे थे कि कल शुभमुहूर्त का समय कब है, जब विधाता हमारी कामना पूरी करेगा। सीता के साथ राम को स्वर्णसिहासन पर बैठा हुआ देख कर हमारा मन कब आनन्दमग्न होगा। सब लोग कल के दिन की पवित्र प्रतीक्षा मे मग्न थे और कुचाली देव विघ्न मना रहे थे‡।'

जिस तरह बौद्ध और जैन धर्मो मे बुद्ध और महावीर मानव शील के सम्पूर्ण विकास है और उनके सम्मुख देवता भी हीन दिखाई पडते है, प्राय ठीक उसी तरह गोस्वामी जी की दृष्टि में भी विमल वैराग्य तथा विमल विज्ञान-सम्पन्न स्वर्गीय जीवन वाले मानवो के सामने देव-चरित्र भी कुचाल की तरह दिखाई पडता है—स्वार्थ से छू जाने के कारण। पुरुषोत्तम मानव-चरित्र को वे देव-चरित्र से अधिक पवित्र मानते हैं और उनका पुरुषोत्तम मानव-चरित्र वही है जो विमल विज्ञान और वैराग्य-युक्त हृदय मे विश्व प्रेम को पैदा कर विकास की ओर बढ रहा हो।'

देवताओं के भीतर रावण-वध की स्वार्थमय प्रवृत्ति की ओर तुलसी का ध्यान बिलकुल स्पष्टत: जागरूक है। तुलसी यह अनुभव करते है कि स्वार्थ के चोर ने देवताओ के भीतर से विज्ञान और वैराग्य की चोरी कर ली है—"तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा, चोरहिं चदिनि राति न भावा। सारद बोलि बिनय सुर करही, बारहि बार पाय ले परही। बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिय सोइ आजु। रामु जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु†।"

पर पृथ्वी के पवित्र प्रेम के आनन्द का उत्सव, जिसमे आदर्श शील की उपासना उसे स्वर्ण-सिहासन पर बिठा कर की जाने को थी, सरस्वती की आँखो मे समाया हुआ था। पृथ्वी के इस त्यागमय आनन्द के उत्सव को वह भंग नही करना चाहती थी। देवताओं की प्रार्थना सुनने के बाद सरस्वती के भीतर गोस्वामी जी ने एक पवित्र पश्चात्ताप पैदा किया है—"सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती, भइउं सरोज बिपिन हिमराती। बार बार गहि चरण सकोची, चली बिचारि बिबुधमति पोची$।" बार-बार पैर पकड कर जब देवताओं ने सरस्वती को संकोच मे डाल दिया, तब वह किसी प्रकार अयोध्या जाने को तैयार तो हो गयी, पर देवताओं की बुद्धि को नीचता से भरी हुई ही उसने निश्चित किया—"ऊँच निवास नीच करतूती, देखि न सकहिं पराइ बिभूती*।" सरस्वती के इस कार्य से आगे

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ११ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ११ और उसके बाद। $ वही। * वही।

लोकमगल-विधान होने वाला था, इसीलिए वह देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर सकी। उसे इस बात का विश्वास था कि इस प्रयत्न के परिणाम की गुरुता पर विचार करके आगे आने वाले कवि मेरे प्रति विरक्त न होंगे—"आगिलु काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी‡।"

मन्थरा और कैकेयी का चरित्र ईश्वरीय स्वर्गीय जीवन के व्यापक प्रभाव का अपवाद माना जाता; पर सरस्वती के इस प्रयोग से गोस्वामी जी ने उन दोनों के शील पर से कलक का धब्बा हटा दिया है। आज के पाठक को ध्यान में रख कर ही यह बात कही जा सकती है। राम के युग के समाज ने कैकेयी को अपराधिनी की तरह ही प्रायः देखा है; क्योंकि देवताओं के इस गुप्त षड्यत्र का पता मानव समाज को नही था। एक बात स्पष्ट है कि इस प्रकरण के पहले भी कैकेयी उस स्वर्गीय शील के प्रकाश के भीतर ही थी; क्योंकि जब मन्थरा ने राम के अभिषेक का समाचार दे कर उसके भीतर ईर्ष्या पैदा करनी चाही तब कैकेयी ने उत्तर दिया था—'वही दिन पवित्र और मगलमय होगा, जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा। यह सूर्यवंश का सुन्दर नियम है कि जेठा भाई स्वामी होता है और छोटे उसके सेवक। यदि सत्य ही राम का कल तिलक है तो इस संवाद को सुनाने के लिए तू जो माँगे मैं वही देने को तैयार हूँ। सब माताएँ राम को कौसल्या के समान ही स्वभाव से प्रिय हैं और मुझ पर तो वे विशेष स्नेह रखते है। उनकी प्रीति की परीक्षा करके मैंने देख लिया है। यदि परमात्मा कृपा करके हमे फिर जन्म दे तो राम-सीता ही हमारे पुत्र और पुत्र-वधू हों। राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। उनके तिलक से तुझे कैसे क्षोभ हुआ† ?'

इस कथन से तुलसी का यह दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है कि कैकेयी मर्यादा पुरुषोत्तम के स्वर्गीय आदर्शो को अपने प्राणों से भी अधिक चाहती थी। अतएव उसने अपने को राम पर निछावर कर दिया था। अजस की पिटारी तो केवल मन्थरा बनी थी—"नामु मन्थरा मन्दमति चेरि केकइ केरि। अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि$।"

स्वार्थ की वासना मनुष्य को राम के आदर्श से गिरा देती है। यह तुलसी का सर्वसम्मत सिद्धान्त है। काम मनुष्य को शील के आदर्श पथ से हटा देता है। कैकेयी का उदाहरण इसी बात को सिद्ध करता है। स्वार्थ ने उसे पतित किया और सकाम हो कर उससे सम्बद्ध होने के कारण सिद्धभक्त दशरथ को तो राम-प्रेम के लिए अपने प्राणो की भी बलि देनी पड़ी। तुलसीदास जी इस बात को मानते है कि माया का प्रलोभन अष्ट सिद्धियो के रूप मे प्रकट हो कर योगसाधक को परमात्मज्ञान से दूर हटा ले जाता है। माया का यही वासनामय स्वार्थी आकर्षण स्वर्गीय जीवन से मानव को अलग रखता है। ये दोनों सत्य एक ही सत्य के दो पहलू है। एक चिन्तन-प्रधान दूसरा जीवन-प्रधान या क्रिया-प्रधान। वासना ने कैकेयी का पतन इसी कारण सम्भव बना दिया। इस सत्य को

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ११ और उसके बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १५ के पहले। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १२।

दशरथ भी स्वीकार करते है—"कवने अवसर का भयउ गयउ नारि बिस्वास । जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि जतिहि अविद्या नास ‡ ।" स्वर्गीय शील के चरणों पर अपने राज्याधिकार को निछावर करके तुलसी के दशरथ अपने जीवन को सफल बना लेना चाहते थे । इस त्याग का समारोह उनकी आँखें उस आदर्श शील को स्वर्ण के सिंहासन पर बिठा कर देख लेना चाहती थी । दशरथ इसी को अपने जीवन की योग की सिद्धि का फल समझते थे । विमल विज्ञान और वैराग्य के द्वारा स्वार्थपूर्ण अधिकार-लिप्सा को उपासना का रूप दे कर, परम पावन मे, अधिकार भावना के अपने स्वार्थी रूप को वे लीन कर देना चाहते थे । यही उनके जीवन-योग की समाधि का फल था, पर वासना के माध्यम कैकेयी पर विश्वास कर लेने के कारण अविद्या-जन्य अज्ञान ने जीवन के योग की पूर्णता तक उन्हे नही पहुँचने दिया । अपने अधिकारों को जब वे राम के चरणो पर नही चढा सके तब उन अधिकारों को छोड़ कर उन्होंने स्वर्ग की यात्रा की ।

इस प्रकरण मे विमल विज्ञान और वैराग्य के आधार पर गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम के शील का बड़ा सुन्दर विकास दिखाया है । कोपभवन मे कैकेयी के वाग्बाण से मूर्छित दशरथ को देख कर राम ने कैकेयी से कारण पूछा और अपनी कठोरता का पूरा उपयोग करके राम को उसने सब कहानी सुना दी । इस अवस्था मे अपने विमल विज्ञान और स्नेहमय पवित्र वैराग्य के कारण राम, त्याग के आनन्द मे मग्न हो गये —"मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू, राम सहज आनन्द-निधानू । बोले बचन बिगत सब दूपन, मृदु मजुल जनु बागविभूपन † ।" सम्पूर्ण जगत् के लिए अपने भीतर कोमल और स्नेहमय त्याग और वैराग्य की भावना रखने वाला व्यक्ति कठोर शब्दों का प्रयोग कैसे कर सकता है। उसके शब्द तो वाणी के शृगार की शाश्वत सामग्री अपने स्वभाव मे ही बन जाते हैं। ऐसा शील जीवन की उन परिस्थितियो मे भी आनन्दमग्न रह सकता है, जिनमे साधारण मनुष्यों पर स्वार्थी घृणा, ईर्ष्या, क्षोभ और शोक उमड पडेगे । राम ने माता के सामने पुत्र के वे सब आदर्श रख दिये, जिनमें पवित्र ज्ञान और पवित्र वैराग्य के कारण माता-पिता के लिए अपने जीवन के स्वार्थी अश की बलि दे कर वह अपने को धन्य समझता है । उन्होंने कहा—"ससार में माता-पिता को सन्तुष्ट रखने वाला पुत्र दुर्लभ होता है। वन में हम ऋषियों से मिल सकेंगे । वहां हमारा हर तरह से हित होगा । इस यात्रा में सबसे बडी बात तो यह होगी कि हमारा जीवन हर तरह से विकसित होगा और माता-पिता की आज्ञा पालन करने का पुण्य हमे अनायास ही मिल जाएगा । आज भाग्य हर तरह से हमारे अनुकूल है । प्राण-प्रिय भरत राज्य के अधिकारी हों, इससे बढ़ कर सौभाग्य की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है । यदि ऐसे कार्य के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मै मूढ़ों के समाज मे सर्वश्रेष्ठ मूर्ख समझा जाऊँगा $ ।'

तुलसी के राम ने पवित्र त्याग और वैराग्य के आनन्द को इतना महत्त्व दिया है और उसमे इतना आकर्षण अनुभव किया है कि उनके अनुसार महामूर्ख भी उस आनन्द

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा २९ । † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ४१ के पहले और बाद । $ वही ।

को नही छोड सकेगा। उन्होंने कहा है—'जो लोग मूर्खतावश कल्पतरु को छोड़ कर एरड के वृक्ष की सेवा करते है, अमृत को छोड कर विष माँग लेते है, ऐसे मूढ भी आनन्द का ऐसा समय पा कर नही चूकते। मुझे सबसे बड़ा दुख यही है कि इस छोटी-सी बात के लिए राजा इतने व्याकुल क्यों हो गये। निश्चित ही मुझसे कोई अपराध हो गया है‡।'

शपथ दे कर राम ने राजा की व्याकुलता का कारण पूछा तो अपनी कुटिलता की मधुरता से अपने शब्दों मे भोलापन भरके कैकेयी ने राम की कपटपूर्ण प्रशसा की और कहा—'पिता को इन परिस्थितियों को ठीक समझा दो, जिसने वृद्धावस्था मे उन्हे अपयश न मिले। सुकृत ने तुम्हारे समान पुत्र जिसे दिया है उसका समाज मे अपमान होना उचित नही है†।' गोस्वामी जी ने राम के विमल विज्ञान और वैराग्य के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा है—'रामहि मातु बचन सब भाये, जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये $।'

गोस्वामी जी ने दशरथ के भीतर भी विमल विज्ञान और वैराग्य के प्रकाश मे एक महान् शील का विकास चित्रित किया है। यह विमल विज्ञान और वैराग्य दशरथ के भीतर इतना विकसित हो गया था कि राम के प्रेम के लिए वे अपना यश और स्वर्ग सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हो गये। मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए वे अपना सब कुछ छोड देने को प्रस्तुत थे। राम के शील और स्नेह का प्रभाव उन पर इतना था कि पवित्रता के उस दृश्य को वे अपनी आँखों से ओझल नही होने देना चाहते थे। कैकेयी काड की परिणति के समय मूर्च्छा हटने के बाद वे शिव से प्रार्थना करते है—"आसुतोष तुम्ह अवढर दानी, आरति हरहु दीन जनु जानी। तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु। बचन मोर तजि रहहि घर परिहरि सील सनेहु*।"

राम के इस शील और स्नेह के लिए दशरथ के भीतर इतना आकर्षण है कि अनंत शील और स्नेह की इस नरझाँकी को अपने से अलग हटते देख कर वे विक्षिप्त हो गये है और पागल आदमी जैसे अपनी प्रिय वस्तु को भी तोड-फोड डालता है वैसे ही इस विक्षिप्तता मे दशरथ राम के भीतर शील और स्नेह के उस अभाव की कामना करते है, जो उन्हे वन जाने से रोक दे। विक्षिप्तता की अवस्था मे भी दशरथ राम के शील और स्नेह को नही भूलते। वे उसे तोड़ कर केवल अपने हृदय की इस विक्षिप्तावस्था को ही अभिव्यक्त करते है, जो उन्हे अपरिसीम शील और स्नेह के केन्द्र के अदर्शन की कल्पना ने दी है। दशरथ की यह अवस्था मूलतः शील और स्नेह के प्रति या राम के विमल विज्ञान और वैराग्य के प्रति उनकी भक्ति को ही व्यक्त करती है, उसके अभाव को नही।

राम का विमल विज्ञान और वैराग्य विष को भी अमृत मे परिणत कर लेता है। परम विज्ञान और वैराग्य के प्रकाश से आलोकित तुलसी के राम इस कैकेयी काड से सन्तोष और शीतलता ही अनुभव करते है—"सुनि प्रसग भये सीतल गाता§।" उन्होंने

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ४१ के पहले और बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ४३ के पहले। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ४४ और उसके पहले। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ४५ के पहले और बाद।

पिता से कहा—'स्नेह के कारण पैदा हुए सोच को आप इस मगलमय समय मे छोड दीजिए। हृदय से प्रसन्न हो कर आप हमे आज्ञा दे ‡।' अपने राम के इन शब्दो के बाद गोस्वामी जी कहते है—'इतना कह कर प्रभु पुलकित हो उठे †।' उनके राम आगे फिर कहते है—"धन्य जनमु जगती तल तासू, पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू। चार पदारथ करतल ताके, प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके $।" विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के त्यागपूर्ण और स्नेहमय वातावरण मे जिस चरित का विकास होता है, वह तुलसी के राम की दृष्टि मे बराबर बना रहता है। वे उस व्यक्ति का जीवन धन्य मानते है, जिसमे इस तरह के शील का विकास होता है। 'पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू' * से विज्ञान और वैराग्य के प्रति दशरथ की भी भक्ति की पुष्टि हो जाती है।

राम के वनगमन के समय अयोध्या मे कैकेयी और मन्थरा के अतिरिक्त सब मे विमल विज्ञान और वैराग्य का अस्तित्व था।

अयोध्या भर मे शील की इस शोभा को अपनी दृष्टि से ओझल होते देख प्रत्येक नर-नारी के भीतर शोक छाया हुआ है—"मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोक न हृदय समाइ। मनहु करुण-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ §।" शोक इतना असीम हो रहा था कि ऐसा प्रतीत होता था कि मानो रणवाद्य बजा कर करुण रस ने अपनी सारी सेना ले कर अयोध्या पर आक्रमण कर दिया हो। उस जनता के भीतर कुछ लोग अधिक बुद्धिमान् थे। उन्होने दशरथ को विमल विज्ञान और वैराग्य के प्रकाश मे सत्य की रक्षा करते हुए पाया—"एक धरम परमिति पहचाने, नृपहि दोसु नहि देहि सयाने ×।" अयोध्या मे सब के भीतर एक ही तरह की पवित्र परिणति दिखाई पडती थी। धर्म की मर्यादा की ओर सबकी दृष्टि थी। कैकेयी की प्रिय सहेलियाँ—ब्राह्मण-कुल की मान्य वधुएँ—आ कर कैकेयी को समझाती है। राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा दशरथ की स्थिति और उनके शील की बड़ी सक्षिप्त पर सारगर्भित आलोचना वे सब कैकेयी के सम्मुख प्रस्तुत करती है—

सीय कि पिय सग परिहरिहि, लषनु कि रहिहहि धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जियहि बिनु राम +।

राम के शील के प्रभाव से विमल विज्ञान और वैराग्य के प्रकाश मे सीता, लक्ष्मण, भरत और दशरथ के भीतर जिस त्यागमय स्नेह का विकास (विमल वैराग्य) पैदा हो गया था, वह इन स्त्रियों की चेतना के भीतर भी स्पष्ट दिखाई पडता था। राम के वन जाने का परिणाम इन स्त्रियों के सामने बिलकुल स्पष्ट था। भावी चित्र को वे पहले से ही पूरा-पूरा देख रही थी। उन्हे इसमे तनिक भी सन्देह न था कि सीता, पति की सेवा के लिए, वन चली जाएँगी, श्रेष्ठ सेवक लक्ष्मण भी स्वामी को छोड कर अयोध्या में नही रुक सकते,

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ४५ के पहले और बाद। † वही $ वही।
* रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ४५ के बाद। § रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ६४। × रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ४७ के बाद। + रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ४९।

प्राणों से भी अधिक महत्त्व अपने आदर्श पुत्र को देने वाले दशरथ प्राण त्याग देंगे और विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-सम्पन्न भरत राज्य नही कर सकते। राम के विमल विज्ञान और वैराग्य के आलोक मे पलने वाले अवध की दयनीय दशा का चित्र इन नारियों के सम्मुख स्पष्ट दिखाई पड रहा था। कैकेयी के लिए उनके अतिम शब्द थे—'जिस तरह सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और निशापति के बिना रात्रि की दशा होती है, उसी तरह राम के बिना अवध की दशा समझो ‡।' राम के विमल विज्ञान और विमल वैराग्यपूर्ण शील ने अवध के नर-नारी तथा जड-चेतन को मुग्ध कर लिया था।

कैकेयी के भीतर विमल-विज्ञान और वैराग्य के अल्पकालीन अभाव का मनोवैज्ञानिक आधार भी गोस्वामी जी प्रस्तुत करते है।

राम के इतने उच्च शील का प्रभाव कैकेयी पर कुछ समय के लिए व्यर्थ हो कर इस बात की सूचना देता है कि उत्कट स्वार्थ की ईर्ष्यापूर्ण वासना शील के पतन को उस निम्नतम स्तर तक ले जा सकती है, जहाँ पहुँच कर पतित कुछ समय तक पतित पावन राम की शक्ति के भी बाहर हो जाता है। अन्यथा राम के वियोग मे मन्थरा और कैकेयी को छोड कर सब लोग—"जरहि बिषम जर लेहि उसासा, कवनि राम बिनु जीवन आसा।" —'विषम ज्वर के समान प्रचड वियोग के ताप से जल कर उच्छ्वास ले रहे थे। राम के बिना उनके जीवन की भी आशा नही थी †।' विमल विज्ञान और वैराग्य के पथ पर चलने वाले जीवों की यही अवस्था रहती है। वे अपने सुख-दुख को भूल कर विमल वैराग्य और विमल विज्ञान के शक्तिकेन्द्र के मिलन और वियोग की अनुभूति मे ही लीन रहते है। इस केन्द्र के सान्निध्य से उनका जीवन रक्षित-सा रहता है और इसे अपने सम्मुख न पा कर उनके प्राण सकटग्रस्त हो जाते है।

इस सकट की स्थिति मे तुलसी के राम, इन्द्रियों के क्षोभ के ऊपर उठ कर आनन्द-मग्न है। उनके सामने आदर्श की उपासना का अपार समुद्र उमड रहा था। पिता के सत्य की रक्षा, अपने लिए आज्ञापालन के आनन्द का स्वाद, वे दोनों चाहते थे। दोनो तरफ से वे आदर्श की उपासना कर लेना चाहते थे। इब्सन और बर्नार्ड शॉ की यह मान्यता है कि परिस्थितियो की अपरिहार्यता जब मनुष्य को कष्ट सहने के लिए विवश करती है, तब अपने उस कष्ट को अपने जीवन का आदर्श कह कर वह दभ करता है और अपनी दयनीय परिस्थिति को वह जीवन की पवित्रता और आदर्श कह कर झूठे अभिमान को अपने हृदय मे पाल रखता है। पर तुलसीदास जी इस आदर्श को महामानव मे सहज और नैसर्गिक मानते है। इसीलिए इस सकट की परिस्थिति मे उनके राम गोस्वामी है, इन्द्रियों और मन के स्वामी है। उन्हे विचलित नही होने देते—"अति विषादबस लोगलोगाई, गये मातु पहि राम गोसाई $।" इस परिस्थिति में विमल विज्ञान और वैराग्ययुक्त राम के लिए तुलसीदास जी का 'गोसाई' विशेषण बिलकुल सार्थक है। विमल विज्ञान और वैराग्य की साधना कर लेने वाला व्यक्ति

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सोरठा ५० के पहले का छन्द। † रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सोरठा ५० के बाद। $ वही।

शील की परीक्षा के समय उत्तीर्ण होने के आनन्द मे मग्न हो जाता है। यह तुलसी का अपना सिद्धान्त है, जिसे उन्होने आदर्श चरित व्यक्तियो को देख कर स्थिर किया है। उनके राम इसी कोटि के आदर्श पुरुष है। कैकेयी के भवन से लौट आने पर उन्हे यह समझ कर बडी प्रसन्नता हुई कि अब पिता उन्हे वन जाने से न रोकेगे और सत्य की उपासना मे पिता को तथा उन्हे सिद्धि प्राप्त हो जाएगी—"मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ, मिटा सोचु जनि राखइ राऊ‡।"

> नवगयदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
> छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनदु अधिकान†।

इस कठिन परिस्थिति मे अपने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की वह बलवती और उत्साहपूर्ण शक्ति राम के भीतर तरगित हो रही थी जो एक बँधे हुए मतवाले हाथी मे दिखाई पडती है। जिस तरह उसका मन अपने खभे को उखाड देने के लिए छटपटाता रहता है उसी तरह इन परिस्थितियो के आ जाने से राम के मन को राज्य उस बँधे हुए मतवाले हाथी के स्तभ की तरह दिखाई पड रहा था। अपने को मुक्त हुआ देख कर वन मे पुनः भाग जाने का आनन्द जिस तरह मतवाले हाथी के भीतर लहराने लगता है, उसी तरह वन जा कर अपनी परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर भी आनन्द तरगित हो रहा था। विमल विज्ञान और वैराग्य के भीतर से उत्पन्न यह आनन्द जीवन के तूफान को मलय मारुत के शीतल-मन्द-सुगन्धयुक्त स्पर्श मे परिणत कर देता है।

जिस आदर्श को बर्नार्ड शॉ और इब्सन ने यूरोपीय समाज मे देखा था उसके आधार पर उन्हें विश्वमानव के शील के विकास का इतिहास नही लिखना चाहिए था। भारत के समान कोई देश हो सकता है जहॉ आदर्श, विवशता नही; स्वभाव के भीतर के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से उत्पन्न होता है। भारतीय आदर्श विवशता के अधकार मे नही पैदा होते; विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकाश मे पैदा होते है। यह और बात है कि शील की ऊँचाई से पतित हो जाने वाला अशक्त मानव उन आदर्शो का पालन न कर सके; पर इसका यह अर्थ कदापि नही होता कि आदर्श केवल कल्पित और इसीलिए असत्य है। उल्लू यदि सूर्य के ताप और प्रकाश को नही सह सकता, इसका यह अर्थ कदापि नही कि सूर्य के भीतर प्रकाश है ही नही।

बर्नार्ड शॉ ने अपने 'क्विटएसेन्स आफ़ इब्सेनिज़म्' मे लिखा है—"ब्रिटिश फिलिस्टिनिज़्म पुट डाउन विडो आइडियलाइजिग विद दि स्ट्रॉङ्ग हैड; ऐण्ड सती इज एबॉलिश्ड इन इडिया $।"—'अग्रेज़ों के रूखे स्वभाव ने सतीत्व के आदर्शवाद का अपने सशक्त हाथो से दमन किया, जिससे सती-प्रथा भारत मे समाप्त हो चुकी है।' यह बात मानी जा सकती है कि भारत का अग्रेजी युग आदर्शो के अधकार का युग था; पर शॉ महोदय ने

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा ५० के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ५१। $ क्विटएसेन्स ऑफ इब्सेनिज़म्, पृष्ठ ३१।

यदि बाणभट्ट का लिखा हुआ 'हर्षचरित' पढा होता तो उन्हे भारत की सती का गौरव सातवी शताब्दी के उस ऐतिहासिक युग मे दिखाई पड जाता, जिसमे अपने पति प्रभाकर-वर्धन की तुरन्त होने वाली मृत्यु के दृश्य को देखने से बचने के लिए हर्ष की माता महारानी यशोवती पति के शरीर छोडने के पहले ही अग्नि की सहायता से स्वर्ग चली गयी और अपने प्रियपुत्र हर्षवर्धन के रोकने से भी न रुकी ‡। यदि किसी युग का मनुष्य आदर्शो से गिर जाता है तो इसका यह बिलकुल अर्थ नही होता कि किसी दूसरे युग का मनुष्य अपने स्वभाव से आदर्शो की उपासना नही कर रहा था और अपने सच्चे रूप मे आदर्श कभी थे ही नही।

बर्नार्ड शॉ की आदर्श की परिभाषा उनकी पुस्तक 'आइडियल्स ऐन्ड आइडियलिस्ट्स्' के 'आदर्श और आदर्शवादी' अध्याय मे देखिए। उन्होंने आदर्शवादियों के लिए कहा है—"दि आइडियलिस्ट हू हैज़ टेकेन रेफ्यूज विद दि आइडियल्स बिकाज ही हेटस् हिमसेल्फ ऐन्ड इज़ ऐशेम्ड ऑफ हिमसेल्फ़ थिंक्स दैट आल दिस इज सो मच दि बेटर †"—'आदर्श-वादी अपने पर घृणा करता है। वह अपने से लज्जित है। इसीलिए उसने आदर्शो की शरण ली है और सोचता है कि ये आदर्श जितने ही बढते जाएँ उतना ही अच्छा है।' यहाँ बर्नार्ड शॉ ने मनुष्य की दुर्बलता को स्वाभाविक तथा उसके लिए मनुष्य की घृणा और लज्जा को निरर्थक और दभमात्र माना है।

कुछ देर के लिए अग्रेजी जीवन के सम्बन्ध मे हम इस बात को स्वीकार भी कर ले तब भी भारत के आदर्शवादियों के लिए हम ऐसा नही कह सकते। भारत का आदर्श-वादी, मनुष्य के पूर्ण रूप को समझता है। वह वासना को ही मनुष्य नही समझता। उसके ऊपर शासन करने वाले मानव के गोस्वामी (वशी) स्वरूप की वह उपासना करता है। 'नारि मुई घर सपति नासी, मूड मुडाइ होहि संन्यासी $' को वह सन्यासी नही कहता। भोग की सामग्री का अभाव तो विवशता है। उसके भीतर दिखाई पडने वाला सन्यास केवल सन्यास का आभासमात्र है। सोने की मिथिला के राजा विदेह और कपिलवस्तु के राजकुमार गौतम का सन्यास भारत की दृष्टि मे सच्चा सन्यास है। भारत का आदर्शवादी, मनुष्य के पूर्ण स्वरूप से प्रेम करता है और उसके अपूर्ण स्वरूप से असन्तुष्ट रहता है। शॉ के आदर्शवाद की परिभाषा भारत पर नही लगायी जा सकती। महात्मा गाँधी यदि चाहते तो सुख से रह सकते थे, पर विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की चेतना ने उन्हे तपोमय जीवन की ओर अग्रसर कर दिया था। तुलसी के राम भी इसी तरह के आदर्शवादी है। सत्य की उपासना के लिए नश्वर सुख की उन्होंने सत्य की वेदी पर बलि दे दी।

पिता के पास से राम कौसल्या के पास आये और उन्हे समाचार दिया कि पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है और वहाँ मुझे हर तरह से बडे-बडे लाभ होंगे—"पिता

---

‡ बाणभट्ट-लिखित हर्षचरित, उच्छ्वास ५, श्लोक ४ के बाद अनुच्छेद ५। ‡ क्विट एसेन्स ऑफ इब्सेनिजम्, पृष्ठ २७, अनुच्छेद २। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १०० के पहले।

दीन्ह मोहि कानन राजू, जहँ सब भाँति मोर बड काजू ‡ ।" यह सुन कर कौसल्या सूख गयी । उन्होने इस घटना का कारण पूछा तो राम ने शील की पवित्रता का निर्वाह करने के लिए सचिव पुत्र से माता को विवरण दिला दिया ।

तुलसी की कौसल्या अपने पूर्वजन्म से ही कर्तव्य, बुद्धि और स्नेह के एक अपूर्व सन्तुलन से निर्मित हुई है। इस स्थिति मे, कर्तव्य और स्नेह, दो पवित्र अवस्थाओ का सघर्ष उनके भीतर पैदा हुआ । तुलसी, हृदय के उस पवित्र सघर्ष के सौन्दर्य को अनिर्वचनीय मानते है—"सुनि प्रसग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ †"; "राखि न सकइ न कहि सक जाहू, दुहू भाति उर दारुन दाहू $ ।" आदर्श का लोप और वियोग दोनों मे भयानक सताप होगा—"धरम सनेह उभय मति घेरी, भइ गति साप छछुन्दरि केरी । राखउ सुतहि करहु अनुरोधू, धरम जाइ अरु बधुबिरोधू * ।" वह सोचती है कि अनुरोध करके पुत्र को रख लेती हूँ तो सत्य की मर्यादा भग हो जाती है और भाइयों में विरोध होता है । पर तुरन्त ही विमल विज्ञान के अभेददर्शन के प्रकाश मे आ कर वह भेद के आधार से उत्पन्न हुई विरोध कल्पना के ऊपर उठ जाती है । विमल विज्ञान उन्हे सज्ञानता की स्थिति मे ला देता है और राम-भरत की समता उन्हें दिखाई पड जाती है—"बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी, रामभरत दोउ सुत सम जानी § ।" समत्व के इस प्रकाश मे कौसल्या को अपार धैर्य प्राप्त हो जाता है—"सरल सुभाउ राम महतारी, बोली वचन धीर धरि भारी । तात जाउ बलि कीन्हेहु नीका, पितु आयसु सब धरम क टीका × ।" उसे पिता की आज्ञा सब धर्मो मे श्रेष्ठ दिखाई पडती है और उसका पालन करने वाले राम के शील पर वह अपने को निछावर करती है। यही, भावना के क्षेत्र मे भी उसे भरत, दशरथ और अयोध्या की सारी प्रजा प्रचड क्लेश के एक ही विशुद्ध भाव मे मग्न दिखाई पडती है। विरोध की क पना उसके भीतर शान्त हो जाती है। वह कह उठती है—"राज देन कहि दीन बन मोहि न सो दुख लेसु । तुम्ह बिनु भरतहि, भूपतिहिं, प्रजहि प्रचड कलेसु + ।" अब कौसल्या को यह दु ख नही है कि राजा ने राम को वन जाने की आज्ञा दी, उसे केवल यही चिन्ता है कि राम के बिना भरत, दशरथ तथा अयोध्या की प्रजा को प्रचड क्लेश होगा । विमल विज्ञान और वैराग्य की भूमि पर पहुँचे हुए व्यक्ति को अपना दु ख नही रह जाता । वह विश्व के दुःख से दु खी होने लगता है । तुलसी की, विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की यह भाव-भूमि—'सियाराममय सब जग ✤' की भाव-भूमि ही है। इसी अभेददर्शन की दृष्टि से तुलसी अपने रामदर्शन के भीतर वनदेवी, वनदेव इत्यादि सब देवों, देवियों और पितरों को देखते है। इसी भाव-भूमि पर पहुँच कर उनकी कौसल्या राम मे कहती है—"यदि तुम्हे केवल पिता की आज्ञा है तो माता का स्थान पुत्र

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ५३ के पहले । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ५४ और उसके बाद । $ वही । * वही । § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ५५ के पहले । × वही । + रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ५५ । ✤ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद ।

के लिए पिता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। मेरी आज्ञा मान कर तुम वन न जाओ। यदि माता-पिता दोनो ने आज्ञा दी है तो वन तुम्हें सैकडों अवध की तरह सुखद होगा। वन-देवता तुम्हारे पिता होगे और वन-देवियाँ माता की तरह तुम्हारी रक्षा करेंगी। पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमल की सेवा करेंगे। गृहस्थाश्रम के अन्त मे तो राजा के लिए वनवास उचित ही है, पर तुम्हारा कोमल वय देख कर हृदय को पीडा होती है। आज वन ही भाग्यशाली है और तुमसे वियुक्त हो कर अवध अभागा हो गया है‡।' अनतशील की नरझाँकी जहाँ न रहे वही स्थान अभागा है। 'अपना पुत्र समझ कर यदि मै तुम्हारे साथ जाना चाहूँ तो तुम्हारे हृदय को सकोच होगा, क्योंकि तुम सब माताओं के परम प्रिय पुत्र हो। तुम सब प्राणों के प्राण और सम्पूर्ण जीवन के जीवन हो†।' यहाँ कौसल्या का विमल विज्ञान स्पष्टत. परिलक्षित हुआ है। वह फिर कहती है—'सबका प्राण (राम) जब वन जाने का प्रस्ताव हमारे सामने रखता है, तब इन शब्दों को सुन कर मुझे बडा पछतावा होता है$।' वह पछतावा यही है कि राम के अभाव मे अयोध्या के प्राण सकट मे अवश्य होंगे। पर सम्पूर्ण विश्व, आदर्श के केन्द्र का दर्शन करके धन्य हो जाएगा। यह सन्तोष की बात है। 'यह बिचारि नहि करउ हठ झूठ सनेह बढाइ*' झूठे स्नेह से व्यापक राम को कौसल्या सीमित कैसे कर सकती है। उसे व्यापक समझ कर ही उससे सच्चा प्रेम किया जा सकता है। इसीलिए वह राम से प्रार्थना करती है कि आपने माता का नाता हमसे स्वीकार कर लिया है, इसीलिए उस स्वीकृति का निर्वाह करेंगे। अपने पूर्व प्राप्त वरदान के कारण कौसल्या दशरथ से अधिक जागरूक हैं।

अपने पूर्वजन्म के वरदान के अनुसार कौसल्या राम को परमात्मा और पुत्र दोनों रूपों मे देखती है। विशिष्टाद्वैत का अवतारी ब्रह्म जब अवतार लेता है तो उसकी दोनो अवस्थाएँ रहती है। ससार के सम्बन्धों मे भी वह बँधता है और उन सम्बन्धों से अलिप्त भी रहता है। राम को पुत्र की तरह देखती हुई कौसल्या कहती है—'तुम्हे देव, पितर सब इसी तरह रक्षित रखे जिस तरह पलके आँखों की रक्षा करती है। तुम्हारे आने की अवधि जल की तरह है। तुम्हारे प्रिय परिजन मीन की तरह है। यदि अवधि का जल इन्हे नही मिला तो ये प्राण त्याग देंगे। पर तुम करुणा के सागर और धर्म के नेता हो। इसीलिए कुछ ऐसा उपाय करो जिससे तुम वापस आ कर सबको जीवित देख सको§।' इतना कहते-कहते कौसल्या अपने मातृत्व के वश में हो कर भावविह्वल हो जाती है और राम के चरणों मे लिपट कर विलाप करने लगती है। पुरुषोत्तम के वियोग का सताप इतना भयानक और दुस्सह होता है कि गोस्वामी जी उसे अनिर्वचनीय कहते है। अनत शीलवान् के मिलन का आनन्द और वियोग का सताप, दोनों अनत और अपरिसीम तथा अनिर्वचनीय होते है। किसी तरह राम माता को सान्त्वना दे पाते है।

इस समाचार को पा कर सीता की अवस्था इससे भी अधिक शोचनीय हो जाती है। वह सोचने लगती है कि प्रारब्ध ने हमारे शरीर और प्राण दोनों को स्वामी के साथ

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ५५ के बाद। † वही। $ वही। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ५६ और उसके बाद। § वही।

भेजना नियत किया है या केवल प्राणों को। उन्हे इस बात का विश्वास है कि मर्यादा पुरुषोत्तम यदि उन्हे न ले गये तो प्राण तो उनके साथ अवश्य चले जाएँगे; मृतक शरीर अयोध्या मे पड़ा रह जाएगा‡।

राम ने माता को सहारा देने के लिए सीता को अयोध्या मे रखना चाहा। वन के सब कष्ट बताये पर पति के साथ अपनी आत्मा को एकाकार बना देने वाली नारी बिना पति के कैसे रह सकती थी। जगत्पिता के आदर्शो के साथ एक हो जाने वाली जगदम्बा को सब कष्ट भूल जाएँगे, यदि पति का साथ उसे मिल सका। यदि ऐसा न हुआ तो उसके प्राण कैसे बचेगे। उसे तो पति के प्रेम के सामने प्राणों का मोह है ही नही। यदि पति का साथ न मिला तो उसके प्राण भी नही रहेगे। विमल विज्ञान का अद्वैत उसने पति मे पा लिया है और विमल वैराग्य उसके भीतर इतना उत्पन्न हो गया है कि पति के लिए बडे से बड़ा बलिदान करने की क्षमता उसमे हो गयी है। वह पति से यही पूछती है—'अवधि तक आप यदि मुझे अवध मे रखना चाहते है तो क्या मेरे प्राण रह सकेंगे† ?' वह राम से प्रश्न करती है—'क्या आप के लिए वन में तप करना ठीक है और मै घर में सुख से रहूँ$?' वह पति के तप मे समभागिनी बनना चाहती है। यदि ऐसा न हुआ तो लोगमगल साधिका कैसे होंगी। विश्व के सामने विमल विज्ञान और वैराग्य का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए जो त्याग राम करेंगे वही त्याग सीता भी करेंगी। वह कहती है कि आपके मुख से ऐसी बात सुन कर हमारा यह हृदय फट न गया तो मेरे ये नीच प्राण आपके विषम वियोग का दुख भी सह लेंगे*। इतना कहते ही सीता बहुत अधिक व्याकुल हो गयी। केवल वियोग का प्रस्ताव भी उनसे नही सहा गया। राम को विश्वास हो गया कि 'हठि राखे नहि राखिहि प्राना§।' उन्होंने सीता को साथ चलने की आज्ञा दे दी। राम और सीता को आज्ञा देने में कौसल्या की जो दशा हो गयी कवि उसे वर्णन करने में अपने को अक्षम बताता है×।

राम के लिए लक्ष्मण का प्रेम भी विमल विज्ञान और वैराग्यपूर्ण प्रेम था। अपने स्वार्थों के प्रति विमल वैराग्य ने लक्ष्मण के भीतर भी राम के लिए इतना उज्ज्वल प्रेम पैदा किया था कि वह भी अनिवर्चनीय ही था। सीता के समान उनकी भी दशा थी। अपने शरीर और गृहस्थी से लक्ष्मण ने नाता तोड़ लिया है। यह बात राम से छिपी न रह गयी। राम ने उन्हें भी कई तरह से समझाया लेकिन लक्ष्मण का उत्तर केवल यही था—मैं सेवक हूँ और आप स्वामी। आप हमे त्याग देगे तो आप पर हमारा क्या वश चल सकेगा। आपने हमे बड़े नीतिपूर्ण उपदेश दिये। धैर्यवान्, धर्म की धुरी को वहन करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के लिए ही वैदिक धर्म के श्रेष्ठ आदर्श है। मै तो दुर्बल बालक हूँ। आपने हमें स्नेह से पाला है। क्या हस भी अपने ऊपर मदर और मेरु पर्वत को रख

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड दोहा ५७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ६६। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ६७ के पहले और बाद। * वही। § वही। × रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ६९ के पहले।

सकता है। हमारी वही दशा है। आप मुझ पर विश्वास करें। मेरे कर्तव्य, गुरु, पिता तथा माता के लिए अवशिष्ट नहीं रह गये है। ससार के सब नाते मुझ से छूट गये है। वे सब नाते मैने केवल आपसे जोड लिए है। जिसको कीर्ति, ऐश्वर्य और सुगति प्रिय हों, धर्म नीति का उपदेश उसी को दिया जा सकता है। जो मन से, वाणी से और कर्म से प्रिय के चरणों से अनुरक्त हो जाए तो क्या कृपासिधु प्रिय उसे छोड देता है ‡ ?" अनत स्नेह की अपरिमित वियोग-वेदना को लक्ष्मण मे देख कर राम ने उन्हें भी चलने की अनुमति दे दी। बडी हानि की स्थिति मे बड़ा लाभ पा कर लक्ष्मण को बडा सन्तोष हुआ। "मुदित भये सुनि रघुबर बानी, भयउ लाभ बड़, गइ बड हानी।" उन्हें इतना आनन्द हुआ जितना आनन्द अधे को नेत्र पा कर होता है †।

सुमित्रा के भीतर भी विमल विज्ञान और वैराग्य की अपार निधि थी। विमल विज्ञान और वैराग्य के कारण लक्ष्मण के भीतर लोकादर्श के प्रतीक राम के लिए इतना अपार प्रेम था कि सुमित्रा के पास आज्ञा माँगने जाते हुए भी उन्हे भय हो रहा था कि कही उनका वात्सल्य बाधक न हो जाए। यह समाचार पा कर जब सुमित्रा सहमी तब लक्ष्मण फिर सकट मे पड़ कर सोचने लगते है—"एहि सनेहबस करब अकाजू $।" विमल विज्ञान और वैराग्य के भीतर उत्पन्न हुआ स्नेह व्यक्तिप्रेम से ले कर विश्वप्रेम तक फैला रहता है। उसमे व्यक्ति और विश्व दोनो समा सकते है।

तुलसी के पात्रो मे से सुमित्रा की ओर इसी दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। वह तुरन्त धैर्य धारण कर सकती है और 'सहज सुहृद *' है। समत्व के भीतर उत्पन्न होने वाला प्रेम उनके भीतर स्वाभाविक है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो बिदाई का उपदेश दिया है वह विमल विज्ञान और वैराग्य का एक बडा भव्य नमूना है। वह कहती है—"वैदेही तुम्हारी माता है। प्रत्येक अवस्था में तुम पर स्नेह रखने वाले राम तुम्हारे पिता है। जहाँ राम का निवास रहता है वही अवध का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। दिन वही होता है जहाँ सूर्य का प्रकाश रहता है। यदि सीता और राम वन जाते है तो अयोध्या मे तुम्हारा कोई काम नही। गुरु, पिता, माता, बधु, सुर और स्वामी की सेवा प्राण के समान उन्हे समझ कर करनी चाहिए। राम प्राणों को प्रिय है, जीव के जीवन है। वे सबके निःस्वार्थ मित्र है। विश्व में जितने परमप्रिय और पूजनीय है, सबमें राम का नाता ही मानना चाहिए §।" यहाँ गोस्वामी जी की सुमित्रा विश्वप्रेम को राम-प्रेम का और रामप्रेम को विश्वप्रेम का रूप दे देती है। उनके कहने का तात्पर्य यही है कि जो राम को प्रेम करता है वह विश्व को प्रेम करता है; क्योंकि राम को वही प्रिय होता है जो विश्व को प्रेम करता है। राम के जीवन का आदर्श ही विश्वप्रेम है। विमल विज्ञान और वैराग्य व्यक्ति को विकास की उसी भूमि पर पहुँचाते है।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, ७२ के पहले और बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ७३ के पहले। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ७३ के बाद। § वही।

सुमित्रा लक्ष्मण से कहती है कि मेरे इन शब्दों को मन मे उतार कर तुम राम के सेवक की तरह बन जाओ। इससे तुम्हारा जन्म सफल हो जाएगा—पुरुषोत्तम के कार्यो मे सहायक बनने से ‡। विमल विज्ञान और वैराग्य के भीतर पैदा हुआ प्रेम स्वार्थो से विरक्त रह कर निश्छल हो जाता है। ऐसा निश्छल प्रेम करने वाला अतुल भाग्यशाली होता है। इसीलिए सुमित्रा कहती है—'छल छोड कर तुम्हारे मन ने राम के चरणों मे स्थान पा लिया है। तुम मेरे साथ परम भाग्य के पात्र हो। मै तुम पर निछावर हुई। तुम्हारे समान पुत्र को उत्पन्न करके मेरा भी जीवन भाग्यशाली और धन्य हो गया है। ससार मे वही युवती पुत्रवती होती है जिसका पुत्र विश्वमगल विधान मे मर्यादा पुरुषोत्तम का साथ देना है। जो पुत्र रामविमुख होता है उससे माता के गौरव को धक्का पहुँचता है। तुम्हारे ही भाग्य से राम वन जा रहे है। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न न होती तो तुम्हारा शील तपस्या की आग मे तपने का अवसर ही नही पाता। सब सुकृतों के फल के रूप मे ही व्यक्तियो के भीतर राम और सीता के चरणों के लिए सहज स्नेह पैदा होता है †।' ऐसे ही लोग लोकमगल विधान के प्रतीक राम और सीता के चरणो मे, अपने सहज स्वभाव से अपने को समर्पित कर क्षुद्र से विराट् हो जाते है। लक्ष्मण को समझाते हुए सुमित्रा कहती है—'स्वार्थ के भीतर पैदा होने वाले राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह के वश मे स्वप्न मे भी न जाना। सब तरह के विकारों को छोड कर मन, वाणी और कर्म की पूरी शक्ति से राम की सेवा करना $।' अंत मे सुमित्रा अपने पुत्र को अविरल अमल हरिभक्ति का आशीर्वाद देती है—"रति होउ अबिरल अमल, सिय-रघुबीर-पद नित नित नई *।" 'तुम्हारे हृदय को सीताराम के चरणों की नित्य नयी निरन्तर प्रवाहित होने वाली अमल प्रीति मिले।'

यहाँ से आज्ञा पा कर लक्ष्मण, सीता और राम के साथ दशरथ के दरबार मे आये जहाँ अपार जनसमुद्र का असीम शोक उमड़ रहा था। शोक में जलते हुए दशरथ कुछ बोल न सके। बार-बार वे अपने बच्चों को हृदय से लगा रहे थे। यहाँ राम ने पिता से आज्ञा माँगी और विमल वैराग्य-विज्ञान-जन्य प्रेम की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया—"तात किये प्रिय प्रेमप्रमादू, जस जग जाइ होइ अपवादू §।" प्रिय के प्रेम के पथ पर वासना के क्षोभ को नही आने देना चाहिए। उससे व्यक्ति को अपयश मिलता है। राम दशरथ को उस प्रेम की ओर ले जाना चाहते थे जिसमे वासना का प्रमाद नही, विमल विज्ञान और वैराग्य का प्रकाश रहता है। परन्तु दशरथ ने तो परम पावन के लिए अपने प्रेम का वही स्वरूप माँगा था जिसके लिए प्राणों की बलि दी जा सके। ज्ञानमय प्रेम के आलोक मे चाहे सब स्वार्थो का विसर्जन हो जाए पर शरीर तो बच ही जाता है। दशरथ

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ७३ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ७४ और उसके बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ७४ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ७५ के पहले। § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ७५ के बाद।

उस शरीर को भी प्रेम के लिए विसर्जित कर देना चाहते थे। इन सब प्रेमियों की यही अवस्था थी। कोई क्षणिक वियोग भी नहीं सह सकता था। इनमे सीता, लक्ष्मण तथा दशरथ थे। कोई भावी दर्शन के लोभ से जीवित था। इस कोटि मे अयोध्या के और सब लोग थे। इनमे कौसल्या, सुमित्रा तथा भरत इत्यादि ज्ञान की ऊँची सीमा पर थे, बाकी और लोग प्रेम की अधिकता को ही अपने भीतर पाले हुए दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। दशरथ ने राम और सीता को रोकने का प्रयत्न किया। सीता को रोकने मे उन्हे किंचित् सफलता की आशा थी, पर इस कार्य मे सीता की असीम राम-भक्ति दशरथ के मार्ग मे बाधक हो गयी और कैकेयी की क्रूरता ने भी सीता की सहायता और दशरथ के प्राणों पर आक्रमण किया। उसने राम के सामने मुनियों के वस्त्र रख कर यथोचित करने की आज्ञा दी और राम ने उस आज्ञा को बडे आनन्द से शिरोधार्य कर लिया। राम के निकलते ही दशरथ के साथ-साथ सब मूर्छित हो गये ‡।

उपासना की सर्ववाद सम्बन्धी भूमि विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की भूमि है। इस सत्य को गोस्वामी जी ने मानस मे बार-बार सिद्ध करने का आयोजन कर लिया है। यहाँ भी वही सत्य प्रचारित हुआ है—राम के शील के भीतर से। गुरु से आज्ञा ले कर और प्रजा को सान्त्वना दे कर राम चले। अपनी यात्रा के आरम्भ मे उन्होंने गणपति, गौरी और शिव का मगलमय ध्यान किया। विदेशी आलोचक इसी तरह की स्थितियों को भक्ति की निम्न श्रेणी मानते है, जिसमे परम आराध्य एक न हो कर अनेक हो जाते है पर समाज का निर्माण करने वाली भारतीय दृष्टि व्यक्ति के भेददर्शी स्वभाव के मनो-विज्ञान को ठीक-ठीक समझ कर ही ऐसा करती है। उसके अनुसार यदि व्यक्ति को स्वाभाविक विकास मे पैदा हुए बहुदेवो की आसक्ति से हटा लिया जाएगा तो वह कुछ मनुष्यो के अपने सीमित ससार के प्रति ही अपने भीतर आसक्ति पैदा कर के सघर्ष मे प्रवृत्त होगा। इसीलिए अपने खास व्यक्तियों के प्रति मोहजन्य प्रेम से व्यक्ति के मन को स्वाभाविक ढग से अनासक्त बना कर विश्वप्रेम की ओर बढ़ाने के लिए भारतीय धार्मिक नेताओं ने बहुदेवों के प्रति आसक्ति को सुरक्षित रहने दिया तथा उसी के भीतर अभिन्न परमात्मदर्शन के अभेद को पैदा कर एक तरह से भेदाभेद का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। बहुदेवों के भीतर एक देव को समझना सरल है। बहुमानवों के भीतर परमात्मा (एक) को समझना अपेक्षाकृत दुरूह। इसीलिए उन बहुदेवों मे एक परमोच्च शक्ति का ज्ञान सगुण उपासना के भीतर करा दिया गया। इन शक्तियो को मानव अपने से ऊँची शक्तियों के रूप मे देखता है; इसीलिए उनमे परमोच्च शक्ति वाले परमात्मा का ध्यान वह सरलता से कर सकता है। मनुष्य अपने मे तथा अपने ही समान मानव के भीतर परमात्मा की अनुभूति कठिनाई से कर पाता है; इसीलिए भारतीय सत तुलसी का 'बहु-देवात्मक एकदेव वाद' विकास का स्वाभाविक तथा सरल पथ है। विमल विज्ञान इस तरह के अभेद को भी देख लेता है। जिस देश मे जगत् को परमात्मा से अलग माना जाता

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ७९ और उसके पहले।

है उस देश मे व्यक्ति के भीतर विश्व के लिए स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होने की सम्भावना कम रहती है। पर जो देश 'सियाराममय सब जग'‡ की अनुभूति कर लेता है उसके स्वभाव मे विश्व-प्रेम स्वाभाविक स्थान पा लेता है। जब चारो तरफ सियाराम ही है तो वह किससे बैर करे।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य में स्वार्थ का अभाव रहता है। इसीलिए अयोध्या के लोगों मे रामप्रेम का इतना अदम्य प्रवाह गोस्वामी जी ने दिखाया है कि तमसा के किनारे तक पूरे एक दिन की यात्रा भर अयोध्या की प्रजा राम के साथ लगी हुई चली गयी। यहाँ उस अनत प्रेम के लिए तुलसी के अनंत राम को अपनी शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता हुई। उस प्रयोग से उन्होने प्रजा के भीतर प्रेम के प्रवाह को मन्द कर प्रभात के पहले ही चिह्न मिटवाते हुए रथ को हँकवाना शुरू किया। प्रात जब रथ का मार्ग नही दिखाई पडा तो सब लोग बड़े व्याकुल हुए। पशु-पक्षी तक अनत मर्यादा के इस शील के प्रति प्रेमासक्त थे। लोग चारों तरफ राम राम करते हुए दौडने लगे। अत मे उन्होंने एक दूसरे को समझाना शुरू किया—'राम ने हमारे कष्ट को समझ कर ऐसा किया है†।' रघुवीर के बिना वे अपने जीवन को धिक्कारने लगे। शोक भरे वे सब अयोध्या लौट आये। यहाँ गोस्वामी जी ने लिखा है—"बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना$।" राम आएँगे, इसी आशा से वे जीवित रहने लगे। इस आकाक्षा की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन को तपोमय बना दिया। विमल विज्ञान और वैराग्य की स्थिति, स्वार्थ की बलि दे कर परम मगल के लिए त्याग और तपस्या से ही प्राप्त होती है। यही तुलसी का सिद्धान्त है।

विमल विज्ञान के आलोक मे 'सर्व खल्विद ब्रह्म'* की अनुभूति उत्पन्न होती है। इस सर्ववाद के प्रभाव से भारत ने विश्व के कण-कण मे एक परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव किया। नदी, पर्वत, पशु, पक्षी, लता, गुल्म चारों तरफ उसे परमात्मा की शक्ति एक विशिष्ट देव या देवी के रूप मे अनुभूत होती है। अपने इसी अनुभव के कारण लौकिक पुरुष की तरह गोस्वामी जी के राम भी शृगवेरपुर पहुँच कर देव-नदी गगा को एक विशेष हर्ष के साथ प्रणाम करते है। लक्ष्मण, सचिव और सीता ने भी प्रणाम किया। अपने इस परिवार के साथ गंगा के तट पर तुलसी के राम बडे सुखी हुए। राम ने गगा के माहात्म्य से लोगों को परिचित कराया। उन्होंने कहा—'गगा सब तरह के आनन्दों और मगलों की जड़ है। हर तरह के सुख इससे उत्पन्न होते है। सब प्रकार की पीडाएँ इससे दूर होती है§।'

विमल विज्ञान की दृष्टि में सान्त और अनंत में अभेद रहता है। इस प्रसग मे गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान के अपने दृष्टिकोण से अवतार की सातता और अनतता पर प्रकाश डाला है। उन्होने कहा है—

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ८५ के बाद। $ वही। * छान्दोग्य उपनिषद्, खड १४ श्लोक १। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ८६ के बाद।

मज्जनु कीन्ह पंथस्रमु गयेऊ। सुचि जलु पियत मुदित मन भयेऊ‡।
सुमिरत जाहि मिटइ स्रम भारू। तेहि स्रमु यह लौकिक व्यवहारू।

विमल विज्ञान की स्थिति मे मनुष्य को यह रहस्य भी व्यक्त हो जाता है कि अवतार सांतता स्वीकार करके अपनी अनतता को छिपाये रहता है। उसे मनुष्य के सामने जीवन के आदर्श प्रस्तुत करने रहते है; इसीलिए वह केवल नरलीला ही करता है। वह लोगों को यही भान होने देता है कि वह आदर्श व्यक्ति है और उसका शील मनुष्य के लिए अनुकरणीय है। अपनी अनतता को वह उसी व्यक्ति के सम्मुख प्रकट करता है जो शील के विकास की उच्चतम भूमि पर पहुँच जाता है और जिसके भीतर इस दुर्बलता का उदय नही हो सकता कि परमात्मा के आदर्श की ओर मनुष्य कैसे जा सकता है; साधारण मनुष्य के लिए ये आदर्श अनुकरणीय नही; इसलिए मनुष्य यदि आदर्श न बन पाए तो उसका दोष नही यह तो उसका स्वभाव है। भारतीय दर्शनों का यह विश्वास है कि नर ही नारायण बन सकता है। नर को नारायण के उदार पथ की ओर ले जाने के लिए ही अवतार होते है। इसीलिए गीता के कृष्ण ने कहा है—"उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत् †।" मनुष्य को अपना विकास स्वयं करना चाहिए। उसे अपने को ह्रास की ओर नही ले जाना चाहिए। अवतार श्रेष्ठ पुरुष हो कर ही आता है, और लोगों को श्रेष्ठ बनाने के लिए ही। अवतार के दार्शनिक पहलू पर भी गीता ने प्रकाश डाला है—

यद्यदाचरते श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:
स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते $।

'जो-जो आचरण श्रेष्ठ पुरुष करता है, सर्वसाधारण उसी के अनुसार अपने शील का पथ निर्मित करता है। जो आदर्श वह अपने कार्यो के द्वारा बना जाता है दुनिया उसी का अनुसरण करती रहती है।'

परमात्मा इसी श्रेष्ठ पुरुष के रूप मे आ कर धर्म की स्थापना (आदर्श शील का प्रचार) करता है। विमल विज्ञान के रहस्य के भीतर यह दृष्टि भी गोस्वामी जी ने रखी है—

'सुद्ध सच्चिदानन्दमय कद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर अनुहरत ससृति सागर सेतु *।'

'शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सूर्यवश के श्रेष्ठ पुरुष राम के रूप मे अवतीर्ण हुआ है। वह आदर्श जीवन व्यतीत करता है। साधारण मनुष्य उसका अनुकरण करके भव-सागर के लिए सेतु पा लेता है। आदर्श पुरुष का जीवन दुर्बलताओ के समुद्र को पार करने के लिए साधारण मनुष्य के लिए सेतु का काम करता है।'

जो विश्वजीवन विमल विज्ञान और वैराग्य से उत्पन्न सहज स्नेह पर आधारित रहता है उसमें जातिगत ऊँच-नीच के भेद का अभाव रहता है।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ८६ के बाद। † गीता, अध्याय ६, श्लोक ५।
$ गीता अध्याय ३ श्लोक २१। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ´७।

इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकरण में गोस्वामी जी ने अभेद-दर्शन के प्रकाश मे जातिगत ऊँच-नीच के भेद को भी समाप्त कर दिया है। परम पवित्र शील के प्रकाश मे निषाद, कोल, किरात, शबर और केवट सब एक ही श्रेणी के सत्पुरुषो के रूप मे दिखाई पडते है। ये सब सत-मानव है।

मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शो से निषादराज परिचित है। राम के आने का समाचार पाते ही अपने परिवार और प्रिय बन्धुओं के साथ फल-मूल ले कर वे राम की सेवा मे प्रस्तुत होते हैं। इस मिलन मे राम और निषाद दोनों व्यक्तियों के हृदय मे अपार हर्ष है। दडवत करके अपनी भेट राम के आगे रख कर निषादराज बडे अनुराग से उनकी ओर देखने लगते है। गुह, शील विकास की पर्याप्त ऊँची भूमि पर पहुँचे हुए है। सहज-स्नेह उनमे पैदा हो गया है। सहज-स्नेह विमल वैराग्य का लक्षण है। अपने स्वार्थो के प्रति वैराग्य ले कर जिस व्यक्ति के भीतर स्नेह पैदा होता है वही सहज-स्नेही कहलाता है। ऐसे व्यक्ति के भीतर स्वार्थनिरपेक्ष स्नेह स्वभाव का अग बन जाता है। इस प्रकार के स्नेह का कारण स्वार्थ नही स्वभावगत सात्त्विकता होती है। इस विमल वैराग्य के प्रकाश को प्राप्त कर मर्यादा पुरुपोतम के आदर्शो मे लीन होने के लिए निषाद का हृदय प्रस्तुत था। पुरुषोत्तम इसी परम पावन सहज-स्नेह का क्रीतदास बन जाता है। गीता का ज्ञानी भक्त और तुलसी का भक्त सहज-स्नेह की इसी सिद्धि को प्राप्त किये रहता है। इस भक्त को स्वीकार करने के लिए परमात्मा सदा प्रस्तुत रहता है—विवश रहता है, क्योकि इस तरह का भक्त उससे और कुछ नही केवल उसका प्रेम चाहता है। इसलिए 'सहज-सनेह-बिबस रघुराई, पूँछी कुशल निकट बैठाई ‡।' सहज स्नेह का यह सत-स्वभाव, भेद को नही रहने देता। निषादराज के सहज-स्नेह से प्रभावित हो कर भगवान राम ने इन्हे अपनी बराबरी का स्थान दे कर अपना अभिन्न मित्र बना लिया। राम ने जब कुशल प्रश्न पूछा तब निषादराज के उत्तर मे विमल वैराग्यपूर्ण जीवन की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है—"नाथ कुसल पदपकज देखे, भयउ भागभाजनु जन लेखे †।" वह राम से कुछ नही चाहते। राम के चरणकमलो का दर्शन हो गया तो निषाद का पूरा कुशल हो गया। राम के जनो मे उनकी गिनती हो गयी और वे भाग्यभाजन हो गये। क्षुद्र वैयक्तिक जीवन के स्वार्थो से ऊपर उठ कर विश्वजीवन (राम के आदर्श) में स्थान पा जाने को ही गुह अपना भाग्य और कुशल समझते है। व्यक्ति से विश्व हो जाना विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की उदारता का लक्षण है।

मुनियों के जीवन में भी गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का सुन्दर विवेचन किया है।

शील के विकास की एक मनोहर झाँकी जो विमल वैराग्य का दृश्य प्रस्तुत करती है, हमे राम के मुनिव्रत के आरम्भ मे दिखाई पडती है। राम आतिथ्य स्वीकार करने निषादराज के गाँव मे नही जाते। मुनिवेष गॉव में जाने की अनुमति नही देता।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ८७ के बाद। † वही।

उस व्रत के अनुसार मनुष्य को गाँव के बाहर वन्य जीवन की सरलता के रंगों से अपने जीवन का चित्र बनाना पडता है। इसीलिए ग्राम के बाहर रह कर ही उन्होंने आतिथ्य स्वीकार किया‡।

विमल विज्ञान और वैराग्य के चिन्तनात्मक बौद्धिक रूप को भी गोस्वामी जी ने मानस के इस द्वितीय सोपान मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

इस प्रकरण मे जीवन के चित्रो में क्रियात्मक विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने विशुद्ध चिन्तन के क्षेत्र में भी विमल विज्ञान और वैराग्य का विवेचन किया है। भगवान् राम को भूमि पर शयन करते हुए देख कर निषाद को बड़ा विषाद हुआ। वे कैकेयी को दोष देने लगे। इस स्थिति मे उन्हें सान्त्वना देने के समय की लक्ष्मण की मन:स्थिति की चर्चा करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—"बोले लषन मधुर मृदु बानी, ग्यान बिराग भगति रस सानी†।"

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य ही प्रेमभक्ति की ओर ले जाते है। लक्ष्मण के भीतर प्रेमभक्ति उत्पन्न हो गयी थी; इसीलिए ज्ञान वैराग्य और भक्ति उनकी वाणी मे एक साथ स्थान पा गये है। निषादराज को सान्त्वना देने वाले उनके शब्द ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को उत्पन्न करने की क्षमता रखते है। वे कहते है—"कोई किसी को सुख और दु:ख नही देता। अपने किये हुए कर्मो को ही सब भोगते है। सयोग और वियोग, सुख की अनुभूति और दु.ख की अनुभूति, हित, अहित और मध्यम स्थिति, ये सब भ्रम के जाल है। मनुष्य की कल्पनाएँ है। जन्म और मरण, ससार का जहाँ तक प्रपच है—सपत्ति, और विपत्ति, कर्म और काल, घर, पृथ्वी, धन, गाँव, परिवार, स्वर्ग और नरक इत्यादि समग्र स्थितियाँ, जो देखी और सुनी जाती है, उन पर यदि ध्यानपूर्वक चिन्तन किया जाए तो वे सब अज्ञानजन्य ही दिखाई पड़ेंगी। उनमे अन्तत: सत्य न दिखाई देगा। अन्तिम और पूर्ण सत्य के दर्शन उनमें न होंगे। स्वप्न मे राजा भिखारी हो जाता है और रक इन्द्र हो जाता है। जागने पर हानि और लाभ कुछ नही रह जाते। इसी तरह स्वप्न के समान ससार का भी प्रपच है। ऐसा विचार करके क्रोध नही करना चाहिए। किसी को व्यर्थ दोष नही देना चाहिए। अज्ञान की रात मे सब सोते रहते है। उसी अज्ञान के कारण अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते है। इस ससार की अज्ञान-रात्रि मे योगी जागते रहते है सत्यप्रेमी प्रपच से विरक्त रहते है। इस सत्य का दर्शन जीव तभी करता है जब वह अज्ञान की निद्रा से जाग पड़ता है, जब विषयों के विलासो के प्रति उसके भीतर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। इसी स्थिति मे उसके भीतर विवेक पैदा होता है और अज्ञान की भ्रान्ति दूर हो जाती है। अज्ञान के दूर होते ही रघुनाथ के चरणों के लिए उसके भीतर अनुराग उत्पन्न होता है। मन, वाणी और कर्मो के द्वारा राम के चरणों का स्नेह ही परम सत्य है। राम सत्य के परमोच्च स्वरूप (ब्रह्म) है। वे अविगत, अलख, अनादि और

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ८८। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ९१ के बाद।

अनुपम है। वे सब विकार और भेदों से अस्पृष्ट रहते है। वेद उनका निरूपण 'नेति' कह कर ही करते है। वे कृपालु, भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, सुरभि और देवताओं के लिए मनुष्य का शरीर धारण करके अपने आदर्श चरित का विस्तार करते है। उनके इस चरित्र की चर्चा करने से ससार के प्रपचों के लिए विराग उत्पन्न हो जाता है। यह समझ कर तुम अज्ञान छोड़ दो और सीताराम के चरणो के स्नेह में लीन हो जाओ‡।

विमल विज्ञान और वैराग्य का यह बौद्धिक निरूपण है। इसके लिए इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने एक स्वाभाविक अवसर निकाल लिया है।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के भीतर सत्यप्रेम का शाश्वत रूप ही रहता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का सिद्धान्त इस बात पर विश्वास करता है कि सत्य ही परम धर्म है, और उसकी रक्षा के लिए बडे से बडा बलिदान भी छोटा ही है। इस पूरे सोपान मे राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, कौसल्या, सुमित्रा, भरत इत्यादि जितने व्यक्ति है, सब ने सत्य के लिए ही बलि दी है। सुमन्त राम को छोड कर शृगवेरपुर मे जब अयोध्या लौटने के समय व्यथित हो कर दशरथ का यह प्रस्ताव रखते है कि राम वापस हो जाएँ या कम-से-कम सीता ही वापस चलें, तो अपने लिए राम यही समझाते हैं—"धरमु न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना†" और जब सीता को लौट जाने के लिए राम ने समझाया तब सीता ने अपने सत्य धर्म (अपने सच्चे कर्तव्य) की तरफ से यह तर्क प्रस्तुत किया—

'सुनि पति बचन कहति बैदेही, सुनहु प्रान पति परम सनेही।
प्रभु करुनामय परम बिबेकी, तनु तजि रहत छाह किमि छेकी।
प्रभा जाइ कह भानु बिहाई, कह चद्रिका चदु तजि जाई$।'

'शरीर को छोड कर छाया रोकने पर भी नही रुकती। सूर्य की प्रभा और चन्द्रमा की चन्द्रिका उन्हे छोड़ कर कही जा ही नही सकती। इसी तरह का अभिन्न प्राकृतिक सम्बन्ध सीता और राम का है। विमल वैराग्य और विज्ञान के भीतर से विकसित होने वाला सम्बन्ध इसी प्रकार शाश्वत और अटूट हो जाता है। इसी तरह का शिष्ट और सान्त्वनामय उत्तर सुमन्त को दे कर सीता ने घर वालों के लिए भी सान्त्वना के बडे मधुर सन्देश दिये। लेकिन सीता का माधुर्यपूर्ण व्यवहार सुमन्त के वियोग को और तीव्र करता जाता था—"सुनि सुमत्र सिय सीतल बानी। भयेउ बिकल जनु फनि मनि हानी*।" जिसका हृदय विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से मधुर हो जाता है उसका प्रभाव ससार पर इसी तरह का पडता है। जगत् के लिए ऐसे व्यक्तित्व का वियोग असह्य हो जाता है—"नयन सूझ नहि सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना§।"

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ९१ के बाद पक्ति ४ से दोहा ९३ से एक पक्ति बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ९४ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्या-काड, दोहा ९६ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ९८ के बाद। § वही।

पुरुषोत्तम के विज्ञान और वैराग्य-जन्य प्रेम का प्रभाव इतना व्यापक हो गया था कि उन्हें छोड़ कर रथ के घोडे तक वापस नही जाना चाहते थे। सुमन्त्र किसी प्रकार वापस हुए।

गगा के किनारे आने पर पार उतारने के समय केवट ने भी बडे कोमल प्रेम का परिचय दिया। गौतम की अहल्या जब पत्थर से, राम के चरण की धूल के प्रभाव से, नारी हो गयी तो इस केवट की नाव भी स्त्री कैसे न हो जाती ! बस, प्रेम के कारण पैर धो कर चरणोदक लेने के लिए इस प्रेमी ने यह बहाना निकाला। और बिना चरणोदक लिये नाव पर चढने ही न दिया। विमल विज्ञान और वैराग्य के केन्द्र के प्रति जिसके भीतर इतना स्नेह हो वह व्यक्ति ही विमल विज्ञान और वैराग्य का पूर्ण सस्कार अपने भीतर सचित कर रखता है। इसी प्रकार का त्यागी और अटपटा प्रेमी यह केवट था‡।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य पर किसी एक ही जाति का अधिकार नही होता। केवट के इस प्रकरण को इस तरह यहाँ स्थान दे कर गोस्वामी जी ने यही सिद्ध किया है कि विमल विज्ञान और वैराग्य किसी के भीतर पैदा हो सकता है। उसके लिए जाति और वर्ण की रेखाएँ सीमा नही बन सकती। प्रेमानन्द की जिस समाधि मे मग्न हो कर केवट भगवान् राम के चरण धो रहा था, वह अवर्णनीय थी।

अति आनद उमगि अनुरागा, चरन सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाही, एहि सम पुन्यपुज कोउ नाही†।

राम के प्रेम की यह समाधि बडे सौभाग्य से किसी को मिलती है। इसीलिए आज केवट को भक्तो मे सर्वोच्च स्थान मिला हुआ है। देवता भी उसके भाग्य को पा लेने की अभिलाषा करके यह स्वीकार करते है कि केवट के समान पुण्यपुज कोई नही है। अपनी इस स्थिति की प्राप्ति को केवट भी अनुभव कर रहा है। उतराई के लिए वह मुद्रिका नही लेता। वह कहता है—"नाथ आजु मैं काह न पावा, मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा $।" 'आप मुझे स्वामी की तरह मिल गये। अब पाना बाकी क्या रह गया। आज तो मेरे सब दोषों, दुखों, और दारिद्रय का समूह समाप्त हो गया। मैने बहुत दिन तक सेवा-कार्य किया। आज विधाता ने मुझे पूर्ण और प्रचुर सम्पत्ति का वेतन दे दिया। आपके अनुग्रह से अब मुझे कुछ न चाहिए।' ऐसे विमल विज्ञान और वैराग्य की उच्च भूमि पर पहुँचे हुए साधक को भगवान् राम ने विमल भक्ति का वरदान दिया—'बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमलु बरु देइ *।'

गोस्वामी जी ने देवकोटि की शक्तियों मे भी विमल विज्ञान और वैराग्य का अस्तित्व दिखाया है।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड सोरठा १०० और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १०१ के पहले। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १०१ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १०२।

विमल विज्ञान और वैराग्य के इस प्रकरण के भीतर देवकोटि की शक्तियों मे भी इसी विमल विज्ञान और वैराग्य की चेतना का दर्शन गोस्वामी जी ने कराया है। केवट के पार उतार देने के बाद सीता देव नदी से अपने पति और देवर की मगलकामना करती है तब गगा के विमल जल के भीतर से विमल विज्ञानपूर्ण अभेददर्शन से युक्त शब्द सुनाई पडते है—"सुनु रघुबीर प्रिया वैदेही, तव प्रभाउ जग विदित न केही। लोकप होहि बिलोकत तोरे, तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरें‡।" यहाँ सीता को गगा, आदि शक्ति जगदम्बा की तरह देखती है—वह शक्ति जिसकी दृष्टि के इशारे से देवता उत्पन्न होते है और सिद्धियाँ जिसके सम्मुख हाथ जोड़े खडी रहती है। इसके बाद गगा के हृदय के भीतर के विमल वैराग्य की स्थिति का चित्र गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—"तुम्ह जो हमहि बडि बिनय सुनाई, कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई†।" पवित्र वैराग्य के भीतर जो निरभिमानता होती है, वही गोस्वामी जी ने गगा के इन शब्दों मे व्यक्त की है।

गुह मे भी इसी सहज स्नेह तथा विमल विज्ञान और वैराग्य का चित्रण किया गया है। यहाँ से आगे बढने के समय गुह भगवान् राम का साथ नही छोडता। वह कहता है आपको वन पथ दिखाऊँगा और जिस वन मे आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी बना कर फिर आपकी जैसी आज्ञा होगी, करूँगा। यह भी विमल विज्ञान के कारण नि.स्वार्थ सहजस्नेह प्राप्त भक्त है। जब राम ने घर लौटने को कहा था, तब 'सुनत सूख मुख भा उर दाहू $' उसकी दशा शोचनीय हो गयी थी। राम ने इसे जब साथ ले लिया तब गुह हृदय से प्रसन्न हो गया—"सहज सनेहु राम लखि तासू, सग लीन्ह गुह हृदय हुलासू *।"

तीर्थराज प्रयाग मे विमल विज्ञान और वैराग्य के सब चिह्न गोस्वामी जी ने दिखाये है।

शृंगवेरपुर के बाद भगवान् राम, सीता, लक्ष्मण और गुह के साथ प्रयाग आये। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य वाले शील के जो-जो लक्षण होते है, वे सब भगवान् ने तीर्थराज मे देखे है। तीर्थों के राजा के राजचिह्नों मे वही सब आदर्श दिखाई पडते है। तुलसी के राम ने सत्य को उसके मत्री की तरह, श्रद्धा को उसकी पत्नी की तरह और दुनिया के रक्षक नारायण को उसके मित्र की तरह देखा है। सत्य, श्रद्धा और जगत् की रक्षा विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के अवश्यंभावी परिणाम है। राम ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से तीर्थों के उस राजा का कोष भरा हुआ देखा है। उसके देश-प्रदेश पावन और सुन्दर है। उसका क्षेत्र अगम्य तथा सुन्दर, दुर्ग बड़ा दुर्गम है। प्रतिपक्षी स्वप्न मे भी उसमे प्रवेश करने की कल्पना नहीं कर सकता। सब प्रभावशाली तीर्थ उसकी सेना के सैनिक है। पापों की सेना को नष्ट करने मे वे बड़े दक्ष है। सगम उसका सुन्दर सिहासन है। अक्षय वट उसका छत्र तथा गगा-यमुना की तरगें चँवर है। सुकृती, साधु और पवित्र

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १०२ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १०३ के बाद। * वही।

लोग उसकी सेवा मे लगे रहते हैं। वेद और पुराण उसका पवित्र यशोगान करने वाले बन्दीजन है‡।

इस तरह विमल विज्ञान की आँखों से भारतीय धर्म-परम्परा ने एक विराट् पवित्रता का दर्शन प्रयाग मे किया है। उसी पवित्रता की ओर तुलसी मे बडा ही आकर्षक झुकाव दिखाई पडता है। विमल विज्ञान की आँखे ही पवित्रता का दर्शन कर पाती है। इसीलिए रामायण के जितने पात्र विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का अनुभव कर चुके हैं वे मर्यादा पुरुषोतम को देख कर उनके सामने श्रद्धा से झुक जाते है। ऐसे ही लोगों में से भरद्वाजऋषि भी है। मर्यादा पुरुषोतम को देख कर उन्हें इतना अनिर्वचनीय आनन्द हुआ जिसकी सीमा नही है। उन्हे ऐसी प्रतीति हुई कि ब्रह्मानन्द की राशि ही प्राप्त हुई है†।

गोस्वामी जी के अनुसार भक्ति के आवश्यक उपादान, पवित्र दैन्य और पवित्र नम्रता, विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से ही सम्भव है।

अपनी शक्तियों के अहकारात्मक अनुभव के प्रति मनुष्य के मन मे जब विमल वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, तब उनमे पवित्र दीनता और पवित्र नम्रता का उदय होता है। इसी नम्रता के भीतर उपासक जीवात्मा को अपनी कमी तथा परमात्मा की अनत शक्तियो का साक्षात्कार होता है। परमात्मा की इस अनत पवित्रता का अनुभव करके साधक जीवात्मा के भीतर यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है कि जीवों के भीतर पवित्रता की जो अनन श्रेणियाँ दिखाई पड़ती है, उन्हे भी पवित्रता का प्रकाश, अनत पवित्रता के केन्द्र परमात्मा से ही मिल रहा है। वही अनत सब जगह व्याप्त है। इस पवित्रता की व्यापकता का वह जब हृदय से अनुभव करने लगता है तब उसे ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने लगती है। भरद्वाज ने उस परम पवित्र के नररूप को जब अपने सम्मुख पाया तब उसे हृदय से लगा कर वे ब्रह्मानन्द की अपार राशि में निमग्न हो गये। अहकार से मुक्त उनके हृदय मे, विमल वैराग्य-जन्य विमल विनम्रता ने राम के भीतर को विराट् पवित्रता को स्वीकार करने के लिए अनत स्थान बना दिया था। इस अनत स्थान के बिना ब्रह्मानन्द की अनुभूति नही होती। भरद्वाज ने अपनी यह साधना पूरी कर ली थी, इसीलिए मर्यादा की उच्चतम भूमि का राम मे दर्शन करके वे ब्रह्मानन्द मे निमग्न हो गये। उन्हे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ। साधना की इस पूर्णता का स्पष्ट इगित गोस्वामी जी ने दिया है—"लोचनगोचर सुकृतफल, मनहु किये बिधि आनि $" मानो ब्रह्मा ने सुकृतों के फल को ला कर नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष रख दिया। यहाँ सुकृतों के फल का अभिप्राय यही है कि सुकृत मनुष्य के भीतर निरभिमानता और दुष्कृत अभिमान पैदा करते है। दुष्कृती अपने को ही देखता है। सुकृती की आँखें विश्व भर के मगल की योजना पर लगी रहती है।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १०५ और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १०६ के ऊपर वाली पक्ति। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १०६।

इसीलिए वह अपने स्वार्थ से मुक्ति पा कर अभिमान-मुक्त हो जाता है। स्वार्थ ही अभिमान का उद्‌गम स्थान है। स्वार्थ भी अपने को देखता है और अभिमान भी स्वार्थो के कारण ही होता है। अपने स्वार्थ की वस्तुओं का सग्रह करके मनुष्य के भीतर जब अपनी शक्तियो का लोभात्मक गौरव पैदा होता है उसी समय वह अहकार को अनुभव करता है। इस अहकार मे वह अपनी सफलता को दूसरों की सफलता से श्रेष्ठ अनुभव करता हुआ फूल उठता है। वह यह अनुभव करता है कि जो काम मै कर सकता हूँ वह दूसरा नही कर सकता। 'मैं' पर लोभात्मक गौरव से टिकने वाली और उसी तक सीमित रह जाने वाली दृष्टि अहकार की होती है। भरद्वाज ऋषि मे सुकृतों के कारण विमल विनम्रता उत्पन्न हो गयी थी। इसीलिए उनकी दृष्टि अभिमान की अपवित्रता से मुक्त हो कर पवित्र हो गयी थी। और फलत उन्होंने पुरुषोत्तम के भीतर की मर्यादा का अनुभव करके ब्रह्मानन्द का आस्वाद पा लिया। अहकार के कारण यदि उनकी दृष्टि 'मैं' का अतिक्रमण न कर सकी होती तो यह कभी सम्भव न होता।

भरद्वाज जी के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की व्यापक भावना का साक्षात्कार गोस्वामी जी ने बडी सतर्कता और विनम्र निष्ठा के साथ किया है। निरन्तर रहने वाले सुकृतो की एक विकसित सूची, बडी विनम्रता से, भरद्वाज जी से उन्होने प्रस्तुत करायी है। राम से प्रार्थना करते हुए मुनि कहते है—

आजु सुफल तपु, तीरथ, त्यागू, आजु सुफल जपु, जोग, बिरागू।
सुफल सकल-सुभ-साधन-साजू, राम तुम्हहि अवलोकत आजू ‡।

तप, तीर्थ, त्याग, जप, योग और विराग ये सब पवित्रता की अनतता का दर्शन करने के लिए भरद्वाज जी सज्जित कर रहे थे। इसीलिए वे कहते है कि आपको देखते ही सकल शुभसाधनों की हमारी सज्जा सफल हो गयी। अनत पवित्रता को देख कर ऐसा ही अनुभव होता है। इसके बाद भरद्वाज जी कहते है कि लाभ की सीमा और सुख की सीमा दो वस्तुएँ नही। एक ही के दो नाम है। जितना बड़ा लाभ होता है उतना ही बड़ा सुख होता है—"तुम्हरे दरस आस सब पूजी †।" आपके भीतर की अनत पवित्रता के दर्शन के लाभ से हमे अनत आनन्द का अनुभव हुआ है। इस अनत को कोई आशा कैसे लाँघ सकती है। हमारी सब आशाएँ पूरी हो गयी। आपकी कृपा से हम पूर्णकाम (आप्तकाम) हो गये। इस अनत आनन्द को भरद्वाज जी अपने भीतर सदा के लिए स्थिर कर लेना चाहते है। यह आनन्द सहजस्नेह को अपने साथ लगातार स्थिर रख कर ही स्थिर होता है। अहैतुकी भक्ति (सहजस्नेह) का वरदान भरद्वाज जी ने इसीलिए राम से माँगा—"अब करि कृपा देहु बरु एहू, निज-पद-सरसिज सहज सनेहू $।" पवित्रता के केन्द्र के चरणों के लिए यदि सहज स्नेह हो तो हृदय का आनन्द स्थिर हो जाता है। जब भक्ति सहैतुकी हो जाती है तब मनुष्य के भीतर परमात्मा की तरफ़ झुकाव स्वार्थ से होता है। स्वार्थ की सिद्धि हो जाने पर लोभजन्य आनन्द समाप्त हो जाता है और भक्ति भी समाप्त हो जाती है। पर सहज स्नेह कुछ नही चाहता, वह मनुष्य का स्वभाव बन जाता है।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १०६ के बाद। † वही। $ वही।

उसमें उत्पन्न हुआ स्नेह अपना शाश्वत रूप पा लेता है। उसका आनन्द अखड, अभेद्य, अच्छेद्य और अनत हो जाता है।

इसी सिद्धान्त का विवेचन करने के लिए भरद्वाज जी ने राम से कहा है—

करम बचन मनु छाडि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहु नहि किये कोटि उपचार‡।

मन, वाणी और कर्म की निश्छलता, स्वार्थहीनता की पवित्र स्थिति है। इस स्थिति पर पहुँच कर जो सहज स्नेह प्राप्त होता है वही ब्रह्मानन्द का अनत सुख है। तुलसी-साहित्य के भीतर इस सहज स्नेह का बडा उच्च स्थान है। इसकी परिणति की प्राप्ति ही तुलसी-साहित्य का मुख्य लक्ष्य है।

इस पवित्र स्नेह का ऋषि मे दर्शन करके अनत (पवित्र राम) का हृदय भी उनके सामने झुक जाता है। 'सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने, भाव भगति आनन्द अघाने†' के द्वारा गोस्वामी जी ने परमात्मा की भाववश्यता का रूप प्रस्तुत किया है। उनके राम ऋषि से कहने लगते है—"सो बड सो सब-गुन-गन-गेहू, जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू। मुनि रघुबीर परस्पर नवही, बचन अगोचर सुख अनुभवही$।" पवित्र व्यक्ति ही पवित्रता का निर्णायक हो सकता है। इसीलिए भगवान् राम ने भरद्वाज के लिए यह बड़ी उचित बात कही है कि आप जिसे आदर देगे वही गुणों का निवासभवन हो सकता है। ऋषि और राम के भीतर की दो पवित्रताएँ एक हो जाने के लिए परस्पर आकृष्ट हुईं और दो उज्ज्वल शील वाले व्यक्तियों की भेंट हो जाने से अनिवर्चनीय आनन्द की अनुभूति होती ही है।

तुलसी का सान्त और अनत ब्रह्म राम, विमल विज्ञान का एक आदर्श उदाहरण है। राम-चरित-मानस भर मे गोस्वामी जी ने अवतारी राम को दो भूमियों पर स्थित रखा है। अद्वैतभूमि पर और मायाविशिष्ट भूमि पर। अद्वैत भूमि पर वे अनत रहते है और मायाविशिष्ट भूमि पर वे सान्त प्रतीत होते है। यह भूमि पुरुषोतम भूमि है। आदर्श मानव की यह भूमि है। इस भूमि पर राम स्वय रह कर आदर्श नर के समान विमल विज्ञान और विमल वैराग्यपूर्ण आचरण करते रहते है। वे मुनियों को प्रणाम करते है और मुनि लोग अपने गुरुत्व और वृद्धत्व की भूमि से उन्हे आशीर्वाद देते है। पर यही मुनि लोग उन्हे अनत परमात्मा मान कर नमस्कार करते है, उनकी प्रार्थना करते है और उनसे उनकी चरणो की भक्ति माँगते है।

रामब्रह्म की सान्तता मे भी विमल विज्ञान की दृष्टि अनतता का दर्शन करती है। इस दृष्टि से पवित्र शील के अनत सौन्दर्य ने जहाँ-जहाँ अपना पैर रखा, वह-वह स्थान अनत सौन्दर्य और पवित्रता से इतना व्याप्त हो गया कि आज तक भी मनुष्य की पीढ़ियाँ उसे नही भूलती; उस पवित्रता का दर्शन करने के लिए उसकी ओर आकृष्ट होती चली जा रही है। 'जो नगर और गाँव राम के मार्ग में बसे थे उन्हें देख कर देवताओ

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १०७ और उसके बाद। † वही। $ वही।

और नागों के नगर भी अपने को हीन समझते थे। जहाँ-जहाँ राम के पैर पडे, उन-उन स्थानो की शोभा इन्द्रपुरी से भी अधिक हो गयी। राम के मार्ग के निकट निवास करने वाले पुण्यवान लोगो की प्रशसा स्वर्ग के निवासी तक करते है। जिस सरोवर और नदी मे राम स्नान करते थे वे देव नदी और देव सरोवर से भी प्रशसा प्राप्त करते थे। जिस वृक्ष के नीचे भगवान् राम बैठते थे उसका यशोगान कल्पतरु भी करता था। राम के चरणो की धूल का स्पर्श पा कर पृथ्वी अपने को बड़ी भाग्यवाली समझती थी ‡।"

राम के हृदय का यह अनत शील उनके रूप पर भी अनत सौन्दर्य बन कर छा गया था। इसीलिए शील और सौन्दर्य दोनो मिल कर बिना किसी अपवाद के प्रत्येक नर-नारी बालक-वृद्ध को अपने केन्द्र राम, लक्ष्मण और सीता की ओर आकृष्ट कर लेते थे। लोगों को ऐसा प्रतीत होता था कि करोडो कामदेव उस सौन्दर्य को देख कर लज्जित हो जाएँगे। इस त्रिमूर्ति का पवित्र आकर्षण उनके लिए इतना अधिक शक्तिशाली हो गया था कि कुछ क्षणो के ही परिचय के बाद जब इन पथिकों के वियोग का समय आता था तब उन्हे ऐसा अनुभव होता था "बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने †" मानो दी हुई सम्पत्ति को विधाता छीने ले रहा हो। विमल विज्ञान और वैराग्य के आलोक मे उत्पन्न हुए राम, सीता और लक्ष्मण के विश्वप्रेम मे इतना आकर्षण था कि ये लोग प्रत्येक नर-नारी को अलौकिक-से लगते थे। इसीलिए तुलसी के कुछ नर-नारी राम, सीता और लक्ष्मण को देख कर यही कहते थे—'ये स्वाभाविक सौन्दर्य वाले लोग स्वय उत्पन्न हुए है। ये ब्रह्मा के बनाये हुए नही है। जहाँ तक वेदों ने ब्रह्मा की सृष्टि बतायी है, कान, आँख और मन जितने जगत् का साक्षात्कार कर सकते है उन चौदहो भुवनों को खोज कर देखो। ऐसी स्त्री भी कहाँ सुनी या देखी गयी है। इन्हे देख कर ब्रह्मा को इनके समान सौन्दर्य की सृष्टि करने की इच्छा हुई। उसने प्रयत्न प्रारम्भ किया, बहुत परिश्रम किया पर इनसे अधिक या समान सौन्दर्य की कल्पना ही वह न कर सका। उसी ईर्ष्या से इन सुन्दर प्राणियो को वन मे ला कर उसने छिपा दिया है $।' कुछ कहते थे—'हम अपने को परम धन्य मानते है और वे सब लोग पुण्य के कोष है जो इनको देख रहे है, जिन्होंने इन्हे देखा है और जो आगे देखने वाले है। ये सुकुमार शरीर वाले इस अगम मार्ग पर कैसे चलेंगे *।' यह सोच कर उनकी आँखों मे अश्रु भर जाता था। नारियाँ कहती थी—'यदि ब्रह्मा हमे वरदान दे तो हम तो यही माँगें कि हमे इन मूर्तियों को अपनी आँखो मे रख लेने की शक्ति मिले §।'

उज्ज्वल विश्वप्रेम के निश्छल आलोक का यही प्रभाव होता है। उसे प्रत्यक्ष करके जगत् पागल हो जाता है। विराट् शील के ये सौन्दर्यमय पात्र इतने आकर्षक थे कि जिन्होंने सीता के साथ राम-लक्ष्मण को देख लिया उनका दुर्गम भव-पथ बिना श्रम आनन्दमय

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १११ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ११७ के पहले। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ११८ के बाद और दोहा ११९। * वही। § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ११९ के बाद।

हो गया—"जिन्ह-जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ। भव-मगु-अगमु-अनदु तेइ बिनु स्रम रहे सिराइ ‡।" सीताराम और लक्ष्मण के इस त्यागमय पथिक रूप को गोस्वामी जी ने इतना पवित्र और शक्तिमय माना है कि उनका यह निश्चय है कि इस परम पवित्र रूप के ध्यान से मनुष्य स्वर्ग के उस पथ को प्राप्त कर सकता है जो मुनियो के लिए भी दुर्लभ है। यह ध्यान और कोई दूसरी वस्तु नही, विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का ही पवित्र ध्यान है जो राम धाम (अद्वैत भूमि की अभेदानुभूति) तक व्यक्ति को पहुँचा देता है—"अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ. बसहि लषन सिय राम बटाऊ। रामधाम-पथु पाइहि सोई, जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई †।"

अवतार के सान्त और अनन्त रूपों से सम्बद्ध तुलसी के वाल्मीकि का विमल विज्ञान और वैराग्य भी हृदय और मस्तिष्क का शृगार बनने के योग्य भाव और विचार की बडी सुन्दर सामग्री प्रस्तुत करता है। अवतार के जिन दो पक्षों की चर्चा पहले की गयी है, उनका बड़ा सुन्दर चित्र इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकरण मे वाल्मीकि आश्रम मे गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है। इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने अवतार के सान्त मानव पक्ष और अनन्त परमात्म पक्ष, दोनों का पूर्ण चित्र अंकित किया है, "मुनि कहु राम दडवत कीन्हा, आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा $।"

यहाँ सान्त मर्यादा पुरुषोतम प्रणाम करते है और विप्र होने के नाते वाल्मीकि उन्हे आशीर्वाद देते है और तीनो अतिथियो का आदर सत्कार करते हैं। इसके बाद जब राम उनसे अपने निवास-योग्य स्थान पूछते है तब अवतार के विराट् परमात्म रूप का बडी सरल पद्धति से मुनि विवेचन करते है। वे कहते है—"वेद की मर्यादाओं का पालन करने वाले आप जगदीश राम है। जानकी आपकी माया है *।" विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म माया के साथ ही रहता है। इसीलिए सीता को गोस्वामी जी के वाल्मीकि ने रामब्रह्म की माया कहा है। इसके बाद वे कहते है—'आपकी यह माया आपका रुख पा कर जगत् की सृष्टि करती है, उसका पालन करती है तथा उसका महार भी करती है। जो सहस्त्रशीर्ष, सर्पराज, चराचर के स्वामी वासुकी पृथ्वी को अपने सिर पर उठाये हुए है वही आपका स्वरूप, लक्ष्मण के रूप मे अवतीर्ण हुआ है। देवताओं के कार्य के लिए राजा का रूप धारण करके आप लोग दुष्ट निशाचरों की सेनाओं को समाप्त कर देने के लिए आये हुए है। हे राम, आपके स्वरूप को वाणी नही पा सकती, बुद्धि उसे अपने चिन्तन से नही बाँध सकती। वह अविगत, अकथ और अपार है। वेद भी उसे नेति (न इति) कह कर अनन्त ही बताते है। ससार दृश्य है, तुम उसके द्रष्टा हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव को तुम्ही नचाते रहते हो। जब वे ही तुम्हारे मर्म को नही जानते तो और दूसरा कौन जान सकता है। इस रहस्य को वही जानता है जिसके सामने तुम अपना रहस्य प्रकट करना चाहते हो।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १२२। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १२२ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १२३ के बाद। * रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, सोरठा १२५ के पहले का छद।

तुम्हे जान कर वह तुम्हारा ही रूप हो जाता है‡।' गोस्वामी जी के वाल्मीकि का यह कथन उपनिषद् के "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति†।" 'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है', वाक्य का प्रतिरूप ही है। वे राम से पुनः कहना आरभ करते है—'हे भक्तों के हृदय को चन्दन की शीतलता प्रदान करने वाले रघुनन्दन भक्त भी तुम्हे तुम्हारी कृपा ही से जानते है। तुम्हारा रूप चित् (चेतना) और आनन्द का सम्पूर्ण अस्तित्व अपने भीतर व्याप्त रखता है। उसे विकार विकृत नही कर सकते। तुम्हारे इस रहस्य को अनन्तदर्शी अधिकारी साधक ही समझ पाते है। देवताओं के कार्य के लिए आपने मानव शरीर धारण किया है और साधारण राजा की तरह वाणी और क्रिया का आप व्यवहार करते है, (कहते है और करते है)। तुम्हारे चरित को देख और सुन कर जड मानव को अज्ञान अधिक सताने लगता है, वह भ्रम मे पड़ जाता है, पर चिन्तनशील मनीषी को उसी से सन्तोष की सिद्धि प्राप्त होती है। तुम जो कहते हो उसे सत्य करके दिखा देते हो। आपने जो पूछा कि मै कहाँ रहूँ तो मुझे यह पूछने मे सकोच ही हो रहा है कि मुझे वह स्थान बताइए जहाँ आप न हो तो वही स्थान मै आपको रहने के लिए बता दूँगा$।' गोस्वामी जी के वाल्मीकि का यह कथन उपनिषद् वाक्य "ईशावास्यमिद सर्व*" 'यह सम्पूर्ण विश्व ईश का आवास्य (निवास-स्थान) है' की प्रतिच्छाया ही है।

विमल विज्ञान की विशिष्टाद्वैती चिन्तन-पद्धति के अनुसार उपर्युक्त चितनपूर्ण उत्तर देने के बाद ऋषि वाल्मीकि भावात्मक रसमय उत्तर देते है। वे कहते है, 'हे राम अब आप सुनिए! जहाँ आप सीता और लक्ष्मण के साथ निवास करे। जिनके कान के समुद्र आपकी कथा की नदियो से निरन्तर भरे जाने पर भी पूरे नही होते, उन्ही के हृदय मे आपके निवास के लिए सुन्दर घर है। जिन्होंने अपनी आँखों को चातक बना रखा है, जिनके लोचन आपके दर्शन के बादल के लिए निरन्तर अभिषित रहते है, जो बडी-बडी नदियो, नदों और सरोवरो की वृहत् जल-राशि का निरादर करके आपके रूप के जलबिन्दु से सुखी होते है, उनके सुखदायक हृदय-सदनों में आप सीता और लक्ष्मण के साथ निवास करे। जिसकी जिह्वा आपके यशरूपी विमल मानस के लिए हसिनी बन जाती है और आपके गुणों के मोती चुनती रहती है, आप उसी के मन मे निवास करे। जिसकी नासिका आपके प्रसाद की पवित्र और सुन्दर सुगन्ध, नित्य बडे सम्मान की भावना से प्राप्त करती रहती है, जो आपको अर्पित करके भोजन करते है, आपके प्रसाद के रूप मे मिले हुए वस्त्र और आभूषणो को धारण करते है, देवता, गुरु और ब्राह्मण को देख कर जो विशेष प्रेम और नम्रता से नतमस्तक हो जाते है, जिसके हाथ नित्य आपके चरणों की पूजा करते है, जिसके हृदय को आपके आश्रय को छोड़ दूसरा कोई सहारा नही दिखाई पड़ता, जिसके चरण आपके तीर्थो तक चल कर जाते है, उनके हृदय मे आप निवास करे। जो लोग प्रति

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा १२५ के बाद। † मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक ३, खण्ड २, मत्र ९। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १२६ और उसके पहले। * ईशोपनिषद्, मंत्र १।

दिन आपके मन्त्रराज का जप करते है, परिवार-सहित आपकी पूजा करते हैं, कई प्रकार से तर्पण और हवन करते है, ब्राह्मण को भोजन करा के कई तरह के दान देते है, आपसे अधिक अपने मन मे गुरु को स्थान देते है और सब भावों से सम्मानपूर्वक उनकी सेवा करते है और सब के परिणामस्वरूप आपके चरणों का प्रेम माँगते है, उनके मनमन्दिर मे आप सीता के साथ निवास करे ‡ ।' यहाँ परमात्मा से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान गुरु को दे कर गोस्वामी जी के वाल्मीकि का उपर्युक्त वाक्य कबीर के 'बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दीन दिखाय' से साम्य रखता है।

उपर्युक्त भावधारा को आगे बढाते हुए गोस्वामी जी के वाल्मीकि कहते हैं—'जिनके मन में काम, क्रोध, मद, मान, लोभ, क्षोभ, राग और द्रोह नही होते, जिनके हृदय मे कपट, दभ और माया नही होती, उनके हृदय मे आप निवास करें। जो सब के प्रिय और सब के हितेच्छु होते है, जिनके लिए सुख और दुःख, प्रशसा और गाली समान होते है, जो विचारपूर्वक सत्य और प्रिय बात कहते है, जो सोते-जागते आपकी ही शरण में रहते है, आपको छोड़ कर जिनके लिए दूसरा मार्ग नही रहता, उन्ही के मन मे आप निवास करें। जो दूसरे की पत्नी को माता के समान समझते है, दूसरे के धन को महा-विष मानते है, दूसरे की सम्पत्ति को देख कर प्रसन्न होते है, दूसरे की विपत्ति से बहुत दुखित होते है और जिन्हे आप प्राणों के समान प्रिय है, उन्ही के मन आपके लिए पवित्र निवास-गृह है। जिनके लिए स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब आप ही है, उनके मनमन्दिर मे आप दोनों भाई सीता के साथ निवास करें † ।'

भक्ति के मर्म को सरसता प्रदान करते हुए गोस्वामी जी के वाल्मीकि अपनी इस भावधारा के उपसहार में कहते है—'जिनकी दृष्टि सब के दुर्गुणों को छोड कर गुणों पर ही पड़ती है, जो ब्राह्मण और गाय के लिए अपने को सकट मे डाल देते हैं, जिन आदर्श-प्रिय व्यक्तियो से जगत् के आदर्श का पथ बनता है, उन्ही का पवित्र मन आपका घर है। जो अपने दोषो और आपके गुणों को समझता रहता है, जिसे हर तरह से आपका ही भरोसा रहता है, जिसे रामभक्त प्रिय लगते हैं, उनके हृदय मे आप सीता के साथ निवास कीजिए। जो जाति-पाँति, धन, धर्म और बडप्पन को छोड कर आप ही मे मग्न रहता है आप उसी के हृदय मे निवास करे। जिनके लिए स्वर्ग, नरक और मुक्ति सब समान होते है और चारों तरफ जो आप ही को धनुष-बाण लिये हुए देखता रहता है, जो मन, वाणी और कर्म से आप का दास है, आप उसके हृदय में अपना निवास बना ले। जिसे कभी कोई वस्तु नही चाहिए और आपके लिए जिसके हृदय में सहज-स्नेह होता है, आप उसके हृदय में निरन्तर निवास करें। उसका हृदय आपका निजी घर है $ ।"

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १२६ के बाद से दोहा १२८ तक। † रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा १२८ के बाद से दोहा १२९ तक। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १२९ के बाद से दोहा १३० तक।

इन सरस कोमल प्रस्तावों के बाद वाल्मीकि ने विराट् के पवित्र अग चित्रकूट को जहाँ मन्दाकिनी नदी और अत्रि आदि ऋषियो के तपोवन है, राम के लिए उचित निवास-स्थल बता दिया।

विमल विज्ञान और वैराग्य का शक्ति, शील और सौन्दर्य से भी अभिन्न सम्बन्ध होता है। अनत शील के साथ जो अनत सौन्दर्य आता है उसे गोस्वामी जी अनत शील का शाश्वत सगुण रूप मानते हैं। इसलिए उन्हे यह अनत सौन्दर्य अनत शील के परिणाम की तरह दिखाई पडता है। उनकी दृष्टि मे अनत सौन्दर्य उतना ही पवित्र और पूज्य है जितना अनत शील। वे दोनों मे अभेद समवाय सम्बन्ध मानते है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की पवित्र अन्तर्दृष्टि इस पवित्र शील और सौन्दर्य का दर्शन करती है। गोस्वामी जी के अनुसार तपस्या का परिणाम पवित्र शील तो है ही, पर पवित्र सौन्दर्य और पवित्र शक्ति भी उसका परिणाम है। तपस्या के परिणामस्वरूप जब अनत शील दर्शन देता है, तब अनत सौन्दर्य और अनत शक्ति को ही वह अपना सहारा बनाता है। इसीलिए तप के ये सब परिणाम पूज्य है। इसीलिए चित्रकूट के ऋषियो का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते है—"मुनि रघुबरहि लाइ उर लेही। सुफल होन हित आसिप देही। सिय-सौमित्रि-राम-छबि देखहि। साधन सकल सफल करि लेखहि‡।" अनत शील के परिणाम को अनत सौन्दर्य के रूप मे इस त्रिमूर्ति के भीतर देख कर ऋषियों को यही प्रतीत होता है कि उनके सकल साधन सफल हो गये। अनत शील बिना अनत सौन्दर्य का सहारा लिये प्रत्यक्ष गोचर नही हो सकता, इसीलिए यह अनत सौन्दर्य उतना ही पूज्य हो जाता है जितना अनत शील। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की पवित्र दृष्टि से शील और सौन्दर्य की इस झाँकी का दर्शन करके साधक स्वार्थमय सासारिक क्षुद्र प्रलोभनों को इस अनत के चरणो पर निछावर कर देता है। यह दर्शन स्वय विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का कारण बन जाता है। इसमे इतनी शक्ति और आकर्षण होता है कि तपस्वियों के अतिरिक्त भी चित्रकूट के साधारण कोल, किरात मन की उसी पवित्र भूमि पर पहुँच जाते है, जिस पर तपस्वी इतनी श्रममयी साधना के बाद पहुँचता है। इस शील और सौन्दर्य के सम्मुख मानव क्या पशु भी सहज बैर तक को छोड देते है—"करि केहरि कपि कोल कुरगा। बिगत बैर बिचरहि सब सगा†।"

कोल, किरातों की तरफ लक्ष्य करके गोस्वामी जी कहते है—"रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा$।" विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का धाम राम केवल निश्छल प्रेममय शील चाहता है। वह जाति, वर्ग और वर्ण की भावना से ऊपर उठ कर केवल निश्छल प्रेम को ही अपनाता है—"बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुनाऐन। बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन*।" परमात्मा प्रेम को, अधिक

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १३३ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १३६ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १३५ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १३५।

प्रेम से स्वीकार करता है। अनत शील के सौन्दर्य का प्रभाव तुलसी के भीतर इतना गहरा बैठा था कि उसका व्यापक प्रभाव उन्हे स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था, 'नयनवन्त रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनमफल होहि बिसोकी ‡' इत्यादि वाक्य इस बात के साक्षी है। इस प्रभाव से गोस्वामी जी ने जड-चेतन सबको प्रभावित दिखाया है—"परसि चरनरज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी †।" यहाँ जड भी आनन्दमग्न हो कर परमपद का अधिकारी दिखाया गया है। विमल विज्ञान की दृष्टि जड-चेतन सब के भीतर अनत के प्रति पावन प्रेम देखती है। वह मगलमय और पावन आनन्द का समुद्र जहाँ निवास करता है वह स्थान मगलमय और आनन्दपूर्ण हो जाता है—"सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मंगलमय अति-पावन-पावन। महिमा कहिय कवन विधि तासू। सुखसागर जह कीन्ह निवासू $।"

विमल विज्ञान और वैराग्य पर आधारित उत्सर्गमय प्रेम के भीतर माधुर्य का अनत पारावार निवास करता है। इस वानप्रस्थ आश्रम मे प्रेम की बड़ी मनोहर झाँकी गोस्वामी जी ने दिखायी है। विमल विज्ञान और वैराग्य की बडी पवित्र मनोहरता का दर्शन उन्होने सीता के तपोमय प्रेम मे देखा है। प्रिय के चरणों की सेवा मे सीता ने अपने को ऐसा खो दिया है कि उन्हे अयोध्या के सब सुख भूल गये। त्यागमय प्रेम की मधुरता मे वह इतनी मग्न हो गयी है कि वन ही उन्हे सहस्रों अयोध्याओ के समान सुखद मालूम पडता है। कन्द मूल फल का भोजन उन्हें अमृत के भोजन की तरह मधुर प्रतीत होता है। विषयों के विलास से सीता अस्पृष्ट हो गयी थी। इस अवस्था का चित्रण करने के लिए गोस्वामी जी कहते है—'जिसके इगित मात्र से देवता जन्म लेते है, उसे क्या विषयों का विलास अपनी तरफ़ खीच सकता है ? राम का स्मरण करके जब मनुष्य विषयों के विलासों को तृण की तरह छोड देता है, तब राम की प्रिया, जगदम्बा सीता के लिए यह आश्चर्य की बात नही है *।'

लक्ष्मण ने भी त्याग की इसी ऊँचाई पर पहुँच कर अपने को राम की सेवा मे इतना लीन कर लिया है कि उन्हें अयोध्या दिखाई ही नही पडती। पत्नी, भाई और माता सबको वे भूल गये है। हाँ, मर्यादा पुरुषोत्तम को जब अवध का स्मरण हो आता है तब मातृभूमि का प्रेम उनकी आँखो मे आँसू बन कर सज जाता है। माता, पिता, परिजन, भाई तथा भरत के स्नेह का स्मरण करके कृपालु राम उन भक्तों के वियोग से दुःखी होते हुए समय की आवश्यकता के कारण धैर्य से अपने को सँभाले रहते है। उनको दुःखी देख कर उनके दुःख के कारण, उनकी अवस्था पर ध्यान दे कर सीता और लक्ष्मण भी दुःखी होते है, पर भगवान् राम धैर्य से उन्हे सँभाल लेते है। अपने कष्ट को उन पर दुःख की छाया नही छोडने देते। पलके जिस तरह पुतलियो की रक्षा करती हैं, उसी तरह राम, सीता और लक्ष्मण की रक्षा करते थे और सीता तथा लक्ष्मण भगवान् राम की सेवा इतनी

‡ रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा १३७ के बाद। † वही। $ वही। * राम-चरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १३९ और उसके पहले।

लगन मे करते थे, जितनी मोहमय तन्मयता से अविवेकी पुरुष शरीर की रक्षा करता है‡। विमल विज्ञान और वैराग्य के लिए गोस्वामी जी ने यहाँ भी सकेत दे दिया है। जिस पुरुष मे शरीर का मोह नही रह जाता वही विमल विज्ञान और वैराग्य-सम्पन्न कहा जा सकता है।

विमल विज्ञान और वैराग्य के इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने अनत शील के केन्द्र राम के प्रति ऐमे अनत स्नेह की मधुरता सुमन्त और घोडो के हृदयो मे सँजो कर रख दी है कि वह केवल अनुभव ही करते बनता है। जब तक निषाद लौट कर नही आये, घोडे और सुमन्त वही छटपटाते पडे रहे। उन्होंने आ कर किसी प्रकार उन्हे सान्त्वना दी और अपने चार विश्वस्त सेवकों के साथ उन्होंने सुमन्त और रथ को अयोध्या भेजा।

अप्रस्तुत विधान के द्वारा भी विमल विज्ञान का बडा प्रभावशाली सकेत गोस्वामी जी ने दिया है।

अलकारों की योजना की पद्धति से भी गोस्वामी जी ने इस सोपान में विमल विज्ञान का सकेत बार-बार दिया है। अयोध्या लौटने के समय सुमन्त के दयनीय संताप का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—'विवेकी, वेदज्ञ, आदरणीय, पवित्र शील और उच्च जाति वाला ब्राह्मण जिस तरह धोखे में मदिरा पी लेने पर ग्लानि, पश्चात्ताप और सताप से भर जाता है, उसी तरह के पश्चात्ताप की अवस्था सुमन्त की थी†।' विमल विज्ञान से पवित्र मन के भीतर ही पवित्र स्नेह का वियोग पक्ष इतना मधुर होता है।

फिर गोस्वामी जी ने पतिव्रता स्त्री का चित्र प्रस्तुत करते हुए सुमन्त की अवस्था से उसकी तुलना इस प्रकार की है—'जिस तरह साध्वी, ज्ञानवती, कर्म, मन और वाणी से पति को देवता मानने वाली कुलीन नारी, प्रारब्धवश पति से अलग हो कर दारुण वियोग के ताप से जलती रहती है, उसी तरह के सताप से सुमन्त का हृदय जल रहा था$।' इस तरह का पवित्र सताप विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-पूर्ण हृदय के भीतर ही संभव है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम मे इतना रूप, गुण, शील और स्वभाव था कि उनके अयोध्या से चले जाने पर राजा दशरथ उसी ध्यान मे मग्न हो कर अनन्त समाधि मे विलीन हो गये।

राजा जब राम के वियोग मे व्याकुल हुए, तब सुमन्त ने धर्य धारण कर के बड़े विमल विज्ञान और वैराग्य की बात उन्हे सान्त्वना देने को कही। उन्होंने कहा—'महाराज आप, पडित और ज्ञानी है। जन्म, मरण, दुख-सुख, भोग, हानि-लाभ, प्रिय-मिलन और वियोग, ये रात और दिन की तरह निश्चित काल पर होने को बाध्य है। जड बुद्धि के लोग सुख में हर्षित होते है और दुःख मे व्याकुल हो कर विलाप करते है। धीर पुरुष दोनों स्थितियों में सम रह कर मन मे धैर्य को बनाये रखते है*।' इसी तरह के धीर पुरुष गोस्वामी जी के अनुसार विमल विज्ञान और वैराग्य के सच्चे साधक है। भगवान्

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १३९ के बाद से दोहा १४० के बाद तक। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १४३। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १४३ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १४८ के बाद।

राम ने सुमन्त के द्वारा जो संदेश भरत के लिए भेजा था वह भी विमल विज्ञान और वैराग्य का ही सन्देश था—"कहब संदेसु भरत के आये, नीति न तजिय राजुपदु पाये। पालेहु प्रजहि करम-मन-बानी, सेयेहु मातु सकल सम जानी ‡।" यहाँ समत्वपूर्ण नीतिमत्ता का सन्देश विमल विज्ञान का सन्देश है, क्योंकि नीतिमत्ता समत्वपूर्ण विमल विज्ञान ही है, और मन, वचन और कर्म से प्रजापालन का सदेश विमल वैराग्य का है। प्रजापालन के कार्य मे अपने हितों की विमल वैराग्यपूर्ण बलि देनी पड़ती है। यहाँ उत्सर्ग आनन्द की तन्मयता को अपने साथ लिये रहता है।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के असीम पारावार राम के प्रेम के लिए जिस तरह दशरथ ने अपने जीवन और मरण, दोनों को सार्थक बना लिया, विराट् आदर्श के साथ प्रेम करके जिस तरह जीवन और मरण दोनों को उन्होंने असीम सौन्दर्य प्रदान किया, वह त्यागमय जीवनदर्शन गोस्वामी जी की आँखों से ओझल नही होता। वे कहते है—"जियन मरन फलु दसरथु पावा, अंड अनेक अमल जसु छावा। जियत राम-बिधु-बदन निहारा. रामबिरह मरि मरनु सवारा †।" राम के विरह मे जो मरता है, उसकी मृत्यु भी धन्य हो जाती है।

इस घटना के बाद से इस विमल विज्ञान और वैराग्य के सोपान पर खडा हुआ इस काड का नायक दिखाई पडता है। जिस तरह प्रफुल्ल चित्त से भरत के लिए राज्य छोड कर राम महान् हो गये उसी तरह मिले हुए राज्य को, विज्ञान की अनत विमलता को अपना सहारा बना कर भरत ने भी छोड़ दिया और अपने वैराग्य की भी अनत विमलता का परिचय दिया। अपने इस कार्य से भरत परम भक्तो की श्रेणी में जा बैठे। राम के आदर्शो के वे इतने बड़े उपासक बन गये कि वे इस कांड के नायक मान लिये गये है। दशरथ की मृत्यु के बाद ही ननिहाल मे उन्हें अपशकुन होने लगे तो वे माता, पिता, परिजन और भाइयों का कुशल ही महेश से मनाते है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का यह कितना बड़ा आदर्श है। गोस्वामी जी ने भरत के भीतर मांडवी की कुशल कामना नही पैदा की। पुरुष के भीतर का यह विमल वैराग्य उन्होंने इसी तरह विकसित किया था। इस विमल वैराग्य के प्रकाश मे भरत ने अपने स्वार्थमय व्यक्तित्व का ऐसा विलोपन कर दिया है कि प्रयत्न करने पर भी वह कहीं नहीं दिखाई देता। राम के प्रेम के कारण वे अपने सब स्वार्थो को भूल कर अपने को राम की एक वस्तु मात्र समझते है और पिता की मृत्यु का समाचार पा कर पछाड खा कर गिर पडते है और कहते है—"चलत न देखन पायेउं तोही, तात न रामहि सौपेहु मोही $।" भरत के भीतर अपने लिए कोई अभिमान अवशिष्ट है ही नही। राम के प्रति इसी निश्छल प्रेम के कारण वे स्वर्गीय पिता से कहते है कि आपने मुझे राम को नही सौपा। जैसे किसी की कोई वस्तु सौपी जाए उसी तरह भरत अपने को राम को सौपा जाना ही ठीक समझते है, मर्यादा की सहज स्नेहपूर्ण दृष्टि से।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा १५० के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १५४ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १५८ के बाद।

भरत के भीतर की यही मर्यादा उन्हे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का ज्वलन्त उदाहरण बना देती है। भरत के भीतर विज्ञान और वैराग्य के कारण शील की इतनी पवित्र ऊँचाई विकसित हो गयी है कि वे कैकेयी का राज्य करने का प्रस्ताव सुनते ही पश्चात्ताप से इस तरह जलने लगते है जैसे पके हुए घाव पर अगार रख दिया गया हो। हृदय की पवित्रता का अनुभाव भरत के भीतर के इस अनुताप को भी परम पावन बना देता है। वे कैकेयी से कहते है—'ससार मे ऐसा कौन जीव है, जिसे राम प्रिय न लगते हो। वे राम जब तुझे अप्रिय हो गये तो तू मुझे बता कि ससार के जीवो की श्रेणी का अतिक्रमण करने वाली तू कौन है। तू चाहे जो भी हो, पर अपने मुँह मे काला पोत कर मेरी आँखों के सामने से हट जा। अथवा तुझे कुछ कहना व्यर्थ है। मेरे समान पातकी कौन है जिसे विधाता ने तेरे समान रामविरोधी हृदय से मुझे पैदा किया। पातकी मै ही हूँ ‡।' कैकेयी की कुटिलता के कारण शील की आदर्श भावना ने शत्रुघ्न के भीतर भी वही क्षोभपूर्ण अनुताप पैदा कर दिया था। वे रामविरोधी को क्षमा करने की शक्ति खो बैठे और मथरा को उसी आवेश मे उन्होने दड दिया।

भरत के शील के भीतर इतनी निश्छलता थी कि कौसल्या को, उन्हे देख कर, यही प्रतीत हुआ कि राम ही लौट आये। भरत और शत्रुघ्न दोनों पुत्रों को कौसल्या ने इस तरह हृदय से लगा लिया कि ससार को यह स्पष्ट दिखाई पडने लगा कि अनत पवित्रता के स्रोत राम को पैदा करने के लिए सचमुच ही विधाता ने पवित्रतम पात्र का चुनाव किया था—"देखि सुभाउ कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई †।" इस माता के सम्मुख मर्यादा पुरुषोत्तम का विमल वैराग्य बिलकुल स्पष्ट था। वन जाने के समय की उनकी अवस्था के भीतर हर्ष और शोक के अभाव का बडा सुन्दर चित्र उन्होंने भरत के सामने प्रस्तुत किया। सीता और लक्ष्मण के त्यागमय स्नेह की चर्चा की। माता कौसल्या के सामने जब भरत ने स्नेह-शपथ ली, उस समय गोस्वामी जी ने साधक के लिए साधना के आदर्शपथों की चर्चा उनसे करायी है। भरत कहते है—'यदि मैं माता के षड्यन्त्रो मे सम्मिलित रहा होऊँ तो मुझे वही गति मिले जो गति विष्णु और शिव के चरणो को छोड कर प्रेतों की उपासना करने से होती है। साधना के पावन वैदिक पथ को छोड कर जो वाममार्गी बन कर अधोगति की ओर जाते है, मुझे उन्ही की गति मिले, यदि माता के इस रहस्यमय षड्यन्त्र का ज्ञान मुझे पहले से रहा हो ‡।' वाममार्गी शाक्त उपासना और प्रेतों की उपासना को गोस्वामी जी विमलविज्ञान के प्रतिपक्षी तथा अज्ञानजन्य उपासनाओं के पथ मानते थे।

कौसल्या ने भरत को सान्त्वना देते हुए विमल विज्ञानजन्य प्रेम के अभेद को उनके और राम के भीतर देखा है। 'राम प्रानहु ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १६१ और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १६२ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १६१ के पहले से ले कर उसके बाद तक।

तें प्यारे‡ ।' कह कर उनके अभिन्न पावन प्रेम की स्वीकृति के द्वारा कौसल्या ने भरत को सान्त्वना दी है ।

दशरथ के मृतक सस्कारो के बाद कोसल की राजसभा की आज्ञा ले कर जो कुछ भरत ने किया उससे गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और वैराग्य की एक अनुपम झाँकी प्रस्तुत की है । अवध की राजसभा की भूमिका मे ही विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का निचोड दे दिया गया है । गोस्वामी जी ने नीति और धर्ममय भारतीय संस्कृति की एक बृहत् भूमिका के रूप मे मानस को प्रस्तुत किया है । मानस एक आधार है, जिस पर भारतीय मर्यादा की अट्टालिका का निर्माण वे करना चाहते थे; इसीलिए वे अपने वसिष्ठ से उस राजसभा मे नीति और धर्ममय वाणी का प्रयोग कराते है । उनके ध्यान से नीति और धर्म का सौन्दर्य कभी ओझल नही होने पाता—"भरत बसिष्ठ निकट बैठारे । नीति धरम मय बचन उचारे† ।" वसिष्ठ राजा की धर्मनिष्ठा और सत्यनिष्ठा की प्रशसा करते है और भरत को बताते है कि सत्य का निर्वाह उन्होंने राम को वन भेज कर किया और प्रेम का निर्वाह अपने शरीर को त्याग कर । उनके लिए धर्म और सत्य इतने बडे थे कि उन्ही के लिए दशरथ ने अपने प्राणों की बलि दे दी । राम के गुण, शील और स्वभाव की चर्चा करते हुए ऋषि के हृदय की पवित्रता सजल हो कर उनकी आँखों मे भर गयी और राम के गुण, शील और स्वभाव की भावना ने अपने आनन्द के द्वारा उनके रोम-रोम में जागरण पैदा कर दिया । यहाँ भी पवित्रता की भावना ने उनके रोम-रोम को सजग बना दिया । इसके बाद जब लक्ष्मण और सीता के रामप्रेम की चर्चा वसिष्ठ ने की तब तो ज्ञानी होते हुए भी वे शोक और स्नेह मे मग्न हो गये$ । इस घटना से गोस्वामी जी यही बताना चाहते हैं कि विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की प्रक्रिया से उत्पन्न हुआ राम प्रेम सीता और लक्ष्मण के भीतर इतना पावन हो गया था कि वसिष्ठ का ज्ञान उसका अनुभव करके पवित्र हो गया । उस अकलुष पवित्रता के ज्ञान से उत्पन्न हुई अनुभूति ने मुनि को आत्मसात् कर लिया ।

'हानि लाभ जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ* ' की भावना भी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का परिणाम है । इस प्रकाश को प्राप्त करके विकासशील मनुष्य दोषारोपण और क्रोध करने की प्रवृत्तियो के ऊपर उठ जाता है—"अस बिचारि केहि देइय दोषू, ब्यरथ काहि पर कीजिय रोषू§ ।" गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने अपनी इन दो उक्तियों के द्वारा प्रारब्धवाद के सहारे भरत के भीतर के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य को उभारने का सफल प्रयत्न किया है ।

दशरथ की मृत्यु के कारण जो शोक का सागर लोगों के हृदयों मे उमड़ पड़ा था, उसे शान्त करने के लिए वसिष्ठ ने भरत से कहा—"तात बिचार करहु मनमाही । सोच

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १६७ के बाद । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १६९ के बाद । $ वही । * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १७० । § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १७० के बाद से ले कर दोहा १७२ तक ।

जोग दशरथ नृप नाहीं‡ ।" जिस व्यक्ति ने आदर्शों की अनंत परिणति के द्वारा अपने जीवन को सफल और राममय बना लिया उसका अन्त शोचनीय कैसे हो सकता है ।

लोकादर्श के भीतर विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के अभावों का दुष्परिणाम भयानक होता है । आदर्शों से गिर जाने के कारण जिन लोगों की दशा शोचनीय हो जाती है, उनकी गिनती गिनाने मे एक वृहत् लोकादर्श का चित्र गोस्वामी जी ने इस सोपान मे प्रस्तुत किया है । यह चित्र विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के अभाव के अवश्यभावी कुपरिणामों की व्यापक कल्पना के आधार पर बनाया गया है । वसिष्ठ ने भरत के शोक के वेग को कम करने के लिए उन्हे समझाते हुए कहा है—'शोचनीय दशा उस ब्राह्मण की होती है जो वेद के मर्म को नही समझता और अपना धर्म छोड कर विषयो मे, आसक्ति हो जाने के कारण, मग्न हो जाता है । उस राजा (क्षत्रिय) की दशा पर शोक किया जा सकता है, जिसे प्रजा प्राणों के समान प्रिय नही है । उस धनवान् वैश्य की दशा शोचनीय होती है जो कृपण होता है और अतिथियों तथा शिवभक्तो के साथ सज्जनता का व्यवहार नही करता । उस शूद्र की दशा शोचनीय हो जाती है जो विप्रों का अपमान करता है, जो बहुत बकवादी, सम्मान चाहने वाला तथा अपने ज्ञान के लिए अभिमान करता है । उस स्त्री की भी दशा शोचनीय होती है जो पति को प्रवचित करती है तथा कुटिल, कलहप्रिय, और स्वेच्छाचारिणी होती है । वह ब्रह्मचारी भी दयनीय होता है जो अपने व्रत का पालन नही करता और गुरु की आज्ञा का अनुसरण नही करता । वह गृहस्थ भी दयनीय होता है जो अज्ञानवश कर्मपथ को त्याग कर विरक्त हो जाता है तथा वह यती भी दयनीय है जो विवेक और विराग से हीन हो कर जगत् के प्रपचों मे खो जाता है । वही तपस्वी दयनीय अवस्था मे रहता है जो तप मे नही, भोग मे आसक्त हो जाता है । माता, पिता, गुरु और बन्धु के विरोधी की दशा भी दयनीय होती है । पिशुन और अकारण क्रोधी भी दयनीय होते है । दूसरों का अपकार करने वाला हर तरह दयनीय होता है । वह बड़ा कठोर और केवल अपने ही शरीर की रक्षा करने वाला होता है । वह भी हर तरह से दयनीय है, जो छल छोड कर हरिजन नही हो जाता । कोसल-नरेश की दशा शोचनीय नही है । उनका प्रभाव तो चौदहों भुवनों में परिव्याप्त है । जैसे तुम्हारे पिता थे, वैसा अतीत मे कोई नही था, वर्तमान मे कोई नहीं है और भविष्य मे भी कोई न होगा । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल लोग दशरथ की गुणगाथा का वर्णन करते है । जिसके राम, लक्ष्मण, तुम्हारे और शत्रुघ्न के समान पवित्र पुत्र उत्पन्न हुए हों उसके यश का वर्णन कौन कर सकता है† ।' विमल विज्ञान और वैराग्य की दृष्टि से समाज तथा व्यक्ति के शील की यह आलोचना गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है । भरत को तुलसी के वसिष्ठ ने आगे समझाया है—'तुम्हारे पिता ने शब्दों के लिए राम को छोड़ा और राम की विरहाग्नि में अपनी आहुति दे दी । उन्ही के शब्दों को सार्थक करने के लिए तुम राज्य करो ।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १७० के बाद से ले कर दोहा १७२ तक ।
† वही ।

प्रजा को सुपालित देख कर दशरथ की आत्मा को भी सन्तोष होगा और तुम्हें कोई दोष न होगा ‡ ।'

'कौसल्यादि सकल महतारी, तेउ प्रजा सुख होहि सुखारी † ।' के द्वारा गोस्वामी जी ने रानियों के भीतर भी विमल वैराग्य की एक पवित्र ऊँचाई का दर्शन किया है ।

अत में वसिष्ठ और सभा ने भरत को यही आदेश दिया कि वे तत्काल राज्य स्वीकार करे और राम के आने पर उन्हे सौप दें । कौसल्या ने भी बड़ी सरलता से यही प्रस्ताव भरत के सम्मुख रखा; पर विमल विज्ञान और वैराग्य की अनत सीमा के भीतर परिव्याप्त यह राम का अनुचर, उस प्रस्ताव को कैसे मानता ! माता के सरल और स्नेहमय शब्दो ने भरत को और अधिक व्याकुल कर दिया । लोचन के जल से सिच कर उनके हृदय मे राम के विरह के नये अकुर फूट निकले । भरत के इस पवित्र स्नेह को देख कर दर्शक अपना शरीर भी भूल गये । सब लोग इस सहज स्नेह को मर्यादा की प्रशसा करने लगे $ ।

भरत के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के सामने कर्त्तव्य का चित्र स्वभावतः स्पष्ट था । कर्त्तव्य भरत के सामने समस्या बन कर नही, जीवन के एक स्वाभाविक क्रम की तरह आता था । भरत के हृदय की विमल वैराग्य की अनुभूति मे इतनी शक्ति अवश्य है कि तुलसी की योजना के अनुसार समाज के भीतर एक आदर्श भ्रातृ-स्नेह का विकास हो सके । सब लोगो के प्रस्तावों को भरत की विमल वैराग्य की दृष्टि ने ठुकरा दिया । इन सब प्रस्तावों के भीतर विमल वैराग्यपूर्ण, भरत की दृष्टि ने दोष और दुर्बलता को स्पष्ट खोज लेने मे कोई कठिनाई अनुभव न की । इस पावन प्रकाश मे एक क्षण मे ही चारों तरफ के दोष परिलक्षित होने लगे । अज्ञानमय, मोहजन्य प्रेम हमेशा भ्रान्ति की काली छाया से मलिन रहता है । वह ठीक निर्णय न कर अन्धकार मे ही पड़ा रहता है ! सत्य का प्रकाश उमे नही प्राप्त होता । इसीलिए भरत ने कहा—"ससय शील प्रेम बस अहहू, सबुइ उचित सब जो कछु कहहू * ।" अपने इस कथन से भरत ने उपर्युक्त स्थिति को स्पष्ट करके सबके प्रस्तावों को सामान्यत. ठुकरा दिया, लेकिन विमल विज्ञान की दृष्टि से गुरु और माता को विशेष सम्मान देने के लिए उन्होंने कुछ अलग कर लिया । उन्होने कौसल्या के लिए कहा—'राम की माता बड़ी सरल चित्त है और हम पर उनका विशेष स्नेह है । हमारी दीनता को देख कर उन्होने सद्भावना और स्नेह के कारण ऐसा कह दिया § ।' माता की दृष्टि में भी जो स्नेह की दुर्बलता थी उसकी ओर भरत ने विनीत और शिष्ट सकेत कर दिया है । गुरु के लिए भी उन्होंने कहा—"गुरु विवेक सागर जगु जाना, जिन्हहिं बिस्व कर-बदर-समाना । मो कह तिलक साज सज सोऊ, भये बिधि बिमुख-बिमुख सब कोऊ × ।"

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १७२ के बाद । † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १७४ के पहले । $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा १७५ के पहले का छन्द । * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १८० और उसके पहले । § वही । × रामचरित-मानस, अयोध्याकांड, दोहा १८० के बाद ।

विवेकसागर गुरु के ऐसे प्रस्ताव को भरत ने केवल अपने ही दुर्भाग्य की प्रेरणा का फल माना। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-सम्पन्न ऐसे पात्र की कल्पना भरत मे गोस्वामी जी की ही सर्वभेदिनी दृष्टि कर सकती थी। भरत का यह पात्र अपनी पवित्र दृष्टि के प्रकाश से सबके गुण-दोषों को अलग करके, यह निश्चय करने मे तनिक भी कठिनाई अनुभव नही करता कि दशरथ का सत्यप्रेम तो पवित्र और पूज्य है, पर कैकेयी का घातक प्रस्ताव कैसे क्षम्य हो सकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम का जो विरोध कैकेयी ने किया उसका प्रायश्चित्त दशरथ के शब्दों का पालन करने से न होगा। भरत यह निश्चित समझ गये थे कि राम को वन भेज कर भरत के लिए राज्य करने की स्वीकृति दे कर दशरथ अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेने के लिए बाध्य थे और उन्होंने वैसा ही किया। उन्होंने अपने सत्य की रक्षा कर ली और राम के लिए अपने प्राण दे दिये। अब भरत की विमल वैराग्य से आलोकित दृष्टि इस बात को देख लेती है कि भरत यदि राम के लिए प्राण त्याग कर दे तो अपने आदर्श पिता का सच्चा पुत्र होगा, पर यदि नियति ने यह सम्भव नही किया, तो वह, राज्य करने के लिए, धर्म की दृष्टि से, विमल विज्ञान की दृष्टि से बाध्य नही है। दशरथ ने उसे राज्य करने की आज्ञा नही दी है। यह तो लोभ और मोह से पराजित कैकेयी ने हठात् दशरथ से माँग लिया है। यह वरदान कैकेयी के लोभ और मोह को, उसके मद और मत्सर को, उसकी ईर्ष्या और द्वेष को मिला है। ऐसी स्थिति मे पवित्र विज्ञान और पवित्र वैराग्य की धर्मपूर्ण दृष्टि पावन शील वाले भरत को ऐसा अपवित्र आचरण करने के लिए कैसे बाध्य कर सकती है। पाप यदि वरदान माँग कर पुण्यात्मा को अपने साथ घसीटना चाहता है, तो पुण्यात्मा अपनी पूरी शक्ति लगा कर पाप का विरोध करेगा। विमल विज्ञान का यही सकेत है। धर्म पुण्यात्मा को पापी के साथ नही बाँध सकता। 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' ‡ के सिद्धान्त के अनुसार जागरूक भरत ने शील के सौन्दर्य की साधना की अपनी सिद्धि का पूरा उपयोग कैकेयी के कुचक्र से बच निकलने के लिए किया। उनकी विमल विज्ञान और विमल वैराग्यपूर्ण अन्तर्वृत्ति को अपना पथ खोज निकालने मे देर न लगी। इस काड के नायक भरत ने राम को छोड और सब लोगों का मार्गदर्शन किया है तथा सामान्य बुद्धि की मलिनता के ऊपर विमल विज्ञान का बड़ा ही उज्ज्वल प्रकाश डाला है।

भरत की दृष्टि से यह बात छिपी नही रह गयी कि कैकेयी के वरदान को अपने लिए स्वीकार करने मे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के उच्च आसन से उनका एक बडा दयनीय पतन होगा। राजा को तो राजर्षि होना चाहिए। राम के विमुख जाने वाला राजा अपनी प्रजा को एक क्षण मे प्रलय के विकराल जबड़ों को सौप देगा। कैकेयी राम के परम पावन आदर्शों के विरुद्ध खड़ी हो गयी थी। उसका साथ देना पाप का साथ देना होता। उसका साथ दे कर राजा होने में भरत ने विश्व के लिए आदर्श की दृष्टि से तथा जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से भी एक महाप्रलय का दर्शन किया। 'धर्मो रक्षति

‡ गीता, अध्याय, ६ श्लोक ५।

रक्षितः' (मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक १५) के सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने यह समझ लिया कि राम के आदर्शों की रक्षा ही, सुख की सृष्टि है और उन आदर्शों का विरोध प्रलय की ज्वाला है। ऐसा अनुभव करके ही विमल विज्ञान और वैराग्यपूर्ण स्वरों मे भरत ने उत्तर दिया था—

कहउ साचु सब सुनि पतियाहू, चाहिय धरमसील नर नाहू।
मोहि राज हठि देइहउ जबही, रसा रसातल जाइहि तबही ‡।

अपने इन शब्दों से भरत यही बताना चाहते है कि कैकेयी के द्वारा प्राप्त वरदानों को स्वीकार करना राम के विरुद्ध चलने को ही स्वीकार करना है। कैकेयी के इस वरदान को प्रजा और मन्त्रि-परिषद् यदि हठात् कार्यान्वित कर सकी तो पृथ्वी और उसके आदर्श, सब एक क्षण मे नष्ट हो जाएँगे। भरत के समान विमल विज्ञान और वैराग्यमय चरित्र से खिलवाड करके राम-विरोधिनी कैकेयी के वरदान को क्रियात्मक रूप देने से प्रलय को छोड़ और दूसरा क्या हो सकता है। जगद्‌रक्षिका पवित्रता को नष्ट करने से जगत् का नाश ही तो होता है।

भरत इस आदर्श की हीनता के परिणाम को अच्छी तरह समझते थे कि जिस समाज मे व्यक्ति को प्रिय का विरह प्राणों के समान प्रिय लगने लगे, प्रिय की अनुपस्थिति ही उसे सुखी बनाए, तो उस समाज का प्रलय अवश्यम्भावी है—"जौं प्रिय बिरह प्रानप्रिय लागे, देखब सुनब बहुत अब आगे †।"

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-सम्पन्न व्यक्ति के भीतर, आदर्श से किसी भी तरह चूक जाने पर सात्त्विक ग्लानि का प्रादुर्भाव होता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य ही इस तरह के आदर्शों की अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकते है। जब यह दृष्टि व्यक्ति को प्राप्त हो जाती है तब उसे लोक का अपयश और परलोक का सोच नहीं रह जाता। इन सबकी पीडा उसे नगण्य प्रतीत होती है। वह एक ही पीडा नही सह सकता। वह पीड़ा है—राम के आदर्शों के विरुद्ध जा कर पतन की स्थिति मे पहुँच जाने की ग्लानि की मार्मिक वेदना—"डरु न मोहि जग कहइ कि पोचू, परलोकहु कर नाहिन सोचू। एकइ उर बस दुसह दवारी, मोहि लगि भे सियराम दुखारी $।" भरत के कारण सीताराम को कष्ट सहना पडा। इस स्थिति से उत्पन्न वेदना की दावाग्नि को भरत का पवित्र विरागी हृदय नही सह सकता।

अपनी सम्पूर्ण वेदना परिषद् के सम्मुख रख कर अत मे भरत कहते है—

आपनि दारुन दीनता कहउ सबहि सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ *।

भरत का यह वैराग्यमय शील उन्हे राम के प्रेम का मानव रूप बना देता है। भरत ने अपने निश्छल स्नेह की व्याकुलता को सब लोगों पर छा दिया—"मातु सचिव

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १७७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १७८ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १८० के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १८१।

गुरु पुर नर नारी, सकल सनेह बिकल भये भारी। भरतहि कहहि सराहि सराही, राम-प्रेम-मूरति-तनु आही ‡।" अयोध्या की जलती हुई प्रजा को इस आदर्श प्रेमी ने प्रेम का पावन पथ दिखा कर सहारा दिया। सबने इस राम-प्रेमी को अपने प्राणों मे बिठा लिया। राम का आकर्पण इतना बडा था कि अपने घर-बार, धन-सम्पत्ति की किसी को चिन्ता नही थी। यही विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का जीवन मे परिणाम होता है। इसी स्थिति मे सब चिन्ता छोड़ कर सब लोग रामदर्शन की तैयारी करने लगे। गोस्वामी जी ने इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का स्पष्ट सकेत, लोगों की भावना को व्यक्त करके, दिया है। लोग सोचने लगे—

जरउ सो सपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करइ न सहज सहाइ †।

विमल विज्ञानी और विमल विरागी धन-सम्पत्ति, माता-पिता, भाई और मित्र को तभी तक अपना समझते है, जब तक ये सब राम के आदर्शो मे, उनके चरणो मे भक्ति से डूब जाने मे आपसे आप सहायक होते रहते है, अन्यथा इन सबको वे छोड देते है।

इसी दृष्टिकोण से भरत ने राजा राम की सम्पत्ति और उनके राज्य को सुरक्षित करके ही अयोध्या छोडना ठीक समझा। विश्वस्त सेवको को स्वामी राम के प्रति उनके कर्तव्यज्ञान को सजग कर भरत ने यथास्थान उन्हे रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। उन सेवको ने इसी रामकाज को राम का दर्शन मान लिया और उसी सेवा के सुख में निमग्न हो गये। कैकेयी के द्वारा प्राप्त राज्य और सम्पत्ति के प्रति भरत के भीतर विमल विराग इसीलिए था कि वह सम्पत्ति उन्हे राम-विमुख कर देती। उसे राम की ही समझ कर उन्होने उसकी रक्षा की।

इसी राम के काज की सिद्धि के प्रयत्न मे निषाद भी अपने क्षणभंगुर शरीर को अर्पित कर देने के लिए प्रस्तुत हो गये, जब इतने बडे समूह को ले कर उन्होंने भरत को राम की तरफ आते देखा। निषाद को सदेह हो गया कि राम पर आक्रमण करने भरत जा रहे है। उसने सोचा—"समरु मरनु पुनि सुर-सरि-तीरा, रामकाजु छनभगु सरीरा $।" स्वामी के कार्य के लिए युद्धक्षेत्र पर युद्ध करूँगा। मेरा यश चौदहो भुवनों को उज्ज्वल कर देगा। यदि भगवान् राम के लिए शरीर छोड दूँगा तो मेरे दोनों हाथों मे लड्डू रहेगे—यहाँ यश और वहाँ स्वर्ग। विमल वैराग्य का कितना अच्छा उदाहरण निषाद ने प्रस्तुत किया, आदर्श की रक्षा के लिए प्राणों के मोह को छोड़ कर।

विमल विज्ञान की बात भी गोस्वामी जी ने निषादराज से कहलायी है। वह कहते हैं—'साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नही होती, राम के भक्तों मे भी जो नहीं गिना जाता, वह जीते हुए भी पृथ्वी का भार ही रहता है। वह जननी के यौवनरूपी विटप के लिए केवल कुठार का काम करता है *।' विमल विज्ञान और विमल वैराग्य ने

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १८२ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १८४ के। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १८८ के बाद। * वही।

निषादराज के भीतर यहाँ लोकमंगल विधान करने वाला जगद्रक्षक पवित्र उत्साह उत्पन्न किया है ।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आधार पर ही आदर्श समाज की सृष्टि हो सकती है । निषादराज के भीतर जो पवित्र सन्देह उत्पन्न हुआ था वह निराधार था । भरत की स्थिति दूसरी ही थी । परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निषादराज आये भी और भरत के पावन हृदय के माधुर्य मे वे लीन भी हो गये । यहाँ गोस्वामी जी के विमल विज्ञान ने एक अनोखा मोड़ लिया है । रामप्रेम की पवित्रता के भीतर जो अभेद पैदा होता है उसे इस विमल विज्ञान ने देखा है । जिसे राम ने* हृदय से लगा कर अपना प्रेम दे दिया, जिसे उनके आदर्शों की पवित्रता का प्रकाश मिल गया, वह कहाँ नीच जाति का रह सकता है ! अपनी विमल विज्ञान की योजना के द्वारा गोस्वामी जी ने इस प्रकार के अभेद सिद्धान्त का प्रचार किया है । उन्होंने भरत-निषादराज के मिलन का वर्णन करते हुए कहा है—

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा, जासु छाह छुइ लेइय सीचा ।
तेहि भरि अक राम-लघु-भ्राता, मिलत पुलक-परिपूरित गाता‡ ।

राम के इस निषाद मित्र से मिल कर भरत का पूरा शरीर आनन्दातिरेक के रोमाच से भर उठा । तुलसीदर्शन मे पवित्रता की शर्त राम की भक्ति या पवित्र शील है—"राम राम कहि जे जमुहाही । तिन्हहि न पाप-पुज समुहाही । एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जग पावन कीन्हा । स्वपच सबर खस जमन पांवर कोल किरात । राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात† ।" राम के आदर्शों की तरफ जो झुका, वही पवित्र हो जाता है और फिर जातिगत अपवित्रता समाप्त हो जाती है । तुलसी के विमल विज्ञान का अभेदवाद जगत् को इसी आधार भूमि पर ला कर विषमता को नष्ट करके एक आदर्श समाज की सृष्टि करना चाहता है ।

भरत के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के अमोघ प्रभाव को गोस्वामी जी ने इस कांड भर मे सुरक्षित रखा है । उनका इस काड का नायक भरत इतना बड़ा है कि उसके शील और स्नेह को देख कर निपाद आवेश के आनन्द में अपना अस्तित्व ही भूल गया । तुलसी की तरफ से निषादराज आदर्शों के एक प्रचारक की तरह दिखाई पडते है । वे भरत से कहते है—'मेरी करतूत और मेरे कुल को समझ कर तथा प्रभु राम की महिमा का अनुभव कर लेने के बाद भी जो उनके चरणों का ध्यान नही करता, उसे प्रारब्ध ने प्रवचित कर रखा है$ ।'

विमल विज्ञान के द्वारा अखिल विश्व में भेदाभेदरूप ब्रह्मानुभूति गोस्वामी जी उत्पन्न करना चाहते थे । भरत की इस यात्रा के समय गगा की महिमा में फिर गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान का अभेददर्शन प्रस्तुत किया है—"करहि प्रनाम नगर-नर-नारी,

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १९२ के बाद । † वही । $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १९४ के बाद ।

मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ‡ ।" गगा को ब्रह्ममय जल कह कर गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान के अभेददर्शन का स्पष्ट सकेत दिया है । भरत ने ब्रह्म के इस गगा रूप से भी सीताराम के चरणों का सहज स्नेह माँगा † । गोस्वामी जी ने भेद के भीतर अभेददर्शन को ही साधना का स्वाभाविक प्रकार माना है । भेद देखने वाली आँखो को धीरे-धीरे उसी भेद के भीतर अभेद का दर्शन करा देना, गोस्वामी जी के अनुसार, स्वाभाविक उपासना-पद्धति है । उनके अनुसार भेद को ध्यान से अलग रख कर अभेददर्शन स्वप्रतिगामी है । इसीलिए उनके भरत ने निषादराज के साथ के अपने वार्तालाप मे सीता की पवित्रता की चर्चा करते हुए उनके पिता जनक के गौरव को भोग और योग के द्वारा प्रदर्शित किया है $ । भोग और योग का समन्वय भेद और अभेद का ही समन्वय है । भेदभावना से भोग और अभेदभावना से योग सभव होता है । दोनों का समन्वय भेदाभेद है ।

गोस्वामी जी ने इसी भेद और अभेद का समन्वय करने के लिए अभेद ब्रह्म को भेदमय जगत् मे शील की अनतता के भीतर प्रतिष्ठित करके देखा है । उनकी उपासना-पद्धति इस 'बाहरजामी' * ब्रह्म के शील के सौन्दर्य को छोड़ कर कभी चलती ही नही । निषादराज से बातचीत करते हुए उनके भरत मर्यादापुरुषोत्तम के गौरव को इसी शील की भूमि पर प्रस्तुत करते है—'राम ने अवतार ले कर जगत् को उज्ज्वल और जागृत कर दिया । वे रूप, शील, सुख और सब गुणों के आदर्शो के महासागर है । राम का स्वभाव पुरजन, परिजन, गुरु, पिता और माता सब को सुखी बनाता है । बैरी भी राम की बडाई करते है । वे अपने बोलने, मिलने तथा विनय से सब को मोह लेते है । करोडो शारदा तथा सैकड़ों करोड़ शेष भी प्रभु के गुणों की गिनती नही कर सकते § ।' यही अनत आदर्श तुलसी का 'बाहरजामी' ब्रह्म है और इसी की उपासना उनकी रामभक्ति है । विमल विज्ञान और विमल वैराग्य इसी आदर्श तक पहुँचने मे व्यक्ति के सहायक होते है ।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का आधार गोस्वामी जी ने नियतिवाद को भी माना है । गोस्वामी जी का यह नियतिवाद भारतीय विचारधारा के अनुकूल ही व्यक्ति को अकर्मण्य, निराशाग्रस्त तथा भीरु नही बनाता । इसके प्रतिकूल नियतिवाद के सम्यक् ज्ञान से व्यक्ति कर्मठ, आशावान् और निर्भय रहता है । सद्भावना के साथ अपने मगल और लोकमगल के विकास का प्रयत्न करने पर भी जब वह सफल नही होता, तब अपनी असफलता को नियति का विधान समझ कर फल के प्रति नितान्त अनासक्त हो कर विमल वैराग्य की अवस्था मे पहुँच जाता है । नियति के इसी प्रकार के स्वभाव को समझ लेना ही गोस्वामी जी के अनुसार विमल विज्ञान की प्राप्ति का एक अग है । इस नियति को भारतीय कर्मवादी दर्शन व्यक्ति के ही अनेक जन्मों के कर्मों का फल समझते है । नियति को अपने ही कर्मो का फल समझ कर भारतीय उसकी कटुता को भी साहस, धैर्य और न्याय्य

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा १९५ के बाद । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १९६ के पहले। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १९ के पहले । * तुलसी कवितावली, उत्तरकांड, पृष्ठ १९३, सवैया १२९। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा १९९ के पहले ।

बुद्धि से स्वीकार करता है। चित्रकूट के मार्ग पर राम के एक रात के विश्राम के वन्य साधनों को देख कर जब भरत व्यथित होते है और इन सब का कारण अपने को समझ कर ग्लानि मे डूब जाते है तब निषादराज उन्हें समझाते है—'आप व्यर्थ हृत्तप्त न हों। राम आपको प्रिय है और आप राम को प्रिय है। यह सब तो वाम-विधि की करनी है। भरत ने प्रिय राम को सुखी देखने के सब प्रयत्न बाल्यकाल से ही किये, इतने पर भी यदि राम को कष्ट हो गया तो भरत का दोष नही, वामविधाता का दोष है‡।' यही समझ कर निषादराज भरत में उत्साह की प्रेरणा उत्पन्न करना चाहते है। निषादराज ने भरत को समझाया और शपथ ली कि भगवान् राम को मैने ठीक तरह से जान लिया है। उन्हे तुमसे अधिक कोई दूसरा व्यक्ति प्रिय नही है। राम अन्तर्यामी है, कृपा के निवासस्थान है। आप इस विचार को मन में दृढ करके, चल कर विश्राम करे। नियति के इस विधान का स्मरण जब भरत को हो आया तब उन्होंने अपने भीतर धैर्य का अनुभव किया।

यहाँ से भरत का विमल विज्ञान और वैराग्यपूर्ण स्नेह, हर तरह की परीक्षा से अकलुष और विकाररहित सिद्ध होता है। त्रिवेणी मे स्नान के बाद भरत के द्वारा तीर्थ-राज से माँगे हुए वरदान मे गोस्वामी जी ने विमल वैराग्य का बडा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। भरत ने तीर्थराज से कहा है—'मुझमे अर्थ, धर्म तथा काम की रुचि नही है। मै निर्वाणगति भी नही चाहता। जन्म-जन्म राम के चरणो के लिए प्रेम को छोड़ मुझे कोई दूसरा वरदान नही चाहिए†।' यह रति, भरत बडी कठिन परीक्षा के समय भी अपने भीतर स्थिर रखना चाहते है। वे तीर्थराज से कहते है—'राम चाहे हमे कुटिल ही समझें, दुनिया मुझे गुरु और स्वामी का द्रोही भी समझे तब भी आपके अनुग्रह से सीता-राम के चरणों की रति मेरे भीतर दिन-दिन बढती ही जाए$।'

विमल विज्ञान का यह कितना ऊँचा आदर्श है। भरत का प्रेमी, प्रिय की सद्भावना या दुर्भावना की बिलकुल चिन्ता नही करता। उन दोनों से विरक्त रह कर सहज-निश्छल स्नेह प्रिय के लिए वह अपने हृदय में चाहता है। प्रेमी यदि प्रिय के द्वारा सताया न गया तो उसके प्रेम को बलिदान क्या देना पड़ा। प्रिय की दुर्भावनाओं के रहते हुए भी प्रेम यदि बढता जाए तभी तो वह सहज प्रेम है। विमल वैराग्य के क्षेत्र के सहज प्रेम की आदर्श-भूमि गोस्वामी जी ने चातक के प्रेम मे देखी है। उनके भरत कहते है—'बादल चाहे जन्म-भर स्मरण न करे और जल माँगने वाले चातक पर चाहे वज्र और ओलों की वर्षा करे, पर चातक की पुकार घटती नही। चातक तो पुकार की कमी को प्रेम की कमी और बढती हुई प्रिय के लिए हृदय की पुकार को प्रेम की वृद्धि समझता है, इसीलिए कठोर प्रिय के लिए भी उसके हृदय मे पुकार निरन्तर बनी रहती है। प्रिय को पुकारते हुए उसका कठ नही थकता। जिस तरह तपने पर सोना अधिक चमकता है, उसी तरह प्रिय के लिए अपने स्वार्थों की बलि दे कर अपने जीवन को तपाने से प्रेम उज्ज्वलतर हो जाता है*।'

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २०० के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २०३। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०३ के बाद। * वही।

अपने स्वार्थों के प्रति उमग भरा विमल वैराग्य और प्रिय के स्वार्थों की उपासना सच्चे प्रेमी का लक्षण है। विमल वैराग्य के उज्ज्वल चरित को ले कर भरत राम से सहज प्रेम करते है। भरत के इस विमल वैराग्य की साक्षी त्रिवेणी मे विराट् के जलरूप के भीतर से वाणी बन कर प्रकट होती है—"तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू, राम-चरन-अनुराग-अगाधू। बादि गलानि करहु मन माही, तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाही ‡।"

गोस्वामी जी ने भरत के विमल वैराग्यमय प्रेम की पवित्रता का उल्लास अनत के हृदय मे व्याप्त दिखाने के लिए त्रिवेणी की धारा से साक्षी दिलवायी है। भरद्वाज जी ने भी भरत के शील को देख कर यही अनुभव किया कि 'मेरा भाग्य ही मूर्तिमान बन कर भरत के रूप मे आ गया †।'

अपने इस काड के नायक भरत मे गोस्वामी जी की प्रतिभा ने विमल वैराग्य और विमल विज्ञान का ऐसा प्रकाश आलोकित किया है कि उसके सामने ऋषियों का हृदय भी प्रेमभक्ति के आदर्श का दर्शन करके कृतज्ञता से झुक गया है। भरद्वाज जी भी सान्त्वना देते हुए भरत से यह रहस्य बतला देते है कि 'कैकेयी का दोष नही, यह दोष सरस्वती का है $।' उन्होने यह भी कहा कि 'तुम्हारा विमल यश प्रचारित करके लोक और वेद दोनो अपने को धन्य मानेगे। कैकेयी-काड मे तुम्हारा अल्प अपराध देखने वाले भी अधम, अज्ञानी, और असाधु कहलाएँगे, तुम यदि राज्य भी करते तो तुम्हे दोष नही था और राम को भी उससे सन्तोष होता, पर तुमने राम-चरणों की दासता स्वीकार करके बहुत ही भला काम किया। राम के चरणों के स्नेह से ही लोकमगल की सृष्टि होती है। राम के आदर्शो से ही लोक की रक्षा हो सकती है। राम के चरणों का यह स्नेह तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है। तुमसे बड़ा भाग्य किसका हो सकता है। तुमसे बढ कर राम का कोई दूसरा प्रेमी नही है। तुम्हारी प्रशसा करते हुए उन्होने रात बिता दी थी। उनके हृदय के रहस्य को प्रयाग मे स्नान के समय हमने समझा, जब वे तुम्हारे अनुराग मे मग्न हो गये थे *।'

अपने इसी वार्तालाप के सिलसिले में विमल विज्ञान और वैराग्य का सकेत देते हुए भरद्वाज ऋषि ने कहा—'राम का स्नेह तुम पर इतना है, जितना जड तथा अज्ञानी मनुष्य का स्नेह जीवन और जगत् के सुखों से रहता है §।' भरत के समान विमल विज्ञानी और विमल विरागी ऐन्द्रिक सुखोपभोगों से ऊपर उठ कर आत्मा के सौन्दर्य को जागृत करता है, अपने विमल विज्ञान और वैराग्य से लोकमगल की साधना करके।

भरद्वाज ने आगे भरत से यही कहा है—'हमारे मत से तुम राम के स्नेह के अवतार हो। राम का स्नेह तुम्हारे रूप मे पृथ्वी पर उतर आया है। तुम्हें मिला हुआ यह कलक भी धन्य है जो हमे यह उपदेश दिला सका। राम की भक्ति के रस की सिद्धि

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा२०४ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्या-काड, दोहा २०४ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०५। * राम-चरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०६ के बाद। § वही।

के लिए यह समय बडा मगलमय है। तुम्हे देख कर राम की भक्ति के रस की सिद्धि की ओर हम लोग भी बढ सकेंगे ‡।'

गोस्वामी जी ने इस विमल वैराग्यमय प्रेम की स्तुति बडे प्रभावशाली शब्दो मे भरद्वाज जी से करायी है। वे भरत से कहते है—'आपका विमल यश द्वितीया के निष्कलक चन्द्रमा की तरह है। राम के भक्त कुमुद और चकोर बन कर इसकी आर देखते रहेगे। यह हमेशा उदित ही रहेगा, कभी अस्त न होगा। ससार के आकाश मे यह घटेगा नही, दिन-दिन दूना ही होता जाएगा। त्रिलोकरूपी कोक इससे बडा प्रेम करेगा। राम का प्रतापरूपी सूर्य तुम्हारे यश के चन्द्रमा के सौन्दर्य को कम न कर सकेगा †।'

इस काड के नायक के लिए दिया गया भरद्वाज का यह बहुत बडा सम्मान है, जिसमे भरद्वाज यह स्वीकार करते हैं कि राम का बढ़ता हुआ प्रताप भरत की पवित्रता के चन्द्रमा में उज्ज्वलता ही उत्पन्न करेगा।

आगे भरद्वाज फिर कहते हैं—'तुम्हारे यश का यह विमल चन्द्र रात-दिन सबको सुखद रहेगा। कैकेयी के कर्तव्यों का राहु इसे ग्रस्त नही कर सकेगा। तुम्हारे यश का यह विमल चन्द्र राम के सुन्दर प्रेम के अमृत से पूर्ण है। चन्द्रमा को अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी के प्रति वासनामय आसक्ति का दोष लगा था, पर तुम्हारे यश के इस विमल चन्द्र को गुरुओं का अपमान करने का दोष कभी नही लग सका है। तुमने अमृत को पृथ्वी के लिए सुलभ बना दिया। राम के भक्त अब इस राम-प्रेम के अमृत को पी कर अघा जाएँगे। तुमने अपनी कीर्ति के अनुपम चन्द्र की सृष्टि की, जिसमे राम का प्रेम मृग बन कर बैठा है। तुम्हारे मन मे यह प्रेम उत्पन्न हो गया है। इस पर आघात लगने की आशका से तुम्हे ग्लानि हो रही है। पर दरिद्र को ही पारस पा कर उसके खो जाने का भय होना चाहिए। तुम्हारा विमल विज्ञान और वैराग्यमय हृदय परम उदार और धनी है। वह राम-प्रेम का सुरक्षित कोष है। उसमे सुरक्षित रखा हुआ राम-प्रेम कभी नही खो सकता। सब साधनों का सुन्दर परिणाम लक्ष्मण, राम और सीता का दर्शन है और उस दर्शन का फल तुम्हारा दर्शन है। तुम धन्य हो $।' प्रयाग के आकाश ने भी धन्य की ध्वनि भरत के लिए भेजी। अपने को राम का कृपापात्र समझ कर भरत राम-प्रेम मे मग्न हो गये। उन्होंने रोमाच से अपने शरीर को सीताराम से अपने हृदय को तथा कमल के समान अपनी आँखों को स्नेह के जल से भर लिया *।

सासारिक सुखों के प्रति, भरत के भीतर, प्रिय के वियोग के समय विमल विज्ञान के अद्वैत मे उत्पन्न विमल वैराग्यजन्य तीव्र अनासक्ति रहती है। भरद्वाज की सभा को भरत ने जो उत्तर दिया वह भी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का एक बडा सुन्दर

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०७ और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०७ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०७ के बाद से ले कर दोहा २०८ के बाद तक। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०९ और उसके पहले।

उदाहरण है । उन्होंने कहा—'माता के कारनामों का सोच मुझे नही है । हमे इसका भी दुःख नही है कि ससार हमे नीच समझेगा । मुझे इस बात का भी डर नही है कि हमारा परलोक बिगड़ जाएगा । पिता की मृत्यु का शोक भी हमे नही है । उनका सुकृत तो ससार भर पर छाया हुआ है, लक्ष्मण और राम के समान पुत्र उन्होने पाये, राम के विरह मे उन्होंने क्षणभंगुर शरीर को छोड़ कर अपने को मगलमय बना लिया । उनके लिए शोक करने का कोई प्रसग ही नही है । राम, लक्ष्मण और सीता खुले पैर मुनि के वेष मे वन-वन फिर रहे है । मृगचर्म को उन्होंने वस्त्र बना लिया है तथा फल को भोजन और कुश और पत्ते को बिस्तर । वृक्षों के नीचे निवास करके वे हिम, धूप, वर्षा और वायु के आघातो को सहते है । इसी दुःख की जलन से हमारी छाती दिनरात जल रही है । हमे न दिन मे भूख लगती है और न रात में निद्रा ही आती है । हमने पूरे ससार को अपने मन मे स्थान दे कर खोजा, पर इस रोग की दवा हमे नही मिली ‡ ।'

भरद्वाज ने भरत को समझाया और आतिथ्य स्वीकार करने के लिए उन्हे राजी कर लिया । इस स्वागत के लिए भरद्वाज ने अपनी सिद्धियों का उपयोग किया । स्वागत के लिए पृथ्वी पर उन सुखों की सृष्टि हो गयी, जिसे देख कर देवताओं का मन भी आकृष्ट हो जाए । पर परम पावन वैराग्य मे सिद्ध भरत इतने अनुपम थे कि सिद्धियो को भी 'राम-लघु-भाई' † 'अतुलित अतिथि' $ दिखाई पड़े । ब्रह्मा को भी विस्मय मे डालने वाली भरद्वाज के द्वारा की गयी स्वागत की तैयारी विमल विरागी भरत को आकृष्ट न कर सकी । केवल ऋषि की आज्ञा का अनुसरण करने के लिए वे उस पिजडे मे बन्द भर हो गये ।

गोस्वामी जी का भक्तिदर्शन यही मानता है कि परमात्म-प्रेम की अनुभूति प्राप्त कर लेने वाला साधक विमल वैराग्य की सिद्धि कर लेता है । ससार की कोई सम्पत्ति उसे आकृष्ट नही कर सकती । परम मूल्यवान् राम को प्राप्त कर लेने के बाद कोई मूल्यवान् वस्तु उसे आकृष्ट नहीं कर सकती ।

गोस्वामी जी ने कहा है—"सपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार । तेहि निसि आस्रम पींजरा राखे भा भिनुसार *"—सम्पत्ति चकई की तरह और भरत चकवे की तरह थे । मुनि की आज्ञा तो केवल खेल का ही महत्त्व पा सकी । आश्रम ने केवल पिंजडे का काम किया । चक्रवाक और चक्रवाकी अपने नैसर्गिक स्वभाव के कारण रात मे नहीं मिलते ।' नदी के दोनो किनारों पर बँट जाते है । यदि खिलवाड करने के लिए उन्हे पकड़ कर पिजड़े में भी रख लिया जाए तब भी वही निसर्ग उनके भीतर काम करता रहता है । वे एक दूसरे से अलग-अलग ही रहते है । मुनि की आज्ञा ने खेल-खेल में उस रात्रि में आश्रम के पिजड़े मे सम्पत्ति चक्रवाकी और भरत चक्रवाक को बन्द कर दिया । ये दोनों

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २०९ के बाद से दोहा २१० के बाद तक । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २१२ के बाद । $ वही । * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २१४ ।

रात्रि भर उसमें रहे; पर भरत के हृदय में उस सम्पत्ति के प्रति कोई आसक्ति न पैदा हुई। भरत रूपी चकवा विमल विज्ञान और विमल वैराग्य मे सिद्ध था; इसीलिए सम्पत्ति के आकर्षण का प्रभाव उस पर न पड़ा।

विमल विज्ञान और वैराग्ययुक्त भक्त को भगवान् अपने से भी अधिक महत्त्व देता है। विमल विज्ञान प्रकाशमय होता है। उसके आलोक मे सब रहस्य स्पष्टत: व्यक्त होने लगते है। इसीलिए इस काड मे गोस्वामी जी ने भक्ति-सम्बन्धी रहस्यों को भी प्रकाश मे लाया है। सतो का सर्वसम्मत सिद्धान्त तुलसी भी स्वीकार करते है कि भक्त को भगवान् बहुत अधिक प्रिय होता है, इसीलिए वह भक्त को अपने से भी अधिक महत्त्व देता है। कभी-कभी वह ऐसी भी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है, जिनमें भक्त भगवान् से भी श्रेष्ठ दिखाई पडने लगता है। यहाँ गोस्वामी जी के भरत अपने उपास्य राम से भी श्रेष्ठ है। प्रयाग से चित्रकूट तक भरत और शत्रुघ्न नगे पैर और बिना छत्र के गये। विमल वैराग्य के अपने इस साधक के लिए गोस्वामी जी कहते हैं—'भरत के प्रेम, नियम, व्रत और धैर्य असीम है। उनके इस अनुराग को देख कर देवताओं ने इतने फूलो की वर्षा की कि पृथ्वी कोमल और पथ मंगलमय हो गया। बादल ऊपर से छाया कर रहे थे तथा सुन्दर एव सुखद वायु बह रही थी। जाने के समय राम का पथ भी ऐसा नही था जैसा कि भरत का हो गया। यहाँ राम से राम का दास बढ़ गया है‡।'

यहाँ गोस्वामी जी ने कहा है—'पथ पर जितने जड-चेतन जीवों ने भगवान् राम को देखा था वे सब मुक्ति के योग्य हो गये थे और भरत के दर्शन ने उनके संसार के बन्धन काट दिये। उनका भवरोग मिट गया†।' मुक्ति भवरोग के मिटने से ही मिलती है। राम के दर्शन से सब जड-चेतन केवल मुक्ति के योग्य बन गये थे, पर वह मुक्ति मिली उन्हे भरत के दर्शन से ही। भगवान् के दर्शन से जड-चेतन जगत् केवल मुक्ति के योग्य बना, पर यह योग्यता मुक्ति के रूप मे परिणत हुई भरत के दर्शन से। गोस्वामी जी कहते हैं कि यह बात भरत के लिए कठिन नही है, जिसे राम भी अपने मन में स्मरण करते रहते है। इस ससार मे एक बार भी राम का नाम ले लेने से व्यक्ति पावन हो जाता है। भरत तो राम के प्रिय और उनके छोटे भाई है, तब वे अपने पथ पर मगल की सृष्टि क्यों न कर सकते $!

भरत के इस प्रेम को देख कर इन्द्र को यह भय होता है कि भरत राम को कही वापस न ले जाएँ। देवगुरु वृहस्पति से वे भरत के लक्ष्य की सिद्धि में बाधा डालने मे सहायता माँगते है और इस प्रकार इन्द्र फिर छल करना चाहते है।

विमल विज्ञान और वैराग्य-युक्त भक्ति अमोघ और अजेय शक्ति वाली होती है। यह सत्य गोस्वामी जी के द्वारा इसी प्रकरण में प्रस्तुत किया गया है। भरत की बुद्धि और उनके हृदय में विकार उत्पन्न करके उनके राम-प्रेम को कुठित करने के कुचक्र मे जब इन्द्र ने

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २१५ और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २१५ के बाद। $ वही।

बृहस्पति को सम्मिलित करना चाहा तब उसका उत्तर देते हुए बृहस्पति ने विमल विज्ञान की कुछ बाते की है। देवगुरु ने कहा—'माया-पति राम के सेवक से माया करने से वह माया प्रयोक्ता पर ही उल्ट पडती है। उस बार कैकेयी के विरुद्ध तुम्हारी सफलता राम की इच्छा के भीतर थी। इस बार तुम्हे हानि उठानी पडेगी। राम अपने प्रति किये गये अपराध पर क्रुद्ध नही होते, पर भक्त के अपराधी को वे अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर देते है। भरत के समान राम का स्नेही कोई नही है। ससार राम का जप करता रहता है और राम भरत का ही नाम रटते रहते है। भगवान् के भक्त की हानि की तुम्हे कल्पना भी न करनी चाहिए ‡।' लोकमगल विधायक शील का विरोध विरोधी के लिए प्रयलकर होता है। यही बात वृहस्पति ने देवराज को समझायी। 'तब कछु कीन्ह रामरुख जानी † ' मे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईश्वरीय इच्छा (डिवाइन विल) का सिद्धान्त गोस्वामी जी स्वीकार करते है। इसी सत्य को प्रस्थापित करने के लिए उनके वृहस्पति इन्द्र से कहते है कि कैकेयी-प्रकरण मे मैंने तुम्हारी सहायता राम के रुख को समझ कर की थी। विमल विज्ञान पूर्ण भरत के विरुद्ध राम की इच्छा कदापि नही जा सकती। विमल विज्ञान की अनतता राम और भरत मे है। राम अनत विमल विज्ञान का रक्षक है। उसे धक्का देने वाले के लिए उसका क्रोध भयानक रूप धारण कर लेता है।

विमल विज्ञान की इसी बात पर अधिक बल देने के लिए वृहस्पति ने कहा—'राम को सेवक परम प्रिय होता है। सेवक के सेवक को देख कर वे सुखी होते है और उसके वैरी को देख कर उनकी क्रोधाग्नि भडक उठती है। यद्यपि वे सम है, उनके भीतर राग और रोष नही रहते, पाप, पुण्य, गुण और दोष से वे परे रहते है, उन्होने विश्व मे कर्म को ही प्रधान बनाया है, उसी के अनुसार सब लोग फल पाते है, पर भक्त और अभक्त, आदर्श प्रेमी और आदर्श द्वेषी मे वे भेद देखते है, अगुण, अलेख, अमान और एकरस होने पर भी भक्त के प्रेम से बँध कर, मर्यादाप्रेमी के प्रेम के वश मे हो कर राम सगुण हो गये है। इसीलिए भरत की भक्ति को छोड तुम्हारे लिए कोई दूसरा पथ नही है। भरत, रामभक्त दूसरो के परमहितेच्छु, दूसरों के दु.ख से पीडित रहने वाले और दयालु है। इन भक्त शिरोमणि से तुम्हें नही डरना चाहिए $।'

विमल विज्ञान और वैराग्य के भीतर का वियोग विवेक को साथ ले कर चलता है। गोस्वामी जी ने प्रेम के भीतर रहने वाले वियोग को विवेक के साथ रख कर भी विमल विज्ञान की सिद्धि की है। विमल विज्ञान वियोग को विवेक का सुन्दर वरदान दे कर और अधिक सुन्दर बना देता है। इसीलिए अपने भरत के वियोग का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—'वियोग के समुद्र मे डूबते हुए भरत विवेक के जहाज पर चढ गये।' —"होत मगन बारिधि बिरह चढे बिबेक जहाज *।" भरत के इसी विमल विज्ञानमय शील के

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २१६ के बाद से दोहा २१७ तक। † वही।
$ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २१७ के बाद से दोहा २१८ तक। * रामचरित-मानस, अयोध्याकांड, दोहा २१९।

कारण भगवान् राम ने क्रुद्ध लक्ष्मण को समझाते हुए कहा—'भरत के समान आदर्श पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि के भीतर न देखा न सुना है ‡ ।'

विमल वैराग्य की पराकाष्ठा हमें गोस्वामी जी के भरत मे दिखाई पडती है। 'भरतहि होइ न राजमद बिधि-हरि-हर-पद पाइ । कबहु कि काजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ † ।' ये शब्द राम ने लक्ष्मण से कहे है। जब चित्रकूट मे लक्ष्मण को यह समाचार मिला कि भरत चतुरगिणी सेना के साथ आ रहे है, तब उन्होंने समझा कि राज्य पा कर भरत को मद हो गया है और वे राम पर आक्रमण करने आ रहे है । यह बात उन्होंने राम से कही भी। इसके उत्तर मे राम ने कहा—'ब्रह्मा, विष्णु ओर शिव का पद पा कर भी भरत को राजमद नही हो सकता $ ।' भगवान् राम ने हृदय मे यह अनुभव किया था कि भरत विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के इतने बडे महासागर है कि उनके अनत धैर्य पर राजा का पद मिलने का कोई प्रभाव नही पड़ सकता । साधारण राजा के पद के प्रलोभन की तो कोई बात ही नही की जा सकती। भरत के धैर्य का महासागर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का पद पा कर भी विचलित न हो सकेगा ।

यहाँ गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से उत्पन्न हुई भरत की अनन्त धवल धीरता को क्षीरसागर की तरह तथा विधि, हरि तथा हर के पदों को खटाई के कुछ कणो के समान देखा है । भरत की धीरता के धवल क्षीरसागर के सम्मुख विधि, हरि तथा हर के पद खटाई के दो-तीन कणो की तरह है। जिस तरह खटाई के दो-तीन कणों से दूध का समुद्र नही प्रभावित होता उसी तरह भरत के धैर्य का उनके विमल विज्ञान और वैराग्य का धवल समुद्र ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के पदों को पा कर भी नही प्रभावित हो सकता । विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के स्वभाव को भरत के जीवन के चित्रो के द्वारा गोस्वामी जी समझा देना चाहते है । इस सोपान के नायक के जीवन के भीतर विमल विज्ञान और विमल वैराग्य, परीक्षा की कठोर अग्नि मे तप कर चमक उठे है। उनकी पवित्रता की साक्षी देने के लिए स्वयं भगवान् राम ने लक्ष्मण से चित्रकूट मे भरत के आने के पहले कहा है—"लखन तुम्हार सपथ पितु आना, सुचि सुबधु नहि भरत समाना * ।" राम ने लक्ष्मण की और पिता के सम्मान की शपथ ले कर भरत के शील की साक्षी यहाँ दी है ।

राम ने आगे और कहा है—'दूध श्रेष्ठ गुण वाला तथा जल हीन गुण वाला होता है, पर ब्रह्मा की रचना मे वे दोनों मिले हुए है। सूर्यवश के सरोवर मे भरत हस की तरह है । जन्म ले कर गुणदोषो को उन्होने अलग-अलग कर दिया है। गुणरूपी दूध को ले कर अवगुण रूपी जल को उन्होंने छोड़ दिया है । उनके यश से जगत् प्रकाशित हो गया है § ।'

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३० के पहले । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३० । $ वही । * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३० के बाद । § वही ।

भरत के गुण, शील और स्वभाव मे इतना प्रभाव है कि भगवान् राम उनका ध्यान करके प्रेम के समुद्र मे मग्न हो गये । उनकी इस दशा को देख कर गोस्वामी जी के देवताओ ने राम से कहा है—'यदि भरत का जन्म न होता तो सम्पूर्ण धर्म की धुरा को कौन अपने कन्धे पर उठाता । भरत के गुणों की कहानी कविकुल के लिए अगम्य है । आपके बिना उसको कौन जान सकता है ‡ ।' पवित्रता की अनत गम्भीरता को अनत गम्भीर पवित्रता का शील ले कर ही मनुष्य पहचान सकता है । अनत पवित्रता की निवासभूमि राम मे थी । इसीलिए भरत के शील की गम्भीरता का उन्हे पता था ।

भगवान राम के चित्रकूट के निवासस्थल को गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान की राजधानी के रूप मे देखा है । भगवान राम के चित्रकूट के निवासस्थल की एक राज्य के रूप मे कल्पना करके रूपक की पद्धति के द्वारा गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । 'राम के निवास के पास वन की सम्पत्ति इस तरह चमक रही है, जिस तरह आदर्श राजा को पा कर सुखी प्रजा चमकती है । इस राज्य मे विमल वैराग्य मन्त्री है । विमल विज्ञान (विवेक) राजा है । सुन्दर वन ही उस राज्य का पावन प्रदेश है । यम और नियम योद्धा है । पर्वत राजधानी है । सुमति के भीतर उत्पन्न हुई शान्ति ही इस प्रदेश की पवित्र और सुन्दर रानी है । राम के चरणो मे लगे हुए मन का भाव ही सब राज्यागों से सम्पन्न सुन्दर राजा है । विवेक रूपी राजा की सहायता से मोह रूपी राजा की सेना को जीत कर इस पुर मे सुख-सम्पत्ति और सुन्दर समय अकटक राज्य करते है † ।' राम का यह राज्य विमल विज्ञान और वैराग्य का ही राज्य है । इस राज्य की सीमा मे राम के चरणों के चिह्न देख कर भरत को इतना हर्ष हुआ जितना कि रक को पारस पा कर होता है । भरत के इस विमल विज्ञानमय प्रेम का तुलसी ने इस प्रकार वर्णन किया है—'प्रेम अमृत है, विरह मन्दराचल के समान है, भरत गम्भीर समुद्र की तरह है । उसे मथ कर सुर और साधुओं की भलाई के लिए कृपासिन्धु रघुवीर प्रकट हुए $ ।' भरत के समान महात्माओं के हृदय-समुद्र जब आदर्श का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो जाते है तब उसकी पुकार से भगवान् के अवतार होते है । स्वर्गीय जीवन इसी आदर्श के गम्भीर समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होता है । आदर्श का निरन्तर मनन (मंथन) स्वर्गीय जीवन को उत्पन्न कर देता है ।

स्वर्गीय जीवन की उत्पत्ति की बड़ी सुन्दर प्रक्रिया गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है । उनके अनुसार, स्वर्गीय जीवन को, विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के अनत समुद्र को पृथ्वी पर उतार लेने के लिए साधक का हृदय भी अनत समुद्र के समान व्यापक, गम्भीर और उदार होना चाहिए । स्वर्गीय जीवन के अभाव को पृथ्वी पर देख कर यह अनत महासागर के समान हृदय जितना अधिक व्याकुल होगा, उस अभाव की पूर्ति करने के लिए स्वर्गीय जीवन, परमात्मा, उतनी ही शीघ्रता से पृथ्वी पर उतर आएगा । भरत का

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २३१ के बाद । † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २३४ के पहले । $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३७ ।

हृदय इसी तरह विराट् महासागर था। उसमें अनंत आदर्श को पृथ्वी पर उतार लेने के लिए व्याकुलता उत्पन्न हो गयी थी। इसीलिए विरह रूपी मन्दराचल के मंथन द्वारा उसमें से प्रेम के अमृत को ले कर भगवान् राम पृथ्वी पर उतर आये। स्वर्गीय जीवन चारों तरफ छा गया। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के समुद्र से जगत् का जीवन आप्लावित हो गया।

स्वर्गीय जीवन का यह आदर्श केन्द्र जिस स्थान में निवास करता है उसके चारों ओर विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का पावन प्रकाश छाया रहता है। इसीलिए भगवान् राम के आश्रम में भरत के प्रवेश का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—'करत प्रवेश मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथु पावा ‡।' उस आश्रम में प्रवेश करते ही भरत विमल विज्ञान और वैराग्य की अभेदानुभूति की समाधि में मग्न हो गये। चित्रकूट की उस सभा मे मुनियों के बीच मे सीता और राम ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे ज्ञान की सभा मे भक्त और भगवान् सशरीर उतर आये हों †।'

गोस्वामी जी की राम-भक्ति में ज्ञान और प्रेम का सन्तुलन ही पग-पग पर दृष्टि-गोचर होता है। भक्ति और भगवान् की ज्ञानमय अनुभूति ही तुलसी के विमल विज्ञान के सिद्धान्त के भीतर स्थान पाती है। बिना ज्ञान के भक्ति की स्थिति को गोस्वामी जी स्वीकार ही नही करते। इसीलिए उनकी भक्ति केवल अन्धकारमय आवेश नही, प्रकाश-मय जागरूकता है। उसके कारण व्यक्ति मूर्छा के अन्धकार मे नही, ज्ञान के प्रकाश के आलोक मे प्रवेश पा लेता है। इस ज्ञान के प्रकाश के आलोक का स्वरूप 'सियाराममय सब जग' $ की अभेदानुभूति का प्रकाश है जो 'छान्दोग्य' के ऋषि को 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' * में अनुभूत हुआ था।

भरत का राम-प्रेम विराट् आनन्द की अभेदानुभूति की प्रकाशमय समाधि है। इस अभेद की अनुभूति मे वैयक्तिक जीवन के हर्ष-शोक, सुख-दुःख सब समाप्त हो जाते है। केवल विराट् आनन्द का प्रकाश ही अवशिष्ट रह जाता है। इसी स्थिति मे भरत का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—'सानुज सखा समेत मगन मन, बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख गन §।' भक्ति की इस सीमा पर पहुँचे हुए व्यक्ति के भीतर भगवान् के सान्निध्य का अनुभव करके, भगवान् से मिल कर जिस आनन्द का अनुभव होता है वह कविकुल के कर्म, मन और वाणी के लिए अगम्य होता है। जब तक कवि भी कर्म, मन और वाणी से इस आनन्द का अनुभव स्वतः न कर ले तब तक इस मिलन-प्रीति का वर्णन वह नही कर सकता। परम प्रेम की इस अवस्था को प्राप्त करके, मन, बुद्धि और चित्त अहकार को खो देते है। अपने अस्तित्व को भूल जाते हैं—"परम प्रेम पूरन दोउ भाई, मन, बुधि, चित अहमिति बिसराई ×।" गोस्वामी जी ने इस परम प्रेम की चर्चा करते

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३८। $ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। * छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ३, खड १४, कडिका १। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३८ के बाद। × रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३९ के बाद।

हुए लिखा है—'सुप्रेम को कौन व्यक्त कर सकता है। वाणी और बुद्धि तो उस प्रेम को पा ही नही सकते। उन्ही के धर्म (शब्द और अर्थ) कवि का सच्चा बल होते है। वे इस प्रेम की छाया भी नही प्राप्त कर सकते। ताल की गति का अनुसरण करके ही नर्तक नाचता है पर असीम प्रेम तो ताल, लय और गति सब का अतिक्रमण कर जाता है। भरत-रघुवर का स्नेह अगम है। वहाँ तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव का मन भी नही पहुँच पाता ‡।' विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की निर्मलता के भीतर इसी प्रकार के प्रेम का विकास होता है। गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के पूर्णपात्र अपने नायक भरत के भीतर इसी परम पावन प्रेम का दर्शन किया है। अपने नायक को, जो परम भक्त हो चुका है, गोस्वामी जी ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के ऊपर स्थान दिया है।

निश्छल प्रेम का प्रवाह आत्मविस्मृति की समाधि है। इस निश्छल प्रेम का प्रवाह चित्रकूट मे इतना तीव्र था कि उसमे पड़ कर आनन्दमग्न लोग न किसी से कुछ कहते थे, न पूछते थे। सब लोग मन की निश्चल अवस्था पर पहुँच चुके थे, इस अवस्था पर पहुँचे हुए मन को समाधि के निश्चल मन के समकक्ष गोस्वामी जी ने देखा है। पतजलि के योगसूत्र के अनुसार योग चित्त की वृत्तियो का निरोध है—"योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः †। इस प्रेमयोग की अवस्था मे भी मन की गति का निरोध गोस्वामी जी ने देखा है। उनके अनुसार मन जब प्रेम से भर जाता है तब वह अपनी गति के लिए रिक्त हो जाता है। उसकी गति उसमे अवशिष्ट नही रह जाती। उसकी गति रुक जाती है। उसकी वृत्तियो का निरोध हो जाता है—'कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूछा, प्रेम भरा मनु निज गति छूछा $।'

प्रेम के प्रभाव से अणु और महान् दोनों समान हो जाते है। प्रेम के इस आलोक मे ऋषि वसिष्ठ के भीतर से भी जातिगत भेद दूर हो जाता है। और विमल विज्ञान का आलोक उसका स्थान ले लेता है। प्रेम से पुलकित हो कर अपना नाम बता कर केवट दूर से ऋषि को दडवत् प्रणाम करता है, पर रामसखा को ऋषि बरबस हृदय से लगा लेते है। गोस्वामी जी ने इस स्थिति को व्यक्त करने के लिए उत्प्रेक्षा के बडे सुन्दर, सीमित, पर हृदय को छूनेवाले शब्दो का प्रयोग किया है—"रामसखा रिषि बरबस भेंटा, जनु महि लुठत सनेह समेटा *।" पृथ्वी पर पड कर प्रणाम करता हुआ केवट ऋषि को ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्नेह भूमि पर गिर कर धूल मे बिखर गया हो। उस बिखरी हुई प्रेम की अमूल्य निधि को ऋषि ने समेट कर हृदय से लगा लिया। इस स्थिति को समझाते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—"रघुपति भगति सुमगल मूला§।" राम की भक्ति सब मगलों की जननी है। उसे प्राप्त करके जीव जगत् के भेदों के ऊपर उठ कर विमल विज्ञान के आलोक से आलोकित हो उठता है। गोस्वामी जी ने कहा है—'केवट के समान

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २३९ के बाद। † पातजल दर्शन, समाधिपाद, सूत्र २ $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २४१ के पहले। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २४१ के बाद। § वही।

नीच कोई नही है। वसिष्ठ के समान ससार मे बड़ा भी कोई नही है। पर इस केवट को देख कर मुनिराज इससे इतने अधिक आनन्द की अनुभूति के साथ मिले जितना आनन्द उन्हे लक्ष्मण से भी मिलने से नही हुआ। यह केवट के भीतर स्थान पाने वाली सीताराम की भक्ति के प्रताप का प्रत्यक्ष प्रभाव है‡।'

विमल विज्ञान के सिद्धान्त के भीतर ब्रह्म की सर्वव्यापिनी अद्वैतता का सकेत, गोस्वामी जी ने भगवान् राम की सर्वव्यापकता की अलौकिक शक्ति दिखा कर यहाँ फिर से दिया है। राम ने लोगों को पीड़ित समझ कर लक्ष्मण के साथ एक ही पल मे सबसे अलग-अलग और एक ही साथ भेट की और उनके भावों की अलग-अलग अभिलाषाओं को पूर्ण कर दिया। सब का दारुण दु.ख दूर हो गया। इस बात को दार्शनिक अभेदवाद और सर्वव्यापकतावाद की अद्वैतता से गोस्वामी जी ने बड़े स्वाभाविक उपमान वाक्य के द्वारा समझा दिया है—"यह बडि बात राम कै नाही, जिमि घट कोटि एक रबि छाही†।" सर्वव्यापी राम के लिए यह कोई बडी बात नही है। जिस तरह जल से भरे हुए करोडों घडों मे सूर्य का बिम्ब एक साथ दिखाई पड़ जाता है उसी तरह सब चेतन और प्रेम-जल से भरे हुए जीवो के भीतर सर्वान्तर्यामी राम ब्रह्म एक साथ ही दिखाई पड गया। एक पल मे ही राम उन सब लोगों से मिले।

इसी दृष्टिकोण से सीताराम की अभिन्नता और उनकी सर्वव्यापकता का सकेत देने के लिए गोस्वामी जी ने इसी प्रकरण मे सीता के भी बहुरूपों की चर्चा की है—"सीय सासु प्रति वेष बनाई, सादर करइ सरिस सेवकाई। लखा न मरमु राम बिनु काहू, माया सब सियमाया माहू$।" जितनी सासे थी सीता ने उतने ही रूप बनाये और सब की एक ही तरह से सेवा की। इस रहस्य को राम के सिवा किसी ने न जाना। ससार की सम्पूर्ण माया सीता की माया मे ही रहती है। सीता और राम के लौकिक और अलौकिक स्वरूप को समझा देना भी तुलसी की विमल विज्ञान सपादन योजना के भीतर है। अद्वैत के मायाविशिष्ट हो जाने का पूरा स्वरूप इसी प्रकार गोस्वामी जी ने अपनी जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उसके अद्वैत रूप की अनन्तता तथा मायाविशिष्ट रूप की मर्यादित सान्तता दोनों को अनुकूल अवसर पर गोस्वामी जी दिखाते गये है। अपनी इस पद्धति के द्वारा भ्रम मिटा कर लोगों मे विमल विज्ञान की उत्पत्ति कर देना गोस्वामी जी का लक्ष्य है।

इसी बीच मे राम के लौटने और न लौटने के असमजस मे भरत पड़े रहे। चित्रकूट की सभा प्रारम्भ हुई। यहाँ राम के व्यक्तित्व और उनके जन्म के प्रयोजन को सभा के सामने वसिष्ठ से रखवा कर विमल विज्ञान के एक परिणाम की सिद्धि गोस्वामी जी ने की है। 'धरम धुरीन भानुकुल भानू, राजा रामु स्वबसु भगवानू*।' से अवतार के व्यक्तित्व का तथा 'सत्यसध पालक स्रुति सेतू, रामजनमु जगमगल हेतू§।' से उसके प्रयोजन की

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २४२ और उसके पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २४२ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा २५० के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २५२ के बाद। § वही।

ओर सकेत कर दिया गया है। राम, माता-पिता और गुरु के आज्ञापालक, दुष्टों का दमन करने वाले तथा देवताओं के हित की सिद्धि करने वाले है। नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ का ठीक-ठीक रहस्य राम को छोड और कोई नही जानता। इन सबका विमल विज्ञान राम को ही है‡। गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान को अध्यात्म दर्शन तथा व्यवहार-दर्शन—दोनो के सम्यक् ज्ञान के लिए प्रयुक्त किया है और इन दोनो को ले कर ही विशिष्टाद्वैत का दर्शन अग्रसर होता है। अद्वैत के साथ अध्यात्म-दर्शन तथा विशिष्ट के साथ व्यवहार-दर्शन सबद्ध हो जाता है। चित्रकूट की यह सभा व्यवहार-दर्शन का सम्यक् ज्ञान या विमल विज्ञान प्रस्तुत करती है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य और दिक्पाल, माया, जीव, कर्म, सम्पूर्ण काल, शेषनाग, पृथ्वी के राजा इत्यादि शक्तियाँ, निगम और आगमों के द्वारा बतायी हुई योग की सिद्धियाँ, विचार करके देखने पर राम की आज्ञा सब के सिर पर है†। यह तुलसी के वसिष्ठ के द्वारा प्रस्तुत अद्वैत की शक्ति है। 'राखे राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ $' मे वसिष्ठ ने विशिष्टाद्वैत अवतारी राम की चर्चा की है। अद्वैत परमार्थ की सिद्धि करता है, विशिष्टाद्वैत अवतारी राम ससार के स्वार्थ को भी सिद्ध कर देता है।

विमल विज्ञान और वैराग्य के आधार पर चित्रकूट की सभा मे जीवनदर्शन के विराट् आदर्श की स्थापना की गयी है।

अवतारी राम को अयोध्या के राजा की तरह वापस लौटा ले जाने की भूमिका प्रस्तुत करके वसिष्ठ सभा का परामर्श चाहते है। यहाँ भरत और शत्रुघ्न के विमल वैराग्य की बहुत बडी परीक्षा हुई। जब मुनि के राय माँगने पर भरत ने कहा कि हमारे ही कारण राम की यह दशा हुई और हमारा यह और बड़ा दुर्भाग्य है कि हमे ही आगे का उपाय सुनाना पडेगा*। इस पर वसिष्ठ ने यह प्रस्ताव रखा कि भरत और शत्रुघ्न वन चले जाएँ और सीता, राम तथा लक्ष्मण को वापस कर दें। इस प्रस्ताव को सुन कर भरत और शत्रुघ्न का सिद्ध विमल वैराग्य मन के भीतर से निकल कर सारे शरीर पर अपने अनुभावो के रूप मे प्रकट हो गया। उनके शरीर आनन्द से भर गये। मन प्रसन्न हो उठे तथा शरीरों पर तेज छा गया। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि पिता फिर से जीवित हो गये और राम राजा हो गये§। भरत ने कहा—'कानन करउ जनम भरि बासू, एहितें अधिक न मोर सुपासू×।'—'सीताराम अन्तर्यामी है और आप सर्वज्ञ है। यदि आपने सत्य ही ऐसा प्रस्ताव किया है तो उसे सत्य कीजिए। भरत जीवन भर के लिए वन मे रहने के लिए प्रस्तुत है+।'

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २५२ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २५३। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २५४। § रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा २५४ के बाद। × वही। + रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २५५।

गोस्वामी जी ने भरत के विराट् वैराग्य को यहाँ बडे सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—भरत का गौरव महासागर की तरह है। मुनि की बुद्धि अबला नारी की तरह उसके किनारे ही खडी रह गयी। पार जाने का कोई साधन उसे नहीं मिला ‡।

यहाँ से यह सभा राम के पास आती है। वसिष्ठ राम से प्रस्ताव करते है—'आप सबके हृदय मे निवास करने के कारण सबकी भावनाओं को जानते है। ऐसा उपाय आप बताएँ जिससे सब पीडितों का हित हो। पीड़ित स्वय अपनी पीडा दूर करने के उपाय नहीं बता सकता †।' सर्व समर्थ राम का विमल वैराग्यपूर्ण शील यहाँ प्रकट हो जाता है। नम्रता के कारण वे राय देने की अपनी समर्थता का उचित प्रदर्शन भी छोड देते है, और भार गुरु पर डाल देते है—उनकी आज्ञा मानने को हर तरह से प्रस्तुत हो कर। मुनि भरत की प्रार्थना स्वीकार करने को कहते है। राम, पिता और मुनि की शपथ ले कर कहते है कि ससार मे भरत के समान भाई नही पैदा हुआ। मै भरत के कहने के अनुसार करने को प्रस्तुत हूँ $।

इस पर भरत ने राम पर घटी वही दुर्घटना दुहरायी, दुर्भाग्य ने जिसके लिए उन्हें बरबस कारण बना लिया था, और शोक मे मग्न हो गये। उनके इस शोक को दूर करने के लिए राम कहते है—'मेरे मत मे ससार के पवित्र ख्याति वाले सब लोगों से तुम श्रेष्ठ हो। जिनको गुरुओं और साधुओं की सभा का लाभ नहीं मिला है, वे ही माता को दोष दे सकते है। जो लोग तुम्हारे नाम का स्मरण कर लेंगे, उनमे लोक में यश प्राप्त करने वाला शील तथा परलोक मे सुख देने वाला धर्म उत्पन्न हो जाएगा। तुम्हारे शील का स्मरण करते ही सब अमगल और पापों के प्रपच नष्ट हो जाएँगे। शिव को साक्षी बना कर मै सत्य कहता हूँ कि पृथ्वी तुम्ही से रक्षा पा कर रक्षित है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य की रक्षा की और मेरे प्रेम के लिए अपना शरीर छोड दिया। उनकी आज्ञा का उल्लघन करने मे मुझे दुःख होता है, उससे भी अधिक मुझे तुम्हारा सकोच है। इस पर भी गुरु ने मुझे तुम्हारी ही बात मानने की आज्ञा दी है। मै प्रस्तुत हूँ। मन को प्रसन्न करके और सकोच को छोड़ कर जो कहो मै वही करूँगा *।

राम को इस तरह अपने विमल वैराग्य और विज्ञान से वश में करने वाले भरत के चरणों पर देवताओं ने अपने अनुराग की अंजलि अर्पित कर दी। देवगुरु बृहस्पति ने देवताओ को बताया कि भरत के नैसर्गिक विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से राम उनके वश मे है। भरत मर्यादा पुरुषोत्तम की छाया है §।

आदर्श सेवक भरत ने व्यवहार-दर्शन के अपने विमल विज्ञान और वैराग्य से इस बात का निश्चय कर लिया कि अपने स्वार्थ के लिए राम के समान अनत कृपा वाले

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २५५ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २५६ और उसके बाद। $ रामचरितमानस अयोध्याकाड, दोहा २५८ के पहले। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २६२ के पहले से दोहा २६३ तक। § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २६४ के पहले।

स्वामी को सकट मे नही डालना चाहिए। उनकी आज्ञा मे ही हमारी भलाई होगी ‡। ऐसा निश्चित करके उन्होंने जो कुछ कहा उसमे उनके व्यवहार दर्शन का विमल विज्ञान स्पष्टत. परिलक्षित होता है। उन्होने कहा—'अपने ऊपर गुरु और स्वामी का हर तरह का स्नेह देख कर मेरे मन की व्याकुलता मिट गयी। अब मुझे कोई सन्देह नही रह गया है। आप तो दया के समुद्र है ही। अब आप वही करें जिससे आपके इस जन का हित भी हो और आपके मन में किसी प्रकार का क्षोभ भी उत्पन्न न हो †। सेवक के भीतर धर्म पालन के लिए जिस विमल वैराग्य की आवश्यकता होती है वह भी भरत के शब्दो मे स्थान पा गयी है। ऊपर के सिलसिले मे ही वे राम से कहते है—'जो सेवक स्वामी को सकोच मे डाल कर अपने हित की सिद्धि करता है वह नीच बुद्धि का होता है। उसके भीतर विमल विज्ञान नही होता। सेवक का हित तो सेवा-धर्म की पूर्ति मे ही सिद्ध होता है। स्वामी की सेवा की पूर्ति ही उसका परम कर्तव्य तथा उसके व्यक्तित्व का परमोच्च विकास है। इस सेवा को उसे केवल सेवा के लिए ही करना चाहिए। इस सेवा के भीतर अपने सुख और लोभ की भावना नही होनी चाहिए। आप यदि अयोध्या लौट चलें तो सब लोगों का स्वार्थ तो आपके समान आदर्श राजा को पा कर सिद्ध हो जाएगा, पर आपकी आज्ञा का पालन करना इससे करोडों गुना अधिक अच्छा है। स्वार्थ और परमार्थ का सार यही है $।'

'यह स्वारथ परमारथ सारू' * कह कर भरत यही बताना चाहते है कि अपूर्ण मानव स्वार्थ ही देखता है, पर पूर्ण मानव (मर्यादा पुरुषोत्तम) का हर कार्य परम अर्थ (परमोच्च आदर्श) को सामने रख कर होता है। इसीलिए अपूर्णमानव को पूर्णता प्राप्त करने के लिए पूर्णमानव के आदेश के अनुसार कार्य करना चाहिए। पुरुषोत्तम का अनुसरण करने की यह प्रवृत्ति विकासोन्मुख मानव के भीतर सम्पूर्ण सुन्दर कार्यो के परिणाम के रूप मे पैदा होती है। पुरुषोत्तम का यह अनुवर्तन ही सुन्दर आदर्शो का शृंगार है §।'

इसके बाद भरत कहते है—'एक प्रार्थना मै करता हूँ। यदि आपको उचित मालूम पडे तो स्वीकार कर लीजिए। तिलक की सम्पूर्ण सामग्री मैं सज्जित कर लाया हूँ। आपका मन यदि मानता है तो हमारे इस प्रयास को सफल कर दीजिए। शत्रुघ्न के साथ मुझे वन भेज कर सब लोगो को सनाथ कीजिए, नही तो दोनों भाइयों को वापस भेज दीजिए और मुझे अपने साथ ले चलिए, अन्यथा हम तीनों भाई वन चले जाएँ आप सीता के साथ अयोध्या चले जाइए। आप का मन जिस बात से प्रसन्न हो, वही करें। आपने निर्णय का पूरा भार मुझ पर छोड़ दिया, पर पीडित होने के कारण मेरे भीतर नीति और धर्म का ज्ञान नही रह गया है। मै तो स्वार्थ की बात ही करूँगा। स्वामी की आज्ञा सुन कर जो सेवक मुहजोरी करता है उसे देख कर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मै अवगुणो का अगाध महासागर हूँ और आपके स्नेह की प्रशंसा तो महात्मा लोग भी

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २६५ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २६६ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २६७ के पहले। * वही। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २६७ के पहले।

करते हैं। अब तो मुझे वही अच्छा लगेगा जिससे स्वामी का मन किसी तरह असमंजस में न पडे। आपके चरणों की शपथ ले कर मैं पूरी सद्भावना से कहता हूँ कि जगत् के मगल के लिए एक ही उपाय है—आप सकोच छोड़ कर प्रसन्न मन से जो आज्ञा देंगे उसे सब लोग नतमस्तक हो कर स्वीकार करेंगे और सब कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी ‡।'

सात्त्विक स्वभाव वाले व्यक्ति अपने सामने अधिक ऊँचा आदर्श देखते है तो उन्हे उस आदर्श के सामने अपनी हीनता का अनुभव हो जाता है। भक्ति के क्षेत्र में इस निरभिमानता की बड़ी आवश्यकता होती है। सात्त्विक शील वाले व्यक्ति आदर्श के प्रति विद्रोह का अपने साथ कोई सम्बन्ध देख कर पीडित होते है। वैसी ग्लानि के समय सात्त्विक बुद्धि अपने भीतर हीनता ही देखती है और आदर्श व्यक्ति मे सब प्रकार के त्याग और महत्त्व उसे दिखाई पड़ते है। इस काड का नायक सात्त्विक शीलवान् है; इसीलिए पवित्र ग्लानि और निरभिमानता का उसे अनुभव होता है।

विमल विज्ञान, विमल वैराग्य तथा हठपूर्ण वैराग्य और हठयोग में भी गोस्वामी जी ने सम्बन्ध स्थापित किया है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के सम्मिलित प्रभाव से जीवन मे जो सात्त्विक प्रेम और उपासना के क्षेत्र मे जो सहज अनासक्तिमय प्रेमभक्ति पैदा होती है, उसे गोस्वामी जी हठयोग और हठपूर्ण वैराग्य से श्रेष्ठ स्थान देते है। इसीलिए चित्रकूट मे जब अयोध्या के निवासी स्नान करके देवताओं की पूजा के बाद उनसे वरदान माँगते है कि गुरुओ के समाज और भाइयों के साथ राम अयोध्या में राज्य करे, तब उस स्थिति का व्यापक प्रभाव दिखाने के लिए गोस्वामी जी ने कहा है—'अयोध्या निवासियों की स्नेहमय वाणी को सुन कर ज्ञानी मुनि लोग योग और वैराग्य की निन्दा करते है †।' गोस्वामी जी बुद्धियोगजन्य ज्ञान से हृदययोगजन्य प्रेम को अधिक महत्त्व देते है। इसीलिए उन्होने अपनी उपासना-पद्धति में ज्ञान और भक्ति, बुद्धि और हृदय दोनो का समन्वय कर लिया है। उनके अनुसार बिना प्रेम के ज्ञान व्यर्थ है। उनकी भक्ति मे ज्ञान और प्रेम दोनों है। अद्वैत का ज्ञान और विशिष्टाद्वैत के अवतारी ब्रह्म के लिए ज्ञानप्रेम-समन्वित भक्ति ही तुलसी की विचारधारा का निचोड है। अवतार के लिए बुद्धिजन्य श्रद्धा तथा हृदयजन्य प्रेम रहता है। इन्ही दोनों के योग से प्रेमभक्ति का प्रादुर्भाव होता हैं।

इस तरह के प्रेम मे और योग की समाधि मे कोई विशेष अन्तर नही रहता। विमल वैराग्य व्यक्ति से अनुपम त्याग कराता है। इस प्रकाश मे छोटे से छोटा त्याग भी प्रेम के आलोक मे सुन्दरतम हो जाता है। राम के अनन्त कर्म-सौन्दर्य के प्रति जनक के भीतर जो श्रद्धा है उसने उनके भीतर राम के प्रति अनन्त प्रेम भी पैदा कर दिया है। राम पावन है और जिन स्थानो मे वे निवास करते है वे भी परम पवित्र हो जाते है। यह विमल विज्ञान जनक के भीतर है। इस विज्ञान के आधार पर चित्रकूट को भी वे पवित्र

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २६७ के पहले से २६८ तक। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २७२ के बाद।

मानते है और दूर से ही जब पर्वत दिखाई पड़ जाता है तो राम के प्रति श्रद्धा और प्रेम के कारण तथा चित्रकूट के लिए पावनत्व की भावना के कारण वे चित्रकूट को प्रणाम करके अपना रथ छोड़ कर पैदल चलने लगते है। यह भी विमल वैराग्य का एक उदाहरण है। राम के दर्शन के लिए उत्साह के कारण उनके भीतर किसी प्रकार के पथ-श्रम और कष्ट की चेतना नहीं रह जाती। प्रेमयोग की समाधि के कारण ही ऐसा हुआ है। मन जब राम के ध्यान मे मग्न हो गया, तब उसमे से सब वेद्यान्तर विगलित हो गये। इस स्थिति का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—'मन तह जह रघुबर वैदेही, बिनु मन तन दुखु सुख सुधि केही ‡।"—मन तो वहाँ है जहाँ रघुवर और वैदेही है। बिना मन के शरीर के सुख दुःख की स्मृति किसे हो सकती है।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से उत्पन्न हुआ प्रेम दार्शनिक ज्ञान और विराग की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और शक्ति सम्पन्न होता है।

अयोध्या, मिथिला और चित्रकूट के समाजों के मिल जाने से भगवान् राम के आश्रम का रूपक के आधार पर गोस्वामी जी ने बडा भव्य वर्णन किया है। वे कहते है—'आश्रम एक सागर की तरह हो गया। वहाँ व्याप्त हो जाने वाला शान्त रस भरे हुए पवित्र जल की तरह है। मिथिला और अयोध्या की सेना मानो करुणा की नदी है और उसको भगवान् राम अपने साथ लिये जा रहे हैं। ज्ञान और विराग के किनारों को वह डुबाती हुई चली जा रही है। सशोक वचन इस नद से नाले की तरह मिल रहे है। शोकपूर्ण उच्छ्वास के रूप मे वायु की लहरें धीरजरूपी तट-तरु को भग कर रही है। विषम विषाद इसकी तीव्र धारा है। भय, भ्रम इत्यादि इसके अनत भँवर और आवर्त है। बुद्धिमान् मनुष्य केवट है। विद्या उनकी बड़ी नाव है। पर वे इस नाव को आगे बढा नही सकते, किंकर्तव्यविमूढ हो गये है। बेचारे वनवासी कोल-किरातो के हृदय, यह दृश्य देख कर हारे हुए पथिक की तरह थक गये है। सेना की यह नदी जब आश्रमरूपी समुद्र से आ कर मिली तब वह भी आकुल हो उठा है। दोनों राजसमाज शोक से व्याकुल हो गये है। न किसी के भीतर ज्ञान रह गया, न धैर्य और न लज्जा। शोक के समुद्र मे डूब कर सब लोग यही सोच रहे है कि दुष्ट विधाता ने यह सब क्या कर दिया †।'

यहाँ पर गोस्वामी जी ने कहा है कि स्नेह की नदी को कोई पार नही कर सकता $। गोस्वामी जी की इसी दृष्टि ने विशिष्टाद्वैती दृष्टि से इस स्नेह की नदी को राम-स्नेह की नदी के रूप मे परिवर्तित कर लिया है। अद्वैत चिन्तन की धारा कृपाण की तेज धार की तरह प्रतीत हुई और उस पर चलना साधारण जन के लिए अस्वाभाविक प्रतीत हुआ क्योंकि इस धार पर तो विरला अभ्यासी ही चल सकता है। यह सिद्धि अपवाद हो सकती है, नियम नही। पर शील का विकास सर्वसाधारण के लिए अनिवार्य है। इसी-

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २७३ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २७४ और बाद वाला छन्द। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, सोरठा २७५ के पहले का छन्द।

लिए अद्वैत चिन्तनधारा को छोड कर आचार्य रामानुज विशिष्टाद्वैत की ओर चले आये। उनके अनुसार माया भी पवित्र हो जाती है, यदि वह राम की दासी की तरह काम करने लगे। वस्तुत: वह ऐसा ही कर रही है, पर साधारण जीव उसे समझता नही, इसीलिए उसे कष्ट है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय मे मायाजन्य रग और रेखाओं को सत्य मान लिया गया। पर सब रगों और रेखाओं के भीतर एक रूप देखा गया, वह रूप था सीता और राम का, जो कहने मे भिन्न था पर था अभिन्न। विश्व मे चारों तरफ दिखाई पडने वाले रूपों की तरफ आसक्तिमय प्रेरणा से झुकने वाले मन को सीता और राम की तरफ भक्ति की प्रेरणा से आकृष्ट किया गया। इस तरह वासना से कलुषित दृष्टि भक्ति से पवित्र बन गयी।

रूपाकर्षण और स्नेहाकर्षण की स्वाभाविक प्रवृत्ति सगुण उपासना और प्रेम भक्ति के रूप मे गोस्वामी जी ने विकसित कर ली है। रूपों के आधार पर टिका हुआ स्नेह तथा उसकी मिलन और वियोग की दो स्थितियाँ भी इसी तरह भक्ति के साँचे मे ढाल ली गयी। जब दृष्टि का स्वभाव रूप को देखना है, तब उसकी स्वाभाविकता के आधार पर उसे राम के रूप मे बाँध दिया गया। इसी तरह जब मनोविज्ञान के सिद्ध भारतीय विचारकों को यह दिखाई पडा कि मनुष्य का हृदय स्वभावत: स्नेह के पथ से ही यात्रा कर सकता है—'तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की ‡।'—तब उन्होंने इस स्नेह को भी राम से बाँध कर रामभक्ति का रूप दे दिया। इस प्रकार रूपाकर्षण और स्नेहाकर्षण की दो स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ सगुण उपासना और प्रेमभक्ति की दो स्वाभाविक अवस्थाओं मे परिवर्तित कर ली गयी। जिस प्रकार अद्वैत का विकास विशिष्टाद्वैत के रूप मे हुआ उसी तरह उस अद्वैत से सम्बद्ध बुद्धिजन्य विज्ञान और विराग का विकास गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के रूप मे कर लिया, जिनके प्रकाश मे बहिर्यामी सगुण, अन्तर्यामी निर्गुण से श्रेष्ठ दिखाई पडने लगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर, रामस्नेह के आधार पर उत्पन्न हुए वियोग की पवित्र धारा से ज्ञान और विराग के दोनों तटों को गोस्वामी जी ने आप्लावित करवा दिया है†।' विमल विज्ञान और विमल वैराग्य इसी तरह राम के लिए पवित्र वियोग उत्पन्न करके स्वार्थी जीवन के मोह को समाप्त कर देते है।

सीता और राम के प्रति प्रेम, साधारण मोह और ममता का अनतव्यापी, अनंत गौरवमय रूप है। वह चिन्तनमय वेदान्ती ज्ञान को अपने प्रकाश से विमल विज्ञान का रूप दे देता है। राम के रूप के प्रति सात्त्विक और अनत आसक्ति विमल विज्ञान है तथा जगत् के रग-रूपों से सात्त्विक विरक्ति विमल वैराग्य है। सात्त्विक अनत आसक्ति के प्रभाव-क्षेत्र के भीतर उत्पन्न होने वाला वियोग भी पवित्र और अनत होता है। राम प्रेम की अनतता मे उत्पन्न होने वाले वियोग का करुण भाव विश्व की रक्षा करने वाली विश्व-वेदना का

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा २७५ के पहले का छन्द। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २७४ के बाद।

रूप है। इस तरह के पवित्र वियोग में मग्न जनक की अवस्था समझाते हुए गोस्वामी जी ने इस द्वितीय सोपान मे कहा है—'जिसके ज्ञानसूर्य से भवनिशा समाप्त हो जाती है, जिसकी वाणी की किरणो से मुनियो के हृदयकमल विकसित होते है, क्या उसके समीप मोह और ममता आ सकते है? यह तो सीता और राम के प्रेम का गौरव है जिसके सामने भक्ति का प्रकाश ले कर जनक का ज्ञान झुक गया। पावन स्नेह के आलोक मे उस ज्ञान ने विमल विज्ञान का रूप धारण कर लिया ‡ ।'

इसी के बाद गोस्वामी जी ने फिर कहा है—'वेद ने तीन तरह के जीव बताये है, विषयी, साधक और ज्ञानवान् सिद्ध। इनमे से जिसका मन राम के स्नेह से सरल होता है, सज्जनो की सभा मे उसी को गौरवपूर्ण सम्मान प्राप्त होता है। राम के प्रेम के बिना ज्ञान उसी प्रकार नही शोभित होता, जिस प्रकार कर्णधार के बिना नौका। जिस तरह कर्णधार नौका को एक निश्चित लक्ष्य की तरफ ले जाता है उसी प्रकार रामप्रेम ज्ञान को भी उसके निश्चित लक्ष्य तक पहुँचा देता है। यह निश्चित लक्ष्य है ज्ञान का विमल विज्ञान के रूप मे परिणत हो जाना, राम की भक्ति प्राप्त कर लेना, मर्यादा पुरुषोत्तम की पूर्णता प्राप्त कर लेना † ।'

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आधार पर उत्पन्न हुआ राम-चरणो के लिए यह अनुराग जगद्द्वन्द्वों को नष्ट कर देता है। मन गृह-प्रपंचों के ऊपर उठ कर, विश्वमगल तक पहुँच कर, भगवान् मे लीन हो जाता है। इसीलिए चित्रकूट के इसी प्रकरण मे मिथिला और अयोध्या के प्रेमीजन को ससार से अनासक्त देख कर गोस्वामी जी ने कहा है—राम, लक्ष्मण और वैदेही को छोड़ कर जिसे घर भाता है, उसका भाग्य ही प्रतिकूल रहता है $ ।

नारी के भीतर भी मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति इसी प्रकार का विमल विज्ञानजन्य प्रेम गोस्वामी जी ने देखा है। राम को सीता और लक्ष्मण के साथ देख कर मिथिला की रानियाँ भी व्याकुल हो गयी। उनकी आँखों में आँसू भर आये। अग शिथिल हो गये। नख से पृथ्वी को खरोंचते हुए, राम की दशा पर सोचते-सोचते सब शोकसतप्त हो गयी। गोस्वामी जी ने उनकी दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—'वे सब सीताराम के प्रेम की मूर्तियो की तरह थी। ऐसा मालूम पडता था मानो बहुत से रूप धारण करके करुणा स्वय शोकग्रस्त हो रही हो * ।' इस शोकग्रस्त नारी समाज मे धीरज के साथ सुमित्रा ने विमलविज्ञानपूर्ण बाते कही है—'ब्रह्मा की गति बडी विचित्र है; वह सृजन करके पालता और बाद मे नष्ट भी कर देता है। ब्रह्मा की मति भोली है। वह बालक की तरह बनाता और मिटाता रहता है § ।' इसी सिलसिले मे कौसल्या ने कहा है—'कर्म की गति कठिन है। शुभ और अशुभ, सब फलों को देने वाला विधाता उसे जानता रहता है। ईश्वर की

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा २७५ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २७८ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २८० के पहले। § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८० के बाद।

आज्ञा सब के सिर पर रहा करती है। विष और अमृत भी उत्पत्ति, स्थिति और लय की तीन अवस्थाओं के बन्धन मे रहते है। विषम परिस्थितियों मे व्यर्थ का सोच नही करना चाहिए, क्योकि विधाता का यह प्रपच अनादि और अवश्यभावी है ‡।'

प्रेम के गौरव को पा कर विमल विज्ञान शुष्क ज्ञान से श्रेष्ठ हो जाता है। इस विमल विज्ञान के आधार पर विकसित विमल वैराग्य से जो उदार और पावन प्रेम हृदय मे उत्पन्न होता है उसी की स्थिति गोस्वामी जी ने कौसल्या के भीतर दिखायी है। राम और सीता के प्रेम के ऊपर उठ कर उनका प्रेम सपत्नी-पुत्र भरत पर टिका हुआ है। वे सीता की माता से कहती है—'लक्ष्मण, राम और सीता वन चले जाते है तो इसका परिणाम भला छोड बुरा न होगा, पर मुझे भरत की चिन्ता हो रही है। मैंने राम की शपथ कभी नही ली; आज उसी शपथ पर कहती हूँ कि भरत के शील, गुण, नम्रता, गौरव, भ्रातृप्रेम, विश्वास और उनकी सज्जनता का वर्णन सरस्वती भी नही कर सकती। राजा ने हमसे बार-बार कहा था कि भरत कुलदीपक है। पुरुष की परीक्षा विषम परिस्थितियों मे उसके स्वभाव से ही होती है। विवेक के समुद्र आपके पति को और आपको कौन समझा सकता है, पर अवसर पा कर आप राजा को प्रेमी भरत की दयनीय दशा को समझाइए और उनसे प्रार्थना कीजिए कि लक्ष्मण को वापस करके भरत को ही राम के साथ वन भेजने की व्यवस्था करें। भरत के प्रेमी हृदय को किसी और उपाय से शान्ति नही मिल सकती। राम के लिए उनका प्रेम अतर्क्य है †।' गोस्वामी जी ने कहा है—'कौसल्या के हृदय मे भरत के लिए इस पावन और निश्छल प्रेम को देख कर सिद्ध योगी और मुनि भी ज्ञान को छोड कर प्रेम मे मग्न हो गये $।' यहाँ भी गोस्वामी जी ने प्रेम की गुरुता को धारण करने वाले विमल विज्ञान को शुष्क ज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

सीता को चित्रकूट मे तपस्विनी के वेष मे देख कर जनक के भीतर उनके विमल वैराग्य के लिए जो पूज्य बुद्धि उत्पन्न हुई, उसकी व्यजना गोस्वाजी जी ने बडे सुन्दर शब्दों मे करायी है। उन्होने सीता से कहा है—'पुत्रि, तुमने दोनों कुलो को पवित्र कर दिया। तुम्हारे धवल सुयश की चर्चा ससार मे सब लोग कर रहे है। तुम्हारी कीर्ति की धवल सरिता ने गा की पावनता पर भी विजय प्राप्त कर ली है। वह करोडों ब्रह्माण्डों मे पहुँच चुकी है। गगा से पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल के केवल तीन लोकों को गौरव प्राप्त हुआ है, पर तुम्हारी कीर्ति की सरिता ने अनत साधु समाजों के हृदयो को अपनी पावनता से पवित्र किया है *।''

भरत के विमल विज्ञान और विमल वैराग्यमय शील का मूल्यांकन गोस्वामी जी ने अपने ज्ञानी जनक के शब्दो मे भी प्रस्तुत किया है।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८० के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८१ से २८२ के बाद तक। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८२ के बाद। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८५ के बाद।

सीता को तपस्वी राम की सेवा के लिए विदा करके, समय को अनुकूल समझ कर रानी सुनयना ने चित्रकूट के शिविर मे अपने पति जनक से कौसल्या का सदेश सुना कर भरत की चर्चा की। भरत का स्मरण होते ही जनक भरत के स्नेह मे मग्न हो गये—"मूदे सजल नयन पुलके तन, सुजस सराहन लगे मुदित मन ‡।" उन्होने कहा—'भरत की कथा भवबधन को काट सकती है। उनके शील का आलोक पा कर मानव मन स्वार्थजन्य क्षुद्र वासनाओ के ऊपर उठ जाएगा। धर्म, राजनीति और वेदान्त मे बुद्धि के अनुसार मेरी गति है। परन्तु मेरी यही मति भरत की महिमा से हार कर उसकी छाया का भी स्पर्श नही कर पाती। ब्रह्मा, गणेश, शेष, शिव और शारदा, कवि, मेघावी तथा बुद्धिमान् लोगों को भरत का चरित्र और उनकी कीर्ति, उनके धर्म, शील तथा गुणों की उज्ज्वल सम्पत्ति सुनने और समझने मे सुखद मालूम पडते है। इनका माधुर्य पवित्र गगाजल और अमृत के स्वाद को भी लॉघ जाता है। भरत के गुणों की सीमा नही है। वे अनुपम पुरुष है। भरत को भरत के ही समान समझो †। भरत की अमित महिमा को राम जानते तो है, पर उसका वर्णन नही कर सकते। लक्ष्मण लौट जाएँ और भरत राम के साथ वन जाएँ, यह तो अपने लाभ की बात है। लेकिन भरत और राम की प्रीति और प्रतीति का अनुमान नहीं किया जा सकता। भरत स्नेह और ममता की सीमा है $।'

भरत के लिए राम की ममता विश्वप्रेम है और वह विशिष्टाद्वैत की ब्राह्मी-स्थिति है।

स्नेह की सीमा विश्वप्रेम है तथा ममता की सीमा विश्वात्मवाद है, जिसमे सम्पूर्ण विश्व मे हर व्यक्ति अपना ही प्रतीत होता है। राम पूर्ण समत्व की स्थिति पर रहते है *, पर वे भरत की ममता और स्नेह की पराकाष्ठा को स्वीकार करते है। मालूम पडता है गोस्वामी जी ने यहाँ विरोधाभास के द्वारा राम और भरत की प्रीति को अभिव्यक्त करना चाहा है। विमल विज्ञान के पूर्णरूप राम समता की अतिम सीमा है। ऐसा व्यक्तित्व भरत के स्नेह और ममता की सीमा को कैसे स्वीकार कर सकता है। समता और ममता विरोधी भाव है, दोनो एक ही हृदय मे नही रह सकते। पर थोडा-सा विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्नेह और ममता की अतिम सीमा अपने भीतर सम्पूर्ण को समेट लेती है। इस तरह का स्नेह और इस कोटि की ममता 'सियाराममय सब जग §' के लिए होती है। इस तरह के स्नेह और ममता की पराकाष्ठा मे और विमल विज्ञान तथा विमल वैराग्य मे कोई अन्तर नही रह जाता। राम के प्रति इस तरह के स्नेह और ममता की अपने हृदय मे सिद्धि कर लेने वाला व्यक्ति सब जग के लिए स्नेह और ममता अपने भीतर रखता है। इस विश्वव्यापिनी स्नेह और ममता के प्रकाश मे भेद की विषमता नष्ट हो जाती है और अभेद का समत्व प्राप्त हो जाता है। इसीलिए राम की समता की

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २८६ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २८६ के बाद से २८७ तक। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८७ के बाद। * वही। § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद।

अतिम सीमा और भरत के स्नेह और ममता की अतिम सीमा में कोई तात्त्विक अन्तर नही है। दोनो एक ही सत्य के दो स्वरूपों की ओर सकेत करते है। अनत समता बौद्धिक चिन्तन की पराकाष्ठा पर दृष्टि रखती है तथा अनत स्नेह और अनंत ममत्व मानस की अनत अनुभूति की अवस्थाएँ है। इस प्रकार के समत्व और ममत्व मे अभेदानुभूति की विशिष्टाद्वैती विचारधारा ही काम कर रही है। माया विशिष्ट सगुण विराट् के लिए अनत ममता तथा अद्वैत निर्गुण विराट् के प्रति अभेदानुभूति की समता की भावना की ओर गोस्वामी जी ने यहाँ सकेत किया है।

भरत के रामप्रेम की अवस्था भी ब्राह्मी स्थिति है। समत्व की अभेदानुभूति और ममत्व की विश्व प्रेमानुभूति के एक अनिर्वचनीय मिश्रित स्वरूप को ले कर गोस्वामी जी रामचरण अनुराग के पास आ जाते है, जो सब व्यक्तियो के लिए साधन का सुलभ पथ है। इस स्थिति को वे भरत की दशा के भीतर ही प्रस्तुत कर देते है उनके जनक अपनी पत्नी सुनयना से कहते है—'परमार्थ और स्वार्थ के जितने सुख हैं, बन्धन और मुक्ति की जितनी अनुभूतियाँ है, उन सब की ओर भरत स्वप्न मे भी दृष्टि नही ले जाते। राम के चरणों का स्नेह ही भरत के लिए साधन भी है और सिद्धि भी। वही पथ भी है और वही गन्तव्य भी। मुझे तो भरत का मत यही दिखाई पड़ता है ‡।' अनत आदर्श के केन्द्र के चरणो का स्नेह भी जीवन-साधना को अनतता पर पहुँचा देता है। ये सब स्थितियाँ एक ही स्थिति की ओर ले जाती है, और वह स्थिति है विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के द्वारा 'सियाराममय सब जग † ' की अभेदानुभूति की। विशिष्टाद्वैत की यही ब्राह्मी स्थिति है।

भरत के स्नेह की सिद्धि की इस अवस्था को बता कर जनक ने अपनी रानी से कहा—'राम की आज्ञा को भूल कर भी अपने मन से भरत न टालेगे $।' यहाँ पर राम और भरत के लोकादर्शों के प्रति वेदान्ती जनक और उनकी पत्नी सुनयना का प्रेम दिखाने के लिए गोस्वामी जी ने कहा है—'राम और भरत के गुणों की प्रेम से गिनती करते हुए इस दम्पति की एक रात एक क्षण की तरह बीत गयी *।' विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकाश मे सौन्दर्य के भीतर लीन हो जाने के लिए मन को जो पावनता और तन्मयता चाहिए, वह जनक और सुनयना को प्राप्त हो गयी थी, इसीलिए राम और भरत के आदर्शो की सौन्दर्यभावना मे वे इतने तन्मय हो गये कि पूरी रात एक क्षण के समान बीत गयी। यही विशिष्टाद्वैत का ब्रह्मानन्द है जो सगुण ब्रह्म के सर्वतोमुख सौन्दर्य के अनुभव से साधक को प्राप्त होता है।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्ययुक्त भक्ति को गोस्वामी जी ने ज्ञान से श्रेष्ठ माना है। इसीलिए विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के भीतर जिस भक्ति का विकास होता

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २८७ के बाद † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ७ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८८। * रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा २८८ के बाद।

है। उसकी ओर इस सोपान मे उन्होंने बार-बार ध्यान आकृष्ट किया है। जनक के आ जाने के बाद की चित्रकूट की राजसभा प्रारम्भ होने के कुछ ही पहले भगवान् राम ने उन सब लोगों की ओर वसिष्ठ जी का ध्यान आर्कपित किया जो घर-बार छोड कर उनके लिए वन मे कष्ट सह रहे थे और समस्या के हल का कोई मार्ग निश्चित कर लेने के लिए प्रार्थना की। इसका उत्तर देते हुए ऋषि वसिष्ठ ने कहा—'आपके बिना ससार के सब सुख-साज दोनो राजममाजों के लिए नरक के समान है। आप प्राणों के प्राण, जीवों के जीव तथा सुखो के भीतर के सुख है। आपको छोड़ कर जिन्हे घर अच्छा लगता है, उनका भाग्य ही खोटा है। वह सुख, धर्म और कर्म जल जाएँ जिनके द्वारा राम के चरणों के प्रति भक्ति न पैदा हो। वह योग साधना कुयोग की ही साधना होती है, जिसमे राम का प्रेम प्रधान न हो। वह ज्ञान अज्ञान के समान हो जाता है जो राम के प्रेम के माधुर्य से सिंचा हुआ न हो। अयोध्या और मिथिला के ये सब जीव तुम्हारे बिना दुखी और तुम्ही से सुखी रहते हैं। जिसके मन मे जो कुछ है उसे तुम स्वय जानते हो। तुम जैसी आज्ञा दोगे उसे वे अपने झुके हुए मस्तको से स्वीकार करेगे ‡।'

इन पंक्तियो मे गोस्वामी जी ने एक बार फिर से योग और ज्ञान की अपेक्षा प्रेमभक्ति को ही श्रेष्ठ स्वीकार किया है और उसके भीतर उत्पन्न होने वाली शरणागति का विवेचन किया है, जिसके द्वारा जीव अपनी सब बुराइयों से मुक्त हो कर राम के आदर्शो की शरण मे चला जाता है और उसी साँचे मे ढल जाता है।

कोमल और निश्छल शील, गोस्वामी जी के अनुसार रूखे ज्ञान और वैराग्य से श्रेष्ठ होता है। निश्छल स्नेहमय इस शील से ज्ञान का विवेक भी बढता है। उपर्युक्त समस्या के समाधान का भार विदेह पर छोडते हुए ऋषि वसिष्ठ ने उनसे कहा—'आप ज्ञान के कोष, सज्जन, पवित्र, धर्म पर अचल रहने वाले तथा मनुष्यों के रक्षक है। इस परिस्थिति मे इस समस्या का हल खोजने वाला आपसे अधिक योग्य कोई नही है †।'

ऋषि वसिष्ठ की नम्रता का प्रभाव जनक पर दिखाते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—'ऋषि की नम्रता का अनुभव करके जनक के भीतर अनुराग प्रवाहित होने लगा। वसिष्ठ के नम्र शील को देख कर जनक अपने ज्ञान और वैराग्य से विरक्त हो गये $।'

विश्ववेदना की मधुर सभ्यता के भीतर जगत् को प्रतिष्ठित करके गोस्वामी जी उसका दर्शन करना चाहते है। विराद् जगत् की इस मधुर झाँकी मे वे राम के जीवन-सौन्दर्य के माधुर्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं। जगज्जीवन से अलग हट कर केवल चिन्तनमय ज्ञान और विराग के जीवन की ओर जगत् को ले जाना तुलसी का ध्येय नहीं था। अपने इसी ध्येय की सिद्धि ज्ञानी जनक मे दिखाते हुए उन्होंने कहा है कि वसिष्ठ की कोमल नम्रता के प्रभाव से अनुराग मे डूब कर जनक अपने ज्ञान और वैराग्य से विरक्त हो गये। मन में स्नेह भर कर वे सोचने लगे कि हमारा यहाँ आना अच्छा नही हुआ।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २८८ के बाद से २८९ के बाद तक। † रामचरित-मानस, अयोध्याकांड, दोहा २९०। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९० के बाद।

राजा ने राम को वन जाने को कहा और स्वयं अपने प्राणों को प्रेम की वेदी पर विसर्जन कर दिया। अब हम राम को वन से वन ही मे भेज कर अपने विवेक की वृद्धि कर लेंगे और प्रसन्नता से मिथिला चले जाएँगे ‡।

दशरथ ने जिस सत्य और प्रेम की सम्मिलित अनुभूति के द्वारा अपने जीवन नाटक का आदर्श भरतवाक्य लिखा, वह जनक के हृदय पर अकित है। उन्ही आदर्शो की उपासना वे राम को वन भेज कर करना चाहते है और उन्ही की परिणति मे अपने आनन्द और विवेक की परिणति देख रहे है। 'प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई—'† से वे इसी सत्य का सकेत देते है। राम के आदर्श से आनन्द और विवेक दोनों की सिद्धि होती है।

भरत के पास आ कर विदेह जनक ने इसी तरह का प्रस्ताव रखा। उन्होंने भरत से कहा—'तुम्हे राम का स्वभाव मालूम है। राम सत्यव्रत और धर्मनिष्ठ है। वे सब के शील और स्नेह को समझते है। सकोच के कारण दूसरों के लिए वे बड़े से बड़ा कष्ट सहने को प्रस्तुत रहते है। आप जो चाहते हों, कहें $।'

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आलोक में भरत की निरभिमानता का स्वरूप निखर कर प्रकाशित होता है। वे अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य के केन्द्र करुणा-सागर राम की छाया है। राम मे और उनमे कोई अतर नही। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का आलोक वे प्राप्त कर चुके है। इसीलिए अपने अनंत शक्ति, शील और सौन्दर्य के ऊपर उठ कर वे निरभिमान हो गये है। वे स्वय कोई राय नही देते। सब भार वे जनक पर छोड देते है। स्वय शिशु और आज्ञाकारी सेवक बन कर वे उपदेश ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो जाते है। अनत शक्ति के प्रति विमल वैराग्य का यही लक्षण है—अनत शक्ति रहते हुए भी उसके अस्तित्व के अभिमानात्मक ज्ञान को छोड़ देना।

ऐसी अवस्था पर पहुँचे हुए भरत कहते हैं—'आगमनिगम और पुराणों मे प्रसिद्ध सेवा धर्म कितना कठिन होता है, इसे ससार जानता है। स्वामी के प्रति कर्त्तव्य और सेवक के स्वार्थ मे विरोध होता है। स्वार्थी सेवक इस कर्तव्य को पूरा नही कर सकता है। बहरे और अन्धे प्रेम के भीतर बोध का अभाव होता है इसीलिए ज्ञान का आधार न मिलने पर प्रेमी अपना पथ हिसाब लगा कर निश्चित नही कर सकता *।'

निरभिमानता विशिष्टाद्वैत की भक्ति की सार्वजनीन, भावमलक, आदर्श व्यवहार-दर्शन की साधना का पूर्वरूप और आवश्यक अग है।

इस सोपान के नायक भरत ने अपने को सेवक और प्रेमी के रूप में देखा है और बडी नम्रता से उन्होने विमल वैराग्य के प्रकाश मे राय देने का अपना अधिकार त्याग कर जनक पर ही सब भार छोड़ दिया है। यहाँ पर भरत ने जनक से कहा—'राम के रुख पर

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९० के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९० के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९१ और पहले। * राम-चरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९१ के बाद।

ध्यान दे कर, उनके धर्मव्रत की रक्षा करके, मुझे पराधीन सेवक समझ कर, मेरे प्रेम को पहचान कर आप कोई ऐसा परामर्श दे जो सबसम्मत और सब के हित मे अच्छा हो ‡।' यहाँ अपनी, राम की तथा ससार भर के सब मनुष्यो की आदर्शमूलक स्थिति को भरत ने थोड़े से शब्दो मे बडी योग्यता से रख दिया है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की सिद्धि के भीतर गोस्वामी जी इसी सार्वजनीन, आदर्श व्यवहारदर्शन को प्राप्त करना चाहते है। उनकी साधना योग और ज्ञान की व्यक्तिमूलक साधना न हो कर भक्ति की सार्वजनीन, भावमूलक, आदर्श व्यवहारदर्शन की साधना है और इसकी सिद्धि का साक्षात्कार गोस्वामी जी ने मानस के आदर्श पात्रो मे कर लिया है। योग और ज्ञान की साधना किसी स्थिति तक व्यक्तिगत ही होती रहती है; पर भक्ति की साधना का एक क्षण भी व्यक्तिगत सीमा के भीतर आबद्ध नही रहता।

आदर्श की ऊँचाई को वही देख और समझ सकता है, जिसमे वह ऊँचाई हो। आदर्श की यह सिद्धि भरत के थोडे से शब्दो मे जितने सुन्दर ढग से व्यक्त हुई है उसे गोस्वामी जी ने बडी सुन्दर और मौलिक कल्पना का सहारा ले कर व्यक्त किया है, वे कहते है—'भरत की वाणी सुन कर और उनके स्वभाव को देख कर उस पूरे समाज के साथ जनक उनकी प्रशसा करने लगे। भरत के शब्द सुगम और अगम, मधुर, कोमल और साथ ही साथ कठोर सत्य पर आधारित होने के कारण कठोर थे। उनमे अक्षर तो कम पर अर्थ बहुत अधिक था। जिस तरह मुख दर्पण मे रहता है और दर्पण अपने ही हाथ में लिया जाता है, पर मुख पकडा नही जा सकता उसी अद्भुतता से युक्त भरत की विमल और सक्षिप्त वाणी मे विमल अर्थ बैठा हुआ था, पर उसको पकड लेना असम्भव था†।' उसे समझ लेना साधारण मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात थी। व्यवहार दर्शन की जो विमल भावमूलक गहराई भरत के भीतर थी, जब तक वही गहराई किसी के भीतर न हो, तब तक भाव का सकेत देने वाले उनके संक्षिप्त शब्दों का पूरा अभिप्राय समझना असम्भव है।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्यजन्य प्रेम स्वार्थ का विरोधी होता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के सोपान पर पहुँच कर गोस्वामी जी इस तथ्य को सिद्ध करना चाहते हैं कि विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आधार पर जो प्रेम-भक्ति विकसित होती है उसका साक्षात्कार करके, उसके सम्मुख स्वार्थ, भय से आतकित हो कर दहल उठता है। इस भक्ति के सम्मुख स्वार्थ टिक नही सकता। इस भक्ति को सिद्ध कर लेने वाला स्वार्थो के ऊपर उठ जाता है।

यहाँ स्वार्थी देवताओं के शील के भीतर स्वार्थ की प्रेरणा तथा भरत, वसिष्ठ और जनक के भीतर प्रेमभक्ति की पावनता की शक्ति दिखाई गयी है।—कुलगुरु की गति, विदेह के विशेष तरह के स्नेह और भरत की अपार रामभक्ति को देख कर स्वार्थी देवताओं

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९२। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९२ के बाद।

का हृदय दहल कर निष्क्रिय-सा हो गया। राम के भीतर भी प्रेमी के लिए प्रेम और सकोच को देख कर देवराज सकट मे पड गया कि कही राम वापस न चले जाएँ और देवशत्रु रावण का पथ अकटक बन जाए‡।'

यहाँ एक बार देवता फिर सरस्वती का स्मरण करते है—भरत की बुद्धि में विकार पैदा कर देने के लिए। पर सरस्वती ने जो उत्तर दिया है उसमे अयोध्याकाड के नायक भरत महामहिम हो गये है। सरस्वती के उत्तर की भूमिका मे गोस्वामी जी ने एक बार फिर विमल विज्ञान के नेत्रों को स्वार्थ की जडता का साक्षात्कार करते हुए दिखाया है। वे कहते है—'देवताओं की प्रार्थना सुन कर ज्ञानवती सरस्वती ने देवताओं के भीतर स्वार्थ की जडता को देख कर कहा—मुझसे तुम लोग भरत की मति फेर देने के लिए कहते हो? ब्रह्मा, विष्णु और शिव की माया बहुत बडी होती है, उसमे भी भरत की मति की ओर आँख उठा कर देखने की शक्ति नही होती। उस मति मे भ्रम पैदा करने के लिए तुम मुझसे कहते हो। क्या चन्द्रिका सूर्य को चुरा सकती है? भरत के हृदय में सीता और राम का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश रहता है वहाँ क्या अधकार का प्रवेश हो सकता है† ?' यहाँ पर गोस्वामी जी ने यही सिद्ध किया है कि प्रेमभक्ति के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकाश मे जो प्रकाशमयी पावन मति मनुष्य के भीतर विकसित होती है उस पर बडी से बडी शक्ति अपना प्रभाव नही डाल सकती। सच्चे भक्त का स्थान ब्रह्मा, विष्णु और शिव के भी ऊपर है। भरत के समान प्रेमी भक्त साधना की इसी भूमि पर पहुँचा हुआ रहता है। वह माया के प्रलोभनों के ऊपर उठ जाता है। उस तक ये प्रलोभन नही पहुँच सकते।

गोस्वामी जी ने मर्यादापुरुषोत्तम मे विमल वैराग्य की अनतता का दर्शन किया है। वसिष्ठ और जनक भरत के साथ राम के पास पहुँचे। भरत की स्थिति का ज्ञान वसिष्ठ ने राम को करा दिया। इसके बाद उनका परामर्श माँगा। पर मर्यादा पुरुषोत्तम ने भी अपनी अनतता को विमल वैराग्य का रूप दे दिया था। उसका उपयोग करके श्रेष्ठ और वयोवृद्ध वसिष्ठ और जनक का वे मार्ग-निर्देशन नही करना चाहते थे। इससे लोकमर्यादा का व्यवहार-दर्शन कलुषित हो जाता। जब वसिष्ठ ने जनक और भरत के वार्तालाप की चर्चा करके राम से कहा कि मेरे मत मे अब आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य किया जाए, तब तुलसी के राम ने बडी नम्रता से उनसे कहा—'आप और मिथिलेश के उपस्थित रहने पर मेरा परामर्श बिलकुल अनुचित और अभद्र प्रतीत होगा। आप और राजा की जो आज्ञा होगी, वह मेरे लिए शिरोधार्य होगी, यह आपकी शपथ पर मैं कह रहा हूँ $।'

इसके बाद गोस्वामी जी ने लिखा है कि राम की शपथ को सुन कर वसिष्ठ और जनकपुरी सभा के साथ सकोच मे पड गये। उनसे कोई उत्तर न देते बना। सारी सभा सकोच से भरत की ओर देखने लगी *।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९३ के पहले। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९३ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९४ के बाद। * रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा २९५।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्यजन्य प्रेम आवेशजन्य और निष्क्रिय न हो कर त्यागपूर्ण कर्तव्य-पथ पर सजग और जागरूक रहता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आधार पर जिस भक्ति-प्रवाह का उद्गम होता है वह आवेशजन्य और निष्क्रिय नही होती, इस बात को गोस्वामी जी ने यहाँ समझाया है। प्रेमभक्ति का सिद्ध योगी अपने प्रेम के प्रवाह मे किसी भी क्षण लोक का, व्यवहारदर्शन के पथ पर, सफल नायकत्व कर सकता है। उसके प्रेम का प्रवाह, व्यवहारदर्शन की पूर्णपरिणति के साक्षात्कार के बाद ही, उसी के परिणामस्वरूप होता है, इसीलिए प्रति क्षण मे उसके कण-कण मे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का प्रवाह होता रहता है। यही बात गोस्वामी जी ने यहाँ समझायी है।

भरत के इसी शील को व्यक्त करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—'सभा के इस सकोच को देख कर राम-बन्धु ने बडा धैर्य धारण किया। कुसमय देख कर उन्होंने अपने स्नेह की बढ़ती हुई ऊँचाई को इस तरह सँभाला जिस तरह अगस्त्य ने बढते हुए विन्ध्य पर्वत को रोका था। जिस तरह सब गुणो की खान और जगत् को पैदा करने वाली पृथ्वी को हिरण्याक्ष चुरा ले गया था, उसी तरह सब गुणों की खान और सम्पूर्ण जगत् के आधार का कार्य करने वाली बुद्धि को शोक चुरा ले गया था। पर भरत के शक्तिवान् विमल विज्ञान ने विशाल बराह की तरह उस मति का अनायास ही तुरन्त उद्धार कर लिया ‡।'

गोस्वामी जी के अनुसार विमल विज्ञान का यह भी लक्षण प्रतीत होता है कि विमल विज्ञान की दृष्टि जिस व्यक्ति को प्राप्त हो जाती है वह पवित्र स्नेह के शोक से प्रभावित होता है, पर उसका वियोग उसे निष्क्रिय नही बनाता। कर्तव्य की गुरुता सम्मुख आते ही वह वियोग के बढते हुए प्रवाह के ऊपर उठ कर उसे शान्त कर देता है और वेदना को छोड़ कर कर्तव्य की ओर बढ जाता है, भारतीय आर्यवीरों के भीतर यही सन्तुलित शील बड़ी प्राचीन परम्परा के भीतर मनीषी, कवियों और जीवनदर्शन के कलाकारों ने चित्रित किया है। आर्यवीर स्नेह के आवेश मे भी आता है। इस आवेश से वह पवित्र स्नेह के लिए अपने हृदय की सजीवता का परिचय देता है। पर वृहत्तर कर्तव्य के सामने आने पर शोक-प्रवाह को रोक कर वह अपनी लोकनेतृत्व की शक्ति का भी परिचय देने लगता है। शकुन्तला के वियोग में मग्न दुष्यन्त को भी कालिदास ने एक ही क्षण मे अन्तर्हित मातलि से माढव्य की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध-कार्मुक कर लिया है और उसके बाद प्रत्यक्ष प्रस्तुत हुए मातलि की प्रार्थना पर राक्षसों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता के लिए भी इस तरह तैयार कर लिया है जैसे शकुन्तलाकाड हुआ ही न हो। एक क्षण मे वियोग को भूल कर राजा क्षात्रधर्म को चरितार्थ करने के लिए चला जाता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि जो निश्छल प्रेम आर्यवीर के भीतर एक के लिए होता है, उसकी पवित्रता इतनी व्यापक होती है कि वही प्रेम वह जगत् भर को दे सकता है†।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा २९५ के बाद। † कालिदास लिखित अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक, अक ६, श्लोक २५ के बाद।

तुलसी के भरत भी अपने विमल विज्ञान के प्रकाश में एक ही क्षण में शोक की शिथिलता का विसर्जन करके सकोच मे पड़ी हुई सभा का नेतृत्व करने के लिए प्रस्तुत हो जाते है । विमल विज्ञान की जननी शारदा का उन्होने हृदय से स्मरण किया और वह वाणी बन कर हृदय से ओठों पर चली आयी—"हिय सुमिरी सारदा सुहाई, मानस तें मुख पकज आई ।" हसिनी के समान उज्ज्वल और कोमल भरत की वाणी ने विमल विवेक, धर्म और नीति को अपने साथ सज्जित कर लिया । जो भरत शोकमग्न सभा के शोक के साथ एकाकार हो गये थे वही स्नेह की शिथिलता मे पडे हुए उस समाज को विमल विवेक की दृष्टि से देख कर सीताराम का स्मरण कर लेने के बाद बोलने लगे ‡ ।

विवेक की दृष्टि स्नेह को उसकी शिथिलता के साथ देख कर स्वय सजग हो जाती है और अन्धे तथा बधिर-स्नेह का मार्गदर्शन करने लगती है । भक्ति के भीतर यही विमल विवेक स्नेह के साथ मिल कर रहता है । किसी भी क्षण वह स्नेह की पवित्र प्रखरता को ज्ञान की सबलता के रूप मे परिणत कर लेता है । स्नेह की पवित्र प्रखरता की स्थिति प्रेमी को केवल प्रिय व्यक्ति पर केन्द्रित करके कुछ समय के लिए सीमित तो कर देती है, पर ज्ञान की दृष्टि से जब वह सम्मिलित हो जाती है तब विराट् भावना से सम्पन्न हो जाती है । राम के लिए भरत का केवल पवित्र स्नेह उन्हे राम को एक कोमल राजकुमार के रूप मे दिखाता है, ऐसा राजकुमार जिस पर निर्वासन की विपत्ति पडी हुई हो । पर भरत का वही स्नेह जब अपने विमल विज्ञान या विमल विवेक के साथ चलने लगता है तब वही राम उसे परमहित, अतरजामी, सुसाहिब, सीलनिधान, प्रनतपाल और सरवग्य के रूप मे दिखाई पड़ने लगते है, निगम और आगम के गेय के रूप मे दिखाई पडने लगते है † ।

ऐसी स्थिति मे भरत वहाँ स्पष्टत. यह घोषणा कर देते है कि शोक और स्नेह के पवित्र बाल स्वभाव से आतकित हो कर पिता की आज्ञा का उन्होंने विरोध किया और राम की इच्छा के प्रतिकूल मर्यादा के पथ से उन्हे विचलित करके वापस ले जाने को चित्रकूट तक चले आये $ । यह विमल विज्ञान की दृष्टि,प्रेम की सब पवित्र सीमाओं को महत्ता की अनतता के रूप मे परिणत कर देती है । अपनी इस पवित्र बाल लघुता को मर्यादा पुरुषोत्तम के द्वारा क्षम्य दिखा कर भरत ने अनत कृपासागर राम की अनतता के साथ अपनी पवित्र नम्रता की अनतता का भी परिचय दिया है । उनकी विमल विज्ञान की दृष्टि इस बात को देख लेती है कि आर्त का अविनय क्षम्य होता है तभी तो मर्यादा पुरुषोत्तम ने भरत के समान आर्त के अविनय को क्षमापूर्ण दृष्टि से ही देखा * ।

विमल विज्ञान की इस पृष्ठभूमि पर भरत अपने स्नेह को पुन: प्रस्तुत करते हुए कहते है—'सत्य, सुकृत और सुख की सीमा से सुशोभित स्वामी के चरणकमलों की धूल

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९५ के बाद से २९६ तक । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९६ के बाद । $ वही । * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९९ के पहले ।

की शपथ ले कर मैं जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं मे अपने हृदय की रुचि बतलाता हूँ। स्वार्थ, छल तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की भावनाओं को छोड कर हमारा हृदय स्वामी के लिए सहजस्नेह और स्वामी की सेवा चाहता है। आज्ञापालन के समान आदर्श-स्वामी की कोई दूसरी सेवा नहीं होती। आपका वही अनुग्रह इस जन को मिले। आप जैसी आज्ञा देगे यह वैसा ही करेगा ‡ ।'

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-सम्पन्न मनुष्यत्व स्वार्थकलुषित देवत्व से उच्चतर होता है। विमल विज्ञान से युक्त भरत के उस निर्मल स्नेह से पवित्र हो कर राम ने, साधु समाज ने तथा विदेह ने उनके गौरव की प्रशसा की †। यहाँ भी निश्छल मानव से स्वार्थी देवता को गोस्वामी जी ने हीन पद दिया है। देवता भी स्वार्थी हो जाए तो निश्छल मानव से भी उसका पद निम्नकोटि का हो जाता है। उनके अनुसार विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से जो निश्छलता मनुष्य को मिलती है उससे उसका गौरव इतना विराट् हो जाता है कि वह स्वार्थी देवताओ को भी लाँघ जाता है। देवत्व स्वार्थकलुषित हो कर विमल विज्ञान और विमल वैराग्य सम्पन्न मनुष्यत्व के सम्मुख श्रीहत हो जाता है। अयोध्या-निवासियों के भीतर मे राम के प्रेम को अपनी माया के द्वारा कम कर देने वाले इन्द्र को गोस्वामी जी ने कहा है कि वह तो शोक से मारे गये मानवों को मार कर अपना मगल चाहता है। ऐसी प्रवृत्ति देवराज की महामलिन प्रवृत्ति का परिचय देती है $। उन्होंने स्वार्थी इन्द्र के लिए और कडे शब्दों का प्रयोग किया है—"कपट कुचालि सीव सुरराजू, पर-अकाज-प्रिय आपन काजू * ।"

तुलसी के राम ने भी इन्द्र की इस चचलता के कारण उसे चचल श्वान और चचल युवक की श्रेणी मे ही रख कर देखा है—"लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू, सरिस स्वान मघवान जुबानू § ।" गोस्वामी जी के अनुसार विमल विज्ञान-सम्पन्न मनुष्यों को देवमाया प्रभावित नही कर सकती। देवता की शक्ति भी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की शक्ति के सम्मुख कुठित हो जाती है—"भरतु, जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ। लागि देवमाया सबहि जथा जोगु जनु पाइ × ।"

जीवन-पथ पर विमल विज्ञान को साथ ले कर शील को आदर्श बना कर चलने वाले व्यक्ति के सामने देवता भी हार मान लेता है। उसकी शक्ति भी व्यर्थ हो जाती है। यहाँ चित्रकूट की सभा मे इन्द्र की माया भरत, जनक, मुनिजन और शीलनिष्ठ सचिव को छोड़ कर सब पर अपना प्रभाव डाल सकी। रामप्रेम और गृहप्रेम के बीच मे द्विविधा पैदा हो गयी। सब लोगों के मन चचल हो कर रामप्रेम और गृहप्रेम के बीच मे मोह के हिन्दोल पर चढ कर झूलने लगे + ।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २९९ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, सोरठा ३०० के पहले का छन्द। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड सोरठा ३००। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, सोरठा ३०० के बाद। § वही। × रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०१। + रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०१ के बाद।

गोस्वामी जी की भक्ति के भीतर राम के आदर्शो के साथ तदाकार परिणति आवश्यक है। उस आदर्श के सम्मुख गृहप्रेम नही उत्पन्न होना चाहिए। विमल विज्ञान की साधना कर लेने वाला साधक स्वार्थातीत राम के आदर्शो और स्वार्थव्याप्त गृह के स्नेह के बीच के अन्तर को समझ कर श्रेयस्कर पथ की ओर अपने पग बढा देता है।

चित्रकूट की सभा मे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की सिद्धि तक न पहुँचे हुए लोगों की दशा इन्द्र की माया के सम्मुख बडी विचित्र हो गयी थी। वे दो प्रकार के भार से आक्रान्त थे। एक तरफ रामस्नेह के भार से और दूसरी तरफ ससार का आकर्षण उत्पन्न करने वाली इन्द्र की माया के दबाव से। गोस्वामी जी के राम ने वहाँ की जनता की इस द्विधाजन्य पीडा को देख लिया है—"कृपा-सिधु लखि लोग दुखारे, निज सनेह सुर-पति-छल भारे‡।"

गोस्वामी जी ने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की चिन्तनधारा के अनुसार माया और भक्ति के सम्बन्ध पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। केवल अद्वैत की भावना, केवल अद्वैत-मूलक चिन्तन, अध्यात्मदर्शन की सृष्टि करता है। केवल द्वैत के आधार पर टिके हुए माया के प्रपचात्मक जगत् के स्वार्थो का चिन्तन जडवाद है। माया जब अद्वैत का विशेषण बन कर उसकी वशवर्तिनी हो जाती है, तब वह पवित्र हो जाती है। स्वार्थ जब अद्वैत विराट् मे अपने को खो देता है तब उसे परमार्थ का रूप मिल जाता है। ममता जब अपने भीतर अखिल विश्व को बिठा लेती है तब उसे समता की सज्ञा प्राप्त होती है। हृदय के विकास की इसी पद्धति को स्वीकार करने वाला साधक विशुद्ध विज्ञान और विशुद्ध वैराग्य की ओर बढ जाता है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय ने स्वार्थ और माया के सब सम्बन्धों को राम के साथ जोड कर माया को ब्रह्ममय बना लिया है। माया जब ब्रह्म का विशेषण बन कर 'सियाराममय सब जग'† की अनुभूति कराने लगी तब उसे भक्ति का रूप मिल गया। वह स्वय भक्ति बन कर पवित्र हो गयी। यह भी कहा जा सकता है कि जगत् की भावना से सम्बन्ध रखने वाली माया कलुषित होती है और विराट् के साथ अहैतुक स्नेह के बन्धन मे बँध जाने वाली मायामय क्षुद्र ममता ही विराट् बन कर पवित्र हो जाती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार जगत से सम्बन्ध रखने वाले स्वार्थ के सब नाते राम के साथ अहैतुक प्रेम से जुड कर पवित्र हो गये।

केवल अद्वैत-चिन्तन ज्ञान का विषय है और माया को उदार बना कर उसे विराट् ब्रह्म के साथ जगत् के हर सम्बन्ध की भावना के रूप में जोड लेने से हृदय की भक्तिमयी भावना का उद्गम होता है। हृदय की यही विराट् परिणति तुलसी की शील-साधनामयी भक्ति है। इसी विशालहृदयता के विशुद्ध विज्ञान और वैराग्य की भूमि पर पहुँचा हुआ साधक जगत् के प्रलोभनों की तरफ़ नही झुकता चाहे उसे झुकाने के लिए स्वय इन्द्र भी क्यो न प्रयत्न करें। विशिष्टाद्वैत चिन्तनधारा के आधार पर विकसित होने वाला भरत

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०१ के बाद। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद।

का शील इसी प्रकार का है। इसी शील की उपासना गोस्वामी जी करते है, क्योकि यह शील रामभक्ति का पथ है, उसका एक स्वरूप है। मानस के इस दूसरे सोपान मे जितने आदर्श पात्रो का जीवन चित्रित हुआ है वे सब इसी प्रकार के विशुद्ध विज्ञान और विशुद्ध वैराग्य के साधक और सिद्ध है। उन सबके नायक की तरह भरत का चित्रण हुआ है।

राम की अनिर्वचनीय और अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य की त्रिवेणी की अनुभूति के लिए भरत की भक्ति भी अनत और अनिर्वचनीय हो जाती है। सभा मे उपस्थित जो लोग इन्द्र की माया के प्रभाव क्षेत्र के बाहर थे वे भी भरत के शील की महिमा के वशीभूत हो गये थे। वे भरत की भक्ति को देख कर अवाक् मे रह गये थे—"सभा राउ गुरु महिसुर मत्री, भरत भगति सब कै मति जत्री ‡।"

जीवन के क्षुब्ध और अज्ञानान्धकार से ढके हुए सागर में गोस्वामी जी ने भरत को, आदर्शों का प्रकाशस्तभ माना है। उन्हे रामभक्ति के ऐसे सूर्य की तरह देखा है जिसके प्रकाश से विश्वभर आलोकित हो जाता है। शील के इस अलौकिक प्रकाश के सामने सम्पूर्ण जगत् को ले कर तुलसी का कवि नतमस्तक हो गया है। उस प्रकाश की शक्ति और सौन्दर्य की इयत्ता का सकेत देने मे वह अपनी बुद्धि को बार-बार अक्षम स्वीकार करता है। वह कहता है—'भरत की प्रीति, नीति, विनय और बडाई सुनने मे ही सुखद मालूम होते हैं। उनका वर्णन करना कठिन है। जिसकी भक्ति का अल्पतम अश मुनिगणो और विदेह को प्रेम-मग्न कर देता है, उसकी महिमा का अनुमान तुलसी कैसे लगा सकता है! इन्ही की भक्ति के स्वभाव से तो हमारे भीतर सुमति उल्लसित हुई है। अपने उद्गम (भरत की महिमा) की असीमता के सम्मुख अपने को क्षुद्रतम अनुभव करके वह सुमति संकुचित हो गयी है। कवियो के सम्मान को भरत की महिमा के सामने पराहत होता हुआ देख कर मेरी सुमति सकोच में पड गयी है। बालक की वाणी की तरह अपने भीतर मेरी सुमति एक विवशताजन्य कुठा का अनुभव कर रही है। भरत कीभक्ति के गुण, सौन्दर्य, अधिकता, चिन्तन और सीमा को वह नही व्यक्त कर पाती। भरत का उज्ज्वल यश धवल चन्द्र की तरह है और सुमति चकोर कुमारी की तरह। भक्तों के विमल हृदय के आकाश में उदय होने वाली भरत की उस भक्ति को वह केवल एकटक देख भर रही है। उस सौन्दर्य के प्रेम मे तन्मय हो कर वह अपने को खो चुकी है †।'

गोस्वामी जी के अनुसार भरत का स्वभाव वेदों के लिए भी अगम है। ऐसी स्थिति में यदि साधारण बुद्धि उसकी थाह लगाने मे असफल रह जाती है तो गोस्वामी जी उसे क्षम्य समझते है $। गोस्वामी जी इस बात पर विश्वास करते है कि भरत के शील में इतनी शक्ति और आकर्षण है कि उनके निश्छल और सत्य भाव के कीर्तन और श्रवण से सीता और राम के चरणों के प्रति स्नेह उत्पन्न होना अवश्यभावी है। ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो भरत के निश्छल प्रेम को सुन कर सीताराम के चरणों मे अनुरक्त न हो जाए।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०१ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०१ के बाद से ३०२ तक। $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०२ के बाद।

वह मनुष्य बहुत बड़ा अभागा है जिसके भीतर भरत को स्मरण करने के बाद भी रामप्रेम सुलभ न हो जाए ‡।

तुलसी के राम मे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-सम्पन्न शील के लिए अपेक्षित सब गुणों की असीमता का समावेश है।

इसी प्रकरण मे भगवान् राम के भीतर पवित्र और विनम्र शील का एक अनुपम चित्र गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है। अभी ही भरत ने भगवान् राम से अपने भावी कर्तव्य के लिए आज्ञा माँगी है। गोस्वामी जी ने अपने अवतारी राम के भीतर दया, सज्जनता, सबके हृदय को जानने की शक्ति, धर्मधुरीणता, धैर्य, नीतिमत्ता, सत्य-स्नेह, शील, आनन्द के अनत समुद्र, देशकालज्ञता, समय और समाज के स्वभाव के ज्ञान, नीति और प्रीतिपालकता को एक साथ सँजो कर रखा है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के ये अवश्यभावी मगलमय परिणाम है†। अपने इन सब गुणों को एक साथ ले कर राम भरत को आज्ञा देने की भूमिका प्रस्तुत करते है। आज्ञा देने के लिए जिन शब्दों का उन्होंने उपयोग किया, उनके लिए गोस्वामी जी ने कहा है—'भगवान् राम ने अपने भाषण मे सरस्वती की सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग किया। उन शब्दो को सुनने से चन्द्रमा से स्रवित होने वाले अमृत के माधुर्य का अनुभव होता था और उसका परिणाम मगलमय था$।' विमल विज्ञान के मूलस्रोत राम के भीतर वाणी के गुणों की पूर्णता की जो उद्भावना गोस्वामी जी ने की है उससे उनकी विमल विज्ञान की भावना की व्यापकता और गम्भीरता का परिचय मिलता है। विमल विज्ञान तो शील के माधुर्य, विश्वप्रेम का मूलकेन्द्र ही है। इस विज्ञान की सम्पूर्णता राम के शील मे थी। अतएव पूर्ण विज्ञान की वाहिका वाणी, सरस्वती की सम्पूर्ण मधुरता और शक्ति को ले कर तो निःसृत होगी ही।

तुलसी के राम ने भरत को जो प्रेममय आदेश दिये है उनमें उनके शील के उच्चतम विकास का सौन्दर्य अपनी पूर्णता के साथ अकित हो गया है। उन्होंने भरत से कहा—'प्रिय भरत, तुम धर्मचक्र के वाहक हो। लोक और वेद का तुम्हे पूर्ण ज्ञान है*।' लोक और वेद की मर्यादाओं का सम्यक् ज्ञान और उनका अनुवर्तन गोस्वामी जी के विमल विज्ञान और विमल वैराग्य का मुख्य लक्ष्य है। वही आदर्श जीवन की सम्पूर्णता है। तुलसी के राम भरत से कहते है—'कर्म, वाणी और मन की पवित्रता मे तुम्हारे समान तुम्ही हो। दूसरा तुम्हारी समता नही कर सकता। गुरुओ के समाज मे छोटे भाई की प्रशसा मैं कैसे करूँ। तुम सूर्य-कुल की प्रथाओं को जानते हो। सत्यप्रतिज्ञ पिता की कीर्ति और प्रीति को भी तुम जानते हो। समय, समाज और गुरुजनो की प्रतिष्ठा का भी ज्ञान तुम्हे है। तुम्हे उदासीन, मित्र तथा शत्रु के हृदय का भी परिचय है। तुम्हे सब के कर्त्तव्यो का ज्ञान है। तुम अपने और मेरे परम हित धर्म को भी जानते हो§।' गोस्वामी जी की

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०२ के बाद। † वही। $ वही। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०५ के पहले। § रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०३ और बाद।

भक्ति-पद्धति मे पवित्र शील ही परम हित धर्म है। इसीलिए उनका विमल विज्ञान और विमल वैराग्य भी इसी पवित्र शील 'परमहित धर्म' की अन्तिम परिणति है। गोस्वामी जी ने इसी पवित्र शील 'परमहित धर्म' का परमोच्च चित्रण करके अपने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की साधना की है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि विमल वैराग्य और विमल विज्ञान मे तथा इस पवित्र शील के परमहित धर्म मे अभेद और अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

राम का शील, वैयक्तिक शीलविकास न हो कर, विमल विज्ञान और वैराग्ययुक्त जगत् के शील के उन्नायक की तरह प्रस्तुत किया गया है। भरत से राम कहते है—'मुझे हर तरह से तुम्हारा भरोसा है, तथापि अवसर की प्रेरणा से मै तुम्हे कुछ परामर्श दे रहा हूँ। पिता के अभाव मे हम लोगो की बात केवल कुल-गुरु की कृपा से सँभल गयी है अन्यथा हमारे साथ प्रजा, पुरजन और परिवार सब का अनिष्ट होता।'

'नतरु प्रजा परिजन परिवारू, हमहि सहित सबु होत खुआरू ‡।' मे गोस्वामी जी के राम का ध्यान व्यक्ति के शील विनाश से ले कर समाज के पतन तक फैला हुआ है। राजधर्म यदि विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के आधार पर आधारित नही रहता तो प्रजा का शील विनष्ट हो जाता है और चारो तरफ विनाश ही विनाश दिखाई पडता है। राजा के आदेश भी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की लोकमगलव्यापिनी दृष्टि को ले कर प्रचारित हों और उनका अनुवर्तन भी उसी प्रकार का। ऐसी ही परिस्थिति में अद्वैत दर्शन मनुष्य के जीवन के साँचे में ढल कर, शील से विशिष्ट हो कर जीवन बन जाता है, केवल चिन्तन नही रह जाता। इस तरह विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय अवतार के जीवन दर्शन के आधार पर एक क्रियात्मक दर्शन को प्रस्तुत करता है।

शील की इसी उच्चतम भूमि पर गोस्वामी जी ने अपने राम के चरित्र का विकास दिखाया है। इसी योजना के अनुसार उनके राम के भीतर सत्य, पवित्र और लोकमगल विधायिनी विनम्रता का विकास दिखाया गया है। उनकी यह नम्रता सत्य और मंगल का अनुमोदन करने के समय अनत रमणीयता को ले कर सम्मुख प्रस्तुत होती है। इसी विनम्रता के साथ राम ने वसिष्ठ और जनक के उन कार्यो को भक्तिपूर्वक स्वीकार किया है, जिनके द्वारा उन्होने दशरथ के स्वर्गारोहण के बाद ससार के शील की रक्षा कर ली।

भरत को समझाते हुए चित्रकूट की सभा मे तुलसी के राम कहते है—'यदि असमय सूर्य अस्त हो जाए तो संसार मे ऐसा कौन होगा जिसे कष्ट न पहुँचे। विधि ने सूर्य के समान तेजस्वी हमारे पिता को अस्त करके इसी तरह का उत्पात किया, लेकिन मुनि और मिथिलेश ने सब बिगडी हुई बातों को बना लिया। राज्य की व्यवस्था, सब की लज्जा और प्रतिष्ठा, धर्म, भूमि, धन और घर सब की रक्षा गुरु का प्रभाव कर लेगा और उस का परिणाम श्रेयस्कर ही होगा। इस सम्पूर्ण समाज के साथ घर और वन मे गुरु का प्रसाद तुम्हारी और हमारी रक्षा करता रहेगा †।'

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०३ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०४ और पहले।

गुरु के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए, उसी का अग बना कर तुलसी के राम ने बडे स्नेह से भरत को सकेत दिया है कि गुरु का प्रसाद घर मे तुम्हारी रक्षा करेगा और वन मे हमारी। तुम घर मे रहो और मैं वन मे जाऊँ। इस बात को रुखाई से न कह कर मर्यादा पुरुषोत्तम ने अतर्कित और असामान्य पवित्र शिष्टता के ढग से भरत के सामने रख दिया है। इससे एक तरफ भरत को मधुर स्नेह दिया है और दूसरी तरफ़ गुरु को श्रद्धा। भरत की रक्षा की भावना के साथ उन्हे स्नेह प्रदान किया है और सब की रक्षा का विधान करने वाले गुरु के लिए अपने हृदय की श्रद्धा, गोस्वामी जी के राम ने समर्पित की है।

'सहित समाज तुम्हार हमारा, घर बन गुरु प्रसाद रखवारा‡।' में इसी तरह श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, व्यक्ति के आदर्श तथा लोक के आदर्श के सकेत बहुत थोडे-से शब्दों मे दे दिये गये है।

इसके बाद विमल वैराग्य से अभिमानरहित और विमल विज्ञान के मधुर आदेश भरत को देते हुए राम कहते है—'माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण आदर्श की तरह है। वह पृथ्वी को धारण करने के लिए शेष की तरह है। उस आज्ञा का पालन तुम करो और मुझे भी ऐसा अवसर दो, मेरे लिए भी ऐसा अनुकूल वातावरण पैदा करो जिससे मुझे उनकी आज्ञा पालन करने मे सहायता मिले। इससे तुम्हारे द्वारा सूर्यकुल के आदर्शो की रक्षा होगी। गुरुजनों का आदेश यदि पालित होता रहे तो एक इसी कारण से सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है। इससे कीर्ति, सुगति और सम्पति की त्रिवेणी का निर्माण होता है। इस पर विचार करके बहुत बडे सकट को उठा कर भी प्रजा और परिवार को सुखी बनाओ। हमारे परिवार की विपत्ति को सब लोगों ने बॉट लिया है। जनता का यह त्यागमय आदर्श मुझे बहुत बडा सतोष देता है। तुम्हे मेरे वापस आने तक बडी कठिनाइयो का सामना करना है। तुम्हे अच्छी तरह समझ कर ही मैं कुछ कोमल और कुछ कठोर बाते कह रहा हूँ। तुम्हे हर प्रकार से यही प्रयत्न करना चाहिए कि इस विषम परिस्थिति में मुझसे कुछ अनुचित कार्य न हो। बन्धु बडी कठिनाइयों के समय सहायक होता है। गिरते हुए वज्र को भी अपने हाथों से रोक कर वह बन्धु की रक्षा करता है। सेवक तो हाथ पैर और आँखो से अपने कर्त्तव्यों का पालन करके अपने को योग्य सिद्ध करता है पर स्वामी तो केवल मुख से आदेश दे कर ही स्वामी बन जाता है। सेवक के इसी उत्सर्गमय प्रेम के कारण सेवाभाव की प्रशंसा सब सुकवि करते है†।'

राम के भीतर जो प्रेम भरत के लिए है उसमे मधुर-स्नेह और अटल विश्वास है। इसी को प्राप्त करके भरत ने अपने को धन्य समझा। गोस्वामी जी ने यहाँ बताया है कि भगवान राम की अमृतमयी वाणी अपने रूप मे प्रेम के समुद्र को सब के सम्मुख प्रस्तुत कर सकी। वहाँ का समाज इस स्नेह की समाधि में मग्न हो कर शिथिल हो गया

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०४ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०५ और पहले।

था। उनकी अवस्था का वर्णन करना सरस्वती की शक्ति के बाहर की बात थी। वह मौन हो गयी थी। सब की वाणी मूक हो गयी थी ‡।

राम के इस मधुर-स्नेह और विश्वास को प्राप्त करके भरत ने अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए कहा—'आपके साथ वन जाने का सुख मुझे प्राप्त हो गया। ससार मे जन्म लेने का लाभ मुझे हो गया †।' विमल वैराग्य और विमल विज्ञान के जिस ऊँचे आदर्श को ले कर मर्यादा पुरुषोत्तम वन मे आये थे उसकी विराट् व्यजना सरस्वती की सम्पूर्ण शक्ति को ले कर उन्होने चित्रकूट की इस सभा मे की थी और वनवास की सम्पूर्ण अवधि के भीतर उसी का विकास अपने पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त करने वाला था। इसकी सम्पूर्ण भूमिका का सौन्दर्य भगवान् राम की इस वाणी मे पा कर भरत को स्वामी के साथ शील-सौन्दर्य की झाँकी देखने का फल प्राप्त हो गया। उसे देख कर उनका हृदय महानतम हो गया। ससार मे जन्म ले कर पूर्ण होने का मानव का लक्ष्य उन्होंने पूर्ण शील का दर्शन कर प्राप्त कर लिया था और पूर्ण मानव, उनके भी भीतर इसी प्रभाव के प्रकाश मे उत्पन्न हो गया था। उनके 'दुःख और दोष' सब 'विमुख' हो गये थे $।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर महामानव को जागृत करने की अपनी योजना को गोस्वामी जी ने रामभक्ति के इसी शील पक्ष को ले कर पूरा किया है। राम का महामानव वन की तपस्या मे तप कर जगत् के सामने भास्वित हुआ और उसके भीतर लोकमगल का विधान कर सका। उसी महामानव के प्रकाश मे अपने भीतर विराटता का अनुभव करके भरत अपने जन्म लेने के लक्ष्य को सिद्ध समझ रहे है और चित्रकूट की उस सम्पूर्ण भूमि को देख लेना चाहते है जहाँ महामानव मर्यादा पुरुषोत्तम के चरण पडे हुए है *।

गोस्वामी जी के अनुसार मानव के शील का उच्चतम विकास देवों के शील को भी पवित्रता की सात्विक प्रेरणा दे सकता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के भीतर विकसित होने वाला राम और भरत का शील इतना पवित्र, आकर्षक और जगन्मगलविधायक है कि स्वार्थी देवता भी रघुकुल की प्रशसा करके कल्पतरु के पुष्पो की वर्षा करने लगे। इस शील के प्रकाश के आलोक में उनके हृदय के भीतर का स्वार्थान्धिकार भी दूर हो गया।

इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के भीतर गोस्वामी जी ने जो प्रभाव देखा है, वह इतना है कि देवता लोगों के भीतर से भी वह स्वार्थ के अधकार को नष्ट हो जाने को बाध्य कर देता है और उनके हृदय प्रेम से विवश हो कर हर्ष मे मग्न हो गये। 'धन्य भरत जय राम गोसाई, कहत देव हरषत बरिआई।" से यही सत्य प्रस्तुत किया गया है §।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के भीतर ऐसा स्वामि-सेवक भाव पैदा होता है जो निःस्वार्थता के कारण परम पवित्र होता है। उसके सौन्दर्य को स्वार्थमय स्वामिसेवक

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०५ के बाद। † वही। $ वही। * रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०६ के बाद। § रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०७ के बाद।

भाव कभी प्राप्त ही नही कर सकता। 'सेवक-स्वामि सुभाउ सुहावन, नेमु पेमु अति पावन पावन ‡।' ऐसे परम पावन स्वामिसेवक-भाव के भीतर स्वामी का स्वभाव ऐसा सुन्दर होता है कि सेवक उसकी ओर आकृष्ट हो कर स्वयं आत्मोत्सर्ग करके महान् हो जाता है। राम के सुन्दर स्वभाव के कारण भरत का शील इसी सिद्धान्त के आधार पर परम सुन्दर और पवित्र हो गया है।

ब्रह्म के सच्चिदानन्द-स्वरूप के साक्षात्कार के रूप मे गोस्वामी जी ने तीर्थो को देखा है। ब्रह्म का आनन्दाश ही उनके अनुसार तीर्थो की सृष्टि करता है। इस आनन्द-स्वरूप ब्रह्म का सम्बन्ध 'सत्य शिव सुदर' के त्रिसत्य के अन्तिम घटक सुन्दर के साथ अधिक रहता है। गोस्वामी जी इस सिद्धान्त को मानते है कि जगत् के भीतर शील के सौन्दर्य का आलोक पृथ्वी के जिस खड पर पडता है वही तीर्थ बन जाता है। सुन्दर शील पृथ्वी के जिस खड पर घटित हो जाता है, वही तीर्थ कहलाने लग जाता है। वही विराट् के आनन्दाश से सम्बद्ध हो कर परम पावन बन जाता है। चित्रकूट में मर्यादा पुरुषोत्तम के चरणों का स्पर्श पा जाने वाली भूमि भरत के लिए तीर्थ बन गयी है। एक परम पावन तीर्थ की सृष्टि, चित्रकूट में भरत के शील की पवित्रता से सम्बद्ध सौन्दर्य ने भी की है। वह है भरत कूप। चित्रकूट पर्वत के पास एक सुन्दर कूप पहले से ही पावन तीर्थ का रूप पा चुका था। भगवान् राम के अभिषेक के लिए आये हुए तीर्थजल को सुरक्षित रखने के लिए अत्रि मुनि ने यही स्थल चुना और एक विशेष कूप वही पर बना कर वह जल सुरक्षित रख दिया गया। यही भरत कूप तीर्थ बन गया †। इस तीर्थ के विषय मे गोस्वामी जी ने कहा है—"बिधिबस भयेउ बिस्व उपकारू, सुगम अगम अति धरम बिचारू $।"

नियति की प्रेरणा ने भरत के त्याग और तपोमय जीवन के उत्सर्ग के सौन्दर्य से भरतकूप के रूप मे इस तीर्थ की सृष्टि कर दी। ससार के लिए यह तीर्थ अब तो सुगम हो गया, पर बलिदान के दुर्गम पथ पर चल कर भरत के शील के सौन्दर्य ने इस तीर्थ की सृष्टि की। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य की त्यागयम और तपोमय अगम साधना से एक तपोनिष्ठ व्यक्ति शील के सौन्दर्य की साधना कर लेता है। उसकी साधना जो सुन्दर पथ बना देती है, उस पर चलना और लोगों के लिए सुगम हो जाता है। उस सौन्दर्य की भावना अपने भीतर प्राप्त करके लोग आदर्श के पथ पर सरलता से बढ़ते चले जाते हैं।

यद्यपि 'भरत कूप अब कहिहहिं लोगा, अति पावन तीरथ जल जोगा' * कह कर पावन तीर्थो से आये हुए अभिषेक के जल को पहले से ही गोस्वामी जी पुनीत मानते है, क्योंकि उन तीर्थो का निर्माण भी मानव के इसी सुन्दर शील ने किया है, फिर भी भरत का नाम इस तीर्थ के साथ जोड कर उन्होंने यही सिद्ध किया है कि यहाँ शील के एक दूसरे प्रकार के सौन्दर्य ने एक और पावन तीर्थ की सृष्टि की है। विमल विज्ञान और

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा २०७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०८ के बाद। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३०८ के बाद। * रामचरित-मानस, अयोध्याकाड, दोहा ३०८ के बाद।

विमल वैराग्य के प्रकाश मे जो भ्रातृप्रेम भरत के भीतर राम के लिए उत्सर्ग बुद्धि पैदा कर चुका है उसी के सौन्दर्य का प्रतीक इस भरत कूप के तीर्थ मे उत्पन्न हो गया है। यह कूप स्वय भरत के शील से सम्बद्ध हो कर पावन हो गया है, पर शील और सौन्दर्य के अनेक केन्द्रों से आये हुए जलो से सम्बद्ध हो कर यह अब 'अति पावन' हो गया है। अब इस पावनता के ऊपर भरत के परम पावन नाम की ही मुद्रा लगा दी गयी है और यह नवीन तीर्थ 'भरतकूप के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस तरह विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के इस सोपान मे गोस्वामी जी ने तीर्थों की उत्पत्ति को भी मनुष्य के शील के सौन्दर्य से सम्बद्ध कर लिया है। गोस्वामी जी का यह सिद्धान्त प्राचीन परम्परा के इतिहास से सम्बद्ध है, पर एक नूतन आलोक मे सजग हो कर सिद्धान्तरूप में तीर्थों की उत्पत्ति को गोस्वामी जी ने यहाँ देखा है। इसी सिद्धान्त के अनुसार चित्रकूट का वन भी 'रामवन' तीर्थ हो गया है और उसमे भ्रमण करते हुए भरत के साथ बडा अलौकिकता को भी लौकिक भूमि पर उतार कर गोस्वामी जी ने देखा है‡।

गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रभाव में अलौकिकता का लौकिकीकरण किया है। इस सम्बन्ध मे गोस्वामी जी की दृष्टि एक ऐसे स्वतः सिद्ध सत्य की ओर गयी है जिसे सिद्धान्त रूप मे पहले कम लोगों ने ही देखा था। गोस्वामी जी यह मानते है कि सीमित विकास को देखने वाली दृष्टि के लिए ही अलौकिकता का विस्मय बाकी बचा रहता है। अनन्तभेदिनी दृष्टि के लिए कोई वस्तु विस्मयजनक नही होती। साधारण मनुष्य को जो बातें अलौकिक प्रतीत होती हैं, उसके लिए वे सब साधारण-सी बात जान पडती है। क्षुद्र सीमाओं को देखने वाली दृष्टि जब कभी उस सीमा के बाहर की किसी वस्तुस्थिति को देखती है तब उसे विस्मय होता है, पर जिस दृष्टि ने विराट् को देख लिया उसके किये अलौकिकता अवशिष्ट नही रह जाती। परम शक्तिवान् के सामने और सब शक्तिसम्पन्न वस्तुएँ सामान्य प्रतीत होने लगती है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य मनुष्य की दृष्टि को अनन्त व्यापिनी बना देते है। फलत. उसके सामने विस्मय के समान कोई मनोभूमि रह ही नही जाती।

अपना यह सिद्धान्त गोस्वामी जी ने कई स्थलों पर चित्रित किया है। भरत का रामवन-अटन भी एक ऐसा प्रकरण है जहाँ अनत को देख लेने पर विस्मय की शान्ति की ओर सकेत किया गया है। चित्रकूट की भूमि को, रामवन को तीर्थ के समान अनुभव करके भरत उसकी यात्रा कर रहे है। उनके चरण कोमल है। उनकी रक्षा का कोई उपाय नही किया गया है। इन खुले पैरों की रक्षा के लिए कृतज्ञता के भार से दबी हुई भूमि कोमल हो गयी, क्योकि उसी की रक्षा के लिए भरत आदर्श शील की साधना कर रहे हैं। कुश, कॉटे ककड़ इत्यादि सब कठोर वस्तुएँ छिप गयीं। पृथ्वी ने अपने मार्गो को मृदु और मजुल बना दिया। शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर बहने लगा। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की, बादलों ने छाया कर दी, वृक्ष, फूल फल उठे और सब तृण कोमल हो

‡ रामचरितमानस, दोहा ३०९ के बाद।

गये। राम का प्रिय जान कर मृग उनकी तरफ देखने लगे, अपनी सुन्दर बोली से पक्षी उनका मनोरंजन करने लगे। अलौकिक प्रतीत होती हुई इस स्थिति को समझाते हुए गोस्वामी जी कहते हैं—'साधारण मनुष्य भी आलस्य मे ही राम का नाम ले कर सब सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। भरत तो राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय है, उन के लिए यह कौन बड़ी बात है ‡।'

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के कारण जो शील भरत मे विकसित हुआ है उसी के कारण उन्हे राम का स्नेह और उनकी शक्ति प्राप्त हो गयी है। इस विराट् शक्ति के लिए अलौकिक और असम्भव कोई वस्तु नही। जड कहलाने वाला जगत् भी उसकी सेवा करता है। इस शक्ति का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद, गोस्वामी जी को भी कही अलौकिकता नही दिखाई पड़ती।

तुलसी के अनुसार ज्ञानोपासना और प्रतीकोपासना दोनों की आवश्यकता होती है और प्रतीक, उपासना के क्षेत्र मे नितान्त आवश्यक होता है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के इस सोपान मे गोस्वामी जी ने इस दार्शनिक विचारधारा की ओर फिर से सकेत किया है। विदाई के समय राम ने विवेकपूर्ण राजधर्म का उपदेश दे कर पिता के आज्ञानुवर्तन के लिए भरत को अयोध्या जाने का आदेश दिया।

यहाँ गोस्वामी जी ने कहा है—"बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती बिनु अधार मन तोषु न साँती †।" शान्ति की विविध प्रकार की प्रबोधमय योजना भी मन को सन्तोष और शान्ति नही दे पाती। प्रतीक का आधार पा कर, सगुण का सहारा पा कर, उसके विमल विज्ञान और विमल वैराग्यपूर्ण शील को देख कर उपासक का मन सन्तुष्ट और शान्त हो जाता है। उसके सब क्षोभ प्रशान्ति में परिणत हो जाते है। बिना राम के केवल विवेकपूर्ण राजधर्म का प्रबोध ले कर अयोध्या लौटने के समय भरत का मन सन्तुष्ट और प्रशान्त नही हो रहा था। भरत के इस पावन स्नेहमय शील को अनुभव करके महामानव ने अपनी चरण-पादुका का प्रतीक दे कर महामानव के हृदय को शान्ति और सन्तोष मे निमग्न कर दिया $—"प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही, सादर भरत सीस धरि लीन्ही *।"

इस चरणपीठ के साथ बहुत बड़ा आदर्श भरत के साथ अयोध्या गया। भरत ने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा, भक्ति और आदर भावना इन पादपीठों को अर्पित कर दी। ये दो चरण पीठ प्रजा के प्राणों के दो पहरेदारों की तरह अयोध्या § गये। भरत के उज्ज्वल प्रेम रत्न के लिए ये सम्पुट बन गये। प्रेम के दो अक्षरों की तरह ये भरत के सामने प्रस्तुत हुए। रघुवश के द्वार के दो रक्षक कपाटों की तरह ये भरत को प्रतीत हुए। दक्ष कर्तव्य के दो हाथों की तरह भरत ने इन्हें प्राप्त किया। सेवा के पवित्र धर्म के उज्ज्वल नेत्रों की तरह उन्होंने इन दो चरण पीठों को पाया। भरत को यह अवलम्ब पा कर इतनी प्रसन्नता हुई जैसे सीता और राम ही अयोध्या वापस जा रहे हो—दक्षिण चरण रक्षक राम के चरण की तरह और वाम सीता के चरण की तरह †।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३१० । † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३१४ के बाद। $ वही। * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३१४ के बाद। § वही।

गोस्वामी जी के अनुसार प्रेम की पराकोटि ही विमल विज्ञान और विमल वैराग्य है। विदा देने के समय, भरत को भेटते समय राम के प्रेम का वर्णन करते हुए, गोस्वामी जी ने लिखा है—"भेटत भुज भरि भाइ भरत सो, राम-प्रेम-रसु कहि न परत सो ‡ ।" गोस्वामी जी ने आगे लिखा है—'भगवान् राम के तन, मन और वचन से अनुराग उमड़ पड़ा। धीराग्रणी राम धैर्य को दूर भगा कर आँखो से पवित्र अश्रु की वर्षा करने लगे। मुनियों का समूह वसिष्ठ, जनक के समान धैर्यशाली व्यक्ति जिनके मन का सुवर्ण ज्ञानाग्नि से तप कर अकलुष और उज्ज्वल हो गया था, जिन्हे ब्रह्मा ने निर्लिप्त बना कर ही उत्पन्न किया था, जो उसकी दृष्टि मे जल के भीतर जलास्पृष्ट कमल पत्र की तरह उत्पन्न हुए थे, वे भी राम और भरत की अनुपम और अपार प्रीति को देख कर, तन, मन, वचन और विरागपूर्ण चिन्तन के साथ उसी प्रीति मे निमग्न हो गये। राम-भरत का अनंत प्रेम और जनक इत्यादि का अनंत ज्ञान मिल कर एकरूप हो गये। इन दोनों की अनतता का रूप रसमय ही होता है। अनत प्रेम, ज्ञान से वियुक्त हो कर नही रह सकता। तथा अनत ज्ञान प्रेम के बिना असम्भव और निरर्थक है † ।'

इसी बात को गोस्वामी जी ने बार-बार सिद्ध किया है। इस रसमय अनतता की प्राप्ति विमल विज्ञान और विमल वैराग्य से ही होती है। विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के इस प्रभाव मे चित्रकूट की इस सभा मे अयोध्या चित्रकूट और वन के प्रत्येक व्यक्ति का हृदय प्रत्येक से एक हो गया था और चलते समय सब लोग सबसे मिले। पवित्र स्नेह से राम कैकेयी से मिले और सब लोगों को उनके साथ उन्होंने बड़ी मधुर विदाई दी $ ।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकाश मे दर्शन जीवन बन जाता है। राम के व्यक्तित्व के साथ पृथ्वी पर दर्शन, जीवन बन गया था, इसकी चर्चा पग-पग पर गोस्वामी जी ने की है। उन्हें चित्रकूट की पर्णकुटी मे सीता, राम और लक्ष्मण अपने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के कारण भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के समान दिखाई पड़े हैं। यहाँ सीता, भक्ति-प्रधान, राम ज्ञान-प्रधान, और लक्ष्मण वैराग्य-प्रधान चरित्र के प्रतीक है। दार्शनिक क्षेत्र के भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के सिद्धान्त सीता, राम और लक्ष्मण के जीवन बन गये है * । रामायण के सब आदर्श पात्र दार्शनिक विचारों के प्रतीक के समान प्रतीत होते है।

ऐसे प्रकाश में जीवन का हर पग दर्शन का रूप प्राप्त कर लेता है। अयोध्या लौट कर आदर्श कर्त्तव्य के प्रतीक भरत जब निमयपूर्वक अवधि तक रहने की आज्ञा माँगने गुरु के पास जाते है तब गोस्वामी जी के वसिष्ठ कहते है—'तुम जो कुछ समझ लोगे, जो कुछ कहोगे और जो कुछ करोगे, वही संसार में धर्म का प्राण, उसका रहस्य, उसका

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३१५ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३१५ के बाद से ३१६ तक। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३१८।
* रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ३२०।

तत्त्व और सार समझा जाएगा ‡ ।' कौसल्या और गुरु की आज्ञा ले कर भरत ने नन्दिग्राम मे पादुका को सिहासन पर अभिषिक्त किया, मुनिवृत्ति धारण करके वही रहने लगे और पादुका की आज्ञा ले कर राज्य-कार्य का सचालन करने लगे ।

विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के प्रकाश मे जो निश्छल प्रेम उत्पन्न होता है उसमें प्रेमी और प्रिय मे अद्वैत स्थापित हो जाता है। ऐसे प्रेम की वियोगदशा में भी प्रेमी एकरूप रहते है। इसी स्वभाव के अनुसार मुनिव्रति राम के प्रेमी भरत का वियोग भी ऋषि धर्म को ले कर जीवन-पथ पर आलोक फैलाता है और आदर्श प्रेमियों के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य करता है । इस प्रेम मे इतनी उच्च कोटि का विमल वैराग्य रहता है कि उसके भीतर रहने वाली उत्सर्ग-भावना इन्द्र के ऐश्वर्य तथा कुबेर की सम्पत्ति को भी तृण के समान समझती है। जिस अयोध्या के राज्य को देख कर इन्द्र विस्मय मे पड़ जाते है, जहाँ की सम्पत्ति को देख कर कुबेर भी लज्जित हो जाते है उसी ऐश्वर्य और सम्पत्ति से भरत को कोई लगाव नही है † ।

गोस्वामी जी भरत के इस प्रेम की आलोचना करते हुए बताते है कि राम-प्रेमी भरत के लिए यह त्याग तो तृण के समान है । इसके लिए उनकी प्रशसा नही की जाती। वे दूसरे कारणों से बड़े है । टेक और विवेक की सम्पत्ति के कारण चातक और हस के प्रेम की सराहना होती है । चातक अपनी टेक के कारण और हस अपने विवेक के कारण बड़ा है। बादल के लिए चातक अपनी टेक नही छोड़ता और अपने प्रिय दूध को अपने विवेक से जल से अलग कर के हस ग्रहण कर लेता है । विमल विज्ञान और विमल वैराग्य के सिद्ध भरत के भीतर टेक और विवेक दोनों है । इसीलिए वे प्रेम के क्षेत्र मे महानतम है $ ।' उनके भीतर राम के प्रेम का प्रण और उस प्रेम की सिद्धि के लिए कर्तव्य का धर्मपूर्ण विवेक दोनो ने बड़ा सुन्दर स्थान पाया है। भरत की भक्ति, उनके वैराग्य और गुणों की उज्ज्वल सम्पत्ति अवर्णनीय है ।

गोस्वामी जी ने इस सोपान के अत में भरत के प्रेम का वर्णन करते हुए कहा है—'सीता और राम के प्रेम के अमृत से पूर्ण भरत का जन्म यदि न हुआ होता तो मुनियों के मन के लिए भी अगम, यम, नियम, शम और दम के भयानक व्रत का आचरण कौन करता, अपने सुयश के बहाने दुःख, सन्ताप, दारिद्रय, दम्भ और दोष को कौन नष्ट करता और तुलसी के समान शठों को राम की तरफ़ कौन बलात् आकृष्ट करता * ।'

इस सोपान के नायक भरत का रामप्रेम इतना पावन और ओजस्वी है कि सब के मन मे पवित्र प्रेम पैदा कर देता है ।

---

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३२२ के पहले । † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३२२ के बाद । $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३२३ । * रामचरितमानस, अयोध्याकांड, अन्तिम छन्द ।

भरत के चरित्र के गौरव को व्यक्त करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—'भरत के चरित्र को जो नियमपूर्वक तथा आदर से सुनते है, उनके भीतर सीताराम के प्रति प्रेम और संसार के प्रलोभनों के प्रति विराग अवश्य उत्पन्न होगा ‡ ।'

गोस्वामी के अनुसार विमल·विज्ञान और विमल वैराग्य विश्व-प्रेम के आधार हैं। उनमें और विश्वप्रेम मे समवाय सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध अटूट है। इसी विमल विज्ञान और विमल वैराग्य-जन्य विश्वप्रेम के द्वारा मनुष्य के शील के उत्थान के लिए गोस्वामी जी ने राम और भरत के इस विमल विज्ञान और विमल वैराग्यपूर्ण प्रेम का उपयोग किया है और उस प्रेम में स्वय तन्मय हो गये है।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, सोरठा ३२५।

अध्याय ४

रामभक्ति : जीवन और विमल वैराग्य

शील के दार्शनिक विकास की दृष्टि से अरण्यकांड का तृतीय सोपान द्वितीय सोपान का समकक्ष ही है। द्वितीय सोपान विमल विज्ञान और वैराग्य सम्पादन है, और यह सोपान विमल वैराग्य सम्पादन है। विमल वैराग्य के विकास को गोस्वामी जी ने इस कांड मे जीवन के और-और क्षेत्रों मे चित्रित किया है। वैराग्य का दार्शनिक सत्य जीवन का व्यावहारिक सत्य हो कर इस काड मे विकसित हुआ है।

इस कांड के मगलश्लोक मे गोस्वामी जी ने शिव की प्रार्थना करते हुए, उन्हें वैराग्यरूपी कमल को विकसित करने वाला सूर्य कहा है। शकर का जीवन त्याग और विराग का प्रतीक है। यह विमल वैराग्य ही जीवन के समग्र आदर्शो की जड़ है। इसीलिए मगलश्लोक में शिव धर्मरूपी वृक्ष की जड कहे गये है। वैराग्य के साथ रह कर ही विवेक की शोभा होती है। विवेक के साथ यदि त्याग और विमल वैराग्य न रहे तो विवेक निष्क्रिय, मलिन, अर्थहीन और निकम्मा हो जाएगा। वैराग्य के अभाव में विवेक केवल दार्शनिक चिन्तनमात्र का एक अग बन कर गद्दी तकियों के सहारे निकम्मा बन कर पड़ा रह सकता है। जीवन के सौन्दर्य का शिल्पी होने का सौभाग्य उसे न प्राप्त होगा। यह सौभाग्य उसे विमल वैराग्य के सहयोग से ही प्राप्त होता है। विमल वैराग्य विवेक का सुन्दर कर्मठ और सक्रिय रूप है। विमल वैराग्यमय शिव को विवेक-जलधि को प्रफुल्लित करने वाला, आनन्द देने वाला पूर्ण चन्द्र कहने का यही रहस्य है। अपने वैराग्य के द्वारा लोकमगल का विधान करके शिव अपने विवेक के समुद्र को उल्लसित और आनन्दपूर्ण उमगों से सक्रिय बनाते रहते है। इस विमल वैराग्य के उत्पन्न हो जाने पर पाप के बादलों का अन्धकार नष्ट हो जाता है, जीवन पवित्रता और तपस्या से आलोकित हो जाता है, उसके भीतर मिलने वाले ताप शान्त हो जाते है, अज्ञान के बादल की घटा विनष्ट हो जाती है, जीवन अकलुष हो जाता है और ऐसा ही वंदनीय व्यक्ति ब्रह्मा की सृष्टि का श्रेष्ट प्राणी होता है और राम का प्रिय होता है‡। ये सब गुण और अवस्थाएँ शिव के समान आदर्श शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति मे है, इसीलिए विमल वैराग्य के केन्द्र शिव के साथ गोस्वामी जी ने इस विशेषण-शृखला को जोड़ दिया है।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, मंगलाचरण, श्लोक १।

ससार के मगल का विधान करने के लिए मुनि-वेश मे वन-पथ पर विचरण करते हुए राम मे यही विमल वैराग्य है। इस वनकाड में उनके इसी विमल वैराग्य पूर्ण रूप का ध्यान गोस्वामी जी ने किया है‡।

विमल वैराग्य की शक्ति का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए इस काड की प्रायः पूरी कथा विमल वैराग्य-सम्पन्न शिव ने विमल वैराग्य की अग्नि मे तपी हुई उमा से कही है। उन्होने प्रारम्भ ही मे बताया है—'राम की कथा बडी रहस्यमयी है। पडित और मननशील मुनि उससे अपने जीवन के लिए वैराग्य प्राप्त करते है। वैसे जड और मूर्ख प्राणी, जो आदर्शो से प्रेम नही करते, जो राम के पथ से बहुत दूर है, उन्हें इस कथा से अज्ञान ही मिलेगा†। आदर्शप्रिय भरत को राम के इस शील का मर्म ज्ञात था, इसीलिए उन्हे विमल वैराग्य की प्राप्ति हुई और जडबुद्धि जयन्त को उसी चरित के भीतर से अज्ञान और विमोह प्राप्त हुए$। अनन्त शक्ति के केन्द्र ब्रह्म राम को मनुष्य समझ कर उसने उनकी शक्ति की परीक्षा लेने के लिए सीता का अपमान किया। विमल वैराग्य के द्वारा अपनी अनन्त शक्तियों को छिपा कर ससार को उत्तम पुरुष की मर्यादाओं की शिक्षा देने वाले राम के विरोधी को कहाँ स्थान मिल सकता है। विमल वैराग्यपूर्ण मर्यादा पुरुषोत्तम की शक्ति का स्पर्श पा कर तृण ब्रह्मास्त्र बन गया और जडता का साथ देने वाला इन्द्रपुत्र उसके सम्मुख अवस्तु। जडता का स्पर्श पा कर शक्ति निष्क्रिय बन जाती है और विमल वैराग्य के पावन स्पर्श से तृण अमोघ शक्तिवान् ब्रह्मास्त्र बन जाता है। राम की इस पवित्र अमोघ शक्ति का विरोध करने वाला कहाँ स्थान पा सकता है—"राखि को सकइ रामकर द्रोही*।" जयन्त की रक्षा ब्रह्मा और शिव भी न कर सके§।

अज्ञानजन्य वासना के पथ पर चल कर जीवन की यात्रा करने वाले अभागे पथिक के लिए पूरी पृथ्वी तपे हुए लोहे के समान हो जाती है। उसका हर पग प्राणघातक और आत्मा के अवसाद का कारण बनता है। इस अवस्था को समझाते हुए इसी कांड की कथा के प्रवाह मे कागभुशुडि ने गरुड़ से कहा है—'जो राम के पथ से विमुख हो जाता है, उसके लिए माता भी मृत्यु के समान बन जाती है, पिता यम के समान हो जाता है, अमृत विष की तरह आचरण करने लगता है, मित्र सैकड़ों शत्रुओं की तरह व्यवहार करने लगता है, गगा वैतरणी बन जाती है और सम्पूर्ण जगत् आग से भी अधिक तीव्र ताप देने लगता है×।' कोमलहृदय राम के पथ से अलग हो जाने वाला क्रूर हो जाता है। उसके लिए जगत् की सब शान्तिदायिनी वस्तुएँ विष की ज्वाला ही उत्पन्न करती है।

अपने अज्ञानजन्य मोह की अवस्तुता का पता जब लग जाता है तब जयन्त राम के विमल वैराग्य के सामने आत्मसमर्पण कर क्षमा प्राप्त कर लेता है। विमल वैराग्य अपनी

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, मगलाचरण, श्लोक २। † रामचरितमानस, अरण्यकाड मगलाचरण, श्लोक २ के बाद वाला सोरठा। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १ के पहले। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १ के बाद। § वही। × वही।

प्रकृति से क्षमाशील होता है पर आदर्श की शिक्षा देने के लिए वह कुमार्ग पर चलने वालो को सुधारने के लिए दया करके दण्ड-विधान भी करता है।

राम के विमल वैराग्य के भीतर भक्तवत्सलता है, कृपालुता है और कोमल शील है। विमल वैराग्य ही उनका अपना निजगृह है। वे उसी मे निवास करते है। उनका यह परमधाम उसी को प्राप्त होता है, जो अनासक्तिमय प्रेम (विमल वैराग्य) के प्रकाश से आलोकित हो जाता है। ससाररूपी समुद्र के लिए राम का शील मन्दराचल पर्वत की तरह है। उसकी समग्रता को जान कर साधक उसके भीतर से सात्त्विकता के रत्नों को ले लेता है, और अभिमान इत्यादि दूषित प्रवृत्तियों को छोड देता है। शील के इसी सौन्दर्य के कारण राम त्रैलोक्य के हृदय-नायक है। इसी शील के कारण उनसे सूर्यकुल की शोभा बढ़ी। यही शील सतो को सन्तोष देता है। इसी के कारण राक्षस पराहत होते है। इसी शील की शिव उपासना करते हैं। ब्रह्मा इत्यादि सब देवता इसी शील की पूजा करते है। विमल ज्ञान ही इस राम का शरीर है। यही शील सज्जनों का अतिम लक्ष्य है। यही आनन्द का मूल स्रोत है। विमल वैराग्य की इसी विराट् परिणति—रामब्रह्म के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम के सामने इस सोपान में विरागी अत्रि का पवित्र हृदय श्रद्धावनत हो जाता है और वे उनसे चरणों की भक्ति का ही वरदान माँगते है। शील के सौन्दर्य का बार-बार साक्षात्कार करके वे आनन्द मे निमग्न होना चाहते है। मुक्ति का आनन्द उनके लिए नीरस, हेय और आकाशकुसुम की तरह है‡।

विमल वैराग्य के इस प्रकरण मे दाम्पत्य के भीतर नारी और पुरुष के प्रेम की त्यागमय पवित्रता की ओर बार-बार ध्यान आकृष्ट किया गया है। विमल वैराग्य की पवित्र अनासक्ति के भीतर से उत्पन्न होने वाला त्याग इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने फिर से चित्रित किया है। पवित्र त्याग से जीवन और जगत् की रक्षा होती है। दाम्पत्य के भीतर भी इस त्याग की आवश्यकता है, क्योकि जीवन का एक बडा महत्त्वपूर्ण अश दाम्पत्य के सौन्दर्य के भीतर ही विकसित होता है। यह विमल वैराग्यपूर्ण आत्मविसर्जन सीता मे है। इस सीता को पातिव्रत की शिक्षा दे कर अत्रिपत्नी अनसूया कहती है—"सुनु सीता तव नामु सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं। तोहि प्रानप्रिय रामु कहेउँ कथा ससार हित†।"

गोस्वामी जी की अनसूया ने केवल लोक-मर्यादा पर ज़ोर देने के लिए ही सीता को शिक्षा दी, अन्यथा सीता तो सती स्त्रियों के लिए आदर्श है।

गोस्वामी जी इस बात को स्पष्ट बता देना चाहते है कि सुन्दर, स्वस्थ, बुद्धिमान्, धनी, कोमल स्वभाव वाले और तेजस्वी पति से तो पत्नी का स्वार्थ सिद्ध होता रहता है। ऐसे पति के सम्पर्क मे रहने वाली नारी का आत्मोत्सर्ग उतना महत्त्व नही रखता। इस आत्मोत्सर्ग के साथ, न चाहने पर भी, नारी की कृतज्ञता तथा स्वार्थसिद्धि के लिए उसका आभार अवश्य ही व्यक्त होगा। अपने इस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए धर्म उसे बाध्य

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, सोरठा ३ के बाद वाला छन्द। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, सोरठा ५।

करता है। पर नारी के शील का, उसकी आत्मबलि का उच्चतम विकास अहेतुक प्रेम के भीतर ही दिखाई पड़ सकता है। यह अहेतुक प्रेम जीवन के भीतर अस्वस्थ संघर्ष नही उत्पन्न होने देता। इसके द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के क्षेत्रों मे एक पवित्र और सक्रिय शान्ति का प्रकाश जीवन को आनन्दमय और सन्तोषमय बनाये रखता है। जीवन के इसी आनन्द और सन्तोष की सिद्धि के महायज्ञ मे भाग लेने के लिए गोस्वामी जी ने नारी को भी निमन्त्रित किया है। उनकी अनसूया ने सीता से कहा है—"वृद्ध रोगबस जड धनहीना, अध बधिर क्रोधी अति दीना। ऐसेहु पतिकर किये अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना। एकइ धरम एकु ब्रतु नेमा, काय बचन मन पति पद प्रेमा‡।"

अपनी सब आकांक्षाओं को, अपने सब सांसारिक हेतुओं को विर्सजित करके जब विमल वैराग्य को अपना साथी बना कर नारी अहैतुक प्रेम की साधना करेगी तब उसका जीवन तपोमय, राममय, पवित्र और महान् होगा। तभी वह जगदम्बा जगद्धात्री बन सकेगी...नारी के इसी तपोमय रूप के गोस्वामी जी उपासक थे। विमल वैराग्य की इसी उच्च भूमि पर पहुँच कर दाम्पत्य जीवन में नारी ब्रह्मनिष्ठ हो जाती है। उसके जीवन का पूर्ण विकास इसी पथ पर पावन प्रेम के आलोक मे होता है।

नारी के लिए निर्दिष्ट ऊपर के प्रेम-पथ पर कोमल शील की ओर तो गोस्वामी जी ने बार-बार सकेत किया ही है, इसके अतिरिक्त भी राम के कोमल शील के आधार पर पुरुष के भीतर भी विमल वैराग्य की साधना का सदेश गोस्वामी जी ने दिया है और इस शील के प्रति वे इतने अधिक आकृष्ट हुए है कि इसका निर्देश वे बार-बार करते है, और रामचरितमानस का यह मूलमत्र है। साधारण दुर्बल स्वाभाव वाले मनुष्य में शक्ति के विकास के साथ कठोरता विकसित होती है पर विमल वैराग्य की अनत विभूति के साथ मर्यादा पुरुषोत्तम की अनत शक्ति दयालुता की अनत कोमलता को ले कर चलती है। इससे वे लोकमगल विधान करते हैं। वे लोकसेवक के रूप मे अवतीर्ण हुए हैं। अत्रि से, चलने के पूर्व, आज्ञा लेते हुए वे कहते है—"आयसु होइ जाउं बन आना। सतत मो पर कृपा करेहू, सेवक जानि तजेहु जनि नेहू†।"

यहाँ अनत शक्तिवान् राम पवित्र विराग के कारण अपनी अनन्त शक्ति के साथ अपार कोमलता को लिये हुए हैं। इसी बात को बताने के लिए तुलसी के अत्रि भगवान् राम का उत्तर देते हुए कहते हैं—'जिसकी कृपा, ब्रह्मा, शिव और सनकादि परम सत्य को जाननेवाले भी चाहते है वही आप, अकाम और दीन के सामने इतने स्नेहयुक्त और कोमल हो जाते है। जिससे बढ़ कर और कोई देवता नही है, उसका शील ऐसा क्यों न हो$।'

गोस्वामी जी का यह सिद्धान्त है कि अज्ञानजन्य सांसारिक भावनाओं का बन्धन मनुष्य पर इतना दृढ़ बँधा हुआ है कि ज्ञान, योग, जप और धर्म उसे शिथिल नही कर

रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ४ के बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, सोरठा ५ के बाद। $ वही।

सकते। राम के इस कोमल शील का आकर्षण ही इस बन्धन को भूलने मे व्यक्ति की स्वाभाविक सहायता कर सकता है, उमे राम के शील के सौन्दर्य से विभूषित कर सकता है तथा अज्ञान के आकर्षण के प्रति उसे विमल वैराग्य दे सकता है‡ ।

सरभग एक ऐसे ऋषि है जिन्होंने अपने मन को राम के शील के सौन्दर्य मे मग्न कर लिया है। इस शील के सौन्दर्य का साक्षात्कार कराने वाले सीता और राम के सुन्दर शरीर उनके ध्यान के लक्ष्य है† । अत्रि से मिलने के बाद सरभग के आश्रम में राम के सान्निध्य मे ऋषि का विमल वैराग्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। राम के रूप को देख लेने के बाद उनका विमल वैराग्य इस सीमा पर पहुँच जाता है कि वे अपना शरीर भी नही देखना चाहते। योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म करके वे स्वर्ग चले गये। योगाभ्यास, यज्ञ, जप, तप जितना सरभग ने किया था, उन सबसे अनासक्त हो कर उन्होंने केवल भक्ति का वरदान माँग लिया$ ।

गोस्वामी जी के अनुसार वैराग्य विमल तभी होता है जब वह मनुष्य को ससार के स्वार्थो से पृथक् हटा कर राम के शील और सौन्दर्य मे मग्न कर दे। यह विमल वैराग्य ही अहैतुकी भक्ति है। यही भक्ति उनके सरभग ने माँगी —"सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरतर सगुन रूप श्रीराम"। ससार की सब आसक्ति छोड कर सगुण भक्ति के विमल वैराग्य मे सरभग लीन हो गये। अपने शरीर की आसक्ति भी न सह सकने के कारण उसे भी छोड़ दिया * ।

भक्त भगवान् से अलग रह कर उसके शील सौन्दर्य का साक्षात्कार करना चाहता है। इसीलिए उसे सगुण रूप की भेदभक्ति चाहिए § ।

विमल वैराग्य सब देवताओ मे भेद न देख कर उनके भीतर एक पवित्र एकता देखता है। पवित्र हृदय से सब मे राम का दर्शन करके वह केवल राम के ही आश्रय मे चला जाता है। स्वप्न मे भी उसे किसी दूसरे देवता का भरोसा नही रहता—"सपनेहु आन भरोस न देवक, मन क्रम बचनु राम-पद-सेवक"—ऋषि सुतीक्ष्ण के लिए कहा गया है। ऋषि सुतीक्ष्ण इसी तरह के अनन्य प्रेम वाले रामभक्त थे × ।

उपास्य के रूप-दर्शन से भी विमल वैराग्य की उत्पत्ति होती है। ससार के विविध रूपों मे आसक्त मन को अनत सौन्दर्य विभूषित राम का रूप अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। उसके भीतर सांसारिक सौन्दर्य के प्रति विमल वैराग्य उत्पन्न कर देता है। सम्पूर्ण विश्व मे अपने उपास्य के रूप को देखने के कारण भी उसका ससार के प्रति वैराग्य द्वेषपूर्ण न हो कर मैत्रीपूर्ण और विमल हो जाता है। 'वदनपकज' का दर्शन उसके लिए 'भवमोचन' हो जाता है। इसी स्थिति मे पहुँच कर सुतीक्ष्ण राम के आने का समाचार पा कर कहते

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, सोरठा ६। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ७। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ७ के बाद। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ८। § रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ८ के बाद। × रामचरितमानस, अरण्य-काड, दोहा ९ के बाद।

है—"होइहि सुफल आजु मम लोचन, देखि बदन पकज भवमोचन ‡ ।" प्रिय का सौन्दर्य भक्त को अपनी ओर आकृष्ट करके विमल वैराग्य के प्रकाश में ससार से—उसके प्रलोभनो के बन्धनों से, उसे मुक्ति दे देता है।

तुलसी के अनुसार भक्ति के भीतर ज्ञान और प्रेम की एकाकार परिणति हो जाती है। उनके अनुसार ज्ञान जब प्रेम से युक्त होता है तभी विमल वैराग्य उसके भीतर उत्पन्न होता है। बिना प्रेम के ज्ञान व्यर्थ है। प्रेम ज्ञान को विमलता प्रदान करता है और ज्ञान के भीतर उत्पन्न हुआ वैराग्य विमल हो जाता है। ज्ञान के भीतर उत्पन्न हुआ अभेद वैराग्य को उत्पन्न करता है और प्रेम की भावना उस वैराग्य को स्नेह की कोमलता से विमल बना देती है। इस वैराग्य मे घृणा इत्यादि कुछ अवशिष्ट नही रह जाते। ज्ञानी जब प्रेम मे मग्न हो जाता है तब वह इतना सजीव और महान् हो जाता है कि उसकी ऊँचाई का अनत सौन्दर्य अनिर्वचनीय हो जाता है। उमा से चर्चा करते हुए शकर, सुतीक्ष्ण की इसी अवस्था की ओर सकेत करते है—"निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी, कहि न जाइ सो दसा भवानी † ।" सुतीक्ष्ण के समान ज्ञानी मुनि जब निर्भर प्रेम में मगन हो गया तब उसके भीतर उत्पन्न विमल वैराग्य की अवस्था अनिर्वचनीय हो गयी। उसके भीतर उत्पन्न होने वाली प्रेममयी सजगता के माधुर्य का वर्णन जड वाणी नही कर सकती।

गोस्वामी जी ने अष्टाग योग को भक्ति का साधन बना लिया है। उनके सुतीक्ष्ण राम के रूप का ध्यान करते-करते अपने भीतर रूप की धारणा जागृत कर अचल आसन पर आसीन हो कर रूपानन्द की समाधि मे मग्न हो जाते है। जगत् के आनन्द से हट कर वे विमल वैराग्य के भीतर प्राप्त हुए राम के रूप के आनन्द की समाधि में मग्न हो जाते है। 'मुनि मगु माझ अचल होइ बैसा $' मे योग के स्थिर आसन की ओर सकेत है। 'दिसि अरु बिदिसि पथ नहि सूझा, को मै, चलेउँ कहाँ, नहि बूझा * ।' मे प्रेमाधिक्य और ध्यानजन्य धारणा का लक्षण है। 'मुनिहि रामु बहु भाँति जगावा, जाग न ध्यान-जनित सुख पावा § ।' मे ध्यान और धारणाजन्य समाधि के भीतर प्रिय के लोकमगल विधायक रामरूप के दर्शन का आनन्द चित्रित किया गया है। तुलसी के सुतीक्ष्ण की मर्यादा-पुरुषोत्तम के लोकमगल विधायक राजा राम के रूप से ही आसक्ति है। समाधि के भीतर से राम जब भूप रूप को छिपा कर चतुर्भुज रूप दिखाते है, तब सुतीक्ष्ण इस तरह से तिलमिला कर जाग उठते है जिस तरह मणि खो जाने पर सर्प तिलमिला कर उसे खोजने के लिए व्याकुल हो उठता है × ।

इस तरह योगागों का उपयोग करके भी विमल वैराग्य के नेत्रों से दिखाई पड़ने वाले रूप और शील के सौन्दर्य की आनन्दपूर्ण समाधि मे गोस्वामी जी सगुण भक्ति की ही साधना करते रहते है। वहाँ वे योगियों की अखड ब्रह्मज्योति को न देख कर 'बाहरजामी' +

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोह ९ बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ९ के बाद। $ वही। * वही। § वही। × वही। + कवितावली, उत्तरकांड, सवैया १२९।

राम के रूप और शील के सौन्दर्य को ही 'अन्तर्जामी'‡ बना कर देखते रहते है। उनके सुतीक्ष्ण इसी बात की गवाही देते है।

विमल वैराग्य के प्रकाश के साथ भक्त का दीनभाव उदित होता है। उपास्य की अमित महिमा को देख कर तुलसीदास जी के सुतीक्ष्ण इतने नम्र और दीन हो गये है कि वे अपनी शक्ति के लिए अहकारपूर्ण आसक्ति का विसर्जन कर देते है। हृदय की पवित्रता के भीतर से उत्पन्न हुआ यह भगवत्प्रेमपूर्ण विराग, विमल वैराग्य है। इस विमल वैराग्य की दृष्टि से अनत शील शक्ति और सौन्दर्य की अमित महिमा को उपास्य मे देख कर सुतीक्ष्ण अपने को बडा हीन अनुभव करते है। उस अनतता के सम्मुख अपने को क्षुद्रतम अनुभव करके उनका हृदय भक्ति से कोमल हो उठता है। वे कहते है—"महिमा अमित मोरि मति थोरी, अस्तुति करउँ कवनि बिधि तोरी †।"

जब यह दीनभाव भक्त के भीतर उत्पन्न होता है तब उसका अभिमान दूर हो जाता है और भगवान् की विभूति की सम्पूर्णता को वह अपने सम्पूर्ण मन से देख लेता है, साधक की अभिमानशून्यता के भीतर ही भगवान् की अनत शक्ति का पूर्ण प्रतिबिम्ब बन सकता है। हृदय की पूर्णता ही भगवान् की पूर्णता का अनुभव कर सकती है। अभिमान जितना ही अधिक रहता है, उतना अधिक ही वह हृदय को घेर कर खडित किये रहता है। नष्ट होते होते जब वह शून्य हो जाता है तब हृदय पूर्ण हो कर भगवान् की पूर्णता की भावमयी झाँकी प्राप्त कर लेता है।

जिस तरह शकराचार्य का अद्वैत-दर्शन सत्य के व्यावहारिक और पारमार्थिक दो रूपों को मानता है उसी तरह गोस्वामी जी का मत मुख्यत विशिष्टाद्वैत पर आधारित होने के कारण सत्य के उन दोनों रूपों को देखता है। गोस्वामी जी ने माया की दृष्टि से दिखाई पडने वाले भगवान् के व्यावहारिक रूप को भी सत्य माना है और ज्ञान की दृष्टि से दिखाई पड़ने वाले पारमार्थिक अद्वैत रूप को भी। शकराचार्य के अद्वैतवाद और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद में अतर यही है कि व्यावहारिक सत्य अद्वैत दृष्टि से भ्रम माना जाता है और पारमार्थिक अद्वैत सत्य ही परम सत्य या केवल सत्य माना जाता है। पर विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय मे भगवान् का मायामय रूप भी सत्य माना जाता है, भ्रम नही।

माया को ब्रह्म का अंग मान लेने के कारण विशिष्टाद्वैती दृष्टि ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को सत्य मानती है। इसीलिए रामायण के सब भक्त पात्र ब्रह्म राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का ध्यान करते है, पर सगुण रूप लोक-मर्यादा के सौन्दर्य, मधुरता और पवित्रता से सम्बद्ध होने के कारण उन्हे अधिक प्रिय है। ब्रह्म के निर्गुण रूप को मनुष्य की चिन्तनमयी सत्ता प्राप्त करती है, उसके सगुण रूप को साधक की प्रेम-भावना तथा उसकी शील-भावना अपने भीतर भावित करती रहती है। चिन्तन से अधिक

‡ कवितावली, उत्तरकांड, सवैया १२९। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १० के बाद।

शील के क्रियात्मक पक्ष पर आस्था रखने के कारण गोस्वामी जी पवित्र क्रियाओं के जनक, राम के सुन्दर रूप की ओर ही अधिक आकृष्ट हुए है और मानस के दूसरे पात्र भी सगुण भक्ति की ओर अधिक झुके हुए है ।

इसी भावना पद्धति के आधार पर तुलसी के सुतीक्ष्ण की विमल वैराग्यपूर्ण दृष्टि राम के आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों रूपों को देख कर व्यावहारिक रूप मे अन्ततोगत्वा निमग्न हो जाती है । वे निर्गुण की भावना तो कर सकते है, पर लीन सगुण के ही ध्यान मे होते है । वे अरूप राम की स्तुति उसे 'ज्ञानगिरागोतीत अरूप' ‡ कह कर भी करते है और 'सीतानयनचकोर निशेशं' † कह कर भी । वे कहते हैं—'यद्यपि आप विरज, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदय मे निरन्तर वास करने वाले है, तथापि सीता और लक्ष्मण के साथ आपका काननचारी रूप मेरे हृदय मे निवास करे $ ।'

राम का यह काननचारी रूप ही अपने परम त्यागमय (विमल वैरागमय) रूप से मानव के शील के परमोच्च विकास को प्रदर्शित करता है । गोस्वामी जी इसीलिए इस रूप की उपासना करते है और मानस के सब भक्तपात्र इसी रूप के ध्यान मे मग्न होते है।

गोस्वामी जी के अनुसार भक्त मे समग्र शुभगुण, अविरल भक्ति, वैराग्य और विज्ञान एक साथ रहते है। इसीलिए सुतीक्ष्ण को वरदान देते हुए राम ने कहा है—"अविरल भगति बिरति बिज्ञाना, होउ सकल-गुन-ज्ञान-निधाना * ।" लेकिन भक्त इन सबका स्रोत राम की सगुण लीला में देख कर अपने को उसी रूप तक सीमित रखता है । गोस्वामी जी के सुतीक्ष्ण भी इसी तरह के भक्त है । वे कहते है—'प्रभु ने जो वर दिया वह मुझे मिल गया । अब जो वर मुझे अच्छा लगता है वह दीजिए § ।' और उस वरदान में सुतीक्ष्ण कहते है—'धनुष और बाण धारण करने वाले राम, सीता और लक्ष्मण के साथ मेरे हृदय के आकाश मे चन्द्रमा के समान सदा निवास करें, यही मेरी कामना है × ।'

भगवान् राम का मर्यादापुरुषोत्तम और लोकमगल विधायक रूप मानस के सब भक्त पात्रो को प्रिय है ।

सुतीक्ष्ण के गुरु अगस्त्य भी उसी विमल वैराग्य की दृष्टि पाये हुए एक भक्त है जो निर्गुण को जानते हुए भी सगुण से ही प्रेम करना अपने जीवन का लक्ष्य समझते है । विशिष्टाद्वैती भक्ति-पद्धति मे विशिष्ट और अद्वैत दोनों ब्रह्मस्वरूपो की ओर भक्तों का झुकाव स्वाभाविक है, पर रूप की उपासना को नैतिक और दार्शनिक बल देने के लिए उत्पन्न हुए रामानुज ने रूप पर अधिक आसक्ति पैदा की और यही आसक्ति तुलसी और मानस के सब भक्त चरित्रों मे दिखाई पडती है ।

अगस्त्य भी यही वरदान माँगते है—"यह वर मागउँ कृपा निकेता, बसहु हृदय श्री अनुज समेता + ।"

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १० के बाद । † वही । $ वही । * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ११ के पहले । § वही । × रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ११ । + रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १२ के बाद ।

वे आगे यह भी कहते है—"जद्यपि ब्रह्म अखड अनता, अनुभवगम्य भजहिं जेहि सता। अस तव रूप बखानउँ जानउँ, फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ ‡।"

निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान और प्रतिपादन करने के बाद भी बार-बार गोस्वामी जी के अगस्त्य मे सगुण ब्रह्म का प्रेम तरगित होने लगता है। निर्गुण का ज्ञान और सगुण के प्रति उमग भरा प्रेम गोस्वामी जी की विमल वैराग्य पूर्ण भक्ति का लक्षण है।

विमल वैराग्य के इस सोपान मे लक्ष्मण ने राम से ज्ञान, विराग, माया, भक्ति, ईश्वर और जीव के लक्षण पूछे है। तुलसी के राम के अनुसार माया के सक्षिप्त लक्षण इस प्रकार है : 'मैं और मेरा, तुम और तुम्हारा में दिखाई पडने वाला भ्रममूलक सम्बन्ध-ज्ञान ही माया है। इसी माया के वश में सब जीव रहते है। इन्द्रियों की अनुभूति मे आने वाला अखिल विश्व जिसका अनुभव इन्द्रियों के द्वारा मन करता रहता है, सब माया का विस्तार है † ।'

माया के दो भेद हैं—विद्या और अविद्या। अविद्या का स्वभाव दुष्ट है और वह अतिशय दु खरूपिणी है। उसी के वश मे हो कर जीव भवकूप मे पडता है। विद्या से जगत् की सृष्टि होती है। उसमे स्वय अपना बल नही होता। वह ईश्वर की प्रेरणा से ही कार्य करती है $ ।

साख्य के प्रकृति-पुरुष के भी प्राय: यही लक्षण है। साख्य के अनुसार पुरुष परम चेतन है और प्रकृति परम जड। पुरुष नेत्रवान् है और प्रकृति अधी। पुरुष ज्ञानवान् है और प्रकृति परम अज्ञ। पुरुष के ज्ञान और चैतन्य के प्रकाश मे, साख्य दर्शन के अनुसार, प्रकृति कार्य करती रहती है। सम्पूर्ण जगत् मे प्रकृति-पुरुष के कार्य की यही प्रक्रिया चलती रहती है। साख्य के अनुसार सब प्राणियो के शरीर प्रकृति के अश है। उन शरीरों के भीतर ज्ञान और चैतन्य पुरुष के प्रकाश के खड है। सब जीवों के भीतर यही दोनो मिल कर कार्य करते रहते है। इस प्रक्रिया को जान लेने वाला अपने अभिमान की आसक्ति को छोड़ कर कर्ममुक्त हो जाता है। इस ज्ञान के अभाव मे पाप पुण्य सब के साथ वह अपने को ही सम्बद्ध करता रहता है और यही सम्बन्ध उसका बन्धन बन जाता है। इस रहस्य को समझ लेने वाला स्वार्थमुक्त हो कर जगत् के मगलविधान से अपने को जोड़ कर रामपथ पर चलने लगता है। साख्य और विशिष्टाद्वैत दर्शन इसी चिन्तन-पद्धति के द्वारा जीवन के सौन्दर्य से जोड लिये जाते हैं। इसी ज्ञान के प्रकाश मे माया के स्वार्थ से सम्बद्ध आकर्षण के प्रभाव से साधक मुक्त हो जाता है * ।

विशिष्टाद्वैती विचारधारागत विमल वैराग्य के सिद्धान्त का गोस्वामी जी ने ज्ञान से सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। लक्ष्मण के पूछने पर राम ने बताया है कि जिसमे

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १२ के बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १४ और उसके बाद। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १४ के बाद। * साख्यतत्त्व-कौमुदी, कारिका १०, ११, १७, २० और २१।

किसी भी प्रकार के भेद-ज्ञान और अभिमान का लेश नही रह जाता है, जो व्यक्ति सब मे समान रूप से ब्रह्म को ही देखता है, वही परम ज्ञानी और विरागी है। वह अष्ट सिद्धियों और त्रिगुणो के प्रलोभनों को तृण की तरह छोड देता है‡। प्रलोभनों को छोडना ही स्वार्थ के ऊपर उठ कर लोकमगल विधान की अवस्था तक पहुँच जाना है। इसी लोक-मगल विधान की उदारता का दर्शन गोस्वामी जी मनुष्य मे करना चाहते है। इस अवस्था तक पहुँचा हुआ मनुष्य भेद को भूल कर सम्पूर्ण विराट् ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। इस प्रकार वह सब का हो जाता है।

विमल वैराग्य की दृष्टि से जीव का लक्षण प्रदर्शित करते हुए गोस्वामी जी के राम ने लक्ष्मण को बताया है कि जो माया, ईश्वर और स्वयं अपने को भी नही जानता, वही जीव है†। बधन के भीतर पड़ा हुआ अज्ञानी मनुष्य, जो माया की क्षुद्रता को नही जानता, ईश्वर की सत्यता और महत्ता को नही जानता और अपनी दुर्बलता का भी जिसे ज्ञान नहीं रहता, वही वेदान्त का 'जीव' है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त मे भी ऐसे प्राणी को जीव-सज्ञा दी गयी है।

अध्यात्म दर्शन से अलग हट कर व्यवहार दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार भी देखा जाए तो जीव वही है जो माया की नि.सारता, स्वार्थ की क्षुद्रता को न पहचान कर उसी मे लीन और दुर्बल स्वभाव का होता है। यह जीव आदर्शो से और ईश्वरीय गुणों से दूर रहता है, अपनी इन दुर्बलताओं की हीनावस्था का भी उसे ज्ञान नही रहता। फलतः उसका शीघ्र विकास नही हो पाता। परमोच्च शील की दिशा मे उसकी गति मन्द रहती है। राम के पथ से, मर्यादा पुरुपोत्तमत्व से, वह बहुत नीचे की विकास-श्रेणी मे रहता है। इसको पहचान कर मर्यादा पुरुषोत्तम की ओर उसकी प्रवृत्ति होने लगती है। यही उसके भीतर विमल वैराग्य का उदय हो जाता है।

विमल वैराग्य की दृष्टि मे जीव के बन्धन और मोक्ष का सचालक, माया को शक्ति प्रदान करने वाला तथा जीव को मुक्ति की ओर जाने के लिए प्रकाश देने वाला ईश्वर है। वह जीव, जगत् और माया सब के ऊपर नियन्त्रण रखने वाली अपरिसीम अनंत शक्ति है। ईश्वर की इस शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के बाद मनुष्य अपने सब स्वार्थो को उसके चरणों मे विसर्जित करके लोकमंगल विधान के विमल वैराग्य की ओर प्रस्थान करता है $।

विमल वैराग्य सिद्धान्त मे विरति की उत्पति का कारण बताते हुए गोस्वामी जी के राम ने, सक्षेप में, लक्ष्मण से इस विमल वैराग्य के प्रकरण मे 'धर्म तें विरति*' ही कहा है। इस वार्तालाप के प्रकरण में उन्होने लक्ष्मण से कहा भी है कि मै तुम्हें सक्षेप मे ही बताऊँगा। तुम मति, मन और चित्त लगा कर सुनो—"थोरेहि महँ सब कहउ बुझाई, सुनहु तात मति, मनु चितु लाई§।"

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५ के पहले। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५। $ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५ के बाद। § रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १४ के बाद।

मति किसी वस्तु को ग्रहण करती है, मन उसकी ओर बढ़ने की इच्छा करता है और चित्त प्रेरणा के द्वारा उसे कार्य मे प्रवृत्त करता है।

गोस्वामी जी के राम का अभिप्राय यही है कि सक्षिप्त दार्शनिक सिद्धान्तों को बुद्धि से ग्रहण करके अपने मन मे उन्हे जीवन के रूप मे परिणत करने की वासना पैदा करो और चित्त की प्रेरणा दे कर, चित लगा कर उन दार्शनिक सिद्धान्तों को जीवन के रूप मे परिणत कर लो। दर्शन जिन अवस्थाओं को हीन सज्ञा से संबोधित कर उनकी परिभाषा, हीनता की दृष्टि से उन्हे देखते हुए करता है, उनसे दूर रहो और दर्शन के द्वारा प्रशसित अवस्थाओ की तरफ मन और चित्त को प्रेरित करके उन्हे अपने जीवन के व्यवहारों के भीतर प्राप्त कर लो। यही राम का सकेत है।

इस सकेत के अनुसार 'धर्म तें विरति' सूत्र का बडा व्यापक अर्थ हो जाता है। 'परहित सरिस धर्म नहि भाई, परपीडा सम नहिं अधमाई‡।' गोस्वामी जी की चौपाई है। परहित करके लोकमंगल विधान करना ही श्रेष्ठ धर्म है। परहित के साधक को अपने जीवन के सुखों के प्रति उसी तरह विराग की वृत्ति धारण करनी पड़ती है, जिस तरह मर्यादा पुरुषोत्तम ने मुनिवेश धारण करके लोकमगल का विधान किया था। इसी पद्धति के द्वारा स्वार्थमय प्रलोभनों के प्रति उत्पन्न हुए विराग के कारण को बताने के लिए गोस्वामी जी के राम ने सक्षेप मे 'धर्म ते विरति' कह दिया है। इस पद्धति से उत्पन्न हुई विरति में विमल वैराग्य उत्पन्न होता है, जो मनुष्य को निष्क्रिय न बना कर पावन और लोकानन्द की जननी उस पवित्र कोमलता और सक्रियता की ओर ले जाता है जिससे राम के जीवनपथ का निर्माण हुआ है।

लक्ष्मण को ज्ञान की उत्पत्ति बताते हुए राम ने सक्षेप में केवल 'जोग तें ज्ञाना†' ही कहा है। उन्होंने यह भी बताया है कि वैदिक विचारधारा ज्ञान को मोक्ष का कारण मानती है। "ऋते ज्ञानात् न मुक्ति."—ज्ञान के बिना मुक्ति नही होती। यह दर्शन शास्त्र का सिद्धान्त है। पतजलि के अनुसार योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है—"योग: चित्त-वृत्ति-निरोध.$" स्वार्थमय प्रलोभनों मे भटकते हुए चित्त को रोक कर जब एक ही वृत्ति मे उसे केन्द्रित कर दिया जाता है तब योग की उत्पत्ति होती है। लोकमगल विधायक कर्म की प्रवृत्ति मे मन को केन्द्रित कर देने वाले राम एक सच्चे कर्मयोगी भी है। इस योग की अवस्था मे साधक को अभेद की प्राप्ति हो जाती है और यही एकत्व का ज्ञान, दर्शन के सिद्धान्तों के भीतर परिभाषित ज्ञान है। इसे प्राप्त करके मनुष्य की, वासनाओं से (माया के प्रलोभनों से) मुक्ति हो जाती है। ऐसा पूर्ण पुरुष ही ससार में जीवित रहने का पूर्ण अधिकारी है।

परन्तु वेदान्त का वैराग्य और ज्ञान मनुष्य को रूपात्मक जगत् की भेद-बहुल भावना के बाहर ले जाते है। इसी स्थिति तक वैराग्य और ज्ञान को भगवान् राम ने छोड कर भक्ति को उनसे श्रेष्ठ मान लिया है और भक्ति के भीतर के ज्ञान और वैराग्य को

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ४० के बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५ के बाद। $ पातजल दर्शन, समाधिपाद, सूत्र २।

गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और विमल वैराग्य संज्ञा दे कर उन्हे पवित्र लोक व्यवहार के आदर्श के भीतर उतार लिया है। उनके अनुसार लोकमगल विधान की पवित्रता से सम्बद्ध हो कर वे विमल हो जाते है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के प्राय प्रत्येक सोपान मे भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। विमल वैराग्य के इस तृतीय सोपान मे भी भगवान् राम ने लक्ष्मण से सिद्धान्त चर्चा करते हुए धर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान और मोक्ष इन सबसे अधिक श्रेष्ठ स्थान भक्ति को दिया है, क्योकि इन सबका लोकमगल विधायक श्रेष्ठ अश भक्ति के भीतर ही मिलता है। अरूप और अलख को देखने वाले ज्ञान और वैराग्य, इस भक्ति मे विमल विज्ञान और विमल वैराग्य बन कर, अनत शक्ति, अनत शील और अनत सौन्दर्य वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम को देख कर मुग्ध होते है। जगत् के व्यवहारों की मलिनता का अभाव और उसके अनत सौन्दर्य और पवित्रता को भगवान् राम मे देख कर उस पवित्रता मे लीन होने के इनके विमल स्वभाव के कारण ही गोस्वामी जी ने भक्ति के क्षेत्र मे इन्हे विमल विशेषण से विशिष्ट बना दिया है। केवल अद्वैत को देखने वाले ये ज्ञान और वैराग्य भक्ति के क्षेत्र मे आ कर जब विशिष्ट ब्रह्म की सगुण झाँकी देख कर पवित्रता में लीन होने लगे तब तुलसीदास जी ने उनके लिए भी सार्थक विशेषणों की आवश्यकता का अनुभव किया और विमल और विशुद्ध आदर्शो को देखने के कारण उनके साथ विमल और विशुद्ध विशेषण जोड़ दिया। अद्वैत के ये घटक विशिष्टाद्वैत के क्षेत्र मे आ कर गोस्वामी जी के हाथों विशिष्ट रूप से विभूपित कर दिये गये। गोस्वामी जी का यही भक्तियोग है जिसे उनके राम धर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान और मोक्ष सबसे श्रेष्ठ बताने के लिए लक्ष्मण से कहते है—'धर्म से विरति और योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है‡।' यह पहले बताया जा चुका है कि तुलसी-दर्शन के अनुसार धर्म और योग दोनों लोकमगल विधायक कर्मो की ओर ही व्यक्ति को ले जाते है। यही स्थिति ज्ञान के अभेददर्शन की स्थिति है। उपर्युक्त प्रकरणों मे चर्चा के प्रवाह में लक्ष्मण राम से कहते है—'वेदों ने भी ज्ञान को मोक्षप्रद बताया है पर जिस वस्तु से मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाता हूँ, वह भक्त को आनन्द-विभोर करने वाली मेरी भक्ति है। यह भक्ति अपनी स्वतन्त्र शक्ति के आधार पर आधारित है। इसके लिए कोई दूसरा सहारा नही चाहिए। ज्ञान और विज्ञान इसी के अधीन रहते है। यह भक्ति संतों की अनुकूलता से मिलती है। यह सुगम पथ है। इस पर चल कर मैं सरलता से प्राप्त कर लिया जा सकता हूँ। भक्त के भीतर पहले निरभिमानी पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण के चरणो में प्रेम होना चाहिए। वैदिक मर्यादा के भीतर निर्धारित अपने-अपने कर्मो मे भक्त को निरत रहना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप विपयों के प्रति विराग उत्पन्न होता है। इसके बाद मेरे चरणों के लिए अनुराग उत्पन्न होता है। श्रवण, कीर्तन इत्यादि नवधा भक्ति इस तरह के शील के भीतर दृढ़ हो जाती है, तब साधक के मन मे मेरे आदर्शो के प्रति अति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है। ऐसे भक्त के हृदय मे सत स्वभाव वाले व्यक्तियों के प्रति अतिशय प्रेम और मेरे आदर्शों के चिन्तन

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १५ के बाद।

के प्रति मन, कर्म और वाणी से दृढ नियम उत्पन्न हो जाता है। वह मुझे अपना गुरु, पिता, माता, बधु, पति और देवता, सब कुछ समझता है। वह अपने मन, कर्म और वाणी की पवित्रता से मेरी ही सेवा किया करता है। मेरे गुणों का गान करते हुए उसका शरीर पुलकित हो जाता है। उसका कठ भाव से रुद्ध हो जाता है। आँखों से प्रेम के अश्रु बहने लगते है। जिसके भीतर काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर तथा दभ नही होते, मै निरन्तर उसके वश मे रहता हूँ।

जो वाणी, कर्म और मन से मेरी ही तरफ बढते रहते है और निष्काम भाव से मेरा चिन्तन करते रहते है, उनके हृदयकमल मे मै सदा विश्राम करता रहता हूँ ‡।'

जीवन पथ पर अपने नियत कर्त्तव्यों से प्रेम और दूसरे के महान् और सुखद दिखाई पडने वाले कर्त्तव्यों के प्रति पवित्र और सन्तोषमय निश्छल विराग भी गोस्वामी जी के भक्तियोग के भीतर स्थान पाने वाले विमल वैराग्य का लक्षण है। वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म को अनासक्त हो कर पालन करने वाला उनके राम के अनुसार उत्तम मर्यादा के पथ पर रहता है। ससार के सब पवित्र सम्बन्धों की अनुभूति को ले कर राम की साधना करना ही तुलसी का भक्तियोग है। स्वार्थ के ऊपर उठ कर हृदय की पवित्रता से आदर्श व्यक्तियो की सेवा करना परम भक्तियोग का लक्षण है। क्षत्रिय जाति की मर्यादा के अनुसार लोक की रक्षा राम ने इसीलिए की। इसी लोकमगल विधान की भावना को ले कर सब वर्ण अपना-अपना काम करे तो उनकी रामभक्ति पूर्ण हो जाती है और वे मर्यादा पुरुषोत्तमत्व को प्राप्त कर लेते है। मर्यादा पुरुषोत्तम उनके हृदय मे निरन्तर विश्रान्ति को ले कर निवास करता रहता है। ऐसी स्थिति मे हृदय का वासनात्मक सघर्ष मिट जाता है और विमल वैराग्य की सक्रिय पावन शान्ति उसके भीतर स्थान पा लेती है। वर्तमान युग का मनुष्य कार्य के साथ आर्थिक धारणा को जोड कर वर्ण को चचल और तरल रूप मे रखना चाहता है। तुलसी कर्तव्य के साथ धर्म की धारणा का योग आवश्यक समझते थे। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का मूल भी यही था। इसीलिए उन युगों मे वर्ण-व्यवस्था प्राय: निश्चित और अचल रहती गयी थी। वर्ण-परिवर्तन की आवश्यकता का उन युगों के मनुष्यों को अनुभव ही नही हुआ। जब हर जगह राम का ही कार्य करना था तब जगह बदलने की क्या आवश्यकता! विमल वैराग्य के सिद्धान्त का स्वार्थ के प्रति विमल वैराग्यपूर्ण यही भक्तियोग है, जिसका उपदेश तुलसी के राम ने लक्ष्मण को दिया।

गोस्वामी जी ने विमल वैराग्य और एकनिष्ठ दाम्पत्य का भी सम्बन्ध बड़े मार्मिक ढग से स्थापित किया है। अरण्यकाड के पचवटी-प्रकरण में शूर्पणखा का काड इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। विमल वैराग्य के अनुसार सासारिक जीवन की स्थिति को विघात नही पहुँचता। जीवन का प्रत्येक अग इसमे आदर्श हो कर तथा परम सौन्दर्य से विभूषित हो कर रहता है। दाम्पत्य के भीतर का एकनिष्ठ प्रेम भी चित्त की वृत्तियों का एक केन्द्र मे प्रेम की पवित्रता के साथ केन्द्रीकरण का प्रेमयोग ही तो है।

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा १५ के बाद।

एक पत्नीव्रती होने के कारण तथा और नारियों के प्रति अपने हृदय मे विमल वैराग्य प्रतिष्ठित कर लेने वाले राम और लक्ष्मण ने अपना सम्पूर्ण हृदय सीता और उर्मिला को दे दिया था। शूर्पणखा ने इन दोनों को उस व्रत से विमुख करके दो नारियों के अधिकारों को बारी-बारी से छीनने का प्रयत्न किया। वासना के तूफान ने जब उसके भीतर एकनिष्ठता के स्थान मे व्यभिचार को उसके राक्षसी शील का स्वभाव बना दिया था तभी शासक राम ने उसे अपराधिनी घोषित करके उसके लिए दण्ड का विधान किया था।

गोस्वामी जी ने शूर्पणखा कांड के भीतर राम और लक्ष्मण के हृदय मे दाम्पत्य-प्रेम की एकनिष्ठता में भी विमल वैराग्य का चित्रण किया है।

इस विमल वैराग्य का जिस व्यक्ति मे अभाव होता है, वही राक्षसी स्वभाव का माना जाता है। इसी प्रकरण मे राम और लक्ष्मण के विमल वैराग्य से प्रभावित हो कर खरदूषण कहता है—"यह कोउ नृप बालक नरभूषण हम भरि जनमु सुनहु सब भाई, देखी नहिं असि सुदरताई।...बध लायक नहि पुरुष अनूपा ‡।"

हृदय की पवित्रता के इस सुन्दर बाह्यरूप पर तो खरदूषण मुग्ध हुआ, पर घोर तामसी प्रवृत्ति उससे अन्तिम निर्णय के रूप मे यह कहलाती है—"देहि तुरत निज नारि दुराई, जीअत भवन जाहि दोउ भाई †।" नारी और पुरुष की पवित्रता इनके लिए कोई वस्तु नही। विमल वैराग्य से यह बहुत दूर है। वासना और जीवन का मोह इनका प्रधान लक्षण है। राक्षसी स्वभाव के लोग युद्ध भी करते है तो तामसी क्रोध और भय के कारण। आर्य-स्वभाव के भीतर युद्ध की भावना लोकरक्षक, सात्त्विक क्रोध और सात्त्विक उत्साह के कारण उत्पन्न होती है और राक्षस स्वभाव के भीतर लोकपीडक, तामसी क्रोध और भय युद्ध की प्रवृत्ति पैदा करते है।

खरदूषण के प्रस्ताव को सुन कर राम के निम्न उत्तर में लोकरक्षक उत्साह की व्यंजना है—

"हम छत्री मृगया बन करही, तुम्हसे खल मृग खोजत फिरही $।" भय के अभाव की व्यजना राम के इन शब्दों मे है—"रिपु बलवत देखि नहिं डरही, एक बार कालहुँ सन लरही *।"

लोकरक्षा का भाव भी तुरन्त यही पर तुलसी के राम ने इन शब्दों में व्यक्त कर दिया है—"जद्यपि मनुज, दनुजकुल घालक, मुनिपालक खलसालक बालक §।" आर्य स्वभाव वाले मनुज कुल के राम ने दनुजकुल का सहार करने के लिए प्रण किया था। संसार के संत स्वभाव के व्यक्तियों की रक्षा और असंत स्वभाव वाले व्यक्तियों के संहार की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १८ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा १८ के बाद। * वही। § वही।

गोस्वामी जी ने विमल वैराग्य के द्वारा राक्षसी शील को भी प्रभावित होते हुए दिखाया है। रामायण भर मे गोस्वामी जी ने इस बात की ओर सकेत किया है कि कोई भी शील परिवर्तित हो सकता है। शील मे सुधार और विकार दोनों सभव है। विमल वैराग्य के इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने राक्षसी प्रकृति के लोगों पर भी भगवान् राम के विमल वैराग्य का अमोघ प्रभाव दिखाया है। खरदूषण से युद्ध के समय राम के शील से प्रभावित हो कर मरने के समय राक्षसों का हृदय भी विमल वैराग्य से प्रभावित हो जाता था और उनकी सद्‌गति हो जाती थी—"राम राम कहि तनु तजहि पावहि पद निरबान‡।"

विकास और ह्रास के उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टि के भीतर का मनुष्य तीनो गुणो से प्रभावित होता है। घोर तमोगुणी रावण के भीतर भी सात्त्विक विमल वैराग्य कुछ समय के लिए उत्पन्न हो जाता है। राम के द्वारा खर और दूषण के वध का समाचार पाते ही रावण की सात्त्विकता जाग उठती है। वह सोचने लगता है—'खर और दूषण मेरे समान वलवान थे। भगवान् के बिना उन्हें दूसरा कोई नही मार सकता। देवताओ को आनन्द देने वाले और पृथ्वी पर से पाप के भार को हल्का करने के लिए यदि भगवान् ने अवतार लिया है, तब तो जा कर मै हठपूर्वक उनसे वैर करूँगा। उनके बाणो से प्राण छोड़ कर ससार से मुक्त हो जाऊँगा। तमोगुण प्रधान इस शरीर से भजन तो हो नही सकता। मन, कर्म और वाणी से तामसी वैर ही मेरे लिए स्वाभाविक है। इसी भाव से मै भगवान् से मिलूँगा। वैर ही मेरा दृढ मत्र होगा†।'

इसके बाद ही, विमल वैराग्य के द्वारा मृत्यु का वरण, और वैर के द्वारा भक्ति की साधना करने वाले इस घोर तामसी साधक के भीतर तमोगुणी वासना उमड़ पड़ती है। वह कहने लगता है—'यदि वे नररूप राजकुमार ही होंगे तो दोनों को युद्ध मे जीत कर उनकी पत्नी को छीन लाऊँगा$।' परमात्मा के हाथों मर कर मुक्त होने की रावण की तैयारी मे वासनाओं के प्रति विमल विराग की भावना व्यक्त होती है और साधारण मनुष्य, राजकुमार की पत्नी को हरण करने की वासना मे घोर तामसी व्यभिचार व्यक्त होता है। रावण के मन के भीतर तमोगुण इतना वेगवान और बलिष्ठ है कि सत्त्वगुण को ठहरने के लिए समय ही नही मिलता। उसके उदय और अस्त प्राय. एक साथ ही हो जाते है।

विमल वैराग्य के प्रकाश में कूटनीति की पवित्रता को गोस्वामी जी सम्भव मानते है। तुलसी के राम को यह बात मालूम हो गयी कि शूर्पणखा कांड का बदला सीता का अपमान करके लिया जाएगा। ससार के सम्मुख रावण के पाप की पराकाष्ठा को और अधिक उद्वेजक बनाने के लिए उसके द्वारा सीताहरण का कांड भी होना आवश्यक था। सीता के समान आदर्श पवित्रता के सतीत्व पर जो पापपूर्ण आक्रमण करे उसके लिए

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा २०। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा २२ के बाद। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २२ के बाद।

भारतीय दण्डनीति में मृत्युदण्ड का विधान है। राम इस काड को भी रावण के द्वारा घटित हो जाने देना चाहते थे। साथ ही साथ सीता के सतीत्व की रक्षा भी परमावश्यक थी। यह कार्य कूटनीति के द्वारा रावण को चकमा दे कर ही हो सकता था। इस कूट-नीतिक चकमे को गोस्वामी जी के राम ललित नरलीला कहते है। सतीत्व का 'रुचिर व्रत' पालन करने वाली सीता से उन्होने कहा—"सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला। तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करउँ निसाचर नासा ‡।" ससार के सम्मुख रावण के द्वारा अपनी पत्नी के सतीत्व पर आक्रमण होने के अपमान को विमल वैराग्य के द्वारा राम ने सह लिया और अपने सतीत्व को अपमानित देखने की भावना को सती सीता ने भी, लोकमगल विधान के लिए, अपनी प्रतिष्ठा के प्रति इसी विमल वैराग्य पूर्ण अपने स्वभाव के कारण सह लिया। पर इस आदर्श दम्पति ने रावण को एक पवित्र चकमा अवश्य दिया। अपनी दृष्टि मे उन्होंने अपनी पवित्रता की रक्षा कर ली पर ससार और यहाँ तक कि लक्ष्मण की दृष्टि मे भी रावण ने सीताहरण कर लिया। पापपूर्ण प्रतिशोध की उसकी महत्त्वाकाक्षा पूरी हो गयी। उसकी तामस भक्ति का एक अध्याय पूरा हो गया। पर राम और सीता की दृष्टि मे यह सब कुछ नहीं हुआ—"निज प्रतिबिंब राखि तह सीता, तैसइ सील रूप सुबिनीता। प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ‡।" सीता ने उसी तरह के शील, रूप और विनय वाले अपने प्रतिबिम्ब को कुटी मे रख दिया और राम के चरणों का ध्यान अपने हृदय में रख कर अग्नि में समा गयी— "लछिमनहूँ यह चरित न जाना, जो कछु चरित रचा भगवाना †।"

इस तरह आदर्श शील की रक्षा और जगत् के सामने इस लक्ष्य की पूर्ति और लोकमगल-विधान के लिए पवित्र कूटनीति का प्रयोग गोस्वामी जी आवश्यक मानते है। इस नीति के द्वारा उनके राम ने सीताहरण का प्रातिभासिक अपमान सह लिया। अपने प्रातिभासिक अपमान को सह लेने के लिए विमल वैराग्य की हृदय मे स्थापना, गोस्वामी जी के विमल वैराग्य के अनुसार आवश्यक है। इस तरह की कूटनीति को उनका विमल वैराग्यपूर्ण हृदय पवित्र मानता है।

गोस्वामी जी के अनुसार जड राक्षसी स्वभाव में भय के द्वारा आध्यात्मिक ईश्वरीय प्रेम और विमल वैराग्य की उत्पत्ति होती है। मारीच का स्वभाव इसी प्रकार का है। विश्वामित्र के यज्ञ के समय तक यह घोर राक्षस स्वभाव का था। ताडका और सुबाहु के साथ यह यज्ञ मे विघ्न करने गया था। जब से विश्वामित्र के आश्रम से राम के बाण ने उसे समुद्र तट पर ला फेंका था, तभी से शक्ति से आतकित मारीच ने राम मे ईश्वरत्व का दर्शन कर लिया था।

सीताहरण की योजना जब रावण ने उसके सामने रखी तब वह कहता है— "ते नर रूप चराचर ईसा। तासों तात बयरु नहि कीजै, मारे मरिय जिआये जीजै।... तिन्हसन बयरु किये भल नाही।...तिन्हहिं विरोधि न आइहि पूरा...जेहि ताड़का सुबाहु

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा २२ के बाद। † वही।

हति खंडेउ हर कोदड । खरदूषण तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबड ।...जाहु भवन कुलकुसल बिचारी ‡ ।"

रावण का विरोध करने से भी जब उसने अपनी मृत्यु निश्चित देखी, 'तब ताकेसि रघुनायक सरना ।' उसने सोचा—"कस न मरउँ रघुपति सर लागे †।" रावण के बाणों से मरने की अपेक्षा राम के बाणों से मर कर उसने अपने लिए मगलमय मृत्यु की विमल वैराग्यपूर्ण इच्छा का वरण किया । ऐसा निश्चित करके रावण के साथ 'चला रामपदप्रेम अभगा $ ।'

अपने मन के भीतर का अपार हर्ष उसने भीतर ही छिपा रखा । उसने सोचा—'आज 'परमसनेही' का दर्शन होगा । अपने 'परम प्रीतम' को देख कर इन आँखो को सफल करके सुख मे विभोर हो जाऊँगा । लक्ष्मण और सीता के साथ 'कृपानिकेत' राम का ध्यान अपने मन मे करूँगा । जिसका पावन क्रोध मुक्तिदायक होता है, जिसकी भक्ति अवश और उद्दड को भी अपनी ओर आकृष्ट करके अवश्य ही वश में कर लेती है, वही 'सुखसागर हरी' अपने हाथो से धनुष पर बाण रख कर मेरा वध करेगे । धनुष और बाण ले कर पीछा करते हुए अपने प्रभु को मै फिर-फिर कर देखूँगा । मेरे समान धन्य कोई दूसरा नही है * ।' जीवन की अपेक्षा पवित्र मृत्यु को वरण करना विमल वैराग्य का लक्षण है । मारीच का यह विमल वैराग्य मूलतः भय से उत्पन्न हुआ है । नीच स्वभाव के व्यक्ति में भक्ति, शक्ति के आतक से ही उत्पन्न होती है । राक्षसी स्वभाव वाले भक्त मारीच की भी यही स्थिति है ।

गोस्वामी जी ने सत्यप्रतिज्ञता और विमल वैराग्य के भी अटूट सम्बन्ध का अकन किया है । विमल वैराग्य का साधक अपनी ऐसी प्रतिज्ञाओं का पालन भी करता है जो सात्त्विक नही है । सीताहरण की योजना पूरी करने की प्रतिज्ञा कर लेने के बाद विमल वैराग्यपूर्ण भक्त मारीच ने प्राण रहते उसका पालन किया, राम का बाण लगने पर वह भ्रम पैदा करने के लिए 'हा लक्ष्मण' कह कर चिल्लाया पर अपने विमल वैराग्य की साधना को अकुरित रखने के लिए मन मे उसने राम का भी स्मरण किया—"पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा § ।" प्राण छूट जाने के बाद दिव्य शरीर मे प्रेमविभोर हो कर उसने पुन राम का स्मरण किया और भगवान् ने उसका आन्तरिक प्रेम पहचान कर दिव्य गति दी × ।

इस तरह विमल वैराग्य का साधक शुभ और अशुभ भावनाओं के ऊपर उठ कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है ।

✓ अवतार की अनत शक्ति और विमल वैराग्य का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए गोस्वामी जी ने अवतारी राम के भीतर अपनी अनंत शक्ति के प्रति बार-बार विमल

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २५, उसके पहले और बाद । † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २५ के बाद । $ वही । * रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २५ से २६ तक । § रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २७ । × रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २६ के बाद ।

वैराग्यमय प्रवृत्ति दिखायी है। उन्होंने बार-बार यही दिखाया है कि भक्त के लिए अनंत शक्तिवान् भी सीमित मनुष्य हो जाता है—अपनी अनत शक्ति के प्रति अपने भीतर विमल वैराग्य के त्याग को उत्पन्न करके।

'निगम नेति, सिव ध्यान न पावा, मायामृग पाछे सो धावा ‡।' मे सीता के समान भक्त के लिए अनत ने अपने को सीमित करके नर-लीला की है। सम्पूर्ण जीवन के भीतर नर रूप मे सीमित हो कर अनत इसी प्रकार लीला करता रहता है। यह उसके विमल वैराग्य की ही व्यजना है। अनत के इसी प्रेममय त्याग के कारण उसका यही पवित्र ध्यान ले कर सीता वियोग के दिन काट देती है—"जेहि विधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीरामु, सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नामु †।"

सीता के वियोग मे विक्षिप्त की तरह भटकते हुए राम के लिए फिर इसी तरह का इशारा गोस्वामी जी ने दिया है—"एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी, मनहुँ महा बिरही अति कामी। पूरन काम राम सुखरासी, मनुज चरित कर अज अबिनासी $।"

अपनी शक्तियो के प्रति राम का विमल वैराग्य जटायु की मुक्ति के प्रकरण में भी गोस्वामी जी ने दिखाया है। राम ने जटायु से कहा—"आप शरीर का स्वास्थ्य मुझसे ले ले।" इसका उत्तर जटायु ने दिया—"जाकर नाम मरत मुख आवा, अधमहुँ मुक्त होइ स्रुति गावा। सो मम लोचन गोचर आगे, राखउँ देह नाथ केहि खाँगे *।"

इसका उत्तर देने के लिए राम ने अपनी शक्तियो के प्रति विमल वैराग्य प्रदर्शित करते हुए कहा—"तात करम निज तें गति पाई §।" अपने विमल वैराग्य के कारण राम ने भक्त के पवित्र कर्मो को ही अधिक महत्त्व दिया, अपनी अनत शक्ति को नही। मुक्ति का कारण उन्होंने भक्त के कर्म को माना; भगवान् को शक्ति को नही।

अपनी राजशक्ति के प्रति भी विमल वैराग्य के कारण गोस्वामी जी के राम गुह और शबरी के पवित्र प्रेम के सम्मुख पवित्र विनय और निश्छल स्नेह से झुक गये है। गोस्वामी जी के अनुसार, भक्ति के जितने प्रकार है उन सब से विमल वैराग्य की ही सिद्धि होती है। शबरी से नवधा भक्ति पर चर्चा करते हुए उसके स्वभाव राम ने बताये है। उनमें से प्रत्येक से विमल वैराग्य ही सिद्ध होता है‡।

भक्ति के प्रथम प्रकार के रूप मे गोस्वामी जी ने सतों की सगति और उससे उत्पन्न विमल वैराग्य को स्वीकार किया है। 'प्रथम भगति सतन्ह कर सगा' ‡ सत स्वभाव वाले व्यक्ति के साथ से संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इस सगति से व्यक्ति के शील मे सत धर्म का आविर्भाव होने लगता है और मन वासनाओं के आकर्षण से विरत हो जाता है। इस प्रकार का शील भी विमल वैराग्य का एक अग है। सत स्वभाव ही विमल वैराग्य का केन्द्र है।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा २९। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३० के पहले। $ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३० के बाद। * वही। § रामचरित-मानस, अरण्यकांड, दोहा ३५ के पहले।

रामकथा से प्रेम को गोस्वामी जी ने भक्ति का दूसरा प्रकार माना है और उससे भी विमल वैराग्य की ही उन्होंने सिद्धि की है—"दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ‡।" रामचरित विमल वैराग्य का आदर्श है। उस चरित से प्रेम होने लगा कि मनुष्य के भीतर स्वार्थमय वासनाओं के प्रलोभनों के प्रति पवित्र विराग उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है। प्रेम एक ही से सम्भव है। जब विमल वैराग्यपूर्ण रामचरित के लिए प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब वासनाओं के लिए प्रेम नही रह जाता और व्यक्ति मे विमल वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

निरभिमान गुरुपदपकज सेवा को गोस्वामी जी ने भक्ति का तीसरा प्रकार और विमल वैराग्य को उसका परिणाम माना है—"गुरुपदपकज सेवा तीसरि भगति अमान †।" निरभिमान हो जाना ही विमल वैराग्य का एक लक्षण है। 'गुरुपदपकज सेवा' निरभिमानता की व्यजनामात्र है, उसका अनुभाव है। इस सेवा मे दत्तचित्त मनुष्य वासनाओ के स्वार्थमय प्रलोभनों से दूर हट कर विमल वैराग्य की ओर चला जाता है। सेवाप्रेम और वासना एक साथ नही रह सकते। प्रथम के साथ विमल वैराग्य अवश्यभावी पूर्णकारण की तरह सदा उपस्थित रहता है।

निश्छल हो कर राम के यशोगान और उससे प्राप्त विमल वैराग्य को गोस्वामी जी ने भक्ति का चौथा प्रकार माना है—"चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान $" निश्छल हो जाना ही विमल वैराग्य का लक्षण है। रामचरित का नि स्वार्थ और निश्छल गान करने की अवस्था मे मनुष्य का मन प्रेम की समाधि मे लीन हो जाता है। पवित्रता मे मग्न होने का यह सस्कार धीरे-धीरे मनुष्य के मन को निश्छलता और नि:स्वार्थता की अनासक्ति मे पहुँचा देता है। इस प्रकार की अनासक्ति मे पहुँच कर साधक के मन के भीतर विमल वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और उसका शील राम के शील के रूप मे परिणत हो जाता है।

दृढ विश्वास के साथ राममत्र का जप और उसका परिणाम विमल वैराग्य, गोस्वामी जी के अनुसार भक्ति का पाँचवाँ प्रकार है—"मत्र जाप मम दृढ बिस्वासा, पचम भजनु सो बेद प्रकासा *।" परम मगलमय, कल्याणकारी, करुणासागर राम पर दृढ विश्वास होते ही मन राम के शील की ओर झुकने लगता है और स्वभावजन्य उसकी दुर्बलताएँ नष्ट होने लगती है। निरन्तर जप और दृढ विश्वासजन्य ध्यान से मन राम-केन्द्र मे योगस्थ हो जाता है और ससार की आसक्ति राम की आसक्ति के रूप में बदल जाती है। साधक का मन राम के आदर्शो से रँग जाता है और उसमे विमल वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

इन्द्रियनिग्रह, शील, प्रपचों से विरति, सज्जनों के धर्म से निरतर आसक्ति तथा इनसे उत्पन्न विमल वैराग्य गोस्वामी जी के अनुसार भक्ति का छठवाँ प्रकार है—"छठ दम सीलु बिरति बहुकर्मा, निरत निरतर सज्जन धर्मा §।" इन्द्रियनिग्रह मन को योग की तरफ

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३५ के पहले। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३५। $ वही। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३५ के बाद। § रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३५ के बाद।

ले जाता है। योगोन्मुख मन स्वय वासनामय प्रपचो से विरत हो जाता है। पवित्र शील का उदय इनका अवश्यभावी परिणाम है। इस स्थिति मे आ कर मनुष्य के भीतर सज्जनों के शील के लिए निरन्तर आसक्ति प्रवाहित होने लगती है। इन सब गुणों का आविर्भाव और मनुष्य के हृदय मे इनका स्थायित्व ही स्थायी विमल वैराग्य का परिणाम है। इस स्थिति मे और विमल वैराग्य की स्थिति मे कोई अतर नही रहता।

'सियाराममय सब जग'‡ की दृष्टि, सत को राम से भी अधिक सम्मान देने का स्वभाव तथा इससे उत्पन्न विमल वैराग्य को गोस्वामी जी भक्ति का सातवॉ प्रकार मानते है—"सातव सम मोहिमय जग देखा, मोते सत अधिककरि लेखा $।" सियाराममय सब जग की अनुभूति हो जाने पर मन के भीतर समत्व स्थापित हो जाता है। शत्रु-मित्र इत्यादि द्वन्द्वो की भावना मन मे नही रह जाती। उच्चतम जीवन मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन है। इस जीवन के पास पहुँचने के लिए साधक को इस समत्व की द्वद्वातीत अवस्था मे पहुँचना पडता है। जीवन के भीतर के स्वार्थ की सकीर्णता का जो मन अति-क्रमण कर लेता है, वही जीवन की इस ऊँचाई पर पहुँचता है। यही विमल वैराग्य की स्थिति है। संत स्वभाव को राम से भी अधिक सम्मान देना इसी विमल वैराग्य की स्थिति है। सत स्वभाव तो राम के शील पर आधारित रहता है। जो संत को अधिक चाहता है, संत स्वभाव का गौरव जिसके हृदय मे स्थान पा चुका है वह स्वय विमल वैराग्य का साधक सत बन जाता है। ऐसे व्यक्ति का सम्मान राम स्वय करते है, क्योंकि राम को सत अपने से भी अधिक प्रिय है। इस प्रकार भक्ति के इस सातवें प्रकार से भी परमोच्च जीवन के विमल वैराग्य की ही प्रतिष्ठा मनुष्य के हृदय मे होती है।

यथालाभ सतोष और स्वप्न मे भी दूसरे के दोष को न देखना विमल वैराग्य की स्थिति है। इसे गोस्वामी जी भक्ति का आठवॉ प्रकार मानते है—"आठव जथालाभ संतोषा, सपनेहु नहि देखइ पर दोषा *।" जो कुछ मिल जाए उसी से सतोष कर लेने मे जीवन के भीतर विमल वैराग्य की स्थापना हो जाती है। परमात्मा की इच्छा से पवित्र कर्तव्य के पथ पर जो प्राप्ति हो जाए उससे सन्तोष करके संसार की अन्य वस्तुओं से वासनात्मक दृष्टि और मन को हटा लेना विमल वैराग्य का चिह्न है। इस तरह के साधक के भीतर जो कुछ भी मिल जाए उससे भी आसक्ति नही होती, उसमे केवल पवित्र सन्तोषमात्र होता है। पवित्र सन्तोष आनन्ददायिनी शान्ति का कारण बनता है और यही शान्ति विमल वैराग्य का भी लक्षण है।

स्वप्न मे भी दूसरे के दोष को न देखना विमल वैराग्य ही है। जो दृष्टि दूसरे के दोषो को ढूँढती रहती है उसमे अपने गुणों के लिए अभिमान रहता है। यह अभिमान दूसरों में दोष के दर्शन का स्वभाव उत्पन्न करता रहता है और इससे मनुष्य अपने को और अधिक महान् समझ कर और अधिक फूलता रहता है। इसमे मन मे आसक्ति बढती

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३५ के बाद। $ वही।

है और जीवन का महान् आनन्द विमल वैराग्य मिटता है। अभिमान और आसक्ति के भीतर जो परदोष दर्शन की प्रवृत्ति मनुष्य मे विकसित होती रहती है उसके कारण ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि से मनुष्य का मन जलता रहता है और विमल वैराग्य के भीतर प्राप्त होने वाला विश्वप्रेम और परमात्मप्रेम उसे नही प्राप्त होता। ऐसी स्थिति मे उसकी ईश्वरभक्ति सिद्ध न हो कर वासनाभक्ति ही सिद्ध होती रहती है और जीवन क्षुद्रतर होता जाता है। रामभक्ति की ऊँचाई पर पहुँचने के लिए, इन सब दृष्टियों से, साधक के भीतर परदोष-दर्शन का सर्वथा अभाव तुलसी का अभीष्ट है और इससे भी विमल वैराग्यपूर्ण भक्ति की ही सिद्धि होती है।

सबसे सरल और छलहीन, व्यवहार, ईश्वर का भरोसा, हृदय मे हर्ष और दैन्य का अभाव गोस्वामी जी के अनुसार नवम भक्ति की स्थिति है और इससे भी विमल वैराग्य उत्पन्न होता है—"नवम सरल सब सन छल हीना, मम भरोस हिय हरष न दीना‡।" सब लोगो से सरल, और छलहीन व्यवहार विमल वैराग्य सम्पन्न व्यक्ति का होगा, जिसके भीतर ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान और दुष्ट वासनाजन्य प्रतिशोध और प्रतिद्वन्द्विता की वासना बनी रहती है, उसका व्यवहार सरल और छलहीन कदापि नही हो सकता। ईर्ष्यादि के अभाव मे व्यक्ति विमल विरागी अवश्य ही हो जाता है। इस विमल वैराग्य की सिद्धि जिसे प्राप्त हो जाती है वह ईश्वर को छोड कर और किसी का सहारा नही चाहता। उसके हृदय मे इसीलिए सासारिक सम्बन्धों से सम्बद्ध हर्ष और शोक के लिए स्थान नही रह जाता। स्वार्थजन्य हर्ष-शोक का अभाव तो उसके भीतर स्वार्थाभाव के कारण रहता ही है, लोकमगल विधायक कर्तव्यों की सफलता या असफलता के समय भी उसमे हर्ष और शोक उत्पन्न नही होते। सच्चे कर्मयोगी की तरह वह अनासक्त रह कर लोकमगल विधायक कर्म करता रहता है। अतएव उसके हृदय मे निरन्तर विमल वैराग्य का प्रकाश बना रहता है। यह भक्ति का नवम प्रकार है।

हमने यह देख लिया कि प्रथम से ले कर नवम प्रकार तक की प्रत्येक तरह की भक्ति विमल वैराग्य और परमात्मप्रेम को ही उत्पन्न करती है। मनुष्य के व्यक्तित्व को मर्यादा पुरुषोत्तम तक पहुँचा देती है। नवधा भक्ति के इसी स्वभाव के कारण भगवान् राम ने शबरी से कहा है—"नव महु एकउ जिन्हके होई, नारि पुरुष सचराचर कोई। सोइ अतिशय प्रिय भामिनी मोरे†।"

शबरी के भीतर विमल वैराग्य का अपार प्रकाश था। उसके भीतर भक्ति के सब प्रकार सिद्ध हो चुके थे। इसी कारण राम ने कहा है—"सकल प्रकार भगति दृढ तोरे$।"

गोस्वामी जी के अनुसार रामदर्शन का फल यही है कि उससे जीव अपना सहज आत्मस्वरूप प्राप्त करके जीवत्व की दुर्बलताओ से मुक्त हो जाता है और उसके भीतर विमल वैराग्य के प्रकाश मे मर्यादा पुरुषोत्तमत्व का उदय हो जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम के दर्शन का प्रभाव मर्यादापुरुषोतमत्व के रूप मे तो हृदय पर पडेगा ही।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३५ के बाद। † वही। $ वही।

सीता के अभाव मे राम के भीतर वियोग की वेदना का चित्र अकित करके विमल विराग की साधना करने वालों के लिए गोस्वामी जी ने नारी के प्रति आसक्ति से बचे रहने का सकेत दिया है। चारो तरफ के उद्दीपनों को देख कर तुलसी के राम ने उन सब के भीतर कामदेव की सेना के रूपक की कल्पना की है और लक्ष्मण से कहा है— 'काम की इस सेना को देख कर जिनका धैर्य नही छूटता वे परम श्रेष्ठ पुरुष है। काम की सबसे बलवती शक्ति नारी है। इसकी आसक्ति से जो बच सका, वही महा वीर है‡।' यहाँ पर राम ने लक्ष्मण से यह भी कहा है कि 'काम, क्रोध और लोभ ये तीन बडे पराक्रमी दुष्ट है। 'विज्ञान धाम' मुनियों के मन मे भी ये क्षणमात्र मे क्षोभ उत्पन्न कर देते है। लोभ की शक्ति इच्छा और दम्भ मे रहती है। काम की शक्ति केवल नारी है और क्रोध की शक्ति और अभिव्यक्ति कठोर वाणी है†।'

इस तरह काम का परिणाम वियोग की वेदना के रूप में प्रदर्शित करके राम ने शान्तिप्रिय साधको को इस काम से बचे रहने का सकेत दिया है।

इसी बात को रामकथा के आदि आचार्य शिव उमा से कहते है—'त्रिगुणों के प्रलोभनो से अस्पृष्ट रहने वाला और जड-चेतन का सचालक राम सबके हृदय मे निरन्तर निवास करता है। कामियो की दीनता का अभिनय करके उसने केवल धीर व्यक्तियो को हृदय मे विमल वैराग्य को बिलकुल दृढ बना लेने का इगितमात्र दिया है—"कामिन्हके दीनता दिखाई, धीरन्ह के मन बिरति दृढाई $।"

अरण्यकाड के इस प्रकरण मे गोस्वामी जी ने कलासम्बन्धिनी सम्पन्नता और विमल वैराग्य का सम्बन्ध भी चित्रित किया है। उन्होने जीवन का कोई ऐसा आवश्यक क्षेत्र नही छोडा है जिसमे परमोच्च शील के सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले विमल वैराग्य की आवश्यकता पडती है। सौन्दर्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कलाकारों के शील के भीतर भी सौन्दर्य की उँचाई की परम आवश्यकता है। इस बात को विराध राक्षस की कथा के द्वारा गोस्वामी जी ने व्यक्त किया है। विराध राक्षस इन्द्र का गधर्व था। दुर्वासा के सम्मुख अपनी गान-विद्या का प्रदर्शन करने के समय इसे अभिमान हो गया और गान विद्या की मर्मज्ञता न रखने वाले मुनि का इसने अपमान किया। फलत राक्षस हो जाने का अभिशाप इसे भोगना पड़ा*। इस प्रसग से गोस्वामी जी ने कलाकारों को यही संकेत दिया है कि सौन्दर्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने वालों के भीतर परमोच्च शील का सौन्दर्य रहेगा तभी उनका जीवन शान्तिमय हो सकता है। जीवन में सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपनी उच्चतम योग्यता के प्रति भी पवित्र विमल वैराग्य की वृत्ति ही धारण करनी चाहिए। इस प्रकार की वृत्ति से मनुष्य मे ईश्वरीय गुणों का आविर्भाव होता है

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३८ के बाद। † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३८। $ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३८ के बाद। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३३।

और नारायण का अश (कलात्मक योग्यता) उसके भीतर अपने सच्चे सौन्दर्य और प्रकाश को ले कर आलोकित होता है ।

भक्त और भगवान् के सम्बन्ध के भीतर भी गोस्वामी जी ने विमल वैराग्य की स्थिति का अकन किया है । अरण्यकाड के इसी प्रकरण मे उनके राम ने नारद से कहा है—"कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी, जो मुनिबर न सकहु तुम्ह माँगी ‡ ।" भगवान् अपनी प्रत्येक प्रिय वस्तु को भक्त के लिए त्याग सकता है । अपनी प्रत्येक प्रिय वस्तु के प्रति उसके भीतर विमल वैराग्य रहता है । उसका सम्बन्ध भक्त के साथ निश्छल विमल वैराग्य के आधार पर आधारित रहता है—"जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ, जन सन कबहुकि करउ दुराऊ † ।" राम, भक्त के साथ निश्छल सम्बन्ध मे बँधा रहता है, कोई दुराव नही रखता ।

नारद के वरदान माँगने की प्रवृत्ति भी विमल वैराग्य को ही व्यक्त करती है । वे अपने लिए कुछ नही माँगते । वे केवल यही माँगते है कि भगवान् के सब नामों से रामनाम अधिक महत्त्वशाली हो जाए और भक्तो के हृदय मे उसी का निवास रहे । 'यद्यपि प्रभु के अनेक नाम है और वेद उनमे से एक-एक की अधिक से अधिक प्रशसा करते है, तथापि 'राम' नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो । वह पापरूपी पक्षियों के लिए बधिक का काम करे $ ।'

तुलसी के नारद के भीतर और नामों के प्रति जो विराग है वह भी मैत्रीपूर्ण और परम पवित्र है । वे कहते है—'आपकी भक्ति पूर्णिमा की उज्ज्वल रात है, आपका 'राम' नाम उसके भीतर प्रकाशित होने वाला चन्द्रमा है । दूसरे नाम उज्ज्वल तारों की तरह है । वे सब आप के नामरूपी चन्द्र के साथ, भक्त के हृदय की भक्ति की चाँदनी रात मे, उज्ज्वल तारो की तरह निवास करे * ।'

इनमे गोस्वामी जी को व्यापक राम के रूप (सब देवताओं के नाम) तारो की तरह दिखाई पड़ते है गोस्वामी जी उन्हें भी पवित्र और विमल मानते है, क्योकि वे सब रामरूपी चन्द्र के प्रकाश के भीतर ही पूर्णभक्ति की पूर्णिमा से प्रकाशित भक्त के हृदय मे आलोकित होते है ।

पुत्र की रक्षा और माता के विमल वैराग्य की वृत्ति को तथा भक्त की रक्षा और उसके प्रति भगवान् के विमल वैराग्यपूर्ण आवेग को गोस्वामी जी एक ही स्तर की अनुभूति मानते है । उनके अनुसार जिस तरह माता अपने सुखों के त्याग को वात्सल्यभाव के उत्सर्गमय विमल वैराग्य के रूप मे परिणत कर भयानक आपत्तियों से पुत्र की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों के मोह को छोड़ देती है, उसी तरह भगवान् भी विमल वैराग्य की अपनी वृत्ति के सहारे मानवरूप मे असंख्य कष्ट सहता हुआ भक्त की रक्षा करता रहता है ।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ४० के बाद । † रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ४१ के बाद । $ वही । * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ४२ ।

इसी बात को नारद से बतानें के लिए राम ने कहा है—'जो भक्त सब सहारों को छोड कर मेरे आश्रित हो जाते है, उनकी रक्षा मैं उसी प्रकार करता हूँ जिस तरह माता वैसे बालक की रक्षा करती है जो उसे छोड़ और किसी को नही पहचानता। अग्नि और सर्प से घिरे हुए बालक को दौड़ कर माता और गाय ही बचा सकती है। दूसरे में इतना पवित्र और नि.स्वार्थ त्याग नही उत्पन्न होता। बड़ा हो जाने पर प्रौढ पुत्र के लिए माताओ के हृदय मे उस तरह का प्रेम नही रह जाता। ज्ञानी लोग मेरे लिए प्रौढ पुत्र की तरह है। निरभिमान भक्त मुझे बालक पुत्र की तरह प्रिय होता है। भक्त को मेरी शक्ति का भरोसा रहता है और ज्ञानी को अपनी निजी शक्ति का। लेकिन काम और क्रोध दोनों के शत्रु है। काम, क्रोध, लोभ और मद इत्यादि अज्ञान की प्रबल धारा की तरह है। उन सब मे मायारूपिणी नारी के लिए आसक्तिमय प्रेम सबसे अधिक भयानक और दुखद है। अज्ञान के वन के लिए नारी के प्रति आसक्ति वसन्त के समान है। अज्ञान का वन फूल कर इस आसक्ति से रगीन और सम्पन्न हो जाता है। जप, तप और नियमो के जलाशय के लिए नारी के प्रति पुरुष की यह आसक्ति ग्रीष्म ऋतु का काम करती है। काम, क्रोध, मदमत्सर इत्यादि के मेढकों के लिए यह आसक्ति वर्षा ऋतु के समान प्रिय होती है। दुर्वासना के कुमुद को यह आसक्ति शरद ऋतु की तरह प्रफुल्लित बना देती है। समग्र धर्मो के कमलो के लिए यह आसक्ति हिम बन जाती है। उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है, जला डालती है। ममता का जवास इस आसक्ति की शिशिर ऋतु को पा कर पल्लवित हो उठता है। पापरूपी उलूकों के लिए यह घोर अन्धकार वाली रात है। बुद्धि, बल, शील और सत्य के मीनों के लिए यह आसक्ति बसी बन जाती है। उन्हे फँसा कर मार डालती है। अवगुणों की जड शूलप्रद यह आसक्ति सब दुःखों की खान है। इसीलिए सब कष्ट सह कर भी नारी के बधन से मैने तुम्हे मुक्ति दी ‡। इस मुक्ति को, राम की पवित्रता का प्रतीक, विमल वैराग्य, भक्त के हृदय मे बैठ कर सम्भव बनाता है।

विमल वैराग्य के इस प्रकरण मे नारद से सत धर्म की चर्चा करते हुए राम ने सत के भीतर रहने वाले उन सब धर्मो की चर्चा की है जिनका आधार विमल वैराग्य बनता है। इसी विमल वैराग्य के कारण भगवान् उनके वश मे रहता है—'जिन्हते मै उन्हके बस रहऊँ †।'

तुलसी के राम के अनुसार काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर पर विजय, अनघता, अकामता अचलता, अकिंचनता (अर्थ सग्रह का अभाव) पवित्रता, सुखधामता, अमित ज्ञान, अनीहता (वासना की इच्छा का अभाव), परिमित आवश्यकताओं की तृप्ति, सत्यप्रनिज्ञता, कवित्व, ज्ञानित्व और योगित्व, सावधानता, दूसरो को सम्मान देने की प्रवृत्ति, अभिमानहीनता, भक्ति के पथ पर धैर्य, परमोच्च प्रवीणता, गुणागारता, ससार के दुखो का अभाव, सदेह का अभाव, देह और गेह से मन को अनासक्त कर राम के

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ४३ से ४४ तक। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ४४ के बाद।

चरणो मे शरणागति, अपने गुणों को सुनने से सकोच, परगुण श्रवण से हर्ष, समता, शीतलता, नीतिनिष्ठता, सरल स्वभाव, विश्वप्रेम, जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम, गुरु-गोविन्द-विप्रपद के लिए प्रेम, श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता, माया का अभाव, भगवान् के चरणो मे प्रेम, विरति, विवेक, विज्ञान, विनय, वेद और पुराणों का यथार्थ बोध, दम्भ, मान और मद का अभाव, कुमार्ग पर भूल कर भी न जाने की प्रवृत्ति, राम के चरित का गान और श्रवण, बिना कारण परहित का स्वभाव इत्यादि सतों के अनन्त गुण है। सरस्वती और वेद के लिए भी वे अनिर्वचनीय है‡। ये सब स्वभाव विमल वैराग्य से ही सम्भव हो सकते है। राम की भक्ति जो सब आदर्श गुणों की जड है, इस विमल वैराग्य से उत्पन्न होती है। इसी विमल वैराग्य का निरूपण जीवन के विविध क्षेत्रों मे इस तृतीय सोपान मे किया गया है।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ४४ के बाद से दोहा ४५ के बाद की चौपाइयों तक।

अध्याय ५

विशुद्ध संतोषमय जीवन का स्वरूप

मानस के प्रथम काड मे 'विमल सतोष सम्पादन' है। किष्किधाकाड चतुर्थ सोपान में गोस्वामी जी ने विशुद्ध सन्तोषमय जीवन की योजना प्रस्तुत की है। विमल सन्तोष मे जीवन की प्राय प्रथमावस्था के भीतर विमलता का चित्र अकित किया गया है। यहाँ प्रौढ जीवन के भीतर विशुद्ध भावनाओं और अनुभूतियों की पवित्रता और विशुद्धि के आधार पर ही प्राय. सन्तोष की योजना की गयी है। विशुद्ध सन्तोष में जीवन की पवित्रता के साथ-साथ अनु-भव की परिपक्वता और गहराई भी है। यहाँ के विशुद्ध सन्तोष को गोस्वामी जी ने सौन्दर्य, शक्ति परमोच्च-ज्ञान, जीवन की आदर्श मर्यादाओं, सज्जनता के प्रति प्रेम, पवित्र धर्म से जीवन की रक्षा के प्रयत्न इत्यादि अवस्थाओ पर आधारित करके चित्रित किया है। सीता के वियोग की वेदना, मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर यहाँ उत्तरदायित्व की और प्रेम की पवित्र शान्ति और ज्ञानमयी कर्तव्यनिष्ठा के रूप में बदल जाने से भी विशुद्ध सन्तोष को उत्पन्न करती है। यहाँ राम का चरित्र कलिमल को नष्ट करने वाला अपना विशेष रूप धारण करता है। नारी के प्रति वासनामयी आसक्ति यहाँ प्राय प्रेमजन्य कर्तव्यज्ञान के रूप मे बदल कर महान् हो गयी है। उसका यही गुण कलिमलनाशक बन जाता है। ससार की व्याधि की यही औषधि है। वासना की आसक्ति रक्षा की कर्तव्य बुद्धि में बदल कर सत्य युग के धर्म की सृष्टि करती है। कलि की स्वार्थमयी प्रवृत्ति उसमे नही रह जाती। यहाँ से सीता की रक्षा की पवित्र प्रवृत्ति राम अपने भीतर जागृत कर लेते है। राम का यह शील जब उनके नाम के साथ जुड जाता है तब वह नाम ससार-रूपी व्याधि के लिए अमोघ औषधि बन जाता है‡।

ज्ञानराशि और पापनाशिनी काशी का ध्यान करके भी गोस्वामी जी ने इस सोपान के आरम्भ मे विशुद्ध सन्तोष की ओर संकेत किया है। कृपामय शकर के उत्सर्गमय गरल पान और जगत् की रक्षा की चर्चा में भी अनुभव की पवित्र गहराई और लोकमगल विधान के लिए आत्मबलि के प्रयत्न का सकेत दे कर अनासक्ति के विशुद्ध सन्तोष का ही सम्पा-दन गोस्वामी जी ने कर लिया है†।

प्रौढ साधक के भीतर भक्ति की निश्छलता और परमज्ञान-सम्पन्न दीनता भी विशुद्ध सतोष का कारण बन जाती है।

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधा कांड, मंगलाचरण, श्लोक १ और २। † रामचरितमानस, किष्किधाकाड, श्लोक २ के बाद वाला सोरठा।

रामभक्त रूद्र के अवतार हनुमान् जब पहली बार इस जीवन मे अपने उपास्य राम को पहचान लेते है तो उनके भीतर आनन्द उमड पडता है। गोस्वामी जी के शकर ने उमा से चर्चा करते हुए कहा है—"प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुखु उमा जाइ नहि बरना ‡।" ब्रह्म राम को भक्तो के लिए वन-वन भटकते हुए देख कर जो आनन्द हनुमान को हुआ उसे शिव अनिर्वचनीय मानते है। भक्ति के भीतर विशुद्ध सन्तोष का यही आनन्द है।

गोस्वामी जी के अनुसार भक्त के लिए भगवान् के पावन प्रेम का आधार विशुद्ध सन्तोष ही रहता है। उनके हनुमान् ने राम से कहा—'आपकी माया के प्रभाव से अज्ञान मुझ पर छाया हुआ था। मै आपको नही पहचान सका; पर आप मुझे कैसे भूल गये। मोह की कुटिलता और अज्ञान की जड़ता जीव का धर्म है, भगवान् का नही। दीनबन्धु हो कर आप मुझे कैसे भूल गये। यद्यपि हममे बहुत से अवगुण है तथापि स्वामी सेवक को भूल जाए तो उसे कौन सहारा देगा। जीव तुम्हारी माया से घिरा रहता है। उसका यह बन्धन तुम्हारा प्रेम ही काटता है। मै तो भजन के कोई उपाय नही जानता। आपकी रक्षावृत्ति का ही आश्रित मै हूँ। सेवक, स्वामी के सहारे और सुत, माता के सहारे पुष्ट होता हुआ निश्चिन्त बना रहता है।' ऐसा कह कर अपने असली रूप मे हनुमान् राम के चरणो मे प्रेमविभोर हो कर लिपट गये †।

यहाँ अपना प्रेम प्रदान कर भगवान् अपने भक्त को विशुद्ध सन्तोष प्रदान करता है—"तब रघुपति उठाइ उर लावा, निज लोचन-जलु सीचि जुडावा $।" इतने पवित्र प्रेम की वर्षा अपने ऊपर भगवान् को करते अनुभव करके भक्त को परम पवित्र शीतलता मिलती है। यही विशुद्ध सन्तोष के भीतर रहने वाली भक्ति के क्षेत्र की शीतल शान्ति है।

गोस्वामी जी ने विशुद्ध सन्तोष और भक्त के भीतर विकसित हुए विश्व के प्रति पवित्र और अनत सेवा-भाव पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है। हनुमान् के समान विश्व-सेवक भक्त को देख कर भगवान् के भीतर भी पवित्रता की गहराई को ले कर विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न होता है; क्योंकि भगवान् भी तो विश्वसेवक का पवित्र कर्तव्य ले कर ससार मे आता है। इसी दृष्टिकोण से राम हनुमान से कहते है—'तुम अपने मन मे कोई हीन-भाव न रखो। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। मुझे सब लोग समदर्शी कहते है; पर मुझे सेवक अधिक प्रिय है और वह सेवक और अधिक प्रिय है जो केवल मुझे ही अपना लक्ष्य मानता है। यह अनन्य भक्त वही है जो निरन्तर यह समझता है कि मै सेवक हूँ और यह सम्पूर्ण जड-चेतन विराट् जगत् मेरे स्वामी का रूप है *।'

भक्त के इस विराट् और पवित्र भाव से भगवान् के भीतर भी विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न हो जाता है।

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा १ के बाद। † रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा १ के बाद से २ के बाद तक। $ वही। * रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा २ के बाद से दोहा ३ तक।

गोस्वामी जी के विशुद्ध सन्तोष की योजना के भीतर मैत्री धर्म को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पवित्र उत्सर्ग वाली सच्ची मित्रता भी गोस्वामी जी की विशुद्ध सन्तोष की योजना का अग है। इस मित्रता से सम्बद्ध पवित्र नीति का विश्लेषण राम ने अपने मित्र सुग्रीव के कष्ट को देख कर किया है—'जो मित्र के दुख को देख कर दुखित नही होते उन्हे देख कर बडा पातक होता है। अपने पर्वत के समान दुःख को जो धूल के कण की तरह देखता है और मित्र के कण के समान दुख को सुमेरु के समान देखता है, वही सच्चा मित्र है। मित्र को बुरे रास्ते से हटा कर अच्छे रास्ते पर चलाने वाला, उसके दुर्गुणों को छिपा कर केवल गुणों को प्रकट करने वाला, लेने-देने मे कभी सकोच और सन्देह न करने वाला ही सच्चा मित्र है। जो यथाशक्ति मित्र का सदा हित करता है और मित्र की विपत्ति मे जिसका प्रेम सौगुना बढ़ जाता है, वही सत मित्र होता है ‡।' पावन मैत्री के भीतर निवास करने वाला यही सतस्वभाव विशुद्ध सन्तोष को उत्पन्न करता है। ऐसे जीवन-शिल्पी के चारो ओर विशुद्ध सन्तोष का प्रकाश छाया रहता है।

गोस्वामी जी के अनुसार विशुद्ध सन्तोष के प्रकाश मे शत्रु भी मित्र के समान दिखाई पडता है। राम के समान अनत-शक्ति-शील और सौन्दर्ययुक्त आदर्श मित्र को पा कर सुग्रीव के भीतर विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न हो गया। उनके मन की चचलता नष्ट हो गयी। मन की ऐसी परिवर्तित अवस्था में उनके शब्दों से विशुद्ध सन्तोष की बड़ी पवित्र व्यजना होती है। वह कहते है—'नाथ की कृपा से मेरा मन अविचल हो गया। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई को छोड़ कर मै आपकी सेवा करूँगा। ये सब रामभक्ति के बाधक है। ससार के शत्रु-मित्र, सुख-दु.ख अज्ञान-जन्य है। ये परम सत्य नही है। आज तो मुझे वालि ही सबसे बडे हितेच्छु की तरह दिखाई पड़ता है जिसकी कृपा से विषाद को शान्त करने वाले राम मुझे मिले †।'

ऐसा कह कर गोस्वामी जी के सुग्रीव विशुद्ध सन्तोष के प्रकाश मे राम से अविरल भक्ति माँग लेते है।

विशुद्ध सन्तोष और नारी के सम्बन्ध पर भी गोस्वामी जी ने बड़ा ही पवित्र और स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जीवन-यात्रा के लिए नारी को पत्नी रूप मे मनुष्य तभी स्वीकार कर सकता है जब कि वह छोटे भाई की पत्नी न हो, भगिनी न हो, पुत्रवधू न हो, और पुत्री न हो। इन चारों का, सम्बन्ध की दृष्टि से, समान स्थान है, इसके विपरीत आचरण करने वालों का शील मर्यादा पुरुषोत्तम के भीतर घोर असन्तोष उत्पन्न करता है $। वालि का वध इसीलिए हुआ। इस मर्यादा का धर्मपूर्वक पालन विशुद्ध सन्तोष की सृष्टि कर सकता है; क्योंकि ऐसे दम्पति द्विगुणित शक्ति से विश्व की सेवा में अपने को लगा सकते हैं।

गोस्वामी जी के अनुसार विशुद्ध सन्तोष का पतित शील वाले व्यक्तियों पर भी प्रभाव पड़ता है। अनन्त विशुद्ध सन्तोष के पावनतम केन्द्र राम के सम्मुख वालि मे परिवर्तन

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा ६ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा ८ के बाद।

हो गया। वह विशुद्ध सन्तोष की प्राप्ति कर सका। अपनी मृत्यु का न्यायसगत कारण राम से जान कर उसके भीतर विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न हो गया और उसने कहा—'स्वामी के साथ मेरी चतुराई कैसे चल सकती थी। मै आज भी पापी हूँ, पर अतिम समय मे आप के आश्रय मे आ ही गया ‡।' ये शब्द विशुद्ध सन्तोष के व्यजक है। उसमे यह परिवर्तन देख कर राम को भी विशुद्ध सन्तोष हुआ और उन्होंने बालि को जीवनदान देना चाहा, पर बालि के भीतर विशुद्ध सन्तोष अपने पावनतम रूप मे उत्पन्न हो गया। अब उसके लिए ससार के जीवन और शरीर का कोई भी मूल्य नही था। उसने कहा—'जिसके नाम की शक्ति से काशी मे शकर सबको समगति देते है, वही अनत मेरी आँखो के सामने है। ऐसा अवसर मुझे अब कब मिल सकता है! मेरी आँखों के सामने वही है जिसे श्रुतियाँ अनत कहती है, प्राण को रोक कर, मन और इन्द्रियो को वश मे करके मुनि लोग जिसका कभी-कभी ही ध्यान कर सकते है। ऐसे अवसर को पा कर शरीर धारण करना कल्पवृक्ष को काट कर बबूल का बगीचा लगाने के समान होगा †।'

बालि ने इस विशुद्ध सन्तोष के प्रकाश मे अपने पुत्र अगद को राम के चरणों मे सौप दिया और अपने लिए अविरल भक्ति माँग ली। राम के चरणों मे अति दृढ अनुराग के विशुद्ध सन्तोष मे उसे इतनी पवित्र अनासक्ति मिल गयी कि शरीर छोडने मे उसे कोई कष्ट न हुआ। जिस तरह हाथी के गले से माला गिरे और उसे कुछ भी भान न हो उसी तरह बालि ने सहज ही शरीर को छोड दिया $। इस तरह अज्ञानी मे भी परमोच्च शील के प्रकाश से विरागजन्य विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न हो सकता है।

अज्ञान जन्य वियोग और विशुद्ध सन्तोष के प्रकाश के सम्भावित सम्बन्ध पर भी गोस्वामी जी का ध्यान केन्द्रित हुआ है। ज्ञान के द्वारा उत्पन्न विशुद्ध सन्तोष अज्ञान जन्य सब पीड़ाओं को शान्त कर देता है। राम ने बालि की मृत्यु के बाद तारा को ज्ञान देने के लिए, उससे कहा—'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु के सयोग से यह अधम शरीर निर्मित है। यह तो साक्षात् तुम्हारे सम्मुख सोया हुआ है। जीव तो अविनाशी है फिर तुम क्यों रोती हो।' यह रहस्य जान कर तारा को ज्ञान हो गया और उसने भी विशुद्ध सन्तोष के प्रकाश मे अविरल भक्ति का वरदान अपने लिए माँग लिया है *।

विशुद्ध सन्तोष तथा अन्य सामाजिक और दार्शनिक मर्यादाओं मे भी गोस्वामी जी ने सम्बन्ध सूत्र स्थापित किया है। उन्होंने अपने इस विशुद्ध सन्तोष की योजना मे बहुत-सी ऐसी सामाजिक और दार्शनिक मर्यादाओं को सम्मिलित कर सक्षेप में और बडे पटु प्रयोग के द्वारा उनकी ओर सकेत कर दिया है, जिनकी समुचित साधना के द्वारा विशुद्ध सन्तोष की प्राप्ति हो जाती है।

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकाड दोहा ९। † रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा ९ के बाद की चौपाइयाँ और छद। $ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा १० और पहले। * रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा १० के बाद।

सुग्रीव की मैत्री के बाद अपने प्रवर्षण गिरि पर निवास करने के समय विभिन्न ऋतुओं के सौन्दर्य का वर्णन करने के बहाने गोस्वामी जी के राम ने विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न करने वाली मर्यादाओं की ओर उपमान विधान के द्वारा सकेत किया है। वर्षा और शरद दो ऋतुओं मे प्रवर्षण पर राम ने निवास किया था। उन्ही का वर्णन करते हुए विशुद्ध सन्तोष सम्पादन करने वाली मर्यादाओं की स्थापता राम ने लक्ष्मण के साथ अपने वार्तालाप मे की है। वर्षा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है—

"बिजली चमक कर बादल मे इस तरह समाप्त हो जाती है जिस तरह दुष्ट की प्रीति स्थिर नही रहती।—स्थिर प्रीति विशुद्ध सन्तोष सम्पादन करती है।

बादल पृथ्वी के समीप झुक कर वर्षा करते है, जिस तरह विद्वान लोग विद्या पा कर नम्र हो जाते है।

जलबिन्दुओं के आघात को पर्वत ठीक उसी तरह सह रहे है, जिस तरह दुष्टों की कर्कश वाणी को सत लोग सह लेते है।

छोटी नदियाँ थोडे ही जल से अपने किनारों को तोड कर तेजी से बह पड़ती है, जिस तरह थोडे से धन को पा कर नीच मनुष्य इतराता है।—अपार सम्पत्ति के साथ गम्भीरता, धैर्य और नम्रता विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न करते है।

पृथ्वी पर गिरने से जल इस तरह गदला हो गया, जिस तरह जीव से लिपट कर माया उसे मलिन बना देती है।—माया के प्रभाव से अप्रभावित जीव आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर विशुद्ध सन्तोष का अनुभव करने लगता।

इकट्ठा हो कर जल तालावों मे इस तरह भर रहा है, जिस तरह सब सद्‌गुण एक साथ इकट्ठे हो कर सज्जनो के पास चले आते है।

नदियों का जल समुद्र मे जा कर इस तरह स्थिर हो जाता है, जिस तरह जीव परमात्मा को पा कर।

हरी घास से पृथ्वी इतनी घनी ढक गयी है कि रास्ता नही दिखाई पड़ता। इसी तरह अनेक पाखण्डवादों के घने प्रभाव से सद्‌ग्रथ गुप्त हो जाते है।—सद्‌ग्रथों के प्रचार से विशुद्ध सन्तोष का प्रभाव सर्वतोव्यापी हो जाता है।

मेढकों की ध्वनि चारों ओर इतनी अच्छी लग रही है जितना अच्छा बालकों का वेदपाठ।

नवपल्लवों से लदे हुए वृक्ष वैसे ही सुन्दर दिखाई पडते है जैसे विवेक को प्राप्त करके साधकों के मन सुन्दर हो जाते हैं।

अर्क और जवास इस तरह बिना पत्तों के हो गये है जैसे सुराज्य में दुष्ट लोग बिना उद्यम के हो जाते है।—सुराज्य से विशुद्ध सन्तोष की स्थापना होती है और दुष्टों के कार्य बन्द हो जाते है‡।"

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा १३ के बाद से १४ के बाद तक।

"कही खोजने पर भी धूल नही मिलती है जिस तरह क्रोध धर्म को दूर कर देता है।—धर्म की स्थिति तक ही विशुद्ध सन्तोष रक्षित रहता है।

शस्य से भरे हुए खेत उपकारी मनुष्य की सम्पत्ति की तरह सुन्दर दिखाई पड़ते है।

रात्रि के घने अन्धकार मे दम्भियों के समाज की तरह खद्योत प्रकाशित हो रहे है।—दम्भरहित शील के भीतर ही विशुद्ध सन्तोष का व्यापक प्रकाश आलोकित होता है, दम्भियो के क्षुद्र शील का झूठा प्रकाश अज्ञान के अन्धकार मे एक क्षण के लिए चमक कर नष्ट हो जाता है।

चतुर किसान खेत मे से अनावश्यक पौधो को उसी तरह निकाल रहे है जिस तरह बुद्धिमान लोग मोह, मद और मान को अपने भीतर से निकाल देते है।

चक्रवाक पक्षी इस तरह नही दिखाई पड़ रहे है जिस तरह कलियुग को अपने सामने देख कर धर्म भाग जाते है।

मरुभूमि पर वर्षा हो रही है, पर तृण नही निकलते, जिस तरह हरिजनों के हृदय मे वासना उत्पन्न नही होती।

विविध प्रकार के प्राणियों से भरी हुई पृथ्वी इस तरह दिखाई पड रही है, जैसे योग्य राजा को पा कर प्रजा बढ जाती है।

थक कर पथिक जहाँ तहाँ इस तरह रुक कर निष्क्रिय हो गये है, जैसे ज्ञान के उत्पन्न होने पर इन्द्रियो के समूह निष्क्रिय हो जाते है।

कभी प्रबल मारुत बहता है और मेघ जहाँ तहाँ विलीन हो जाते है, जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने पर कुल के सद्धर्म नष्ट हो जाते है—सद्धर्मो की रक्षा से ही विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न होता है।

दिन मे कभी घना अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य दिखाई पडने लगता है, जिस तरह कुसग और सुसग से ज्ञान विनष्ट और उत्पन्न होता रहता है‡।"

यहाँ वर्षा का राम के द्वारा किया हुआ वर्णन समाप्त हो जाता है। वर्षा के बीत जाने पर वे लक्ष्मण से इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए शरद ऋतु का वर्णन भी करते रहते है। वे कहते है—

"उदित हो कर अगस्त्य ने मार्गो पर का जल इस तरह सुखा दिया है जिस तरह लोभ को सन्तोष सुखा देता है।

सरिता और सरोवरों का निर्मल जल इस तरह शोभित होता है जिस तरह मद और मोह के अभाव में सतों का पवित्र हृदय शोभित होता है।

धीरे-धीरे नदियों और सरोवरों का जल इस तरह सूख रहा है, जिस तरह ज्ञानी लोग ममता को धीरे-धीरे छोड देते है†।"

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा १४ के बाद से दोहा १५ तक। † रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा १५ के बाद।

'शरद को देख कर खजन इस तरह चले आये है, जैसे सुन्दर समय को पा कर सुकृत सुन्दर दिखाई पड़ने लगते है।

कीचड़ और धूल के अभाव मे भूमि इस तरह शोभित हो रही है, जिस तरह नीतिकुशल राजा के कार्य सुन्दर होते है।

जल की कमी से मछलियाँ इस तरह व्याकुल हो रही है, जिस तरह बुद्धिहीन कुटुम्बी धन के अभाव में व्याकुल होता है।

बिना बादलो के निर्मल आकाश इस तरह शोभित होता है, जिस तरह सब आशाओं से स्वतन्त्र हो कर हरिजन प्रसन्न दिखाई पडते है।

शारदी वृष्टि कहीं-कही थोडी-थोडी ही होती है, जिस तरह मेरी भक्ति को कभी-कभी कोई विरला व्यक्ति ही पाता है।

भिक्षुक, वणिक, तपस्वी और राजा प्रसन्न हो कर इस तरह अपनी यात्रा के लिए नगर छोड़ रहे है, जिस तरह हरिभक्ति को पा कर चारों आश्रमो के लोग श्रम छोड देते है।

अगाध जल मे रहने वाली मछलियाँ इसी तरह सुखी है, जैसे हरि की शरण मे पहुँच जाने पर एक भी बाधा नही रहने पाती।

फूले हुए कमलो वाला सरोवर इस तरह आकर्षक दिखाई पडता है, जिस तरह निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर परम सौन्दर्यमय हो जाता है।

चक्रवाक का मन रात को देख कर इस तरह दुखी होता है, जिस तरह दुर्जन दूसरे की सम्पत्ति को देख कर ईर्ष्या से दुखी हो कर जलता रहता है।

चातक रटता रहता है, उसे बडी प्यास रहती है, जिस तरह शकर का द्रोही सुख नही पाता, सुख के लिए प्यासा ही रहता है, उसकी प्यास नही बुझती।

शरद के ताप को रात मे चन्द्रमा इस तरह दूर कर देता है, जिस तरह सत के दर्शन से पातक दूर हो जाते है।

चन्द्रमा को देख कर चकोरों के समुदाय इस तरह उसकी ओर बद्धदृष्टि हो कर देखने लगते है जिस तरह हरि को पा कर हरिजन उनकी ओर अपलक एकाग्र दृष्टि से देखने लगते है।

हिम के भय से मच्छरों का काटना इस तरह समाप्त हो गया है, जिस तरह ब्राह्मण से द्रोह करने पर कुल नष्ट हो जाता है।

भूमि पर भरे हुए विविध जीव शरद ऋतु मे इस प्रकार चले गये है, जिस तरह गुरु के मिलने पर सशय और भ्रम के समुदाय नष्ट हो जाते है ‡।'

इस तरह की एक वृहत् योजना के द्वारा समाज और दर्शन के प्राय उन सब आदर्शो को गोस्वामी जी के राम ने ऋतु वर्णन के बहाने लक्ष्मण को बता दिया है, जिससे विशुद्ध सन्तोप का सम्बन्ध है।

‡ रामचरितमानस, किष्किधा कांड, दोहा १५ के बाद से दोहा १७ तक।

गोस्वामी जी ने विशुद्ध सन्तोष और परमार्थ का सम्बन्ध भी निर्धारित कर दिया है। विश्वमगल विधायक राम का कार्य स्वार्थ से अस्पृष्ट परमार्थ कार्य है। अपने स्वार्थ की सिद्धि से मनुष्य को वासनात्मक सन्तोष प्राप्त होता है। राम के कार्य को सिद्ध करके विशुद्ध पावन स-तोष का अनुभव वह कर लेता है। इस विशुद्ध सन्तोष के सुख को प्राप्त करने की तल्लीनता रामप्रेम के आनन्द के कारण साधक में इतनी प्रभावशालिनी होती है कि वह शरीर के ज्ञान को भी आत्मसात् कर लेती है।

हनुमान् इत्यादि की सीता के खोजने के समय की तल्लीनता इसी प्रकार की थी—

चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम-काज-लयलीन मन बिसरा तन कर छोह ‡।

ऐसी तल्लीनता साधक को विशुद्ध सन्तोष मे मग्न कर देती है। जामवन्त का इस प्रकार का सन्तोष निम्नाकित शब्दो मे व्यक्त हुआ है। अगद के भीतर राम काज की सिद्धि के प्रयत्न मे अपनी असफलता की कल्पना से जो पवित्र क्षोभ उत्पन्न हुआ उसको शान्त करते हुए जामवन्त ने कहा है—

तात राम कहु नर जनि मानहु, निर्गुण ब्रह्म अजित अज जानहु।
हम सब सेवक अति बड भागी, सतत सगुन ब्रह्म अनुरागी।
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक सग तह रहहि मोच्छ सुख त्यागि †।

सगुण ब्रह्म के विश्वमगल विधान मे भाग लेने मे जो आनन्द है, विशुद्ध सन्तोष है, उसके सामने मोक्ष का सुख भक्त के लिए नगण्य है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए अगद भी बाद मे जटायु के भाग्य की प्रशसा करते हुए कहते है—"धन्य जटायू सम कोउ नाही। राम-काज-कारन तनु त्यागी। हरिपुर गयेउ परम बड़भागी $।"

वह परम भाग्यवान् है जिसे रामकाज सिद्ध करने पर विशुद्ध सन्तोष की प्राप्ति हो गयी है।

इस तरह कई दृष्टिकोणों से गोस्वामी जी ने इस सोपान मे विशुद्ध सन्तोष का अध्ययन और चिन्तन प्रस्तुत किया है।

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा २६ और पहले। † वही। $ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा २६ के बाद।

अध्याय ६

विमलज्ञानयुक्त जीवन दर्शन

सुन्दरकांड के पचम सोपान मे विमल ज्ञान के चित्रण की अपनी योजना गोस्वामी जी ने कार्यान्वित की है। मगल श्लोकों से ही यह कार्य प्रारम्भ हो गया है। ज्ञान चिन्तन का विषय है। चिन्तन से उत्पन्न हुआ ज्ञान सत्य को एक, अभेद्य, असीम, अनत और निर्गुण रूप में उपलब्ध करता है। भाव सत्य के विविध रूपों को सीमा के भीतर सगुण रूप मे प्राप्त करके सन्तोप का अनुभव करता है। गोस्वामी जी ने अपने विशिष्ट विमल ज्ञान की योजना के भीतर ज्ञान और भाव का समन्वय कर लिया है। उनके राम शान्त, शाश्वत, अप्रमेय, निर्वाण और शान्तिप्रद, ब्रह्माशम्भुफणीन्द्र-सेव्य, वेदान्त वेद्य, विभु, जगदीश्वर तथा सुरगुरु है और अनघ, मायामनुष्य, रामाख्य हरि और करुणाकर भूपाल-चूडामणि रघुवर भी है। अद्वैत के विशिष्ट हो जाने पर जब वह अवतारी हो गया तब उससे सम्बद्ध ज्ञान, वैराग्य, सन्तोष, विज्ञान सब विमल और विशुद्ध विशेषणों से सम्बद्ध हो गये ‡।

मानस के इस सोपान मे 'ज्ञान' विमल विशेषण से विशिष्ट हो कर अपने अद्वैत वेदान्तीरूप मे केवल निर्गुण राम को ही न देख कर भूपाल चूडामणि सगुण राम को भी देखता है। वेदों का प्रारम्भ त्रिगुणात्मिका सृष्टि के नाना भेदो के भीतर एकात्मा को देख कर भी भेदप्रधान बहुदेव के रूप मे ब्रह्म की भावात्मिका उपासना करता है। उस उपासना कांड मे ऋषियों ने अपने हृदय के सब कोमल भावों को इन्द्र, वरुण, सोम इत्यादि देवताओं को अर्पित किया है। वेदों का अत, ज्ञान कांड वेदान्त है। उसमे ज्ञानगम्य निर्गुण अद्वैत का चिन्तन है। इस वेदान्तवेद्य का भी गोस्वामी जी चिन्तन करते है; पर भूपाल चूडामणि के मर्यादा पुरुपोतम रूप की भावमयी भक्ति से उपासना किये बिना उनके हृदय को सन्तोष नही मिलता। निर्गुण-सगुण ब्रह्म का उनका यही ज्ञान-भाव-समन्वित विमल ज्ञान उनकी भक्ति का आधार है।

अपनी इसी विमल ज्ञान की दृढ भूमि पर खडे हो कर वे राम से प्रार्थना करते हैं—'हे रघुपति, मैं सत्य कहता हूँ मेरे इस हृदय में कोई दूसरी इच्छा नही है। आप अखिल विश्व की अन्तरात्मा हैं। मेरे हृदय की यह निरीहता आपसे छिपी नही है... हे रघुश्रेष्ठ, आप मुझे पूर्ण भक्ति प्रदान कीजिए और मेरे हृदय को कामादि दोषों से मुक्त कीजिए †।'

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकाड, मंगलाचरण, श्लोक १। † रामचरितमानस, सुन्दरकांड, मगलाचरण, श्लोक २।

इस श्लोक मे अखिलान्तरात्मा का दर्शन करने वाला ज्ञानी संत, रघुपुगव का भक्त बन कर उससे पूर्णभक्ति का ही वरदान माँगता है ।

तीसरे श्लोक मे गोस्वामी जी इस काड के नायक हनुमान् की प्रार्थना करते है जो ज्ञानियों मे अग्रगण्य भी है और रघुपति के श्रेष्ठ दूत भी। वे श्रेष्ठ ज्ञानी और श्रेष्ठ भक्त दोनों है ।

किष्किधा काड मे वियोगिनी तारा को राम के उपदेश के बाद जिस ज्ञान की उपलब्धि हुई उसकी प्रक्रिया का चित्रण गोस्वामी जी ने किया है। पाँच भौतिक, परिवर्तनशील, अधम जड पिंडों के भीतर नित्य और शाश्वत ब्रह्म को देख लेना ज्ञान है । बालि के मृतक शरीर की ओर सकेत करके राम ने कहा है—"छिति जल पावक गगन समीरा । पच रचित अति अधम सरीरा । प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ‡ ।" इस सत्य को जान लेने के बाद की अवस्था ज्ञान की दशा है—"उपजा ज्ञान चरन तब लागी" † से इस सत्य का सकेत दिया गया है । ज्ञान का प्रकाश भक्ति की भावना से मिल कर विमल ज्ञान का रूप धारण करता है । ज्ञान उत्पन्न होने के बाद तारा परम भक्ति का वर माँग लेती है। यह अवस्था विमल ज्ञान की है—"लीन्हेसि परम भगतिबर माँगी $ ।" इस सोपान मे इसी तरह के विमल ज्ञान के प्रकाश मे भक्ति की स्थापना की गयी है ।

लोकमगल विधायक कार्य मे भक्ति के विमलज्ञानयुक्त आनन्द की स्थिति को गोस्वामी जी ने स्वीकार किया है । जिस कार्य के साथ लोकमगल विधायक राम का सम्बन्ध होता है उसमे योग दे कर सिद्धि के पास पहुँचने की प्रबल आतुरता भक्त मे रहती है । वह राम-कार्य की सिद्धि को जब अपने सामने सम्भव होती हुई देख लेता है तब उसे अपार आनन्द होता है । वह अपना सम्पूर्ण बल, अपनी समग्र बुद्धि राम-कार्य की सिद्धि मे लगा कर अपने को राम का दास सिद्ध करना चाहता है । सुन्दर कांड के नायक हनुमान् इसी प्रकार के भक्त है । उनकी परीक्षा ले कर जब सुरसा कहती है—"रामकाज सब करिहहु तुम्ह बल-बुद्धि-निधान * " तब अपनी सिद्धि को सम्भव देख कर हनुमान् को हर्ष होता है—"आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान् § ।"

भक्त का अपनी सिद्धि का भी कारण भगवान् के प्रताप को ही समझना विमल विज्ञान का एक लक्षण है । विमल ज्ञान के प्रकाश में भक्त अपनी कार्यसिद्धि के प्रति भी अनासक्त ही रहता है । वह इस सिद्धि के भीतर भगवान् के प्रताप का ही कारण रूप मे दर्शन करता है । अपनी सिद्धि के प्रति उसे कोई अभिमान नही रहता । लका को जला कर लौटने के बाद राम ने जब हनुमान् से पूछा—"कहु कपि रावनपालित लका, केहि विधि दहेहु दुर्ग अति बंका × ।" तब 'प्रभुप्रसन्न जाना हनुमाना, बोला बचन बिगत अभिमाना + ।' से हनुमान् की अपनी प्रतिष्ठा के प्रति अनासक्ति और निरभिमानता ही व्यक्त होती है ।

---

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा १० के बाद । † वही । $ वही । * रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा २ । § वही । × रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा ३२ के बाद । + वही ।

निरभिमानता विमल ज्ञान-सम्पन्न भक्त का लक्षण है। निरभिमान मन से हनुमान् ने राम को उत्तर दिया—'बन्दर की कितनी बडी शक्ति होती है। वह केवल एक डाली से कूद कर दूसरी डाली पर जा सकता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नही। समुद्र को लाँघ कर सोने की लका जलायी, निशाचरो को मार कर उपवन को उजाडा, वह सब तो आपके प्रताप ने किया। उसमे मेरे सामर्थ्य का कोई योग नही था। उसके लिए कोई कार्य कठिन नही, जिस पर आप अनुकूल हों। आपके प्रभाव से रूई भी बाडव ज्वाला को शान्त कर सकती है ‡।'

हनुमान् के ये शब्द विमलज्ञानयुक्त भक्ति के आनन्द के अनुभाव है। इसके बाद हनुमान भक्ति के इस उत्सर्गमय आनन्द को अपने हृदय मे स्थिर रखने के लिए राम से अविचल भक्ति का ही वरदान माँगते है।

विमलज्ञानयुक्त भक्ति के प्रकाश मे तुलसीदास की राक्षसों के प्रति याचना भी सहानुभूतिपूर्ण है। इस सोपान मे राक्षसों का कुछ वर्णन करके इस वर्णन के लिए अपना कारण बताते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—तुलसीदास ने इनका थोड़ा-सा वर्णन इसलिए कर दिया है कि ये सब रघुनाथ के बाणरूपी तीर्थ मे शरीर त्याग करके उत्तम गति प्राप्त करेगे †।

विमलज्ञानयुक्त भक्त उन दुष्टों को भी सहानुभूतिपूर्ण नेत्रों से देखता है जो आगे चल कर राम की भक्ति का पवित्र आलोक प्राप्त करने वाले है।

जिस व्यक्ति को विमल विज्ञान की दृष्टि प्राप्त हो जाती है उसे भक्त को देख कर अपार हर्ष होता है। भक्त के भीतर मर्यादा पुरुषोत्तम के शील का दर्शन करके विमल ज्ञान की दृष्टि वाला व्यक्ति असीम आनन्द का अनुभव करता है। शीलविकास की भारतीय मर्यादा राक्षस मे भी विमल ज्ञान के विकास की सम्भावना मानती है। इसीलिए गोस्वामी जी ने लकिनी मे भी इस विकास को दिखाया है। यह घटना वाल्मीकि के रामायण मे भी है, पर विमल ज्ञान के भक्तिपूर्ण विकास की यह सीमा वाल्मीकि की लकिनी मे नही दिखाई पडती है। यह सम्पूर्ण योजना गोस्वामी जी की मौलिक प्रतिभा से उत्पन्न हुई है।

हनुमान् के हाथों पराजित होने के बाद इस विमल ज्ञान का उदय उसमें हो जाता है। उसी विमल ज्ञान के प्रकाश में वह कहती है—"तात मोर अति पुन्य बहूता, देखेउं नयन राम कर दूता $।"

विमल ज्ञान सम्पन्न भक्त दूसरे भक्त को देख कर इसी तरह अपने को धन्य समझता है।

लंकिनी आगे कहती है—"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग, तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग *।"

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ३३ और पहले। † रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ३ के पहले। $ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ४ के पहले। * रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ४।

भक्त के साथ के एक क्षण के सुख की बराबरी स्वर्ग और मुक्ति के सुख भी नही कर सकते। लोकमर्यादा की सिद्धि से जो अपार हर्ष भक्त को होता है, वह स्वर्ग और मुक्ति के आनन्द से नही। भक्त के जीवन में मर्यादा पुरुषोत्तम के शील के सौन्दर्य की अन्तिम परिणति के रूप मे महामानव का विकास हो जाता है। उस महामानव के शील का साक्षात्कार करके भक्त को जो सन्तोष होता है वह स्वर्ग और निर्वाण के सुख से नही। तुलसी की विमल ज्ञानयुक्त भक्ति का यही रहस्य है।

हनुमान् से मिलने पर गोस्वामी जी के विभीषण ने भी परिचय पूछते हुए इसी अटल सिद्धान्त का परिचय दिया है। विभीषण हनुमान् से पूछते है—'आप हरि के दासो मे से तो कोई नही है? मेरे हृदय में आपके लिए अपार प्रेम उमड रहा है ‡।'

विमल ज्ञान जिन हृदयो मे उदित हो जाता है उनका मिलन इसी तरह का होता है। इस तरह की प्रीति के उदाहरण मानस मे भरे पड़े है। हनुमान् को देख कर सीता की भी यही अवस्था हो गयी थी —'हरिजन जानि प्रीति अति बाढी सजल नयन पुलकावलि ठाढी † ।'

विमल ज्ञान के आलोक में भगवान् की असीम शक्ति का दर्शन होता है। गोस्वामी जी के 'कोसलपुर राजा $' की अनत शक्ति विमल ज्ञान के प्रकाश मे हो दिखाई पड़ती है। परमात्मा की यह शक्ति असम्भव को भी सम्भव बना सकती है। भक्त इसीलिए 'कोसलपुर राजा' को प्रत्येक कठिन कार्य को करने के पहले अपने हृदय मे रख लेता है।

विमल ज्ञान की यही दृष्टि पा कर तुलसी की लकिनी ने हनुमान् से कहा है—'कोसलपुर राजा को हृदय मे रख कर नगर मे प्रवेश कीजिए और अपने सब कार्यो को सिद्ध कर लीजिए। जिसे राम कृपा की दृष्टि से देख लेते है, उसके लिए विष अमृत और शत्रु मित्र बन जाता है, उसके लिए समुद्र गाय के खुर के समान और आग शीतल हो जाती है। उसके लिए सुवर्ण का घनत्व ले कर भी विशाल सुमेरु धूल के कण की तरह हो जाता है * ।'

राम के गुणों के चिन्तन से विमल विज्ञान का अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। आनन्द योगी और ज्ञानी को समाधि मे प्राप्त होता है, विमल ज्ञानी भक्त को वही अनिर्वचनीय आनन्द राम के गुणों के सौन्दर्य मे हृदय को मग्न कर देने मे मिलता है। विभीषण से वार्तालाप करते हुए इस सोपान मे राम के गुणों की चर्चा की गयी है। इस चर्चा के आनन्द का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—"एहि बिधि कहत राम-गुन-ग्रामा पावा अनिर्वाच्य बिस्रामा § ।"

यही अनिर्वचनीय आनन्द है जो भक्त को मर्यादा पुरुषोत्तम के शील की भावना से प्राप्त होता है। अवधपति अपने इसी मर्यादा पुरुषोत्तमत्व के कारण सीता के भी

---

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ६ के पहले। † रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १३ के बाद। $ रामचरितमानस, सुन्दर कांड, दोहा ४ के बाद। * वही। § रामचरितमानस, सुन्दरकांड दोहा ७ के बाद।

'परम स्नेही' बन गये थे। रावण के राक्षसी प्रेम प्रस्ताव का उत्तर देने के पहले इस 'परम स्नेही' का ध्यान सीता ने कर लिया था और इस ध्यान के आलोक मे उन्हे विमल ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो गया था—"तिनु धरि ओट कहति वैदेही, सुमिरि अवधपति परम सनेही ‡।" इस स्मरण के बाद जो विमल ज्ञान उन्हे प्राप्त हुआ उसमे 'परम सनेही' राम का प्रताप सूर्य की तरह और रावण जुगनू की तरह दिखाई पडा—"सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा, कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा †।"

इस तरह राम के चरणो के प्रेम से ज्ञान को विमल बना कर गोस्वामी जी ने उसे भक्ति के भीतर स्थान दे दिया है। उनकी त्रिजटा भी इसी कोटि की विमलज्ञानसम्पन्न है—"त्रिजटा नाम राक्षसी एका, राम-चरन-रति निपुन बिबेका $।" 'राम-चरन-रति' के साथ 'निपुन बिबेक' ही विमलज्ञान का प्रतिनिधि है।

विमलज्ञानमय, उज्ज्वल और अनिर्वचनीय प्रेम भगवान् के भीतर भी भक्त के लिए होता है। विमल ज्ञान के प्रकाश मे गोस्वामी जी ने भक्त सीता के लिए राम मे अनिर्वचनीय प्रेम का दर्शन किया है। इसीलिए इस प्रेम का सन्देश सीता को देने के पहले ब्रह्मचारी हनुमान् प्रेम की पवित्रता के सौन्दर्य की भावना मे लीन हो गये—

रघुपति कर सन्देश अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयेउ भरे बिलोचन नीर *।

राम ने अपने सन्देश में सबसे बडी बात यह कही थी—'तुम्हारे और हमारे प्रेम के तत्त्व को केवल मेरा मन जानता है और वह मन सदा तुम्हारे पास ही रहता है तो प्रेम के रहस्य का सन्देश कौन भेजे §।' इस तरह भक्त के लिए भगवान् के हृदय मे अनिर्वचनीय प्रेम रहता है।

विमल ज्ञान के साथ गोस्वामी जी की सीता भी राम की भक्ति सेवक-सेव्य भाव से करती है। इसीलिए हनुमान् उन्हे सान्त्वना देते हुए कहते है—'सेवक-सुख-दाता राम का स्मरण कर आप धैर्य धारण करे ×।'

विमल ज्ञान मे भक्ति-प्रताप-तेज और बल का समाहित रूप विकसित होता है। विमल ज्ञान की दृष्टि जब परमात्मा के अनत शीलशक्ति और सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेती है, तब उसके भीतर ऐसी भक्ति का प्रादुर्भाव होता है जिसमे प्रताप, तेज और बल साथ ही साथ रहते है। यह सब, भगवान् की अनत शक्तियों की छाया भक्त के हृदय पर पड़ने से, भक्त मे उत्पन्न हो जाते है। भक्त भगवान् की शक्ति की अनतता की भावना निरन्तर करता रहता है। इस मानस सान्निध्य के कारण भगवान् की अनत शक्ति का सस्कार भक्त के भीतर तेज, प्रताप और बल बन कर बैठ जाता है। इतने पर भी, विमल ज्ञान के कारण इस रहस्य को समझ कर, भक्त कदापि अभिमान नही करता।

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ९ के पहले। † वही। $ रामचरितमानस, सुन्दरकाड, दोहा १० के बाद। * रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १४। § रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १५ के पहले। × वही।

विमल ज्ञान के इस काड मे सीता को हनुमान् के लघुरूप को देख कर जब विजय मे सन्देह हुआ तब हनुमान् ने अपना समरभयकर विराट् रूप दिखाया और सीता को आश्वस्त करके कहा—

सुनु माता साखामृग नहि बल-बुद्धि-बिसाल ।
प्रभु प्रताप तें गरुडहि खाइ परम लघु ब्याल ‡ ।

इस दोहे मे भक्त की नम्रता के भीतर प्रताप, तेज और बल की स्पष्ट व्यजना है। गोस्वामी जी ने इसके बाद सीता के मन की दशा बताते हुए लिखा है—"मन सन्तोष सुनत कपि बानी, भगति-प्रताप-तेज-बल सानी † ।"

इसी स्थिति मे भगवान् की अनत शक्ति भक्त को तेज, प्रताप और बल दे देती है। रावण के उपवन का फल खाने के लिए आज्ञा देते हुए जानकी के द्वारा भी, गोस्वामी जी ने भगवान् की अनत शक्ति के इस प्रभाव की व्यजना करवायी है—

देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति-चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु $ ।

रघुपति-चरण का ध्यान अनत शक्ति का ध्यान है, और उसमे से रावण के उपवन में फल खाने के लिए अपेक्षित तेज, प्रताप और बल उत्पन्न होते, इसीलिए सीता ने मधुर फल खाने के पूर्व रघुपति-चरण का ध्यान दिलाना आवश्यक समझा।

विमलज्ञानरूपिणी भक्ति की अनत शक्ति के भीतर से सात्त्विक सामाजिक रक्षा-नियमो का भी अनुपम विकास होता है। विमल ज्ञानमयी भक्ति के भीतर भक्त को भगवान् का इतना बडा बल प्राप्त हो जाता है कि विश्व के सब नियमों का वह उल्लघन कर सकता है; पर विमल ज्ञान के द्वारा इस उद्दडता को वह रोक लेता है और विश्व के रक्षा-नियमो का पालन करता है। जितने देवास्त्र है उन सबसे विश्व की रक्षा ही होती रहती थी, पर तपस्या के फ़लस्वरूप वे अस्त्र कभी-कभी राक्षसों को भी, सत्यानुरोधी देवताओ से वरदान के रूप में, कुछ निश्चित काल के लिए और कुछ निश्चित नियमों के अधीन, मिल जाया करते थे और वे उनका दुरुपयोग कर अपने राक्षसी स्वभाव का परिचय देते ही थे और अपने सहार के दिन को और अधिक निकट ले आते थे।

विश्वरक्षक इन अस्त्रों को भी विमल ज्ञान सम्पन्न भक्तों की अनत शक्ति विफल कर सकती थी, पर हनुमान् के समान विमल ज्ञान की श्रेणी पर पहुँची हुई सब शक्तियाँ इन अस्त्रों की मर्यादा की रक्षा करती थी। मेघनाद के द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र को विमल ज्ञान की इसी सात्त्विकता के कारण हनुमान् ने मान लिया—"ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा कपि मन कीन्ह विचार, जौ न ब्रह्म सर मानउ महिमा मिटइ अपार * ।"

इसी विमल ज्ञान की सात्त्विकता के कारण 'प्रभु कारज' के लिए हनुमान् ने नागपाश का बन्धन भी स्वीकार कर लिया—"जासु नाम जपि सुनहु भवानी,

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकाड, दोहा १६। † रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १६ के बाद। $ रामचरितमानस, सुन्दरकाड, दोहा १७। * रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १९।

भव-बन्धन काटहि नर ज्ञानी । तासु दूत कि बध तर आवा, प्रभु कारज लगि कपिहि बधावा ‡ ।"

विमल ज्ञान की दृष्टि मे परमात्मा की अनत शक्ति के विविध विराट् आयोजन दिखाई पड़ जाते है । 'माया ईश्वर की शक्ति से ही सृष्टि करती है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी विराट राम की शक्ति से सृष्टि, पालन और सहार का कार्य करते है । उसकी शक्ति से शेष पृथ्वी का भार धारण करता है । दुष्टों के शासन के लिए वही बार-बार अवतार लेता है † ।' रावण इत्यादि शक्तियाँ उसी शक्ति के क्षुद्र अश है । 'उसकी शक्ति से सुर-असुर और चराचर जगत् को खा जाने वाला काल भी डरता है $ ।'

राम की इन शक्तियो का ध्यान दिला कर जब हनुमान् ने रावण को समझाया, तब उसने कहा—"मिला हमहि कपि बड गुरु ज्ञानी * ।" यद्यपि यह रावण का व्यग्य था तथापि बात सच्ची थी । गोस्वामी जी की विमल ज्ञान की दृष्टि राम मे इन सब योजनाओं की शक्ति देखती है ।

विमल ज्ञान के केन्द्र भगवान् मे शरणागत के लिए अनत वत्सलता रहती है । विमल ज्ञान के भीतर जो अनत शक्ति होती है, उसे किसी का भय नही रहता । वह स्वरक्षित और सब की रक्षिका होती है । इसीलिए उसमे छल की आवश्यकता नही रहती । इसी अनत शक्ति के कारण राम निश्छल और शरणागत रक्षक है ।

विभीषण शत्रु का भाई था, पर अनत शक्तिवान् को किसी और विचार की आवश्यकता ही नही थी । शरणागत को बिना आगापीछा सोचे उन्होंने शरण दी ।

शरणागत-वत्सलता को इसी प्रकरण मे राम ने उच्चतम आदर्श माना है । सुग्रीव से वे कहते हैं—'जो अपने अनहित का अनुमान करके शरणागत को त्याग देते हैं वे नीच और पापी है । उन्हे देखने से भी हानि होती है । जिन्हे करोडो ब्राह्मणों के वध का पाप लगा हो उसकी भी, शरण मे आने पर मैं रक्षा करता हूँ । जब जीवन के करोडो जन्मो के पाप नष्ट हो जाते है, तभी वह मेरी तरफ़ आता है । जो मनुष्य निर्मल मन होता है वही मुझे पाता है । मुझे कपट और छलछिद्र अच्छे नही लगते § ।' अपनी अनत शक्ति की ओर सकेत करते हुए उन्होंने निर्भयता प्रकट करके कहा—"यदि रावण ने भेद लेने भेजा है तब भी कोई भय या हानि नही । ससार के सा राक्षसों को लक्ष्मण पल भर मे मार सकते है, यदि भयभीत हो कर आया है, तो अपने प्राणों की तरह उसकी रक्षा करूँगा । दोनो स्थितियों मे तुम उसे मेरे पास ला सकते हो × ।'

विमल विज्ञान के प्रकाश मे भक्त की शरणागति का विकास भी एक विशेष ढग से ही होता है । विमल विज्ञान के प्रकाश मे मद, मोह, कपट और छल को छोड कर भक्त

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा १९ के बाद । † रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा २० के बाद । $ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा २१ के बाद । * रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा २३ के बाद । § रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ४३ और बाद । रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ४३ के बाद से ४४ तक ।

भी अनत शक्तिवान् की शरण मे चला जाता है। ऐसे शरणागतियुक्त भक्त का लक्षण बताते हुए विभीषण से राम ने कहा—'चराचर का द्रोही मनुष्य भी यदि सभय मेरी शरण मे आता है और नाना प्रकार के छलकपट, मदमोह को छोड़ देता है उसे मैं तुरन्त साधु के समान बना देता हूँ ‡।'

'माता-पिता, भाई, पुत्र, पत्नी, शरीर, धन, भवन, मित्र और परिवार की ममता के सूत्रों को इकट्ठा करके, इन सब के सम्मिलित प्रेम की डोरी से, जो अपने मन को मेरे चरणों मे बाँध देता है, जो समदर्शी, इच्छाहीन, हर्ष, शोक और भय से जिसका मन मुक्त हो जाता है ऐसा सज्जन मेरे हृदय मे उसी तरह निवास करता है जैसे लोभी के हृदय मे धन। तुम्हारे समान सत ही मुझे प्रिय है। दूसरे किसी कारण से मैं शरीर मे नही आता †।'

सगुन उपासक परहित-निरत नीति-दृढ नेम,
ते नर प्रानसमान मम जिन्हके द्विज-पद-प्रेम $।

"सुनु लकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे *।" सच्ची शरणागति वाले भक्त मे उपर्युक्त सब गुण होते है। विभीषण इसी तरह के भक्त थे और इसीलिए राम के परम प्रिय भी।

विमल ज्ञान के भीतर शक्ति के साथ विनम्र सहिष्णुता भी रहती है। विभीषण मे यह विमल ज्ञान था, इसीलिए उन्होने समुद्र के पार सेना ले जाने के लिए समुद्र से प्रार्थना करने को कहा। विमल ज्ञानी राम ने प्रार्थना करना भी स्वीकार कर लिया। विभीषण को यह ज्ञात था कि राम का बाण 'कोटि-सिन्धु सोषक' है तथापि उन्होंने विनम्र होने का ही परामर्श दिया और अनत शक्तिवान् ने उस परामर्श को स्वीकार कर लिया §।

इस अनत शक्तिवान्, अनत शीलवान् और अनत सौन्दर्य के स्रोत राम के चिन्तन से तुलसी के अनुसार साधक मे विमल ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है और बिना जलयान के वह भव-सिन्धु को पार कर जाता है ×।

---

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ४७ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, सुन्दरकाड, दोहा ४८। * रामचरितमानस, सुन्दरकाड दोहा ४८ के बाद। § रामचरितमानस, सुन्दरकाड, दोहा ५० तथा उसके पहले और बाद। × रामचरितमानस, सुन्दरकांड, दोहा ६०।

अध्याय ७

विमल विज्ञानमय जीवनदर्शन

अयोध्या काड विमल विज्ञान वैराग्य सम्पादन कांड है और लका काड विमल विज्ञान सम्पादन। युद्धकाड होने के कारण यहाँ वैराग्य की आवश्यकता नही है पर विमल विज्ञान की आवश्यकता अवश्य है। वेदान्त ब्रह्म को विज्ञान और आनन्द स्वरूप मानता है—"विज्ञानं ब्रह्म ‡" "आनदो ब्रह्म †" समत्व और एकत्वप्राप्त व्यक्ति मानस में ब्रह्मलीन और विज्ञानी कहा गया है। विज्ञानी से भी भक्त को ऊँचा बताते हुए गोस्वामी जी की उमा ने कागभुशुडि की भक्ति की प्राप्ति का कारण शकर से पूछा है। इसके पहले जीवन-मुक्त की चर्चा करके जीवन मुक्त से विज्ञानी को उन्होंने श्रेष्ठ बताया है—"ज्ञानवत कोटिक मह कोऊ, जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ। तिन्ह सहस्रमह सब सुख खानी, दुरलभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी $।"

विज्ञानी एकत्व और समता की ब्रह्म भावना मे लीन रहता है। भक्ति की अवस्था इससे भी पवित्र विमल विज्ञान की अवस्था होती है। सगुण सियाराम की अनुभूति अखिल विश्व में कर लेने वाला विमल विज्ञानी होता है। सीतारामयय जगत् की भावना विमल विज्ञान की भावना है।

इसी प्रकार के एकत्व और समत्व की भावना को साथ ले कर विमल विज्ञानी भारतीय वीर अखिल विश्व की रक्षा और अखिल विश्व मे मर्यादा की स्थापना का प्रयत्न करके सम्पूर्ण जगत् मे राम के आदर्श का दर्शन कर लेना चाहता है।

लकाकांड के युद्ध मे मर्यादा पुरुषोत्तम का साथ देने वाला प्रत्येक योद्धा राक्षसों का शत्रु इसीलिए हैं कि उनमे उसे राम की मर्यादाओं का प्राय. अभाव ही दिखाई पडता है। समत्व की अखिल जागतिक मर्यादा का दर्शन विमल विज्ञान का दर्शन है। इस वासना को ले कर राम का प्रत्येक योद्धा राम के आदर्शो का सार्वभौम रूप देखने के लिए, राक्षस का सहार करने के लिए आतुर है। भक्ति के इसी दृष्टिकोण को ले कर लका काड मे अधार्मिक आततायित्व और लोकरक्षक पवित्र वीरभाव का सघर्ष दिखाया गया है।

अनत शक्तिवान् राम के इस अनत शील के प्रचार के आनद की भावना इतनी तीव्र है कि आदर्शो के समत्व को वे राक्षसों तक को प्रदान कर मुक्त कर देते है। राम के

---

‡ तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुवाक ५, मत्र १०। † तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली, अनुवाक ६, मत्र ४। $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ५३ के बाद।

विमल आदर्शों की झाँकी अपने सम्मुख देखता हुआ प्रत्येक राक्षस मृत्यु के समय विमल ज्ञानमय रामभक्ति का अधिकारी बन जाता था और राम उसे अपने साकेत धाम भेज देते थे, जो इन आदर्शों की लीला का शाश्वत धाम है। पावन धर्म के प्रचार-क्षेत्र में विमल विज्ञान की धार्मिक समता का आनन्दमय पावन रूप इतना व्यापक हो गया है कि राक्षस भी उसका अधिकारी हो गया है।

वेदान्त का केवल विज्ञान, चिन्तन द्वारा एकत्व और समत्व की निर्गुण धारणा प्राप्त करता है। विशिष्टाद्वैत के 'विमल' विशेषण से विशिष्ट हो कर गोस्वामी जी का विमल विज्ञान भावना द्वारा एकत्व और समत्व की सगुण झाँकी के 'सियाराममय सब जग ‡' की सगुण एकता और समता का दर्शन करके आनन्द विभोर हो उठता है। उसके इस आनन्द का आधार राम के शक्ति-शील और सौन्दर्य-समन्वित लोकादर्श है। भक्त राम के इन आदर्शों के सौन्दर्य को अपने भीतर और चराचर जगत् के भीतर प्रसारित करके देखता है। इसीलिए गोस्वामी जी के मानस मे अचल चित्रकूट पर्वत भी इन आदर्शों के प्रभाव से प्रफुल्लित दिखाई पडता है, वृक्ष भी इस आनन्द महोत्सव मे बारहों महीने फल-फूल दे कर भाग लेते दिखाई पडते है। चेतन जगत् के भीतर पशु-पक्षी भी लोकादर्श के इस आनन्द के उल्लास से उल्लसित है और चिन्तनशील प्राणियो मे 'कोल, किरात भिल्ल बनचारी †' सब सभ्य मनुष्यो के साथ इस आनन्द के यज्ञ के यजमान है। आनन्द के इस समत्व के प्रसार के भीतर यक्ष गन्धर्व सब आ कर मग्न हो गये है। यहाँ तक कि लकाकाड मे खास तौर से तथा अन्य दूसरे स्थलो पर भी राक्षसों की घोर तामसी मनोभूमि भी मर्यादा पुरुषोत्तम के पवित्र शक्ति शील और सौन्दर्य के सहज आलोक से आलोकित हो जाने के लिए बाध्य हो गयी है। उस पर भी पवित्रता छा गयी है।

इस विराट् पावनता के सगुण-निर्गुण बीज लकाकाड के भी मगल श्लोक में है। यहाँ के मगलाचरण मे भी गोस्वामी जी ने राम का ध्यान योगीन्द्रज्ञानगम्य, निर्गुण, निर्विकार, मायातीत रूप मे तथा कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिह के रूप में किया है। लव, निमेष, युग, वर्ष और कल्प के समय-परिमाणों को उनके प्रचड बाणों की तरह माना है और काल को उनके धनुष की तरह। कालरूपी धनुष पर लव, निमेष इत्यादि बाणों को चढा कर ससार का सहार करने वाली शक्ति के विराट् रूप मे यहाँ राम देखे गये है। यह 'विमल विज्ञान' का केवल 'विज्ञान' भाग है जो विराट् राम की सत्ता को अखिल विश्व की एकता पर प्रसारित देखता है। परन्तु दूसरी तरफ जब गोस्वामी जी के यही विराट् राम शंकरसेव्य, भवभयहरण, गुणनिधि, अजित, सुरेश, खलवधनिरत, ब्रह्मवृन्दैकदेव, कन्दावदात (मेघवर्ण) सरसिजनयन, देव और पृथ्वी के राजा के रूप मे भी दिखाई पडते है तब गोस्वामी जी के अनुसार 'विमल विज्ञान' की भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है $.'

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, अयोध्याकाड, दोहा ३१९ के बाद। $ रामचरितमानस, लकाकांड, मगलाचरण श्लोक १ और श्लोक ३ के बाद वाला दोहा।

इसी मगलाचरण के दूसरे और तीसरे श्लोको मे गोस्वामी जी के सगुण शिव सज्जनों को कैवल्य देने वाले भी है और अपने शख और चन्द्रमा की तरह श्वेतआभा वाले शरीर से दुष्टों को दड देने वाले भी हैं। इस तरह निर्गुणसगुण की पवित्र लोकादर्श-युक्त झाँकी विमल विज्ञान के नेत्रों से देखी जाती है।

यही विमल विज्ञान की दृष्टि है जिसको ले कर सेतुनिर्माण के आरम्भ मे इस कांड मे जामवन्त ने राम से कहा है—"नाथ नाम तव सेतु नर चढि भव-सागर तरहि ‡" 'आपका नाम ही सेतु है जिस पर चढ कर मनुष्य भवसागर को पार कर जाएगा'। राम के नाम के साथ इतने पवित्र आदर्शो का ध्यान जुडा हुआ है कि उनके ध्यान मे मग्न रहने वाले मनुष्य के मन मे अपवित्रता रह ही नही सकती। उसके पवित्र मन मे जगत् के तापों का नितान्त अभाव हो जाता है।

रामेश्वर की स्थापना मे भी गोस्वामी जी के राम की दृष्टि मे विमल विज्ञान का आलोक ही क्रियाशील है। विश्वव्यापी समत्व के आदर्श का प्रचार जिस योजना के द्वारा गोस्वामी जी करना चाहते है उसमे विष्णु-शिव के समत्व का एक बहुत बडा और महत्त्व-पूर्ण स्थान है। रामायण के सोपानों मे हर जगह विभिन्न दृष्टिकोणों से इस समत्व को सौन्दर्य प्रदान किया गया है। इस योजना की अन्तिम परिणति राम की तरफ से की गयी है। वह है सेतु पर रामेश्वर की स्थापना। विष्णु के अवतार राम, शिव की मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा कर लेते है तब सेना सेतु पर पैर रखती है।

राम की ओर से विष्णु-शिव ऐक्य की योजना की यह अन्तिम और परमोच्च परिणति इसलिए है कि आगे एक बहुत बडा कार्य है। वह है राक्षसों का विनाश। यही राम के जीवन का भी परमोच्च यज्ञ है, जिसमे विश्व के शत्रुओं का विनाश होने जा रहा है। अपने जीवन के परमोच्च विकास को शिवभक्ति पर आधारित करके तुलसी के राम ने यह व्यक्त किया है कि उनके हृदय मे शिव के लिए परमोच्च स्थान है। अपनी इस इच्छा को व्यक्त करते हुए भी वे कहते है—"करिहउ इहां सभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना †।" राम के हृदय की यह परमोच्च कल्पना है जो उन्हे शिव की भक्ति को सगुण-उपासना के रूप मे साकार कर देने को बाध्य करती है।

रावण वध को पृष्ठभूमि मे राम के जीवन का जो महानतम आदर्श है वह भी उनकी शिवभक्ति से व्यक्त हो जाता है। राम ने रावण-वध करके पृथ्वी को निशिचर-विहीन करने का जो सकल्प किया है उसमे रावण को उन्होने निजी शत्रु की तरह अपनी कल्पना मे स्थान नही दिया है। उन्होंने अपनी भावना मे रावण को विश्व-शत्रु की तरह देखा है। उपासना के लिए जिस अनुभूतिपूर्ण भक्ति के आवेग की आवश्यकता है, उसकी दृष्टि से राम और रावण में अन्तर यही है कि राम सात्त्विक शिवभक्त है और रावण है तामस शिवभक्त। राम की शिवभक्ति उनके द्वारा विश्व-मगल विधान कराती है तथा

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, आरम्भ का सोरठा। † रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा १ के बाद।

रावण की शिवभक्ति से जो शक्ति रावण को प्राप्त हुई उससे लोक-पीडन हो रहा है। अपनी शिवभक्ति के द्वारा राम ने विश्व के सामने यह आदर्श स्थापित किया है कि शिव-भक्त रावण मेरा शत्रु कदापि न होता; क्योंकि हम दोनों एक ही उपास्य शिव के उपासक है। मै रावण का वध इसलिए कर रहा हूँ कि वह विश्व-शत्रु हो कर विश्व के आदर्श व्यक्तियो को उत्पीडित कर रहा है।

तुलसी के राम भी विमल विज्ञान की दृष्टि की पवित्रता से शिव के सगुण-निर्गुण रूप की उपासना करते हैं। यह ऐक्य और समत्व की ओर ले जाने वाली कल्पना परमोच्च है ही, क्योकि ब्रह्मैक्यवाद के बाद और कुछ अवशिष्ट नही रह जाता। इस स्थान पर पहुँच कर सब भेद और विरोध शान्त हो जाते है। इस समत्व के आदर्श मे इतना बल है कि आगे 'चल कर इसकी पवित्रता के आलोक मे राक्षसो का हृदय भी पवित्र हो गया है। इस तरह निर्गुण विज्ञान' यहाँ सगुण भक्ति के समत्व से सम्बद्ध हो कर 'विमल' हो गया है। इसकी विमलता इसलिए भी ओजस्विनी है कि इसमे भक्ति के लिए अपेक्षित हृदय की कोमलता के द्वारा, हृदय की कोमलता पर आक्रमण करके उस पर पवित्रता और कोमलता का प्रकाश डाला जाता है। केवल अमूर्त चिन्तन के लिए इसमे कोई स्थान नही। यहाँ जीवन की पवित्र विमलता जगज्जीवन की अपवित्रता पर आक्रमण करके उसे विमल बना देती है। राम-रावण की युद्ध की पृष्ठभूमि मे जीवन की दार्शनिक परिणति या दर्शन का यही जीवनमय विकास आगे बढ कर अपनी पूर्णावस्था तक पहुँच गया है—वह अवस्था जिसमे राक्षसो का घोर तमोगुण सात्त्विकता का अनुचर बन गया है, उसके सौन्दर्य से बाध्य हो कर।

इस तरह शैव और वैष्णव सम्प्रदायो के विरोध को गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति के विमल विज्ञान के द्वारा जीवन-दर्शन और अध्यात्मदर्शन की परमोच्च परिणति पर ले जा कर शान्त कर दिया है। ब्रह्मैक्यवाद के इस विशिष्टाद्वैती सगुण प्रतीक को, जिसके आधार से विष्णु और शिव एक हो गये है, गोस्वामी जी के मर्यादा पुरुषोत्तम ने बहुत अधिक और सार्थक महत्त्व दिया है। अपने बनाये हुए सेतु को भी मानवता के उद्धार का कारण समझ कर राम ने पवित्रता से सम्बद्ध कर दिया है।

शकर की पूजा कर लेने पर तुलसी के राम कहते है—'शिव के समान मुझे कोई दूसरा प्रिय नही है। शिव से द्रोह करके मेरा भक्त होने का जो दम्भ करता है वह मनुष्य स्वप्न मे भी मुझे नही पाता। शकर से विमुख रह कर जो मेरी भक्ति चाहता है वह नारकी, मूढमति और जड है‡।'

'जो शकर का प्रिय और मेरा द्रोही बनता है या शिव का द्रोही और मेरा दास बनता है ऐसा व्यक्ति एक कल्प के समय तक घोर नरक में वास करता है†।'

मगलस्वरूप और कल्याणकर शिव-शकर का जो विरोध करता है उसे मगलमय और लोकमगल विधायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भक्ति कैसे मिल सकती है। मगल

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा २ के पहले। † रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा २।

और मंगलमय प्रवृत्तियों का विरोध करने वाले लोगों के लिए नरक को छोड कर और कहाँ स्थान हो सकता है ?

राम ने आगे और कहा है—'जो रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे मृत्यु के बाद मेरे लोक को चले जाएँगे ‡ ।'

राम की भावना और चिन्तन के परमोच्च सगुण प्रतीक रामेश्वर का विमल विज्ञान के भाव से दर्शन करने वाला राम के लोक मे अवश्य ही जाएगा । राम की विमल विज्ञान की भावना का मानस और चाक्षुष प्रत्यक्ष कर लेने वाला अवश्य ही साकेत लोक का अधिकारी होगा । विमल विज्ञान का समत्वपूर्ण महाभाव, जिसमे विश्ववेदना उत्पन्न होती है, अपने आश्रय नर को नारायण बना कर साकेत लोक का अधिकारी बना देता है ।

शिव को समर्पित होने वाले गगाजल के महत्त्व को व्यक्त करते हुए राम ने कहा है—"जो गगाजल ला कर रामेश्वर को चढाएँगे उन्हे सायुज्य मुक्ति मिलेगी । वे मुझसे एक हो जाएँगे † ।'

पावनता का प्रतीक गगाजल और लोककल्याणकर शकर जब एक कर दिये जाएँगे तब समर्पित करने वाले के भीतर अनासक्तिमय, पावन लोकमगल विधान की भावना जागृत हो जाएगी । वह राम के शील मे लीन हो कर राममय हो जाएगा । उसकी दृष्टि विमल विज्ञानमय हो जाएगी ।

अपने उपास्य रामेश्वर की निश्छल और निष्काम उपासना करने वाले के अनुष्ठान के परिणाम की ओर सकेत करते हुए राम ने कहा है —'रामेश्वर की अकाम और निश्छल सेवा करने वाले को शंकर मेरी भक्ति देते है $ ।'

राम के उपास्य रामेश्वर की अकाम और निश्छल सेवा लोकमगल विधान को सम्भव बनाने वाली अनासक्तिमय प्रवृत्ति और चेष्टा है । यही राम की भक्ति भी है । राम की भक्ति इसी का परिणाम है । यह प्रवृत्ति विमल विज्ञान की अभेदानुभूति के बाद ही पैदा होती है ।

तुलसी के राम ने सेतु दर्शन के महत्त्व को बताते हुए कहा है—'मेरे बनाये हुए सेतु का दर्शन करने वाला बिना श्रम भवसागर को पार कर लेता है * ।' शील की दुर्बलताओ का जाल बिछाने वाली तमोगुणी राक्षस-प्रकृति के विनाश को सम्भव बनाने वाला यह सेतु-निर्माण का कार्य अन्तिम उपाय था, तमोगुणी प्रवृत्तियाँ ससार को दुस्तर समुद्र बना देती हैं। इन प्रवृत्तियों को नष्ट करने वाली सात्त्विक वासना मन को राम के बनाये हुए सेतु से प्राप्त होगी, क्योंकि सेतु-निर्माण का कार्य इन प्रवृत्तियों को नष्ट करने के लिए ही हुआ था । सेतु के दर्शन से, यह सात्त्विक और निष्काम लोक-मंगल विधान की वासना, जिसका प्रतीक सेतु है, मनुष्य को प्राप्त हो जाएगी । यही

‡ रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा २ के बाद । † वही · $ वही । * रामचरित-मानस. लंकाकांड, दोहा २ के बाद ।

विमल विज्ञान की दृष्टि है। यही राम के नाम का भी महत्त्व है। 'नाम लेत भवसिंधु सुखाही‡' के अनुसार ऐसे साधक के लिए भव को सिन्धु बनाने वाली वासनाएँ समाप्त हो जाती है, भव-सिधु सूख जाता है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

गोस्वामी जी ने और भारतीय भक्तों की परम्परा ने भी भगवान् के अनत शील के सौन्दर्य के प्रतिबिम्ब की तरह उनके रूप को भी अनत सौन्दर्य-समन्वित दिखाया है। विमल विज्ञान की राम के भीतर जो अनत समत्व भावना का सौन्दर्य था, उसकी कोमलता का प्रभाव जलचरो पर भी इतना पडा कि इसके प्रतिबिम्ब राम के अनत रूप को देख कर वे मुग्ध हो गये। आपस के सहज बैर को छोड कर वे इतनी सख्या में जल के स्तर के ऊपर चले आये कि दूसरे सेतु का निर्माण हो गया और सेतु पर न समाने वाली सेना उन जलचरो पर चढ-चढ कर उस पार गयी†।

गिरिजा से जल पर तैरते हुए पत्थरों की चर्चा करते हुए गोस्वामी जी के शंकर ने बताया है कि नल-नील या पत्थर के स्वभाव के द्वारा सेतु-निर्माण नही हुआ। राम प्रणत पर प्रेम करते है। जो विनम्र हो जाए उसे राम की कृपा की विमल विज्ञानपूर्ण समत्वमय प्रेम-दृष्टि अवश्य मिल जाती है। उसी विमल विज्ञानपूर्ण राम की समत्व की दृष्टि से प्रभावित हो कर नल-नील भी सफल हुए और स्वय डूबने वाले और दूसरों को डुबाने वाले पत्थर भी जल पर नौका की तरह तैरने लगे $।

विमल विज्ञान की पवित्रता और कोमलता जड को भी प्रभावित करती है। इस बात को सिद्ध करने के लिए गोस्वामी जी ने इस घटना की अलौकिकता को यहाँ स्थान दिया। वाल्मीकि मे रामेश्वर की स्थापना की चर्चा नहीं है और न इस तरह का अलौकिक प्रभाव, जो जलचर और जडों को प्रभावित करता हुआ दिखाई पड़े। यह गोस्वामी जी की अपनी निजी बिराट् योजना का अग है।

विमल विज्ञान के प्रकाश मे गोस्वामी जी ने सन्तुलित राजनीति का भी चित्रण किया है। विमल विज्ञान का समत्ववाद एक ऐसे स्वस्थ शील को जन्म देता है जिसमे एकत्ववाद और समत्ववाद के आधार पर, 'सियाराममय सब जग' के प्रकाश मे कोई किसी से अपने को हीन नही मानता; सब जगह समत्व का दर्शन करता है और सबके प्रति श्रद्धा और समता के भाव अपने भीतर बनाये रखता है। इस दृष्टि के भीतर अधिक शक्तिवान् विनम्र रहता है। हीन शक्तिवान् के भी नीतिपूर्ण शब्दों को सम्मान देता है—उन्हे सर्वगत ईश्वर के पवित्र शब्द समझ कर। हीन बल वाला व्यक्ति भी अपने से अधिक बलवान् के केवल पशुबल से आतकित हो कर उसकी भयपूर्ण चाटुकारिता नही करता। उसे अनीतिपूर्ण मार्ग पर जाते हुए रोकता है और उचित परामर्श देने मे कभी नीति को नही छोडता। रावण ने मानस के भीतर अपने तामसी स्वभाव के कारण इस नैतिकता के ईश्वरीय सन्तुलन को खो दिया है। मन्दोदरी, विभीषण और प्रहस्त इत्यादि के नीतिपूर्ण और पारमार्थिक

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४ के बाद। † रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ३ के बाद से ४ तक। $ रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ३ के पहले।

एकत्व की पवित्रता से दिये गये उपदेशों को, बल के अभिमान के कारण, वह सम्मान नहीं देता ‡ ।

विमल विज्ञान की दृष्टि माया के बन्धन से बँधे हुए साधारण जीवों की शक्ति को सीमित और माया पर नियन्त्रण रखने वाले अवतारी ब्रह्म की शक्ति को अनत मानती है। इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले दूरदर्शी लोग अवतार को पहचान कर साधारण जीव को उससे वैर नही करने देते ।

गोस्वामी जी के सभ्य राक्षस पात्रों के भीतर यह दृष्टि है और वे रावण को अनीति के मार्ग पर जाने से रोकते है । साधारण जीवों की दुर्बलतापूर्ण चाटुकारिता का शील धारण करने वाले मन्त्रियो की वे भर्त्सना करते है । इस तरह के मन्त्रियों के परामर्श को सुन कर सात्त्विक शील वाला रावणपुत्र प्रहस्त कहता है—'आप नीति के विरुद्ध न करें । मन्त्रियों मे बहुत थोडी बुद्धि है । 'ठकुर सोहाती' कहने वाले मन्त्रियो की राय मानने वाला राजा अपने कर्तव्य को पूरा नही कर पाता । लका जलाने वाले हनुमान को खाने के लिए इसमे से किसी राक्षस के भीतर भूख बाकी नही रह गयी थी ? क्यों इन्होने उसे पकड कर नही खा लिया ? जिस मत को मान कर राजा आगे गड्ढे मे जाता है ऐसी ही राय ये लोग राजा को दे रहे हैं । जो मनुष्य समुद्र को बाँध कर खेल-खेल मे लका मे सेना उतार लेता है, उसे पकड़ कर हम खा जाएँगे ? आप हमे कायर न समझ कर हमारी बातों को सम्मान दे । मीठी बाते कहने और सुनने वाले प्राय सब है; औषधि के समान कडवी कहने और सुनने वाले बहुत कम है । यदि सीता को लौटा कर प्रीति कर लेने पर राम नही जाते तो उन पर हठ करके आक्रमण कीजिए † ।'

आदर्शपूर्ण नीतिवाक्य मे ईश्वर बैठ कर बोलता है; पर विमल विज्ञान-शून्य दृष्टि अभिमान के कारण इस शक्ति को नही देख सकती । तमोगुणी रावण अपने हठ के कारण इसी मदान्धता की स्थिति मे अत तक रह जाता है । वह प्रहस्त का अपमान करता है $ ।

विमल विज्ञान की विशिष्टाद्वैती दृष्टि मे परमात्मा की विश्वरूप अनुभूति होती है । विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय विराट् जगत् को परमात्मा का शरीर मानता है—"कृत्स्नस्य चिद-चिद्वास्तुनस्सर्वावस्थावस्थितस्य पारमार्थिकस्यैव परस्य ब्रह्मणश्शरीरतयारूपत्वम्" * इस काड में विमल विज्ञान सम्पन्न मन्दोदरी ने रावण को समझाते हुए कहा है—'राम से विरोध छोड दे ।' उन्हे मनुष्य समझ कर हठ न करें । हमारे शब्दों पर आप विश्वास करें । रघु-वशमणि विश्वरूप हैं । वेद भिन्न-भिन्न लोकों की कल्पनाएँ उनके अग-अग मे करता है । पाताल उनका पैर है, ब्रह्मलोक सिर है । और और लोक उनके अग-अग में विश्राम करते

‡ रामचरितमानस, सुदरकाड, दोहा ३५ के बाद से ४० तक, ५३ के बाद से ५६ के बाद तक, लंकाकाड, दोहा ५ के पहले से ९ के बाद तक । † रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ८ से ले कर ९ के बाद तक । $ रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ९ के बाद तक । * आनन्द मुद्रा यन्त्रालय, मद्रास, द्वारा प्रकाशित, आचार्य रामानुज का श्री शारीरक मीमासाभाष्य, पृष्ठ ६१ पक्ति ८ ।

है। उनकी भृकुटि का भयंकर विलास ही काल है, सूर्य उनका नेत्र है, घनमालाएँ उनके केशपाश है, अश्विनीकुमार उनकी नासिका है, दिन और रात उनके अपार निमेष है, दसों दिशाएँ उनके कान है, मारुत उनकी साँस है, लोभ उनका अधर है, यमराज उनके भयानक दाँत है, माया उनका हाथ है, दिक्पाल उनकी भुजाएँ है अग्नि उनका मुख है, समुद्र उनकी जिह्वा है, सृष्टि, पालन और सहार उनकी इच्छा है, अगणित वनस्पतियाँ उनके रोम है, पर्वत उनकी हड्डियाँ है, नदियाँ उनकी नसों के जाल है, समुद्र उनका पेट है और यातनाएँ उनके नीचे के अग है। इस तरह विश्वरूप प्रभु की अनत कल्पनाएँ है। शिव उनका अहकार है, ब्रह्मा उनकी वुद्धि है, चन्द्रमा उनका मन है, विराट् प्रकृति का प्रथम विकास (महत्) उनका चित्र है और चर-अचरमय भगवान् ही मनुष्य रूप मे राम है‡।

इस विश्वरूप की विराट् कल्पना को रावण के सामने रख कर मन्दोदरी ने रावण को रामविरोध से विरत करने की निष्फल चेष्टा की। उसका अभिमान उसे रामोन्मुख होने से रोकता रहा।

विमल विज्ञान को गोस्वामी जी ने आर्य-वीर-धर्म का प्राण माना है। यह बात पहले ही कही गयी है कि जगत् के पीडितो की अनासक्तिमय अहैतुकी रक्षा आर्य वीर का धर्म है। जीवन का यह विराट् आदर्श ही राम का प्राण है। मनुष्य में इस तरह की मनोवृत्ति, फलत रामभक्ति का अग बन जाती है। लकाकांड के इस विमल विज्ञान के प्रकरण मे गोस्वामी जी ने वीरता का भक्ति से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। यद्यपि यह प्रकरण युद्ध का है, तथापि इसमे भक्ति अगी है और वीर रस अग। यहाँ वीररस भक्ति के सम्मुख आत्मसमर्पण करके एक अभिपम छटा के आलोक से आलोकित हो कर विकसित होता है।

यहाँ दो तरह के वीर भाव है—एक सात्त्विक और दूसरा तामसी। जगद्रक्षक सात्त्विक वीरभाव सर्वव्यापिनी रसस्थिति तक पहुँचता है; पर लोकपीडक तामसी वीरभाव भावाभास या रसाभास की अल्पव्यापिनी स्थिति तक पहुँच कर रुक जाता है। पहला पक्ष राम का है। उसमे जगन्मोहिनी शक्ति है। दूसरा पक्ष रावण का है। कुछ राक्षमों को कुछ ही समय तक आकृष्ट करने की उसमें शक्ति है। अखिल जगत् के अत्यधिक लोगो को उसे अनुभव करके उद्वेग, घृणा और क्रोध की ही अनुभूति होती है। राम की सेना के वीरों के भीतर का सात्त्विक उत्साह और उस सेना के सैनिको का वीरदर्प भी भक्ति के आलोक मे पावन बन गया है। रावण के राक्षस मदान्धता मे केवल अपने को नर और वानर वीरों के भक्षक समझते है; पर राम के सैनिक भक्ति के प्रकाश मे मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति शरणागति और समर्पण का पवित्र भाव धारण कर लोकरक्षा के कार्य मे प्रवृत्त रहते है। वहाँ जब जामवन्त, नल-नील को सेतु-निर्माण के कार्य में भाग लेने का आदेश देते है, तब कहते है—"राम प्रताप सुमिरि मन माही, करहु सेतु प्रयास कछु नाही †।"

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १४ के पहले से १५ तक। † रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा १ के पहले।

वहाँ का आदेश भी भक्ति की विनम्रता से कोमल, पर अमिट और अमोघ है—

बोलि लिये कपि निकर बहोरी, सकल सुनहु बिनती कछु मोरी।
राम-चरन-पकज उर धरहू, कौतुक एक भालु कपि करहू ‡।

जामवन्त के इस पावन आदेश को पाते ही भक्तिपूर्ण हृदय उमड पडते है और बात की बात मे सेतु-निर्माण का कार्य पूरा कर लेते है; पर इस स्थिति मे भी उन्हे अभिमान नही है। इस अपूर्व सफलता को वे राम के प्रताप के चरणो मे समर्पित कर उसी का कार्य मानते है। अपने विमल विज्ञान के प्रभाव मे वे अभिमान से विरत और भक्ति की भावना से आप्लावित रहते है। पूरे काड भर में वीर हृदय पवित्र अनासक्ति के कारण लोकमगल विधान का कार्य करते हुए भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है और अपनी सफलताओं को अनासक्ति से राम के चरणों मे अर्पित करता रहता है।

वहाँ अगद को जब राजदूत का सम्मान मिलता है तब वे कहतें हैं—"सोइ गुन सागर ईस, राम कृपा जापर करहु † ।" सर्वसिद्ध राम से यह आदर पा कर वे इसे भक्ति का प्रसाद समझते है और भक्ति के आनन्द मे मग्न हो कर अपने भीतर अपार शक्ति का अनुभव करते है—"गएउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपदकज $ ।" और इस राम-चरण-स्मरण का प्रभाव ऐसा है कि धीरता, वीरता और बल की अपार राशि को ले कर इधर-उधर देखते हुए वे सिह की तरह आगे बढते है—"गयेउ सभा मन नेकु न मुरा * ।" मन तनिक भी विचलित नही हुआ और तेज का प्रभाव इतना कि—"उठेउ सभासद कपि कह देखी § ।" प्रत्येक सभासद उस रामतेज को सम्मान देने के लिए स्वभावत बाध्य हुआ और नम्रता से उठ खडा हुआ। सभा मे बैठते हुए भी इस वीर के भीतर वही राम प्रताप की पवित्र और अनत बलशालिनी भावमयी समाधि है—"रामप्रताप सभारि उर बैठ सभा सिरु नाइ × ।" रामप्रताप का यह वीर-प्रतीक, उजड्ड की तरह सिर उठा कर नही बैठता; पवित्र और तेजोमयी नम्रता से सिर झुका कर बैठता है।

अगद के भीतर राम के समत्व का यही विमल विज्ञानमय ज्ञान है। रावण ने अपमान भरे शब्दों में जब अगद से परिचय पूछा तब पिता का नाम बता कर बालि-तनय ने अपना परिचय दिया। जिस बालि ने छह मास तक इस रावण को अपनी भुजा के नीचे दबा कर रखा था, उसी के लिए अवज्ञा की झूठी वीरता भरे शब्दों का प्रयोग करके रावण कहता है—"रहा बालि बानर मैं जाना + ।" अपनी पराजय की भावना को छिपा कर रावण ने यहाँ वीर बनने का कपटपूर्ण अभिनय किया। इसी छल का उत्तर देते हुए अंगद ने कहा—"सुनु सठ भेद होइ मन ताके, श्री रघुवीर हृदय नहिं जाके ।✤ निश्छलता

---

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १ के पहले। † रामचरितमानस, लकाकाड, सोरठा १७। $ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १८। * रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १८ के बाद। § वही। × रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १९। + रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा २० के बाद। ✤ रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा २१ के पहले।

मे अपनी पराजय को भी न छिपाने वाले राम का मर्यादापूर्ण आचरण जिसके हृदय में स्थान न पाएगा वही छलपूर्ण व्यवहार करेगा । विमल विज्ञान की पवित्र समता की भावना मन के भीतर के छल और भेद को दूर कर निश्छलता और अभेद को पैदा कर देती है। विमल विज्ञान के समत्वपूर्ण लक्ष्य मे विश्वमगल-विधान ही निरन्तर स्थित रहता है। उसकी विजय विश्वमगल-विधान के प्रयत्न की सफलता मे तथा पराजय इसी प्रयत्न की असफलता मे रहती है। लक्ष्य की अनासक्तिमय पवित्रता के कारण उसकी जय और पराजय दोनों पवित्र होती है, अत उनमे एक को भी छिपा कर रखने की उसे आवश्यकता नही पडती । वह न तो इस प्रकार की जय से अभिमानपूर्ण प्रतिष्ठा का अनुभव करता न पराजय से लज्जा का । वह दोनों स्थितियों में निश्छल ही रहता है। रावण के छली स्वभाव को दूर करने के लिए उस छली की दुर्बलता पर आघात पहुँचाने के लिए अंगद ने उत्तर भी बडे कटु और स्पष्ट दिये ।

गोस्वामी जी की विमल विज्ञानमयी दृष्टि पवित्रता के प्रति किये गये अपमान का विरोध भी करती है। विमल विज्ञान की दृष्टि परमात्मा के अभेद की पवित्रता को जब देख लेती है, उसकी समदृष्टि की पावनता का साक्षात्कार कर लेती है तब उस पवित्रता के विरोधी को वह देखना ही नही चाहती । रावण ने जब राम का, सभा में, अपमान किया तब ऐसा पावन और तीव्र क्रोध तुलसी के अगद के भीतर पैदा हुआ कि पृथ्वी पर उनके दोनो हाथो के पटकने से भूचाल आ गया, रावण के सभासद भाग चले, सिहासन से गिरते हुए रावण ने अपने को सँभाला और उसके सब मुकुट जमीन पर गिर पड़े। उनमे से चार को अगद ने रावण के सभाभवन से राम के शिविर मे फेक दिया ‡ ।

गोस्वामी जी की विमल विज्ञान की, अभेद-दर्शन प्राप्त कर लेने वाली दृष्टि अवतार के पूर्ण महत्त्व का दर्शन कर लेती है। विमल विज्ञान की निश्छल दृष्टि अभिमान के अभाव मे परमात्मा की अखिल शक्ति को उनके मानव अवतार में देख कर अवतार को केवल मानव नही मानती; परमात्मा भी समझती है।

जब रावण ने राम को अभिमान से अपमानित करते हुए उन्हे पकड़ लाने की आज्ञा अपने राक्षसो को दी—'जियत धरहु तापस दोउ भाई †' तब उसका उत्तर देते हुए अगद ने कहा—'राम को अभिमान से मनुष्य कहते हुए तेरी जीभ गल कर गिर नही गयी $?' और जब दुबारा 'तापस' कह कर रावण ने राम को उनकी अनुपस्थिति मे अपमानित किया तब राम के प्रताप को समझ कर अंगद को बड़ा क्रोध हुआ। सभा में प्रण करके उन्होंने अपना पैर स्थिर करके रख दिया और कहा—"जौ मम चरन सकसि सठ टारी, फिरहि राम सीता मैं हारी * ।" यदि मेरा पैर तू हटा सका तो राम वापस चले जाएँगे, सीता को मैं हार जाऊँगा।

---

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ३१ के बाद। † रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ३२ के बाद। $ वही। * रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ३३ के बाद।

राम की शक्ति का इतना अपार विश्वास इस तेजस्वी दूत मे है कि सीता के हार जाने का दॉव लगा बैठता है। यह विमल विज्ञान की शक्ति है और इसके द्वारा राम का प्रताप इस पवित्र दूत को अपना माध्यम बना कर इसके द्वारा स्वय बोलने लगता है। राम प्रेम की समाधि प्राप्त करके यह राम से तदाकार हो गया है।

विमल विज्ञान प्राप्त हो जाने पर सत के स्वभाव मे सत्य के लिए दृढ आग्रह पैदा हो जाता है। जिस सत मे अभेददर्शी विमल विज्ञान उत्पन्न हो जाता है वह करोड़ों विघ्नों के सम्मुख नीति का परित्याग नही करता‡। इसी तरह की स्थिरता वीर संत अगद के पैर को प्राप्त हो गयी थी। गोस्वामी जी के शिव भी इसी विमल विज्ञान की दृष्टि से उमा से कहते है—'जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बना देता है उसके दूत का प्रण कैसे टल सकता है†।'

प्रतिष्ठा और अधिकार का अहकार विमल विज्ञान की दृष्टि को समाप्त कर देता है। रावण को अगद-काड के बाद समझाते हुए मन्दोदरी ने कहा है—'युद्ध-क्रिया मे दक्ष अगद और हनुमान् के समान जिसके योद्धा है, उन्हे प्रिय, तुम बार-बार मनुष्य कहते हो और व्यर्थ मान और ममता के अभिमान में बहे जा रहे हो $।' विमल विज्ञान की दृष्टि अनत की सर्वव्यापिनी शक्ति को अवतार के भीतर देख लेती है। इस विमल विज्ञान का उदय होते ही अवतार को मनुष्य समझने वाली सशयाकुल दृष्टि मोह से मुक्त हो जाती है—'ज्ञान उदय जिमि सशय जाही *।'

तामसी क्रोध का परिणाम सम्मोह और सात्त्विक क्रोध का परिणाम भक्ति है। गीता के अनुसार तामसी क्रोध से सम्मोह उत्पन्न होता है—"क्रोधाद्भवति सम्मोहः§।" गोस्वामी जी ने लोकमगल विधायक क्रोध और भक्ति को साथ-साथ चलते हुए दिखाया है। सात्त्विक क्रोध को विमल विज्ञानपूर्ण भक्ति नही छोडती। राम के सात्त्विक वीरो के भीतर जहाँ-जहाँ क्रोध है वहाँ रामभक्ति भी है। यह क्रोध पावन कर्तव्य-बुद्धि और लोक-मगल विधान के बीजभाव से उत्पन्न होने के कारण जागरूक है। तामसी क्रोध की तरह कर्तव्य-बुद्धि को मूर्छित करने वाला सम्मोह इसमे नही रहता।

अगद और हनुमान् के क्रोध का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—"जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर, रामप्रताप सुमिरि उर अतर। रावन भवन चढे दोउ धाई, करहिं कोसलाधीस दोहाई×।" इस तरह लकाकांड का पूरा युद्ध राम की सेना के भीतर भक्ति की बाढ़ से एक सात्त्विक पवित्रता प्राप्त करके जागरूक उत्साह, क्रोध, घृणा इत्यादि के सात्त्विक सस्कारों से लोकमंगल विधान करता हुआ उपासना की पूर्ण पवित्रता से आलोकित है। इस आलोक से निशाचरों का हृदय भी पवित्र हो जाता है।

---

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ३४। † रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ३४ के बाद। $ रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ३६ के बाद। * रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ४६ के बाद। § गीता, अध्याय २, श्लोक ६३। × रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ४३ के बाद।

गोस्वामी जी ने विमल विज्ञान और तामसी भक्ति का सम्बन्ध भी चित्रित किया है। रावण के शील के भीतर की इस तामसी भक्ति की चर्चा पहले हुई है। गोस्वामी जी की विमल विज्ञानपूर्ग दृष्टि प्रायः सब राक्षसों के भीतर इसी तामसी भक्ति के शत्रुभाव को देखती है, जो अन्त तक उस शत्रुभाव को अपनी सिद्धि का साधन समझ कर रक्षित और अक्षुण्ण रखती है।

उनके शिव उमा से कहते है—'राम बड़े मृदुचित्त और करुणाकर है। निशाचर लोग वैरभाव से मेरी उपासना कर रहे है—यह बात समझ कर वे उन्हे परमगति दे देते है ‡।'

इस प्रकार गोस्वामी जी की विमल विज्ञान की दृष्टि ने सात्त्विक और तामस दोनों भावो को भक्ति की एक ही दिशा मे यात्रा करते हुए देखा है। एक प्रकार से गोस्वामी जी ने इस बात की ओर सकेत किया है कि सब जीव अपनी सबलताओं और दुर्बलताओं को ले कर उसी परम लक्ष्य (परमात्म-स्थिति) की ओर अग्रसर होने का प्रयास कर रहे है। उसके आकर्षण से कोई बचा हुआ नही है।

गोस्वामी जी परम्परागत इस सिद्धान्त को स्वीकार करते है कि सम्मोह के कारण सत्य का दर्शन नही हो पाता। मेघनाद के सम्मोह का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी उसके मायायुद्ध का वर्णन करके अन्त मे कहते है—'जिसकी प्रबल माया के वश मे ब्रह्मा और शिव, छोटे और बड़े सब रहते हैं, उसी को खोटी बुद्धि वाला यह निशाचर अज्ञान के कारण अपनी माया दिखाता है। सम्मोह के कारण भगवान् की अनत शक्ति को नही समझ पा रहा है †।'—"सम्मोहात् स्मृति विभ्रम. $।"

विमल विज्ञान की दृष्टि से अवतार की दुर्बलताओं के रहस्य का भी गोस्वामी जी ने साक्षात्कार किया है। समत्व के अनत आदर्श, परमात्मा के भीतर अवतार के शरीर मे शोक इत्यादि जो भाव दिखाई पड़ते है वे सब पवित्र रहते है, और आदर्श मनुष्य मे उनकी जो स्थिति होती है उसी का चित्र वह मनुष्य के सामने रखता है। भगवान् के भीतर ये सब भाव किसी न किसी प्रकार भक्त की रक्षा के लिए ही उत्पन्न होते है और नर-शरीर मे रह कर वह यही दिखाना चाहता है कि आदर्श शील-वाला मनुष्य भी अपने भक्त की रक्षा के लिए ये प्रेरक भाव अपने हृदय मे धारण करता है। अवतार की ये दुर्बलताएँ भी पवित्र होती हैं। भक्त पर कृपालु रहने के कारण ही उसकी रक्षा के लिए वह अपने भीतर इन पवित्र दुर्बलताओं को स्थान देता है। "ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् *" गीता के अनुसार अनत समत्व प्राप्त परमात्मा के भीतर समदृष्टि भक्त के लिए अधिक कृपा रहती है। लक्ष्मण को शक्ति लगने के बाद के रामविलाप की आलोचना करते हुए गोस्वामी जी के शिव उमा से कहते है—"उमा एक अखंड रघुराई, नरगति भगत कृपालु देखाई §।" इस चौपाई मे ऊपर के विवरण के सम्पूर्ण तत्त्व मिल जाते हैं।

‡ रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ४४ के बाद। † रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ५१। $ गीता, अध्याय २, श्लोक ६३। * गीता, अध्याय ४, श्लोक ११। § रामचरित-मानस, लंकाकांड, दोहा १ के पहले।

गोस्वामी जी के अनुसार घोर तमोगुणी शील में भी किसी अश तक विमल विज्ञान की स्थिति सभव होती है। त्रिगुणात्मिका सृष्टि मे किसी भी एक गुण का सर्वथा अभाव नही होना। इसी नियम के आधार पर घोर तमोगुण के भीतर भी सात्त्विकता की एक क्षीण और पावन किरण बाकी रह जाती है। 'कुम्भकरण' का शील इसी तरह का है। एक दिन जाग कर असख्य महिषों को खा कर और घडों शराब पी कर छह मास के लिए सो जाने वाले इस घोर तामसी राक्षस के भीतर भी विमल विज्ञान का पावन प्रकाश अपनी क्षीणता मे विद्यमान है। सीता-हरण का समाचार रावण से पा कर वह कहता है—"जगदम्बा हरि आन अब सठ चाहत कल्यान ‡" और सीता को वापस कर देने की राय देता है। राम के अनत शील, शक्ति और सौन्दर्य की चर्चा करके वह कहता है—'मुझे पहले जगाते तो मैं अधिक अच्छी राय देता; अब तो परम सुन्दर और 'तापत्रयमोचन' को देख कर अपनी आँखे शीतल करने जाता हूँ † ।'

उसकी इस दशा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते है—"राम-रूप-गुन सुमिरत मगन भयेउ छन एक। रावनु माँगेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक $ ।"

समत्व-सम्पन्न राम के अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य ने इस घोर तमोगुणी के जीवनक्षणों को भी कभी-कभी प्रभावित किया ही था। वह भी इस प्रभाव से नही बचा था। घोर तमोगुण के अगणित क्षणों के भीतर के एक क्षण के विमल विज्ञान के समत्व में लीन हो कर दूसरे ही क्षण मे वह 'अनेक महिष' और 'कोटि घट मद' माँगता है।

विमल विज्ञान की दृष्टि से गोस्वामी जी ने भक्ति के भीतर सासारिक सम्बन्धो की स्थिति भी निर्धारित की है। कुम्भकर्ण और विभीषण के समान राक्षस भी अपनी समत्व की दृष्टि के भीतर पारिवारिक सम्बन्ध का निर्वाह बहुत दूर तक करते है। अपने परिवार के लोगों के प्रति सत्य और निश्छल आचरण को वे रामभक्ति का ही अग मानते है। विभीषण ने राम-विरोधी रावण का साथ बहुत दूर तक दिया; पर जब इस साथ का अर्थ रामविरोध ही हो गया तब वे राम की शरण मे चले गये। राम-विरोधी भाई का साथ छोड़ दिया। कुम्भकर्ण ने भाई के प्रति अपने कर्तव्य को और रामभक्ति को जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने साथ रखा। भाई के लिए राम से लड़ा पर राम की भक्ति को अपने हृदय से नही जाने दिया। युद्धक्षेत्र के मार्ग पर जाते हुए कुम्भकर्ण को जब विभीषण ने प्रणाम किया और कारणवश अपनी राम-शरणागति का समाचार दिया तब कुम्भकर्ण ने कहा—'सुनो पुत्र, रावण काल के वश में है। वह आदर्शमय समत्व-सम्पन्न रामभक्ति का परामर्श कैसे मान सकता है। शोभा और आनन्द के समुद्र राम की भक्ति पा कर तुमने वश को उज्ज्वल कर दिया है। कपट छोड़ कर मन, वाणी और कर्म से रणधीर राम की सेवा करना।' इस तरह समत्व-प्राप्त बड़े भाई ने छोटे भाई को, युद्धक्षेत्र पर लंका और रावण इत्यादि से सम्बद्ध सब भावों को, निश्छल हो कर राम की सेवा

‡ रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ६२। † रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ६२ के बाद। $ रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ६३।

मे अर्पित कर देने की आज्ञा दे दी और लोकमंगल विधान की योजना मे योग दिया। परमभक्ति की इस साधना के साथ विभीषण को उन्होंने 'परम सिखावन' दिया, पर परम-भ्रातृप्रेम की रक्षा के लिए राम के बाणों को अपने प्राण अर्पित कर मुक्त हो गये ‡ ।

इस तरह इस वीर ने परिवार के प्रति अपने निश्छल प्रेम की साधना से पारिवारिक स्नेह को रामभक्ति का रूप दे दिया और राम के आदर्शों की विमल विज्ञानपूर्ण भावना को अपने हृदय मे स्थान दे कर परिवार-प्रेम और राम-भक्ति की पावनता के प्रकाश को एकाकार करके आत्म-विसर्जन किया।

विमल विज्ञानपूर्ण अपनी इस समत्वपूर्ण भक्ति की दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् के सत्त्व, रजस् और तमस् के प्रसार के बीच गोस्वामी जी ने रामभक्ति के पावन आलोक का दर्शन किया है।

गोस्वामी जी की विमल विज्ञान की प्रेममयी समत्व दृष्टि, भयकर युद्ध मे अनत शक्तिवान् के प्रयास का रहस्य भी जानती है। इस बात में सन्देह हो सकता है कि सृष्टि और सहार की शक्ति रखने वाला अनत शक्तिवान् ईश्वर अपनी इच्छामात्र से प्रलय और सृष्टि कर सकता है; फिर उसे अवतार ले कर इतना भयकर युद्ध करना क्यों अभीष्ट है।

कुम्भकर्ण की भयानक समर-शैली को देख कर गोस्वामी जी के शिव ने इस तरह के सदेह का अनुमान करके, उसका उत्तर उमा को दिया है—'जिस तरह सर्पों के बीच मे गरुड खेलते रहते है, उसी तरह 'रघुपति' भी नरलीला करते है। नही तो जिसकी भृकुटि के भगमात्र से काल की भी मृत्यु हो सकती है, उसे ऐसी लडाई शोभा देती है? इन युद्धों के द्वारा भगवान् की कीर्ति का विस्तार होता है और उसका ध्यान करके ससार का मनुष्य जगद्द्वन्द्वो पर विजय प्राप्त करके मुक्त हो जाता है † ।'

अवतारी परमात्मा नररूप में युद्ध मे भाग ले कर भी युद्धभूमि के आदर्शों का प्रचार करता है। वह पवित्र धर्मयुद्ध की लोकमंगल विधायिनी आवश्यकता का प्रदर्शन करता है और इस बात को आदर्श की तरह मनुष्य के सामने प्रस्तुत करता है कि सत्य के लिए, लोकरक्षा के पावन कर्तव्य का पालन करने के लिए, विश्वप्रेम के समत्व को अपने हृदय में स्थान दे कर भयानक से भयानक स्थितियों का भी वीरता से सामना करते हुए मनुष्य को विचलित नही होना चाहिए।

केवल समत्व का चिन्तन ज्ञान का विषय है, पर समत्व की विश्वप्रेममयी भावना विमल विज्ञान का क्षेत्र है। इसी भावना को ले कर अवतारी रामब्रह्म लोकमगल विधान के लिए आदर्श धर्मयुद्ध का प्रचार करते हैं। शान्ति के प्रयोग से अन्तत. जहाँ कार्यसिद्धि नही होती वहाँ दुष्टों के प्रति वे दण्डनीति का प्रयोग करते हैं। इसी धर्म के आलोक से विभूषित राम की तेजस्विनी कान्ति का वर्णन करने से तुलसी का कवि अपने को अक्षम

---

‡ रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ६३ के बाद से ६४ तक। † रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ६५ के बाद।

अनुभव करता है—"कह दास तुलसी, कहि न सक छवि सेप, जेहि आनन घने ‡" अपने सहस्र मुख से शेष भी, गोस्वामी जी के अनुसार, उस सौन्दर्य का वर्णन नही कर सकता। "चरित राम के सगुन भवानी, तरकि न जाहि बुद्धि बल बानी † ।" अनत शक्तिवान् जब अनत प्रेम को ले कर ससार मे खेलने आता है तब सीमित शक्ति और प्रेम के भीतर यात्रा करने वाले बल, बुद्धि और वाणी उसकी थाह नही पा सकते । उसके कार्यो को नही समझ सकते, उसकी कृपा से विमल विज्ञान का अनत प्रेम जिसे प्राप्त हो जाता है वही उसे पहचान सकता है।

राम के इस अनत और निश्छल प्रेम के कारण ही भयानक युद्ध के अन्त मे मेघ-नाद निश्छल हो गया तथा लक्ष्मण और राम का ध्यान कर उसने मुक्ति प्राप्त की— "मरती बार कपट सब त्यागा, रामानुज कहँ, रामु कह अस कहि छाडेसि प्रान। धन्य-धन्य तब जननी, कह अगद हनुमान $ ।" अन्त मे पवित्र हृदय से लक्ष्मण और राम से मिलने का पवित्र ध्यान ले कर उसकी आत्मा अकलुष हो गयी।

अपने घोर तामसी स्वभाव के कारण रावण विमल विज्ञान प्राय: खो चुका था। केवल ज्ञानाभास उसके भीतर था। युद्ध के लिए विदा होते समय वह अपनी पत्नियों को जगत् के नश्वर रूप का ज्ञानोपदेश करता है, पर स्वय अज्ञान के अन्धकार से व्याप्त हो कर मर्यादा पुरुषोत्तम से युद्ध करने के लिए प्रस्थान करता है—"नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदय विचारि" * इसो पर गोस्वामी जी ने कहा है—"तिन्हहि ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ भावन § ।"

रावण की यात्रा के समय गोस्वामी जी ने रावण के लिए अपशकुनों का वर्णन करके उसके भीतर के विमल विज्ञान के अभाव की ओर बड़ा स्पष्ट सकेत किया है—क्या उस मनुष्य को स्वप्न मे भी सपत्ति, शुभशकुन और मन की विश्रान्ति मिल सकती है, जो मोहवश 'भूत-द्रोह-रत', 'कामरत' और 'रामबिमुख' हो गया हो × । 'भूत-द्रोह-रत' 'काम-रत' और 'रामबिमुख' विशेषणों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि भूत-स्नेहरत, अनासक्त और मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शो मे लीन विश्वप्रेमी मनुष्य ही विमल विज्ञानी है और रावण इस अवस्था से बहुत दूर और विरुद्ध दिशा मे जीवन-यात्रा कर रहा था।

विमल विज्ञान की दृष्टि से धर्मयुद्ध के रहस्य को गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है। युद्ध मे रथ का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। रावण को रथ पर और राम को रथहीन देख कर विभीषण बड़े अधीर हुए और प्रेम ने राम से एक प्रश्न पूछने के लिए उन्हें बाध्य किया। उन्होंने पूछा कि बिना 'पदत्राण, कवच और रथ के आप बलवान् रावण को कैसे जीत सकेंगे + ?'

---

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ७१ के पहले का छद। † रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ७३ के बाद। $ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ७६ और उसके पहले। * रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ७७। § रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ७७ के बाद। × रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ७८। + रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा ७९ के बाद।

राम ने जो उत्तर दिया, उसमे विमल विज्ञानपूर्ण एक सच्चे धर्मयुद्ध का पूर्ण चित्र है। उन्होने कहा है—'जिससे मनुष्य की सच्ची जीत होती है वह रथ ही दूसरा है। शौर्य और धैर्य उस रथ के चक्र होते है, सत्य और शील दृढ ध्वजा और पताका बनते है, बल, विवेक, दम और परहित उसके घोड़े होते है, क्षमा, कृपा और समता लगाम की रस्सियाँ बनते है; परमात्मा का भजन ही उस रथ का योग्य सारथी होता है; विरति ही उस रथ के रथी की ढाल का काम करती है; सन्तोष कृपाण का काम करता है; दान की प्रवृत्ति उसका परशु बनती है; बुद्धि उसकी प्रचड शक्ति का काम करती है; श्रेष्ठ विज्ञान उसका कठोर धनुष होता है; अमल और अचल मन उसका तूणीर होता है; शम, यम, नियम इत्यादि उसके विभिन्न प्रकार के बाण होते है; ब्राह्मण और गुरु की पूजा उसके लिए अभेद कवच का काम करती है। इनके समान विजय का और कोई दूसरा उपाय नही है। ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास होता है उसके लिए जीतने का कोई शत्रु बच ही नही सकता।

ससार रूपी महादुर्दम शत्रु को वही वीर जीत सकता है, जिसके पास ऐसा दृढ रथ हो‡।

जीवन के विमल विज्ञान के, समत्वदर्शक, आदर्शो से निर्मित इसी धर्ममय रथ का उपयोग करके राम, रावण से युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। लोकमगल विधान के लिए ऊपर के गिनाये हुए समग्र आदर्शो की आवश्यकता होती है। विमल विज्ञानी सम्पूर्ण विश्व की रक्षा की समत्व भावना से अपने भीतर इन सब आदर्शो की सिद्धि प्राप्त करके जीवन-सघर्ष मे प्रस्तुत होता है। राम की युद्धनीति इतने विराट् आदर्श के आधार पर बनी हुई थी और एक विराट् समत्वपूर्ण विश्वप्रेम का आदर्श विश्व के सामने रख रही थी। 'करुणा-सिन्धु', 'आरतबन्धु' जब 'जनरच्छक' बन कर युद्ध मे प्रवृत्त होता है, तब उसका युद्ध भी परमधर्म बन जाता है†।

अनंत शक्तिवान्, विमल विज्ञानपूर्ण धर्मयुद्ध करते हुए अपनी शक्ति के प्रति वैराग्य-वृत्ति ही धारण किये रहता है। अनंत शक्तिवान् राम भी धर्मयुद्ध मे प्रवृत्त होते हुए निरभिमान रहते हैं। उन्हे किसी शक्ति के सहारे की, किसी उपासना की आवश्यकता नही रहती, पर ससार मे मर्यादा की स्थापना के लिए वे भी युद्धारम्भ मे अनासक्त और समत्वमय ब्राह्म-शक्ति का पवित्र ध्यान कर लेते है। इन्द्र के रथ पर सवार हो कर सब श्रान्त लोगों को रावण से अपने द्वन्द्वयुद्ध की वे सूचना देते है। इसके बाद गोस्वामी जी कहते है—"अस कहि रथ रघुनाथ चलावा, बिप्र-चरन-पकज सिरु नावा$।" विप्र के भीतर पवित्र अनासक्ति और समत्व बुद्धि रहती है। इसी पावनता का ध्यान करके राम धर्मयुद्ध मे प्रवृत्त होते है। अपनी अनत शक्ति के प्रति पवित्र वैराग्य की भावना धारण करके राम ने अपने विमल विज्ञान का परिचय दिया है। विमल विज्ञान मनुष्य को परम नम्र बनाता है। अनत शक्तिवान् का ब्राह्मण-चरणों में झुकना इसी परम नम्रता का सूचक है।

---

‡ रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ७९ के बाद से दोहा ८० तक। † रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ८२ के पहले का छद। $ रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा ८९ के बाद।

राम की विस्तृत युद्धलीला मे भक्त विभीषण के विमल विज्ञानमय प्रेम की भी परीक्षा हुई। काटने पर रावण के सिरों के समूह बढ़ते चले जाते थे। युद्ध के अन्त का कही पता नही था। राम के असख्य प्रयत्नों के बाद भी रावण मर नही रहा था। अपनी असमर्थता का अभिनय करके राम ने विभीषण की ओर देखा। यही उसके समत्वमय विमल विज्ञानयुक्त रामभक्ति की परीक्षा थी। लोकमगल विधान की योजना मे उसकी सहायता कहाँ तक आगे बढ सकती है, यही राम देखना चाहते थे। विभीषण इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए, रावण की नाभी के अमृत का भेद दे कर।

इसी बात को गोस्वामी जी के शिव ने उमा से कहा—'उमा, जिसकी इच्छा से काल भी मर सकता है, वही अनत शक्तिवान् भक्त के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए रावण को मारने मे देरी कर रहा था ‡ ।'

इस तरह सम्पूर्ण युद्धकांड विमल विज्ञान की दृष्टि के विकास की एक योजना है, और अपनी इस योजना को गोस्वामी जी ने राम के समत्वपूर्ण विश्वप्रेम और लोकमगल विधान की, उनकी योजना की पूर्ति के प्रयास के साथ-साथ पूरी कर लिया है। इस काड भर मे राम के अनासक्त लोकमगल विधान के प्रकाश मे प्रत्येक वीर अपने कलुष को खो कर विमल विज्ञानी हो गया है। इस यज्ञ की पूर्णाहुति रावण की तपोमयी साधना की सिद्धि मे है, जिसे राम ने उसकी मुक्ति के रूप मे उसे दिया।

अखिल विश्व के लोकमगल विधान के अन्त मे राम का लोकोपकारी रूप अपने समग्र तेज के साथ उद्भासित होता है और ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र इत्यादि सब देवता श्रद्धावनत हो कर उस तेज के सामने झुक जाते है। स्वर्ग से आ कर दशरथ ने अपने पुत्र के रूप मे अनत के असीम रूपसौन्दर्य का साक्षात्कार किया। पर अनत शक्तिवान् अपनी इस सफलता को पिता दशरथ के पुण्य का फल ही समझता है—"तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ, जीतेउ अजय निसाचर राऊ † ।" अनंत की इसी सगुण लीला के सौन्दर्य को देखने की पवित्र वासना को ले कर दशरथ के समान भक्त मुक्ति को त्याग कर जीवन का ही वरदान माँग लेता है।

पूरा लकाकाड राम की अनत पवित्र शक्ति का, युद्ध के रूप मे साकार धर्म का ही सस्करण है। यहाँ धर्म ही क्षात्ररूप धारण करके लोकमगल विधान कर रहा है और यहाँ विमल विज्ञान की समता 'बिनु विज्ञान कि समता आवइ $' सबके भीतर निर्भयता-पूर्ण भक्ति की सृष्टि कर रहा है। राम के समत्व के पावन आलोक को अपना आधार बना कर सब लोग निर्भय हो गये है। अन्त मे वानर-भालुओं से राम कहते भी है—"निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपेहु जनि काहू * ।" राम की यही अभयवरद वाणी अमोघ हो कर विमल विज्ञानपूर्ण भक्ति की निर्भयता चारों ओर पैदा कर देती है।

‡ रामचरितमानस, लकाकांड, दोहा १०१ के बाद। † रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १११ के बाद। $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ८९ के बाद। * रामचरितमानस, लंकाकाड, दोहा ११७ के बाद।

अध्याय ८

अविरल हरिभक्ति : उच्चतम जीवनदर्शन

यद्यपि रामायण के सब काडों मे प्रकरणवश आगे बढती हुई घटनाओं के प्रभाव में भक्तों ने बराबर अपने लिए भगवान् से अविरल भक्ति का ही वरदान माँगा है, पर उस अविरल हरिभक्ति के सम्पूर्ण चित्रण के लिए रामायण का अतिम काड ही उचित स्थान की तरह गोस्वामी जी के द्वारा चुना गया है। अविरल हरिभक्ति मनुष्य के जीवन के पूर्ण विकास की स्थिति है। उत्तर काड तक पहुँच कर भगवान् राम के भी जीवन का पूर्ण विकास हो जाता है, और उनके जीवन के विकास के साथ भक्त के चिन्तन और भावना के लिए भी क्रम से इतनी सामग्री मिल जाती है कि उसका शील, चिन्तन और भावना, दोनों के समाहित प्रभाव को ले कर, अविरल हरिभक्ति मे प्रवेश कर सके। षष्ठ सोपान विमल विज्ञान पूर्ण विश्वप्रेम के समत्व को मनुष्य के भीतर विकसित कर देता है। इस विकास के बाद विश्वरूप भगवान् की निरन्तर प्रवाहित होने वाली भक्ति की तरफ वह सरलता से अग्रसर हो सकता है।

अपनी इस अविरल हरिभक्ति की योजना का सकेत गोस्वामी जी ने षष्ठ सोपान के अतिम दोहे मे ही दे दिया है—'युद्ध और विजय से सम्बद्ध, रघुवीर के चरित्र को जो बुद्धिमान लोग सुनेगे उन्हे भगवान् नित्य ही विजय, विवेक और विभूति देंगे ‡।' नित्य विवेक अविरल हरिभक्ति का लक्षण है।

इसके बाद गोस्वामी जी ने फिर कहा—'कलियुग का यह समय कलुषों की निवास-भूमि है। हे मन, विचार करके देख ले, भगवान् के नाम को छोड़ कर इसमें कोई दूसरा आधार नही है †।'

इस प्रकार षष्ठ सोपान के अत मे नित्य विवेक के साथ भगवान् के नाम के नित्य आधार की ओर जाने को उन्होंने मन को परामर्श दे दिया है। निरन्तर प्रवाहित होने वाले विवेक के साथ भगवान् के नाम का निरन्तर आधार प्राप्त कर लेना ही अविरल हरिभक्ति है। इसके लिए मन को प्रस्तुत करके गोस्वामी जी सप्तम सोपान का मगल श्लोक प्रारम्भ करते है।

प्रथम मगल श्लोक मे गोस्वामी जी ने भगवान् राम का वह ध्यान किया है जिसमें उनके हृदय पर भृगु के चरण का चिह्न अकित है—"विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम् $।" ब्राह्मण के

‡ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा १२१। † वही। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, मगलाचरण, श्लोक १।

चरण का नित्य ध्यान, भगवान् के हृदय की भी अविरल भक्ति का सकेत है। विष्णु ने इस चरण को आदर्श की अविरल भक्ति के लिए ही अपने हृदय पर हमेशा के लिए चिह्न बना कर धारण कर लिया। ब्राह्मधर्म (सत्त्वगुण) के प्रकाश से निरन्तर आलोकित छात्र-धर्म (रजोगुण) का आदर्श ही गोस्वामी जी के मानव-जीवन-विकास का आदर्श है। सत्त्वगुण से निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करके रजोगुण और तमोगुण जीवन की यात्रा के अत में यदि सत्त्वगुण के चरणों मे आत्मविसर्जन कर दें तो अविरल हरिभक्ति का उदय हो जाता है। इसीलिए यह सकेत देने के लिए क्षात्रधर्म के पथ पर चलने वाले को सत्त्वगुण-प्रधान शील दे कर गोस्वामी जी ने उनका ध्यान किया है।

इसी श्लोक में 'सर्वदा सुप्रसन्नम्' राम का विशेषण भी अविरल भक्ति की ओर सकेत करता है। आदर्श का ध्यान हृदय में रख कर निरन्तर उसकी भावना के आनन्द में मग्न रहना ही अविरल भक्ति का लक्षण है। 'कपिनिकरयुत' और 'बन्धुनासेव्यमान' विशेषण भी वानरो और लक्ष्मण की अविरल रामभक्ति का चित्र प्रस्तुत करते है। 'जानकीश' विशेषण सीता के हृदय मे राम के निरन्तर ध्यान की ओर सकेत करना है। 'अनिशं नौमि' से कवि स्वय अपनी अविरल रामभक्ति का सकेत देता है ‡।

दूसरे श्लोक में कोशलेन्द्र के मजुल चरणकमल को चिन्तक के मनरूपी भ्रमर का साथी कह कर भी गोस्वामी जी ने अपनी अविरल हरिभक्ति की योजना को बीज काड के आरम्भ मे ही सुरक्षित कर लिया †।

अविरल भक्ति में डूबे हुए भरत से मिलने के लिए भगवान् राम लंका से प्रस्थान कर चुके हैं। उन्होंने अयोध्या पहुँचने मे बड़ी शीघ्रता की है, क्योंकि अवधि के बाद एक क्षण भी भरत के समान भक्त जीवित न बचेगा। विभीषण के आतिथ्य को अपार नम्रता से स्थगित करते हुए भगवान् राम ने कहा—"बीते अवधि जाउं जौं जियत न पावउं बीर $" और भरत के स्नेह का ध्यान करके वे प्रेममग्न हो गये। सतर्कता के लिए उन्होने सन्देश ले कर हनुमान् को पहले ही भरत के पास भेज दिया था। भरत की अविरल भक्ति यहाँ तक पहुँची थी कि नियत समय के बाद राम के एक क्षण के वियोग को भी वे नही सह सकते थे। वे यही सोचते भी हैं—"बीते अवधि रहिहि जौं प्राना, अधम कवर्न जग मोहिं समाना *" राम के विरह सागर में भरत का मन निरन्तर मग्न रहता था—"राम बिरह-सागर मंह भरतु मगन मनु होत §।"

अयोध्या के लोग भी निरन्तर चिन्तन करते हुए राम के वियोग से क्षीण शरीर हो गये थे—"कृसतन राम बियोग ×।"

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, मंगलाचरण, श्लोक १। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, मंगलाचरण, श्लोक २। $ रामचरितमानस, लकाकाड, दोहा ११६। * रामचरित-मानस, उत्तरकांड, दोहा १ के पहले। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १। × रामचरितमानस, उत्तरकांड, मंगलाचरण के बाद का दोहा।

हनुमान् जब पहुँचे तब भरत को उन्होंने कुशासन पर, क्षीण शरीर ले कर जटाओं के मुकुट के साथ बैठे हुए देखा। राम-राम जपते हुए उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहा था ‡। उनकी इस अविरल रामभक्ति को पहचान कर हनुमान् ने कहा—'आप जिसके विरह को दिन रात सोच रहे है, जिसके गुणो के समूह की पक्तियों को आप निरन्तर रटते रहते है, सज्जनों को सुख देने वाले, देवताओं और मुनियों के रक्षक वे रघुकुल तिलक सकुशल वापस आ गये † ।'

यहाँ हनुमान् के द्वारा प्रयुक्त 'दिनरात' और 'निरन्तर' शब्द भरत के अविरल रामप्रेम की सूचना देते है।

अविरल भक्ति मे भगवान् की प्रत्येक वस्तु के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। दीनबन्धु रघुपति का दास समझ कर भरत ने हनुमान् को तुरन्त सम्मानपूर्वक हृदय से लगा लिया था। प्रिय की प्रत्येक वस्तु प्रेमी को प्रिय के समान ही आकर्षक प्रतीत होती है। अनासक्तिमय क्ति के भीतर भक्त को भगवान् के सब भक्तों मे अपनी ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। इसीलिए रघुपति का दास समझ कर भरत ने हनुमान् के भीतर अपनी ही आत्मा का दर्शन कर उन्हें हृदय से लगा लिया $ ।

इसी तरह के भक्तो मे से सुमित्रा भी एक भक्त है। अपने पुत्र लक्ष्मण से वे इसलिए नही मिलती कि वे पुत्र है, पर इसलिए मिलती है कि उस पुत्र के भीतर 'राम चरन-रति' है—"भेटेउ तनय सुमित्रा रामचरनरति जानि * ।"

गोस्वामी जी के अनुसार अविरल हरिभक्ति के लिए सम्पूर्ण जीवन के सब क्षणों का उत्सर्ग करना पडता है। हनुमान्, जाम्बवान्, सुग्रीव और विभीषण इत्यादि ने इसी तरह का उत्सर्ग किया था। इसीलिए मुनि वसिष्ठ से परिचय कराते हुए राम ने कहा—"मम हित लागि जनम इन्ह हारे, भरतहु तें मोहि अधिक पियारे§ ।"

अविरल हरिभक्ति के प्रत्येक क्षण का सुख नवीन मालूम होता है। राम के कृपा भरे उपर्युक्त शब्दों को सुन कर सब लोग प्रेममग्न हो गये और उस तल्लीनता के प्रत्येक क्षण का आनन्द उन्हे नवीनतम प्रतीत हो रहा था—"सुनि प्रभु बचन मगन सब भये, निमिष निमिष उपजत सुख नये × ।"

विश्वास और एकनिष्ठता अविरल हरिभक्ति के मुख्य अग हैं। राज्याभिषेक के बाद वेदों ने राम की स्तुति करते हुए कहा है—'विश्वास करके और अन्य सब आशाओं को छोड़ कर जो आपके दास हो रहते हैं, वे बिना श्रम संसार के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते है। ऐसे ही स्वामी की हम स्तुति करते है + ।' विश्वास और एकनिष्ठता गोस्वामी जी के

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १ के बाद। $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १ के बाद। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ६। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ८ के पहले। × वही। + रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२ के बाद का छद, पक्ति ११–१२।

भक्ति साहित्य के मूल आधार है और इनका ध्यान गोस्वामी जी से कभी दूर नही होता। वे इस मूल को बार-बार विनय-पत्रिका मे और दोहावली इत्यादि ग्रथों मे दुहराते है।

गोस्वामी जी ने अपनी अविरलभक्ति की योजना के भीतर ससार रूपी अनादि तरु के रूप मे वेदों से भगवान् का ध्यान कराया है। राज्याभिषेक के बाद वेदों ने राम की स्तुति करते हुए उनसे कहा है—'संसाररूपी महाविटप के रूप मे रहने वाले आपको हम नमस्कार करते है। इस विराट् तरु का मूल अज्ञात तथा अव्यक्त है। चारों वेद इसकी त्वचा है। छह शास्त्र इसके मुख्य स्कन्ध है। प्रकृति के महत् इत्यादि पच्चीस विकार इसकी शाखाएँ, घने पत्र और पुष्प है। इसमे कटु और मधुर (सुख और दु ख) दोनों प्रकार के फल लगते है। केवल एक वल्ली (माया) इसका सहारा ले कर झूलती रहती है ‡।'

आचार्य रामानुज के विश्वशरीर ब्रह्म का यह एक दूसरे प्रकार का रूपक है। ब्रह्म के साथ विश्व की भावना रख कर गोस्वामी जी उसे सगुण बनाये रखते है। अविरल हरिभक्ति मे विशिष्ट के आधार पर भगवान् का सगुण ध्यान और अद्वैत के आधार पर विशुद्ध निर्गुणमतों के लिए भी उपासना की पद्धति निर्धारित रहती है। वेदों ने राम की स्तुति करते हुए उनसे कहा है—'जो लोग अज, अद्वैत, अनुभवगम्य और मन की पहुँच के बाहर रहने वाले ब्रह्म का ध्यान करते है, वे ऐसा कहे और जाने; हम तो आपके सगुण यश को ही नित्य गाया करते हैं।' 'कहे' और 'जाने' से अद्वैत मत के प्रति उदारता तथा 'सगुण यश नित्य गाया करते हैं'—'सगुन जस नित गावही'—से सगुण ब्रह्म के प्रति अविरल भक्ति व्यक्त होती है †।

गोस्वामी जी की अविरल हरि भक्ति की योजना के भीतर जो सगुण का ध्यान होता है, उसमे माया के विकार नही रह सकते। माया के नियामक ब्रह्म का सगुण ध्यान माया की सहायता न करके उसका नियमन ही करता है, साधक को माया व प्रभाव से दूर ले जाता है। वह माया के सब विकारों के ऊपर उठ कर 'करुनायतन' 'सदगुनाकर'—पवित्र गुणों के समूह, राम के चरणों का अनुराग, अपने मन, वाणी और कर्मो के द्वारा, अपने हृदय में उत्पन्न कर लेता है। उसके मन वाणी और कर्म राम को छोड कर अन्यत्र कही नही जाते $। अविरल हरिभक्ति की प्रक्रिया मे सगुण साधक के लिए योग अपरिहार्य नही है। राज्याभिषेक के समय आये हुए शिव ने भगवान् राम की स्तुति करते हुए कहा—'हे अनत, आपकी कथा जिनका सहारा बन जाती है, उनके लिए सत 'सदा' के लिए प्रिय हो जाते है। जिनके भीतर राग, लोभ, मान और मद नही रह जाते उनके लिए सम्पत्ति और विपत्ति की स्थितियाँ एक समान ही हो जाती है। इसी कारण आपका सेवक योग को त्याग देता है और आपके अवलम्ब का 'नित्य सहारा' ले कर आनन्द मे मग्न रहता है। आपसे प्रेम करके उस प्रेम के नियम को 'निरन्तर' अपने साथ रख कर अपने शुद्ध

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२ के बाद का छद, पंक्ति १७ से २० तक।
† वही, पंक्ति २१–२२। $ वही, पक्ति २३–२४।

हृदय में आपके चरणकमलों का ध्यान किया करता है।' उपरि प्रयुक्त 'सदा', 'नित्य सहारा' तथा 'निरन्तर' शब्द अविरल हरिभक्ति के व्यजक है ‡ ।

अविरल हरिभक्ति मे योग की आवश्यकता नही रह जाती । जब तक मन चचल हो कर ससार के द्वन्द्वों मे उलझा रहता है तभी तक उसकी चचल वृत्तियों का निरोध करने के लिए योग की आवश्यकता रहती है । जब अविरल भक्ति प्राप्त हो जाती है तब मन निरन्तर राम के ध्यान के आनन्द मे, मन, वाणी और कर्म से लीन रहता है । ऐमे साधक का मन कभी चचल रहता ही नही । अतएव उसके लिए योग की आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है ।

अवतारी सगुण ब्रह्म को दास पर अतिशय प्रेम रहता है । सम्पूर्ण भक्ति सम्प्रदाय मे यह बात बार-बार दुहरायी गयी है कि भगवान् अपने दास पर सबसे अधिक प्रेम करता है । दास का लक्षण यही होता है कि उसे ससार के सुख से अधिक आकर्षक राम के प्रेम का आनन्द मालूम पडता है। इस प्रेमानन्द के सामने वह ससार के आनन्द को त्याग देता है।

अयोध्या मे आये हुए वानरों की यही दशा थी। मर्यादापुरुषोत्तम के साथ उन्हे ब्रह्मानन्द का सुख मिल रहा था । भगवान् के चरणों की प्रीति उनके भीतर इतनी थी कि वे एक प्रकार की आनन्दसमाधि मे खो गये थे । दिनरात कैसे बीत गये इसका उन्हे पता तक न था । इस तरह छह मास बीत गये । घर का स्मरण उन्हे स्वप्न तक में न हुआ † ।

छह महीने के बाद भगवान् राम ने स्वयं उन्हे स्मरण कराया और कहा—'तुम लोगो ने मेरी बडी सेवा की । मुख पर तुम्हारी बड़ाई किस तरह करूँ । इसलिए तुम मुझे और अधिक प्रिय हो कि मेरे लिए घर का सुख भी तुम लोग भूल गये । भाई, राज्य, सम्पत्ति, वैदेही, शरीर, घर, परिवार और स्नेही मुझे सब प्रिय है । पर तुम्हारे समान नही । मै झूठ नही कहता । यह तो मेरी प्रतिज्ञा है । यह तो नीति है कि सेवक सबको प्रिय लगते है, पर मुझमे दास पर अधिक प्रेम है । अब तुम लोग घर जाओ और दृढ नियम से मेरा भजन करना । मुझे सर्वगत और सर्वहित समझ कर मेरे लिए सदा अत्यधिक प्रेम रखना $ ।'

अवतारी ब्रह्म, दास के लिए अपना अतिशय प्रेम और उसका कारण दास के सम्मुख रख कर उसके भीतर अपने लिए सदा अतिशय प्रीति रखने का आदेश देता है, पर गृहस्थ को गृहत्याग का आदेश नही देता । गोस्वामी जी की भक्ति गृह मे रह कर अनासक्ति योग से भगवत्प्रेम उत्पन्न करके सिद्ध हो जाती है । 'सदा' शब्द से अविरल भक्ति का आदेश दे कर अवतारी ब्रह्म अपने दासों को घर वापस भेज देता है ।

गोस्वामी जी के अनुसार रामचरित ही अविरल हरिभक्ति की आधार-भूमि है । रामराज्य की आदर्श स्थिति का वर्णन करके गरुड़ के कागभुशुडि ने कहा—'भगवान् की

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १३ के बाद का छद, पक्ति १२ से १५ तक ।
† रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १५ । $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १५ के बाद से दोहा १६ तक ।

अनत महिमा को समझ कर केवल इतना ही वर्णन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि हम उन्हे बिलकुल हीन बना कर देख रहे है। अनत शक्तिवान् क्या-क्या नही कर सकता। उसके चरित के आधार से जो लोग उसकी महिमा को जान लेते है, उनके भीतर इस गौरव के लिए अविरल प्रेम उत्पन्न हो जाता है। उस महिमा को जान लेने के बाद शान्त और दान्त शील वाले मुनि लोग उस अनत पवित्रता को निरन्तर अपने भीतर जागरूक रखने के लिए उस पवित्रता के केन्द्र अवतारी रामब्रह्म की पवित्र लीलाओं का निरन्तर वर्णन करते रहते है। यह निरन्तर कीर्तन अविरल हरिभक्ति का लक्षण है‡।

गोस्वामी जी की अविरल हरिभक्ति की योजना मे सीता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सीताराम की अपनी उपासना के भीतर उन्होंने सीता को राम की अविरल भक्ति धारण करने वाली एक अनादि और अनत शक्तिमती उपासिका के रूप मे देखा है। मर्यादा पुरुषोत्तम का निरन्तर हर प्रकार से अनुसरण करने वाली यह नारीशक्ति अपने को स्त्रियों के आदर्श की उच्चतम भूमि पर रख कर राम के योग्य बनाए रखती है। अपने विश्वरक्षक पति के साथ वह भी विश्वरक्षिका की तरह अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती रहती है। मातृसेवक राम के साथ वह निरभिमान हो कर माताओ की सेवा करती है तथा अपने जीवन के प्रत्येक क्षण मे राम के आदर्श मे डूब कर वह राम के अविरल प्रेम की साधना करती रहती है।

गोस्वामी जी ने कहा है—'लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी के द्वारा वदित, निरन्तर अनिन्दित शीलवाली जगदम्बा, जिसकी कृपा के कटाक्ष की चितवन देवता लोग चाहते रहते है, वही अपने अनत ऐश्वर्य का सवरण करके, अपने को सीमित और नम्र बना कर राम के चरणों की रति की साधना करती रहती है†।'

इस तरह गोस्वामी जी की सीता अविरल हरिभक्ति की साधना करने वाली राम की अनतशक्ति का नारी अवतार है। वह मानवी हो कर उतनी हो गौरवशालिनी है जितने महान् मर्यादापुरुषोत्तम मानव राम है।

गोस्वामी जी ने अपनी अविरल हरिभक्ति के प्रकाश मे ब्रह्म के सगुण-निर्गुण रूप का कई बार और कई प्रकार से वर्णन किया है। उन्होंने इसी सोपान मे कहा है—

'जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों की शक्ति के बाहर है, जो अजन्मा तथा माया, मन और गुणों की पहुँच के भी बाहर है वही सच्चिदानन्दघन राम, उदार नरलीला करता रहता है। अनत अस्तित्व, अनत आनन्द और अनंत चैतन्य का स्वामी सीमा के भीतर आ कर मनुष्य की मर्यादा का मार्ग दिखाता है$। इस तरह अनत को सीमा के भीतर आदर्शमानव के रूप मे देख कर गोस्वामी जी अपने हृदय के प्रेम को उसके चरणों में निरन्तर अर्पित करते रहते हैं।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा २१ के बाद। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा २४ और उसके पहले। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा २५।

गोस्वामी जी ने अविरल हरिभक्ति-सम्पादन के इस विश्वव्यापी महायज्ञ को विविध क्षेत्रों मे चलते हुए देखा है। इस अन्तिम सोपान मे गोस्वामी जी ने विश्वव्यापिनी अविरल हरिभक्ति की धारा बहा दी है। अलग-अलग क्षेत्रों से अविरल रामभक्ति इस सोपान मे प्रवाहित हो रही है। अयोध्या के बालक शुक सारिकाओं को वही राम का नाम पढा रहे है। प्रात काल स्नान करके सरयू के किनारे अयोध्या के मनुष्य हनुमान् से बार-बार रामचरित सुनते है। अयोध्या के सब नर-नारी उसी रामप्रेम के आनन्द मे मग्न दिखाई पडते है। योगी, विरागी, ब्रह्मज्ञानी सब अवतारी ब्रह्म की लीला के सौन्दर्य में मग्न है ‡।

पृथ्वी से ले कर ब्रह्मलोक तक एक ही आनन्द छाया हुआ है। नारद नित्य आते है और राम की लीला देख कर ब्रह्मलोक जाते हैं—"नित नव चरित देखि मुनि जाही, ब्रह्मलोक सब कथा कहाही। सुनि बिरचि अतिसय सुख मानहि, पुनि-पुनि तात करहु गुन गानहिं" ब्रह्मानन्द मे मग्न सनकादि ऋषि भक्त नारद की प्रशसा करते है और समाधि भूल कर ये परम अधिकारी अपने अनत निर्गुण ब्रह्म की नरलीला के आख्यान सुनते है। निर्गुण के मानवोचित मर्यादित गुणों को सुन कर वे समाधि भूल जाते है। उनके हृदय की निर्गुण पवित्रता सगुण पवित्रता के रूप मे परिवर्तित हो जाती है $।

गोस्वामी जी ने सनकादि की इस अवस्था की चर्चा करते हुए कहा—जीवन-मुक्त, ब्रह्मलीन ये ुनि भी ध्यान छोड कर चरित सुनते है। जो लोग राम की कथा से प्रेम नही रखते उनके हृदय पत्थर है। उनमे मर्यादाएँ कभी अकुरित नही हो सकती *।

सनकादि प्रकरण मे विशेष कर तथा और स्थानों मे भी गोस्वामी जी ने निरन्तर, निर्गुण भक्ति की अपेक्षा अविरल सगुणभक्ति को ही अधिक स्वाभाविक और प्रभावशालिनी सिद्ध किया है।

तेजपुज, शुभगुण और शीलवाले, सदा ब्रह्मानन्द में लीन रहने वाले, अतिप्राचीन पर बालक रूप मे रहने वाले, विगतविभेद, समदर्शी दिगम्बर वेश में रहने वाले सनकादि भी रामचरित के प्रेमी है। ये ऋषि भगवान् राम से मिलने आते हैं। उन्हें देखते ही भगवान् राम ने उनका स्वागत किया, पर अनंत सौन्दर्यवान् के रूप को देख कर मुनियों का निर्गुण ज्ञान भूल गया। वे अपने मन को न रोक सके। यहाँ सगुण की निर्गुण पर विजय हो गयी। सगुण ब्रह्म का यही अनत सौन्दर्य जगत् के रूपाकर्षण से मन को मुक्ति दे देता है। सगुण के इस रूप को देख कर ऋषि सच्चे आनन्द की समाधि में डूब गये §।

इस रूप-सौन्दर्य के आनन्द की समाधि से ऋषियों को हटाने के लिए भगवान् राम ने शील के सौन्दर्य की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया और सतों के शील की चर्चा करते हुए कहा—'बडे भाग्य से आज हमे सतों का साथ मिला है। संतों के साथ से, बिना

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा २५ के बाद से दोहा २६ तक। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ४१ के बाद। $ वही। * रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ४२। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ३२ के बाद तक।

प्रयास ससार की क्षुद्रता से मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है। वह महान् हो जाता है। सत का साथ मुक्ति का पथ है और कामी का साथ ससार की तरफ जाने वाला मार्ग ‡।'

शील के सौन्दर्य की भावना बहुत दूर तक मनुष्य, चिन्तनशील और सतर्क हो कर करता रहता है। इस भावना की चिन्तनशील सतर्कवृत्ति के कारण रूप-सौन्दर्य मे मग्न ऋषियों का मन जाग कर भगवान् के शील की तरफ आ गया। वे भगवान् राम की प्रार्थना करने लगे—'राम, आप अनत और अनामय है। आप अकलुष, अनेक, एक और करुणामय है, आप निर्गुण और गुणो के सागर है। आप आनन्द के निवास, सुन्दर और सुशील है। आप लक्ष्मी के पति और पृथ्वी का पालन करने वाले है। आप अनुपम, अजन्मा, अनादि और सौन्दर्य की राशि है। आप ज्ञान के समुद्र, निरभिमान और मानप्रद है। आपके पवित्र यश की चर्चा वेद और पुराणों मे भरी पड़ी है। आप ब्रह्मज्ञानी, कृतज्ञ और अज्ञाननाशक है। आपके अनन्त नाम है। इसीलिए आप अनाम और निरजन है†' अनत, नामो के भीतर रहने वाली किसी एक ही वस्तु से आसक्त नही होता। इसीलिए उसका एक निश्चित नाम भी नही होता और वह निरजन और निर्लिप्त रहता है। सनकादि की प्रार्थना का और अश इस प्रकार है—'आप सर्व है, सर्वगत है, और सबके हृदय में निरन्तर निवास करते है$।' यहाँ गोस्वामी जी ने ईश्वर के सर्वत्व (सब कुछ वही है) 'सर्व खलु इद ब्रह्म' * सर्वगतत्व, (सबमे वही है) 'ईशावास्यमिद सर्वम्' § और सर्वान्तिर्यामित्व का एक ही स्थान मे सकेत कर दिया है। सर्वान्तिर्यामित्व का सिद्धान्त गीता मे भी परिलक्षित होता है—"ईश्वर: सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"—'हे अर्जुन, ईश्वर सब प्राणियों के हृदय मे रहता है×।'

ऐसे सर्वान्तिर्यामी सगुण राम से गोस्वामी जी के सनकादि ने 'अनपायनी' अविरल 'प्रेम भगति' माँगी है+।

इस तरह सनकादि प्रकरण को ला कर गोस्वामी जी ने ज्ञान और योग से अधिक उच्चासन पर सगुण-निर्गुण राम की अविरल 'प्रेम भगति' की स्थापना कर ली है।

अविरल हरिभक्ति के इस सोपान में तुलसी के राम के द्वारा भक्ति की बड़ी सुन्दर और सारगर्भित व्याख्या की गयी है। अयोध्या के निवासियों को बुला कर भगवान् राम ने भक्ति का प्रतिपादन करने की अपनी भूमिका मे कहा—'मेरा वही प्रियतम सेवक है जो मेरे अनुशासन को मानता है। यदि मैं कोई अन्यायपूर्ण बात कहूँ तो भय छोड़ कर मुझे रोकना।' इस विनम्र भूमिका के बाद भगवान् राम ने कहना आरम्भ किया—'देवताओं को भी दुर्लभ, मनुष्य-शरीर बड़े भाग्य से मिलता है, इस बात को सब शास्त्र स्वीकार करते है। सब प्रयत्नों का निवासस्थल यह शरीर ही है। इसमें रहते हुए, प्रयास करके मुक्ति भी मिल सकती है।

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ३२ के बाद से दोहा ३३ तक। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ३३ के बाद। $ वही। * छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ३, श्लोक १। § ईशोपनिषद्, श्लोक १। × गीता, अध्याय १८, श्लोक ६१। + रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ३४।

यह मोक्ष का द्वार है। इसको पा कर जो अपनी दूसरी दुनिया को इस जन्म के सुन्दर कार्यों से सुन्दर नही बना लेता वह इस ओर दूसरे जन्मों में भी सिर धुन-धुन कर पछताता है तथा काल, कर्म और ईश्वर को व्यर्थ दोष देता है‡।'—"उद्धरेदात्मनात्मान नात्मान-मवसादयेत्—गीता†।" 'अपनी आत्मा का पतन नही, उसका उद्धार स्वय करना चाहिए।'

'इस शरीर का फल विषयों के प्रति आसक्ति नही है। स्वर्ग भी कुछ ही समय के लिए मिलता है। अत मे उस सुख का भी अत हो जाता है। जो मनुष्य का शरीर पा कर विषयो की आसक्ति मे फँस जाता है वह अमृत को बदल कर विष स्वीकार कर लेता है। यह अविनाशी जीव चौरासी लाख योनियों मे भटकता रहता है। काल और कर्म के गुण और स्वभाव से घिरा हुआ माया की प्रेरणा से यह फिरता रहता है। परमात्मा अपने अहैतुक स्नेह के कारण कृपा करके कभी इसे नर-देह दे देता है। मनुष्य का शरीर ससार-सागर को पार करने के लिए नाव है। मेरी कृपा अनुकूल पवन है। सद्गुरु उसका कर्णधार है। इस दुर्लभ सज्जा को मनुष्य आसानी से प्राप्त कर लेता है। परमात्मा की कृपा से इस सज्जा से युक्त ऐसे नर-समाज को पा कर जो भवसागर के पार नही जा सकता है वह मदमति, आत्महन्ता और परमात्मा के प्रति कृतघ्न है$।'

'यदि यहाँ और परलोक मे सुख चाहते हो तो मेरे शब्दों को प्रेरक हृदय में दृढता से जमा लो। पुराण और श्रुतियों के अनुसार मेरी भक्ति का यह पथ सुलभ और सुखद है। ज्ञान का पथ अगम है। उस पर अनेक विघ्न है। उसकी साधना बडी कठिन होती है, क्योकि यात्रीमन को रुकने के लिए उसमे कोई सहारा नही मिलता। बिना किसी केन्द्र के, खोजी मन, किसका आधार लेगा। कष्ट करके इस ज्ञान को कोई पा भी ले, तो भक्तिहीन होने के कारण वह भी मुझे प्रिय नही है। भक्ति स्वतन्त्र और सब सुखों की खान है। बिना सज्जनों की सगति के यह प्राप्त नही होती। बिना पुण्यराशि के सतों का दर्शन भी नही होता। सतों का यह साथ ससार की भावना की क्षुद्रता का अत कर देता है। संसार मे एक ही पुण्य कर्म है और वह है पावन चरित ब्राह्मण के चरणों की सेवा। जो निश्छल हो कर द्विज-सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता अनुकूल रहते है*।"

'एक और गुप्त रहस्य है। आप लोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि बिना शकर का भजन किये मनुष्य मुझे नही प्राप्त कर सकता§।'

यहाँ इस अन्तिम सोपान तक शिव-विष्णु-ऐक्य की अपनी साधना पर गोस्वामी जी ने बार-बार ज़ोर दिया है।

राम फिर कहते है—'कहो, भक्ति के पथ पर कौन कष्ट है? इसमें न योग है न यज्ञ, न जप, तप और उपवास ही है। भक्ति में तो केवल सरल स्वभाव रखना पड़ता है, मन की कुटिलता छोड़ देनी होती है और जो कुछ मिल जाए उससे सदा सन्तुष्ट रहना

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ४२ के बाद से दोहा ४३ तक। † गीता, अध्याय—६, श्लोक ५। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४४ और उसके पहले। * रामचरित-मानस, उत्तरकांड, दोहा ४४ के बाद। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४५।

पडता है। यदि मनुष्य मेरा दास कहला कर दूसरे की आशा करने लगे तो उसे मुझ पर विश्वास कहाँ रह गया। इस तरह के सरल और निश्छल आचरण से मै वश मे हो जाता हूँ। जो वैर और विग्रह, आशा और भय छोड देता है, उसके लिए सब दिशाएँ सदा सुखमय बनी रहती है‡।'

"अपने किसी भी कार्यारम्भ से मनुष्य को आसक्त नही होना चाहिए। प्रतिष्ठा और घर की आसक्ति भी उसमें नही होनी चाहिए। उसे अकलुष, अक्रोध, दक्ष और विज्ञान की समत्व भावत्व के साथ रहना चाहिए। सज्जनों की सगति से उसे सदा प्रेम होना चाहिए। विषय, स्वर्ग और मुक्ति को भी तृण के समान समझना चाहिए। भक्ति के पक्ष के लिए भी उसे हठ नही रखना चाहिए, न तो शठता ही करनी चाहिए। दुष्ट तर्कों को भी दूर ही रखना चाहिए†।'

'ममता, मद और मोह को छोड़ कर जो मेरे शील और नाम से आसक्त हो जाते हैं उनके सुख को वही जान सकता है जो विशुद्ध-निश्छल आनन्द की राशि मे डूब चुका हो$।'

इस प्रकार राम ने जीवन में आदर्श शील की पूर्णता ही को भक्ति का स्वरूप माना है और साधन के सब लक्ष्यों से इसी पूर्णता की प्राप्ति को परम लक्ष्य माना है। यही पूर्णता राम है।

गोस्वामी जी के वसिष्ठ द्वारा भी भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। एक दिन भगवान् राम के पास आये हुए वसिष्ठ मुनि ने वार्तालाप के प्रसग मे कहा—'पौरोहित्य कर्म बडा मन्द होता है। वेद, पुराण और स्मृतियों ने इसकी निन्दा की है। जब मैंने आपके कुल का पौरोहित्य स्वीकार नहीं किया, तब मेरे पिता ब्रह्मा ने कहा—इसका लाभ आगे होगा। परमात्मा ब्रह्म नररूप मे 'रघुकुलभूषण भूप' होगे*। तब मैंने अपने हृदय मे विचारा—जिसके लिए योग, यज्ञ, व्रत और दान किया जाता है उसी को जब पाऊँगा, तब इस पौरोहित्य से बढ़ कर और कोई धर्म नही है। यज्ञ, तप, नियम, योग, कुलधर्म तथा विभिन्न प्रकार के वैदिक शुभ अनुष्ठान, ज्ञान, दया, दम, तीर्थो मे स्नान—जहाँ तक वेदों और सज्जनों ने धर्म की व्याख्या की है, वेद, शास्त्र तथा अनेक पुराणों के पढ़ने और सुनने का एक ही लक्ष्य होता है कि आपके चरणकमलों की निरन्तर प्रीति उत्पन्न हो जाए। सब साधनों का यही एक सुन्दर फल है। प्रेमभक्ति के जल के बिना भीतर का कलुष नहीं धुल सकता। वही सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी और पडित है, वही गुणों की निवासभूमि और अखडित विज्ञान सम्पन्न है, वही दक्ष और सब शुभ लक्षणो से युक्त है, जिसके हृदय में आपके चरणकमलों के लिए रति उत्पन्न हो जाती है।'

इतना कह कर वसिष्ठ जी ने राम से यही वरदान माँगा कि जन्म-जन्म में आपके चरणकमलों का स्नेह कभी न घटे।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४५ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४६। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४७ के बाद मे ले कर दोहा ४९ तक।

यहाँ भी अविरल हरिभक्ति को ही जीवन का अन्तिम विकास वसिष्ठ जी ने माना है, और उन्होंने कहा भी है कि सब शुभ कार्यों का लक्ष्य राम के चरणों की निरन्तर प्रीति (अविरल हरिभक्ति) ही है। इसी अविरल भक्ति का वरदान माँगने के लिए उन्होंने कहा—जन्म-जन्म मे आपके चरणकमलों का स्नेह कभी न घटे।

जीवन के इसी अन्तिम और पूर्ण विकास का गोस्वामी जी की उमा के द्वारा भी समर्थन हुआ है। कौए के शरीर मे कागभुशुडि के हृदय मे इस अविरल हरिभक्ति पर आश्चर्य प्रकट करती हुई और अपने सन्देह को दूर करने के लिए शिव से अपने प्रश्न की भूमिका मे उमा ने कहा—'कौए के शरीर मे वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान, रामचरित के लिए प्रगाढ और अतिशय प्रेम तथा उसकी रामभक्ति को सुन कर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। हे शिव, सहस्रों मनुष्यों मे से कोई एक धर्मनिष्ठ होता है। करोडों धर्मशीलों मे से कोई एक विषय-विमुख और विरागरत होता है। इस बात को वेद भी मानते है कि करोडों विरक्तों के बीच मे से कोई एक सम्यक् ज्ञान प्राप्त करता है। करोडों ज्ञानियों मे से कोई एक जीवन्मुक्त होता है। सहस्रो जीवन्मुक्तो मे से कोई एक आनन्दराशि, ब्रह्मलीन विज्ञानी होता है। धर्म-शील, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मज्ञानी—इन पाँचों प्रकार के मनुष्यों से अधिक दुर्लभ वह है जो अभिमान और माया को लाँघ कर राम की भक्ति मे डूब जाता है। ऐसी हरिभक्ति कौए को कैसे मिली। कृपा करके इसका कारण बताइए।'

'राम को अपना अन्तिम लक्ष्य समझने वाला, ज्ञानप्रेमी, गुणों का निवासस्थल और धीरमति वाला किस कारण कौए के शरीर मे आ गया—कृपया मुझे समझाइए ‡।'

अपने इस प्रश्न के भीतर उमा ने भक्त को अन्तिम दुर्लभ मनुष्य और भक्ति को जीवन के विकास का अन्तिम सोपान माना है। इसीलिए रामचरित के इस अन्तिम सोपान मे गोस्वामी जी ने जीवन के पूर्णतम विकास—अविरल हरिभक्ति का प्रतिपादन किया है।

अविरल हरिभक्ति जिसे प्राप्त हो जाती है, उस पर माया की बाधा का कोई प्रभाव नही पडता। माया का प्रबल अस्त्र मोह (भ्रम) है। इस मोह को जीव पर डाल कर माया उसे भगवान् से दूर रखती है। भ्रम से ज्ञान लुप्त हो जाता है। अनत शक्तिवान् राम को लकायुद्ध में नागपाश में बँधा हुआ देख कर मायाकृत यह मोह गरुड को हो गया था। उस अवस्था मे पडे हुए गरुड की चर्चा करते हुए शिव ने उमा से कहा है—"नाना भाँति मनहि समुझावा, प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा $।' राम की यह माया बड़ी प्रबल होती है। नारद ने गरुड को समझाया है—"सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई, बरिआई बिमोह मन करई †।" 'वह ज्ञानियों के चित्त को भी चुरा ले जाती है और बरबस उनके मन मे विमोह उत्पन्न कर देती है। उसने मुझे भी कई बार नचाया है और तुम्हें भी उसने व्याप्त कर लिया है। तुम्हारे भीतर का महामोह मुझसे नष्ट न होगा; ब्रह्मा के पास जाओ *।'

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ५२ के बाद से दोहा ५४ तक। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ५८, उसके पहले, और बाद। $ वही। * वही।

गरुड ने ब्रह्मा को जब अपनी दशा बतायी तब वे सोचने लगे—कवि, कोविद और ज्ञाता भी माया के वश मे हो जाते है। हरि की माया का प्रभाव अपरिसीम है। उसने कई बार मुझे भी नचाया है। जब अग-जग के स्रष्टा पर भी उसका अधिकार है तब पक्षिराज के मोह मे क्या आश्चर्य। उन्होंने गरुड को शिव के पास भेज दिया।

बिना सज्जनों की सगति के रामचरित का ज्ञान नही होता। उसके बिना मोह का अज्ञान दूर नही होता। इसके दूर हुए बिना राम के चरणों मे दृढ अनुराग उत्पन्न नही होता ‡।

अविरल हरिभक्ति के पथ का बाधक मोह रामचरित के ज्ञान से दूर हो जाता है। मोह नष्ट होने पर प्रेम की उत्पत्ति और उसके बाद राम की प्राप्ति होती है—"मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा, किये जोग, जप, ज्ञान बिरागा †।" योग, जप, ज्ञान और वैराग्य से श्रेष्ठ गोस्वामी जी ने अनुराग को माना है और यही भक्ति है।

माया और ब्रह्म के सम्बन्ध का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने पर अज्ञान समाप्त हो जाता है और अविरल हरिभक्ति प्राप्त हो जाती है। कागभुशुडि ने गरुड का मोह दूर करने के लिए कहा—'ससार भर मे माया की प्रचड सेना व्याप्त हो रही है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर उसके सेनापति है। दभ, कपट और पाखड इत्यादि उसके योद्धा हैं। वह माया रघुवीर की दासी है। जो इसे समझ लेता है उसके लिए यह शून्य हो जाती है। लेकिन यह माया राम की कृपा बिना नहीं छूटती $।' इसी के आगे काग-भुशुडि कहते है—'जो माया सब जग को नचाती रहती है, जिसके सम्पूर्ण रहस्य को कोई देख नही सकता वही प्रभु के भ्रूविलास के साथ, अपने पूरे समाज को ले कर, नटी की तरह नाचती है। वही सच्चिदानन्द, अज, विज्ञानरूप (विज्ञानमानन्दं ब्रह्म)* बलवाम व्यापक, व्याप्य, अखंड, अनंत, अखिल, अमोघशक्ति परमात्मा राम है। वे सगुण होते हुए भी अगुण, अदभ्र, वाणी और इन्द्रियों के परे, सर्वदर्शी, अनवद्य, अजित, निर्मम, निराकार, निर्मोह, नित्य, निरजन, सुख की राशि, प्रकृतिपर, ब्रह्म, निरीह, विरज, अविनाशी और सर्वान्तिर्यामी है। उन पर माया का प्रभाव कभी नही पडता, जैसे सूर्य के सम्मुख अधकार नही रह सकता। जिस तरह अभिनेता अनेक रूप धारण करता है पर वही हो नही जाता उसी तरह ब्रह्म राम भी अनेक रूप धारण करते है, पर माया के उन रूपों से स्वयं प्रभावित नही होते §।'

"निर्गुण रूप में जटिलता न रहने के कारण वह सरल है, पर सगुण की लीला अनिर्वचनीय है। उसे कोई नहीं जानता। उसके विभिन्न प्रकार के सुगम और अगम चरितों से मुनियों का मन भी भ्रम मे पड़ जाता है ×।"

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ६१। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ६१ के बाद। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ७१। * वृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय ५, ब्राह्मण ९, कडिका २८। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ७१ के बाद से दोहा ७२ तक। × रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ७३।

भक्त की अविरल भक्ति की रक्षा भगवान् स्वय करता है। वह भक्त के अभिमान को नष्ट करके उसे निरभिमान बना देता है। निरभिमानता की अवस्था ही राम के स्वभाव का लक्षण है। इस निरभिमानता को प्राप्त करके साधक राम हो जाता है। इस राम हो जाने मे ही राम की भक्ति की परिणति होती है। कागभुशुडि ने गरुड से कहा है—'राम का यह सहज स्वभाव है कि वे अपने जन के भीतर कोई भी अभिमान नही रहने देते। ससार की जड और अनत शोक तथा शूलो का कारण यह अभिमान ही है। प्रभु को सेवक पर अपार ममता होती है। इसीलिए शूलप्रद इस अभिमान के व्रण को वे सेवक के भीतर से काट कर निकाल देते है। जिस तरह शिशु के व्रण को माता कठिनहृदया हो कर चिरवाती है और बालक के व्याकुल हो कर छटपटाने और चिल्लाने की चिन्ता न करके व्याधि के नाश की ओर ही ध्यान रखती है उसी तरह परमात्मा भी सेवक का अभिमान नष्ट करने के लिए उसे कष्ट देता है‡।'

राम के अलौकिक रहस्य का ज्ञान अविरल हरिभक्ति के लिए आवश्यक है। कागभुशुडि ने गरुड से कहा है—'राम की कृपा के बिना राम का प्रभुत्व नही जाना जा सकता, प्रभुत्व जाने बिना विश्वास उत्पन्न नही होता, बिना विश्वास के प्रीति उत्पन्न नही होती और बिना प्रीति के भक्ति दृढ नही होती†।'

इसीलिए अविरल हरिभक्ति के लिए राम के अलौकिक रहस्य को जानने की आवश्यकता होती है। अविरल हरिभक्ति की इसी आवश्यकता के लिए कागभुशुडि ने अपने मोह और राम की अलौकिक शक्ति की विराट्ता के दर्शन की चर्चा की। उन्होंने कहा—'मेरे इष्ट, बालक राम है। उनका अवतार जब-जब होता है, मै छोटे कौए के रूप मे जा कर उस बालक से खेलता हूँ और पाँच वर्ष तक वही रहता हूँ। एक बार अपने साथ खेलते हुए बालक राम को देख कर मुझे मोह हो गया। मैंने अपने अज्ञान में सोचा—परम चैतन्य और आनन्दमय विराट्, प्राकृत शिशु की तरह कैसे खेलता है। इतना ध्यान आते ही राम की माया से मैं व्याप्त हो गया। उन्होंने मेरे मोह को समझ लिया और उनका बालक रूप मुझे अपने खेल में पकड़ने दौडा और मैं उड़ा। आकाश में ब्रह्मलोक तक गया और पीछे देखा तो राम की भुजा और मुझमे कुल दो ही अगुल का अन्तर था। सप्तावरण को भेद कर जहाँ तक मेरी गति थी मैं गया, पर वही दो अगुल का अन्तर। व्याकुल हो कर मैंने आँखे बन्द कर ली। जब आँखे खोली तो अपने को कोसलपुर मे पाया। मुझे देख कर राम मुसकाये और मैं उनके मुख मे चला गया। उनके पेट मे अनेक ब्रह्माडो के समूह मैने देखे। विचित्र रचना वाले अनेक लोक, करोडों ब्रह्मा और शिव, अगणित तारे, रवि और चन्द्र, अगणित लोकपाल, यम और काल, अगणित पर्वत और भूमि का विशाल विस्तार, सागर, नदियाँ, सरोवर और अपार वन, सृष्टि के विभिन्न प्रकार के विस्तार, सुर, मुनि, सिद्ध, नाग, नर, किन्नर और चारो प्रकार के सचराचर

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ७३ के बाद से दोहा ७४ तक। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, सोरठा ८९ के पहले।

जीव मैंने देखे। अदृश्य और अतर्क्य को देख कर मै उसका वर्णन कैसे करूँ। प्रत्येक ब्रह्मांड मे सौ-सौ वर्ष रहते हुए अनेक ब्रह्माडों की मैंने यात्रा की। उन सब ब्रह्माडों मे सृष्टि के समस्त विस्तार के साथ अयोध्या, सरयू, दशरथ, कौसल्या और सब भाई थे। उनमे राम का अवतार और बालविनोद था। अनेक ब्रह्माडों मे वही राम दिखाई पड़े। वही शिशुता और वही शोभा मैंने देखी। ऐसा लगा कि सौ कल्प बीत गये। अपने आश्रम मे भी आया और कुछ समय तक निवास किया। फिर अयोध्या में रामावतार हुआ। वहाँ भी जा कर प्रभु का दर्शन किया और यह सब दो घड़ियो मे मैंने देख लिया। कृपालु राम मेरी व्याकुलता पर ध्यान दे कर फिर हँसे और मैं बाहर आ गया। उनकी वही बाल-क्रीडा फिर प्रारम्भ हुई, पर मेरा मन व्याकुल ही रहा। यह सब मेरी समझ के बाहर हो गया था। व्याकुल हो कर मैंने रक्षा की प्रार्थना की। भगवान् का कृपालु हाथ मेरे सिर पर पड़ा और मै उनके रहस्य को जान कर भक्ति के आनन्द मे तन्मय हो गया। उन्होने प्रसन्न हो कर मुझे अनन्त शक्ति का वरदान माँग लेने को कहा। उत्तर देते हुए मैंने कहा—

अविरल भगति बिसुद्ध तव स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभुप्रसाद कोउ पाव।
भगत कलपतरु प्रनतहित, कृपासिन्धु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम‡।

इस तरह भगवान् के अनत रहस्य को जान कर भक्त के भीतर उसके लिए अनत प्रेम उत्पन्न हो जाता है, और वह उनसे अविरल भक्ति प्राप्त कर लेता है। वह इसी अविरल भक्ति को अनंतशक्ति मानता है। इसके अतिरिक्त किसी दूसरी शक्ति को वह शक्ति मानता ही नही।

गोस्वामी जी के कागभुशुडि ने ईश्वर, जीव, माया, भक्ति, ज्ञान, और मुक्ति के सम्बन्ध का विवेचन भी गरुड के सम्मुख प्रस्तुत किया है। गरुड को यह रहस्य बताते हुए कागभुशुडि ने कहा है—'सीतावर अखड-ज्ञान और एक है (एकमेवाद्वितीय ब्रह्म†)। सचराचर जीव माया के प्रभाव में आ सकते हैं। यदि सबके भीतर एकरस ज्ञान ही रहता तो ईश्वर और जीव मे क्या भेद रह जाता। माया के वश में रहने के कारण जीव अभिमानी होता है$।'

माया के भेदों मे सीमित रह कर जीव अपने को खड-खड के साथ सम्बद्ध देख कर अभिमान करने लगता है। ज्ञान के द्वारा जब वह अपने को एक और विराट् योजना के भीतर लगा हुआ देखता है तब खड और भेद-सम्बन्धिनी उसकी बुद्धि समाप्त हो जाती है और उसके साथ उसका खड के आधार पर टिका हुआ अभिमान भी नष्ट हो जाता है।

कागभुशुडि ने गरुड से कहा—'गुणों की खान माया, ईश्वर के वश में रहती है। जीव इसीलिए परवश होता है और ईश्वर स्ववश और स्वतन्त्र। जीव अनेक होते है, पर

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ७४ के बाद से ले कर दोहा ८४ तक। † त्रिपाद्-विभूतिमहानारायण उपनिषद्, अध्याय ३, कडिका ३। $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ७७ के बाद।

लक्ष्मीपति राम तो एक ही है। यद्यपि माया के द्वारा उत्पन्न की गयी भेदकल्पना व्यर्थ है तथापि बिना भगवान् के वह करोडों उपाय किये नही जाती। रामचन्द्र के भजन के बिना जो निर्वाण-पद चाहता है वह ज्ञानवान् होने पर भी बिना सींग और पूँछ का पशु ही है। यदि सोलह चन्द्रमा उदय हो जाएं तारों के सब समूह प्रज्वलित हों और सब पर्वतों में दावाग्नि पैदा कर दी जाए तब भी बिना सूर्योदय के रात्रि का अत नही आता। इसी तरह बिना हरिभजन के जीवों का क्लेश नही मिटता। हरि के सेवकों को अविद्या (अज्ञान, माया) प्रभावित नही कर पाती। प्रभु की प्रेरणा मे उस पर विद्या (ज्ञान) का ही प्रभाव बना रहता है। इसी से दास का नाश नही होता और उसकी भेदभक्ति बढती ही जाती है‡।'

गोस्वामी जी के कागभुशुडि ने राम की महिमा तथा उनके नाम, रूप और गुणों की अनतता का बडा भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने गरुड से अपने वार्तालाप के प्रकरण मे कहा है—'राम की महिमा उनके नाम, रूप और गुण सब अमित और अनत है। अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मुनि लोग उनका यशोगान करते हैं। वेद, शेष और शिव भी उस अनत का पार नही पाते। आपसे ले कर पक्षी और मच्छर तक आकाश में उडते है, पर इस असीम आकाश का अत नही पाते, उसी तरह रघुपति की अनत महिमा मे डुबकी लगा कर क्या कोई उसकी थाह लगा सकता है। सैकडों करोड कामदेव के समान राम का शरीर सुन्दर है। असीम शत्रुओ का विनाश करते समय वे अपने भीतर करोड़ों दुर्गाओं की शक्ति धारण कर सकते है। ऐश्वर्य और विलास मे सैकडों करोड़ इन्द्र उनके समीप नही पहुँच सकते। उनके अनत विस्तार को सैकडो करोड़ आकाश नही पा सकते। सैकडों करोड मरुतों का विपुल बल उनमे है। उनका प्रकाश सैकडों करोड सूर्य भी नही छू सकते। वे सम्पूर्ण भवत्रास के नाशक है और सैकडों चन्द्रमाओं से भी अधिक सुशीतल है। सैकड़ों करोड़ कालों से भी अधिक दुस्तर, दुर्गम, और दुरन्त वे है। सैकड़ों करोड़ धूमकेतु के समान उनका प्रभावशाली आतक है।'

'सैकडों करोड पातालों से भी अधिक गहराई उनमे है। सैकडों करोड यमराजों से भी वे अधिक भयानक है। अनत कोटि तीर्थों से भी वे अधिक पवित्र है। उनका नाम अखिल पापो के समूह को नष्ट कर देता है। राम करोड़ों हिमालयों से भी अधिक अचल और स्थिर स्वभाव के है। सैकड़ों करोड़ समुद्रों से भी वे अधिक गम्भीर है। भक्तों की सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करने मे वे सैकडों करोड़ कामधेनुओं से भी अधिक सक्षम है। अनत कोटि सरस्वतियो से भी अधिक निपुणता उनमें है। सैकड़ो करोड विधाताओं से भी अधिक सृजन की दक्षता उनमे है। करोडों विष्णुओ से भी अधिक पालन करने की शक्ति उनमे है। उनकी संहार-शक्ति सैकडों करोड रुद्रो से भी अधिक है। सैकडों करोड़ कुबेरों से भी वे अधिक धनवान् है। करोड़ों मायाओ से भी अधिक प्रपच का विस्तार उनके भीतर

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ७७ बाद से दोहा ७८ के बाद तक।

है। भार धारण करने मे वे सैकड़ो करोड़ शेषों से भी अधिक शक्तिवान् है। प्रभु राम असीम और अनुपम है ‡।'

'ऐसे अनत शक्तिवान् राम करुणाभवन और सुखनिधान है। भक्तों का प्रेम उन्हे अपने वश मे कर लेता है। मन के भीतर इस अनत की भावना स्थिर रख कर ममता, मद और मान को छोड देना चाहिए तथा उनकी अविरल भक्ति को सदा के लिए अपने हृदय मे दृढ बना लेना चाहिए †।'

अविरल भक्ति के लिए आवश्यक सगुण राम की यह अनंतता बेजोड है। गोस्वामी जी ने अपने भुशुडि के माध्यम से भक्तों के लिए सगुण निर्गुण भगवान् की इस अनतता की एक पूर्ण तथा अनुपम झाँकी प्रस्तुत की है।

अविरल हरिभक्ति की दृष्टि से गोस्वामी जी के कागभुशुडि ने भक्ति और ज्ञान का बडा सुन्दर विवेक गरुड को दिया है। भुशुडि के अनुसार इस विवेक से अविरल हरि-भक्ति की सिद्धि मे सरलता होती है। अपने सब भ्रमो को दूर कराते हुए गरुड ने कागभुशुडि से ज्ञान और भक्ति का अन्तर पूछा। उन्हे समझाते हुए भुशुडि ने कहा—'भक्ति और ज्ञान मे कोई भेद नही है। दोनों सासारिक जीवन में मिलने वाले सताप को दूर करते है। जो कुछ थोडा-सा अन्तर है उसे सावधान हो कर सुनिए।'

'ज्ञान, विराग, योग और विज्ञान ये सब पुरुष है। पुरुष का प्रताप सब तरह से प्रबल होता है। विरक्त और धीरमति पुरुष नारी के प्रति अपनी आसक्ति को छोड सकता है, विषयो के वश मे रहने वाला, राम के चरणों से विमुख कामी पुरुष ऐसा नहीं कर सकता। दुर्बल पुरुषो से अलग श्रेणी मे रहने वाले ज्ञाननिधान मुनि लोग भी नारी के मुखचन्द्र को देख कर चचल हो जाते है। विश्व मे नारी माया का प्रत्यक्ष रूप है $।'

'मैं यहाँ किसी तरह के पक्षपात से नही, वरण् वेद, पुराण और सत मतों के आधार पर ही कह रहा हूँ। यह विचित्र नियम है कि नारी, नारी के रूप से मुग्ध नही होती। माया और भक्ति दोनों नारी वर्ग के है। राम भक्ति से प्रेम करते है। माया को तो वे चचला नर्तकी समझते है। रघुराज भक्ति के अनुकूल रहते है, इसलिए माया उससे बहुत डरती है। जिसके हृदय मे अहैतुकी निरुपम रामभक्ति निर्बाध हो कर निरन्तर निवास करती है, उसे देख कर माया संकुचित हो जाती है। अपनी किसी शक्ति का प्रयोग वह उसके विरुद्ध नही कर सकती। जो विज्ञानी मुनि है वे इसीलिए सब सुखों के मूल भक्ति को ही भगवान् से माँग लेते है। भगवान् के इस रहस्य को शीघ्रता से कोई नही जान सकता। राम की कृपा से जो इसे जान लेता है उसे स्वप्न में भी मोह नही होता। आप ज्ञान और भक्ति के और भेद को सुनें जिसे सुन लेने पर राम के चरणों के लिए अवि-च्छिन्न प्रेम सदा बना रहता है *।'

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ९० के बाद से दोहा ९१ के बाद तक। † राम-चरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ९२। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, सोरठा ११५ और उसके पहले। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, सोरठा ११५ के बाद से दोहा ११६ तक।

अविरल हरिभक्ति की सम्पन्नता के लिए यह ज्ञान और भक्ति के भेद का विवेक इसी तरह उपयोगी होता है।

इसी प्रकरण में कागभुशुडि गरुड से कहते हैं—'सुनो तात, यह कहानी अनिर्वचनीय है। यह समझते ही बनती है, वाणी के द्वारा व्यक्त नही की जा सकती। ईश्वर का अंश, जीव अविनाशी है। यह अपने स्वभाव से ही चैतन्यमय, स्वच्छ और सुख की राशि है। यह माया के वश मे हो कर बँध गया है। माया के जड रूप की आसक्ति और चैतन्य जीव मे सम्बन्ध की ऐसी दृढ ग्रन्थि बँध गयी है कि झूठी होने पर भी उसके छूटने में बड़ी कठिनाई होती है। माया के साथ बँध कर जब से जीव ससारी हो गया है, तब से यह ग्रन्थि न तो छूटती है और न वह सुखी होता है। श्रुतियों और पुराणों ने इसके लिए बहुत से उपाय बताये है, पर उनसे भी यह ग्रन्थि न छूट कर और अधिक उलझ जाती है। जीव के हृदय मे अज्ञान का अन्धकार इतना अधिक रहता है कि उसे माया के सम्बन्ध को दृढ करने वाली यह ग्रन्थि दिखाई ही नही पड़ती, तब वह कैसे छूट सकती है‡।'

माया के इस आकर्षण से अपनी अनत शक्ति के असीम ह्रास को अज्ञान के कारण जीव देख ही नही सकता तब वह अपनी दुर्बलताओं को समझ कर उन्हे दूर कैसे कर सके।

अपने वार्तालाप के इसी प्रवाह मे भुशुडि गरुड से कहते है—'ईश्वर माया की इस ग्रथि के दर्शन का सयोग यदि कभी लाता भी है तब भी यह ग्रथि कदाचित् ही सुलझती है। यदि हरि की कृपा से कभी सात्त्विक श्रद्धा रूपिणी सुन्दर धेनु जीव के हृदय मे आ बसती है और जब वह श्रुति के द्वारा बताये हुए अपार जप, तप, यम, नियम इत्यादि शुभ धर्माचरणों की हरी घास को चरती है, तब भावरूपी वत्स शिशु को पा कर पन्हा जाती है। इस गाय को दुहने के लिए निवृत्ति पैर बाँधने की रस्सी बनती है और निर्मल मन अहीर बनता है। यह अहीर परमधर्ममय दूध को दुहता है और अकाम (अनासक्ति) को अग्नि बना कर उस पर औटता है। इस औटे हुए परमधर्ममय दूध को क्षमा, सन्तोष रूपी पवन से ठडा करती है।' परमधर्म, विश्वरक्षा की भावना ही है। उसके साथ क्षमा और सन्तोष की शीतलता निरन्तर निवास करती है। इस शीतल दूध को धृति, शम का जावन दे कर जमाती है। विश्वरक्षा की भावना धैर्य और शान्ति की भावना से दृढ होती है। मुदिता, विचार की मथानी ले कर इस दही को मथती है। विश्वरक्षा की दृढ भावना के रहस्य को समझने के लिए आनन्दमय चिन्तन, ऊहापोह में लग जाता है। इस मथन कार्य के लिए दम, आधार बनता है और सत्य तथा सुन्दर वाणी रस्सी बनती है। सत्य, कोमल वाणी तथा स्वार्थो का दमन अखिल-विश्वरक्षक के लिए परम आवश्यक होते है। इनकी सहायता से वह अपनी अखिल विश्वरक्षा की भावना की परीक्षा करता रहता है। इस मथन के बाद विमल विराग रूपी सुन्दर और परम पवित्र नवनीत प्राप्त होता है†। सत्य, कोमल वाणी और स्वार्थो के दमन से विश्वरक्षा का

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११९ के बाद। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११६ के बाद।

सत्प्रयत्न करने वाला साधक अत मे सुन्दर और परम पवित्र विमल विराग को प्राप्त कर लेता है।

इसके बाद अग्नि (चित्त की शान्ति) को प्रकट करके, शुभ और अशुभ कर्मो को योग भस्म कर देता है। सच्चे कर्मयोगी को लोकमगल विधान के अनासक्तिमय कर्मयोग मे मन की शान्ति प्राप्त हो जाती है और अशुभ कर्म तो उससे होते ही नही; शुभ कर्मो से भी अनासक्त रह कर उनके प्रभाव से वह मुक्त रहता है। उन्हे लक्ष्य मे रख कर उसके भीतर अभिमान इत्यादि पैदा नही होते। विमल विराग रूपी नवनीत से इस तरह ज्ञानरूपी घृत उत्पन्न होता है। इस घृत को वुद्धि शीतल करती है और ममता रूपी मल जल जाता है। बुद्धि के भीतर विमल विराग के आधार पर जब अनासक्तिमय ज्ञान उत्पन्न होता है। तब ममता भस्म हो जाती है और इस ज्ञान के भीतर सासारिक ताप भी ममता के साथ शान्त हो कर एक परम शीतल दशा को छोड जाता है। 'इस स्वच्छ, निर्मल ज्ञानरूपी घृत को पा कर विज्ञाननिरूपिणी बुद्धि (ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली बुद्धि) इसे चित्तरूपी दीपक मे भर लेती है और ज्ञान से भरे हुए चित्तरूपी दीपक को समता का दृढ आधार बना कर उस पर रख देती है‡।' चित्त निर्मल ज्ञान से जब पूर्ण हो जाता है तब ब्रह्मनिरूपिणी बुद्धि समत्व का दर्शन कर लेती है। उसके भीतर 'सर्व खलु इद ब्रह्म',† 'नेह नानास्ति किचन'$ इत्यादि श्रुतिवाक्यों के चिन्तन से समता की भावना उत्पन्न हो जाती है और भेद की विषमता नष्ट हो जाती है। 'जागृति स्वप्न और सुपुप्ति की तीन अवस्थाएँ सत्त्व, रजस् और तमस् के त्रिगुण रूपी कपास से तुरीय (ब्रह्म-ज्ञान) रूपी रूई को अलग करके सुन्दर और सुदृढ बत्ती बना लेती है।' ऐसी स्थिति मे साधक का चित्त त्रिगुणात्मक जगत् की भेद-बहुल भावना से अलग हट कर जागृति, स्वप्न और सुपुप्ति की तीनों अवस्थाओ मे ब्रह्मज्ञान के अभेद-दर्शन मे मग्न रहता है। 'ज्ञान के निर्मल घृत में ब्रह्मज्ञान की सुदृढ बत्ती को रख कर ब्रह्मनिरूपिणी बुद्धि जब तेजराशि विज्ञानमय दीपक को जलाती है, तब उसके प्रकाश मे मद इत्यादि शलभ जाते ही भस्म हो जाते है*।' चित्त के भीतर निर्मल ज्ञान के साथ जब ब्रह्म ज्ञान का योग होता है तब चित्त तेजोमय और विज्ञानमय अभेद दर्शन से आलोकित हो उठता है। उसमें काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मात्सर्य नही रह जाते।

इस तरह सः (वह ब्रह्म) अह (मै) अस्मि (हूँ)—'वह ब्रह्म मैं ही हूँ'—'सोहमस्मि' की अखडित वृत्ति ही उस चित्तरूपी दीपक की परम प्रचड दीपशिखा है। इस ज्योति का प्रकाश आत्मानुभव का आनन्द (ब्रह्मानुभूति का आनन्द) है। तब सासारिक भावनाओं के स्रोत (भेद और भ्रम) नष्ट हो जाते है। प्रबल अविद्या (माया-अज्ञान) के मोह इत्यादि परिवार के द्वारा उत्पन्न किया हुआ अधकार मिट जाता है। तब वही

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११७। † त्रिपाद्विभूतिमहानारायण उपनिषद्, अध्याय १, कडिका ३। $ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिपद्, अध्याय ३, कंडिका ३। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, सोरठा ११७।

ब्रह्मनिरूपिणी बुद्धि ब्रह्म ज्ञान के अभेद दर्शन के प्रकाश को पा कर हृदयरूपी घर मे बैठ जीव के साथ लगी हुई माया की ग्रथि को सुलझा कर खोलती है और माया के आकर्षण के बन्धन से जीव को हमेशा के लिए मुक्त कर लेती है। यदि उसे ग्रथि खोलने मे सफलता मिल जाए तो इस जीव के जीवन का ध्येय पूर्ण हो जाता है।' इसका अतिम पुरुषार्थ (मोक्ष) इसे प्राप्त हो जाता है। यह पूर्ण, मुक्त, शुद्ध और प्रबुद्ध पुरुष हो कर माया के स्वार्थमय प्रलोभनो से मुक्त हो जाता है। 'परन्तु इस ग्रथि को खोलने के प्रयत्न को जान कर माया अनेक विघ्न करती है। ऋद्धि-सिद्धियों को प्रेरित करके बुद्धि के सामने ला कर उसे प्रलोभन देती है। कल, बल और छल से ये ऋद्धि-सिद्धियाँ साधक के पास जा कर अपने अचल की हवा से दीपक को बुझा देती है।' यदि साधक इनके प्रलोभनों मे पड़ गया तो उसका ब्रह्मज्ञान समाप्त हो जाता है। 'यदि बुद्धि परम सज्ञान होती है तो उनके द्वारा होने वाला अपना अहित देख लेती है। यदि ऋद्धि-सिद्धियों के विघ्न, बुद्धि के सामने बाधा उपस्थित नही कर सकते, तब देवता उपद्रव करते है। इन्द्रियों के द्वार, शरीर के विभिन्न वातायन है। उन वातायनों पर देवता लोग अपना-अपना स्थान बना कर बैठे हुए है। विषयरूपी समीर को जब वे आते हुए देखते है, तब इन्द्रियों के वातायानों को बलपूर्वक खोल देते है। जब विषयो का प्रभजन हृदयरूपी घर मे प्रविष्ट हो जाता है, तब ब्रह्मज्ञान के विज्ञान का दीपक बुझ जाता है, ग्रथि छूट नही पाती और विज्ञान का प्रकाश मिट जाता है। इस स्थिति मे विषय का प्रभजन बुद्धि को व्याकुल कर देता है। इन्द्रियों और देवताओं को ज्ञान मे रुचि नही है। इनमे विषयों के आसक्तिमय भोग के प्रति ही निरन्तर प्रेम रहता है। जब विषयों के समीर से बुद्धि भ्रान्त हो गयी, तब उतना प्रयास करके दीपक को फिर से कौन जलाए ‡।'

'ऐसी अवस्था मे जीव फिर से ससार के विविध सन्तापों से घिर कर पीड़ित होता है। हे पक्षिराज, हरि की माया बड़ी दुस्तर है। इसको पार करना बड़ा कठिन है। विवेक का निरूपण करना, समझना और उसकी साधना अति दुष्कर कार्य है और इस पथ पर अनेक अचिन्तित बाधाएँ उपस्थित होती है †।'

'ज्ञान का मार्ग कृपाण की धारा है। उस पर से गिर पडने में देरी नही लगती। यदि निर्विघ्न इस पथ की यात्रा पूरी हो जाए तो साधक को अभेद-स्थिति का कैवल्य परम पद प्राप्त हो जाता है। सत, पुराण, निगम और आगमों का यह मत है कि कैवल्य का परमपद बड़ा दुर्लभ है $।' इसीलिए चिन्तन के कैवल्य की तरफ न जा कर भक्त भाव-समाधि के कैवल्य की साधना करता है। यही सगुण भक्ति की साधना है।

उपरिविवृत ज्ञान मार्ग के विवेचन के निष्कर्ष मे गोस्वामी जी के भुशुडि भक्तिपथ की सरलता, स्वाभाविकता और श्रेष्ठता का विवेचन करते है। उन्होंने गरुड़ से कहा—'यही परम दुर्लभ कैवल्य-पद राम के भजन से, साधक के न चाहने पर भी, बरबस आता है।

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ११७ के बाद। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११८। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११८ के बाद।

जिस तरह करोडों उपाय करने पर भी आधार के बिना जल नही टिक सकता, उसी तरह मोक्ष का सुख हरिभक्ति को छोड कर नही रह सकता। ऐसा विचार करके बुद्धिमान हरिभक्त लोग मुक्ति को निरादृत करके भक्ति की ओर ही आकृष्ट हुए। भक्ति करते हुए बिना प्रयत्न और प्रयास के, ससार की जड-अविद्या (माया-अज्ञान) का नाश हो जाता है। भोजन तृप्ति और हित के लिए किया जाता है। इसीलिए वह उतना ही किया जाता है जितना जठराग्नि पचा सके। अत. ऐसा कौन मूढ है जिसे सुगम और सुखद हरिभक्ति न अच्छी लगे।'

'हे पक्षिराज, सेवकसेव्य भाव की भक्ति के बिना ससार पार नही किया जा सकता। इस सिद्धान्त पर विचार करके आप राम के चरणकमलों का ध्यान करे। जो चेतन को जड और जड को चेतन बनाता रहता है, ऐसे समर्थ रघुनायक को जो जीव भजते है, वे धन्य है ‡।' जगत् को देखने वाली, साधक की चेतना भक्ति के आनन्द मे जगत् की स्वार्थमय आसक्ति के लिए जड बन जाती है। इस आसक्ति का उसके भीतर सर्वथा अभाव हो जाता है। इस आनन्द के प्रभाव से जड हृदय भी इसके माधुर्य का अनुभव करके 'सियाराममय सब जग' † की झाँकी का साक्षात्कार करने के लिए चेतन हो जाता है।

भुशुडि के अनुसार भक्तिमणि का प्रभाव अमोघ है। गरुड से वे कहते है—'राम की भक्ति एक सुन्दर चिन्तामणि की तरह है। उसके रहने से हृदय दिन-रात परम प्रकाश से आलोकित रहता है। उसके लिए घी, दीपक और बत्ती की आवश्यकता नही होती। मोह (अज्ञान) की दरिद्रता उसके पास नही आती। लोभ का समीर उसे नही बुझा पाता। प्रबल अज्ञान का अधकार उससे मिट जाता है। इस मणिदीप से कामादि शलभों के समुदाय नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट कामादि उसके पास नही जाते। भक्त के लिए विष अमृत की तरह और शत्रु मित्र की तरह हो जाता है। भक्ति के इस मणिदीप के बिना कोई मनुष्य सुख नही पा सकता। जिन मानस रोगों के वश में हो कर सब जीव दुखी रहते है, वे प्रबल मानसरोग भक्तों को नही व्याप्त कर सकते। जिसके हृदय में रामभक्ति की मणि रहती है उसके लिए स्वप्न में भी दुःख का एक कण तक अवशिष्ट नही रह जाता। इस संसार मे वही चतुर शिरोमणि है जो इस मणि के लिए सत्प्रयत्न करते रहते हैं। यद्यपि यह मणि ससार मे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती रहती है, पर राम की कृपा के बिना यह प्राप्त नहीं हो सकती $।'

इस भक्तिमणि की प्राप्ति के उपाय भी गरुड को भुशुडि ने बताये है। भुशुडि ने गरुड़ से कहा—'इस मणि को पाने के सुगम उपायों को हतभाग्य मनुष्य ने छोड़ दिये। वेद और पुराण पावन पर्वत की तरह है। उनमे वर्णित राम की कथाएँ सुन्दर खानों की तरह है। इन छिपी हुई खानों का रहस्य जानने वाले—मरमी—सज्जन लोग हैं। सुन्दर बुद्धि ही कुदाली है, ज्ञान और विराग की आँखें इन खानों के स्थानों को देख लेती हैं। जो

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११८ के बाद से दोहा ११९ तक। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११९ के बाद।

प्राणी प्रेमभाव को साथ ले कर, ज्ञान और विराग की आँखों से देख-देख कर इन खानों को खोदता है वही इस भक्तिमणि को सुख की खान के रूप मे प्राप्त करता है ‡' गोस्वामी जी के अनुसार वेद और पुराणो के भीतर वर्णित जगत् के ज्ञानमय और भावमय विस्तार को, बुद्धिगत ज्ञान (स्वार्थ के प्रति बिराग) और अनन्त के प्रति हृदयगत प्रेम की भावभूमि पर पहुँच कर देखने से ही 'सियाराममय सब जग' का विश्वरतिभाव सिद्ध होता है।

गोस्वामी जी के भुशुडि के अनुसार भी भक्त भगवान से बडा है। वे गरुड़ से कहते है—'मेरे मन मे ऐसा विश्वास है कि राम से भी बडा राम का दास होता है, राम सिंधु की तरह है, धैर्यवान् सज्जन लोग बादल की तरह है।' वे राम की अनतता को अपने साथ ले कर उनकी शीतलता और मधुरता का प्रचार जगत् में चारो ओर करते है। 'राम चन्दन के वृक्ष है और सत लोग समीर है।' राम के पवित्र यश की सुगध को संतरूपी समीर चारों तरफ फैला कर विश्व मे प्रफुल्लता और मंगल की सृष्टि करते रहते हैं। 'सम्पूर्ण जीवन का अन्तिम फल सुन्दर हरिभक्ति ही है और उसे बिना सतों की सहायता के कोई नही पा सकता। ऐसा विचार करके जो राम के भक्तों के साथ रहते है। उनके लिए राम की भक्ति सुलभ हो जाती है † ।'

'ब्रह्म क्षीरसागर की तरह है। ज्ञान मदराचल पर्वत का काम करता है। सत लोग इस अपार ब्रह्मज्ञान के मथन का कार्य करने वाले देवताओं की तरह है। वे विराट् ब्रह्म के अनन्त विस्तार को मथकर राम कथा रूपी अमृत को निकाल लेते है। इसी कथा रूपी अमृत की मधुरता भक्ति है ।' राम के आदर्श शील का साक्षात्कार करके भक्त के हृदय मे प्रेम का जो मधुर आनन्द उत्पन्न होता है वही भक्ति है।

गरुड से भुशुडि कहते है—'विरति ढाल है, ज्ञान तलवार है, और इनकी सहायता से मद, मोह और लोभ इत्यादि शत्रुओं को मार कर साधक जो विजय प्राप्त करता है वही हरिभक्ति है।' जीवन की दुर्बलताओं के ऊपर उठ कर पूर्ण सबल और आदर्शमय पवित्र जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर लेना ही गोस्वामी जी के भुशुडि के अनुसार भक्ति है * ।

इस समग्र ज्ञान-परम्परा को जान लेने से, गोस्वामी जी के अनुसार, साधक का अविरल हरिभक्ति का पथ और सुगम हो जाता है।

सत-असत-लक्षण तथा मानस रोगो को जानने से भी अविरल हरिभक्ति का पथ सरल हो जाता है। भक्ति के साधक के लिए गोस्वामी जी ने सतधर्म का विवेचन और असतों के लक्षणों का विवरण इसीलिए दिया है कि भक्त एक की तरफ प्रवृत्त होता रहे और दूसरे से बचता रहे। हृदय के रोगों को भी जान लेने से भक्त उनसे अपना बचाव करने के उपाय करता रहता है और उनसे हृदय को अस्वस्थ और कलुषित नही होने देता।

गोस्वामी जी के भुशुडि ने गरुड को मानस रोग और उनसे निवृत्ति के उपाय भी बताये है। मानस रोगों के सम्बन्ध में गरुड के प्रश्न का उत्तर देते हुए भुशुडि ने गरुड से

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११९ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२७। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२०।

कहा—'मोह हृदय की सब व्याधियों का मूल है। इस अज्ञान से अनंत शूलों की सृष्टि होती है। काम हृदय के लिए वात का कार्य करता है और लोभ कफ का। क्रोध पित्त बन कर हृदय को बराबर जलाता रहता है। यदि ये तीनों भाई मिल कर हृदय पर आक्रमण करते है, तब हृदय सन्निपातग्रस्त हो जाता है। विषयो के अनत और दुर्गम मनोरथ अनत शूल है। उनके नाम की गिनती नही हो सकती। ममता दाद का काम करती है।' दाद सुख से खुजलाते हुए मनुष्य घाव बना लेता है, पर खुजलाना नही छोडता। ममता अत मे पीडा देती है पर उसका आरम्भिक सुख मनुष्य नही छोडना चाहता। 'ईर्ष्या खुजली है।' इसका प्रभाव भी प्रारम्भ से ही पीड़ा से आरम्भ होता है, पर मनुष्य खुजलाना नही छोडता। ईर्ष्या मे जलता हुआ मनुष्य जलन को ही सुख समझता है। 'हर्ष और विषाद हृदय के लिए गरह रोग की तरह है‡।' गरह रोग रोगी के गले को पकड लेता है और उसे बोलने तक नही देता। इसी तरह सासारिक सुख और दुःख से सम्बद्ध लोभ और भय, स्वार्थ साधन का लोभ और स्वार्थ-हानि का भय मनुष्य की वाणी को कुठित किये रहते है। वह हृदय से जो अनुभव करता है उसे बोल देने के लिए अपने को स्वतत्र अनुभव नही करता। उसकी सत्यप्रियता और निर्भीकता पर हर्ष और विषाद की स्वार्थगत भावनाएं अभिशाप बन कर छा जाती है।

अपने विवेचन को अग्रसर करते हुए भुशुडि गरुड से कहते है—'दूसरे के सुख को देख कर जो जलन पैदा होती है वही हृदय के लिए क्षय रोग है।' यह जलनरूपी क्षयरोग मनुष्य के मन की महानता को नष्ट करता हुआ उसे क्षीण और क्षुद्र बना देता है। अहकार अति दुखदायी घुटनों की गाँठ का रोग है। यह रोग खड़े हुए मनुष्य को बैठ तो जाने देता है, पर बैठे हुए को उठने नही देता। बड़ी पीड़ा पहुँचाता है। उसी तरह अहकार मनुष्य के गौरव को पतन की ओर तो ले जाता है, पर पतित को महत्त्व की ओर उठने नही देता और आसक्ति के कारण पीडा पहुँचाता रहता है। 'दभ, कपट, मद और मान नहरुआ रोग की तरह है।' नहरुआ में चमडे को छेद कर ऊपर निकली हुई नस की वृद्धि होती है। इसे जितना काटा जाए उतना ही यह नस बढ़ती जाती है और पीडा पहुँचाती है। दभ, कपट, मद और मान इत्यादि भी वैसे ही सतापदायक और वर्धिष्णु होते है। 'लालच जलोदर रोग की तरह है।' जलोदर बढ़ते-बढ़ते रोगी को मृत्यु के पास पहुँचा देता है और लालच भी मृत्यु का द्वार है। 'धन, प्रतिष्ठा और अधिकार की त्रिविध इच्छा तिजरा ज्वर की तरह है।' यह मनुष्य को जल्दी नहीं छोडती और सताप देती रहती है। 'मत्सर और अविवेक शीत और उष्ण ज्वर की तरह है।' ये कुरोग अनत है†।

'एक व्याधि से ही मनुष्य मर सकता है पर ये तो मन की अनत असाध्य व्याधियाँ हैं। ये जीव को निरन्तर पीडा पहुँचाती रहती हैं। वह किस तरह समाधि की अवस्था को

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२० के बाद। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२१ के पहले।

प्राप्त कर सकता है। नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप तथा दान इत्यादि असख्य औषधियो से भी ये रोग दूर नही होते ‡।'

'इस तरह सब जीव शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग से रुग्ण रहते है। ये मानस रोग दिखाई तो सबको पडते हैं, पर इन्हे कोई विरला ही पहचानता है। ये पापी रोग पहचान मे आ जाने पर कुछ मन्द पड जाते है, परजन-परितापी स्वभाव वाले ये दुष्ट नष्ट नही होते। विषयो के कुपथ्य पा कर ये मुनियों के हृदय मे भी अकुरित हो जाते है। साधारण दुर्बल मनुष्य की तो कोई बात ही नही। यदि सयोग से राम की कृपा प्राप्त हो जाए, तो ये सब रोग नष्ट हो जाते है। इस रोग के लिए सद्गुरु वैद्य है। उसके शब्दों पर विश्वास और विषयों की आशा का अभाव रोगी का संयम है। राम की भक्ति सजीवनी जडी है। पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विकसित बुद्धि इस रोगी के लिए अनुपान का काम करती है †।" सद्गुरु के शब्दो पर विश्वास करके यदि मानस रोगी विषयो का साथ छोड दे और पूर्ण श्रद्धा तथा पूर्ण विकसित बुद्धि की सहायता से रामभक्ति को अपने हृदय मे उत्पन्न कर ले, तो उसके सब मानस रोग दूर हो जाते हैं। 'रामभक्ति को छोड़ कर अन्य करोडों उपायों से भी यह रोग नष्ट नही होता $।'

गोस्वामी जी के भुशुडि ने गरुड से मानस रोग के अभाव के लक्षण भी बताये है। उन्होंने गरुड से कहा है कि जब मानस रोगी के हृदय मे विराग की अधिकता उत्पन्न हो जाए, सुबुद्धि की भूख नित्य नया रूप ले कर जब उत्पन्न होने लगे, विषयों की आशारूपिणी दुर्बलता जब समाप्त हो जाए और मन, विमल ज्ञान के जल से स्नान कर चुके, तभी उसके हृदय मे रामभक्ति छा जाती है और मानस रोग समूल नष्ट हो जाते है *।

गोस्वामी जी के अनुसार केवल हरिभक्ति ही सुख का अतिम उपाय है। उनके कागभुशुडि ने गरुड से कहा है—'शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादि तथा नारद इत्यादि ब्रह्मज्ञान पारगत मुनियों ने अतिम निर्णय यही दिया है कि मनुष्य को रामचरण से प्रीति करनी चाहिए। श्रुति पुराण तथा सब ग्रन्थ यही कहते है कि रघुपति के बिना सुख नही मिल सकता। कछुए की पीठ पर चाहे बाल निकल आएँ, वध्या के पुत्र का चाहे कोई वध करे, चाहे आकाश मे विविध प्रकार के पुष्प फूलने लगें, इतनी असम्भव घटनाएँ चाहे होने लगें, पर जीव को राम के विरुद्ध रहने पर सुख नही मिल सकता। चाहे मृगजल से प्यास बुझ जाए, खरगोश के सिर पर चाहे सीग निकल आए, अधकार चाहे सूर्य का ही नाश कर सके, लेकिन राम के विमुख हो कर जीव सुख नही पा सकता। हिम से चाहे आग पैदा हो जाए, पर राम के विरुद्ध रह कर कोई सुख नही पा सकता।'

'जल का मथन करने पर चाहे घी मिल जाए, रेत के भीतर से चाहे तेल निकल आए, पर बिना हरिभजन के ससार को पार करना असम्भव है। राम मच्छर को ब्रह्मा

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२१। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२१ के बाद। $ वही। * रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२१ के बाद, पक्ति ९ से ११ तक।

और ब्रह्मा को मच्छर से भी हीन बना सकते है। ऐसा विचार करके, सदेह को छोड कर बुद्धिमान लोग राम का भजन करते है। मै पूरे निश्चय के साथ कहता हूँ, मेरी यह वाणी कभी असिद्ध न होगी कि राम का भजन करने वाले अति दुस्तर को भी पार कर सकते है ‡।'

इस तरह अविरल हरिभक्ति के लिए उपयोगी जानकारी दे देने के बाद गोस्वामी जी अपनी दैन्यपूर्ण रामप्रार्थना से उपसहार करते हुए कहते है—'मेरे समान दीन और आपके समान दीन का हितेच्छु कोई नही है। ऐसा सोच कर, हे रघुनाथ, आप ससार के हमारे भार को हल्का करे। जिस तरह कामी को नारी प्रिय होती है, लोभी को धन प्रिय होता है उसी तरह आप मुझे निरन्तर प्रिय लगे †।' यहाँ 'निरन्तर' शब्द से गोस्वामी जी ने अविरल हरिभक्ति का उपसंहार किया है।'

रामायण का सक्षिप्त ऐतिहासिक तथा महत्त्वसम्बन्धी उपसहार सस्कृत के दो श्लोकों से करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—'श्रीराम के चरणकमल की निरन्तर भक्ति प्राप्त करने के लिए सुकवि प्रभु शकर ने जिस दुर्गम रामायण की सृष्टि की, राम के नाम मे निरत उस रामायण का चिन्तन करके तुलसीदास ने अपने हृदय के अन्धकार को शांत करने के लिए इस रामायण की रचना भाषा मे की $।'

'जो लोग इस पवित्र, पापहर, निरन्तर मगलकारक, विज्ञान और भक्ति देने वाले, माया और अज्ञान के कलुष को नष्ट करने वाले, शुभ और स्वच्छ प्रेम के जल से भरे हुए रामचरितमानस मे भक्ति से स्नान करते है, वे ससाररूपी सूर्य की घोर किरणों से कभी नही जलते *।'

इस तरह मानव के शील के कलुष को नष्ट करके पूर्ण मानव के निर्माण की अपनी भक्तिमयी योजना को रामायण मे गोस्वामी जी ने सफल उपसहार तक पहुँचा दिया है। उनके शिव के अनुसार—"एहि महं रुचिरसप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पन्थाना §।" मानस के सात सोपान रामभक्ति के पथ का निर्माण करते है और उन सातों सोपानो पर चढता हुआ मानव, जीवन की हर स्थिति के लिए पूर्ण पुरुष बन सकता है। तुलसी के मानस के भीतर प्रतिपादित इस व्यवहारदर्शन और अध्यात्मदर्शन का अध्ययन कर लेने के उपरान्त गोस्वामी जी की सम्पूर्ण व्यावहारिक अध्यात्मदर्शन (प्रैक्टिकल फ़िलासफ़ी) की योजना का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

तुलसी साहित्य के और ग्रन्थों मे व्यावहारिक अध्यात्मदर्शन से सम्बद्ध इसी आदर्शोन्मुखी अविरल हरिभक्ति और उसकी प्राप्ति के उपायों का चित्रण मात्र है। विनय पत्रिका अविरल हरिभक्ति की वह अजस्र प्रवाहिणी धारा है जिसमें जीवन के सब क्षेत्रों को पवित्र

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२१ के बाद की पक्ति १२ से दोहा १२२ के बाद के श्लोक तक। † रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १३०। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, मगलान्त श्लोक १। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, मगलान्त श्लोक २। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२८ के बाद।

करने की शक्ति है। दोहावली में अविरल हरिभक्ति को प्रकाशित करने वाले रत्न भरे पड़े है। कृष्ण गीतावली मे अविरल हरिभक्ति के भीतर अनत रूपों में राम को देखने की चेतना निवास करती है। वैराग्य सदीपनी में अविरल हरिभक्ति में प्रयुक्त विराग के स्वच्छ और मधुर जल की वापियाँ दिखाई पड़ती है। कवितावली मे भी गोस्वामी जी का कवित्व भाव प्रवण हो कर अविरल हरिभक्ति की ही साधना कर रहा है। गीतावली मे यही अविरल हरिभक्ति जीवन के सब खंडों को कोमल और मधुर बनाने के लिए मधुरभावमयी सरिता के रूप मे प्रवाहित हो रही है।

जीवन को अनत बनाने की अपार साधना की सिद्धि प्राप्त करके तुलसी विश्व में अमर हो गये हैं।

अध्याय ९

तुलसी के मानसेतर ग्रंथ

यह बिलकुल स्पष्ट है कि गोस्वामी जी की अनन्य प्रेमनिष्ठा अवतारी राम पर ही स्थिर है। पर अद्वैत का साधक एक मे ही अनत को देखता है। मानस मे यह स्थिति अनेक बार स्पष्ट हो गयी है। गोस्वामी जी ने 'सियाराममय सब जग' ‡ की अपनी साधना-भूमि से इसी बात को स्पष्ट किया है। 'सियाराममय सब जग' की इस साधना-भूमि पर अपना निरन्तर दृढ निवास बना कर रहने वाला तुलसी का साधक नाम-भेद और रूप-भेद को मिटा देने के लिए सब नामो और रूपों का भी समन्वय कर लेना है। वैष्णव साधना के भीतर राम और कृष्ण की उपासना नारायण, विष्णु या हरि के अवतारों के रूपो में होती है। मुख्यत. नारायण की उपासना करने वाला राम और कृष्ण की उपासना भी प्रायः कर ही लेता है। नारायण और राम की उपासना अपनी समग्र साहित्य साधना के भीतर करते हुए भी गोस्वामी जी ने कृष्णोपासना की एक व्यापक भावधारा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए राम के कृष्णरूप की उपासना करके 'श्रीकृष्ण गीतावली' में अपने को सूर का भी अनुगामी बना लिया है। यह समन्वय केवल मेल जोल की ऊपरी आवश्यकताओं के लिए गोस्वामी जी ने नही किया है, अपितु एक ही नारायण हरि के दो व्यापक रूपो को एक मे मिला कर अपनी सत्ता की समग्रता से राम और कृष्ण के अभेद को अनुभव करके उन्होंने अपना हृदय राम और कृष्ण के इस द्वैत के अद्वैत को दे दिया है। यह निश्चित है कि सत की इस स्वीकृति का प्रभाव साधारण लोगो के भी सीमा-बन्धनों को काट कर उन्हे अद्वैत की ओर मोड लेता है। पर यह आवश्यकता, सत की इस समन्वय साधना मे प्राथमिकता नही प्राप्त करती। वह तो स्वभाव से ही समन्वयवादी होता है और उसके इस स्वभाव का प्रभाव सामान्य जनता पर अपनी स्वाभाविक पवित्रता की शक्ति के कारण अवश्य पड़ता ही है। सत के इसी स्वभाव के अनुसार सूरदास जी ने भी राम की साहित्यिक उपासना की है।

अतः 'सियाराममय सब जग' की साधनाभूमि के ऊपर ही 'चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल †' की उपासना का रग चढ़ा कर गोस्वामी जी ने अपनी मुख्य उपासना का बड़ा ही सात्त्विक और आकर्षक शृंगार कर लिया है। इस तरह राम और गोपाल के नाम और रूप को एक मे मिला कर गोस्वामी जी ने अवतारी राम और अवतारी कृष्ण को

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। † विनयपत्रिका, विनय सख्या २०३।

एक साथ देखते हुए ब्रह्म राम की अद्वैत-परक उपासना की है। उनकी यह साधना 'श्रीकृष्ण गीतावली' की साहित्यिक सृष्टि के भीतर पूरी हुई है। राम और कृष्ण के रूपों का नारायण हरि मे समन्वय कर लेने की प्रवृति तुलसी के भी पहले कलिसतरणोपनिषद् के काल में दिखाई पडती है। कलिसतरणोपनिषद् मे एक ही मन्त्र मे 'हरे राम' और 'हरे कृष्ण' के उच्चारणो के द्वारा राम और कृष्ण, हरि मे समन्वित कर लिये गये है। इस भावधारा को गोस्वामी जी ने भी अपनी साहित्यिक साधना मे अक्षुण्ण रखा है।

कलिसतरणोपनिषद् के इस समन्वय पर विचार करने के पहले अपने 'तुलसीदर्शन' मे डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्०, महोदय ने लिखा है। जान पडता है कि जानबूझ कर गोस्वामी जी ने यहाँ विष्णु भगवान् के अन्य सब नामों की अपेक्षा 'हरि' नाम को विशेष महत्त्व दिया है। 'हरि' शब्द का अर्थ करते हुए जगद्गुरु शकराचार्य जी 'विष्णु सहस्रनाम' की टीका में लिखते है—"स्मृतिमात्रेण पुसा पाप हरति इति, हरिद् वर्णत्वाद्वा हरि। हराम्यह च स्मर्तृणा हविर्भाग क्रतुष्वह वर्णश्च मे हरिदिति तस्माद्धरिरहं स्मृतः। इति भगवदवचनात्‡" डॉ० मिश्र का अभिप्राय यही है कि शील की दृष्टि से नारायण के नामो मे से 'हरि' नाम सर्वोत्कृष्ट शीलव्यजक है। यह नाम स्मरणमात्र से पापों को, शील के अभाव को हर लेता है। इसीलिए यह 'हरि' शब्द से व्यवहृत होता है। अपने इस अभिप्राय का उपसहार करते हुए डॉ० मिश्र ने लिखा है—"इसलिए आराध्य के उत्कृष्ट गुणों का द्योतन करने के लिए यह शब्द सर्वथैव उपयुक्त है†।"

इसके बाद डॉ० मिश्र ने राम और कृष्ण के नामो का हरि के नाम से घनिष्ठ सम्बन्ध बताने के लिए कलिसतरणोपनिषद् के नारद और ब्रह्मा के सवाद को उद्धृत कर 'हरे राम' और 'हरे कृष्ण' के उच्चारो से अकित कलिसतरण मंत्र का हवाला दिया है $। अततः इस प्रकरण के अत मे डॉ० मिश्र जी ने लिखा है—'हरि-चरित्र मानस तुम्ह गावा' आदि वाक्यो मे गोस्वामी जी ने राम के लिए 'हरि' शब्द का प्रयोग किया है और 'जीह जसोमति हरि हलधर से' कह कर उन्होंने कृष्ण के लिए भी 'हरि' शब्द का प्रयोग किया है। इसलिए रामभक्ति और कृष्णभक्ति को एक ही भक्ति की दो शाखाएँ अथवा एक ही भक्ति के दो रूप बताने के अभिप्राय से गोस्वामी जी ने यहाँ हरिभक्ति की बात कही है। विरति और विवेक का विशेष उपयोग करने से उन्होंने कृष्णभक्ति की अपेक्षा रामभक्ति को श्रेष्ठ अवश्य समझा परन्तु उनकी रामभक्ति समूची हरिभक्ति का विशुद्धतम रूप बन कर ही रही *।"

इसी सिद्धान्त के अनुसार हरि के रामरूप की व्यापक उपासना अपने जीवन और साहित्यिक साधना के भीतर करके गोस्वामी जी ने 'समूची हरिभक्ति' का 'विशुद्धतम रूप' उसे देने के लिए श्रीकृष्ण गीतावली लिखी। ऐसा करके अपने हृदय की अद्वैत भावना का पवित्र रूप ससार को वरदान के रूप में उन्होंने दिया है।

---

‡ तुलसी दर्शन, पृष्ठ २४०। † वही, पृष्ठ २४१। $ वही, पृष्ठ २४१ * वही, पृष्ठ २४१।

अध्याय ९

तुलसी के मानसेतर ग्रंथ

यह बिलकुल स्पष्ट है कि गोस्वामी जी की अनन्य प्रेमनिष्ठा अवतारी राम पर ही स्थिर है। पर अद्वैत का साधक एक मे ही अनन्त को देखता है। मानस मे यह स्थिति अनेक बार स्पष्ट हो गयी है। गोस्वामी जी ने 'सियाराममय सब जग' ‡ की अपनी साधना-भूमि से इसी बात को स्पष्ट किया है। 'सियाराममय सब जग' की इस साधना-भूमि पर अपना निरन्तर दृढ निवास बना कर रहने वाला तुलसी का साधक नाम-भेद और रूप-भेद को मिटा देने के लिए सब नामों और रूपों का भी समन्वय कर लेना है। वैष्णव साधना के भीतर राम और कृष्ण की उपासना नारायण, विष्णु या हरि के अवतारों के रूपो मे होती है। मुख्यत. नारायण की उपासना करने वाला राम और कृष्ण की उपासना भी प्राय: कर ही लेता है। नारायण और राम की उपासना अपनी समग्र साहित्य साधना के भीतर करते हुए भी गोस्वामी जी ने कृष्णोपासना की एक व्यापक भावधारा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए राम के कृष्णरूप की उपासना करके 'श्रीकृष्ण गीतावली' में अपने को सूर का भी अनुगामी बना लिया है। यह समन्वय केवल मेल जोल की ऊपरी आवश्यकताओं के लिए गोस्वामी जी ने नहीं किया है, अपितु एक ही नारायण हरि के दो व्यापक रूपो को एक मे मिला कर अपनी सत्ता की समग्रता से राम और कृष्ण के अभेद को अनुभव करके उन्होंने अपना हृदय राम और कृष्ण के इस द्वैत के अद्वैत को दे दिया है। यह निश्चित है कि सत की इस स्वीकृति का प्रभाव साधारण लोगों के भी सीमा-बन्धनों को काट कर उन्हे अद्वैत की ओर मोड लेता है। पर यह आवश्यकता, सत की इस समन्वय साधना मे प्राथमिकता नही प्राप्त करती। वह तो स्वभाव से ही समन्वयवादी होता है और उसके इस स्वभाव का प्रभाव सामान्य जनता पर अपनी स्वाभाविक पवित्रता की शक्ति के कारण अवश्य पडता ही है। सत के इसी स्वभाव के अनुसार सूरदास जी ने भी राम की साहित्यिक उपासना की है।

अत: 'सियाराममय सब जग' की साधनाभूमि के ऊपर ही 'चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल †' की उपासना का रग चढ़ा कर गोस्वामी जी ने अपनी मुख्य उपासना का बड़ा ही सात्त्विक और आकर्षक शृंगार कर लिया है। इस तरह राम और गोपाल के नाम और रूप को एक मे मिला कर गोस्वामी जी ने अवतारी राम और अवतारी कृष्ण को

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। † विनयपत्रिका, विनय सख्या २०३।

एक साथ देखते हुए ब्रह्म राम की अद्वैत-परक उपासना की है। उनकी यह साधना 'श्रीकृष्ण गीतावली' की साहित्यिक सृष्टि के भीतर पूरी हुई है। राम और कृष्ण के रूपों का नारायण हरि मे समन्वय कर लेने की प्रवृति तुलसी के भी पहले कलिसतरणोपनिषद् के काल में दिखाई पडती है। कलिसतरणोपनिषद् मे एक ही मन्त्र मे 'हरे राम' और 'हरे कृष्ण' के उच्चारणो के द्वारा राम और कृष्ण, हरि मे समन्वित कर लिये गये है। इस भावधारा को गोस्वामी जी ने भी अपनी साहित्यिक साधना मे अक्षुण्ण रखा है।

कलिसतरणोपनिषद् के इस समन्वय पर विचार करने के पहले अपने 'तुलसीदर्शन' मे डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्०, महोदय ने लिखा है। जान पडता है कि जानबूझ कर गोस्वामी जी ने यहाँ विष्णु भगवान् के अन्य सब नामों की अपेक्षा 'हरि' नाम को विशेष महत्त्व दिया है। 'हरि' शब्द का अर्थ करते हुए जगद्गुरु शकराचार्य जी 'विष्णु सहस्रनाम' की टीका मे लिखते है—"स्मृतिमात्रेण पुसा पाप हरति इति, हरिद् वर्णत्वाद्वा हरि। हराम्यह च स्मर्तृणा हविर्भाग क्रतुष्वह वर्णश्च मे हरिदिति तस्माद्धरिरहं स्मृत.। इति भगवद्वचनात्‡" डॉ० मिश्र का अभिप्राय यही है कि शील की दृष्टि से नारायण के नामों मे से 'हरि' नाम सर्वोत्कृष्ट शीलव्यजक है। यह नाम स्मरणमात्र से पापो को, शील के अभाव को हर लेता है। इसीलिए यह 'हरि' शब्द से व्यवहृत होता है। अपने इस अभिप्राय का उपसहार करते हुए डॉ० मिश्र ने लिखा है—"इसलिए आराध्य के उत्कृष्ट गुणो का द्योतन करने के लिए यह शब्द सर्वथैव उपयुक्त है†।"

इसके बाद डॉ० मिश्र ने राम और कृष्ण के नामों का हरि के नाम से घनिष्ठ सम्बन्ध बताने के लिए कलिसतरणोपनिषद् के नारद और ब्रह्मा के सवाद को उद्धृत कर 'हरे राम' और 'हरे कृष्ण' के उच्चारो से अकित कलिसतरण मंत्र का हवाला दिया है $। अततः इस प्रकरण के अत मे डॉ० मिश्र जी ने लिखा है—'हरि-चरित्र मानस तुम्ह गावा' आदि वाक्यो मे गोस्वामी जी ने राम के लिए 'हरि' शब्द का प्रयोग किया है और 'जीह जसोमति हरि हलधर से' कह कर उन्होंने कृष्ण के लिए भी 'हरि' शब्द का प्रयोग किया है। इसलिए रामभक्ति और कृष्णभक्ति को एक ही भक्ति की दो शाखाएँ अथवा एक ही भक्ति के दो रूप बताने के अभिप्राय से गोस्वामी जी ने यहाँ हरिभक्ति की बात कही है। विरति और विवेक का विशेष उपयोग करने से उन्होंने कृष्णभक्ति की अपेक्षा रामभक्ति को श्रेष्ठ अवश्य समझा परन्तु उनकी रामभक्ति समूची हरिभक्ति का विशुद्धतम रूप बन कर ही रही *।"

इसी सिद्धान्त के अनुसार हरि के रामरूप की व्यापक उपासना अपने जीवन और साहित्यिक साधना के भीतर करके गोस्वामी जी ने 'समूची हरिभक्ति' का 'विशुद्धतम रूप' उसे देने के लिए श्रीकृष्ण गीतावली लिखी। ऐसा करके अपने हृदय की अद्वैत भावना का पवित्र रूप ससार को वरदान के रूप में उन्होंने दिया है।

---

‡ तुलसी दर्शन, पृष्ठ २४०। † वही, पृष्ठ २४१। $ वही, पृष्ठ २४१ * वही, पृष्ठ २४१।

श्रीकृष्ण गीतावली मे वात्सल्य भक्ति के सुन्दर चित्र गोस्वामी जी ने अंकित किये हैं। वात्सल्य एक ऐसा निश्छल, निर्मल और स्वार्थो से ऊपर उठा हुआ भाव है जिसमें भक्ति की पवित्र सिद्धि अनायास ही हो जाती है। वात्सल्य हृदय की एक ऐसी स्थिति है जिसमे स्वार्थो के लिए द्वार, नैसर्गिक रूप से प्राय: बंद ही रहते है। प्रायः सब माता-पिता अपनी सन्तान के लिए, विशेषत. उसकी शैशवावस्था मे, अपने हृदय के भीतर वात्सल्यमय प्रेम को ही स्थान देते है। वहाँ स्वार्थ प्रायः नही ही रहता। इसीलिए सब सत लोग भगवान् के बालरूप से प्रेम करना नही भूलते। कबीर के समान सत स्वय ही राम का 'बालिग' बन जाता है। वह अपने राम के भीतर माता की वत्सलता देखता है और स्वय बालक बन कर कह उठता है—"हरि जननी मै बालिग तेरा ‡।" पुरुष की अपेक्षा नारी का हृदय अधिक कोमल होता है। इसलिए पिता की अपेक्षा माता का वात्सल्य अधिक कोमल होता है। जननी की गोद बालक की सहज, स्वाभाविक और नैसर्गिक निवासभूमि है। माता के बहुत बड़े बलिदान से बालक का निर्माण होता है। इसलिए अपने त्याग को सगुणरूप मे अपनी गोदी मे पा कर माता अपने त्यागमय स्नेह से बालक के रूप के भीतर अपने साकार त्याग की उपासना करती रहती है। इसीलिए सूर के कृष्ण के लिए नैसर्गिक वात्सल्य का वरदान नन्द की अपेक्षा यशोदा को अधिक प्राप्त है।

इसी नैसर्गिक सिद्धान्त के आधार पर गोस्वामी जी की श्रीकृष्ण गीतावली में पहले ही पद की पहली ही पक्ति मे 'माता लै उछग गोविन्द मुख बार-बार निरखै' अंकित हुआ है। गोस्वामी जी की यशोदा पुलकित हो उठती है। उनके मन मे 'आनन्दघन' से 'छन-छन' मे हर्ष की वर्षा होती रहती है। उस 'अतिसय सुख' के आनन्द से उनकी 'रसना मौन, हो गयी है। श्रीकृष्ण गीतावली के एकसठ गीतों मे से सत्रह को यशोदा के इसी प्रेम पर गोस्वामी जी ने निछावर कर दिया है।

इसी निश्छल प्रेमानन्द की वात्सल्य भक्ति से गोस्वामी जी के श्रीकृष्ण ने 'ब्रज-जन' के हृदय को सीच कर कलुषमुक्त कर दिया है। स्वार्थो के धुल जाने से सब ब्रज-जन परम हित की अवस्था में पहुँच गये है। जब गोस्वामी जी के 'प्रभु, प्रेमबस्य मनुज-रूप-धारी' हो जाते है तब प्रारम्भ में ही अपनी 'बालकेलि' के 'लीला रस' से ब्रज-जन के हृदय को स्वार्थमुक्त कर परम पावन बना देते है †। वात्सल्य भक्ति की यह निश्छल पवित्रता मुनियों और देवताओं को भी दुर्लभ होती है। वे भी इसके आकर्षण से आकृष्ट हो जाते है। गोस्वामी जी के बालकृष्ण अपनी तोतली बोली के माधुर्य से मुनियों के भी मन को चुरा लेते है—"मुनिमन हरत बचन कहै तोतरात $।" नन्दलाल के इसी 'सत-सुर-सरबस बाल-जस' से आकृष्ट हो कर गोस्वामी जी का हृदय गा उठता है—"नन्दलाल-बालजस सत सुर-सरबस गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो है *।" वात्सल्य के जिस अमृत रस का पान नन्द, यशोदा और ब्रज के लोग कर रहे हैं, उसी के अनंत माधुर्य का पान गोस्वामी जी ने भी

‡ कबीरग्रंथावली, पृष्ठ १२३, पद १११। † कृष्णगीतावली, पद १। $ वही पद २।
* वही, पद १६।

कर लिया। इस स्थिति में भी उन्हे राम के दास, स्वामी और सखा, शिव नही भूले है। वे अपनी यशोदा से यही पूछते है—"कौन जाने कौने तप, कौने योग, जाग, जप कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है ‡।"

वात्सल्य भक्ति के सिद्ध मानव का स्थान सूर और तुलसी इत्यादि उपासकों के अनुसार देवताओ, ज्ञानियों और सिद्धों से भी उच्चतर है। गोस्वामी जी के 'ब्रजवासियों' को 'विबुध' और 'सिद्ध' सिहाते है। देवता तथा ज्ञानसिद्ध महात्मा भी ब्रज के, वात्सल्य भक्ति के सिद्ध मानव को देख कर आश्चर्य मे पड जाते है। हृदय की उच्चतम प्रेमसाधना के द्वारा ब्रज के मनुष्यों का हृदय वासनामुक्त हो कर इतना पवित्र हो गया कि उनको देख कर देवता और सिद्ध ज्ञानी भी अपने को हीन समझने लगे। भक्ति के सहारे मनुष्य देवता से भी अधिक उच्चतर शील की विकास-भूमि पर पहुँच जाता है।

श्रीकृष्ण गीतावली मे शृगार-भक्ति का माधुर्य भाव भी बड़े कोमलतम हृदय के कोष मे सुरक्षित है। वात्सल्य की सात्त्विक पवित्रता की तरह ही पावन पवित्रता, शृगार के का आवेगपूर्ण त्याग मे होती है। त्याग की उच्चतम भूमि वात्सल्य और शृगार के दोनो पथो के यात्रियों को प्राप्त हो जाती है। यही अनुभव करके सूर ने इन दोनो जीवन-क्षेत्रों को अपनी भक्तिसाधना के लिए चुना था। उसी मार्ग की श्रेयस्करता के सम्बन्ध मे स्वीकृति व्यक्त करने के लिए गोस्वामी जी ने भी गोपीकृष्ण के शृगाराद्वैत के विकास को चित्रित किया है। यह शृगार का अद्वैत इतना प्रभावशाली है कि इसकी धारा के भीतर जगत् के सब द्वैत विलीन हो जाते है। कृष्ण के सम्बन्ध मे यशोदा को उलाहना देने की तैयारी करके आयी हुई गोपी भी उनके सौन्दर्य-सिन्धु मे इस तरह निमग्न हो जाती है कि उसके सब उलाहने भूल जाते है। शृगार के इसी अद्वैत भाव का इगित देने के लिए गोस्वामी जी ने कहा है—'तुलसिदास प्रभु मुख छबि निरखत मन सब जुगुति बिसारी †।'

शृगार के माधुर्यभाव के इस आवेग के साथ स्वार्थमयी वासनाओं के ऊपर उठ कर उपास्य के रूपमाधुर्य मे लीन हो जाने की इसी मगलमयी स्थिति का पता देने के लिए सत कबीर ने भी अपने को 'हरि की बहुरिया $' कह दिया है। 'दुलहिन' को शृगार करके 'राम भरतार' की प्रतीक्षा करने का आदेश जब कबीर देते है, तब वे माधुर्यभाव की इसी आवेगपूर्ण तल्लीनता की ओर इशारा करते है *। 'जो सुख चहै तो लज्जा त्यागै, पियसे हिलिमिलि लागै §।' से भी वे आत्मा के पवित्र माधुर्यभाव की अद्वैतता की ओर ही इशारा देते है जिसे प्राप्त कर वह आनदमय परमात्मा से मिलन के अद्वैत मे एकाकार हो जाती है। इस माधुर्यभाव की पवित्रता का सकेत कई बार सतो ने दिया है। 'सीवं न चापि सको कोऊ, तब जब हुते राम कन्हाई ×' मे कृष्ण के सामने काम और उसकी सेना की असमर्थता की चर्चा ही की गयी है। परमात्मा की उपासना के जागृत रहने पर वासना

‡ कृष्णगीतावली, पद १६। † वही, पद ६। $ कबीरग्रंथावली, पृष्ठ १२५, पद ११७।
* कबीरग्रथावली, पृष्ठ ८७, पद १। § 'कबीर', डॉक्टर हजारीप्रसाद लिखित, पद १८४।
× कृष्णगीतावली, पद ३२।

कहाँ टिक सकती है ‡ । कबीर के 'अब हरि हैं मैं नाहि †' का भी तो यही अभिप्राय है कि हृदय मे हरि के आ जाने पर 'मैं' से सम्बन्ध रखने वाली वासना की ममता नही रह जाती ।

लोक जीवन के भीतर भी भारतीय नारी ने अपने दाम्पत्य प्रेम को उपासना के उच्चतम स्तर पर पहुँचा दिया था । अपने हृदय के सिहासन पर से वासना को पदच्युत करके उसने उस पर उपासना को प्रतिष्ठित कर अपने उस हृदय को गौरवमय बना दिया था । उसका हृदयस्थित पति, परमेश्वर बन गया था और उसकी त्यागमयी सेवा करके वह उपासना ही कर रही थी । उसका प्रेम, भक्ति बन गया था । इसी प्रेमभक्ति को सूरदास ने गोपी-कृष्ण के प्रेम मे चित्रित किया है । दाम्पत्य जीवन की प्रेमभक्ति और भक्त-जीवन की प्रेमभक्ति मे अन्तर केवल इतना ही रहता है कि पहले मे पति का सम्बन्ध वासना से मुक्त हो कर परमात्मा का सम्बन्ध बन जाता है और दूसरे मे परमात्मा की ही पतिभाव से वासनाविहीन उपासना की जाती है । पहले मे पति, पति रहते हुए भी परमात्मा बन जाता है और दूसरे मे परमात्मा, परमात्मा रह कर भी पति बन जाता है । गोपियाँ परमात्मा के रूप मे उस पति की उपासना करती है जो उनके पतियो का भी पति है, जो जगत्पति है । भारतीय नारी अपने पति को ही परमात्मा समझ कर उसकी उपासना करती है । इन दोनो स्थितियो मे अनासक्तिमय स्वार्थरहित प्रेम-योग की उच्चभूमि पर हृदय की एक ही तरह की पवित्र परिणति होती है । दोनो मे कोई भेद नही है । भारतीय नारी के सम्मुख जब पति रहता है तब वह उसकी परमात्मा रूप मे स्वार्थरहित उपासना करती है और जब परमात्मा उसके समक्ष रहता है तब वह उसकी स्वार्थरहित उपासना उसे पति-रूप मे देख कर करती है । गोपियो का प्रेमयोग इसी दूसरे मार्ग का प्रेमयोग है ।

अनत के जिस प्रेम-योग को प्राप्त करके उसकी अनतता को व्यक्त करते हुए मैथिल कोकिल विद्यापति कह उठे थे—"जनम अवधि तव रूप निहारलि नयन न तिरपित भेल $ ।" उसी अनत के प्रेमयोग के अनत गौरव को व्यक्त करते हुए गोस्वामी जी भी कह उठते है—"जदुपति मुख छबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी । तुलसि-दास जेहि निरखि ग्वालिनी भजी तात, पति, तनय बिसारी * ।" अनत सुन्दर का अनत माधुर्यमय रूप कैसे छोड़ा जा सकता है । पिता, पति और पुत्र तो इसीलिए प्रिय होते है कि उनके भीतर भी अनत का निवास है और जब अनत स्वय सम्मुख हो कर प्रकट होता है, तब पिता, पुत्र और पति का बाधक बन्धन साधक आत्मा को कैसे बाँध सकता है । ऐसी स्थिति मे जगत् के द्वैत-प्रधान भेदात्मक सम्बन्धों से ऊपर उठ कर आत्मा अद्वैत कृष्ण मे लीन हो जाती है । गोपियों का प्रेमयोग इसी तरह का है । अपूर्ण जीव के साथ रहने वाला पूर्ण जब स्वय दिखाई पड़ जाता है । तब साधक का सिद्ध मन पति, पिता और पुत्र को छोड़ कर पूर्ण परमात्मा की ओर चला जाता है ।

---

‡ कृष्णगीतावली, पद ३२ । † कबीरग्रथावली, नागरी प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ १५, दोहा ३५ । $ 'विद्यापति', खगेन्द्रनाथ मित्र द्वारा सम्पादित, पद ७६८ । * वही, पद २० ।

यह अनत सुन्दर अपने सर्वतोन्मुख सौन्दर्य का ले कर केवल गोपियों को ही आकृष्ट नही करता, अपितु गोप-गोपी, गोमुन तथा चराचर को आकृष्ट करता है। इसीलिए गोस्वामी जी गोपाल' के उस 'चरणारविंद' की उपासना करते है जो 'गोकुल-बल्लभी-प्रिय' तथा 'गोपबल्लभ' और 'गोसुत बल्लभ भी है। इसके अतिरिक्त 'अनेक-काम-छबि' वाला वह चरण 'लोकाभिराम' है, सम्पूर्ण लोक को आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। वह राम के चरणों की तरह ही 'भूरि गुन करुनाकर' 'भवभय-मोचन' और 'तुलसीदास-त्रास-अपहरन' हैं। राम की तरह ही मर्यादापूर्ण गणो का केन्द्र बना कर गोस्वामी जी ने भगवान् कृष्ण के भव-कलुष-मोचन चरणो की ही उपासना की है। वे अवतार के साथ सम्बद्ध विश्व-वेदना के लोकव्यापी आदर्शो को कभी नही भूलते ‡।

शृगार-भक्ति के माधुर्य मे उपास्य और उपासक के मध्य मे जो अद्वैत उत्पन्न होता है उससे उपासक की अनन्य भक्ति का एक अनतमाधुर्य का सौन्दर्य प्राप्त हो जाता है। इस मधुर भाव को ले कर उपासक का हृदय उपास्य मे ऐसे अनत सौन्दर्य का अनुभव करने लगता है जिसमे जगत् भर का सौन्दर्य समा जाता है और अलग नही दिखाई पडता, केवल परम सुन्दर प्रिय ही अपनी अनतता के साथ अवशिष्ट रह जाता है।

सौन्दर्य के इस अनत महासागर से 'श्रीकृष्ण गीतावली' मे जब तुलसी की गोपियों का वियोग हो जाता है तब जल के बाहर फेकी हुई मछलियों की तरह उनकी दशा हो जाती है। पर जब वे 'निज नेह' को 'निहारती' है तब उन्हे यहा दिखाई पडता है कि 'समुझे सहे हमारो है हित'। ये अपने प्रेम के रहस्य का अन्तर्दर्शन करके यह समझ लेती है कि जिससे उन्होने प्रेम किया है वह 'सत्य, सनेह, सील, सोभा, सुख' तथा 'सब गुन' का 'अपार उदधि' है। सत्य, स्नेह, शील, शोभा, सुख तथा सब गुणों का अनत महासागर परम सुन्दर एक का नही, एक स्थान के भी लोगों का नही, वह तो सत्य की अनंतता का ही होता है। इसीलिए अनत जगत् के हित के लिए उसके वियोग को सह लेना उन्होंने अपना धर्म समझा। परम सुन्दर के प्रति अपने सात्त्विक प्रेम के अद्वैत मे तुलसी की गोपियों को यही अनुभव होता है कि 'जग दूजो न देखियत कान्हकुवर अनुहारि † ।'

मधुर प्रेमी की इसी अद्वैत भूमि पर पहुँच कर गोस्वामी जी ने अपने को श्रीकृष्ण गीतावली' की गोपियो के साथ एकाकार बना कर 'चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल $' और 'सियाराममय सब जग *' की भावभूमि पर गोपाल के भीतर 'राम के मधुर रूप का दर्शन कर लिया। उसने अपने राम के सत्य, स्नेह, शक्ति, शोभा, सुख और सब आदर्श गुणो के अनत महासागर का अपने कृष्ण मे भी दर्शन करके रामकृष्णैक्य की रसधारा प्रवाहित की है। उनका सिद्धान्त भी तो यही है—"भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जग जाल §।" गोस्वामी जी की भक्ति उस 'प्रेम-भगति-रस हरिरस ×' को प्रवाहित करती है,

---

‡ कृष्णगीतावली, पद १३। † कृष्णगीतावली, पद २७। $ विनयपत्रिका, पद २०३। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। § विनयपत्रिका, पद २०३। × वही, पद २०३।

जिसकी धारा अभेद की सुदृढ शीतल भूमि पर प्रवाहित होती है। उनके 'प्रेमभगति रस, हरिरस जानहिं दास, सम, सीतल, गतमान, ज्ञानरत, विषय-उदास ‡' का स्पष्ट इगित इसी दिशा की ओर है। वे यह स्पष्ट घोषणा करते है कि इस मार्ग पर चलने वाला 'त्रिविध सूल' की होली जला कर प्रेमानन्द का फाग खेलने लगता है। इसी दिशा की ओर विश्व को प्रेरित करते हुए वे लिखते है "त्रिविध सूल होरिय जरै, खेलिय अस फागु। जो जिय चाहि परम सुख तो यहि मारगु लागु †" इन्ही सिद्धान्तों के आधार पर भेद मे अभेद का दर्शन करके तुलसीदास जी ने राम की अनन्य साधना के साथ कृष्ण के वात्सल्य और मधुर भाव की साधना भी की है।

श्रीकृष्ण गीतावली मे भी प्रेम, ज्ञान से श्रेष्ठ माना गया है। इसी परम पवित्र माधुर्य भाव के सहारे, सूर की तरह ही, भ्रमर-गीत के प्रकरण मे गोस्वामी जी ने भी प्रेम को ज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। उद्धव से ज्ञान और योग का सन्देश पा कर गोस्वामी जी की गोपियाँ उनसे कहती है—"गये कर तें, घर ते, आँगन ते ब्रजहूँ तें ब्रजनाथ। तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु ते सो तो है हमारे हाथ $।" प्रेमी का मन प्रेमयोग की सिद्धि प्राप्त करके प्रिय मे केन्द्रित हो कर योगस्थ हो जाता है। वह प्रेमी के हाथ से, उसके नियन्त्रण से बाहर नही जा सकता। इस योग के कारण वह प्रियमय हो जाता है। योगभ्रष्ट और ज्ञानभ्रष्ट होने की सभावना, गोस्वामी जी के अनुसार बहुत दूर तक बनी रहती है। 'ज्ञानपथ कृपान के धारा। परत खगेस होइ नहि बारा *।' इसी बात की गवाही देता है। पर प्रेममार्ग पर कठिनाई के स्थान पर सरलता रहती है। 'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवई बरिआई §" से इसी सहज सरलता का सकेत मिलता है। प्रेम के इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर गोस्वामी जी की गोपियों का प्रेममार्गी मन सहज सिद्धि प्राप्त कर चुका है। वह उनके वश मे है। कृष्ण के ध्यान को छोड़ कर वह क्षण भर के लिए भी कही नही जा सकता। तन्मयता की सिद्धि जो योगी और ज्ञानी को बाद में प्राप्त होती है, वही प्रेमी को प्रारम्भ में ही प्राप्त हो जाती है और निरन्तर बढती ही जाती है। 'तुलसी त्यों-त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ×' इसी सत्य की गवाही देता है।

गोस्वामी जी की गोपियाँ अपने पावन प्रेम को प्रिय के आदर्श 'सुजस' के पालने पर पाल कर बड़ा करती जाती हैं। प्रिय का यह यश जितना बड़ा होता जाएगा, गोस्वामी जी की गोपियों का प्रेम भी उतना ही वृद्धिगत और पुष्ट होता जाएगा +। आदर्शवादी तुलसी की दृष्टि लोकमगल विधान की ओर बराबर रहती है, इसीलिए उनकी गोपियाँ भी विश्वमगल विधान करने वाला शील अपने प्रिय कृष्ण में देखती है। 'कस मारि जदुबस सुखी कियो, स्रवन सुजस सुनि जीजै ✢' से यह बात बिलकुल सिद्ध हो जाती है कि

‡ विनयपत्रिका, पद २०३। † वही। $ कृष्णगीतावली, पद ४३। * रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११८ के बाद। § वही। × कृष्णगीतावली, पद ४६। + वही। ✢ कृष्णगीतावली, पद ४६।

प्रिय का बढ़ता हुआ 'सुजस' जिस प्रेमी के हृदय मे उसके गौरव की वृद्धि करता रहता है, वही तुलसी के अनुसार आदर्श प्रेमी है। प्रिय यदि दर्शन नहीं देता तो कोई चिन्ता की बात नही, उसका लोकमगल विधायक सुयश ही प्रेमी के कानों तक अपने अमृतमय ध्वनिरूप मे पहुँच कर उसे जीवित रखेगा। गोस्वामी जी के अनुसार वह प्रेम धन्य है जो प्रिय की भावना के भीतर विश्व भर की रक्षा की भावना को स्थान दे सके। ऐसा प्रेम रूखे योग और ज्ञान की उपासना के पथ पर नहीं मिलता। प्रेम को यह अनत गौरव प्रदान करने के लिए अनत अद्वैत को मायाविशिष्ट हो कर लोक-पथ पर अवतीर्ण होना पड़ता है। राम और कृष्ण के रूप मे आ कर उसे यह कार्य करना पडता है। केवल ब्रह्म रूप से लोकव्यापी इस अनत शील की झाँकी नही प्रस्तुत की जा सकती।

गोस्वामी जी की गोपियों को यही 'हरिभक्ति' का 'सुधाकर' 'सरल' और 'सुलभ' है। अपने इस मत की पुष्टि के लिए आधार प्रस्तुत करते हुए वे सब कहती है—"सरल सुलभ हरिभक्ति सुधाकर निगम पुराननि गाई‡।" वे कहती है कि वेद और पुराणों के द्वारा स्वीकृत और प्रचारित इस 'हरिभक्ति-सुधाकर' को छोड़ कर कौन ज्ञान का 'मनोरथ' कर करके मरे। उद्धव के इस ज्ञानोपदेश के प्रयत्न की व्यर्थता और अनावश्यकता को समझाती हुई गोपियाँ कहती है—"फल पहिले ही लह्यो ब्रजबासिन्ह अब साधन उपदेसन आए†" भक्ति-मार्ग के सिद्धों को ज्ञानमार्ग के साधन, योग की क्या आवश्यकता, इस भद्दी पुनरुक्ति को गोपियाँ मूर्खता मात्र समझती है। उनके अनुसार ब्रज 'सगुन छीर-निधि तीर' निवास करता है$। यह बात त्रिलोक मे विख्यात है। सगुण भक्ति के इस धवल दुग्धसागर के तट पर रहने वाला यदि योग और ज्ञान के मंदार मे से निर्गुण भक्ति के उज्ज्वल दुग्ध की एक दो बूंद पाने का प्रयत्न करे तो उसका यह प्रयास मूर्खता के सिवा दूसरा और क्या हो सकता है। दूध के लहराते हुए महासागर को छोड़ कर जो एक दो बूंद दूध के लिए मारा-मारा फिरे, उससे बढ कर पागल कौन होगा। जिसके पास दूध का महासागर है, उसके सामने प्रयास से प्राप्त होने वाले एक-दो बूंद दूध का क्या महत्त्व है। गोस्वामी जी को प्रेमभक्ति मे अपार आनन्द का उज्ज्वल महासागर तरगित होता हुआ दिखाई देता है। प्रेमभक्ति के पवित्र आनन्द के इस महासागर की तुलना में ज्ञान और योग के पवित्र आनन्द की मात्रा उन्हे एक दो बूंद के समान ही प्रतीत होती है। अपनी इस अनुभूति को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अपनी गोपियों के द्वारा उद्धव से कहलाया है— "सगुन छीर-निधि तीर बसत ब्रज, तिहुँ पुर बिदित बड़ाई। आक दुहन तुम्ह कह्यो सो परिहरि हम यह मति नहि पाई*" दूध का अनत समुद्र जब मिल चुका है, तब एक-दो बूंद दूध के लिए प्रयास करने मे कौन-सी बुद्धिमानी है।

अनत प्रेम के समुद्र में नित्य नयी लहरे उत्पन्न होती है। उसके सामने ज्ञान की चर्चा बासी मालूम पडती है। 'जरठ' मति वाले 'जोगी' ही 'निरगुन' की 'खान' की तरफ़

---

‡ कृष्णगीतावली, पद ५१। † वही, पद ५०। $ वही, पद ५१। * कृष्णगीतावली, पद ५१।

जाते है। 'नवल नदकुमार के ब्रज' मे तो 'सगुन सुजस' का ही गान होता है। गोस्वामी जी की गोपियों ने पहले ही कह दिया है, "प्रियसम प्रिय सनेह-भाजन, सखि, प्रीति-रीति जग जानी ‡।" प्रेमी की इस तरह की मनःस्थिति होती है। इसीलिए तुलसी की गोपियाँ भ्रमर के बहाने उद्धव से कहती है, "तू जो हम आदर्यो सो तो नव कमल की कानि। तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि †" नव कमल के समान कोमल और धवल कृष्ण के प्रेम-भाजन उद्धव हो चुके है, इसलिए प्रिय कृष्ण की मर्यादा का ध्यान रख कर ही गोपियों ने उनसे ज्ञान का उपदेश धैर्यपूर्वक सुन लिया। पर अत मे 'उपदेश' देने की इस बुरी आदत को छोड देने के लिए वे मधुकर उद्धव से कहती है। अनत प्रेम के धवल महासागर मे मग्न, मुक्त सिद्ध के सामने ज्ञानोपदेश की क्या आवश्यकता ? नवल नन्दकुमार के व्यक्तित्व मे अनंत पवित्रता का अपरिमित सौन्दर्य भरा हुआ है। उसी का 'सुजस' गोस्वामी जी की गोपियाँ सुनना चाहती है। 'गोकुल प्रीति नित नई जानि। जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञान गिरा पुरानि...नवल नन्दकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि' मे सुजस के प्रति यही आसक्ति चित्रित की गयी है। रामोपासक आदर्शवादी सगुणभक्त तुलसी का मन गोपालकृष्ण के सगुण रूप के 'सुजस' की पवित्रता मे ही लीन है $।

यह बलिदानमय प्रेम-पथ अनिर्वचनीय है। प्रेमपथ पर चलने वाले साधक को आत्मबलि देने में ही अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव होता है। उपासना के सब सम्प्रदायों मे प्रेमपथ की इस आत्मबलि का दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विवेचन पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। प्रेमपथ का पथिक इस बात को जानता है कि अनत प्रेम के लिए अनत बलिदान भी देना पड़ता है। यदि प्रेम की पवित्रता अनत है, तो जगत के वासनात्मक आकर्षण भी अनत है। अनंत पवित्रता तभी प्राप्त होती है जब अनत आकर्षणों की बलि देने के बाद मन उन सबसे ऊपर उठ जाता है। इसीलिए 'नेह की निठुरता' और उसकी 'कठिन गति' दोनो की अनतता का वर्णन नही किया जा सकता, इस बात को प्रेमी अनुभव करता है *। अनंत आकर्षणों के त्याग की अपेक्षा रखने वाला प्रेम अनत निष्ठुर होता है और आकर्षणों की उस अनतता का त्याग करने के लिए प्रेमी को भी अनंत निष्ठुर और अनत निष्ठुरता-सहिष्णु होना पड़ता है। जब तक आत्मबलि देने मे प्रेमी को कष्ट अनुभव होता रहता है, जगत् के आकर्षणों को छोड़ने मे जब तक प्रेमी को पीडा होती रहती है, तब तक वह अपने प्रेम को उज्ज्वल और पवित्र नहीं मानता। अपनी ऐसी अवस्था में अपने प्रेम की मलिनता का अनुभव करके वह निरन्तर सोच मे डूबा रहता है। प्रिय परमात्मा भक्त की दुर्बलताओं के प्रति बड़ा निठुर होता है। भक्त मे निरभिमानतापूर्ण दैन्य उत्पन्न करने के लिए, उसे आकर्षणों से दूर हटाने के लिए, आकर्षणों की निरर्थकता को उसके समक्ष बार-बार सिद्ध कर उनसे उसके मन मे विराग उत्पन्न करने के लिए, भगवान् उसकी उन सब प्रिय वस्तुओं का क्रूर विनाश करता है जिनके कारण उसके परमात्मप्रेम का विघात हो कर उसकी आत्मा का प्रेममय विकास रुका रहता है।

---

‡ कृष्णगीतावली, पद ४९। † वही, पद ५२। $ वही, पद ५२। * वही, पद ५५।

उपर्युक्त सत्य की ओर सकेत करने के लिए ही तुलसी की गोपियाँ उद्धव से कहती है—

ऊधो, प्रीति करि निरमोहियन सो को न भयो दुखदीन ?

निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कहीन।
दास तुल्सी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन‡।

अनत सत्य, शील और सौन्दर्य के केन्द्र के प्रति जिसका प्रेम एक बार उन्मुख हो जाता है वह उसकी खोज के पथ से कभी नही हटता। उद्धव से इसी सत्य की चर्चा करते हुए उलाहना के ढग पर गोस्वामी जी की गोपियाँ कहती हैं—तुम्हारे वज्र के समान वचन सुन कर हमारे प्राण नहीं जाते। इसका कारण ध्यान से सुनो। तुम्हारे ज्ञान का कृपाण हमारे हृदय को हर क्षण मे टुकडे-टुकडे करके अलग-अलग कर देता है। पर दर्शन की अवधि जरा राक्षसी का काम करके उन टुकड़ो को बार-बार जोड़ देती है। इसीलिए अपार कष्ट सहते हुए भी हमारा शरीर बचा रह जाता है। हमारा विरह आग हो गया है, हृदय से उठते हुए दीर्घ निश्वास समीर का काम करते है, पीड़ा से हमारा शरीर धुना जा कर रुई हो गया है और तुम जलाने वाले हो। पर उन सबका तिरस्कार करके, कुशल रक्षक, हमारे ये नयन, दर्शन के अपने स्वार्थ के कारण, जलवृष्टि करके इस शरीर की रक्षा कर लेते है। जीवन कठिन हो गया है और मरण असम्भव। हमारी इस दुसह विपत्ति का निवारण ब्रजनाथ ही कर सकते है। हमारी इस दशा को समझ कर जैसा उचित हो, करो†।

अनत सत्य, शील और सौन्दर्य के केन्द्र का वियोग ऐसा ही होता है। वह न तो जीने ही देता और न मरने की ही छुट्टी देता है। यह विशुद्ध प्रेम, योग और ज्ञान को अपनी तीव्र गति से पीछे छोड जाता है। गोस्वामी जी की गोपियों के अनुसार योग मन्दगामी है, पर प्रेम तो प्रलय के वट की तरह इतनी तीव्र गति से बढता है कि योग के प्रलय का जल उसे डुबा नही सकता$। योग विश्व की समग्र चेतनाओं का प्रलय समाधि की स्थिति मे कर देता है। वासनाजन्य प्रेम योग से और ज्ञान से चाहे भस्म हो जाए, पर परमात्मा के प्रति जो मधुर भाव भक्त के हृदय मे उत्पन्न होता है वह स्वयं योग है और आनुष्ठानिक योग से प्रबल होता है। उसे कुठित करने की शक्ति आठ अंगों से युक्त रहने पर भी योग मे नही पैदा होती। गोस्वामी जी की गोपियों के अनुसार तो सगुण उपासना के प्रेम के बिना हृदय का कलुष दूर हो ही नहीं सकता। 'छपद सुनहु बर बचन हमारे। बिनु ब्रजनाथ, ताप नयनन की, कौन हरे, हरि अतरकारे'*। अन्तर के कलुष को हर कर नयनों का ताप ब्रजनाथ हर लेते है। बिना उनके, यह काम दूसरा कोई नही कर सकता। यह, गोपियों का 'बर बचन' सिद्धान्त वाक्य है। इसमे कभी अन्तर पड़ ही नहीं सकता। इसीलिए 'बढ्यो अति प्रेम, प्रलय के बट ज्यों, बिपुल जोग-जल बोरि न पारे। तुलसिदास ब्रजबनितन को ब्रत, समरथ को, करि जतन निवारे'§ विशुद्ध और निःस्वार्थ

‡ कृष्णगीतावली, पद ५५। † वही, पद ५६। $ वही, पद ५७। * वही, पद ५७। § वही, पद ५७।

प्रेम के अक्षयवट को योग का जल नष्ट करके डुबा नही सकता। प्रेम की समाधि मे सब समाधियाँ लीन हो जाती है। इस समाधि को कोई समाधि अपने मे आत्मसात् नही कर सकती। प्रेम की इस मधुमा समाधि से हृदय के सब कलुष नष्ट हो जाते है। इसकी अमोघ शक्ति को ससार की कोई दूसरी शक्ति कुठित नही कर सकती। 'समरथ को, करि जतन निवारे' का यही अभिप्राय है।

प्रेम के इसी रहस्य को ध्यानपूर्वक समझने के लिए, गोस्वामी जी की गोपियाँ उद्धव से कहती है—"मधुप, समुझि देखहु मन माही ‡।" शीतलता और शान्ति का अमृत तो चन्द्रमा ही दे सकता है। सूर्य मे वह सामर्थ्य कहाँ। प्रेम तो आत्मा को अमरता प्रदान करने वाला अमृत है। वह कृष्णचन्द्र से ही प्राप्त हो सकता है। ज्ञान और योग के सूर्य से वह प्राप्त नही हो सकता—"प्रेमपियूष रूप उडुपति बिनु कैसे हो अलि, पैयत रबि पाही †।" योग और ज्ञान के हित वाक्य प्रेमी के कानों तक ही रह जाते है। उनमे प्रेमात्मक हृदय तक पहुँचने की शक्ति नही होती। इसीलिए गोस्वामी जी की गोपियाँ कहती है—"जद्यपि तुव, हित लागि कहत, सुनि स्रवन, वचन नहि हृदय समाही $।" खोजते हुए यदि सौ कल्प भी बीत जाएँ तब भी अग्नि में तुषार के कण कैसे मिलेगे। शीतल प्रेम की यही बात बताने के लिए गोस्वामी जी की गोपियाँ कहती है—"तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाही। तुलसिदास सोइ जतन करहु कछु बारक स्याम इहाँ फिरि जाही *" अनत सुन्दर और अनत शीलवान् को सगुण रूप मे देख लेने पर लोचन इसी तरह हठी बन जाते है। वे अनत बार भी योग की और ज्ञान की चर्चा करके तृप्ति का एक कण भी नही प्राप्त कर सकते, पर लोकजीवन के भीतर अवतीर्ण हुए इस परम मुन्दर और मर्यादामय की एक क्षण की झाँकी भी उनके लिए पर्याप्त है।

निशिदिन बरसने वाले पवित्र और उज्ज्वल आँसुओं से भी 'बिरह बेलि' सीची जाती है उसे काटने की शक्ति 'ज्ञान परसु' मे कहाँ। हृदय की क्यारी मे बरहे मे, विरह की बेल बोयी हुई है। ज्ञान का परशु उसे काटना चाहता है। पर पवित्र अश्रुजल से निरन्तर सीची जाने वाली इस लता को देख कर ज्ञान का परशु थक जाता है। लता को छूने की तो बात ही नही की जा सकती। वह तो हृदय की क्यारी के किनारे ही भौचक हो कर, निरन्तर सिचित इस लता की विस्मयजनक शक्ति को एकटक देखता रह जाता है। आगे बढ ही नही सकता—"ज्ञान परसु दै मधुप पठायो बिरह बेलि कैसेहु कठिनाई। सो थाक्यो बरह्यों, एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई §।" ज्ञान के ऊपर प्रेम के इसी महत्त्व को गोस्वामी जी ने अपनी श्रीकृष्ण गीतावली मे सिद्ध किया है।

भगवान् कृष्ण का कृपालु रूप तुलसी का अतिम साध्य है। अनत आदर्शमय ने जिस तरह द्रौपदी की लज्जा की रक्षा, उसकी 'प्रतीति' और 'प्रीतिगति' को 'परख' कर की थी, उसकी चर्चा करते हुए 'आरतपाल, कृपालु मुरारी' की 'बिरदावली' को गोस्वामी जी ने विश्व भर के नर-नारियों के हृदय पर अकित देखा है। भक्त की निरभिमानतापूर्ण प्रणति,

‡ कृष्णगीतावली, पद ५८। † वही, पद ५८। $ वही, पद ५८। * वही, पद ५८। § वही, पद ५९।

उसके विश्वास और प्रेम की आधारभूमि पर भगवान् की 'कृपालुता और आरतपालकता' का दर्शन गोस्वामी जी ने किया है। अभिमानजन्य स्वार्थ को छोड कर प्रेम और विश्वास के साथ भक्त जब भगवान् के सामने प्रणत होता है तब उसे भगवान् की अनत कृपा का वरदान प्राप्त हो जाता है। भक्तिमार्ग की उपासना के पथ पर उपासक और उपास्य के मध्य का सम्बन्ध सूत्र इसी प्रकार का होता है और इसकी चर्चा सब भक्तों ने की है‡।

परमात्मा की इसी कृपालुता का दर्शन गोस्वामी जी ने कृष्ण मे किया है। उनके कृष्ण, 'कृपालु', 'समन-कलेस' तथा 'कुसाज-सुसाजी' है। तुलसी इसीलिए उनके 'भगतिपथ' से 'राजी' है। 'जुग जुग जग साके केसव के समन-कलेस कुसाज-सुसाजी। तुलसी, को न होइ, सुनि कीरति, कृष्णकृपालुभगति पथ राजी ?' अपने इन्ही शब्दों से गोस्वामी जी ने श्रीकृष्ण गीतावली का मगलान्त किया है†।

यद्यपि तुलसी साहित्य मे कृष्ण के नाम का स्मरण अन्यत्र भी किया गया है$। तथापि उस सक्षेप मे पक्षपात का आभास दिखाई पडने के कारण, गोस्वामी जी के अभेदवादी साधक ने अपने हृदय की 'प्रेमभगति*' को इस स्वतन्त्र ग्रन्थ के कोमल और आकर्षक पुष्प के द्वारा श्रीकृष्ण के चरणो मे अर्पित कर पक्षपात के आभास की सम्भावना को भी शान्त कर दिया है।

गोस्वामी जी ने कौसल्या, दशरथ तथा सम्पूर्ण अग-जग को साथ ले कर केवल बीस सोहरो के 'रामलला नहछू' मे अपने हृदय की भक्ति, भगवान् राम के चरणों में, उनके इस विवाहाग नहछू-मगल के अवसर के चित्र मे अर्पित किया है। इस आनन्दोत्सव मे हृदय को मग्न करके 'कोटि जनम के पातकों§' को गोस्वामी जी ने उसमे से निर्वासित कर दिया है। भक्तिमय, इस पवित्र आनन्दोत्सव के आलोक मे लोहारिन, अहिरिन, तबोलिन, दर्जिन मोचिन, मालिन, बारिन तथा नाउन से ले कर देवलोक तक को गोस्वामी जी ने निमग्न कर दिया है और इन सबके साथ अपने हृदय को भी उन्होंने रामरस से आप्लावित कर लिया है। इस उत्सव मे रानी और दासी तथा राजा और रक सब ऐश्वर्यपूर्ण समृद्धि की एक ही श्रेणी में पहुँचे हुए दिखाई पड़ते है। नर और नारी, राजा और परिजन की इस आनन्दमयी एकाकार परिणति में एक अनिर्वचनीय वातावरण गोस्वामी जी ने अपने 'रामलला नहछू' मे उत्पन्न कर दिया है।

जीवन के सब तरह के आनन्दोत्सवों को राममय बना देने के लिए ही गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति की धारा से जीवन के सब क्षेत्रों को सीच दिया है। जीवन के सब उत्सवों के समय नर-नारी भक्ति की आनदमयी ऊँचाई पर रह सकें, यही भावना तुलसी के भीतर राम के सम्पूर्ण जीवन के आनन्द रस को तरगित करती रहती है। स्त्रियों के जीवन के भावस्तर को उच्चभूमि पर ले जाने के लिए गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति को

---

‡ कृष्णगीतावली, पद ६०। † वही, पद ६१। $ कवितावली, उत्तरकांड, कवित्त १३१-१३५। * तुलसी दोहावली, दोहा १२५। अथवा—रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ३४। § रामलला नहछू, सोहर १।

नारी के घरेलू जीवन मे भी ला कर रख दिया। उनकी भक्ति का यही स्वरूप 'रामलला नहछू' के रूप मे व्यक्त हुआ है।

गोस्वामी जी की 'वैराग्यसदीपिनी' मे केवल दो सोरठे, चौदह चौपाइयाँ और छियालिस दोहे हैं। चौपाइयो की अकसख्या रामायण की पद्धति पर नही है। चौपाई के चार पद समाप्त होते ही एक चौपाई मान ली गयी है। "अतिसीतल अति ही सुखदाई, सम दम रामभजन अधिकाई। जड जीवन को करै सचेता, जग माही बिचरत एहि हेता" मे एक पूरी चौपाई हो गयी है ‡। इस तरह की चौदह चौपाइयो की कुल अट्ठाईस पक्तियाँ हैं। अत. वैराग्य उत्पन्न करने वाला यह ग्रन्थ कुल बासठ छन्दों की एक सौ चावीस पक्तियो मे पूरा हो गया है।

इसमे तीन प्रकरण है। पहले मे सतस्वभाव का वर्णन है। दूसरे में सत की महिमा का वर्णन है तथा तीसरे मे शान्ति का स्वरूप चित्रित किया गया है।

इस ग्रन्थ मे मुख्यत: रूपोपासना के आधार पर ही भगवान् के रूप की ओर, उनके सर्वतोमुख सौन्दर्य की ओर ससारी व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करके गोस्वामी जी ने वैराग्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। "राम वाम दिसि जानकी, लपन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु-तुलसी तोर † ।" के विशिष्ट सगुण की भावना का और "सुनत-लखत श्रुति-नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत। बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत $।" के निर्गुण की भावना का विशिष्टाद्वैती समन्वय गोस्वामी जी ने "अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुन रहित जो। मायापति मोइ राम दास हेतु नर-तनु धरेउ *" मे कर दिया है। गोस्वामी जी का यह सिद्धान्त है कि जब तक ज्योतिष्मान निर्गुण ब्रह्म सूर्यके रूप मे सगुण नही होता तब तक भक्त का हृदय-कमल निराश्रित होने के कारण पूर्ण विकसित नही होता। इस सत्य को व्यक्त करने के लिए उन्होंने लिखा है, "तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुनग्राम। हृदय-कमल फूलै नही, बिनु रवि-कुल-रवि राम"—'निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करोडों तरह से किया जाए तब भी अज्ञान का अन्धकार नही मिटता। सूर्यकुल के सूर्य-राम के बिना हृदय-कमल नही फूलता §।'

'राम बाम दिसि' के पहले दोहे मे सगुण के ध्यान से मगलाचरण करके एकसठवे दोहे मे भी 'फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि। तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि' कह कर सगुण ध्यान से ही इस ग्रन्थ का गोस्वामी जी ने मगलान्त किया है। बीच-बीच में भी 'रामरूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ×' की सगुण भावना है। पर राम के शीलमय विश्वरूप को इस ग्रथ में भी गोस्वामी जी ने देखा है। 'कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत। तुलसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रगट राम की देहा +' से समस्त संतों के भीतर राम के शील के विश्वरूप का ही दर्शन किया गया है।

---

‡ वैराग्यसदीपिनी, चौपाई १। † वही, दोहा १। $ वही, दोहा ३। * वही, दोहा ४।
§ वही, दोहा २। × वही, दोहा १५। + वही, छन्द २८।

इस तरह सगुण-निर्गुण की विशिष्टाद्वैती साधना, शील के रूप में गोस्वामी जी ने इस ग्रथ मे भी की है। अपने पूरे साहित्य मे गोस्वामी जी ने परमात्मा की उपासना जीवन के भीतर शील के क्रियात्मक और साकार रूप मे की है।

उनहत्तर बरवा छन्दो मे लिखा हुआ गोस्वामी जी का छोटा-सा ग्रथ 'बरवै रामायण' सात काडो मे विभक्त है। बालकाड मे उन्नीस, अयोध्या मे आठ, अरण्य में छह, किष्किंधा मे दो, सुन्दर मे छह, लका मे एक तथा उत्तरकाड मे सत्ताईस बरवा है। इस ग्रथ मे प्रबन्धात्मकता नही है। सातो काडो से सम्बद्ध फुटकर छन्दों का संग्रह घटनाक्रम से नही किया गया है। बालकाड मे प्रारम्भ के बरवा सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते है, पर अतिम उन्नीसवाँ बरवा बालक राम के छोटे धनुष-बाण से खेलने की चर्चा करता है और बीच के चरणो मे धनुर्भग और विवाह की चर्चा की गयी है।

इस पूरे ग्रथ मे कलात्मक और हृदयस्पर्शी ढंग से राम और सीता के जीवन की घटनाओ का वर्णन किया गया है। उत्तरकाड मे वही 'सियारामपद प्रेम' बढ़ता हुआ दिखाई पडता है। यह काड भक्ति और वराग्य के सत्ताईस बरवो के सग्रह से बना है। इन सत्ताईस छन्दो मे से एक भी छन्द ऐसा नही है जिसमे राम-नाम का महत्त्व न दिखाई पडता हो। सब छन्दों मे 'नाम सनेह' ही भरा पडा है और अन्तिम उन्हत्तरवें छन्द मे तो 'जनम जनम, जह्न जह तनु तुलसिहि देहु। तह तह राम निबाहिब नामसनेहु' कह कर अपनी सम्पूर्ण सत्ता के साथ नाम-सनेह को जोड़ कर उसी मे गोस्वामी जी अनत एकाकारता मे लीन हो गये है।

गोस्वामी जी के द्वारा गुफित एक सौ अडतालिस सोहरों और सोलह बीच-बीच मे पिरोये हुए छन्दों की 'पार्वतीमगल' की मणिमाला 'गौरी-गिरीस-विवाह' ‡ का भव्य चित्र प्रस्तुत करती है। 'रामलला नहछू' को छोड तुलसी साहित्य के शेष दस ग्रथो मे शिव का स्मरण किसी न किसी प्रकरण मे अवश्य किया गया है। 'रामलला नहछू' में भी शिवपरिवार तो प्रारम्भ मे ही है। 'गनपति-गौरी' † का ध्यान करके ही गोस्वामी जी ने 'नहछू' प्रारम्भ किया है। शिव की प्रत्यक्ष चर्चा के अभाव के लिए केवल बीस सोहरों का यही ग्रथ अपवाद है। राम के 'स्वामी, सखा और सेवक' शिव के प्रति अपनी भक्ति को निवेदित करने के लिए ही गोस्वामी जी ने इस स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना कर 'गौरी गिरीस' $ को गौरव प्रदान किया है। शिव के विश्वमगल विधायक, आदर्श शील की सरिता मे अपने मन को स्नान कराके पवित्र करने के लिए ही गोस्वामी जी ने इस मगलमय ग्रथ की रचना की है। 'शकर-चरित-सुसरित मनहि अन्हवावउँ *' से गोस्वामी जी ने अपनी इसी मगलमयी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस तरह मन को पवित्र कर लेने की भावना को ले कर तुलसी के कवि ने 'पर अपवाद-विवाद-विदूषित बानिहि। पावनि करउ सो गाइ भवेस-भवानिहि' § से अपनी वाणी को भी पवित्र कर लिया है।

---

‡ पार्वतीमगल, सोहर २। † रामलला नहछू, सोहर १। $ पार्वतीमंगल, सोहर २।
* वही, सोहर ३। § वही, सोहर ४।

नारी के शील की मगलमयी उपासना के लिए ही गोस्वामी जी ने यह ग्रथ लिखा है। नारी के शील का उच्चतम विकास जगत् के सम्मुख प्रस्तुत करने वाली उमा की उपासना अनत के शीलरूप की उपासना है। इसी मे गोस्वामी जी ने इस ग्रथ को लिख कर, सिद्धि प्राप्त की है। तुलसी की पार्वती के इस विराट् शील के सम्मुख उनके आदर्श शीलवान् शिव साभार झुक कर उसके क्रीतदास बन गये है। 'हमहि आजु लगि कनउड काहु न कीन्हेउ। पारबती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ‡।' से गोस्वामी जी के शिव अपने हृदय की शीलोपासना की उपर्युक्त अनुभूति ही व्यक्त कर रहे है।

अपनी भक्ति के भीतर गोस्वामी जी ने जीवन के जिस सौन्दर्य का दर्शन किया था उसी की सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति तुलसी-साहित्य मे हुई है। तुलसी की वही पवित्र चेतना नारी के शील की उच्चतम भूमि पर प्रतिष्ठित हो कर 'पार्वती मगल' मे भी व्यक्त हुई है। गोस्वामी जी की मैना 'त्रिभुवन तियमनि'† है। उनके हिमवान् भी 'धरनिधर धुरधनि'$ है। इन दो श्रेष्ठों के श्रेष्ठ शील का परिणाम ही तो 'जगजननी मगलखानि भवानी'* के मगलमय रूप मे प्रकट हुआ। तुलसी की यह 'मगलमयी मगला'§ मगलमय शिव के विश्वमगल विधायक शील को वरण करने के लिए उनके 'चौदह भुवन सरहना'× वाले हिमवान् के यहाँ अवतीर्ण हुई है। इस 'मगलमयी मगला' के लिए वर की चर्चा करते हुए जब तुलसी के नारद कहते है—"मोरेहु मन अस आव मिलिहि बर बाउर+ तब मगलमयी को "लखि नारद-नारदी सुख भा उर⚘"; क्योकि उन्होंने समझ लिया कि विश्वमगल विधायक अपने स्वार्थो के प्रति 'बाउर' ही होता है और ऐसा ही 'बाउर' शिव उन्हे पुन. पतिरूप मे प्राप्त होगा। नारद के आदेश से उमा "कोटि कल्पतरु सरिस सभु-अवराधन¶" के लिए चली गयी। "अति आदर अनुराग भगति ‡⊕" से मन को भिगा कर, मन, वाणी और कर्म की अनन्य गति से उन्होने 'हर चरन' ‡‡ की सेवा प्रारम्भ की। जो गौरव, स्नेह और सकोच उमा की शिव-सेवा मे थे वे तुलसी के अनुसार अनत और अनिर्वचनीय थे ‡†।

उपासक और उपास्य मे एक ही तरह के गौरव और पवित्रता का भाव गोस्वामी जी ने देखा है। इस अनिद्यसुन्दरी पार्वती के सीमाहीन गुण, रूप और यौवन-सौन्दर्य को देख कर भी विश्वमगल विधायक शिव के हृदय मे क्षोभ नही उत्पन्न हुआ। जिन्होंने वासनात्मक कामभावना को अपने वश मे कर लिया, वे विकार के कारणो के प्रस्तुत रहने पर भी धैर्य नही छोड़ते ‡$।

कुचक्री, अनुभवहीन और स्वार्थान्ध देवशील, साधना की परिणति के पहले ही जब उमा से, हठात्, शकर को बाँध देने के लिए कामदेव का उपयोग करता है तब उसे मुँहकी

‡ पार्वतीमगल, सोहर ८१। † वही, सोहर ६। $ वही, सोहर ६। * वही, सोहर ८। § वही, सोहर १८। × वही, सोहर १६। + वही, सोहर १९। ⚘ वही, सोहर १९। ¶ वही, सोहर २२। ‡⊕ वही, सोहर २६। ‡‡ वही, सोहर २७। ‡† वही, सोहर २६–२७। ‡$ वही, सोहर २७।

खानी पडती है । परममगलमय, वामाचारी काम के प्रभाव में कैसे आ सकता है । शिव ने काम को भस्म कर अपने निवासस्थान को भी छोड दिया । दृष्टि से दूर गये शिव को हृदय मे रख कर उग्र तप करती हुई गोस्वामी जी की उमा अपर्णा हो गयी । वह 'बौरेहि के अनुराग बडि बाउरि' हो गयी ‡ । लोकमगल विधान में पागल की तरह अनुरक्त शिव के प्रेम मे पागल हो कर तुलसी की उमा ने अपने तपोमय प्रेम को विश्व की नारी के लिए आदर्श बना कर परम मगलमय कार्य किया ।

कन्या के लिए पिता के दान के रूप मे पति के घर जाने की विधि को गोस्वामी जी मगलमयी मानते है । अपनी तपस्या से शिव को अपनी ओर पवित्र स्वीकृति के साथ उन्मुख करके भी, उनके प्रस्ताव पर, अपने लिए, तुलसी की उमा, पिता की अधीनता की सूचना देती है । इस सूचना को 'प्रीति, नीति प्रवीनता' का उच्चतम आदर्श मान कर, गोस्वामी जी के शिव ने सम्मान दिया है † ।

इस तरह उमा और शिव के विवाह मे तपस्या और विश्वमगल का गठबंधन कराके गोस्वामी जी ने अपने हृदय की पवित्र भक्तिसाधना को शिव-पार्वती को अर्पित कर दिया है ।

तुलसी की यह उपासनात्मक साहित्य साधना, निश्चित ही, उनकी भक्ति-भावना के भीतर, नारी के उच्चनम शील के दर्शन की साध को व्यक्त करती है । नारी के शील पर निखार चढा कर, उसकी पवित्रता के भीतर, जगदम्बा, पार्वती और सीता का दर्शन कर लेना ही तुलसी का अभीप्ट है ।

इस मगलमय ग्रथ के अत मे गोस्वामी जी युवतियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—'प्रेम के सूत्र मे गौरी और हर के गुणों की मणियों को पिरो कर मेरी मतिरूपिणी मृगनयनी ने तुम्हारे लिए मजु मगल हार बना दिया है । यह हार विश्वव्यापी सर्वतोमुखी सौन्दर्य का रहस्य है । जो नारियाँ विवाह तथा अन्य मंगलमय कार्यो और उत्सवों के समय प्रेम से इन सोहरों को गाएँगी, उन्हे उमा और शकर के प्रसाद से अभिलषित आनन्द और प्रिय वस्तुएँ प्राप्त होगी $ ।'

इस तरह तुलसी की भक्तिभावना ने नारी के शील के उच्चतम निर्माण के लिए ही इस ग्रंथ की सृष्टि की है । माया विशिष्ट जीवनदर्शन को विश्वव्यापी अद्वैतभूमि पर स्थित करने की गोस्वामी जी की यही विशिष्टाद्वैती प्रक्रिया है । इसी प्रक्रिया से वे व्यक्ति के जीवन को विश्व का जीवन बना देते है ।

पार्वतीमगल की शैली पर ही गोस्वामी जी ने 'जानकी मगल' का भी निर्माण किया है । पर ग्राथिक योजना की अधिक स्थिर और निश्चित एकरूपता इस ग्रंथ मे आदि से अत तक दिखाई पडती है । पार्वतीमंगल में सोहरों की निश्चित संख्या के बाद छन्द नही दुहराया गया है, पर इस ग्रथ मे आठ सोहरों के बाद एक छन्द के क्रम से एक सौ

‡ पार्वतीमंगल, सोहर ७० । † वही, छन्द ८३ । $ पार्वती मगल, छन्द १६३–१६४ ।

बयासी सोहरों की माला मे बीच-बीच में चौतीस छन्द गुँथे हुए है। आरम्भ मे आठ सोहर हैं, अन्तिम दो सौ सोलहवाँ छन्द है।

यद्यपि इस ग्रंथ मे सीता और राम का विवाहोत्सव चित्रित किया गया है तथापि इस मंगलमय अवसर पर ही भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति से विवाह के कोमल बन्धन मे बँध गये थे। सीता और राम के विवाह का उत्सव इन चार विवाहों से पूर्ण होता है। इसीलिए सीता और राम के विवाहोत्सव का वर्णन गोस्वामी जी ने इन सबके साथ ही किया है।

इस ग्रंथ मे भी वही आदर्श की उपासना की दृष्टि निरन्तर जागरूक दिखाई पडती है। इसमे भी 'नरनायक' जनक 'सब गुन अवधि' है और दूसरा कोई उनसे 'पटतर लायक' नही है ‡। जनक के समान नरपति न हुआ, न है और न होगा, क्योकि 'सकल मगलमयी' सीता उनकी सुता हुई †। दशरथ की रानियों को भी गोस्वामी जी ने 'अनुराग, भाग, सोहाग, सील और सरूप' से पूर्ण देखा है $। उनके विश्वामित्र भी 'मुनिनायक', 'पूरनकाम' और 'चारिफलदायक' है *। 'जानकी मगल' मे भी गोस्वामी जी के दशरथ स्नेह और सत्य के आदर्श रूप है §। इस ग्रंथ मे भी विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम के साथ पुरवासी, राजा और रानी अपना मन भेज देते है। बालक राम के लिए सबके भीतर इस प्रेम का व्यापक विकास दिखाना, तुलसी यहाँ भी नही भूले है ×। 'चलत सकल पुरलोक वियोग बिकल भये +' मे राम के लिए सबके प्रेम की अधिकता और 'सानुज भरत सप्रेम राम पायंन नए' ⚜ मे भ्रातृप्रेम और ज्येष्ठ के प्रति भक्ति की व्यजना की गयी है। यहाँ भी राम और लक्ष्मण का सौन्दर्य 'सकल सुखमा' का समाहित रूप है ¶। यहाँ राम का विश्वमगल विधायक रूप अपना प्रथम दर्शन देता है। 'मारि निसाचर-निकर यज्ञ करवायउ। अभय किये मुनिवृन्द जगत जसु गायउ ‡⊕' मे इस विश्वमगल विधायक के प्रति विश्व के आभार की भावना प्रदर्शित की गयी है। धनुष-यज्ञ के लिए राम-लक्ष्मण को ले जाते समय भी तुलसी के विश्वामित्र की दृष्टि मे 'बिप्र, साधु, सुरकाज' ही झूलता रहता है। राम के सम्पूर्ण जीवन को वे इसी के लिए निर्मित मानते हैं ‡‡।

सगुण उपासना की निर्गुण उपासना से श्रेष्ठता को गोस्वामी जी ने निरन्तर अपने ध्यान मे रखा है। उनके साहित्य की यह विशेषता यहाँ भी परिलक्षित होती है। जनक की दशा के भीतर 'अवलोकि रामहि अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन दिये ‡†' के द्वारा निर्गुण उपासना के ब्रह्मसुख से सगुण उपासना के आनन्द को गोस्वामी जी ने सौगुना बताया है। यहाँ गोस्वामी जी ने 'बिराग' से अधिक महत्त्व 'सनेह' को दिया है। राम को देख कर जनक की दशा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—"देखि मनोहर मूरति मन

---

‡ जानकी मगल, सोहर ६। † वही, सोहर ७। $ वही, सोहर १८। * वही, सोहर २४। § वही, सोहर २६। × वही, सोहर ३१। + वही, सोहर ३३। ⚜ वही, सोहर ३३। ¶ वही, सोहर ३५। ‡⊕ जानकीमंगल, सोहर ४२। ‡‡ वही, सोहर ४३। ‡† वही, छद ४५।

अनुरागेउ, बचेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ‡ ।" राम को देख कर जनक स्नेह से बँध गये और वैराग्य से दूर हो गये । यहाँ गोस्वामी जी के जनक, ब्रह्मा को बडा श्रेष्ठ कलाकार और उनके द्वारा निर्मित भवसागर को श्रेष्ठ मानते है, क्योकि उसमे राम के समान रत्न उत्पन्न होते है । 'प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर । जह उपजहि अस मानिक, बिधि बड़ नागर' मे उपर्युक्त भावना के भीतर अरूपोपासना से श्रेष्ठ रूपोपासना को ही बताया गया है † ।

अरूप जब शक्ति, शील और सौन्दर्य की अनतता के साथ जगत् मे अवतीर्ण होता है, तब उसके दर्शन के अपने स्वार्थ को, बडे-बडे परमार्थी भी, परमार्थ से उच्च समझने लगते है । जगद्व्यापी सौन्दर्य, शक्ति और शील की मानव-झाँकी इतनी अधिक आकर्षक होती है कि उसके निर्गुण के उच्चतम रहस्य का परम अर्थ भी, इस झाँकी के दर्शन के सम्मुख हीन अनुभव होने लगता है । जनक के 'बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ । इन्हहि देखि भयो मगन जानि बड स्वारथ' का यही अभिप्राय है $ । जनक की इस अनुभूति का पता पा कर प्रेमपुलकित विश्वामित्र उन्हे बताते है—"ए परमारथ-रूप ब्रह्ममय बालक * ।" इस तरह सगुण उपासना के क्षेत्र मे आ कर ब्रह्म केवल बौद्धिक चिन्तन का विषय न रह कर मनोरागात्मक प्रेम का विषय भी हो गया और उपासना के भीतर अनुभूति का यह दूसरा तत्त्व अधिक महत्त्वशाली हो गया ।

राम का यह तेजवान् रूप 'जानकीमगल' मे सब नर-नारियो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है । जनकपुर की सब स्त्रियाँ शिव से यही प्रार्थना करती है कि जानकी को यह साँवरा वर ही मिले । धनुष की कठोरता को देख कर पवित्र शील वाले सज्जन राजाओ को यह समझ कर धैर्य प्राप्त हो जाता है कि राम में धनुष तोड़ने की शक्ति है क्योंकि वे जानते है कि 'तेज, प्रताप, रूप जहं, तह बल बूझइ § ।' वे तेज, प्रताप और रूप के साथ बल की नैसर्गिक स्थिति का सिद्धान्त जानते है । राम की कोमलता और धनुष की कठोरता को देख कर इसी असमजस मे पडी हुई जनक की रानी को एक चतुर सखी बड़े स्वाभाविक ढग से समझाती है—"तीनि काल कर ज्ञान कौसिकहि कर तल । सो कि स्वयबर आनहि बालक, बिनु बल ।" यह कितना स्वाभाविक और स्पष्ट समाधान है । निर्बल बालक को त्रिकालज्ञ विश्वामित्र यज्ञ मे कैसे लाएँगे × ।

यही दशा जनकपुर के सब लोगों की है । राम को देख कर वे अपने कोमल मनोरथों के कलश भर लेते हैं, पर धनुष को देख कर कोमल मनोरथों के कलशों को खाली कर देते है । अनत का मानव रूप इसी तरह सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है + ।

आर्यसभ्यता प्रेम के आवेश को लज्जा की कोमल और सात्त्विक सहायता से हृदय के भीतर ही गुप्त रखना चाहती है । जीवन के आदर्शों के साथ ही प्रेम की सुदृढ़ स्थिति को बनाये रख कर गोस्वामी जी ने प्रेम को आत्मिक तेज के प्रकाश से आलोकित

---

‡ जानकीमगल, सोहर ४६ । † वही, सोहर ४७ । $ वही, सोहर ५० । * वही, सोहर ५१ । § वही, सोहर ६६ । × वही, सोहर ८६ । + वही, सोहर ८९, छद ९० ।

रखा है। हृदय मे जीवन के आदर्शों की अनुभूति के भीतर ही प्रेम पल कर पुष्ट होता है। आदर्शों के सात्त्विक तेज के भीतर गुप्त रह कर प्रेम का तेज मनुष्य के शील का विकास, आर्य हृदय मे करता रहता है। प्रेम का आवेश, व्यर्थ प्रकट हो कर शिष्ट भारतीय के हृदय मे स्थिति अपनी सर्जनात्मिका शक्ति को निरर्थक नही बनने देता। वह अपने विस्तार से सम्पूर्ण हृदय के अस्तित्व पर छा कर गुणों के सिहासन पर आसीन रहता है। गोस्वामी जी के अनुसार अगणित सुदृढ स्तम्भो पर प्रेम का आकर्षक मडप स्थित हो कर हृदय की समग्र अनुभूतियो पर अपनी शीतल छाया की शाश्वत शान्ति को बनाए रखता है। प्रेम की यही शीतलता मनुष्य के हृदय को विश्वमगल विधान के लिए शीतल शक्ति प्रदान करती रहती है। यह शीतल शक्ति प्रेम के द्वारा आदर्शों को प्राप्त होती रहती है और जीवन के आदर्श ऐसे ही प्रेम की शीतल छाया मे विश्वमगल विधान करते रहते है। जानकीमगल की अपनी 'प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। जनु हिरदय गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहि‡' पक्तियों के द्वारा गोस्वामी जी ने प्रेम के उपर्युक्त स्वभाव को थोडे से सशक्त और सुन्दर शब्दों में बडी कला-कुशलता के साथ व्यक्त किया है। केवल इन्ही दो-चार मगलमयी पक्तियो के सात्त्विक सौन्दर्य का ही यदि मूल्याकन किया जाए, तब भी इनके सर्वतोमुख सौन्दर्य पर विश्व का वैभव निछावर किया जा सकता है। जीवन के शिल्पी तुलसी के साहित्य मे ऐसी पक्तियाँ भरी पड़ी है।

शील और सौन्दर्य के ऐसे अमृतमय योग का दर्शन गोस्वामी जी ने सीता और राम के व्यक्तित्व मे किया है कि तज्जन्य आनन्द की उनकी अनुभूति अनिर्वचनीय हो गयी है—"सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै, सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै† ?" सुहावने रूप के माधुर्य के साथ 'सुहावन सुभाय$' के योग का ऐसा मधुमय दर्शन गोस्वामी जी को सीता और राम के व्यक्तित्व मे हुआ है कि 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी*' की अनिर्वचनीय अवस्था में वे पहुँच गये है। अमृत का पान करके मूक की वाणी स्वाद का वर्णन कैसे कर सकती है ? इसी मूक की अवस्था गोस्वामी जी की भी हो गयी है, सीता और राम के मधुर सौन्दर्य को अपने हृदय की आँखों से देख कर§।

शील के इसी सम्पूर्ण और अलौकिक सौन्दर्य का दर्शन करने के लिए गोस्वामी जी ने सगुणोपासना का पथ वरण किया है। धनुर्भंग के प्रकरण मे जब सब प्रतिस्पर्धी राजा हतप्रभ हो जाते है, 'बाणासुर बाण की तरह' चला जाता है और रावण चुपचाप धीरे से खिसक जाता है× तब गोस्वामी जी के विश्वामित्र जनक से राम के लिए आज्ञा देने को कहते हैं—'पार्वती के मन के समान यह धनुष भी अचल है। उन्ही के मन के समान, एकनारीव्रत पालन करने वाले शिव का मन भी अचल है। उसी स्थिर मन वाले शिव के हाथ में यह धनुष खेल सकता है। चन्द्रमा और कामदेव को अपमानित करने वाली राम

‡ जानकीमगल, सोहर ९५। † वही, सोहर ९७। $ वही, सोहर ९६। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २२८ के बाद। § जानकीमगल, सोहर ९६-९७। × वही, सोहर १०३।

की मूर्ति केवल दर्शन के योग्य है। इस कोमल सौन्दर्य पर धनुष का गुरुतन भार रख कर इसे मलिन और विकृत कर देना अनुचित है। इस पर किसी तरह की चिन्ता. असफलता और प्रयास का भार डालना ठीक न होगा ।

गोस्वामी जी के जनक मे निवास करने वाली, शिव और पार्वती की शाश्वत स्थिर पवित्रता की अनुभूति कितनी पवित्र और कोमल है। साथ ही साथ राम के कोमल सौन्दर्य की उनकी अनुभूति भी कितनी भोली और सहानुभूतिपूर्ण वात्सल्य से भरी हुई है।

जनक के इस पवित्र भोलेपन का उत्तर देते हुए गोस्वामी जी के विश्वामित्र कहते है—'यह उसी की मूर्ति है जिसका एक बार भी स्मरण कर लेने से अज्ञान के सब कलुष नष्ट हो जाते है। निर्गुण की इस सगुण मूर्ति का आश्चर्यमय प्रदर्शन अभी देखो। राजाओं की शक्ति के जल को आत्मसात् करके उमडे हुए इस धनुष के महासागर के लिए राम को तुम अगस्त्य के समान समझो †।'

गुरु का इगित पा कर हर्ष और विषाद से अस्पृष्ट राम ने धनुर्भंग किया। निरभिमानतापूर्ण इस शील के शक्तिमय केन्द्र के रूप मे राम का दर्शन गोस्वामी जी ने अपनी पूरी साहित्य-साधना के भीतर किया है। शक्ति, शील और सौन्दर्य की यह साधना निर्गुण उपासना के क्षेत्र मे कहाँ सम्भव थी ? शक्ति, शील और सौन्दर्य की पूर्णता की उपासना करने के लिए ही गोस्वामी जी ने अपने लिए सगुणोपासना का क्षेत्र चुना।

राम के सौन्दर्य के समान ही प्रभाव सीता के सौन्दर्य मे भी गोस्वामी जी ने उत्पन्न किया है। विवाह-मडप की ओर लायी जाती हुई सीता, युवतियों के समूह मे, इतनी आकर्षक दिखाई पडती है कि स्वय सरस्वती लज्जित हो कर भाग जाती है। वह उपमा कहने की शक्ति कवि के मस्तिष्क मे नही आती $। सीता 'सील सुख सोभामई *' है। उसके शील और सौन्दर्य से समन्वित व्यक्तित्व को देख कर सरस्वती भी आनन्दमग्न हो जाती है। वह सीता का वर्णन करना भूल जाती है।

'को कहि सकइ अनन्द मगन भइ भारति §' से गोस्वामी जी भी कविता को अनुभूति की स्मृति के शान्तिमय वातावरण मे उत्पन्न सर्जना ही मानते है। अनुभूति में मग्न सरस्वती सीता के सौन्दर्य का वर्णन नही कर सकती। अनुभूति के आस्वाद के बाहर आने पर ही आस्वाद की स्मृति के रूप मे सरस्वती (बुद्धि) के भीतर कविता उत्पन्न होती है। हृदय की यह अनुभूति निर्गुण उपासना मे सम्भव नही हो सकती। उपासना के इसी पथ पर तुलसी ने जनक की रानियों को बरात बिदा होने के पहले मर्यादा पुरुषोतम राम के वियोग मे रात भर निद्रा के प्रभाव से दूर रखा है। नारी के आदर्शो की प्रतिमूर्ति सीता के वियोग से भी जनकपुर के नर-नारी, हाथी-घोडे, मृग और पक्षी सब, गोस्वामी जी की दृष्टि के भीतर व्याकुल होते हुए प्रतिबिम्बित होते है।

---

‡ जानकीमगल, सोहर १०४ से १०६। † वही, सोहर १०७, छद १०८। $ वही, सोहर १५८। * वही, छंद १६२। § वही, सोहर १६९।

सगुण उपासना के इसी पथ पर 'कृपासिधु, सुखसिध, सुजान-सिरोमनि' राम के वियोग से बिदाई के समय गोस्वामी जी के जनक व्यथित हुए है ‡। इसी सुजान सिरोमनि की प्रीतिच्छाया के प्रभाव मे विदाई के समय बिछुड़ते हुए दो सज्जन मानव-समहो के साथ पूरा विश्व विषाद-मग्न हो गया। 'सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे †' से गोस्वामी जी ने विश्वहृदय की इसी दशा का सकेत दिया है।

इसके बाद 'जानकीमगल' मे जनकपुर का विषाद अपने त्यागपूर्ण बलिदान से अयोध्या के आनन्द की सृष्टि करता है। पावन प्रेमियों के चार नये जोड़ो को पा कर अयोध्या धन्य हो गयी। माताएँ, पुत्रों और वधुओं के प्रेम के क्षीरसागर मे मग्न हो गयी। पृथ्वी और आकाश मे आनन्द व्याप्त हो गया। 'उमगि चलेउ आनन्द भुवन भुइ बादर $' मे इसी दशा का चित्र है।

सीता और राम के इसी पवित्र शील के पावन प्रभाव से नर-नारियों के लोक-जीवन को आप्लावित कर देने के लिए ही गोस्वामी जी ने 'सियाराम' के चरणो मे 'जानकीमगल' के रूप मे अपनी मगल पुष्पाजलि अर्पित की है। 'उपवीत व्याह उछाह जे सियराम मंगल गावही। तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावही *' मे विश्वमगल विधायक मर्यादा पुरुषोत्तम की कृपाछाया मे इसी उपर्युक्त विश्वमंगल की कामना की है। सीताराम के पवित्र शील की विश्वव्यापिनी झाँकी का दर्शन ही तुलसी की उपासना का रहस्य है और इसकी सिद्धि सगुणोपासना के क्षेत्र मे ही सम्भव थी।

तुलसी के 'रामाज्ञा प्रश्न' मे सात सर्ग है। प्रत्येक सर्ग मे सात सप्तक है और प्रत्येक सप्तक मे सात दोहे है। इस तरह इस ग्रथ मे मुख्यतः तीन सौ तैतालिस दोहे है। इस शकुन शास्त्र की कुजी दो अलग दोहों मे प्रारभ मे ही दी गयी है। यदि इनको भी सम्मिलित कर लिया जाए तो दोहो की कुल सख्या तीन सौ पैंतालिस हो जाती है।

'राम दाहिने होहि जेहि सकल दाहिने ताहि' की सच्ची और दृढ भावना से अपने हृदय का शृंगार कर लेने वाले तुलसी के साधक ने शकुनों पर विश्वास करने वाली भारतीय जनता को इस शकुन शास्त्र के रूप मे भी भक्ति का ही वरदान दिया है। सब तरह की प्रवृत्तियों के मनुष्यो के स्वभाव के अनुसार ही मानव मनोविज्ञान के इस पडित भक्त ने उन्हे उपासना की पद्धतियाँ प्रदान की है और जीवन के प्रत्येक मोड पर, इस जीवन-शिल्पी ने मानव को रामभक्ति के सम्मुख ही ला कर खडा कर दिया है। शकुन की खोज में भटकने वाला मनुष्य भी 'रामाज्ञा प्रश्न' के इस शकुन शास्त्र मे अपने जीवन के पथ पर शकुन के रूप मे रामभक्ति को ही प्राप्त करेगा और शकुन का मनोवैज्ञानिक सहारा भी।

रामायण के सात काडों के आधार पर रामाज्ञा प्रश्न के सात सर्गों का निर्माण हुआ है। राम के जीवन की घटनाएँ आरम्भ से ले कर अत तक जिस तरह जीवन के प्रबन्ध के

‡ जानकीमगल, सोहर १९७। † वही, सोहर १९८। $ वही, सोहर २१०। * वही, छन्द २१६।

रूप मे 'मानस' मे वर्णित है प्राय. उसी तरह 'रामाज्ञा प्रश्न' मे भी उनके जीवन की क्रमिक घटनाओ से सम्बद्ध दोहे प्राय. ठीक क्रम से ही रखे गये है। पहले सर्ग मे श्रवण के पिता द्वारा दशरथ को दिये गये शाप की भी चर्चा है। परन्तु एक-एक सर्ग मे रामायण के एक-एक काड की पूरी कथा का नियम 'रामाज्ञा प्रश्न' मे नही पाला गया है। यहाँ के प्रथम तीन सर्गो मे बालकाड, अयोध्याकांड, अरण्यकाड और किष्किन्धाकाड तक की कथाओं से सम्बद्ध दोहों को गोस्वामी जी ने क्रम मे रखा है। तीसरे सर्ग के अत मे हनुमान् इत्यादि को सपाती मे सीता का समाचार मिला है।

चौथे सर्ग मे फिर बालकाड की कथा से सम्बद्ध दोहे रखे गये हैं। बालकाड से सम्बद्ध नये दोहो मे इस काड के निर्माण की गोस्वामी जी की योजना मे बालकाड की घटनाओं की पुनरुक्ति का दोष नही देखना चाहिए। यह चौथा सर्ग सात सर्गो का मध्य सर्ग है। भारतवर्ष के प्राचीन लेखक अपने ग्रन्थ के आरम्भ, मध्य तथा अत में मगलाचरण किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी नियम का पालन करने के लिए राम के जीवन के मगलमय चित्र प्रस्तुत करने वाले बालकांड की घटनाओ को गोस्वामी जी ने मध्य मगलाचरण के लिए इस मध्य सर्ग मे फिर से दोहरा दिया है। आदि, मध्य तथा अत मगल का सिद्धात तुलसी को मान्य है, इसकी गवाही वे स्वय देते है। 'तुलसी सहित सनेह नित, सुमिरहु सीताराम। सगुन सुमगल सुभ सदा, आदि मध्य, परिणाम ‡' मे यह गवाही स्पष्ट है।

'रामाज्ञा प्रश्न' शकुन शास्त्र का एक पूरा ग्रथ तो है, पर प्रबन्ध काव्य नही है। इसीलिए इस सार्थक पुनरुक्ति मे पुनरुक्ति का दोष भी नही होता। इसी तरह प्रत्येक सर्ग के भी प्रथम, चतुर्थ और सप्तम सप्तको में गोस्वामी जी के द्वारा दिये गये आदि मध्य और अत के मगलाचरण के लक्षण स्पष्टत: दिखाई पडते है। सप्तम सर्ग को छोड शेष प्रत्येक सर्ग के सातवें सप्तक के अतिम दोहे मे उनचासवें दोहे की सूचना दे कर गोस्वामी जी ने सर्गान्त का मगलाचरण भी किया है। सप्तम सर्ग के अतिम सातवें सप्तक में मगलाचरण तो है, पर अतिम सातवें दोहे मे उनचास दोहों के अंतिम, सातवें समूह की सूचना नही दी गयी है। हाँ, इतना प्राय निश्चित है कि सातवें सर्ग के सप्तम सप्तक में 'मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि †' मे गोस्वामी जी ने तीन सौ तैंतालिस दोहों की होने वाली समाप्ति की सूचना अवश्य दी है, क्योंकि मुनि, दिन और धातु मे से प्रत्येक का अर्थ सात ही होता है और ७, ७, ७ का गुणनफल ३४३ ही होगा।

'रामाज्ञा प्रश्न' के पाँचवे सर्ग मे सुन्दरकांड की घटनाओं से सम्बद्ध दोहों के बाद लकाकाड के रावण-वध तक की घटनाओं से सम्बद्ध दोहे है। इस सर्ग मे गोस्वामी जी ने 'बीस बाहु, दस सीस दलि, खड-खड तनु कीन्ह। सुभट-सिरोमनि लंकपति, पाछे पाउ न दीन्ह §' कह कर, रावण के भी विशुद्ध साहस और धैर्य को अपने निश्छल भक्तहृदय की

‡ रामाज्ञा प्रश्न, सर्ग ३, सप्तक ३, दोहा ७। † वही, सर्ग ७, सप्तक ७, दोहा २। § वही, सर्ग ५, सप्तक ७, दोहा ५।

भावना अर्पित की है। छठे सर्ग मे सीता की अग्नि-परीक्षा, अयोध्या-आगमन तथा राज्याभिषेक की सूचना देने वाले दोहे है। सीता की अग्नि-परीक्षा की घटना वाल्मीकि रामायण से ली गयी है। मानस में गोस्वामी जी ने इस घटना को छोड दिया है। इसी तरह सीता का द्वितीय वनवास, वही लव-कुश का जन्म, उनका अयोध्या आना तथा पाताल-प्रवेश इत्यादि घटनाएँ वाल्मीकि रामायण के आधार पर 'रामाज्ञा प्रश्न' मे है। मानस मे इनका वर्णन नही है। मगलान्त काव्य लिखने के कारण गोस्वामी जी ने यह सब क्रम छोड कर केवल लवकुश के जन्म की सूचना मात्र दी है, और वह भी घटनाक्रम मे नही। 'दुइ सुत सुन्दर सीता जाये, लवकुस बेद पुरानन्हि गाये ‡' कह कर छोड दिया।

सातवें सर्ग मे भी राम राज्य का ही वर्णन है। इसी सर्ग मे दिनों का शकुनों के साथ सम्बन्ध बताया गया है। ग्रहों की स्थिति के अनुसार विश्व की दशा का भी वर्णन किया गया है। (१) सुधा (२) साधु (३) सुरतरु (४) सुमन (५) सुफल (६) सुहावनी बात और (७) 'सीतापति-भगति' को इस सर्ग मे गोस्वामी जी ने सात सुमंगलों मे गिना कर रामभक्ति को ही श्रेष्ठता दी है†। इसी सर्ग में कौसल्या कल्याणमयी तथा सुमित्रा शुभप्रदा मानी गयी है। दशरथ को गोस्वामी जी ने कल्पतरु की तरह तथा कैकेयी को सब अपशकुनों का मूल माना है।

शकुनशास्त्र होते हुए भी 'रामाज्ञा प्रश्न' मुख्यत. शक्ति, शील और सौन्दर्य की समाहित भावना से अभिव्यक्त भक्ति ग्रथ ही है, इस बात की ओर पहले इगित किया गया है, पर इस सम्बन्ध मे तुलसी की स्पष्ट स्वीकारोक्ति भी है। 'राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत तुलसीदास $' से और अधिक स्पष्ट उक्ति और कैसे हो सकती है? रामचरित के आधार पर लोगों मे भक्ति के विमल विचार उत्पन्न करने के लिए ही गोस्वामी जी ने इस शकुन शास्त्र की रचना की थी—'सुभग सगुन उनचास रस, राम चरितमय चारु। राम-भगत हित सफल सब, तुलसी बिमल विचारु' के द्वारा उपर्युक्त कथन की सिद्धि हो जाती है*। 'रूप, शील, बय, बस गुन सम बिबाह भये चारि§।' मे शील और सौन्दर्य की ओर ध्यान स्पष्ट ही है। 'उदित भानुकुल भानु लखि, लुके उलूक नरेस ×।' तथा 'राम स्याम बारिद सघन, बसन सुदामिनि माल। बरसत सर हरषत बिबुध, दला दुकालु दयाल+।' इत्यादि में शक्ति की उपासना संगृहीत की गयी है। इस तरह ३४३ दोहों के इस पूरे शकुन शास्त्र में हमे शक्ति, शील और सौन्दर्य की उपासना के आधार पर टिकी हुई तुलसी की रामभक्ति के दर्शन सर्वत्र होते हैं। इन दोहों में से ३०० से भी अधिक भक्ति से साक्षात् सम्बद्ध होंगे और शेष परोक्ष रूप से। इनमे से एक भी दोहा ऐसा न होगा जो भक्ति से लगाव न रखता हो।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा २५ के पहले। † रामाज्ञा प्रश्न, सर्ग ७, सप्तक ३, दोहा २। $ वही, सर्ग ५, सप्तक ४, दोहा ७। * वही, सर्ग ३, सप्तक ७, दोहा ७। § वही, सर्ग १, सप्तक ७, दोहा ५। × वही, सर्ग १, सप्तक ५, दोहा ५। + वही, सर्ग ५, सप्तक ७, दोहा ३।

सातवे सर्ग के सातवे सप्तक मे शकुन विचारने की पद्धति पर अपना मत देते हुए गोस्वामी जी ने ग्रथ की पूजा करके प्रभात मे विचार करने का आदेश दिया है। विचार करने के पहले गुरु, गणेश, हर, गौरी, सीता, राम, लक्ष्मण, हनुमान, भरत तथा शत्रुघ्न का भी ध्यान करने को कहा है। इस तरह इस शकुन विचार का आरम्भ ही भक्ति से होता है। इस सप्तक और ग्रथ का अतिम दोहा भी तुलसी की भक्ति-पद्धति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करके उपसहार करता है। राम के भक्त के हृदय पर यह दोहा एक अद्भुत हार पहनाता है। यह हार विश्वास की सूत्र मे सगुण ब्रह्म के शक्ति, शील और सौन्दर्य की विचित्र मणियों से बन कर भक्त के हृदय पर विमल विचार के साथ सुशोभित होता है। इस तरह यह सम्पूर्ण ग्रथ विमल विचार का एक कोष कहा जाए तो अनुचित न होगा।

ग्रथ के प्रारम्भ के दो ऊपर से जोडे गये दोहे प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए एक अद्भुत उपाय बनाते है। विचार करने की सब विधियाँ पूरी करके एक सौ आठ कमल के बीज ले ले। इन बीजों को एक-एक मुट्ठी उठा कर तीन जगह रखें। पहली मुट्ठी के बीज गिन कर सात से भाग दे। जो शेष बचे वह सर्ग होगा। दूसरी और तीसरी मुट्ठी के बीजो की सख्या मे इसी पद्धति से सप्तक और दोहे की सख्या भी निकल आएगी। वह दोहा ही प्रश्न का उत्तर बताएगा। अत भक्तिशास्त्र के आधार पर एक सात्त्विक प्रश्न शास्त्र की रचना कर गोस्वामी जी ने ज्योतिष को भक्ति के साँचे मे ढाल दिया है।

गोस्वामी जी की 'दोहावली' मे पाँच सौ तिहत्तर छन्द है। इनमे से पाँच सौ पचास दोहे और तेईस सोरठे है। यहाँ भी गोस्वामी जी की उसी भक्ति-पद्धति का दर्शन होता है, जिसमे सगुण-निर्गुण ब्रह्म के भीतर शक्ति, शील और सौन्दर्य की समाहित झाँकी प्रस्तुत की जाती है। इसमे विश्वव्यापी धर्म, नीति और मानव समाज की सबलताओं और दुर्बलताओ पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। इस ग्रथ का चातक प्रकरण अनन्य प्रेमभक्ति के अनुपम भावचित्र प्रस्तुत करता है। तुलसी के अन्य ग्रथों के दोहे भी इसी सख्या के भीतर सगृहीत है।

तुलसी की 'कवितावली' कवित्त, सवैया, मनहरण, मत्तगयद, झूलना, छप्पय और घनाक्षरी छन्दों मे तथा शुद्ध ब्रजभाषा में लिखी गयी है। रामायण के काडो के क्रम से इसमे भी सात काड है। बालकाड मे बाईस, अयोध्या में अट्ठाईस, अरण्य मे केवल एक सवैया, किष्किधा मे भी केवल एक ही कवित्त, सुन्दर मे बत्तीस कवित्त, लंकाकाड मे सब मिला कर अट्ठावन छन्द तथा उत्तरकाड मे सब प्रकार के छन्दो की सम्मिलित सख्या एक सौ तिहत्तर है। इस ग्रथ के अत मे चौआलीस छन्दों का 'हनुमान् बाहुक' परिशिष्ट की की तरह जोड़ा गया है। यह ग्रथ प्रबन्धात्मक न हो कर स्फुट प्रकृति का है। कांडों से सम्बद्ध कथाओं के स्वतन्त्र छन्द सगृहीत किये गये से प्रतीत होते है। उत्तरकाड की काशी की महामारी वाली घटना रामायण की कथा से बिलकुल सम्बद्ध नही है। 'हनुमान बाहुक' मे तो गोस्वामी जी ने अपनी बाहु-पीडा दूर करने के लिए हनुमान की प्रार्थना की है। पर इन घटनाओं मे भी महामारी और बाहु-पीडा केवल उपासना के लिए बहाना मात्र है।

भक्ति ही इनमे मुख्य है। 'रामनाम जप जाग कियो चाहौ सानुराग ‡' ही गोस्वामी जी का मुख्य लक्ष्य है। पीडा उस मार्ग मे बाधक हो कर आयी है और उसे दूर करने के लिए भी उसी रामनाम के 'जपजाग' का सहारा 'हनुमान् बाहुक' मे उन्होंने लिया है। पूरी कवितावली मे शक्ति, शील और सौन्दर्य के आधार पर विकसित होने वाली तुलसी की उसी भक्ति का दर्शन होता है, जिसको अपना उच्चतम विकास रामचरित मानस मे प्राप्त होता है। अपनी 'कवितावली' मे भी गोस्वामी जी ने 'साहेब न राम से, बलैया लेउ सील की †' कह कर राम के उसी विश्वमगल विधायक शील की उपासना की है।

ब्रजभाषा के माधुर्य को अपना माध्यम बना कर तुलसी की भक्तिभावना की नदी 'गीतावली' के रूप मे प्रवाहित हुई है। राम के जीवन के सम्पूर्ण मधुर खडों की झाँकियों से जो अमृतमय रसास्वाद गोस्वामी जी ने किया है, उसी की अभिव्यक्ति का परिणाम 'गीतावली' है। तुलसी के हृदय में, मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन की व्यापक सौन्दर्य भावना ने जब बधन तोड दिया है, तभी वह इन गीतो के रूप मे प्रवाहित हो उठी है। तुलसी की भक्ति की सरिता बालक राम के रूप-माधुर्य से प्रवाहित हो कर राजाराम के चरणों मे विलीन हो गयी है। राम-जन्म से आरम्भ करके राज्याभिषेक तक की मधुर घटनाओं को रामायण की पद्धति पर सात काडों मे विभक्त करके गोस्वामी जी ने उन्हे क्रम से सजा कर गीतावली के रूप मे गुफित कर लिया है। राज्याभिषेक के बाद रामराज्य के सुखों का गोस्वामी जी ने ऐसा वैभवमय और मधुसिक्त वर्णन किया है कि उसे देख कर स्वर्ग के देवता भी थकित हो जाते है और अपने हृदय की भक्ति राम के चरणों मे अर्पित कर देते है। जीवन के प्रयत्न पक्ष के बाद के भोग पक्ष का सक्षिप्त पर बडा मधुमय वर्णन गोस्वामी जी ने किया है। 'गीतावली' का कोई गीत राम के जीवन से अलग नही है। सम्पूर्ण गीतावली का एक-एक गीत गोस्वामी जी ने राम के चरणों मे ही अर्पित किया है। प्रजा के रुख के अनुसार चलने वाले आदर्श राजा, राम के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना सीता-परित्याग है। इस घटना का वर्णन भी गोस्वामी जी ने बडे पवित्र गौरव के आलोक मे किया। अपनी आयु पूरी हो जाने पर भी राम ने पिता की अवशिष्ट आयु को ले कर संसार के सम्मुख अधिक से अधिक आदर्शों को प्रस्तुत किया था। उनके वियोग के कारण दशरथ ने समय से पहले ही शरीर त्याग दिया था। इसी अवशिष्ट आयु का उपयोग, राम ने आदर्शो के प्रचार मे किया। पिता की आयु को भोगते हुए पत्नी को साथ रखना मर्यादा के विरुद्ध था। इस रहस्य को जानकी को छोड़ और कोई नही जानता था—"जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ $।" सीता प्रत्येक कार्य राम के मन के अनुकूल ही करती थी, राम का भी यही स्वभाव था—"राम जोगवत सीय-मनु प्रिय मनहि प्रान प्रियाउ *"; इसीलिए बडे रहस्यमय ढग से अपने निर्वासन में वे स्वय सम्मिलित हो गयी। ऐसा करके राम और सीता दोनों ने अपने जीवन की पवित्रता का

---

‡ हनुमान् बाहुक, कवित्त ३९। † कवितावली, लंकाकांड, कवित्त ५२। $ गीतावली, उत्तरकांड, गीत २५। * वही, उत्तरकांड, गीत २५।

रहस्यमय ढग से पालन किया तथा प्रजा की पवित्र भावना की पूर्ति के लिए अपने सुखों की वलि दे देने का आदर्श भी प्रत्यक्ष ढग से राजाओं के सामने रखा। वाल्मीकि के आश्रम मे लवकुश के जन्म तथा उनकी बालक्रीडा से सम्बद्ध तीन ही गीत है, पर वे तीनों बेजोड़ हैं। गीतावली के अतिम गीत मे गोस्वामी जी ने उपसहार मे बालकाड से ले कर केवल राज्याभिषेक तक की घटनाओं का बड़ा सुन्दर और सारग्राही सक्षेप बाईस पक्तियों मे दिया है। अत की इन दो पक्तियों मे 'बेद पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो। तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगतिदान तब माँगि लियो‡।' गोस्वामी जी ने अपने हृदय मे सिहासनासीन राजा राम का दर्शन करके उनसे भक्ति का वरदान माँग लिया है।

'गीतावली' के बालकाड मे एक सौ आठ, अयोध्या मे नवासी, अरण्य में सत्रह, किष्किंधा मे दो, सुन्दर मे इक्यावन, लका मे तेईस तथा उत्तर मे अड़तीस गीत है। इस तरह कुल मिला कर तीन सौ अट्ठाईस गीत है। इन गीतों मे गोस्वामी जी ने आसावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, घनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, बिभास, नट, टोड़ी, सारग, सूही, मल्लार, गौरी, मारू, भैरव, चचरी, बसत तथा रामकली राग का उपयोग किया है।

पूरी 'गीतावली' भक्ति की एक दूसरी गगा की तरह बह रही है। प्रारम्भ से ले कर अत तक उसमे सौन्दर्य और पवित्रता की कमी कही नही दिखाई पड़ती। शक्ति, शील और सौन्दर्य की उसी उपासना मे कवि का मन इस पूरे ग्रथ मे समाधिस्थ-सा हो गया है। 'भरत, राम, रिपुदवन, लषन के बाल-चरित-सरित' में स्नान करके तुलसी इतने आत्म-विभोर हो गये है कि उन्हे यही प्रतीत होने लगता है कि हम राम के साथ उन्ही दिनों की अयोध्या मे है—"भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया। तुलसी तब के से अजहु जानिये रघुबर नगर बसैया†"

मनुष्य के हृदय का ऐसा कोई कोमल और पवित्र भाव नही है जिसे गोस्वामी जी न अपने राम की सेवा मे न अर्पित कर दिया हो। 'गीतावली' उन सब अर्पित रत्नों का जगमगाता हुआ कोष है। गोस्वामी जी के बालक राम, युवराज राम, पथिक राम, योद्धा राम, तथा राजा राम सब अपने-अपने गुणों की परिमिति की सीमा लाँघ गये है। तुलसी की सीता का चित्र भी 'गीतावली' के भावसिक्त गीतों को प्राप्त करके अपनी पवित्रता और माधुर्य से मन को भक्ति-प्रवण और आनन्द विभोर कर देता है। गीतावली मे 'रघुबर' के रूप से रँगा हुआ तुलसी का मन किसी दूसरे रग को नही पसन्द करता। उनके 'रघुबर' का रूप ऐसा है कि उसका वर्णन 'सुक संभु और सहसफन' भी नही कर सकते$।

तुलसी के राजा राम का ऐश्वर्यपूर्ण राजहिंदोल, पावस ऋतु में, अयोध्या की सब प्रजा के लिए अपना झूला है। किसी के लिए रोक-टोक नही, वहाँ किसी के लिए कोई

‡ गीतावली, उत्तरकाड, गीत ३८। † गीतावली, बालकाड, गीत ९। $ गीतावली, उत्तरकांड, गीत १६।

भेद-भाव नही है । अयोध्या की कोई भी स्त्री सन्तोष और आनन्द मे विभोर हो कर कह सकती है, "आली री, राघौ के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ‡ ।" अयोध्या के 'धरमनिपुन-नीतिरत' 'चतुर नर-नारियो' के 'सहज सुभाय' और 'श्री रघुबर-पदप्रीति' को अनुभव करके 'गीतावली' के गीत गोस्वामी जी के हृदय मे तरगित हुए है । अपनी भावना के भीतर गोस्वामी जी ने रामराज्य मे 'सबही के सुन्दर मदिराजिर' देखे है, उन्हे 'राउ-रक न लखि परै' की अनुभूति हुई है, इन्द्र के लिए भी 'दुर्लभ भोगों' के भीतर अयोध्या के नर-नारियो को अनासक्त हो कर जीवन को परमानन्द मे मग्न करते हुए उन्होंने देखा है, इसीलिए वे उन्मुक्त हृदय से, मुक्तकठ हो कर गा उठे है † । अयोध्या के घर-घर मे राजा राम के झूले की तरह ही राजसी ऐश्वर्य और शोभा से पूर्ण झूले पडे हुए है । घर-घर मे राम का यश, आनन्द बन कर फैला हुआ है $ ।

शरद ऋतु मे रामराज्य की शोभा से पूर्ण अयोध्या का वर्णन दीपावली के दिन के एक ही छन्द मे 'गीतावली' मे किया गया है । पर इस एक ही छन्द मे गोस्वामी जी ने राजा और प्रजा को 'एकरस हरषित' देख लिया है * ।

अयोध्या की अपनी प्रिय प्रजा के साथ राजा राम का फाग खेलना तुलसी ने अपने हृदय की भावना मे बिलकुल प्रत्यक्ष देखा है । 'गीतावली' का गीत राम ब्रह्म के वसन्तोत्सव मे परमानन्द की ऐसी वर्षा कर सका है कि उसमे नर-नारी सब अपने को भूल कर आनन्दमय हो गये है । राम को अनत सौन्दर्य के आलोक से परिव्याप्त देख कर, सब लोगो का मन सौन्दर्यानुभूति के सुख मे ऐसा मग्न होता है कि उसे कोई दूसरा आकर्षण अपनी ओर आकृष्ट नही कर सकता । 'अग-अग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ । एहि सुख मगन होइ मन फिरि नहि अनत लोभाइ §' मे गोस्वामी जी ने सौन्दर्यानुभूति की आनन्दमयी मुक्ति की अवतारणा कर ली है । इस वसन्तोत्सव के समय असख्य कामदेवों के सौन्दर्य से अपने को सज्जित कर अवतारी ब्रह्म 'अनुज-सखाओं' × के साथ फाग खेल रहा है । उसकी इस शोभा को देख कर देवता भी अपने को धन्य मानते है । उस समय पृथ्वी का जीवन-ऐश्वर्य स्वर्गीय जीवन के ऐश्वर्य को अपनी ओर आकृष्ट कर उससे भी अधिक गौरवमय हो गया था, तभी तो स्वर्ग के देवता भी लालच-भरी दृष्टि से उसकी ओर देख कर मन्त्रमुग्ध हो रहे थे । 'जो सुख, जोग, जाग, जप, तप तीरथ ते दूरि । रामकृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि + ।' से गोस्वामी जी ने यही बताया है कि प्रेम के आनन्द की सिद्धि सब सिद्धियों को अतिक्रान्त करके अनत आनन्द की ऐसी अतिम माधुरी की सृष्टि करती है, जिसका अनुभव करके मनुष्य और सब आनन्दों को भूल जाता है । योग-यज्ञ का कोई महत्त्व उसके सम्मुख नही रह जाता । पर यह अतिम माधुर्य मनुष्य को राम की कृपा से ही प्राप्त होता है । इस आनन्द में मग्न, तुलसी के साधक को राम का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता

‡ गीतावली, उत्तरकांड, गीत १८ । † वही, गीत १९, पद १ । $ वही, गीत १९ । * वही, गीत २० । § वही, गीत ३१, पंक्ति २९–३० । × वही, गीत २२ । + वही, गीत २१, अत से पक्ति ५–६ ।

है। राम के बीते हुए युग को वे भूल जाते है। उनके हृदय की भावना वसन्तोत्सव के बाद की प्रसन्नता के वातावरण मे प्रफुल्लित राम को प्रत्यक्ष देखने लगती है और गान के प्रवाह मे उनका हृदय बोल उठता है—"तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भगति अनूप। मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप‡।" अपने आनन्द की समाधि के भीतर प्रेम की मधुमय अत-माधना की मानस पूजा मे प्रिय का साक्षात्कार करके गोस्वामी जी ने उससे कृपादृष्टि प्राप्त कर ही ली। इस तरह के समाधिमग्न हृदय मे मानस पूजा की स्थिति मे गीतावली के गीतो मे गोस्वामी जी ने कई बार राजा राम से भक्ति का वरदान माँग लिया है। समाधि के इसी वरदान को उन्होंने जागृत अवस्था मे ससार को बाँटने के प्रयत्न किये है। इस तरह राम के चरित्र का मधुमय आलोक गोस्वामी जी के हृदय मे पहुँच कर गीत बन गया है और उसी का परिणाम 'गीतावली' है।

गोस्वामी जी की 'विनयपत्रिका' दो सौ उन्यासी भावात्मक गेय पदों का सग्रह है। इसकी भाषा ब्रज है तथा इस पूर्ण सग्रह-ग्रथ को, इसी क्रम से गीतो को सगृहीत करके गोस्वामी जी ने स्वतत्र ग्रथ का रूप दिया है। इसमे एक स्वतंत्र ग्रथ की पूरी योजना है। प्रारम्भ के बासठ गीतों मे एक लबे मगलाचरण के रूप मे सब देवताओं और देवियों के साथ सीता और राम की भी प्रार्थनाएँ है। बाद के अवशिष्ट गीतों को गोस्वामी जी ने राम को लिखे गये पत्रो के रूप मे देखा है। ये सब पत्र प्रार्थना वाहक है। ये तुलसी के विनय को राम के चरणों मे पहुँचाने के लिए लिखे गये है। इस विनयपत्रिका के द्वारा गोस्वामी जी ने राम से उनकी भक्ति प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की है। गोस्वामी जी के इन पत्रों की शैली को ध्यान मे रख कर देखा जाए तो पूरा ग्रथ ही पत्र कह दिया जा सकता है। इस दृष्टि से विनय पत्रिका मे सब देवताओं के लिए, रामभक्ति के पथ पर सहायक बन जाने के लिए, गोस्वामी जी ने पत्र लिखे है। सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान इत्यादि सबके लिए पत्र है। सब लोगों से यही प्रार्थना की गयी है कि राम का ध्यान मेरी तरफ फेरने मे आप सहायक बने।

विनयपत्रिका मे प्राय. वे ही राग है, जो कवितावली के गीतों मे मिलते है। सम्भवत केवल दण्डक राग ही विनयपत्रिका मे अधिक है, बाकी गीतावली के और सब राग यहाँ भी प्रयुक्त हुए है।

भक्तिरस की एक अद्भुत धारा विनयपत्रिका मे अविच्छिन्न रूप से बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। भक्ति और भक्त के समग्र स्वभाव को गोस्वामी जी ने इस ग्रथ मे अकित कर लिया है। सगुण और निर्गुण भक्ति के भीतर जिस अनुराग और विराग की आवश्यकता पडती है, उसका पूरा विवेचन भावात्मक ढग से गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका के गीतो मे किया है। दैन्य और अनन्यता, भक्ति के दो मुख्य आधार है। इन दोनों का अनुपम और अक्षय कोष विनयपत्रिका मे उपलब्ध होता है। भगवान् की अहैतुकी कृपा और भक्त की अहैतुकी भक्ति की बड़ी भावात्मिका और सरस सृष्टि गोस्वामी जी ने

---

‡ गीतावली, उत्तरकांड, गीत २१, अन्तिम दो पक्तियाँ।

अपने २७९ पत्रों मे की है । दैन्यपूर्ण शरणागति का सम्भवत. ससार के भक्ति-साहित्य मे विनयपत्रिका से अधिक गौरवपूर्ण भक्ति-ग्रथ शायद ही कोई दूसरा हो । रामनाम के अखड विश्वास को ले कर गोस्वामी जी की भक्ति-धारा इस ग्रथ के प्रारम्भ से ले कर अत तक एक स्वाभाविक मौलिकता के साथ प्रवाहित हुई है । तुलसी का उपासक हृदय अपने उपास्य राम के गुणो की गिनती करते हुए कभी भी थकता-सा नही प्रतीत होता । राम के शील और सौन्दर्य के प्रकाश से आलोकित उनकी परम सुन्दर और कोमल विश्वमगल-विधायिका शक्ति ने गोस्वामी जी को इतना अधिक आकृष्ट किया है और उनकी आत्मा इतनी अधिक तन्मय हुई है कि वे पुनरुक्ति की भावना के ऊपर उठ गये है । साधारण पाठक को विनयपत्रिका के पदों मे पुनरुक्ति दोष दिखाई पड सकता है, पर गोस्वामी जी को इन पुनरुक्तियो मे आनन्द की नयी-नयी लहरों की अनुभूति हुई है अन्यथा बेस्वाद की पुनरुक्ति का कोई अर्थ नही रह जाता और निरर्थक प्रयास तो कोई भक्त करता ही नही । जब मन निरर्थकता मे ऊपर उठ जाता है, तभी तो भक्ति का विकास उसमे होने लगता है । इसीलिए गोस्वामी जी का भक्त हृदय अपने भगवान् को कभी दोष नही देता । वह तो बार-बार यही कहता है कि मेरा मन निरर्थक वस्तुओं मे लगा हुआ है, इसीलिए परम अर्थवान् राम मुझे नही मिलता ।

कितना निश्छल साधक तुलसी के भीतर बैठा हुआ है ! उसे अपनी चिता नही है । वह इसलिए दुखी नही है कि उसकी आत्मा दुर्बल है, उसकी सबसे बड़ी चुभने वाली समस्या यह है कि वह राम का कहलाता है । उसकी खराबी से उसका स्वामी राम अपमानित होता है, यही उसका अदेसा है । उसकी आत्मा इसीलिए व्यथित है कि कुत्ते के दोष के कारण उसका स्वामी गाली खाता है—"बिगरे सेवक, स्वान, ज्यो साहिब सिर गारी ‡ ।" इसी असमजस मे तुलसी का साधक, विनयपत्रिका मे, डूबा हुआ दिखाई पडता है कि मेरे दोषों से मेरे मालिक, राम अपमानित होंगे क्योंकि 'गुन और सील' मे उन्हें कोई जीत नही सका है और व्यर्थ ही दास के दोष के कारण वे अपमानित होंगे † ।

गोस्वामी जी यह अनुभव करते है कि राम के अपना लेने पर दास मे दोष नही रह जाता—"देखे तुमहि तुमहि ह्वै जाई $ ।" इसीलिए विनयपत्रिका मे वे राम से कहते है—"मो सम कुटिल-मौलि मनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई * ।" हरि जब किसी को अपना लेता है तब उसकी सब कुटिलता दूर हो जाती है । तुलसी के राम दीनबन्धु है । वे 'दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख, दारुन-दुसह-दर-दरप-हरन हैं §', उनके अपना लेने के बाद कोई दोष नही बाकी रह जाता ।

देश और काल की अनत सीमा के भीतर अपने राम को गोस्वामी जी ने आदर्श की स्थापना करते हुए देखा है । अनत पापियों के पाप उनकी कृपा-दृष्टि से भस्म हो जाते हैं × ।

---

‡ विनयपत्रिका, पद १५० । † वही, पद १५१ । $ रामचरितमानस, अयोध्याकाड सोरठा १२५ के बाद । * विनयपत्रिका, पद २४२ । § वही, पद २४८ । × वही, पद २४८ ।

मर्यादा पुरुषोत्तम ने जगत् के सब सम्बन्धों का निर्वाह आदर्श की परमोच्च भूमि मे किया है और उन सबका साक्षात्कार तुलसी-साहित्य के भीतर हुआ है। उन सब आदर्श भूमियों के सौन्दर्य को अपने हृदय की आनन्दात्मिका सत्ता के भीतर अनुभव करके, उन्हे विनयपत्रिका के गीतों मे गोस्वामी जी ने अभिव्यक्त कर दिया है। अपने हृदय के इन सब पावन गीतो की पत्रिका को ले कर वे राजा राम की सभा में उपस्थित हुए है।

वे अपनी अनुभूति को राम के सम्मुख रख कर यही कहते है कि आपके बिना मेरा सच्चा 'हितू' कोई नही है। परमात्मा को छोड़ और सब कुछ नश्वर और मिथ्या है। इसीलिए पूरी सभा मे वे सर्वान्तर्यामी राम को ही सर्वश्रेष्ठ मान कर कहते हैं—"विनय पत्रिका दीन की, बापु, आपु ही बाचो ‡।" अतर्यामी को ही तुलसी की पत्रिका बाँचने का अधिकार है। हृदय की बात तो अन्तर्यामी ही जान सकता है और अपने हृदय की साधना के भीतर से तुलसी ने इन पावन पत्रों की भावसरिता को प्रवाहित किया है—"हिये हेरि तुलसी लिखी"। स्वामी के जीवन सौन्दर्य को सेवक ने अपने हृदय की आँखों से देख कर अनुराग के अक्षरो से यह पत्रिका लिखी है। इसीलिए वह चाहता है कि उस पर जनमत न लिया जाए। जनता उसका निर्णय नही कर सकती। उसमें वह प्रतिभा कहाँ, जो पूर्णात्मा राम मे है। वह तो स्वभावत:, अनायास ही निर्णय करके तुलसी के हृदय को देख कर, उस पत्रिका पर अपनी स्वीकृति की सूचना देने वाला हस्ताक्षर कर सकता है। पंचों से यदि परामर्श करना हो, तो हस्ताक्षर के बाद भी यह कार्य हो सकता है। अन्तर्यामी के निर्णय को सीमित दृष्टि वाले कैसे टाल सकेंगे। वे उसके पक्ष मे ही राय देगे। अनत-व्यापिनी दृष्टि वाला राम अपना निर्णय देने के पहले ही यदि सीमित दृष्टि वालों से परामर्श करता है, तो बहुत सम्भव है कि वे ठीक राय न दें और न्याय पाने मे विलम्ब हो जाए। प्रेम की स्वीकृति के इस विलम्ब को गोस्वामी जी का आतुर राम-प्रेमी हृदय नही सह सकता, इसीलिए वह शीघ्र तथा प्रामाणिक निर्णय राम से ही चाहता है। 'हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि, बहुरि पूछिए पाँचो †' से गोस्वामी जी अपनी भक्ति की उपयुक्त गम्भीरता और कोमलता को अनजान मे ही व्यक्त कर देते है। यही है प्रेम का आवेश जो अनत के अनत जीवन-सौन्दर्य के साक्षात्कार से गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ है।

भक्त का यह पावन आवेश उपास्य के सम्मुख सब कुछ भूल जाता है। अपने हृदय की सम्पूर्ण आनन्दधारा से वह उसी के चरणों का अभिषेक कर देता है। राम की सभा मे हनुमान्, शत्रुघ्न, भरत तथा लक्ष्मण भी है। पर अपने आवेश मे गोस्वामी जी ने उन्हे महत्त्व नही दिया। राम के लिए जो भक्ति-धारा भक्त के हृदय में बहती है उसमें कोई दूसरा स्थान नही पा सकता। इस स्थिति में भी किनारे के लोगो के लिए भक्त के हृदय मे कृतज्ञता रहती है, यदि इस आनन्दधारा तक पहुँचाने मे किसी ने सहायता की है, तो भक्त कृतज्ञतापूर्ण प्रणति से उनका भी सम्मान करता है।

‡ विनयपत्रिका, पद २७७। † विनयपत्रिका, पद २७७।

इसी कृतज्ञ बुद्धि को ले कर गोस्वामी जी हनुमान्, शत्रुघ्न, भरत, तथा लक्ष्मण को भी सम्मान देते है। उनसे वे कहते है—"निज निज अवसर सुधि किये बलि जाउ, दास आस पूजि है खास, खीन की ‡" 'आप लोगो ने अपने-अपने अवसर पर मेरा ध्यान रखा है, मैं आप पर निछावर हूँ। आप लोगो की सहायता से इस क्षीण, दुर्बल-दास की भी खास आशा पूरी हो जाएगी।' साधु और समीचीन लोगों के लिए तो राजसभा मे सब लोग अच्छी बाते कहते ही है—"राज-राजदार भली सब कहै साधु समीचीन की † ।" लेकिन 'गतिविहीन' $ के 'गति, मुकृत, सुजस, स्वारथ और परमारथ' 'साहिबकृपा भए' * ही सम्भव है—"समय सभार सुधारिबी तुलसी मलीन की। प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीन की § ।" अपनी इस विनम्र उक्ति से कृतज्ञता प्रकट करके, भक्ति की उच्चतम अवस्था मे रहते हुए भी गोस्वामी जी निरभिमान हो कर लक्ष्मण से सहायता माँगते है। उनसे कहते है कि मुझ मलिन की गलतियो को सुधार कर 'नतपाल', 'कृपालु' को इस पराधीन की सीमित शक्ति और प्रीति समझा दे।

भक्त के पवित्र हृदय मे भावना की कितनी पावन और सुन्दर छायाएँ उत्पन्न होती है। वह अपने हृदय के भीतर की राम-सभा मे यह सब भाव-निवेदन कर रहा है। उसका भावुक हृदय प्रेम की इस समाधि मे देख लेता है कि हनुमान् और भरत की रुचि देख कर लक्ष्मण, राम से कहते है कि इस कलियुग मे भी स्वामी के नाम से प्रेम और उस पर विश्वास एक दास के हृदय मे सफल हो गया है। गोस्वामी जी का भक्त हृदय अपनी भावना के भीतर यह भी देख लेता है कि राम के नतपालक और कृपालु स्वभाव को जानने वाली पूरी सभा एक साथ कह उठती है—गरीब के रक्षक, आपकी कृपा हो, गरीब को देखते ही आप उसकी बाँह पकड लेते है। इसके बाद गोस्वामी जी की कल्पना मे राम की मन्द मुसकान खिल उठती है और वे उन्हे यह कहते हुए सुनते है कि यह सच्ची बात है। मुझे भी तुलसी की भक्ति का समाचार मिला है। इसके बाद गोस्वामी जी ने कहा है कि भगवान् राम की स्वीकृति से प्रोत्साहित हो कर जब आनन्दमग्न अनाथ तुलसी ने अपना मस्तक भक्तिविह्वल हो कर झुका लिया, तब उसकी विनय पत्रिका पर भगवान् राम ने अपना हस्ताक्षर कर दिया×।

इस तरह गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति की तन्मयता मे भगवान राम से अपनी विनय-पत्रिका पर हस्ताक्षर प्राप्त कर लिया। विनय के जो गीत राममय हों, उन पर राम का हस्ताक्षर तो हो ही जाता है। विनय-पत्रिका मे तुलसी की भक्ति बडी भावप्रवण हो गयी है और शक्ति, शील तथा सौन्दर्य की जिस अनुपम तेजस्विता का दर्शन उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम मे करके उनके चरणो को प्रक्षालित करने के लिए अपनी भक्ति-सरिता इस ग्रथ के गीतों मे प्रवाहित की है, उसमे अनत काल तक मनुष्य के हृदय को पवित्र और पावन बनाने की अपरिमित शक्ति अविछिन्न गति से प्रवाहित होती रहेगी।

---

‡ विनयपत्रिका, पद २७८। † वही, पद २७८। $ वही, पद २७८। * वही, पद २७८। § वही, पद २७८। × वही, पद २७९।

अध्याय १०

तुलसी की भक्ति-साधना : अवशेष

डा० मैक मैकनिकॉल ने अपने इडियन थीइज्म मे तुलसी पर एक सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसके आधार पर इस अध्याय मे तुलसी की भक्ति-साधना के कुछ और पक्षों पर प्रकाश डाला जाता है। डा० महोदय ने यह स्वीकार किया है कि राम को केन्द्र वना कर गोस्वामी जी ने भक्ति के सिद्धान्तों तथा ईश्वरप्रेम और ईश्वर के अनुग्रह का रहस्य घर-घर पहुँचा दिया‡। डाक्टर महोदय ने यह भी स्वीकार किया है कि भारत में सर्वास्तिवाद और एकेश्वरवाद के सम्पूर्ण सघर्ष का संक्षेप और भक्ति-सिद्धान्त की नित्यता सप्तम कांड मे कागभुशुडि और लोमश के सवाद मे व्यक्त हुई है†। डा० मैकनिकॉल के मत के अनुसार चौदहवी मे ले कर सत्रहवी शताब्दी तक व्यक्तित्वहीन निर्गुण की उपासना के प्रति अरुचि की एक धारा उत्तरी-पश्चिमी और पूर्वी भारत मे बह चली थी। भारत में सबसे सच्ची भक्ति की धारा का यही युग था$। डा० मैकनिकॉल का यह मत चिन्त्य है। पुराणो मे इससे भी पहले भारत में सगुण भक्ति का युग आया था जिसमें परम शक्तिवान् की नररूप मे भावना और उपासना की गयी थी। डा० मैकनिकॉल यह भी मानते हैं कि इस युग मे धर्म, जीवन के शील से एक हो रहा था तथा परमात्मा और उसकी उपासना का रूप आदर्श के साँचे मे ढला। पर इस आदर्श को डा० मैकनिकॉल आदिम या असस्कृत युग का मानते हैं। मौलिक अध्ययन से डा० महोदय का यह मत उचित नहीं प्रतीत होता। वर्णाश्रम धर्म की ओर इस युग में झुकाव था और उसकी उपयुक्तता पर आगे प्रकाश डाला जाएगा। डा० महोदय के अनुसार भी भक्तिमय और प्रेममय हृदय की उपासना को ज्ञान और कर्म से उच्चस्थान प्राप्त हुआ। हम भी इस बात पर उनसे सहमत है। फिर भी डा० मैकनिकॉल इसे जगली स्तर का इसलिए मानते है कि यहाँ बहुदेववाद है। उनके अनुसार एकास्तित्व-वाद भक्ति का सांस्कृतिक और सर्वोच्च स्वरूप है। इसी ढग के कुछ आक्षेप डा० मैकनिकॉल ने गोस्वामी जी की भक्तिसाधना पर किये है। उन आक्षेपों का अध्ययन एवं समाधान तुलसी की भक्तिसाधना के कुछ और पक्षों पर प्रकाश डालता है।

डा० मैकनिकॉल रामायण को सहस्ररजनी कथा, दार्शनिक ग्रंथ और भक्तिग्रंथ का मिला-जुला रूप मानते है—"दैट पोयम एपीयर्स, इनडीड, लाइक ए ब्लेंड ऑफ़ दि अरेबियन नाइट्स, ए फिलॉसफिकल ट्रैक्टेट एंड ए बुक ऑफ़ डिवोशन *"

---

‡ उत्तरकाड, दोहा २० से ५१ तक। † उत्तरकांड, दोहा ११० से ले कर ११३ के बाद तक। $ इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११६। * वही, पृष्ठ ११७।

उन्होंने कहा है कि यद्यपि रामायण ने सब देवताओं और अर्द्धदेवताओं को राम के अंश की तरह मान कर उन्हें राम से निम्न श्रेणी का माना है तथापि इन पर विश्वास रखने के कारण ही उसे एकास्तित्ववादी उच्च प्रकार का भक्ति-सम्प्रदाय नहीं मान सकते—"वी कैनॉट, फॉर एक्ज़ाम्पल, कॉल दैट मोनोथीइज्म व्हिच स्टिल फ्रीली एक्नॉलेजेज़ ए होस्ट ऑफ गॉड्स एंड डेमी-गॉडस्, दो दीज़ आर प्लेस्ड अपॉन ए लोअर लेवेल दैन दि सुप्रीम लॉर्ड, 'दि अनअटरेबल', ऑफ हूम दे आर पार्ट्स ‡।"

सहस्त्ररजनी कथा की कपोलकल्पित घटना-वैचित्र्य-पूर्ण कहानियों की श्रेणी मे रामायण को ला देना डा० मैकनिकॉल के समान प्रतिभाशाली विद्वान के लिए सम्मान की बात नही है। वेद, उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र की समग्र परंपरा में पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारत के ऋषियों ने स्वीकार किया है और आज तक के, वैदिक धारा के चिन्तनशील मनीषी उसे सत्य मानते है। राजा सत्यकेतु के पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन के जीवन की उन विचित्र तथा दुःखद घटनाओं का वर्णन, जिनके कारण वे राक्षस शरीर में रावण और कुंभकर्ण के रूप मे पैदा होने को बाध्य हुए, देख कर, सम्भवतः डा० मैकनिकॉल को सहस्त्ररजनी कथाओं की याद आयी हो। पर जिस दार्शनिक गम्भीरता से तुलसीदास जी ने इस घटना की चर्चा की है और उसमे नियति और मानव स्वभाव के चित्र को प्रस्तुत किया है उसे देखते हुए रामायण के लिए ऐसा भद्दा उपमान चुन कर अपनी स्वाभाविक गम्भीरता को डा० मैकनिकॉल ने विकृत कर लिया है। उन्होंने कहा है: "बट दीज़ कैरेक्टरिस्टिक्स्, सो ट्रूली दोज़ ऑफ़ ए जनुइन थीइस्टिक रिलीजन, व्हाइल वी रेकग्नाइज़ देम एज़ प्रेज़ेन्ट इन पोटेन्सी एंड प्रॉमिज़, वेयर स्टिल मिंगल्ड विद मच दैट गिव्ज़ दि रिलीजन ऐज़ वी स्टडी इट ईवन इन दि 'लेक ऑफ रामाज़ डीड्स', ए स्ट्रेंज एंड सेवेज कैरेक्टर †।"—'पर तुलसी की भक्ति-साधना के ये स्वभाव, जो एक सच्चे आस्तिक धर्म के होते हैं, और जिनकी उपस्थिति उनकी शक्ति और सम्भावनाओं के साथ हम तुलसी-साहित्य मे स्वीकार करते हैं, तिस पर भी जब हम उनका अध्ययन रामचरित मानस में भी करते है तब वे बहुत कुछ ऐसी बातों से मिश्रित दिखाई पड़ते है जिनके कारण उन्हें एक विचित्र और बर्बर स्वभाव प्राप्त हो जाता है।' डा० मैकनिकॉल ने कहा है—"इट गेव ए फॉर हायर प्लेस दैन डिड दि स्पेकुलेशन ऑफ़ दि फ़िलॉसफर्स टु मॉरल क्वालिटीज़ बोथ इन दि गॉड्स एंड इन देयर वरशिप, दो इट्स मॉरैलिटी इज़ स्टिल दि क्रूड मॉरैलिटी ऑफ़ ए बारबैरिक एज. ऐनदर कैरेक्टरिस्टिक्स ऑफ़ इट इज़ दैट इट ब्रॉट ए मेसेज़ ऑफ ए गॉड ऑफ ग्रेस. इट ऑल्सो सॉट टु प्लेस ऐब्व ज्ञान एंड कर्म, दि वरशिप ऑफ दि डिवाउट एंड लविंग हार्ट $."—'दार्शनिक चिन्तन ने नैतिक गुणों को जितना गौरवपूर्ण स्थान दिया उससे कही अधिक ऊँचा स्थान उन्हें तुलसी की भक्ति-साधना में मिला। यह गौरव देवताओं और उनकी उपासना, दोनों के भीतर तुलसी ने उत्पन्न किया है। इतना होने पर भी तुलसी की भक्ति-साधना की नैतिकता बर्बरतापूर्ण युग की भोंडी नैतिकता है।

‡ इंडियन थीइज्म, पृष्ठ ११७। † वही, पंक्ति १५। $ वही, पृष्ठ ११७, पंक्ति ७।

तुलसी की भक्ति-साधना का एक दूसरा स्वभाव यह भी है कि उसने कृपामय परमात्मा का सन्देश दुनिया को दिया। उसने पवित्र और स्नेहमय हृदय की उपासना को ज्ञान और कर्म से ऊँचा स्थान देने का भी प्रयत्न किया।'

राजा भानुप्रताप की कथा की सास्कृतिक ऊँचाई की सहस्त्ररजनी की विस्मयपूर्ण कथाओं से कोई तुलना नही की जा सकती। राजा भानुप्रताप को गोस्वामी जी ने जीवन के बडे ऊँचे आदर्श पर गीता के अनासक्तियोग से अनुप्राणित करके चित्रित किया है। इतने ऊँचे शील मे भी लोभ के पैंदा हो जाने की सम्भावना होती है और लोभ ही जीवन के विनाश का कारण होता है। मानव-जीवन के इसी दर्शन को साकार करने के लिए गोस्वामी जी ने रावण और कुभकर्ण इत्यादि के पूर्वजन्म की चर्चा की है और उसी से सम्बद्ध रामजन्म के प्रयोजन को समझाया है।

इतने उदार लक्ष्य को ले कर जो आख्यान रामायण में सम्मिलित कर लिया गया है उसमे विचित्रता रहते हुए भी सहस्त्ररजनी का नाम उसके साथ लेना उसका अपमान करना है। कभी-कभी जीवन कल्पना से भी अधिक विचित्र होता है और इस बात को सब चिन्तनशील विद्वान् मानते है। केवल जीवन की विचित्रता को देख कर कोरी कल्पना की कहानियों से रामायण की तुलना डा० मैकनिकॉल को नही करनी चाहिए थी। उनके साथ हम इस बात पर बिलकुल सहमत है कि रामायण भक्ति और दर्शन दोनों से पूर्ण है। इन दोनों का समन्वय यहाँ अवश्य हुआ है।

डा० मैकनिकॉल ने तुलसी की भक्ति को निम्न स्तर का अनुभव किया है। उनकी यह धारणा भी भ्रान्त है। डा० मैकनिकॉल ने तुलसी की भक्ति को जिन कारणों से निम्न स्तर पर लाकर आदिम बर्बर जीवन के तत्त्वों से युक्त पाया है, हम उनसे भी सहमत नही है। यह तो प्रत्यक्ष बात है कि मनुष्य चाहे बर्बर युग में रहे या सभ्य युग में, अपने प्रतिदिन के साधारण जीवन में वह भेद को ही ले कर चलने को बाध्य रहता है। अभेद उसका आदर्श होता है और भेद उसका यथार्थ। एकत्व उसका लक्ष्य होता है, द्वैत उसका व्यावहारिक क्षेत्र। इस व्यावहारिक क्षेत्र के सघर्षपूर्ण भेद को वह आध्यात्मिक क्षेत्र के शान्तिमय अभेद मे विसर्जित कर देना चाहता है। तुलसीदास जी ने भी यही किया है। लोक के भीतर, लोकानुभूति मे जमी हुई वासनाओं और संज्ञाओं को वे राममय बना देना चाहते थे और उन्होंने किया भी यही। जिस भेद को जगत् देखता है उसे सहानुभूतिपूर्ण हृदय से देख कर उन्होंने उसमे राम का दर्शन किया।

देवताओं, दैत्यों, मनुष्यों, पक्षियों, प्रेतों, पितरों, गधर्वो, किन्नरों और निशाचरों मे राम को देखते हुए तुलसी ने उन्हें प्रणाम किया है। यदि हम यह स्वीकार भी कर लें कि केवल बर्बर युग ही इस तरह के देवताओं और दैत्यों की कल्पना करता है तब भी तो तुलसी की भक्ति-पद्धति में बर्बर तत्त्व नहीं बाकी रह जाते, क्योंकि वे तो बर्बरों की अनुभूति मे राम की अनुभूति कर लेते है। इस प्रकार उनकी अनुभूति एकास्तित्व-प्रधान उच्च कोटि की

भक्ति के स्तर पर ही आ कर रुकती है। मनुष्यों के जगली युग को उन्होंने परमोच्च सभ्यता का युग बना लिया है। लेकिन हम तो यह मानते है कि हमारी चेतना विगत सभ्यता की जिन भावनाओं को जगली कह कर स्वीकार करती है, वे सबकी सब जगली भावनाएँ नही है। यदि ये सब जगली भावनाएँ होती तो व्यास, वाल्मीकि और वेद के मेधावी ऋषि इन्हे स्वीकार न करते। गीता इनका नाम विश्वास के साथ न लेती।

तुलसी की भक्ति मे जीवन की स्वाभाविकता आदर्श के परमोच्च शिखर पर स्थापित है। भारत का गौरव यही है कि जीवन के सत्य पर सभ्यता की दुहाई दे कर उसने पर्दा नही डाला है, पर जो भेददर्शन मनुष्य को सघर्ष की ओर ले जाता है उसे अभेद की ओर मोड़ कर शान्ति के आनन्दमय लोक की ओर मानवता को ले जाने का प्रयत्न उसने बराबर किया है और दुनिया के सब महात्माओ ने यही किया है—चाहे वे ईशू रहे हों या मुहम्मद, राम रहे हों या कृष्ण, महावीर रहे हो या बुद्ध।

परमात्मा का अनुग्रह अवतार का कारण होता है। डा० मैकनिकॉल ने तुलसी के विषय मे अपना मत देते हुए यह कहा है कि तुलसी ने यह बार-बार दुहराया है कि राम का अवतार भक्तों के उद्धार के लिए अनुग्रहपूर्ण स्वीकृति का परिणाम है‡। इसे डा० मैकनिकॉल भक्ति की भावना के लिए आवश्यक भी मानते है। यहाँ पर किसी का विरोध नही हो सकता। ईसाई और हिन्दू दोनों तरह की भक्ति-साधना में यह बात प्रायः इसी प्रकार स्वीकार कर ली गयी है।

डा० मैकनिकॉल तुलसी की भक्ति पर ग्रामीणता और असभ्यता का अभियोग लगाते है। वे कहते है कि तुलसी के भगवान् का अवतार कुछ ऐसे कारणों से भी होता है जो कम आदर्शपूर्ण तथा ग्रामीणता का परिचय देते है तब हमें उनसे सहमत होने के लिए कोई आधार उचित नही दिखाई पड़ता। तुलसी के राम के अवतार का एक कारण मनुष्यों के हृदय मे, तथा मूर्ति के रूप मे बाहर भी, देवताओं की स्थापना करना है। अनेक देवताओं की कल्पना करना, डा० मैकनिकॉल के अनुसार असभ्यता और ग्रामीणता का लक्षण है ही। इसी सम्बन्ध मे डा० मैकनिकॉल ने रामेश्वर की स्थापना की चर्चा की है†।

हम डा० मैकनिकॉल के इस मत से भी सहमत नही हैं। भारतीय धर्मक्षेत्र मे ईश्वर-चिन्तन की धारा इस बात पर विश्वास करती है कि जिस प्रकार अदृश्य आत्मा कारणवश दृश्य शरीर मे रहती है, ठीक उसी प्रकार अलक्ष्य परमात्मा भी अलग-अलग कार्यो के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूपों में अपने को व्यक्त करता है तथा स्वयं भी अवतार लेता है। एक के अनेक होने का, अव्यक्त के व्यक्त होने का यही रहस्य है। असीम सीमा के भीतर इसीलिए आता है कि मनुष्य की सीमित बुद्धि अपनी शक्ति के अनुसार उसे कुछ पहचान कर उसके पूर्णरूप को देखने की दिशा में प्रगति कर

‡ इडियन थीइज़्म, पृष्ठ ११७, नीचे से पंक्ति २ से ४ तक। † इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८, प्रथम आठ पक्तियाँ।

सके। देवताओ और अवतारों के पीछे यही विराट का, परमात्मा का रहस्य है। मूर्ति को माध्यम बना कर उसी अचिन्त्य के ध्यान का अभ्यास भारतीय साधक अपनी साधना की प्रथमावस्था मे करता है और उस असीम का अनुभव कर लेने के बाद भी बहुत से साधक मूर्ति-पूजा इसीलिए करते है कि प्रारम्भिक अवस्था मे रहने वाले साधकों को अपने ठीक कर्त्तव्य के प्रति भ्रम न हो जाए। पर अत में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के इन रूपों के पीछे छिपी हुई अद्वैतशक्ति की ओर इशारा कर दिया जाता है। तुलसीदास जी ने भी विष्णु और शिव मे यही समन्वय राम के द्वारा कराया।

इतनी विराट् योजना के पीछे डा० मैकनिकॉल को ग्रामीणता, असभ्यता, विचारहीनता या उथलापन नही दिखाई पडना चाहिए था, जबकि इसी के बाद तुरन्त वे स्वीकार करते है कि सीता, राम के साथ, आदिशक्ति, सौन्दर्य की खान और जगदम्बा की तरह दिखायी गयी है‡। एक विराट् लक्ष्य को ले कर कोई भी विचारक या भावना का साधक अशक्ति के उथलेपन का प्रदर्शन नही करता। जब भेदग्रस्त हो कर एक ही विराट् के अलग-अलग विष्णु और शिवरूप के विकास मे भेददर्शन करके वैष्णव और शैव सम्प्रदाय को मानने वाले अंधे मनुष्य आपस मे एक दूसरे के रक्त के प्यासे बन रहे थे उसी युग में गोस्वामी तुलसी-दास जी ने इन दोनों की प्राचीन-एकता की ओर, अपने रामचरितमानस के प्रायः प्रत्येक काड की सहायता से लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। एकत्व का जो प्राचीन दार्शनिक या प्राचीन भक्ति-प्रवाह लोगों के भीतर सूख गया था उसे तुलसी ने पुनः प्रवाहित किया।

डा० मैकनिकॉल ने सर्ववाद, अद्वैतवाद तथा जातीय पक्षपात के आधार पर तुलसी की भक्ति को निम्नकोटि का माना है। इस दिशा मे डा० मैकनिकॉल की लेखनी तुलसी के प्रति फिर उग्र हो गयी है। यदि थोड़ी गम्भीरता से वे विचार करते तो उन्हें कटु आलोचना की आवश्यकता न दिखाई पड़ती। उन्होंने कहा है कि सच्ची आध्यात्मिक भक्ति की ऊँचाई से तुलसीदास अपने जातीय पक्षपात के कारण गिर गये है। उनकी भक्ति बहुदेववाद और सर्ववाद को अस्वीकार करने मे समर्थ नहीं है; इसीलिए उनके अवश्यम्भावी परिणाम सामाजिक भेदभाव को भी वे नहीं छोड पाये है। उनके राम ब्राह्मणों, गायों और देवताओं के लिए पृथ्वी पर आये है। गुरु को भी वे ब्राह्मण के रूप मे ही स्वीकार करते है। उन्होंने सब तरह से हीन ब्राह्मण को सम्मान देने तथा सब विद्याओं और गुणों से युक्त शूद्र को सम्मान न देने का उपदेश दिया है†।

गीता-धर्म और तुलसी की भक्ति-पद्धति में साम्य है। इस आधार पर डा० मैकनिकॉल के इस आक्षेप का उत्तर बहुत ही स्पष्ट है। सर्ववाद और अद्वैतवाद, जिनकी जड़ से वे जातिभेद का जन्म देखते है, आज भी विश्व के मनीषियों द्वारा सम्मानित हो रहा है। जाति-व्यवस्था अद्वैतवाद से या सर्ववाद से नही निकली, मनुष्य के भिन्न-भिन्न स्वभावों के कारण ही उसकी उत्पत्ति हुई है$।

---

‡ इंडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८, पक्ति ९ से ११ तक। † इंडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८ अनुच्छेद २, पक्ति १ से १० तक। $ गीता, अध्याय १८, श्लोक ४१।

पुनर्जन्म और नियतिवाद के सिद्धान्त गणित के सिद्धान्त की तरह सत्य है और मनुष्य स्वय अपने पुनर्जन्म और नियति का कारण बनता है। जो मनुष्य देश और काल के भीतर के जिन आकर्षणो से आसक्त रहता है, उसकी आत्मा उन्ही आकर्षणों की वासनाओं से बँधी रहती है। एक शरीर के नष्ट हो जाने पर दूसरे शरीर मे फिर उन्ही स्वभावों और वासनाओं को ले कर वह संसार मे आता है। भारतीय दार्शनिक यही मानते है कि अपने पूर्व जन्मों के कर्मो के अनुसार जीव अलग-अलग वर्णो मे पैदा होते है और एक जन्म की अवधि तक उन्हें एक ही वर्ण में रहना पड़ता है। यदि कर्म अच्छे हुए तो शूद्र भी दूसरे जन्मो मे वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल मे जन्म ले सकता है। यहीं तक नही—अपने कर्मो को, आसक्त हो कर भला या बुरा, उच्च या नीच न समझ कर, शूद्र यदि करता चला जाए तो सन्यास और वैराग्य प्राप्त हो जाने के कारण जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है‡।

यदि एक ब्राह्मण भी अपने कार्यो को उच्च समझ कर अभिमान से करता है तो उसका शील पतित हो जाता है और दूसरे जन्म मे वह शूद्र कुल मे जन्म ले सकता है।

गीताधर्म इसी बात का प्रचार करता है। उसके अनुसार स्वभाव के अनुसार जातियो की व्यवस्था का नियम परमात्मा के द्वारा बनाया गया है। प्रजा जिस प्रकार राजा के बनाये हुए नियमों का पालन करके पुरस्कृत और उनका उल्लघन करके दडित या तिरस्कृत होती है, उसी प्रकार जगत् का राजा परमेश्वर भी नियम की व्यवस्था करके सम्पूर्ण जगत् पर अधिकार रखता है। जगत् का अपने को एक अविभाज्य अश समझ कर अपने कार्यो को विराट् की सेवा समझ कर करने वाला मनुष्य परमात्मा की निरन्तर उपासना करता रहता है। अनासक्त हो कर विश्व की सेवा की भावना से अपना काम करने वाला मनुष्य अपने कार्यो को ही उपासना बना लेता है†।

अपने सहज नियत कर्म को, दोषयुक्त रहने पर भी, मनुष्य को नही छोड़ना चाहिए। प्रत्येक नियत कर्म को परमात्मा का आदेश मान कर करना चाहिए। गीता के अनुसार सब कर्म ऊपर से दोषयुक्त है, जिस तरह आग धुएं से घिर कर मलिन मालूम पड़ती है, उसी प्रकार वासना और आसक्ति से घिरे हुए मस्तिष्क और हृदय को कर्म सदोष प्रतीत होते हैं, मलिन अनुभव होते हैं। यदि वासना और आसक्ति से अलग हो कर मनुष्य ईश्वर की आज्ञा समझ कर अपने-अपने कर्मों को करता जाए तो वासना के धुएँ से मुक्त हो कर उन कार्यो मे उपासना की उज्ज्वल ज्वाला चमकने लगेगी$। ब्राह्मण से ले कर शूद्र तक के कर्मो के साथ यही नियम लागू होता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी गीताधर्म का उपदेश देते हैं। कर्म और विचार का यही सन्तुलन गोस्वामी जी का भी लक्ष्य है। इसी सन्तुलन को प्राप्त करके आर्य जातियाँ निष्काम और निरहकार भाव से विराट् की उपासना करती थी। अनार्य मनुष्यों में ही

‡ गीता, अध्याय १८ श्लोक ४९। † वही, श्लोक ४६। $ वही, श्लोक ४७ से ४९ तक।

भेद और अहकार पैदा होता है । मनुष्य को अनार्य होने से बचाने के लिए महात्मा लोग बराबर प्रयत्न करते रहे है । गीता मे जिस प्रकार सब प्राणियों के लिए ईश्वर के हृदय में समभाव की ओर सकेत किया गया है और स्त्री, वैश्य तथा शूद्र सब भक्ति और मुक्ति के अधिकारी माने गये है ‡, वही दृष्टिकोण तुलसी का भी है । इसी पृष्ठभूमि पर तुलसी-साहित्य का मूल्याकन न कर सकने के कारण डा० मैकनिकॉल को गोस्वामी जी के सम्बन्ध मे भ्रम रह गया है ।

डा० मैकनिकॉल का तुलसी पर एक और अभियोग है । उन्होंने कहा है कि अपने आवेश के क्षणों मे तुलसी कभी-कभी बहुदेववाद और सर्ववाद के ऊपर उठे हुए दिखाई देते हैं, पर वे वैसे न हो कर उन्ही की बगल में खडे हुए है—"दज़ इट एपियर्स दैट एलाग विथ व्हाट इज़ इन मेनी रेस्पेक्ट्स ए नोबल रेवेरेन्स फ़ॉर वन एग्ज़ाल्टेड पर्सनल सुप्रीम, हू इज फुल ऑफ लव एड पिटी फॉर हिज़ वरशिपर्स, देयर गोज़ मच दैट मार्स दि पिक्चर । दिस थीइज़्म हैज़ नॉट येट इन इट दि स्ट्रेंग्थ टु रिजेक्ट आइदर पॉलीथीइज़्म ऑर पैनथीइज्म, ऑर दि सोशल कन्डीशन्स दैट एकम्पनी देम । ऑल इट हैज़ अटेन्ड टु, इज़ ए प्लेस बिसाइड देम व्हिच समटाइम्स, इन अवर्स ऑफ एक्ज़ाल्टेशन, सीम्स ए प्लेस एबव देम † ।" 'इस तरह यह प्रतीत हो रहा है कि सर्वोपरिस्थित सर्वशक्तिमान् एकेश्वर जो अपने भक्तों के लिए प्रेम और करुणा से परिपूर्ण है, उसके लिए कई प्रकार से उच्च और स्वार्थरहित आदर के साथ-साथ तुलसी की भक्ति-साधना में बहुत-सी ऐसी बातें है, जो पूरे चित्र को ही नष्ट कर देती है । तुलसी के इस आस्तिकवाद मे इतनी शक्ति नही है कि यह बहुदेववाद और सर्ववाद को तथा उनके साथ रहने वाली सामाजिक अवस्थाओं को अस्वीकार कर सके । तुलसी की साधना अपने लिए केवल उनकी बगल में स्थान बना सकी है यद्यपि उनके भावावेश के समय यह साधना सर्ववाद, बहुदेववाद तथा उनके द्वारा उत्पन्न की गयी सामाजिक स्थितियों के ऊपर उठी हुई आभासित होती रहती है ।'

इस अभियोग का उत्तर भी बहुत ही स्पष्ट है । भारत मे बहुदेववाद और सर्ववाद दोनों अद्वैतवाद से अनुप्राणित हैं । उस प्रकाश मे रहने के कारण अभेद दृष्टि से वे पवित्र हो रहे है । उनमे यदि दोष आया है तो मनुष्य की दुर्बलता के कारण । सिद्धान्त रूप में ऋषियों ने प्रायः बराबर अद्वैत और अभेद का ही उपदेश दिया है । मनुष्य ने जब उसका उल्लंघन किया है तभी विश्व आपत्तियो मे पडा । भारत मूल मे अद्वैतवादी है, पश्चिम मूल मे द्वैतवादी । इसी कारण आज भी जिस सच्ची शान्ति का उपदेश भारत दे सक रहा है वह यूरोप और अमेरिका में खोजने से भी नहीं मिल रही है । अतएव हम तो अभेद से अनुप्राणित बहुदेववाद और सर्ववाद को संसार के कल्याण का पथ ही निर्मित करते हुए पाते हैं $ । इसी पर चल कर गीताधर्म की दृष्टि से गोस्वामी जी ने जाति-व्यवस्था को भी देखा है । उनके यहाँ गुह, निषाद, कोल, शबर, किरात, पशु, पक्षी,

---

‡ गीता, अध्याय ९, श्लोक ३२ । † इंडियन थीइज़्म, पृष्ठ ११८, अंतिम ४ पक्तियाँ, पृष्ठ ११९, आरंभ की ४ पक्तियाँ । $ गीता, अध्याय १० ।

मनुष्य, महात्मा, दुरात्मा, सती तथा वेश्या सब भक्ति के अधिकारी हो गये है । आशावादी भारत हर तरह के मनुष्य मे परिवर्तन पर विश्वास रखता है। यह दृश्य हमे तुलसी मे उनकी आवेश की अवस्था के कारण नही दिखाई पडता वरन् वह तो उनके द्वारा किये गये ईश्वरीय न्याय के नियम के साक्षात्कार के परिणाम का अनुसरण करता हुआ दिखाई पडता है। अपनी-अपनी जाति के लिए निर्धारित कर्म करने वालों के प्रति वाल्मीकि, तुलसी तथा राम-साहित्य के सब सतों को राम के भीतर स्नेह और कृपा दिखाई देते है। विराट् के द्वारा (परमात्मा के द्वारा) प्रवर्तित कर्म चक्र का जो अनुसरण नही करते वे गीता के कृष्ण के द्वारा तथा राम-साहित्य के राम के द्वारा व्यर्थ जीवन बिताने वाले माने गये है ‡। तुलसी क्या, सब तरह के भक्तो और सतों ने जहाँ जातियों मे भेद नही देखा है वहाँ इसी दृष्टि से सब जातियाँ अपना-अपना कर्तव्य पालन करके परमात्मा की उपासना कर रही है। जहाँ-जहाँ अपनी जाति के कर्म को अभिमानवश छोड कर लोग पथभ्रष्ट हो गये है वहाँ संतों ने उन्हे फटकारा है। स्वय कबीर ने अपने को जुलाहा माना है †। रैदास चमार होते हुए भी अपना हल जोतने का कार्य करते हुए ही ज्ञानी और मुक्त हो गये। जगत् उनकी उपासना इसलिए नही करता कि वे बडे भारी विद्वान् थे। उनमें गुरुता इसलिए है कि ज्ञानी होने के कारण वे इतने अनासक्त थे कि हल चलाने का अपना काम उन्होंने नही छोड़ा था, और ज्ञान का लक्षण भी तो गीताधर्म के अनुसार यही है $। यही पुरस्कार देने के लिए तुलसी के राम ने गुह इत्यादि शूद्रो को अपने हृदय से लगा लिया, पर ब्राह्मण रावण का वध किया; क्योंकि उसने अपना धर्म छोड़ कर जगत् को पीड़ा पहुँचाना शुरू कर दिया था। तुलसी सब वर्णो और आश्रमों को बिना भेदभाव फटकारते हैं *।

अवतार के प्रयोजन मे डा० मैकनिकॉल ने तुलसी के भीतर ब्राह्मण जाति के लिए पक्षपात देखा है। उन्होंने तीसरे सोपान के तैंतीसवें दोहे के बाद की चौपाई "पूजिय बिप्र सीलगुण हीना सूद्र न गुन-गन ज्ञान प्रबीना" को उद्धृत करते हुए कहा है कि ब्राह्मणों को तुलसी ने सम्मान के उसी सिंहासन पर बिठा रखा है। वर्णो मे वे भेद देखते है। इसीलिए भक्ति के पूर्ण आध्यात्मिक धर्म से वे नीचे गिर जाते है। उनके राम गो, ब्राह्मण और देवताओं के लिए ही जन्म लेते है—"दि ब्राह्मण इज़ नॉट येट डीपोज़्ड फ्रॉम हिज़ प्लेस ऑफ प्रिविलेज। इट इज़ स्पेशली फ़ॉर दि सेक ऑफ ब्राह्मन्स्, काउज़ एंड गॉड्स दैट राम हैज़ टेकेन ह्यूमन फ़ार्म §।"

हम नही समझ पाते कि डा० मैकनिकॉल को गो और ब्राह्मणों का नाम ले देने से ही उच्च भक्ति के स्थान से गिरते हुए तुलसी क्यों दिखाई पड़ते है। "जग निवास

‡ गीता अध्याय ३, श्लोक १६ तथा रामचरितमानस, उत्तरकाड दोहा ४४। † कबीर ग्रथावली, नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ १८१, पद २७०। $ गीता अध्याय ३, श्लोक ३ से ३५ तक। * रामचरितमानस उत्तरकांड, दोहा ९७ से १०२ तक। § इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८ पंक्ति १३ से १६ तक।

प्रभु प्रगटे अखिल-लोक-बिस्राम" ‡ । तुलसी ने अखिल लोक के विश्राम को अवतार का कारण माना है। 'विप्र-धेनु-सुर-सत हित लीन्ह मनुज अवतार †' में सत शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सबके लिए लागू होता है। सत जहाँ-जहाँ होगे जिस जाति मे होगे, जिस देश मे होगे उन सबकी रक्षा के लिए अवतार होता है। यहाँ 'सत' शब्द ब्राह्मण से अलग हट कर दूसरी सब जातियो के शीलवान् लोगों को सूचित करता है और ब्राह्मणों के भीतर गिने जाने वाले असतों को अलग कर देता है। रावण को उदाहरण की तरह हम पहले ही सूचित कर चुके है।

'पूजिय विप्र शीलगुन हीना...$' मे तुलसी का एक निश्चित दृष्टिकोण है। उसे समझ लेने की आवश्यकता है। प्राय. सम्पूर्ण भारतीय विचारधारा इस बात को स्वीकार करती है कि अपने पूर्व जन्मों के कर्मो के अनुसार ही इस जन्म मे मनुष्य को कोई एक खास कर्म करने को बाध्य होना पडता है' कर्म का यह बन्धन कभी तोड़ा नही जा सकता। यह ईश्वरीय नियम है। भारतीय दर्शनों की यह विचारधारा सम्पूर्ण विश्व पर लागू होती है। इस देश मे जातियाँ जन्म मे ही मानी जाती है। मनुष्य जिस जाति मे पैदा होता है उसी जाति के कर्म करता है और यह माना जाता है कि पूर्वजन्म के कर्मो की प्रवृत्तियों के अनुसार ही उसे उस जाति मे उसी तरह का कर्म करने के लिए जन्म लेना पड़ा है। जिन देशो मे जाति जन्म मे नही मानी जाती वहाँ भी नियम यही लागू होता है। लोग अलग-अलग पेशो की तरफ पूर्वजन्म के कर्मो के अनुसार ही झुकते है। जाति को जन्म मे मानने मे भारतीय दर्शन को कोई अनौचित्य नही दिखाई पड़ता। क्योंकि वह समझता है कि उस जाति मे वही व्यक्ति उत्पन्न होगा जिसे पूर्वजन्म के कर्मो के अनुसार उस जाति के लिए निश्चित कर्म करने है। दूसरे जन्म मे शूद्र ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हो सकता है यदि वह ईश्वरीय नियम का पालन करते हुए अपने कर्म को ईश्वर की आज्ञा समझ कर करता जाए, उसके प्रति राग या द्वेष पैदा करके उस कर्म को भला या बुरा, उच्च या नीच न समझे।

मन की आसक्ति के कारण ही कर्मो मे अच्छाई और बुराई मालूम पड़ती है। जब व्यक्ति समझता है कि मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हो कर एक अधम कार्य कर रहा हूँ तब वह उस कार्य से अपने मन को आसक्त कर लेता है। इसी तरह जब ब्राह्मण भी यह समझता है कि मैं उच्च कुल मे पैदा हुआ हूँ और उच्च और पवित्र कर्म करने के कारण उच्च और पवित्र हूँ तब वह अपने आसन से मन की आसक्ति के कारण गिर जाता है। ब्राह्मण से ले कर शूद्र तक को भारतीय दर्शनों ने यही उपदेश दिया है कि अपने मन को वे कर्मो से न जोड़ें, परमात्मा से जोड़ें और यही समझे कि परमात्मा का एक अटल नियम ही उन्हे अलग-अलग जातियों में जन्म देता है और उसकी आज्ञा का पालन करके यदि वे विराट् का कार्य करेगे तभी उनकी आत्मा उदार होगी और उन्हें मुक्ति प्राप्त होगी। परमात्मा के इस नियम को स्वीकार

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९१। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९२।
$ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३३ के बाद।

करना ही भक्ति है। इस नियम का पालन करने वाला ही परमात्मा को प्रिय है। यदि अभिमान के कारण ब्राह्मण अपने को उच्च समझ लेता है तो वह भी शील की दृष्टि से पतित हो जाता है और अभिमान के कारण अपने कर्म को नीच समझ कर छोडने वाला शूद्र भी शील की दृष्टि से पतित होता है। इसलिए महात्मा कबीर जीवन भर जुलाहे का काम करते रहे और रैदास हल चलाने का। जब अभिमान छोड़ कर मनुष्य अपने को उच्च नही समझता तब परमात्मा की दृष्टि में वह उच्च हो जाता है। उसका शील स्वार्थ की क्षुद्रता को छोड कर विराट् हो जाता है। एक शूद्र भी अपने कर्म से विराट् की ही सेवा करता है। उस कर्म को त्याग कर वह अनत की सेवा से अपने को दूर रखता है।

जन्म से नियत इसी वर्णव्यवस्था को अलग-अलग नियत कर्मो मे बँधी हुई मान कर अधिकाश भारतीय दर्शन इसे अनत का नियम मानते है और वे यह भी मानते है कि इस वर्णव्यवस्था को बदल कर अनत के नियम का जब दुनिया उल्लघन करती है तब उस पर आपत्ति आती है। वर्ण और उस वर्ण से बँधे हुए कर्त्तव्य जब तक एक साथ दिखाई पडते है तभी तक अनत के नियम के अनुकूल आचरण भारतीय दर्शन मानते है। वर्ण, सम्मान और मुक्ति के भी अधिकारी तभी होने है जब वे अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते है। 'पूजिय विप्र शीलगुन हीना। सूद्र न गुन-गन-ज्ञान-प्रबीना' इसी दृष्टिकोण से कहा गया है‡।

इस कथन से एक घटना सबद्ध है। इन्द्र के यहाँ एक गन्धर्व ने गाना गाया। दुर्वासा उससे प्रसन्न न हुए। गधर्व ने उन्हे अनभिज्ञ कह कर तिरस्कृत किया और उनका परिहास किया। दुर्वासा ने उसे शाप दिया। शाप के कारण वह 'कबध' राक्षस हो गया। सीताहरण के बाद उन्हे ढूँढते हुए अपने मार्ग पर राम ने कबध को मारा। वह फिर से गधर्व हो गया और उसने अपनी कहानी सुनायी। उसी को शिक्षा देते हुए राम ने कहा—

सापत ताड़त परुष कहता। विप्र पूज्य अस गावहिं सता।
पूजिय विप्र शीलगुन हीना। सूद्र न गुन-गन-ज्ञान-प्रबीना।

यहाँ किसी जाति के लिए पक्षपात नही किया गया है। भगवान् राम ने गन्धर्व से केवल यही बताया है कि जातियाँ अपने वर्ण के अनुसार कर्म करने पर ही सम्मान योग्य होती है। यदि ब्राह्मण विद्या और ज्ञान का अर्जन करके विप्र हो जाता है तब उसे क्रोधी और रूखा समझ कर या उसमे अन्य कलाओं का अभाव देख कर उसका अपमान नही करना चाहिए। वह तो शाप देते हुए भी, डराते-धमकाते और कडी बातें करते हुए भी पूज्य है; क्योंकि उसने अपनी जाति के कर्त्तव्यों के अनुसार विद्या और ज्ञान-सम्पादन कर लिया है। कला न जानने के कारण उसमे गुणशून्यता नही देखनी चाहिए। उसके क्रोध और रुखाई के व्यवहार मे शील की कमी न समझनी चाहिए। इतना होते हुए भी अपना मुख्य कर्तव्य कर लेने के कारण वह पूज्य हो जाता है। इसी के अनुसार यदि कोई शूद्र कई कलाएँ जानता है, विद्वान् और ज्ञानी है और इसी कारण अभिमान से अपनी पूजा कराना चाहता

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३३ के बाद।

हो, तो उसे कभी सम्मान नही देना चाहिए। वह तो सम्मान तभी प्राप्त कर सकता है जब अपनी जाति के अनुसार निरभिमान हो कर कर्म करता हो।

तुलसी के राम का ठीक अभिप्राय यही है। इसका प्रमाण तुरन्त इन पक्तियों से तीन पक्तियों के बाद ही शबरी-प्रकरण मे मिल जाता है। अपनी जाति की सीमाओं के भीतर रह कर ही शबरी त्याग और तपोमय राम के आदर्श जीवन-दर्शन की साधना करती हुई उनके दर्शन के लिए रुकी हुई थी। राम को सामने पा कर नम्रता से ओत-प्रोत शब्दों मे उसने कहा—"केहि बिधि अस्तुति करउ तुम्हारी। अधम जाति मै जड मति भारी‡।" इसके उत्तर मे राम ने कहा है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउ एक भगति कर नाता।
जाति पाँति कुल धर्म बडाई। धन बलु परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जलु बारिद देखिय जैसा†।

आदर्श विश्व-जीवन तुलसी की भक्ति का लक्ष्य है। विश्व-जीवन का आदर्श रूप ही तुलसी की भक्ति-पद्धति का मूलमंत्र है। वह आदर्श रूप रामप्रेम या विश्वप्रेम है। 'सिया राममय सब जग' $ की अनुभूति मे इसकी परिणति होती है। भक्ति के इतने बड़े विराट् आयोजन को लक्ष्य बना कर चलने वाला साधक आवेग के समय भक्त और उसके समाप्त होते ही बहुदेववादी, भेदोपासक हो कर जातिभेद और उसके अभिशापों के पास ही खडा हुआ दिखाई दे—ऐसा हो ही नही सकता।

विशिष्टाद्वैती जीवन-दर्शन भेद के भीतर अभेदानुभति का विश्वव्यापी जीवनदर्शन है। तुलसी साहित्य भर मे विशिष्टाद्वैती जीवनदर्शन है, जो जगत् के भीतर ही ब्रह्म की साधना पर विश्वास रखता है। वह साधना भेद के भीतर अद्वैत की अनुभूति मे हो जाती है। सम्पूर्ण जगत् अद्वैत ब्रह्म के भीतर ही दिखाई पड़ता है—इस साधना के भीतर। इस भक्ति को प्राप्त कर लेने के बाद भक्त व्यापक अद्वैत के भीतर ही सबको देखने लगता है। उच्च-नीच सब इस भक्ति की धारा मे एक हो जाते है। वहाँ सब जातियों मे पावनत्व की झाँकी दिखाई पडने लगती है, यदि उनमे सत लक्षण पैदा हो जाएँ।

सावधान मानद मद हीना। धीर भगति पथ परम प्रबीना।
गुनागार ससार-दुख-रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह*।

जातिगत कर्मो की वासनाओं से ऊपर उठ जाने वाला निरभिमानी सत सब जातियो मे सम्भव है। उस विराट की माया को सत्य मान कर उसके शुद्ध-पावन रूप की जीवन मे आदर्श झाँकी प्राप्त करके उस आदर्श के प्रति अपने को निछावर कर देना ही तो राम के चरणकमल का प्रेम है। अनत आदर्श की झाँकी जिनके जीवन मे मिली उन्ही राम के चरणों मे निछावर हो कर तुलसी विदेह और विगेह हो गये।

---

‡ रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ३४ के बाद। † वही। $ रामचरितमानस, बाल-काड, दोहा ७ के बाद। * रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ४५।

अवतार का लक्ष्य ही जातिवैषम्य का विरोधी है :—

ग्यान गिरा गोतीत अज माया-मन-गुन-पार ‡ ।
सोइ सच्चिदानन्दघन कर नर चरित उदार ।

अनन्त ब्रह्म, माया के उदार लोकमंगलविधायक रूप को स्वीकार करके, विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुसार आदर्श की स्थापना करने को अवतरित होता है । यदि तुलसी की रामभक्ति के भीतर जातिवैषम्य की गन्ध भी रह जाती तो तुलसी के राम यह कैसे कहते—

भगतिवत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रान-प्रिय असि मम बानी † ।

यह एकत्व-भावना चिन्तन के आधार पर स्थापित है, आवेशजन्य नही । जहाँ कहीं भी भक्ति के प्रकाश में तुलसीदास जी ने इस एकत्व के दर्शन की ओर इशारा किया है वहाँ कही भी उनकी आवेश की अवस्था नही है । सर्वत्र वह इशारा चिन्तन, तर्क और आदर्श के मनन की पद्धति से ही दिया गया है । भुशुडि से राम कहते है :—

मम माया सभव परिवारा । जीव चराचर विविध प्रकारा ।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये । सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ।
तिन्ह महँ द्विज, द्विज महँ स्रुतिधारी । तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी ।
तिन्हमहँ प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी । ज्ञानिहुँ तें अति प्रिय बिज्ञानी ।
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा $ ।

यहाँ जीवन के आदर्शो की विकासोन्मुख अवस्थाओं के वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति के अन्त में ही—भगतिवत अति नीचउ प्रानी, मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ।—बात कही गयी है । राम ने आवेश की अवस्था मे, भावना के प्रवाह में ऐसा नही कहा है । वे भुशुडि से पुनः कुछ कहेगे और उसे सुनने के लिए उन्हे सावधान हो जाने को कहते है—

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
स्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग * ।

इसके बाद की जो पक्तियाँ है, उनमे सावधानी बिलकुल स्पष्ट हो गयी है । उनमें आवेश की गध भी नही है । अतः विद्वान् डा० मैकनिकॉल के इस मत को हम कभी नहीं मानते कि उदार जीवन की ऊँचाई पर दिखाई पडने वाली भक्ति तुलसी में नही है । वे आवेश के ही क्षणों मे ऐसे प्रतीत भर होते है, पर सत्यतः वे ऐसे नही हैं । हमारा तो यह मत है कि उच्च भक्ति की साधना मे जीवन के भीतर जो उदारता प्राप्त होती है, वह तुलसी के स्वभाव की वस्तु बन गयी है । वह तुलसी का आवेश न होकर उनके चिन्तन के फल के रूप मे जीवनदर्शन बन कर पैदा हुई है । कागभुशुडि को सावधान करने के बाद इसी तर्कयुक्त चिन्तन-पद्धति को आधार बना कर राम फिर कहते हैं—

एक पिता के बिपुल कुमारा, होहि पृथक गुन सील अचारा ।
कोउ पडित कोउ तापस ज्ञाता, कोउ धनवत सूर कोउ दाता ।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा २५ । † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ८६ ।
$ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ८५ के बाद । * रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ८६ ।

कोउ सरबग्य धरमरत कोई, सब पर पितहि प्रीति सम होई।
कोउ पितु भगत बचन मन करमा, सपनेहु जान न दूसर धरमा।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना, जद्यपि सो सब भाँति अयाना।
एहि बिधि जीव चराचर जेते, त्रिजग देव नर असुर समेते।
अखिल बिस्व यह मम उपजाया, सब पर मोहि बराबरि दाया।
तिन्ह मह जो परिहरि मद माया, भजइ मोहि मन बच अरु काया।

पुरुष नपुसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भजि कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस विचारि भजु मोहि परिहरि आम भरोस सब ‡।

अनन्य भक्ति वाले पुत्र को पिता अपने प्राण के समान मानता है। इस तथ्य तक पहुँचने के लिए तर्कयुक्त चिन्तन की पद्धति ही तुलसी के राम ने अपनायी है। यहाँ आवेग का दर्शन ही नही होता और न भेद-वाद का। 'अखिल बिस्व यह मम उपजाया। सब पर मोहि बराबरि दाया †' मे जातिभेद कहाँ बच गया। यही तो हृदय और मस्तिष्क की पूर्ण विकसित अवस्था मे प्राप्त तुलसी की भक्ति-पद्धति है। इसे केवल आवेश के समय प्रातिभासिक रूप मे प्राप्त होने वाली कह कर विद्वान् डाक्टर महोदय ने तुलसी के साथ न्याय नही किया है।

दुनिया के धर्म के इतिहास मे मनुष्य के शील के विकास के लिए जितने महान् प्रयास हुए है उनमे उच्चतम प्रयासों की श्रेणी मे गोस्वामी जी की शील-विकास की योजना रखी जा सकती है। "तिन्ह मह जो परिहरि मद माया। भजइ मोहि मन बच अरु काया $।" आवेश के समय की प्रातिभासिक भक्ति नही है। जीवन के पके हुए चिन्तन के भीतर से हृदय को शील की पवित्रता का जो प्रकाश मिलता है वही राम का भजन है। मर्यादापुरुषोत्तम का भजन तभी पूरा होता है जब अभिमान और मोह को छोड़ कर साधक स्वार्थ की सकीर्ण सीमा को लाँघ जाता है। इस अवस्था को प्राप्त हुए साधक के मन, वाणी और शरीर अपने को विश्व से अभेद सम्बन्ध से सम्बद्ध कर लेते है। उसकी इच्छाएँ विश्व की इच्छाओं के साथ एक स्वर में बजती रहती है। उसकी वाणी विश्व की वाणी बन जाती है और उसका शरीर उन्ही कर्मों की ओर झुकता है जिससे विराट् की सेवा होती है। ये सब साधनाएँ झूठे आवेश में नही, हृदय और मस्तिष्क के परमोच्च समाहित सन्तुलन मे ही हो सकती है। जीवन की यह ऊँचाई, चिन्तन और भावना के आदर्श सन्तुलन मे प्राप्त होती है। इसे आवेश नही कहा जाता। तुलसी साहित्य के भीतर जीवन की इस ऊँचाई की तरफ विद्वान् डा० महोदय की दृष्टि ही नही गयी, नही तो वे तुलसी की भक्ति-साधना की ऊँचाई को प्रातिभासिक और आवेशजन्य न मानते।

कपटरहित हो कर सर्वभाव से अनत विश्व की सेवा ही तुलसी के अनुसार परमोच्च शील है। कपट छोड़ कर सर्वभाव से भजने वाला ही राम को प्रिय होता है। तुलसी के

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ८६ के बाद से सोरठा ८७ तक। † वही। $ वही।

राम अनंत है। उन्हे भजने वाला अनत का ही भजन करता है। सर्वभाव से अनत को कपटरहित हो कर भजना शील की परमोच्च साधना है। हृदय के सब भावो से अनत की सेवा करना ही राम का भजन है। यही जीवन की पवित्रता है, जिसमें पैदा हुआ क्रोध विश्व कौ पीडा पहुँचाने वाले को दड देने के लिए होता है जिसके भीतर की करुणा मनुष्य को जगत् भर की पीडा को देख कर द्रवित करने के लिए होती है, जिसके भीतर पैदा हुआ उत्साह ससार की उत्पीड़क शक्तियों पर आक्रमण कर उनके दमन के लिए उत्पन्न होता है, जिसके भीतर की घृणा इसलिए उत्पन्न होती है कि विश्वजनीन शील को पतन की ओर ले जाने वाली बुराइयों से वह साधक को दूर रख सके। ऐसी ऊँचाई पर पहुँचे हुए साधक के भीतर प्रेम भी इसीलिए पैदा होता है कि वह 'सियाराममय सब जग' ‡ की अनुभूति करके अपना हृदय उसे समर्पित कर दे। वह उस तरह के विनोद की भी साधना करता है जो विश्व भर के पीड़ित हृदय को सहला कर भारमुक्त कर सके। उसे भय भी होता है, जब वह देखता है कि कलियुग रूपी हिरण्यकशिपु आदर्शरूपी प्रह्लाद को नष्ट करने पर तुला हुआ है †। यह भय भी उसे प्रेरित करता है विश्व के आदर्श की रक्षा के लिए। यह कार्य वह मर्यादा का प्रचार करके करता है। यह भी उसकी रामभक्ति ही है। उसके भीतर आश्चर्य भी पैदा होता है—"राम अनत अनत गुन अमित कथा बिस्तार। मुनि आचरजु न मानिहहिं जिनके बिमल बिचार।" पर यह आश्चर्य भी उसे अनत जगत् के भीतर निवास करने वाले राम तक पहुँचा देने के लिए ही है। इस आश्चर्य को ले कर वह विमल विचार के पास पहुँचने की साधना करता है और उसे ज्ञान हो जाता है कि राम सम्पूर्ण विश्व की अनतता मे समाया हुआ है। तब उसका आश्चर्य विराट् जगत् में 'एक' का साक्षात्कार करके 'बिमल बिचार' * वाली भक्ति मे लीन हो जाता है।

इसी साधना को सर्वभाव की साधना कहते है। जहाँ हृदय के सब भाव अनत की सेवा की ओर मुड पडते है। यहाँ पहुँच कर सीमा की क्षुद्रता मे रहने वाला अज्ञानजन्य प्रेम अपनी असीमता को प्राप्त कर लेता है। तुलसी की भक्ति-साधना मे जीवन की इसी पवित्रता को प्राप्त करने का प्रयास प्रारम्भ हो कर अपनी सिद्धि तक पहुँचता है। इसी पवित्रता की ओर सकेत करते हुए तुलसी के राम कागभुशुडि से कहते है—"सत्य कहउँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय §।"

ज्ञानाग्नि में तपी हुई अनासक्ति से इस पवित्रता की उत्पत्ति होती है। जीवन की इस पवित्रता को वही साधक प्राप्त करता है जो ज्ञानाग्नि मे अपने कर्मो को तपा कर उन्हे पवित्र कर लेता है, जिसके कर्म, स्वार्थवश अपने स्वार्थ की साधना मे योग देने वालों या बाधा पहुँचाने वालों के प्रति स्नेह या द्वेष से उन्मुख रह कर कलुषित नही रहते, अपितु सम्पूर्ण विश्व की ओर निष्काम सेवा की भावना से उन्मुख रहते हैं।

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २७। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३३। * वही। § रामचरितमानस, उत्तरकांड, सोरठा ८७।

इतनी बड़ी योजना को कागभुशुडि के सामने रख कर तुलसी के राम कहते है—

अस विचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ‡ ।

अपने द्वारा प्रस्तुत शीलविकास की योजना पर ठीक-ठीक विचार करके जगत् की अनासक्त सेवा के भीतर अपनी भक्ति का दर्शन करने का उपदेश राम ने कागभुशुडि को दिया है ।

यही शीलविकास की परमोच्च परिणति तुलसी की भक्ति-पद्धति का लक्ष्य है । इसी शील की अन्तिम सीमा का अकन तुलसी ने अपने राम के भीतर करके उनके इसी कर्म और रूप-सौन्दर्य मे अपने मन को खो दिया है ।

इतनी उदार और विश्वोन्मुखी भक्ति-साधना को निम्न श्रेणी की भक्ति कह देना और उसे आवेश की अवस्था की केवल प्रातिभासिक ऊँचाई मान लेना हमे उचित नही प्रतीत होता । अत विद्वान् विचारक के इस मत से हम सहमत नही है ।

डा० मैकनिकॉल के मत से गोस्वामी जी के हृदय मे ब्राह्मणों के लिए अनुचित पक्षपात है । तुलसी के विरुद्ध डा० मैकनिकॉल ने यह एक और अभियोग लगाया है । उन्होंने कहा है—अभी भी ब्राह्मण अपने सम्मानित स्थान से पदच्युत नही किया गया है—"दि ब्राह्मण इज़ नॉट येट डीपाज्ड फ्रॉम हिज प्लेस ऑफ प्रिविलेज † " तुलसी के इस पक्षपात के कारण डा० मैकनिकॉल महोदय ने तुलसी को भक्त के ऊँचे आसन पर से ढकेल दिया है और उनकी भक्ति को घटिया दर्जे की सिद्ध किया है ।

यहाँ भी डा० महोदय ने तुलसी का मूल्याकन करने मे शीघ्रता की है । इसीलिए वे तुलसी को ठीक नही समझ पाये । जीवनदर्शन के परमोच्च आधार पर स्थापित गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति कभी पक्षपात नही करती । भारतीय विचार-परम्परा समय के प्रवाह को चतुर्युग के चक्रों की सतत गति मानती है । आदर्श की श्रेष्ठता के ह्रासोन्मुख क्रम से सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग एक चक्र में रखे जाते है । सत्ययुग मे सब वर्ण अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रह कर अनासक्त मन से अपना काम करते हैं, उसे परमात्मा की आज्ञा और सेवा मान कर । समाज की यही अवस्था भारतीय दार्शनिकों और भक्तों ने आदर्श मानी है । बाद के युगों मे इस आदर्श अवस्था में दोष पैदा होने लगते हैं । कलियुग मे समाज की हालत बहुत बिगड़ जाती है $ ।

धर्मपथ से भ्रष्ट ब्राह्मण और शूद्र मे गोस्वामी जी के अनुसार, कोई अन्तर नही रहता । राम-जन्म की कथा त्रेतायुग की है । उस युग मे अधिकाश ब्राह्मण पवित्र आचरण वाले थे । रावण के समान कुछ लोग पापासक्त हो गये थे । इसीलिए रामायण के जितने पात्र ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हैं वे ब्राह्मण के उसी उच्च शील के कारण । रावण ब्राह्मण होते हुए भी पतित हो गया इसीलिए उस ब्राह्मण को दड देने के लिए राम को अवतार लेना पड़ा । धर्मपथ से भ्रष्ट ब्राह्मण और शूद्र मे कोई अन्तर परमात्मा नही देखता । वह

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, सोरठा ८७ । † इडियन थीइज़्म, पृष्ठ ११८, पंक्ति १३–१४ । $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १०३ के बाद ।

उनके साथ समान न्याय करता है। परमात्मा केवल सत और असंत को ही पुरस्कार और दंड देता है। उसकी दृष्टि मे जाति नही रहती।

शीलवान् ब्राह्मण ही तुलसी के द्वारा सम्मानित किया गया है। जब-जब तुलसीदास जी ने ब्राह्मणों को सम्मान प्रदान किया है तब-तब ब्राह्मण के उच्च शील के कारण ही। उनके युग मे भी कुछ ब्राह्मण आदर्श शील वाले रह गये थे। उन्ही की उन्होने वन्दना की है।

गोस्वामी जी के अनुसार आदर्श से गिर कर कोई सम्मान का पात्र नही रह सकता। उनके कागभुशुडि ने एक कलियुग के समाज का वर्णन करते हुए पक्षिराज गरुड़ से कहा है—

कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भये सदग्रंथ।
दभिन्ह निज मति कलपि करि प्रगट किये बहु पथ ‡।

यहाँ तुलसी के कागभुशुडि ने कलियुग के झूठे सम्प्रदायो की निन्दा की है—

बरन धरम नहिं आस्रमचारी। श्रुति-विरोध-रत सब नर नारी।
द्विज सुत बेचक भूप प्रजासन, कोउ नहिं मान निगम-अनुसासन †।

यहाँ वर्ण और आश्रम के धर्म का ह्रास देख कर ब्राह्मणो को वेद से व्यापार करने वाला और राजा (क्षत्रिय) को भुशुडि ने प्रजा का भक्षक बताया है।

'मिथ्यारम्भ दम्भ रत जोई, ता कहँ सत कहहि सब कोई $।' मे झूठे सतों की निन्दा की गयी है। "जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला *' मे झूठे तपस्वियो को फटकारा गया है। इसी तरह झूठे योगियों, सिद्धों, गुप्तचरों तथा वक्ताओं की भी कटु आलोचना की गयी है§। 'गुरु सिष बधिर अध कर लेखा। एक न सुनहि एक नहिं देखा ×' मे गुरु को बहरा और शिष्य को अधा कहा गया है—ऐसे गुरुओं को जो शिष्य की कठिनाई नही सुनते और ऐसे शिष्यों को जो आदर्श गुरु के जीवन को देख कर अपने जीवन को नही सुधारते।

'हरइ सिष्य धन सोक न हरई, सो गुरु घोर नरक महँ परई +' मे झूठे गुरु की कितनी भर्त्सना की गयी है।

बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्हते कुछ घाटि।
जानहि ब्रह्म सो बिप्र वर आँखि देखावहिं डाँटि ✤।

में अभिमान से अपने जातिगत कर्तव्य को छोडने वाले शूद्र की चुटकी ली गयी है, तथा 'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी ¶।' मे दुराचारी ब्राह्मण की स्पष्ट निन्दा की गयी है।

तुलसी की भक्ति केवल सत-धर्म की उपासना है। उनकी भक्ति-पद्धति पक्षपात-रहित है तथा सत धर्म की ही उपासना करती है। यहाँ किसी से राग-द्वेष नही है।

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ९७। † वही, दोहा ९७ के बाद। $ वही। * वही। § वही, दोहा ९८। × वही, दोहा ९८ के बाद। + वही। ✤ वही, दोहा ९९। ¶ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १०० के पहले।

इस पद्धति के भीतर राग-द्वेष तभी दिखाई देंगे, जब हम शीघ्रता में ऊपर-ऊपर ही देखेंगे। तुलसी के समान, धर्म की साधना करने वाले, व्यापक और गम्भीर योजना की सिद्धि मे जुटे हुए, साधक को देखने के लिए धैर्य और गम्भीरता की आवश्यकता होती है। यदि हमने तुलसी का मूल्याकन करने मे तनिक भी शीघ्रता की तो गलत रास्ते पर हमारे चले जाने का भय वराबर बना रहेगा। एक विराट्, सर्वतोन्मुखी, सर्वव्यापिनी योजना का मूल्याकन करने के लिए सर्वव्यापिनी अन्तर्दृष्टि की आवश्यकना होती है। डा० मैकनिकॉल के समान विद्वान् भी ज़रा-सी शिथिलता के कारण तुलसी का मूल्याकन करने में चूक गया है।

तुलसी की बुद्धि जातीय पक्षपात से मुक्त है। उनकी बुद्धि जातीय पक्षपात और जातिभेद की सकीर्ण सीमाओ मे बँधी हुई नही है। वह सर्वभेदिनी और विराट् का दर्शन करने वाली है। वह आवेश से परिचालित नही होती। उसके भीतर अपनी एक योजना है, जिसमे दुर्बलता का विकल्प कहीं नहीं आता। हनुमान से तुलसी के राम ने कहा है—

सुनि कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।
सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमन्त।
मै सेवक सचराचर, रूप राशि भगवन्त‡।

तुलसी के राम कहते है कि मुझे तो लोग समदर्शी कहते है, पर मुझे सेवक अधिक प्रिय है, और वही सेवक जो मुझे छोड़ और किसी का सहारा नही लेता, जो अनन्य गति होता है, जिसकी ऐसी धारणा मे कभी अन्तर नही पड़ता कि मैं भगवान् का सेवक हूँ और सम्पूर्ण जड-चेतन जगत् के रूपो का समुदाय ही भगवान् है।

तुलसी की उपासना आवेशप्रधान नही, बुद्धि और हृदय की सन्तुलित साधना की नीव पर वह आधारित है। जहाँ-जहाँ उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की चर्चा की है वहाँ-वहाँ वह प्रेम केवल आवेशजन्य नही, ज्ञान के प्रकाश से आलोकित है। वह ऐसी धारणा का अविच्छिन्न प्रवाह है, जिसमे चराचर के भीतर भगवान् का दर्शन होता है। भक्त जब अपने को भगवान् का सेवक कहता है, तब वह अपने को चराचर का सेवक समझता है, क्योकि उसकी धारणा है कि 'सर्वं खलु इद ब्रह्म†'—यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का ही रूप है। अनन्यगति भक्त मे यह मति कभी नही टलती; अटल हो कर उसके भीतर निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। वह क्षणिक आवेश की तरह कभी नही आती। वह भक्त का स्वभाव हो कर उसके साथ निरन्तर साधना के पथ का दीपक बन कर चलती रहती है।

भक्ति-साधना की इतनी बोधपूर्ण विराट् योजना को कार्यान्वित करने वाले साधक तुलसी की ऊँचाई को क्षणिक और आवेशजन्य मानना भूल है। साधना की वह ऊँचाई तुलसी का क्षणिक आवेश नहीं, तुलसी के समान 'अनन्य गति' भक्त का स्वभाव है।

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकाड, दोहा ३ और उसके पहले। † छादोग्य उपनिषद्, अध्याय ३, खड १४, श्लोक १।

यदि तुलसी के राम के, यहाँ के शब्दों को भी समझने मे भूल या जल्दबाज़ी की जाए, तो भ्रम पैदा हो सकता है। 'समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ‡।' में राम की भेददृष्टि दिखाई पड सकती है। पर ध्यान से देखा जाए तो यह भेददृष्टि नही, वक्रोक्ति के ढग से यह अभेददृष्टि की ओर ही सकेत किया गया है। चराचर को अभेददृष्टि से ब्रह्म का स्वरूप मान कर उसकी सेवा करने वाला भक्त ही भगवान् को प्रिय होता है। इसका अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि अभेददर्शन ही तुलसी के राम को प्रिय है। यदि वे समदर्शी न होते तो उन्हें समदर्शी भक्त प्रिय कैसे होता।

समदृष्टि के अविरल प्रवाह की सिद्धि मे तन्मय तुलसी के समान साधक का मूल्याकन करने मे बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है। अपनी सिद्धावस्था मे पहुँचे हुए तुलसी भक्ति की ऊँचाई को छोड कर जगत् की व्यावहारिक निम्नता की ओर कभी लौट ही नही सकते।

गुरु के सम्बन्ध को ले कर भी डा० मैकनिकॉल ने तुलसी पर आक्षेप किया है। उन्होंने कहा है कि धार्मिक उपदेशो की सब धाराओं मे बाद के युगों मे गुरु का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर कबीर के अनुयायियों मे गुरु का स्थान किसी जाति के लिए सुरक्षित नही है। इसके विरुद्ध तुलसी की गुरुभक्ति तो ब्राह्मणभक्ति के रूप मे ही परिणत हो गयी है—"दि रेवेरेन्स फ़ॉर गुरु दैट हैज़ ए प्रौमिनेट प्लेस इन ऑल दि स्पिरिचुअल टीचिंग ऑफ़ दिस लैटर पीरियड रिज़ॉल्व्स् इटसेल्फ हीयर .... इन्टु रेवेरेन्स फॉर ब्राह्मण †।"

डा० मैकनिकॉल के इस कथन का स्पष्ट उद्देश्य और अभिप्राय तो यही है कि तुलसी ने गुरु का पद ब्राह्मण के लिए ही सुरक्षित कर रखा है। ब्राह्मण की अपनी परिभाषा के अनुसार यदि तुलसी ने ऐसा किया भी तो अनुचित नही प्रतीत होगा, पर रामायण के प्रारम्भ मे चराचर जगत् के भीतर राम के रूप का दर्शन करते हुए तुलसी ने सबकी वन्दना की है। डा० मैकनिकॉल को रामायण और तुलसी-साहित्य का गहराई से अध्ययन करने का अवसर नही मिला। यदि ऐसा होता तो उनकी सूक्ष्म दृष्टि इस तरह की भूल न करती।

यदि गभीरता से चिन्तन किया जाए तो गोस्वामी जी के द्वारा प्रयुक्त 'गुरु' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक सिद्ध होगा। रामायण के मगलाचरण मे गोस्वामी जी ने भवानी को श्रद्धारूपिणी और शकर को विश्वास-स्वरूप मान कर नमस्कार किया है। तुलसी-दर्शन के अनुसार यही विश्वास नित्य गुरु है। सब देशों की धार्मिक साधनाएँ इस विश्वास को ही साधना के पथ का गुरु मानती है। गुरु की इससे बढ कर उदार कल्पना हो ही नहीं सकती। यह विश्वास ही शाश्वत गुरु है। इसीलिए 'भवानीशकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास

‡ रामचरितमानस, किष्किधाकांड, दोहा ३ के पहले। † इंडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८, अनुच्छेद २, पक्ति १० से १४ तक।

रूपिणौ' ‡ कहने के बाद ही इस विश्वासरूपी शिव को उन्होंने 'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरु शंकररूपिणम्' † मे नित्य गुरु के रूप मे घोषित किया। साधना के पथ पर सिद्धि प्राप्त करके मगलमयी सम्पूर्णता का दर्शन साधक के लिए तभी सम्भव होता है जब विश्वासरूपी गुरु (शिव) और श्रद्धारूपिणी उनकी सहयोगिनी (भवानी) उसका साथ देती है। 'याभ्या विना न पश्यन्ति सिद्धा.स्वान्तस्थमीश्वरम्' $ मे गोस्वामी जी ने इसी की घोषणा की है। 'सशयात्मा विनश्यति' * साधना के पथ का सशय, अविश्वास, साधक की सिद्धि का विनाश कर डालता है। शिव को गोस्वामी जी ने बोधमय इसीलिए कहा है कि भक्ति-पथ पर जो विश्वास होता है वह अन्धा नही होता। वह बोधमय होता है। जगत् का प्रेम अन्धा कहलाता है, इसीलिए वासना का अन्धकार सासारिक प्रेम के बन्धन मे साधक को बाँध कर भयानक और दुर्गम संसार-सागर मे उसे डुबा देता है। पर परमात्मा को विराट् योजना का बोध उसे वासना के ऊपर उठा कर परमात्मस्थिति तक पहुँचाता है। इसीलिए शिव बोधमय विश्वास है। परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास बोधमय होता है। जगत् के अस्तित्व पर विश्वास अज्ञानमय होता है। अज्ञानमय विश्वास अन्धा होता है और ज्ञानमय विश्वास जागरूक। वह साधक को परमात्मस्वरूप का दर्शन करा देता है। वह स्वरूप जीवन के अंतिम विकास को छोड कर और कुछ नही है। उस परमात्मा की प्राप्ति परमोच्च शील की साधना से ही होती है। जिसे इस शील की सिद्धि प्राप्त हो जाती है वह परमात्मा के सगुण-निर्गुण स्वरूप को देख लेता है। क्योंकि परमात्मा भी जगत् मे आ कर इसी परमोच्च शील की (धर्म की) स्थापना करता है §।

जीवन के इस अतिम विकास तक ले जाने वाला बोधमय विश्वास शिव है। जीवन का अतिम विकास अभेद का दर्शन है, एकत्व की प्राप्ति है तथा समदृष्टि की साधना है। यही ईश्वर-प्राप्ति है। इसे सम्भव बनाने वाले शिव (बोधमय विश्वास के मूल अधिदेव) नित्य गुरु है।

इन नित्य गुरु के अतिरिक्त तुलसीदास जी ने इस लक्षण से युक्त और लोगों को भी गुरुत्व की कोटि मे स्वीकार किया है और उनकी वन्दना की है। 'वाणी-विनायक' ×, 'भवानी-शंकर' +, 'वाल्मीकि' ✱, 'हनुमान्' ¶, उद्भव स्थिति और सहार करने वाली, क्लेशों को शान्त करने वाली, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा सीता ‡⊕ और 'अशेष कारणों के कारण' राम ‡‡ की वन्दना गोस्वामी जी ने इसीलिए की है। ये सब एक-एक तरह से गुरु-कोटि के ही हैं। शब्द और अर्थ की सिद्धि देने वाले वाणी-विनायक, श्रद्धा और विश्वास की स्फूर्ति देने वाले भवानी-शंकर, जीवन के आदर्शों के प्रथम साधक, लोक के बीच में अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् के सामजस्य के प्रथम आदर्शशिल्पी वाल्मीकि, निश्छल भक्ति के

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक २। † वही, श्लोक ३। $ वही, श्लोक २। * गीता, अध्याय ४, श्लोक ४०। § गीता, अध्याय ४, श्लोक ८। × रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक १। + वही, श्लोक २। ✱ वही, श्लोक ४। ¶ वही, श्लोक ५। ‡⊕ वही, श्लोक ५। ‡‡ वही, श्लोक ६।

आदर्श हनुमान्, नारी के आदर्शो की सीमा सीता और पुरुषों की मर्यादा की उच्चतम भूमि का दर्शन कराने वाले राम—ये सब तुलसी के उन्नायक है। तुलसी के जीवन की साधना के विकास मे इन सब ने प्रकाश दिया है। 'मै पुनि निज गुरु सन सुना कथा सो सूकर खेत। समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत। स्रोता बकता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ। किमि समुझउँ मै जीव जड कलिमल ग्रसित विमूढ। तदपि कही गुरु बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ‡।' मे इसी साधना के विकास-क्रम की ओर इशारा है। इसके बाद अपने गुरु बाबा नरहरिदास जी की वन्दना तुलसीदास जी ने की है†। यह पता नही कि बाबा नरहरिदास जी ब्राह्मण थे या किसी दूसरी जाति के वैरागी। स्व० प० रामचन्द्र जी शुक्ल ने कही से यह पता लगाया था कि गागरौन गढ के अधिपति पीपा, रामानन्द जी के अनुयायी हो कर विरक्त हो गये। अतएव रामभक्ति शाखा के भक्तों मे भी सब जातियो के लोग थे और इन सब सतों को तुलसीदास जी ने गुरु होने का अधिकारी मान कर सामान्य रूप से नमस्कार किया है।

सच्चे ब्राह्मण-गुरु के लक्षण स्थापित करने के लिए अपने गुरु बाबा नरहरिदास को नमस्कार करने के बाद तुलसीदास जी ने कहा है—"बन्दउँ प्रथम मही-सुर-रचना। मोह-जनित-सशय सब हरना $।" इससे तो यही अनुमान करने को जी चाहता है कि बाबा नरहरिदास ब्राह्मण नही थे। यदि वे ब्राह्मण होते और ब्राह्मणों के लिए गोस्वामी जी के भीतर व्यर्थ का पक्षपात होता तो अपने गुरु को ब्राह्मणत्व के कारण तथा गुरुत्व के कारण दोनों रूपो मे नमस्कार करने से वे न रुकते। सन्यासी की कोई जाति नही होती। इस पर भी यदि ब्राह्मण के लिए अधपक्षपात तुलसी मे होता और नरहरिदास जी ब्राह्मण होते तो तुलसीदास जी अवश्य कहते कि ब्राह्मण जाति ने हमारे गुरु के समान आदर्श व्यक्ति को पैदा किया। स्थिति चाहे जो रही हो, यह बात तो सन्देहरहित है कि तुलसी के भीतर ब्राह्मण के लिए अध पक्षपात नही था। उन्होंने बुद्धिपूर्वक ब्राह्मण की धारणा अपने भीतर पैदा की और जागरूक हो कर ब्राह्मण की प्रशसा की। वे स्वयं ब्राह्मण थे, इसलिए अपनी श्रेष्ठता के अभिमान के मोह मे सो कर उन्होंने अधपक्षपातपूर्ण प्रशसा ब्राह्मण की नही की है।

'बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना' मे तुलसीदास जी ने ब्राह्मण शब्द के साथ जुडी हुई अपनी अभ्रान्त धारणा के आधार पर ब्राह्मण की परिभाषा की है, तब उसे नमस्कार किया है। ब्राह्मण वही है जो अज्ञानजन्य भ्रम को दूर कर सके। तुलसी ऐसे ही ब्राह्मण को नमस्कार करते है और नमस्कार करके यह सन्देश देते है कि इसी प्रकार के ब्राह्मण गुरु होने के योग्य है। पहले यह बताया जा चुका है कि पथभ्रष्ट ब्राह्मणों की तुलसी ने निन्दा की है।

तुलसी का यह आदर्श-ब्राह्मण, शिव की, मंगल की, बोधमय विश्वास की साधक के भीतर लहर पैदा करता है। वह शिष्य के हृदय को एक ऐसे बोधमय परमात्म-विश्वास

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ३० और उसके बाद। † वही, सोरठा ५ से दोहा १ और उसके बाद की दो पक्तियों तक। $ वही, दोहा १ के बाद की तीसरी पक्ति।

से आलोकित करता है, जिसे प्राप्त कर मोह की भेददृष्टि बद हो जाती है और अभेद-ब्रह्म की झाँकी उसे दिखाई पड़ जाती है। भारतीय दर्शन की बडी गहराई में उतर कर तुलसीदास जी ने इस बोधमय विश्वास की चर्चा छेड़ी है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि यह बोधमय विश्वास योगियों की समाधि के बाद की अवस्था है। समाधि में ज्ञान प्राप्त होता है। उसमे चित्त या आत्मा सम्यक् प्रकार से परमात्मा में रख दी जाती है। यही योग है—आत्मा का परमात्मा से मिल जाना। योगीश शंकर आत्मा के आनन्द में तन्मय करने वाली समाधि मे उस आनन्द का अनुभव कर लेने के बाद इस बोधमय विश्वास को प्राप्त करते है। अज्ञान को दूर करके ज्ञान के प्रकाश को प्रज्ज्वलित करने वाला, अज्ञानजन्य सशय को दूर करके ज्ञान के आलोक से शिष्य के हृदय को आलोकित करने वाला ब्राह्मण ही सच्चा ब्राह्मण है। इसी ब्राह्मण की वन्दना तुलसी ने की है। ऐसे ब्राह्मण की वन्दना का रहस्य डा० मैकनिकॉल तक पहुँच सका होता तो तुलसी पर जातीय पक्षपात का अभियोग वे न लगाते। यह तो हो गयी ब्राह्मण गुरु की बात।

अब तुलसी के और गुरुओं पर विचार किया जाए। "सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रणाम सप्रेम सुबानी ‡।" ब्राह्मण को प्रणाम करने के बाद तुलसी ने 'सकल गुन खानी सुजन समाज' की वन्दना कर 'सप्रेम' इस बात को स्वीकार किया है कि ब्राह्मणो के अतिरिक्त भी सज्जनों का समाज भी गुरु की श्रेणी मे आता है। उन्होंने यह इसलिए स्वीकार किया है कि सज्जनों के समाज मे उन सब गुणों का अस्तित्व रहता है, जिन्हे गुरु अपने शिष्य मे पैदा करता है। सज्जनों के इस समाज मे ब्राह्मण भी रह सकता है और उसके अतिरिक्त और सब लोग। गुह, शबरी, दशरथ, वसिष्ठ, सुमन्त, सुग्रीव, मन्दोदरी इत्यादि सब इस सज्जन समाज मे आ सकते है। आदर्श ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष सब इसमे समा जाते है। आदर्श व्यक्तियो के इस व्यापक समाज को गुरुता का स्थान दे कर तुलसीदास जी ने मुक्त कठ से और बोधमय विश्वास के साथ इसकी प्रशसा की है, केवल क्षणिक आवेश में नही। तुलसी के अनुसार इन सबको गुरु होने का अधिकार है। सतों की इस श्रेणी के लोगों की तुलसीदास जी ने बडे आदर से प्रशसा की है। उन्होंने कहा है—"साधुओं का चरित धवल कपास की तरह है। वह ऊपर से नीरस पर धवल गुणमय होता है। नीरस कपास धवल सूत पैदा करता है, हर तरह के कष्ट सह कर वस्त्र का रूप धारण करता है और दूसरों की लज्जा के लिए आवरण बनता है। सत भी सब प्रकार के कष्ट सहने के बाद भी किसी की दुर्बलता का प्रकाशन नही करते। किसी के द्वारा प्राप्त कष्ट की चर्चा तक नही करते। ये वन्दनीय लोग ससार मे यश प्राप्त करते है। आनन्द और मंगलमय सतों का समाज जगम प्रयाग के समान होता है। राम की भक्ति वहाँ गगा की धारा है। ब्रह्मचिन्तन का प्रचार सरस्वती है। विधि-निषेध का ज्ञान कराने वाली कलि के दोषों को दूर करने वाली, कर्तव्याकर्तव्य की चर्चा ही यमुना के समान है। इसी संत-समाज की त्रिवेणी हरि और हर-सम्बन्धिनी कथाओं

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के बाद।

से सुशोभित रहती है। उन आदर्शपूर्ण कथाओं के सुनने से सब तरह के आनन्द और मगलों की व्यक्ति के शील मे सृष्टि होती रहती है। अपने-अपने धर्मो पर अचल विश्वास ही अक्षय वट है। अपने कर्तव्यों का आदर्श ढग से पालन करने वाला समाज ही तीरथराज प्रयाग है। यह समाज सबको हर जगह सुलभ है। इसकी सादर सेवा करने से, इसके आदर्शो का आदरपूर्वक पालन करने से जीवन के सब क्लेश शान्त हो जाते है। सत-समाज के रूप मे यह तीर्थराज अनिर्वचनीय और अलौकिक है। इसका साधक पर सद्य.प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मेरे शब्दों को सुन कर उन पर प्रसन्न चित्त से विचार करके संत-समाज के तीर्थराज के आदर्शो मे अपार अनुराग ले कर जो अवगाहन करेगे वे इस शरीर के रहते हुए भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की परिणति अपने जीवनकाल मे कर सकेंगे ‡।"

तुलसी सत को गुरु का स्थान देते है और सावधानी से चिन्तन के परिणामस्वरूप ही सत-समाज के लिए ये आदर-सूचक शब्द गोस्वामी जी के हृदय से निकले है। वे संत-समाज के सम्मुख इतने नम्र है कि वे सच्चे हृदय से यह स्वीकार करते है कि ब्रह्मा. विष्णु, शिव, कवि और पडितों की वाणी साधु की महिमा को अभिव्यक्ति प्रदान करने मे सकुचित हो जाती है। उस गौरव को व्यक्त नही कर पाती। वह गौरव व्यक्त करने में मैं उतना ही असफल हूँ जितना साग बेचने वाला मणियों के गुणों को प्रकाशित करने में असफल रहता है †।

समदर्शी चित्त वाले ऐसे सतों की गोस्वामी जी ने वन्दना की है, जिनके कोई शत्रु और मित्र नही होते। सुगन्धित पुष्प जैसे अजलि के दोनों हाथों को सुरभित कर देता है, उसी तरह तुलसी के अनुसार सत लोग शत्रुता और मित्रता रखने वाले दोनों तरह के लोगों को अपने आदर्शो की सुगन्ध से सुरभित बना देते हैं $।

सरल चित्त तथा जगत् के हितेच्छु सतो के सम्मुख बालक की तरह अपने को प्रस्तुत करके तुलसी उनसे राम के चरणों का प्रेम माँगते है *। गुरु भी यही देता है। इन सतों को, जिनकी कोई जाति नही होती, तुलसी ने अपना गुरु माना है। इसी तरह की एक सत शबरी है जिसके सामने तुलसी के राम ने कहा—"मानउँ एक भगति कर नाता §।"

जगत् भर के सतों के सामने भक्ति-प्रवण हृदय से इस तरह झुकने वाले संत को, डा० मैकनिकॉल का, ब्राह्मण जाति का पक्षपाती कहना उचित नही प्रतीत होता।

इस उच्च और नीच के भेद के विष में से, अपने चिन्तन के द्वारा जिस तरह अमृत को निकाल कर गोस्वामी जी ने पान कर लिया है, उस पर यदि मेधावी डाक्टर महोदय की दृष्टि पड़ी होती तो वे तुलसी के लिए ऐसे विचार कभी भी न बनाते। तुलसी ने कहा है—"दानव, देव, उच्च और नीच, जीवन-दाता अमृत और मृत्यु देने वाला विष, माया,

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १ के बाद से दोहा २ तक। † वही, दोहा २ के बाद की चौपाई, अतिम २ पंक्तियाँ। $ वही, दोहा ३, आरम्भिक २ पक्तियाँ। * वही, दोहा ३, अंतिम दो पंक्तियाँ। § रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ३४ के बाद, पक्ति चौथी।

ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्रा, रंक और राजा, काशी और मगहर, गगा और कर्मनाशा, मरुदेश और मालवा, ब्राह्मण और चाण्डाल, स्वर्ग और नरक, अनुराग और विराग, ये सब गुणदोषों के अनत विभाग शास्त्रों ने बताये है। विधाता ने जडचेतन विश्व को गुण-दोषमय निर्मित किया है। उसका यह सृजन पूर्णगुणयुक्त या पूर्णदोषयुक्त कही भी नही है। गुण-दोष के इन द्वन्द्वों मे से सत लोग दोष को छोड़ कर गुणों की ओर ही दृष्टि रखते है। वे गुणों को ले लेते है, दोषों को ध्यान में ही नहीं रखते, जिस तरह हस जल को छोड देता है, दूध को ले लेता है ‡।"

इसी प्रकरण मे गोस्वामी जी ने कहा है—"जब इस तरह का विवेक परमात्मा दे देता है तब मन दोषों को छोड कर गुणों का अनुरागी बन जाता है †।" इसी अन्तर्दृष्टि को ले कर सम्पूर्ण विश्व मे गुण (राम) का दर्शन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है—

जड़-चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि ।

सम्पूर्ण जड-चेतन की वन्दना करके तुलसी कहते हैं—

जानि कृपा करि किंकर मोहू, सब मिलि करहु छाँडि छल छोहू।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाही, तातें बिनय करहुँ सब पाही *।

इतना जागरूक सत जो भक्ति के कारण इतना कोमल हो गया है कि सम्पूर्ण जडचेतन का किंकर (दास) बन जाना चाहता है, जातिभेद और जाति-पक्षपात से ऊपर उठ गया है, वह गुरु के बहाने ब्राह्मण-जाति का पक्षपात नही कर सकता। समदर्शी के भीतर पक्षपात कहाँ ?

तुलसी के भीतर जातीय पक्षपात का सर्वथा अभाव है। अज्ञ लोगों के द्वारा किये जाने वाले ऐसे ही विरोधो की कल्पना करके गोस्वामी जी ने कहा है—

लोग कहैं पोच, सो न सोच न संकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज-काज राम ही के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं§।

राम के प्रेम का कितना अटल विश्वास है—राम की प्रसन्नता से तुलसी के शील का नि-णि और राम के रोष से उस शील का पतन। साधना की ऊँचाई पर जब केवल प्रेम का ही सहारा मिल गया है तब जातिपाँति के बन्धन उसे क्यों बाँधने चले और क्यों वह करे जातीय पक्षपात।

तुलसी-साहित्य का कुछ और गम्भीरता से अध्ययन यदि सम्भव हुआ होता तो डा० मैकनिकॉल के समान निष्पक्ष आलोचक का तुलसी-विषयक भ्रम बिलकुल दूर हो जाता। कई स्थल और हैं जहाँ दृष्टिपात करने से यह भ्रम नितान्त उन्मूलित हो जाता है।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ६ तथा उसके पूर्व की ४ पंक्तियाँ। † वही, दोहा ६ के बाद। $ वही, दोहा ७, पंक्ति ५। * वही, दोहा ७ के बाद, पंक्ति ३। § विनयपत्रिका, पद ७६ अंतिम चार पक्तियाँ।

रामायण की भूमिका मे तुलसीदास जी ने कुछ और वन्दनाएँ की है। उनका क्रम निम्नाकित है—

> व्यास आदि कवि पुगव नाना, जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।
> चरन कमल बन्दउँ तिन्ह केरे, पुरवहु सकल मनोरथ मोरे।
> कलि के कविन्ह करउँ परनामा, जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा।
> जे प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।
> भये जे अहहि जे होइहहि आगे, प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे ‡।

व्यास को प्रणाम करना तो ब्राह्मण को प्रणाम करना हो सकता है, पर 'कलि के कविन्ह कर ँ परनामा' मे तो सामान्य कथन है। क्या कलि के सब कवि ब्राह्मण ही है ? लोक भाषा के माध्यम से हरि चरित का प्रचार करने वाले 'परम सयाने प्राकृत कवियों' को तुलसीदास जी ने प्रणाम किया है। इस प्रणाम की दृष्टि सब सत कवियों पर है जिनमे से ब्राह्मण बहुत कम है। इसके बाद जो कदम तुलसी ने उठाया है उस पर पहुँच कर तो सन्देह के लिए कोई स्थान ही नही रह जाता। 'भये जे, अहहि, जे होइहहि आगे' मे तो तुलसीदास जी ने अतीत, वर्तमान और भविष्य के सब कवियो को प्रणाम किया है। क्या तुलसी के पूर्व तथा उनके समय मे सब ब्राह्मण थे, और उनके बाद भी सब ब्राह्मण ही हुए और होंगे ? इस पर भी एक पवित्र हृदय का सत शपथ ले कर कहता है कि उसके इस नमस्कार मे कोई छल नही है। वह निष्कपट हो कर सबको नमस्कार करता है।

गुरुता की यह उदार स्वीकृति आवेशजन्य नही; तुलसी की साधना में ज्ञान और प्रेम का सन्तुलन है। केवल प्रेम आवेश हो सकता है; पर ज्ञानयुक्त प्रेम आवेश न हो कर सयत रहता है। ये सब नमस्कार हृदय के केवल क्षणिक आवेश से नही किये गये हैं। तुलसी मे आवेश कम और जागरूकता अधिक है। मर्यादा पुरुषोत्तम के शील के प्रकाश से विश्व को आप्लावित कर जो आदर्शो की एक क्रान्ति पैदा करना चाहता है उसका काम आवेश मे आने से नही चलता। सामाजिक आदर्शो के भवन के निर्माण की योजना आवेश से नही बनती। उसके तो एक-एक कोने की सार्थकता पर विचार करके ही योजना प्रस्तुत करना सम्भव होता है। और उसकी हर ईंट को सोच-समझ कर, नाप-जोख कर, उसकी निर्दिप्ट दिशा के कोणों को परख कर ही रखना पड़ता है। मस्तिष्क और हृदय का एक आदर्श सन्तुलन तुलसी-काव्य की और खास कर रामचरितमानस की विशेषता है, जिसमें हृदय और मस्तिष्क दोनों एक दूसरे के कार्य को कभी विकृत न करके परिमार्जित ही करते है। सन्तुलन की यह अवस्थिति भी एक योजना के फलस्वरूप ही तुलसी साहित्य में आयी है। इस सन्तुलन पर बराबर दृष्टि रखने वाले तुलसी के शब्द बड़े सारगर्भित और मननीय है—

> हृदय सिंधु मति सीपि समाना, स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
> जौं बरखइ बरबारि बिचारू, होहिं कवित मुकुता मनि चारू।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १३ के बाद।

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि रामचरित बर ताग।
पहिरहि सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग‡।

कवि न होउँ नहि चतुर कहावउँ, मति अनुरूप रामगुन गावउँ।
कहँ रघुपति के चरित अपारा, कहँ मति मोरि निरत ससारा†।

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु जो सुनि करहि बखान।
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मतिबल अति थोरि।
करहु कृपा हरिजस कहउँ पुनि-पुनि करउँ निहोरि$।

ऊपर की पक्तियों मे हृदय और मस्तिष्क के इसी आदर्श सन्तुलन की तुलसी की मर्यादा दिखाई पडती है। हृदय सिन्धु के समान है, और मति सीपी के समान। ज्ञानी लोग सरस्वती को स्वाती कहते है। सरस्वतीरूपी स्वाती जब सुन्दर विचारों के पवित्र जल की वर्षा करती है तब कवित्तरूपी सुन्दर मोती पैदा होते है। युक्ति से इस मोती को बेध कर राम के आदर्श चरितरूपी सुन्दर तागे मे पिरोया जाता है, तब सज्जन लोग इस हार को अपने पवित्र हृदय पर पहन लेते है और राम के अनुराग से उस हृदय की शोभा बहुत अधिक बढ जाती है। इससे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी हृदय, मति, विचार और युक्ति के सन्तुलन को ही कविता मानते है। इस कविता के प्रभाव से राम के आदर्श चरित के प्रति सज्जनों के हृदय मे अनुराग पैदा हो जाता है। तुलसी इस पर विश्वास करते है कि उनकी कविता के मोती के हार का निर्माण करने वाला सूत्र राम का आदर्श चरित्र ही है। तुलसी के अनुसार कविता क्रान्तिकारिणी और आकर्षक तभी होती है जब उसमे हृदय, मति, विचार और युक्ति की तप पूत अवस्था का सम्मिलन होता है। ऐसे ही प्रकार के सन्तुलन से हृदय, मति, विचार और युक्ति आदर्श के प्रचार और आदर्श समाज के निर्माण में सफल होते है।

रामायण के इसी प्रकरण मे उपर्युक्त पंक्तियों मे कवि ने कहा है—"मैं अपनी मति के अनुरूप राम के गुण गाता हूँ। कहाँ रघुपति के उदार चरित और कहाँ ससार में डूबी हुई मेरी मति।"

कवि के इस कथन से उसके विनय की ही व्यजना समझी जानी चाहिए। ऐसा कहने में भी उसकी मति ही जागरूक है। इससे यह नही समझना चाहिए कि कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि उसकी मति ससार के भेदों मे डूबी हुई है। जिसमे सत्यत. सांसारिक दुर्बलताएँ रहती है वह तो उन्हें स्वीकार ही नही करता। यह तो महात्मा का निर्मल स्वरूप है जो राम की अनत पवित्रता का साक्षात्कार करके उसके सामने विनय प्रदर्शित करने के लिए अपनी मति को बहुत हीन कहता है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ११ और उसके पहले। † वही, दोहा ११ के बाद।
$ वही, दोहा १४, प्रथम चार पक्तियाँ।

इसी विनम्रता का परिचय हमे फिर होता है, जब हम कवि को ऊपर की पक्तियों में यह कहते हुए सुनते है—"उसी सरल कविता और विमल कीर्ति का ज्ञानी लोग आदर करते है जिसे सुन कर शत्रु भी अपना स्वाभाविक बैर भूल जाता है और प्रशसा करने लगता है। ऐसी कविता बिना विमल मति के नही होती और मति का बल मुझमे बहुत कम है। सब सज्जन लोग मुझ पर कृपा करे। उनका आभार निरन्तर स्वीकार करते हुए मै राम का यशोगान करता हूँ।" यहाँ फिर तुलसीदास जी उसी बात को दुहराते है कि क्रान्ति को जन्म देने वाली कविता बिना विमल मति के नही होती। यह मति, हृदय और बुद्धि के सन्तुलन से ही प्राप्त होती है।

अपने गुरु की वन्दना करते हुए भी तुलसीदास जी ने कहा है—

बन्दउँ गुरु-पद-कज कृपासिन्धु नररूप हरि।
महा-मोह-तम-पुज जासु बचन रवि-कर-निकर‡।

यहाँ भी उन्होने अपने गुरु के शब्दों को अज्ञान के अधकार की अपार राशि को नष्ट करने वाली सूर्यरश्मियो का समूह ही माना है। यहाँ भी तुलसी की दृष्टि ज्ञान पर ही लगी हुई है। गुरु के प्रति भक्ति के भाव मे डूब कर भी, आविष्ट हो कर भी, तुलसी की दृष्टि ज्ञान को सामने से नही हटाती। पवित्र हृदय और पावन बुद्धि का यही योग तुलसी का अभीष्ट है। ऐसा साधक आवेश मे या आवेश के बाद, कभी भी सन्तुलन नहीं खोता। यही तुलसी ने फिर कहा है—

श्रीगुरु-पद-नख-मनि-गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह-तम सो सुप्रकासू, बडे भाग उर आवइ जासू।
उघरहिं बिमल विलोचन ही के, मिटहि दोष दुख भव रजनी के।

सूझहि राम-चरित मनि-मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक†।
गुरु-पद-रज-मृदु-मजुल-अजन, नयन अमिअ दृग-दोष विभजन।
तेहि करि बिमल बिबेक-बिलोचन, बरनउँ राम-चरित भवमोचन$।

'दिव्य दृष्टि हिय होती' में अंधे हृदय को ज्ञान की अलौकिक दृष्टि की प्राप्ति की ओर ही तुलसी की दिव्य दृष्टि देख रही है। उसका इगित इसी ओर है कि सामाजिक क्रान्ति करने वाला साधक हृदय के अधे आवेश के साथ कभी नही चलता। वह तो समाज के आदर्शरूप की दिव्य धारणा की ज्योति से प्रफुल्लित रहता है। आदर्शरूप की धारणा उसके मस्तिष्क की दिव्यता से सम्पन्न होती है तथा उस धारणा को समाज के भीतर क्रियान्वित हो कर प्रवाहित होते हुए देखने की कल्पना का आनन्द उसके हृदय को आलोकित रखता है। मस्तिष्क और हृदय के इसी प्रकार के सन्तुलित आलोक को गोस्वामी जी हृदय की दिव्यदृष्टि कहते है। इसी प्रकाश के सन्तुलन को लक्ष्य करके तुलसीदास जी ने कहा है—"यह सुन्दर प्रकाश अज्ञान के अधकार को समाप्त कर देता है। उसके भाग्य जाग

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, सोरठा ५। † वही, सोरठा ५ के बाद। $ वही, दोहा १ के बाद।

जाते है, जिसके हृदय में यह प्रकाश आ जाता है ‡ ।" हृदय और मस्तिष्क के इस सन्तुलित प्रकाश के सम्बन्ध मे तुलसी के विचार बिलकुल स्पष्ट हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि हृदय के आवेश के प्रकाश मे मस्तिष्क का आलोक और मस्तिष्क के प्रकाशमय पावन चिन्तन के समय हृदय के पवित्र प्रेम का प्रकाश तुलसी की साधना के पथ पर छाया रहता है। इसको इन शब्दों मे भी व्यक्त किया जा सकता है कि रामचरितमानस का कवि साधक ही नही, वह तो सिद्ध हो चुका है। आदर्श समाज के सम्पूर्ण स्वरूप को उसने सिद्ध कर लिया है। इस सिद्धि की परिपक्वता को ले कर ही उसने मर्यादा पुरुषोत्तम तथा अपने सब आदर्श पात्रों की भावना की है। यही उसकी भक्ति का निचोड है।

स्वार्थ के ऊपर उठ कर विश्व भर को अपने हृदय में स्थान दे कर उसी सर्वतोमुखी रक्षा करने की भावना की सिद्धि ही तुलसी की भक्ति की परिपूर्णता है। ऐसे ही राम और इन्ही भावनाओं के सिद्ध भरत की तुलसी ने उपासना की है। भारतीय आर्य वीरता अपनी सिद्धि की अवस्था पर आदर्श की इसी उच्चतम भूमि पर रहती है। इसी की झाँकी भगवान् राम मे पा कर गोस्वामी जी मुग्ध हुए है। यह मुग्धता श्रद्धा और प्रेम के योग के कारण बौद्धिक और हार्दिक दोनों है। भारतीय भक्तिसाधना मे श्रद्धा और प्रेम के इसी सन्तुलित योग के कारण अधा आवेश कभी नही रहता।

ज्ञान और प्रेम के इसी विराट् योग की सिद्धि प्राप्त करके तुलसी ने समाज के सम्पूर्ण चित्र को सजोना चाहा है। उनमे पक्षपात देखना भूल होगी।

ऊपर की उद्धृत पक्तियों मे तुलसीदास जी ने कहा है—"जिसे यह प्रकाश प्राप्त हो जाता है उसके हृदय की आँखे पवित्र और उदार हो कर खुल पडती है। ससाररूपी रजनी के दु.ख और दोष सब मिट जाते है। उसे मणि और माणिक्य के समान ज्योतिष्मान् राम के सब चरित जिस-जिस खान मे जहाँ-जहाँ गुप्त या प्रकट रहते है, दिखाई पड़ जाते है।"

तुलसीदास जी के ये शब्द स्पष्ट इगित देते है कि खुली हुई आँखों से जगत् के सम्पूर्ण आदर्शशील को जगत् के भीतर से तथा भारतीय आदर्श की साधना मे डूबे हुए अतीत के सब साधकों और कवियों से प्राप्त करके गोस्वामी जी ने अपने राम के शील को सजोया है। आदर्श व्यक्तियों के चरित के मौन व्याख्यानों को तुलसी के साधक ने बड़े ध्यान से सुना था, अपने हृदय और मस्तिष्क के कानों से। जहाँ-जहाँ आदर्श शील है वही राम रहता है। यह भारतीय विचारधारा का सर्वस्वीकृत प्राचीन सूत्र है। तुलसी को यह प्रकाशवान् सूत्र सहजगम्य था। इसीलिए जगत् के कोने-कोने के शील मे जहाँ-जहाँ राम दिखाई पड़े वहाँ-वहाँ से गोस्वामी जी ने उन्हें अपनी पलकों से उठाया और उस सम्पूर्ण शील के आलोक मे अपने राम का दर्शन करके वे धन्य हो गये। विश्व की खान के आदर्श के वे रत्न जो साधारण साधक के लिए गुप्त रह जाते, तुलसी को स्पष्ट दिखाई पड़े।

पवित्र स्नेह से भेदज्ञान का नाश हो जाता है। भेद के आधार पर टिके हुए अज्ञान के कारण जो दुःख और सताप मनुष्य अनुभव करता रहता है और जिसके कारण उसका

‡ रामचरितमानस, बालकांड, सोरठा ५ के बाद, पक्ति ६। वही पक्ति ७ और ८।

जीवनपथ ईर्ष्या, दम्भ, अभिमान, राग और द्वेष इत्यादि से ऊबड-खाबड रहता है वह राजमार्ग की तरह समतल सुदृढ तथा पवित्र स्नेह से चिकना हो जाता है।

तुलसीदास जी ने अपने गुरु की वन्दना मे ऊपर की उद्धृत पक्तियों में कहा है—"गुरु के चरणों की धूल मृदु और मजुल अजन की तरह है। वह आँखों के लिए अमृत की तरह है। आँखों के दोषों को वह नष्ट कर देती है। उसी धूल के अजन के विवेक से अपनी आँखों को उदार, निर्मल और पवित्र बना कर संसार के दोषों को नष्ट करने वाले रामचरित का मैं वर्णन करता हूँ ‡।"

ऐसा विवेक-सम्पन्न सिद्ध क्या पक्षपात कर सकता है? वह तो अपने, प्रत्येक पग पर सजग है। ससार के समग्र दोषों को नष्ट करने वाले राम के चरित्रों की सिद्धि प्राप्त कर लेने वाला साधक पक्षपात के दोष मे डूब नही सकता। इसीलिए उसके राम ऐसे है, जिनके भीतर सच्चाई के लिए प्रेम, बुराई के लिए घृणा और जातीय पक्षपात का अभाव है। इस राम की सिद्धि करने वाला सर्वदर्शी महात्मा जातीय पक्षपात कर ही नही सकता उसे समझने मे बडी सतर्कता की आवश्यकता है।

यही तक नही, तुलसी ने अपने मानस मे एक गुरु-शिष्य परम्परा भी दी है। वह परम्परा है राम साहित्य के गुरु-शिष्यों की। इसके प्रथम आचार्य शिव है—"संभु कीन्ह यह चरित सोहावा †।" उनकी शिष्या, स्वय जगदम्बा बनी—"बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा $।" शकर के दूसरे शिष्य कागभुशुडि है—"सोइ शिव कागभुशुडिहि दीन्हा *।" कागभुशुडि के शिष्य याज्ञवल्क्य ऋषि हैं—"तेहि सन जागबलिक पुनि पावा §।" याज्ञवल्क्य के शिष्य भरद्वाज हुए—"तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ×।"

इस मुख्य परम्परा की सरिता के प्रवाह की अविच्छिन्न धारा की ओर इशारा करने के लिए तुलसीदास जी ने कह दिया है—"अउरउ जे हरिभगत सुजाना, कहहिं सुनहिं समुझहि बिधि नाना +।" इसके बाद उन्होंने कहा है—"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत ✱।"

इस गुरु-शिष्य-परम्परा में कागभुशुडि और याज्ञवल्क्य का गुरु-शिष्य-सम्बन्ध डा० मैकनिकॉल के सन्देह के प्रकरण में बहुमूल्य है। यहाँ गुरु पक्षी है और शिष्य ब्राह्मण। ये पक्षी कागभुशुडि पहले शूद्र, फिर दूसरे जन्म मे ब्राह्मण और उसके बाद पक्षी हो गये। कर्मानुसार पुनर्जन्म मानने वाला भारत जन्म के अनुसार इस प्रकार के विकास को मानता है। शूद्र, कर्म के अनुसार ब्राह्मण और फिर कर्म के अनुसार ही ज्ञानी कौआ हो गया। यही कौआ याज्ञवल्क्य ऋषि का गुरु है। गोस्वामी जी के गुरु शब्द की व्यापकता पक्षपात से दूर है। गुरु वही है जिसके भीतर ज्ञान की गुरुता हो। इस पक्षी मे ज्ञान की गुरुता थी; इसीलिए यह ब्राह्मण का भी गुरु हो सका।

---

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के बाद की दो पंक्तियाँ। † वही, दोहा २९ के बाद, पक्ति ३। $ वही। * वही, पंक्ति ४। § वही, पक्ति ५। × वही। + वही, पक्ति ८। ✱ वही, दोहा ३०।

यही कागभुशुंडि गरुड़ के भी गुरु है। इनसे उपदेश पा कर तुलसी के गरुड़ ने कहा है—

मोह जलधि बोहित तुम्ह भयेऊ। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दयेऊ ‡।
मोपहिं होइ न प्रतिउपकारा। बदउँ तव पद बारहिं बारा।
पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी।
जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब संशय गयऊ †।
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि-पुनि उमा कहइ बिहंगबर।

यहाँ भी तुलसी के गरुड़ की दृष्टि ज्ञान और प्रेम, हृदय और मस्तिष्क के सन्तुलन पर ही है। जो हृदय असीम आनन्द को प्राप्त करके पूर्णकाम हो जाता है, जिसके भीतर स्वार्थ के सासारिक सुख की इच्छाएँ नही पैदा होती, जो परमात्म-आदर्श मे तन्मय रहता है वही अज्ञान के समुद्र की नाव हो सकता है। गरुड ने अपने गुरु कागभुशुडि मे इन्ही लक्षणों का दर्शन किया है। इन्ही लक्षणों से युक्त व्यक्ति गुरु होने का अधिकारी है, फिर वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, पशु हो चाहे पक्षी, पुरुष हो या स्त्री। ब्राह्मण के भीतर इन्ही गुणो की अपेक्षा करके तुलसी के शिव ने इसी कागभुशुडि प्रकरण मे कहा है—

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी $।

जो द्विज क्षमाशील और परोपकारी होते है वे मुझे राम के समान प्रिय हैं। तुलसी के शिव भी राम को इन्ही गुणों के कारण प्रेम करते है, क्योंकि राम क्षमाशील और परोपकारी है।

जीवन के इस संतुलन की सिद्धि प्राप्त कर लेने वाला साधक कैसे पक्षपात करेगा। वह जहाँ कही भी ब्राह्मण की बात करता है वहाँ उसकी दृष्टि में ब्राह्मण सत ही है, असत नही।

बार-बार ब्राह्मण की चर्चा करके सत की स्तुति गोस्वामी जी के द्वारा इसलिए की गयी है कि सत में ब्राह्मण स्वभाव पैदा हो जाता है और सच्चे ब्राह्मण मे सतस्वभाव रहता है।

सुनु मम बचन सत्य अति भाई। हरि तोषन व्रत द्विज सेवकाई।
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनन्त समाना *।

यह उपदेश स्वय शकर ने उस शूद्र को दिया जो कई जन्मों के बाद ज्ञानी कागभुशुंडि हुआ। यहाँ भी शूद्र का गुरु ब्राह्मण था और उसका संत स्वभाव था। इसीलिए उसकी अवज्ञा का परिणाम शिव का शाप हुआ, जिसके कारण उसे सर्प से प्रारंभ करके विभिन्न शरीरों में एक हज़ार बार जन्म लेना पड़ा और अतिम शरीर ब्राह्मण का मिला। गुरु के

‡ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा १२४ के बाद पंक्ति ३ से ५ तक। † वही, पंक्ति ९ से १०। $ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १०८ के बाद, पक्ति ५। * रामचरित-मानस, उत्तरकाड, दोहा १०८ के बाद, पक्ति ११–१२।

कोमल स्वभाव से प्रेरित शिष्य के लिए क्षमा की प्रार्थना का परिणाम यह हुआ कि इस लम्बी अवधि मे उसे ज्ञान का प्रकाश मिलता रहा। ब्राह्मण शरीर से राम की सगुण भक्ति का रहस्य जान लेने के लिए प्रयत्न के सिलसिले में लोमश ऋषि से भेट हुई। उन्होंने निर्गुण भक्ति का निरूपण किया। सगुण भक्ति के लिए बार-बार हठ करने पर क्रोध में आ कर ऋषि ने उसे कौआ हो जाने का शाप दिया। इस शाप को ब्राह्मण ने नम्रता और प्रेम से स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण की दैन्यवृत्ति को देख कर ऋषि को दया आ गयी। वे अपने शाप पर बहुत पछताने लगे और उसे बुला कर सगुण उपासना का रहस्य समझाया।

यही कागभुशुडि के विकास का इतिहास है। इस इतिहास में ब्राह्मण गुरु की प्रशसा केवल उसके सत स्वभाव के कारण की गयी है, जातीय पक्षपात के लिए नही। इसी तरह ब्राह्मण की प्रशसा तुलसी-साहित्य मे जहाँ-जहाँ की गयी है वहाँ-वहाँ सत-स्वभाव की ऊँचाई को गौरवान्वित करने के लिए ही, जाति के प्रति मोहजनित पक्षपात के कारण नही।

बिना अपवाद सब सत अपने आदर्श शील के कारण प्रशसनीय होते है। तुलसी की भक्तिपद्धति के भीतर विराट् शील से आलोकित जो कोई व्यक्ति संत-धर्म की सीमा के भीतर आ जाता है वही प्रशसनीय है। इस प्रशसा का पात्र होने के लिए किसी जाति या लिग की आवश्यकता नही। सत-धर्म के भीतर आ जाने के कारण जनकपुर के सब नर-नारी तुलसी की प्रशसा के पात्र बने—

पुर-नर-नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ज्ञानी गुनवता ‡।

अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करने वाले ज्ञानी, गुणवान् और पवित्र आचरण वाले व्यक्ति ही सत है। इन्ही लक्षणों के कारण तुलसी ने उन सबकी प्रशसा की। इसी प्रकार संतस्वभाव केवट मे था जिसके रामप्रेम का वर्णन करते हुए तुलसी ने कहा है—

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाही। एहि सम पुन्य पुज कोउ नाही †।

भगवान् राम के प्रति तथा उनके आदर्शों के प्रति अनुराग रखने वाले केवट को सर्वोच्च स्थान देने में तुलसी को सकोच नहीं हुआ। वह तो ब्राह्मण नही था।

हर जगह तुलसीमत की परीक्षा करने पर यही ज्ञात होता है कि राम का आदर्श, सत धर्म है, और उसे जो प्राप्त कर लेता है वही तुलसी की प्रशंसा प्राप्त करता है, चाहे वह किसी जाति का हो। तुलसी ने यह स्पष्ट घोषणा की है—

सुद्ध सच्चिदानन्दमय कंद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर अनुहरत ससृति-सागर-सेतु $।

राम का चरित भवसागर के लिए सेतु है। उस आदर्श चरित का अनुसरण करके संत स्वभाव वाले मनुष्य जगत् के स्वार्थमय प्रलोभनों से दूर हो जाते है। इन्ही संत स्त्री-पुरुषों की वन्दना गोस्वामी जी ने की है, किसी एक जाति की नहीं।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २१२ के बाद, पंक्ति ६। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, सोरठा १०० के बाद, पंक्ति ७-८। $ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा ८७।

कहाँ तक कहा जाए, तुलसी के राम भी ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। इस क्षत्रिय अवतार को ही तुलसी ने चुना। यदि जाति पक्षपात ही तुलसी का लक्ष्य होता तो विष्णु के ब्राह्मण-अवतार परशुराम का ही आकर्षक चित्र खीचने के लिए वे अपनी प्रतिभा से एक काव्य लिखने की क्षमता रखते थे और उन्होंने ऐसा कर लिया होता। परन्तु उन्होंने ऐसा न करके परशुराम को भी राम के शील से प्रभावित दिखाया है और राम के अवतार को परशुराम के अवतार से अधिक व्यापक और जीवन के सब आदर्शो का आश्रय होने के लिए उपयुक्त सिद्ध किया है। अत. इस प्रसग से भी हमे यही स्पष्ट प्रतीत होता है कि तुलसी ने जातीय पक्षपात पर कभी दृष्टि ही नही डाली है।

डा० मैकनिकॉल के आक्षेप का आधार ही भ्रान्त है। जिस आधार पर डा० मैकनिकॉल ने ब्राह्मण के लिए तुलसी के पक्षपात को देखा है वह आधार भी हमें शून्य ही दिखाई पड़ता है। डा० मैकनिकॉल का मानस का अध्ययन ग्राउज के अनुवाद पर आधारित है। उन्होने अपने इस मत की पुष्टि मे ग्राउज के अनुवाद को उद्धृत किया है। वह निम्नांकित है—

"दि गुरु कैन सेव फ्रॉम दि ब्राह्मन्स ऐंगर, बट इफ दि गुरु हिमसेल्फ बी राथ, देयर इज नन इन दि वर्ल्ड दैट कैन सेव...माई सोल इज डिस्टर्ब्ड बाई वन फीयर, दि कर्स ऑफ दि ब्राह्मण इज समथिंग मोस्ट टेरिबिल‡" गोस्वामी जी की मूल चौपाई निम्नांकित है—

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा, द्विज-गुरु-कोप कहहु को राखा।
राखइ गुरु जो कोप विधाता, गुरु बिरोध नहि कोउ जग त्राता†।

एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महि देव साप अति घोरा$।

पहले तो ग्राउज का अनुवाद ही अशुद्ध मालूम पड़ता है। "राखइ गुरु जो कोप विधाता" का अनुवाद तो यह होगा 'इफ दि गॉड् ऑफ फ्रेट बिकम्स ऐंग्री, दि गुरु कैन प्रोटेक्ट'.

यदि डा० मैकनिकॉल के उपर्युक्त अनुवाद को ठीक भी मान लिया जाए, तब भी गुरु का महत्त्व ब्राह्मण से अधिक हो जाता है। पर यह अनुवाद ठीक नही है। यहाँ जो ठीक अनुवाद दिया गया है उसमे गुरु का महत्त्व ब्रह्मा से भी अधिक हो जाता है, ब्राह्मण की तो कोई बात ही नही।

स्थिति है भी ऐसी ही। ब्राह्मण के क्रोध से गुरु के बचाने की बात गोस्वामी जी ने नही कही है। उन्होंने तो यही कहा है कि भाग्य के विधाता ब्रह्मा भी यदि कुपित हो जाएँ तो गुरु रक्षा कर सकते है। यहाँ गुरु को बहुत उच्च सम्मान दिया गया है, पर यह गुरु ब्राह्मण नही है; गुरु ही है, चाहे ब्राह्मण हो या न हो। 'गुरु का विरोध करने से ससार मे कोई रक्षक नही मिल सकता*' में गुरु की अनंत महिमा की ओर इशारा है।

‡ इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८, पक्ति २० से २८ तक। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १६५ के बाद, पक्ति ५–६। $ वही, पक्ति ८। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १६५ के बाद, पंक्ति ६।

सच्चे ब्राह्मण में भी वही गुण होते है जो सच्चे गुरु में होते है; अतः ब्राह्मण भी गुरु के समान ही होता है, इसलिए 'द्विज-गुरु-कोप कहहु को राखा' ‡ मे तुलसीदास जी ने कहा है कि ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है। यहाँ पर ब्राह्मण अलग है और गुरु अलग। यहाँ ब्राह्मण केवल इसलिए प्रशंसनीय नहीं हुआ है कि वह ब्राह्मण जाति मे पैदा हुआ है, पर उसकी प्रशसा इसलिए की गयी है कि उसमें शील की गरिमा होती है। यहाँ तुलसीदास जी ने जानबूझ कर गुरु और ब्राह्मण कहा है, गुरु या ब्राह्मण नहीं। यहाँ 'द्विज-गुरु' मे कर्मधारय समास नही है। यदि ऐसा होता तो 'द्विज' 'गुरु' का विशेषण हो जाता। यहाँ 'द्विज-गुरु' में द्वन्द्व समास है। द्विज और गुरु के शाप से कहो किसने रक्षा की है। यही चौपाई का अर्थ होता है। शील के गौरव से आलोकित ब्राह्मण के कोप से भी कभी किसी ने रक्षा करने मे सफलता नही प्राप्त की तथा संतधर्म से युक्त गुरु के कोप से भी कभी किसी ने रक्षा नही की है। यह गुरु किसी भी जाति का हो सकता है। इस सिद्धान्त पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

यह चौपाई तुलसी के रावण ने अपने पूर्वजन्म में भानुप्रताप के अपने रूप से कपट मुनि से कही थी। इस प्रकरण में प्रतापभानु के गुरु की बात तो कही नही गयी थी। ब्राह्मण के शाप की बात अवश्य कही गयी थी। कपट मुनि ने कहा था कि ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश हो सकता है। इसका उत्तर देने के लिए गुरु को भी ब्राह्मण के साथ जोड़ कर एक नीति की बात राजा भानुप्रताप ने कपट मुनि से कही थी कि गुरु और ब्राह्मण के शाप से कोई रक्षा नही कर सकता। ब्राह्मण के शाप की कपट मुनि ने चर्चा की थी इसीलिए सामान्य नीति से अलग हट कर भानुप्रताप ने उत्तर दिया था कि ब्राह्मण का शाप बड़ा भयानक होता है। अतः यहाँ गुरु और ब्राह्मण एक हो ही नही सकते कि गुरु की प्रशसा से केवल ब्राह्मण की ही प्रशंसा हो जाए और यह सिद्ध हो सके कि सदा ब्राह्मण ही गुरु हो सकता है। अतएव भ्रान्त धारणा के कारण ही डा० मैकनिकॉल ने गोस्वामी जी पर यह आक्षेप किया है। यह बात अवश्य सत्य है कि गुरु के लिए गोस्वामी जी के भीतर अपार श्रद्धा और भक्ति है; इसीलिए उनके भानुप्रताप ने ब्राह्मण की चर्चा चलने पर गुरु की अनत महिमा की ओर भी इशारा कर दिया और अन्त मे ब्राह्मण के शाप की भयानकता को भी स्वीकार किया। यहाँ गुरु के बहाने ब्राह्मण की प्रशसा नहीं की गयी है प्रत्युत ब्राह्मण की चर्चा के प्रसंग में गुरु की प्रशंसा के लिए अवसर निकाल लिया गया है,। "जननि जनक गुरु बन्धु हमारे, कृपानिधान प्रान तें प्यारे †।" यह चौपाई प्रजा के द्वारा भगवान् राम के लिए कही गयी है। राम क्षत्रिय थे पर आदर्श शीलवान् होने के कारण तुलसी की प्रजा ने उन्हें गुरु का सम्मान दिया।

तुलसी पर इस आक्षेप के लिए डा० मैकनिकॉल का दूसरा आधार भी भ्रान्त है। डा० मैकनिकॉल को तुलसीदास जी ब्राह्मण जाति के पक्षपाती दिखाई पड़े। इसके लिए

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १६५ के बाद, पक्ति ५। † रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ४१ के बाद।

कारण ग्राउज का मानस का अनुवाद भी है। अपने मत का प्रतिपादन करने के लिए डा० मैकनिकॉल ने अरण्यकाड के मंगल श्लोक का ग्राउज का अनुवाद उद्धृत किया है। श्लोक मे शंकर की प्रार्थना की गयी है। ग्राउज ने उस प्रार्थना को ब्राह्मण की प्रार्थना समझ कर अनुवाद किया है। ग्राउज का यह भ्रम स्वाभाविक ही था। तुलसी की दृष्टि बड़ी रहस्यभेदिनी थी। इसीलिए उनकी वस्तुयाजना भी बडी सूक्ष्म हुई है। भ्रम की अवस्था मे बुद्धिमान विचारक सस्कृत के श्लोकों को अपने विचार के अनुसार तोड़-मरोड सकता है। यह सस्कृत साहित्य की विशेषता का परिणाम है। प्रार्थना का श्लोक निम्नाकित है—

मूल धर्मतरोर्विवेकजलधे: पूर्णेन्दुमानन्दद
वैराग्याम्बुजभास्कर ह्यघघनध्वान्तापह तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ श्वास भव शकर
वन्दे ब्रह्मकुल कलकशमन श्रीरामभूपप्रियम्‡।

इस श्लोक मे 'ब्रह्मकुल' को देख कर ग्राउज के लिए यह बिलकुल स्वाभाविक बात थी कि वे उसे ब्राह्मण का कुल समझ लेते, क्योंकि एक विदेशी विद्वान् के लिए यह जान लेना कि ब्रह्मकुल शकर का विशेषण हो सकता है, इतना सरल नहीं है। तुलसी की वस्तुयोजना के रहस्य को भी यदि वे जानते तो यह भूल उनसे न होती। इस 'ब्रह्मकुल' को ब्राह्मण कुल समझ कर उन्होने 'भव' और 'शकर' शब्दो को ब्राह्मण का विशेषण बना लिया। ग्राउज को उद्धृत करते हुए डा० मैकनिकॉल ने कहा है—

"वी सी, अगेन, हाउ फॉर दि थीइज्म ऑफ तुलसीदास फाल्स शॉर्ट ऑफ ए फुल्ली स्पिरिचुअल रिलीजन इन दि पावर दैट स्टिल रिमेन्स विदिन इट ऑफ दि ओल्ड एण्ड डीपली रूटेड कास्ट डिस्टिंक्शन्स दि ब्राह्मण इज नॉट यट डीपोज्ड फ्रॉम हिज प्लेस ऑफ प्रिविलेज इट इज स्पेशली फॉर दि सेक ऑफ ब्रह्मन्स, काउज एन्ड गॉड्स दैट राम हैज टेकेन ह्यूमन फॉर्म, फॉर दि ब्राह्मण इज, 'दि वेरी रूट ऑफ दि ट्री ऑफ पायटी...दि डेस्ट्रॉयर ऑफ सिन'†

इस उद्धरण के उल्टे विरामो के भीतर के शब्द ग्राउज के है। डा० मैकनिकॉल की इन सब आपत्तियों का उत्तर तो पहले दिया जा चुका है। यहाँ केवल यही देखना है कि डा० मैकनिकॉल के आक्षेप का आधार वस्तुत: कोई अस्तित्व रखता है या नहीं। यदि यह प्रार्थना ब्राह्मण की न हो कर शिव की सिद्ध हो जाए तो उनके इस आधार का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

इसे शंकर की स्तुति मानने के पक्ष मे सबसे बडा प्रमाण यह है कि तुलसीदास जी ने मानस के प्राय: सब काडों के प्रारम्भ मे राम और शकर की प्रार्थना की है। सुन्दरकांड ऊपरी दृष्टि से देखने में अपवाद प्रतीत होगा, पर ध्यान से देखने मे वहाँ भी एक प्रकार से शकर की स्तुति हो जाती है। मगलाचरण की भारतीय पद्धति मे किसी भी बहाने

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, मगलाचरण, श्लोक १। † इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११८, पक्ति ११ से १७ तक।

देवता का नाम ले लेने से उसकी स्तुति हो जाती है। राम की स्तुति करते हुए तुलसीदास जी ने उन्हे 'ब्रह्माशभुफणीन्द्रसेव्यमनिश वेदान्तवेद्य विभुम्' ‡ कहा है। यहाँ शभु का नामस्मरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त यही पर गोस्वामी जी ने हनुमान् की स्तुति की है। यह स्तुति तुलसी की विचारधारा मे तथा अन्य प्राचीन भारतीय विचारधाराओं की परम्परा के अनुसार भी शिव की स्तुति हो सकती है। तुलसीदास जी मारुति को शिव का अवतार मानते हैं। विनय पत्रिका मे गोस्वामी जी ने हनुमान की स्तुति करते हुए उन्हे रुद्रावतार, महादेव, कपाली, वानराकारविग्रह पुरारी, रुद्राग्रनी, कुजरारी, वामदेव तथा मूलपानी इत्यादि नामों से और सम्बोधनों से सम्बोधित किया है†।

सुन्दरकाड के नायक महावीर है। इसीलिए उनकी स्तुति गोस्वामी जी ने कर ली और उसके बाद उन्हे अलग से शिव की स्तुति करने की आवश्यकता नही प्रतीत हुई। प्रत्येक काड मे शिव की स्तुति गोस्वामी जी ने इसलिए की है कि उनके अनुसार शिव रामकाव्य के प्रथम देवकवि है—'सभु कीन्ह यह चरित सोहावा $।' दूसरा कारण यह भी है कि शैव-वैष्णव द्वेष को मिटाने के लिए 'अह ब्रह्मा च शर्वश्च जगत. कारण परम्' तथा 'तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि, ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति' *। की प्राचीन अभेदानुभूति की परम्परा को फिर से जागृत करना उनके जीवन का एक बडा भारी लक्ष्य था। जातीय जीवन मे ऐक्य की स्थापना करने के लिए और पारमार्थिक अभेद के सत्य को पुनः प्रकाशित करने के लिए मानस मे उन्होने राम और शिव के अभेद पर बार-बार ज़ोर दिया है। इसी अभेदानुभूति के अपने साक्षात्कार को भारतीय हिन्दू जनता के भीतर जागृत करने के लिए प्रत्येक काड के प्रारम्भ मे भी उन्होंने राम और शिव दोनों की स्तुति की है।

इस दृष्टिकोण से देखने पर अरण्यकाड की यह स्तुति ब्राह्मण की न हो कर शिव की ही सिद्ध होती है। अपनी एक सामान्य योजना के अनुसार गोस्वामी जी ने अरण्यकांड के प्रारम्भ मे शिव की स्तुति तो की ही है, इसके अतिरिक्त भी यहाँ गोस्वामी जी की यह शिवस्तुति और अधिक स्वाभाविक है। अरण्यकांड की प्रायः पूरी कथा शकर ने उमा से कही है। यह पूरा काड शकर जी का है। इसीलिए गोस्वामी जी ने यहाँ शिव की प्रार्थना पहले ही की है। अयोध्याकाड कवि का अपना है। उसके ३२५ दोहों के लम्बे प्रवाह के बाद जब शिव-उमा-सवाद उन्हे अरण्यकांड के प्रारम्भ से फिर से शुरू करना पड़ा तब उन्होने पहले शिव की स्तुति की और काड के प्रारम्भ ही मे "उमा रामगुन गूढ पंडित मुनि पावहि बिरति §" शकर से कहलवा कर वक्ता के बदल जाने का सकेत दिया।

साभिप्राय विशेषण का प्रयोग तुलसी-साहित्य की विशेषता है। ऐसे विशेषणों और शब्दो का तुलसी-साहित्य मे बहुत बड़ा स्थान है। प्रत्येक काड के मंगलाचरण मे

‡ रामचरितमानस, सुन्दरकांड, मगलाचरण, श्लोक १। † विनयपत्रिका, पद २४ से २९ तक। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २९ के बाद। * श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कंध, सर्ग ७, श्लोक ५० और ५२। § रामचरितमानस, अरण्यकाड, आरभिक सोरठा।

तुलसीदास जी ऐसे विशेषणों और अभिप्राययुक्त शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनसे आगे आने वाली घटनाओं की प्रकृति का सकेत मिल जाता है। प्रथम सोपान बालकांड का नाम तुलसीदास जी ने 'विमल सन्तोष सम्पादन' रखा है। इस विमल सन्तोष सम्पादन के इशारे उन्होंने मगलश्लोको मे दिये है। विमल (पवित्र) सन्तोष आत्मज्ञान से ही होता है। इसी के स्वरूप की ओर इगित करते हुए उन्होंने कहा है—

भवानीशकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ
याभ्यांविना न पश्यन्ति सिद्धा. स्वान्त स्थमीश्वरम्।
वन्दे बोधमयं नित्य गुरु शकररूपिणम्
यमाश्रितोहि वक्रो पि चन्द्र. सर्वत्र वद्यते‡।

'भवानी' के 'भव' शब्द से सृष्टि (लोक) का ज्ञान होता है और शकर शब्द से मंगल का। श्रद्धा और विश्वास से ही लोकमगल सम्भव हो सकता है। श्रद्धा और विश्वास को अपने भीतर जगा कर जो लोकमगल की भावना का दर्शन कर लेता है वही नर से नारायण (उदार) हो जाता है। वही स्वान्त स्थ ईश्वर को, शील की विराटता को देख लेता है। इसी को देख कर परम सन्तोष की अवस्था साधक को प्राप्त होती है।

दूसरे श्लोक मे भी इसी परम विमल सन्तोष की ओर इगित किया गया है। बिना बोधमय, ज्ञानमय अभेददर्शन के जीवन मे मगल का विधान हो ही नहीं सकता। भेददृष्टि से सघर्ष और अभेद दृष्टि से विश्रान्ति, मगल और पवित्र सन्तोष की अवस्था प्राप्त हो जाती है। भेददृष्टि ही सब अमगलों की जड़ है। अभेद दृष्टि को प्राप्त करके अपूर्ण जीवन पूर्ण हो जाता है, वन्दनीय हो जाता है। जब जीवन की दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करके अभेदमय मगल की ऊँचाई पर साधक पहुँच जाता है तब उसे विमल सन्तोष प्राप्त हो जाता है। यही सिद्धान्त बोधमय शकर का आश्रय पा कर वक्र चन्द्र की वन्दनीयता से लक्षित किया गया है।

अयोध्याकाड: (द्वितीय सोपान) का नाम 'विमल विज्ञान वैराग्य सपादन' गोस्वामी जी ने रखा है इसी विमल वैराग्य और विज्ञान की साधना इस कांड में हुई है। इसकी विवेचना आगे हो गयी है। यहाँ केवल यही देख लेना है कि मगल श्लोकों में इसका इशारा गोस्वामी जी ने कर दिया है। श्लोक निम्नाकित हैं—

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोय भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातुमाम्।
प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदु.खतः
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमगलप्रदा†।

‡ रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक २ और ३। † रामचरितमानस, अयोध्याकांड, मगलाचरण, श्लोक १ और २।

प्रथम श्लोक मे पूर्ण चन्द्र की कान्तिवाले शिव बालचन्द्र को अपने मस्तक पर रखे हुए है। उनके वामांक मे पार्वती, सिर पर गगा, गले मे विष और हृदय पर सर्पराज वासुकी है। सबका अधीश्वर, देवताओ मे श्रेष्ठ होने पर भी भस्म से शिव ने अपना शृगार किया है।

पवित्रविज्ञान (अभेददर्शन) और वैराग्य का यही लक्षण है। वहाँ सब विरोधों का सामजस्य हो जाता है। विष और अमृत (चन्द्रमा) दोनों एक समानता मे लीन हो जाते है।

दूसरे श्लोक मे राम की उस मुखाकृति की स्तुति की गयी है जो अभिषेक का समाचार पा कर विकसित भी नही हुई और वनवास के दु ख से मुरझायी भी नही। दोनों अवस्थाओं मे अभेद देखना विमल विज्ञान है और उनसे प्रभावित न होना विमल वैराग्य है।

किष्किधा काड (चतुर्थ सोपान) का नाम 'विशुद्ध सन्तोष सम्पादन' है। इस विशुद्ध सन्तोष की चर्चा कांड भर मे हुई है। उसकी ओर यहाँ भी मगल श्लोकों मे ही इशारा हो गया है। इसका भी विस्तृत विवेचन हो चुका है। यहाँ विशुद्ध सन्तोष के इगित मात्र देख लिये जाएँ। श्लोक निम्नाकित है—

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढचौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वसनं चाव्यय
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवर सशोभित सर्वदा
ससारामयभेषज सुखकर श्रीजानकीजीवन
धन्यास्ते कृतिनः पिवन्ति सतत श्रीरामनामामृतम् ‡।

मुकुति जनमु महि जानि ग्यानखानि अघहानिकर।
जहँ बस सभुभवानि सो कासी सेइय कस न।
जरत सकल सुर वृद विषमगरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मन मद को कृपाल सकर सरिस †।

यहाँ 'कुन्देदीवरसुन्दरौ', 'अतिबलौ' और 'विज्ञानधामौ' विशेषणों में तथा 'शोभाढचौ', 'वरधन्विनौ' और 'श्रुतिनुतौ' विशेषणो में राम और लक्ष्मण के भीतर क्रम से सौन्दर्य शक्ति और शील का दर्शन करके कवि को विशुद्ध सन्तोष हुआ है। 'श्रीरामनामामृत' का पान करने वालों की पवित्र प्रवृत्ति का ध्यान करके भी गोस्वामी जी को विशुद्ध सन्तोष हुआ है। जिस तरह भेषजपान से रोगमुक्ति के कारण सन्तोष उत्पन्न होता है। उसी तरह 'रामनामामृत' के सतत पान से भवरोग (संसार की आसक्ति से पैदा हुए

‡ रामचरितमानस, किष्किंधाकांड, मंगलाचरण, श्लोक १ और २। † रामचरितमानस, किष्किधाकाड, मगलाचरण का सोरठा।

कष्ट) से मुक्ति हो जाने के कारण स्वार्थो के प्रति अनासक्ति के भीतर विशुद्ध सन्तोष उत्पन्न होता है। इस विशुद्ध सन्तोप को प्राप्त कर लेने वालों के लिए साधुवाद का 'धन्य' शब्द प्रयुक्त करके गोस्वामी जी ने अपना भी अनासक्तिमय विशुद्ध सन्तोष व्यक्त किया है। काशी की पवित्रता को जान कर वहाँ निवास करने से शकर और पार्वती को भी विशुद्ध सन्तोष हुआ है। उनको विशुद्ध सन्तोष इसलिए प्राप्त हुआ है कि उन्होंने इस सत्य का साक्षात्कार कर लिया है कि काशी ज्ञान की जन्मभूमि, पापनाशिनी तथा विश्व भर के प्राणियों को जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति दे सकती है। विश्व भर की मुक्ति की भावना के आधार पर जो सन्तोष शिव और पार्वती के भीतर पैदा हुआ है वह स्वार्थ मुक्त होने के कारण अनासक्तिमय विशुद्ध सन्तोप ही है। विप की ज्वालाओं से देवताओं और जगत् की रक्षा करके शिव को विशुद्ध सन्तोप हुआ है तथा उनकी कृपालुता को अपने भीतर अकित करके कवि को भी विशुद्ध सन्तोप हुआ है। इस कांड मे राम, सुग्रीव, बलि, तारा, हनुमान् इत्यादि को भी विशुद्ध सन्तोप की उपलब्धि हुई है। उसी की भूमिका मगलश्लोको मे है। मानसदर्शन के प्रकरण मे इस जीवन-दर्शन का पूर्ण विवेचन किया गया है। यहाँ केवल इनना ही देख लेना पर्याप्त होगा कि तुलसी के मगलश्लोक अभिप्रायगर्भित होते है।

इसी तरह सुन्दरकाड (पचम सोपान) का नाम 'विमल ज्ञान सम्पादन' है। इस विमल ज्ञान की ओर सकेत का भी स्पष्ट अनुभव हमे मगलश्लोको मे होता है। श्लोक इस प्रकार है—

शान्त शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्य विभुम्।
रामाख्य जगदीश्वर सुरगुरु मायामनुष्य हरि
वन्देऽह करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्।
नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुगव निर्भरा मे कामादिदोपरहित कुरु मानस च।
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेह दनुजवनकृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीश रघुपतिवरदूत वातजातं नमामि ‡।

ऊपर के 'शान्त', 'शाश्वत', 'अप्रमेय', 'अनघ', 'निर्वाणशान्तिप्रद', 'वेदान्तवेद्य', 'विभुम्', 'नान्यास्पृहा', 'अखिलान्तरात्मा', 'कामादिदोषरहित मानस', 'ज्ञानिनामग्रगण्य' इत्यादि शब्द 'विमल ज्ञान' की ओर ही सकेत करते है। इस काड के भीतर की घटनाएँ भी इसी 'विमलज्ञान' की सिद्धि करती है।

लका कांड (षष्ठ सोपान) का नाम 'विमल विज्ञान सम्पादन' है। इस कांड में खल रावण का भी वध होता है। इन दोनों परिस्थितियों की तरफ सकेत मंगलश्लोकों मे है। श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते है—

---

‡ वही, सुन्दरकांड, मगलाचरण, श्लोक १ से ३ तक।

राम कामारिसेव्य भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्र ज्ञानगम्य गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीत सुरेश खलवधनिरत ब्रह्मवृन्दैकदेव
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयन देवमुर्वीशरूपम् ‡ ।

शखेन्द्राभमतीवसुन्दरतनु शार्दूलचर्माम्बर
कालव्यालकरालभूषणधर गगाशशाकप्रियम् ।
काशीशं कलिकल्मषौघशमन कल्याणकल्पद्रुम
नौमीड्य गिरिजापति गुणनिधिं कदर्पहं शकरम् ।

यो ददाति सता शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलाना दण्डकृद्योऽसौ शकरः श तनोतु मे ।

लव निमेष परवानु जुग बरस कल्प सर चड ।
भजसि न मन तेहि रामु कहँ कालु जासु कोदड † ।

'भवभयहरण', 'कालमत्तेभसिंह', 'अजित', 'खलवधनिरत', 'शार्दूलचर्माम्बरं', 'खलानां दण्डकृत्', 'सरचंड' और 'कोदंड' इत्यादि से रावण के वध की ओर तथा 'कामारिसेव्य', 'योगीन्द्रज्ञानगम्य', 'निर्गुण', निर्विकार', 'मायातीत', 'कलिकल्मषौघशमन', 'कल्याणकल्पद्रुम', 'कदर्पहं', 'कैवल्य' इत्यादि से विमल विज्ञान की ओर स्पष्ट इंगित है। रावण वध के लिए अपेक्षित विश्वमंगल विधायिनी शक्ति की व्यजना प्रथम आठ विशेषणों से हो रही है तथा समत्वपूर्ण अद्वैत दर्शन के विमल विज्ञान का स्पष्ट सकेत बाद के नौ विशेषणों से मिलता है।

उत्तरकांड (सप्तम सोपान) का नाम गोस्वामी जी ने 'अविरल हरिभक्ति सम्पादन' रखा है। वहाँ के मगलश्लोक निम्नांकित है—

केकीकण्ठाभनील, सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्य पीतवस्त्रं सरसिजनयन सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणी नाराचचाप कपिनिकरयुत बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीश रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।

कोशलेन्द्रपदकजमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्
कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शकरमनंगमोचनम् $ ।

इन श्लोकों में 'चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ' मे 'स्मरण', 'जानकीकरसरोजलालितौ' में 'पादसेवन', 'अजमहेशवन्दितौ' मे 'वन्दन', 'कपिनिकरयुतं' से 'सख्य', 'बन्धुनासेव्यमान' से 'अर्चन' इत्यादि भक्ति के प्रकारों की ओर इंगित किया गया है।

---

‡ रामचरितमानस, लकाकांड, मंगलाचरण, श्लोक १। † वही, श्लोक २, ३ और बाद का दोहा। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, मगलाचरण, श्लोक १ से ३ तक।

अतएव हमने यह स्पष्ट देख लिया कि तुलसी की वस्तुयोजना में साभिप्राय शब्दों का बड़ा महत्त्व है। हमें यह भी ज्ञात हो गया कि इन उद्धृत छः सोपानों मे उन्होंने शकर की भी स्तुति की है। अब इन दोनों आधारों को ले कर हम अरण्यकाड के मगल-श्लोकों की परीक्षा कर यह सिद्ध करेगे कि उनमे से प्रथम श्लोक ब्राह्मण की स्तुति का श्लोक न हो कर शिव की स्तुति का ही श्लोक है।

अरण्यकांड के साभिप्राय शब्दो की परीक्षा के लिए भी हम इस काड के नाम को ही आधार बनाएँगे। इस कांड का नाम गोस्वामी जी ने 'विमल वैराग्य सम्पादन' रखा है। इस नाम के अनुकूल शब्द मगल-श्लोक मे है। वह है शिव का विशेषण 'वैराग्यांबुज भास्कर' ‡। इस स्तुति के बाद ही राम की निम्नाकित स्तुति है—

सान्द्रानदपयोदसौभगतनु पीतावर सुन्दर
पाणौ बाणशरासन कटिसत्तूणीरभार वरम्
राजीवायतलोचन धृतजटाजूटेन सशोभित
सीतालक्ष्मणसयुत पथिगत रामाभिराम भजे † ।

यहाँ 'धृतजटाजूटेन सशोभितम्' विमल वैराग्य का लक्षण है। पत्नी और भाई को साथ ले कर, सब राजकीय सुखों का विसर्जन करके मुनिवृत्ति स्वीकार कर लेना विमल वैराग्य का लक्षण है। जगज्जीवन के बीच मे रहते हुए जो अनासक्तिपूर्ण प्रवृत्ति मनुष्य मे रहती है वही विमल वैराग्य का लक्षण है।

इन अभिप्राययुक्त शब्दों के आधार पर जब 'मूल धर्मतरो. $' से प्रारम्भ होने वाले तृतीय सोपान के मगल श्लोक की हम परीक्षा करते है तब हमे यह बात स्पष्टतः ज्ञात हो जाती है कि श्लोक शिव की स्तुति के लिए ही लिखा गया है। इस सोपान के प्रारम्भ का ही शिव के द्वारा कहा हुआ सोरठा निम्नाकित है—

उमा रामगुन गूढ़ पडित मुनि पावहि बिरति।
पावहि मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धरमरति * ।

इस सोरठे मे 'पडित,' 'बिरति', 'मोह' और 'धरम' शब्द सार्थक है। शिव की स्तुति मे गोस्वामी जी ने उन्हे 'मूल धर्मतरो.',§ 'विवेक जलधेः पूर्णेन्दु', × 'वैराग्याबुज-भास्कर' + और 'मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ श्वास' ✱ कहा है। इन चारों विशेषणों की सार्थकता गोस्वामी जी ने शिव की एक ही उक्ति से सिद्ध कर दी है। उपर्युक्त सोरठे मे शकर का ध्यान विवेक, विरति (वैराग्य), मोह और धर्म इन चारों वस्तुओं पर पडा है। 'पडित', 'बिरति', 'मोह' और 'धरम' शब्द क्रम से इन चारों की सूचना देते है। जिस बुद्धि मे सत् और असत् का विवेक पैदा हो जाता है उसे पडा कहते है। यह पंडाबुद्धि जिसे प्राप्त हो जाती है वही पंडित कहलाता है। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेक,

---

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, मगलाचरण, श्लोक १। † रामचरितमानस, अरण्यकाड, मंगलाचरण, श्लोक २। वही, श्लोक १। * वही, मगलाचरण के बाद का सोरठा। § वही, श्लोक १। × वही। + वही। ✱ वही।

वैराग्य, मोह और धर्म से सम्बन्ध रखने वाले विशेषणों को स्तुति में शिव के लिए दे कर गोस्वामी जी ने शिव के व्याख्यान के प्रारम्भ ही मे उनका ध्यान इन चारों की ओर आकर्षित दिखाया है। इस कारण से भी हमे यह विश्वास हो जाता है कि स्तुति शकर की ही है, ब्राह्मण कुल की नही। मानस का अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करते समय ग्राउज़ को इस श्लोक मे एक स्वाभाविक भ्रम रह गया है। यह भ्रम इसलिए भी हुआ कि 'श्रीरामभूपप्रियम्' ‡ विशेषण भी धोखा देने के लिए श्लोक मे बैठा है। ब्रह्मकुल रामभूप को प्रिय है, पर शकर भी रामभूप को उससे कम प्रिय नही है। अब शकर के साथ इस 'ब्रह्मकुल' † शब्द की सार्थकता पर विचार किया जाए।

महाभारत के आदिपर्व के अध्याय ६६ के प्रारम्भ मे वैशम्पायन ने जनमेजय को बताया है कि ब्रह्मा के छः मानसपुत्रों के अतिरिक्त एक स्थाणु नामक पुत्र भी थे। उस स्थाणु के ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। वही प्रतापी एकादश रुद्र है। उनके नाम मृगव्याध, साम्ब निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग थे। ये एकादश रुद्र शिव के ही स्वरूप है। ये रुद्र ब्रह्मा के कुल के थे, इसीलिए गोस्वामी जी ने शंकर की स्तुति मे उन्हे ब्रह्मा के कुल का मान लिया है।

अतएव हर दृष्टि से विचार करने पर सिद्ध यही होता है कि अरण्यकाड के प्रथम मंगल श्लोक मे शिव की ही स्तुति की गयी है, ब्राह्मण कुल की नही। अत श्री एफ्० एस्० ग्राउज०, सी० आई० ई० का 'वन्दे ब्रह्मकुल' $ का अनुवाद —"आइ रेवेरेन्स दि ब्राह्मनिक रेस" ठीक नही है। "आई रेवेरेन्स शकर, ऑफ दि फेमिली ऑफ़ ब्रह्मा" अनुवाद का ठीक स्वरूप होता।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद अब यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० मैकनिकॉल का भ्रम भी स्वाभाविक था। पर उनके द्वारा किया गया तुलसी पर आक्षेप तो आधार-रहित होने से नही बच सकता और यह बात हमने पहले ही सिद्ध कर दी है कि तुलसी के द्वारा किया गया ब्राह्मणों का सम्मान किस प्रकार उचित था। पक्षपातरहित हो कर ब्राह्मण-गुणों का ही सम्मान तुलसी ने किया था केवल ब्राह्मण-जाति का ही नही।

श्री ग्राउज़ के अनुवाद मे कमी रह जाने के कारण डा० मैकनिकॉल को एक बार और धोखा खाना पड़ा है। भ्रान्ति के उस अन्धकार मे मार्ग भूल जाने के कारण उन्होंने तुलसीदास की भक्ति के लिए कहा है—

"इट इज़ समव्हाट विस्टफुल सेन्स ऑफ़ नीड दैट क्रियेट्स दिस थीइज्म, नॉट येट दि एश्योरेन्स ऑफ़ ए डीप कनविक्शन। सो इट इज़ डिक्लेयर्ड ऑफ़ ए ग्रेट सेज हू हैज़ फॉलोड दि पाथ ऑफ डिवोशन दैट ही वाज़ नॉट एब्जॉर्ब्ड् इनटु दि डिविनिटी फ़ॉर दिस रीज़न दैट ही हैड ऑलरेडी रिसीव्ड दि मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ़ फेथ (भक्ति) *"

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, मंगलाचरण, श्लोक १। † वही। $ रामचरितमानस, अरण्यकांड, मंगलाचरण, श्लोक १। * इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११९, पक्ति ७ से ११ तक।

अनातोले फ्रांस के इस कथन में सजीवता है। वे मनुष्य को एक सौम्य, सात्त्विक तथा गत्यात्मक परामर्श देते है।

सैमुएल लवर ने परिस्थितियों की शक्ति पर निम्नांकित प्रकार से अपना मत व्यक्त किया है—"सरकम्स्टैन्सेज़ आर दि रूलर्स ऑफ दि वीक; दे आर बट दि इंस्ट्रूमेंट्स् ऑफ दि वाइज़ ‡।" 'परिस्थितियाँ दुर्बल पर ही शासन करती है, पर बुद्धिमान के हाथ में तो उन्हें एक जड यन्त्र की तरह ही रहना पड़ता है।' सैमुएल लवर ने भी परिस्थितियों को एक दार्शनिक की आँखों से देखा है। वे उस शक्ति पर भी विश्वास करते है जो मनुष्य के चरित्र मे रह कर परिस्थितियो पर शासन कर सकती है।

नेपोलियन ने कहा है—'परिस्थितियाँ, मै परिस्थितियों को बनाता हूँ †'। नेपोलियन की यह उक्ति एक दार्शनिक की नही, अभिमान से भरे हुए एक योद्धा की है।

बहुजन्मवादी भारत ने इन परिस्थितियो पर बडी गम्भीरता से विचार किया है। एकजन्मवादी यूरोप ने परिस्थितियों को मनुष्य से पृथक् एक शक्ति की धारा माना है। वह इसलिए कि जन्म मे ही ये उसे घेरे रहती है। किसी यूरोपीय विचारक ने उनसे पराजय स्वीकार नही भी की है, तब भी वह एकजन्मवादी होने के कारण इन परिस्थितियों को एक पृथक् शक्ति प्रवाह मानने को बाध्य है। वह यह विचार ही नही सकता कि जन्म के समय से मनुष्य के साथ परिस्थितियों के स्वाभाविक सम्बन्ध का कोई ऐसा भी कारण हो सकता है जो जन्म के पूर्व का है। इन परिस्थितियों को वह प्राय अकारण-प्राप्त ही मानता है।

भारत बहुजन्मवादी है। परिस्थितियो के कारणों को वह पूर्व के अनत जीवनों का परिणाम मानता है और परिस्थितियों से घबराता नहीं। वह उन्हें स्वयसभवा न मान कर आत्मजा मानता है। वह यही समझता है कि अपने भले या बुरे कर्मो के द्वारा ही अपने लिए अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों का जन्मदाता वह स्वय बनता है। ये परिस्थितियाँ उसी ने पैदा की है और जिस तरह अपनी बोयी हुई फसल को अकुरित और विकसित होते हुए देख कर कृषक प्रसन्न होता है उसी तरह अपने कर्मो के विकास के रूप मे फैलने वाली अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को देख कर उसे उल्लसित और निराश नही होना चाहिए। उसे एक तटस्थ दर्शक या वैज्ञानिक की तरह उसके विकास की प्रक्रिया के अद्भुत स्वरूप को चिन्तन मे देख कर बौद्धिक आनद मे मग्न हो जाना चाहिए; उस आनद में, जो हृदय को बुद्धि अपने चिन्तन के द्वारा देती है।

भारतीय दार्शनिकों ने केवल इस निष्क्रिय आनद मे ही जनता को मग्न होने का आदेश नही दिया है; आगे के कर्तव्यों की ओर भी बढने के लिए कहा है। पर उन्होंने फल की ओर से अनासक्त हो जाने को कहा है। अनासक्ति से सुखदुख के भोगों में चक्कर काटने का कार्य बन्द हो जाता है और यही जीव की मुक्ति है। 'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् $' गीता की यह उक्ति इसी बात की घोषणा करती है कि परिस्थितियों

‡ डिक्शनरी ऑफ थॉट्स, पृष्ठ ८२। † डिक्शनरी ऑफ थॉट्स, पृष्ठ ८३। $ गीता, अध्याय ६, श्लोक ५।

पर विजय प्राप्त करके मनुष्य स्वय अपना उद्धार कर सकता है। अनिवार्य और दुःखपूर्ण परिस्थितियों से प्रभावित न हो कर वह उन्हे निष्क्रिय कर सकता है तथा सुखद परिस्थितियों का भी अनासक्ति से उपयोग करके जगज्जीवन मे अपना कर्तव्य कर जाता है, पर अनासक्त रहने के कारण पुण्य कर्म उसके लिए भावी जन्म के सुखभोग की सृष्टि भी नही कर सकते।

भक्तो ने और चिन्तनशील दार्शनिकों ने भी इन परिस्थितियों को विराट् सौन्दर्य के दृष्टिकोण मे देखा है। आदर्श परिस्थितियाँ जगत् के बीच मगल का विधान और विकास करने का वातावरण व्यक्ति के लिए बना कर रखती है। इनसे आनन्द की वृद्धि होती है। अधोगामी स्वार्थमय प्रवृत्तियों को ले कर चलने वाली प्रवृतियाँ दुख और अमगल की सृष्टि के लिए वातावरण प्रस्तुत करती हैं। सच्चिदानन्द का आनन्दस्वरूप आदर्श चित्त (आदर्श-चेतना) तथा उसी के परिणाम आदर्श सत् (आदर्श अस्तित्व या परिस्थितियों) के निर्माण से होता है। आदर्श चेतना, आदर्श परिस्थितियों का निर्माण तथा उनके आधार पर पैदा हुए आनद का वातावरण जगत् में फैल जाता है तब भक्त हृदय को जैसे चारों तरफ सच्चिदानन्द के सगुण-निर्गुण रूप की उपलब्धि होती रहती है। रामराज्य और ईश्वरीय जीवन इसी वातावरण को कहते है। इस वातावरण का जब ह्रास होने लगता है तब जैसे भगवान् का स्वरूप भक्त की आँखो के सामने से ओझल होने लगता है। तब इसी स्वरूप का जगत् के बीच मे दर्शन करने के लिए वह आदर्शों का प्रचार करने मे दत्त-चित्त हो जाता है। पवित्र जीवन का यह प्रचार ही उसकी रामभक्ति है।

डा० मैकनिकॉल ने जिस आवश्यकता की ओर इशारा किया है वह स्वार्थसिक्त निम्न श्रेणी की आवश्यकता नहीं है। वह परमार्थ की सिद्धि करने वाली आवश्यकता है। वह ऐसी परिस्थिति है जिसे देख कर भक्त का हृदय भगवान् का, सच्चिदानन्द का, उसके आदर्शों का लोक-जीवन के भीतर दर्शन करने के लिए व्यथित होता है। तभी उसके भीतर से राम के चरित्र का समुद्र उमड पडता है और जगत् भर को आप्लावित कर लेता है। उसकी पवित्रता का क्षीर-समुद्र जब जगत् की आसुरी प्रवृत्तियों का वातावरण और पवित्र जीवन के मनोरथ मिल कर मथ डालते है तब जीवन के आदर्शों की लक्ष्मी (सौन्दर्य) और जीवन की व्याधि (शील का ह्रास) के लिए धन्वन्तरि (पवित्र विचारों के रत्न) इत्यादि रत्न पैदा हो जाते है। इसी मथन मे इन्द्र को श्वेत ऐरावत, ससार के शासकों को पवित्र शासन-नियम (शासन के वाहन) मिलते है। यही मथन ज्ञान का दूध पिलाने वाली सुरभि को जन्म देता है। यह वही बुद्धि है जो पवित्र ज्ञान का उज्ज्वल दूध पिला कर सब इच्छाओं की पूर्ति कर देती है। पवित्र हृदय के इसी मथन के भीतर से ज्ञान का और प्रेम का कौस्तुभ पैदा होता है जो नारायण (उदार व्यक्ति) के हृदय को आलोकित करता है। इसी हृदय के प्रभाव मे तलवार, बाण और गदा में तामसी सहार शक्ति नही रहती, वरं विश्व रक्षा के लिए प्रवृत हो कर ये शक्तियाँ रत्न के नाम से घोषित होती है। इस वातावरण मे जीवन के सब भाव रत्न हो जाते है, ज्ञान के प्रकाश से चमक उठते है। जब कवि का मानस रामचरित से आलोकित हो उठता है तब उसमें इतनी शक्ति पैदा

प्रायः आवश्यकता के उत्सुकतापूर्ण ज्ञान ने इस भक्ति को जन्म दिया। इसमे गम्भीर विश्वास के प्रमाण नही मिलते। एक बहुत बडे ऋषि के विषय मे, जिन्होंने भक्तिमार्ग का अनुसरण किया था, मानस मे कहा गया है कि "वे भगवान् मे इसी कारण लीन नही हुए कि उन्होने पहले ही अचिन्त्य गुप्त भक्ति का वरदान ले लिया था।"

यह मत भी अरण्यकाड (तृतीय सोपान) की एक घटना के आधार पर बनाया गया है। यह बात सरभंग ऋषि के लिए कही गयी है। विराध का उद्धार करके राम सरभग ऋषि से मिले। इस सम्बन्ध मे गोस्वामी जी की कुछ पक्तियाँ निम्नाकित है—

देखि राम-मुख-पकज मुनिवर लोचन भृग।
सादर पान करत अति धन्य जनम सरभग।
कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला। सकर-मानस-राज-मराला।
जात रहेउँ बिरचि के धामा। सुनेउँ स्रवन बन अइहहि रामा।
चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुडानी छाती।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलउँ तुम्हहि तनु त्यागी।
जोग जग्य जपु तपु जत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।
इहि विधि सर रचि मुनि सरभगा। बैठे हृदय छाँडि सब संगा।
सीता अनुज-समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरतर सगुनरूप श्रीराम।
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। रामकृपा बैकुठ सिधारा।
ताते मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहि भेद-भगति-बर लयऊ ‡।

विद्वान् डा० मैकनिकॉल का पहला आक्षेप यही है कि तुलसी मे, ईश्वरभक्ति के भीतर जो गम्भीर विश्वास आवश्यक होता है, उसके प्रमाण कम मिलते है। तुलसी के भीतर भक्ति का सच्चा प्रकाश नही है। ससार को आदर्शो की जरूरत है; इसीलिए उन आदर्शो को ईश्वर के भीतर रख कर वे जगत् के भीतर प्रचारक की तरह काम करते है। जगत्-जीवन को सुधारने की उत्कट अभिलाषा ही उनकी भक्ति मे प्रधान है, ईश्वरीय प्रेम की गहराई और उसके अस्तित्व पर अचल विश्वास गौण हो कर ही तुलसी की भक्ति मे स्थान पाते है। इनका अस्तित्व केवल इन्ही के लिए ही नही है; केवल जगत् की आवश्यकता के लिए है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तुलसी ने भक्ति को केवल बहाना बनाया है।

डा० मैकनिकॉल के सक्षिप्त आक्षेप का कुछ अधिक विश्लेषित रूप ऊपर रखा गया है। तुलसी-साहित्य को सामने रख कर इस आक्षेप की परीक्षा करनी चाहिए। ससार में मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय के भीतर जितने भाव-कम्पन और विचार-कम्पन पैदा होते है, वे सब जरूरत के लिए ही। विराट् अस्तित्व परिस्थितियो को इस प्रकार परिचालित करता है कि विचारवान् और विवेकी मनुष्य के भीतर उनके अनुकूल या

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ७ से ले कर दोहा ८ के बाद तक।

प्रतिकूल लहरे पैदा होती है, पर ये अनुकूल और प्रतिकूल—दोनों प्रकार की लहरें प्रारम्भ और परिणाम मे समान स्वभाव वाली ही होती है। परिस्थिति यदि गिरावट और अधर्म की है तो आदर्श की लहरे उसके प्रतिकूल चल कर जीवन के भीतर धर्म को सृष्टि करती है। यदि परिस्थिति धार्मिक और ऊर्ध्वगामिनी है, तो विवेकी मनुष्य के भीतर अनुकूल आदर्शों के कम्पन पैदा हो कर धर्म का विकास करते है। जगज्जीवन के भीतर आदर्शों के आरम्भ और विकास की यही प्रक्रिया होती है। विवेकी मनुष्य आदर्श परिस्थितियों का उपयोग करता है, आदर्श के विकास के लिए। मानवता के स्तर से निम्न श्रेणी की परिस्थितियाँ अपने भीतर और जगत् के भीतर जब विवेकी को दिखाई पड़ती है तब आदर्श के प्रकाश से गिरावट के अन्धकार को दूर करने के लिए वह जागरूक हो जाता है।

एक जन्मवादी होने के कारण यूरोप के विचारको ने इन परिस्थितियों को उतनी गहराई से नही सोचा है जितनी गहराई से भारत के दार्शनिकों ने इन पर विचार किया है। ह्यूम ने परिस्थितियों पर विचार करते हुए कहा है—"ही इज़ हैपी हूज़ सरकम्स्टैं-न्सेज़ सूट हिज़ टेम्पर; बट ही इज मोर एक्सेलेंट हू कैन सूट हिज टेम्पर टु एनी सरकम्स्टैन्सेज।" 'जिसकी परिस्थितियाँ उसके स्वभाव के अनुकूल होती है, वह सुखी रहता है; पर वह अधिक धन्य है जो अपनी चित्तवृत्ति को किसी भी परिस्थिति के अनुकूल बना ले ‡।' चित्तवृत्ति को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की जो वात ह्यूम ने कही है वह गोस्वामी जी के 'यथालाभ सन्तोष' † के समान ही है। ह्यूम और गोस्वामी जी के ये कथन परिस्थितियों पर मानव के विजय की सूचना देते है।

बाइरन ने कहा है—"मेन आर दि स्पोर्ट ऑफ सरकम्स्टैन्सेज़ व्हेन दि सरकम्-स्टैन्सेज़ सीम् दि स्पोर्ट ऑफ मेन $।" बाइरन यहाँ निराशावादी दिखाई पड़ते है। उनका यह कथन कि जब परिस्थितियाँ मनुष्य को खिलौनों की तरह दिखाई पडती हैं तब मनुष्य ही परिस्थितियो के हाथ का खिलौना बना रहता है, मनुष्य को परिस्थितियों का दास स्वीकार कर लेना है। इस कथन को यदि अन्तिम सत्य मान लिया जाए तो भारतीय दर्शन का मुक्ति का सिद्धान्त ही व्यर्थ हो जाएगा। पर बाइरन का यह दृष्टिकोण, जिसने यूरोप तथा उसकी नक़ल पर भारत के भी साहित्यिक चिन्तन के स्तर को वर्तमान काल के कुछ कलाकारों के भीतर बहुत हलके दर्जे पर ला कर छोड़ दिया है, अन्तिम सत्य नही है। मानवता का अन्तिम परिणाम परिस्थितियों की दासता नही है।

अनातोले फ्रांस ने कहा है—"वन मस्ट फॉलो सरकम्स्टैन्सेज़, यूज़ दि फ़ोर्सेज़ एबाउट अस, डू इन ए वर्ड व्हाट वी फाइंड टु डू *।" 'मनुष्य को परिस्थितियों का अनुसरण अवश्य करना चाहिए, उसे अपने चारों तरफ़ की शक्ति-धाराओं का उपयोग करना चाहिए और जो कर्त्तव्य उसके सामने आये उसे सद्यः पूर्ण कर लेना चाहिए।'

‡ डिक्शनरी ऑफ़ थॉट्स, पृष्ठ ८२। † विनयपत्रिका, पद १७२। $ डिक्शनरी ऑफ़ थॉट्स, पृष्ठ ८२। * वही।

इस प्रकार की मुक्ति से सरभग विष्णु मे लीन न हो कर उनके लोक बैकुठ चले गये। पता नही क्यों ग्राउज महोदय ने 'भेद-भगति-बर' का अनुवाद 'मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ फेथ' किया, क्योंकि अग्रेजी के इन्ही शब्दो पर अनुवाद की टिप्पणी मे वे लिखते है—

"दि रिवार्ड ऑफ़ फेथ (भक्ति) इज दि ऐडमिशन टु दि ऐक्चुअल प्रेजेन्स ऑफ दि डिविनिटी इन दि स्फीयर व्हेयर ही स्पेशली रेन्स्। ऐबजॉरबंशन इन्टु दि डिविनिटी इम्प्लाइज दि एक्सटिंक्शन ऑफ दि इन्डिविजुअल एग्जिसटेन्स् ऐण्ड इन्डिविजुअल कौन्शस्नेस, एड देयरफ़ोर, दो दि समम् बोनम् ऑफ मेनी हिन्दू सेक्ट्स्, इट इज़ नॉट सो ऑफ दोज़ हू चेरिश ए पर्सनल लव फ़ॉर एनी पर्टीकुलर इन्कारनेशन, ए लव व्हिच कैन ओन्ली बी सैटिस्फाइड बाई ए कॉन्शस्नेस ऑफ दि प्रेजेन्स ऑफ़ दि बिलवेड ‡।"

"भक्ति का वरदान उपास्य के विशेष शासन मे रहने वाले लोक मे उसके सम्मुख रहने की अनुमति है। उपास्य मे लीन होने मे वैयक्तिक अस्तित्व और वैयक्तिक चेतना का लोप हो जाता है, और इसीलिए यद्यपि यह अवस्था बहुत से हिन्दू सम्प्रदायों मे परम मगलमयी मानी जाती है, पर किसी अवतार के लिए वैयक्तिक प्रेम की अभिलाषा रखने वाले की यह स्थिति नही रहती। यह प्रेम तो उसी अवस्था मे सन्तुष्ट रहता है जब उपासक के भीतर उपास्य के अस्तित्व की, प्रिय की उपस्थिति की चेतना बनी रहती है।"

ऐसा मालूम पडता है कि श्री ग्राउज ने 'भेद भगतिबर' का तो पूरा अर्थ न समझ कर उसका अनुवाद 'मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ फेथ' कर दिया, पर 'लीन न भयऊ' का ठीक अर्थ समझने के कारण और 'रामकृपा बैकुठ सिधारा' को भी साथ ले कर उन्होंने टिप्पणी मे कुछ ऐसे शब्द लिखे है जो उनके अनजान मे 'भेद-भगति-बर' का अभिप्राय व्यक्त कर देते है। भक्त की यह स्थिति ग्राउज़ महोदय को भक्ति-सम्प्रदाय के ग्रथो मे मिल गयी होगी, पर 'भेद भगति' पर उनका ध्यान ठीक तरह से न जम सका।

डा० मैकनिकॉल ने इसी तरह के अनुवाद का सहारा ले कर गोस्वामी जी के लिए कहा है कि उनकी भक्ति मे गम्भीर विश्वास की कमी है। उन्होंने सबल परिस्थितियों की शक्ति को स्वीकार करके अपनी भक्ति को किसी प्रकार उनके भीतर बिठाया है। युग-युग से चली आती हुई ग्राम्य-प्रवृत्तियों के सबल प्रभाव को वे न टाल सके, उन्ही के भीतर अपनी भक्ति को किसी तरह निबाहा है †।

डा० मैकनिकॉल के कहने का तात्पर्य यही है कि सर्व शक्तिवान् के प्रति जो विश्वास और प्रबल प्रेम, ससार की सब निम्न श्रेणी की विचार धाराओं को लाँघ कर उनसे ऊपर उठ कर सब भेदों के परे उस प्रेम के आनन्द मे मग्न होता है वह तुलसीदास जी मे नही है। ऐसा मालूम पड़ता है कि राजा राम के प्रति सगुण भक्ति तथा बहुत से देवताओं के प्रति झुकाव के भीतर अतीतकाल के सब ग्राम्य देवताओं के प्रति तुलसी का

---

‡ दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास, एफ्० एस्० ग्राउज़ द्वारा अनूदित पृष्ठ ४०६ की पाद टिप्पणी। † इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११९, पक्ति १२ से १४ तक।

आत्मसमर्पण ही डा० मैकनिकॉल को दिखाई पडता है। वे तुलसी के भीतर एकेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की भावना और उनके प्रति उनके हृदय का विश्वास और प्रेमनिवेदन नही देख पाते। उनके अनुसार सगुण की कल्पना ही ग्राम्य और पिछडी हुई निम्न श्रेणी की चेतना का और धारणाशक्ति का परिणाम है। पर 'सियाराममय सब जग' ‡ की अनुभूति कर लेनेवाला साधक इस श्रेणी मे नही आ सकता और इस सीताराम के लिए भी 'कहियत भिन्न न भिन्न' † की धारणा रखने वाला भारत का वह साधक एक ही चिरन्तन सत्य को जगज्जीवन के भीतर अवतीर्ण होता हुआ देख रहा था इसमे भी कोई सन्देह नही।

अब रही बात बहुदेववाद की। इसमे दो मत हो सकते है। चेतना के उच्चस्तर पर पहुँचा हुआ मानव व्यक्त जगत् के अनत रूपों के भीतर उस परम सत्य का दर्शन करके उसी को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारता है और निम्न स्तर की चेनना से कम विकसित मानव उन नामों के भीतर छिपी हुई गहराई और ऊँचाई को न समझ सकने के कारण अपनी भावना का रग चढा कर इन नामो की ओर इन शक्ति-केन्द्रों को अपनी बुद्धि और अपने हृदय के विकास के स्तर पर उतार लाता है। यह एक पक्ष हुआ। 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन: स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते' $ यह गीता का सिद्धान्त है। श्रेष्ठ पुरुषों के देशो मे नदी कभी उलटी नही बहती। श्रेष्ठ के आचरण का मामूली लोग अनुसरण करते है तथा अपनी योग्यता के अनुसार उसे विकृत भी कर लेते है। इसी विकार को दूर करने के लिए श्रेष्ठ लोगो का फिर से अवतार होना है। श्रेष्ठो के द्वारा कही हुई बातो मे ग्रामीण लोग विकार पैदा कर देते है। उन विकारो का नाश करने के लिए अपनी ही श्रेणी के लोगो के द्वारा उच्चरित नामों के खोये हुए महत्त्व को दूसरे युग के श्रेष्ठ पुरुष उन्हे फिर से दे देते है। ऐसी स्थिति मे यह कहना कि उन पर ग्रामीण प्रभाव पड़ गया, ठीक नही है। भारत के समान दर्शन-प्रधान देश मे ग्राम की गिरावट का प्रभाव श्रेष्ठ पुरुषो पर नही पड़ता। किसी ऐसे देश मे जहाँ का दार्शनिक चिन्तन इतना ऊँचा और गहरा न हो, ऐसा होना सभव है। वहाँ के लिए इस उलटे प्रभाव के सिद्धान्त का विरोध नही किया जा सकता।

तुलसी की भक्ति साधना मे भगवान् पर पूर्ण विश्वास का अस्तित्व है। डा० मैक-निकॉल महोदय ने तुलसी के भीतर जो गम्भीर विश्वास की कमी देखी है उसका कारण है ग्राउज महोदय के 'ताते मुनि हरि लीन न भयऊ' * के अनुवाद के एक दूसरे सभावित अर्थ को समझ लेना। इसका अनुवाद श्री ग्राउज ने "दि सेज वाज नॉट ऐब्जॉर्ब्ड इनटु दि डिविनिटी" कह कर ठीक ही किया है। 'ऐब्जॉर्ब' का अर्थ होता है—स्वालो अप, इनकॉरपोरेट, एनग्रॉस दि अटेन्शन ऑफ, सक इन, टेक इन।" सायुज्य मुक्ति का अंगरेजी मे अर्थ होगा—"इन्टिमेट यूनियन, आइडेन्टिफिकेशन, ऐब्जॉर्ब्शन—स्पेशली इन्टु ए डीटी।"

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ७ के बाद। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १८।
$ गीता, अध्याय ३, श्लोक २१। * रामचरितमानस, अरण्यकाड, दोहा ८ के बाद।

हो जाती है कि अपने चारों तरफ़ राम की सृष्टि करके वह उनके सौन्दर्य का दर्शन करने लगता है। तब वह कहने लगता है—"सूझहि रामचरित मनिमानिक, गुपुत प्रगट जह जो जेहि खानिक ‡।"

डा० मैकनिकॉल की दृष्टि 'आवश्यकता के औत्सुक्यपूर्णज्ञान' 'विस्टफुल सेंस ऑफ नीड †' की तरफ तो गयी, पर उसी ज्ञान के भीतर भक्तों की इस लगन की ऊँचाई को वे न देख सके। राम के प्रेम से आलोकित हृदयों ने तुलसी के भीतर रामप्रेम का दीपक जलाया था। इस दीपक मे स्नेह अधिक और इसकी बत्ती बडी अच्छी थी। इसीलिए इसका प्रकाश बडा विस्तृत हुआ। आदर्श शक्ति, आदर्श शील और सौन्दर्य के भीतर भगवान् के दर्शन करने की जो योजना तुलसी ने बनायी उसको डा० मैकनिकॉल ने मामूली आवश्यकता की पूर्तिमात्र मान लिया। जगज्जीवन के बीच सच्चिदानन्द की झाँकी विकसित करने का जो प्रयास वेद, उपनिषद् तथा पुराण काल के ऋषियों ने किया, जो पवित्र प्रयत्न मध्यकाल के संतो ने तुलसी के ही युग मे किया, वही सफल प्रयत्न तुलसी का भी है। वस्तुत उनमे और कबीर मे कोई अन्तर नही। इसकी सूचना 'भगतिहिं ज्ञानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भवसभव खेदा $।' कह कर उनके कागभुशुंडि ने दे दी है।

मनुष्य के हृदय के भीतर जिस रामराज्य की स्थापना गोस्वामी जी करना चाहते थे उसी की स्थापना का प्रयास कर्मयोगी महात्मा गान्धी जी ने और ज्ञानयोगी महात्मा अरविन्द ने किया।

इस प्रकरण मे हमने कर्म की चर्चा की है। ईसाइयत के भीतर भक्ति के क्षेत्र मे भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता ही मुख्य समझी जाती है। डा० मैकनिकॉल को यह अनुभव हुआ कि कर्म की यह शक्ति जीव की नियति पर असीम नियन्त्रण रखने के कारण सर्वशक्तिमती हो जाएगी और इसके सामने भगवान् की शक्ति नगण्य हो जाएगी और भक्ति का मूल आधार ही समाप्त हो जाएगा। सर्वशक्तिवान् भगवान् को केन्द्र बना कर चलने वाली भक्ति समाप्त हो जाएगी—उस केन्द्र के अशक्त हो जाने पर *। लेकिन यह बात भारतीय भक्ति के लिए नही कही जा सकती। यहाँ कर्म को प्रधानता दी गयी है, पर इस प्रधान कर्म के ऊपर राम रहता है। भगवान् ही इन कर्मो का फल देने वाला, इन कर्मो के स्वभाव के अनुसार इनके परिणामो के स्वभाव का निर्माण करने वाला सर्वतन्त्रस्वतन्त्र शक्ति है। अतएव इन कर्मो के परिणामो के भीतर—चाहे यह सुखद हो या दुखद—भारतीय भक्त प्रिय के हाथो का दर्शन कर अलौकिक आनन्द में मग्न हो जाता है और इन परिणामों को रोक देने के लिए ईश्वर से, उस प्रिय से प्रार्थना करता है। उसकी भक्ति तो इस सबल कर्म पर अपने प्रभु के हाथों को देख कर और उल्लास-दायिनी बन जाती है और तुलसी के समान साधक आनन्द के अतिरेक मे कह उठता है

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा १ के पहले। † इडियन थीइज्म, पृष्ठ ११९ पक्ति ७। $ रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा ११४ के बाद, पक्ति १३। * इडियन थीइज्म पृष्ठ १०८, अंतिम ९ पक्तियाँ।

कि क्या हुआ कि कलिकाल ने हमें घेर रखा है। हमारे राम से वह बड़ा नही। वह तो उसी का अनुचर है। मुझे उसी परम सुन्दर, परम शक्तिवान् पुरुषोत्तम का सहारा मिला है, "बड़े ठेकाने ठौर को हौ" ‡, वह मेरी रक्षा अवश्य करेगा "नाम लेत भव-सिन्धु सुखाही" † कहने वाले साधक को भक्ति से अलग हट कर केवल परिस्थितियों और जरूरतों के इशारे पर नाचता हुआ कहना उचित नही प्रतीत होता। सब दृष्टियों से देखने पर तुलसी-साहित्य का अक्षर-अक्षर भक्ति के आलोक से आलोकित होता हुआ दिखाई पड़ता है। उसका हर वर्ण राम का यशोगान करके भक्त के हृदय को आनन्दविभोर करते हुए उसकी आत्मा के भीतर से पैदा होता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

तुलसी की भक्ति मे पूर्ण तदाकारता का अभाव डा० मैकनिकॉल ने इसलिए देखा है कि श्री ग्राउज़ ने पूर्वोद्धृत 'तातें मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहि भेद-भगति-बर लयऊ' $। का अनुवाद "ही वाज़ नॉट एब्जॉर्ब्ड इन्टु दि डिविनिटी फॉर दिस रीज़न दैट ही हैड ऑलरेडी रिसीव्ड् दि मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ फ़ेथ" * किया है।

यहाँ ग्राउज़ महोदय ने 'भगति-बर' का अनुवाद 'गिफ्ट ऑफ फ़ेथ' तो ठीक किया, पर 'भेद-भगति-बर' का अनुवाद 'मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ फेथ' ठीक नही हुआ। अंग्रेज़ी कोषों मे 'मिस्ट्री' का एक अर्थ 'हिडेन' होता है। हिन्दी मे भी 'भेद का एक अर्थ 'छिपा हुआ' होता है। इसी अर्थ को ले कर ग्राउज़ महोदय ने 'भेद-भगति-बर का अनुवाद मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ़ फेथ' किया है। भेद-भगति-बर का ठीक अनुवाद 'गिफ्ट ऑफ सेपरेटिंग फ़ेथ' हो सकता है। यह भक्त को भगवान् से अलग रखती है। इस भक्ति का वरदान भक्त भगवान् से इसलिए माँगता है कि अपना अस्तित्व सुरक्षित रख कर भगवान् की सगुण लीला का, जगत् के भीतर अवतीर्ण हो कर जिस आदर्श मानव चरित्र का वे प्रदर्शन करते है, उसका साक्षात्कार करके, उनकी नरझाँकी के भीतर शक्ति, शील और सौन्दर्य के अनुपम सामंजस्य का दर्शन करके आनन्दविभोर हो सके। इसी लिए सरभग ने कहा था—

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरतर सगुन रूप श्रीराम §।

मुक्ति के सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य प्रकार इसी भेदभक्ति के प्रकार है। इनमें भक्त सगुण भगवान् के लोक में जा कर, उनके समीप रह कर या उन्ही के समान रूप पा कर उनकी आदर्श लीला के आनन्द में मग्न रहता है, तथा जब-जब भगवान् का अवतार होता है तब-तब वह पृथ्वी पर जन्म ले कर उनकी आदर्श नर-लीला देखना चाहता है। इस प्रसग में भेदभक्ति के भीतर मिलने वाली सालोक्य मुक्ति सरभंग को मिली।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा बैकुंठ सिधारा ×।

‡ विनयपत्रिका, पद २२९। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४ के बाद। $ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ८ के बाद। * इंडियन थीइज्म, पृष्ठ ११९ पक्ति १०—११। § रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ८। × वही, दोहा ८ के बाद।

सरभंग ऋषि ने भेदभक्ति का वरदान प्राप्त कर लिया था, इसीलिए उनकी सालोक्य मुक्ति हुई, सायुज्य नही। सायुज्य मुक्ति में (ऐब्ज़ॉर्प्शन् स्पेशली इन्टु ए डीटी) भक्त अपने भगवान् के सगुण रूप मे समा जाता है, एकाकार हो कर अलग नही रह सकता। इस प्रकरण मे सरभग ऋषि का शारीरिक अस्तित्व अलग ही रह गया और वे बैकुठ चले गये। इसीलिए श्री ग्राउज़ ने 'मुनि हरि लीन न भयऊ' का ठीक अनुवाद "दि सेज वाज़ नॉट ऐब्ज़ॉर्ब्ड् इन्टु डिविनिटी" किया है। यहाँ डा० मैकनिकॉल ने "ऐब्-ज़ार्ब्ड्" का दूसरा अर्थ "एग्रॉन्स्ड दि अटेन्शन ऑफ" किया और यह अनुमान लगाया कि सरभग ऋषि भगवान् के ध्यान मे मग्न न हुए (लीन न भयऊ)। इस अनुमान के बाद डा० मैकनिकॉल इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस भक्ति-सम्प्रदाय मे भक्त भगवान् के ध्यान मे मग्न नही होता उसमे उनके प्रति विश्वास की गहाराई और प्रेम की ऊँचाई नही रहती। इसी स्थिति के आधार से डा० मैकनिकॉल ने सोचा होगा कि इस प्रकार की भक्ति की सभावना को स्वीकार करने वाले साधक मे भी विश्वास और प्रेम की गहराई नही हो सकती। अत सरभग के ऐसे चित्र को प्रस्तुत करने के कारण डा० मैकनिकॉल ने तुलसी के भीतर प्रेम और विश्वास से शून्य, कामचलाऊ भक्ति की कल्पना कर ली है, क्योंकि सरभग के जिस चित्र की झाँकी तुलसी ने प्रस्तुत की है उसे अनुवाद की भाषा के दोष के कारण डा० मैकनिकॉल नही समझ सके है और भ्रान्ति मे स्वय रह कर उन्होंने तुलसी को भी भ्रान्त समझ लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भेदभगतिबर लयऊ' ‡ का 'रिसीव्ड दि मिस्टीरियस गिफ्ट ऑफ फेथ' † अनुवाद भी डा० मैकनिकॉल को भ्रम की ओर ले गया है। अँगरेज़ी में 'मिस्ट्री' का एक अर्थ होता है—'एनीथिंग आर्टफुली मेड डिफिकल्ट' 'ए रूड मेडीव्हल ड्रामा फाउन्डेड ऑन दि हिस्टॉरिकल पार्ट्स ऑफ दि बाइबिल ऐण्ड दि लाइव्ह्ज़ ऑफ़ दि सेन्ट्स!' अँगरेज़ी के मध्यकालीन भोंडे धार्मिक नाटकों पर ग्रामीण प्रभाव पड़ा होगा और उनमे बाइबिल के ऐतिहासिक अश और सतों के जीवन विकृत हुए होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मिस्टरी' के इस अर्थ को ले कर भी जीवन की गहराई मे उतरे हुए गोस्वामी जी के समान साधक के भीतर ग्रामीण अज्ञान और उथलापन डा० मैकनिकॉल ने देखा है। 'एनीथिंग आर्टफुली मेड डिफिकल्ट' के आधार पर उन्होने सोचा होगा कि भाव-प्रचुर तन्मयता की अवस्था मे हृदय, प्रेम के माधुर्य मे इतना विभोर हो जाता है कि बुद्धि से पैदा होने वाली कारीगरी वहाँ टिक ही नही सकती। वहाँ तो विगलितवेद्यान्तर प्रेमरस का ही आनन्द रहता है; कला की कल्पना के बौद्धिक, दुरूह और जटिल तथा भड़कीले चित्र वहाँ पैदा ही नही हो सकते। वहाँ तो कारीगरी की ओर ध्यान ही नही जाता। अपनी इस प्रकार की धारणा के वातावरण मे डा० मैकनिकॉल ने श्री ग्राउज़ के 'मिस्टीरियस फ़ेथ' शब्द का यह अर्थ लगा लिया होगा की सरभंग प्रकरण में भक्ति का प्रदर्शनमात्र है। वहाँ का वातावरण बौद्धिक-कल्पना-प्रसूत है अतः उसमे विश्वास और प्रेम की गहराई नही है। इसी आधार पर तुलसी के प्रति उनका यह भ्रम बना होगा कि

‡ रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा ८ के बाद। † दि रामायण ऑफ तुलसीदास, एफ्० एस्० ग्राउज़ का अनुवाद, पृष्ठ ४०६, पक्ति १ और २।

तुलसी मे भी विश्वास और प्रेम की गहराई नही है; केवल बुद्धि की चतुरता से उन्होंने परिस्थितियों के ढाँचे में अपनी भक्ति को बिठाने का प्रयत्नमात्र किया है और प्रयत्न की दशा सिद्धावस्था नही होती, साधनावस्था ही होती है । इस साधनावस्था में प्रयत्न की जटिलता ही होती है, प्रेम और विश्वास के दर्शन के बाद की तन्मयता, विभोरता और सहज सरलता नही ।

यह बात पहले ही बतायी जा चुकी है कि अभाव की प्रतिकूल परिस्थितियों मे, अध्ययन-सामग्री की अपूर्णता के कारण डा० मैकनिकॉल के सामने जटिलता और कठिनाइयाँ अधिक थीं, इसीलिए गोस्वामी जी के सम्बन्ध मे वे ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचे। यदि उन्हे नागरी लिपि और अवधी भाषा का ज्ञान होता तो उन्होंने तुलसी के सम्बन्ध मे यह निर्णय न किया होता । लेकिन खोजी मस्तिष्क सत्य की झलक तो पा ही जाता है । कठिनाइयों के बादलों के भीतर से भी सत्य के सूर्य का प्रकाश चाहे वह क्षीण ही क्यों न हो, उसे मिलता अवश्य है । यह मन्द ज्योति डा० मैकनिकॉल को भी मिली, क्योंकि इन आक्षेपों के बाद ही उन्होंने कहा है—

"ऐट दि सेम टाइम मैन इज़ सेड टु बी 'इन गॉड्स हैन्ड्स' । हिज़ हू इज़ ऐटवन्स 'इनऐक्सेसिबिल ऐण्ड ऐक्सेसिबिल', हू, इनस्पाइट ऑफ़ ऑल दीज़ राइव्हल प्रिंसिपैलिटीज़ ऐण्ड पावर्स', इज कनसीव्ड टु बी इन सम रीयल सेन्स गॉड् ओवर ऑल । 'ब्रह्मा, विष्णु एण्ड शिव, दि सन, दि मून, दि गार्जियन ऑफ़ दि स्फीयर्स; डेल्यूज़न, लाइफ, फ़ेट, ऐण्ड दिस आयरन एज; दि सावरेन्स् ऑफ़ हेल, दि सावरेन्स ऑफ अर्थ, ऐण्ड ऑल दि पावर्स दैट बी; मैजिक ऐण्ड सोरसरी, ऐण्ड एवरी स्पेल इन दि वेदाज़ ऐण्ड दि तन्त्राज़.. ऑल आर ओबीडियेन्ट टु रामस् कमैन्ड्स‡ ।"

यह उद्धरण चित्रकूट की सभा के प्रारम्भ में वसिष्ठ के व्याख्यान का बहुत कुछ ठीक ही अगरेज़ी अनुवाद है । मूल चौपाइयाँ निम्नांकित है—

बोले मुनिबरु समय समाना, सुनहु सभासद भरत सुजाना ।
धरम धुरीन भानुकुल-भानू, राजा राम स्वबस भगवानू ।
सत्यसंध पालक स्रुतिसेतू, रामजनमु जग मंगल हेतू ।
गुरु-पितु-मातु-बचन-अनुसारी, खल-दल-दलन देव-हित-कारी ।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु, कोउ न राम सम जान जथारथु ।
बिधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला, माया जीव करम कलिकाला ।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई, जोगसिद्धि निगमागम गाई ।
करि बिचार जिय देखहु नीके, राम रजाइ सीस सबही कें† ।

ऊपर की उद्धृत चौपाइयों मे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र 'स्वबस' भगवान् ही राजा राम के रूप में अवतीर्ण बताया गया है। इस 'स्वबस' भगवान् से ईसाइयत के भगवान्-सम्बन्धी सिद्धान्त

‡ इंडियन थीइज़्म, पृष्ठ ११९, पंक्ति १४ से २६ तक । † रामचरितमानस, अयोध्या-कांड, दोहा २५२ के बाद ।

तुष्ट होते है। इसीलिए डा० मैकनिकॉल को तुलसी की इन पंक्तियों से सन्तोष प्राप्त हुआ है। सर्वशक्तिवान् का यह मर्यादापुरुषोत्तम अवतार 'भानुकुल का भानु' इसीलिए है कि वह 'धर्मधुरीन' है। वह धर्म कर्तव्य और शील—की उच्चतम भूमि को अपने जीवन का सत्य बना कर भानुकुल के सम्मुख और समस्त जगत् के सम्मुख रख सका है। उसकी प्रतिज्ञा सत्य होती है—रामो द्विर्नैव भाषते—इसीलिए वह 'सत्यसन्ध' है। वेदों के द्वारा निश्चित किये हुए वर्णाश्रम धर्म को राम मानते है। यह वही धर्मव्यवस्था है जो ब्राह्मी स्थिति को अपने सब वर्णो और आश्रमों में देखती है। जो सम्पूर्ण विश्व को साथ ले कर चलने की क्षमता रखती है। इसी कारण इस धर्म को पालन करने वाले राम 'पालक स्रुतिसेतू' है। उनका जन्म किसी एक जाति, एक वर्ण, एक आश्रम और एक देश के लिए नही हुआ है। वे जगन्मगल के लिए अवतीर्ण हुए है—'राम जनमु जग मगल हेतू'। उनकी दृष्टि मे केवल ससार मे दो तरह के मनुष्य है—एक खल और दूसरा देव। एक उनसे दण्ड प्राप्त करता है और दूसरा पुरस्कार। "खल दलदलन देव हितकारी"। नीति, प्रीति, परमोच्च धर्म और स्वार्थ के आदर्श रूप का रहस्य राम के सिवा दूसरा और कोई नही जानता—"नीति, प्रीति परमारथ स्वारथु, कोउ न राम सम जान जथारथु।" तुलसी के इन्ही राम का अनत रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाओं के रक्षक देवताओं, माया, जीव, कर्म, कलियुग, सर्पो के राजा वासुकी, पृथ्वी के राजाओं, वेदों और शास्त्रों के द्वारा वर्णित योग-सिद्धियो पर एकछत्र राज्य करता है। बडे विश्वास से गोस्वामी जी कहते हैं—"अपने मन मे अच्छी तरह से विचार करके देखो, राम की राजाज्ञा सबके सिर पर है। अनत शक्तिवान् इन सबमे व्याप्त हो कर इन सब पर राज्य तो करता ही है, पर अपनी नरलीला के क्षेत्र से भी अपरिसीम पवित्रता की मर्यादा से वह सम्पूर्ण विश्व को अपने वश में कर सकता है। राम के रूप में तो तुलसी के अनुसार नारायण ही नर हो गया है, पर तुलसी और प्रायः सम्पूर्ण विचारधाराओं के क्षेत्रों मे यही विश्वास बना हुआ है कि प्रत्येक नर में नारायण की सभावना छिपी हुई है। अपने शील के विकास से नर भी नारायणत्व को प्राप्त करके विश्व पर शासन कर सकता है। पुराणों मे इस शील की महिमा से नर, विश्वशक्तियों पर राज्य करता हुआ बराबर दिखाया गया है और उन सब स्थानों में भगवान् की परम शक्ति की उपासना से ही नर इस शक्ति को प्राप्त करता है। यह बिलकुल सत्य बात है कि नर और नारायण के इस व्यापक सम्बन्ध के सत्य को डा० मैकनिकॉल ने ध्यान से समझा होता तो तुलसी पर उन्होंने ऐसे आक्षेप न किये होते—"जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई‡"।

‡ रामचरितमानस, अयोध्याकांड, सोरठा १२५ के बाद।

अध्याय ११

अन्य कवि : साधना और सिद्धान्त

रामभक्ति शाखा के जीवनदर्शन और अध्यात्म-दर्शन का अध्ययन, गोस्वामी जी को आधार मान कर, कर लेने के बाद प्रायः कुछ भी अवशिष्ट नही रह जाता, पर रामभक्ति शाखा के पल्लवित होने में जिन और साधकों ने योग दिया है उनकी भी चर्चा, शाखा के सामान्य ज्ञान के लिए कर लेना अनुपयुक्त न होगा। हमारा क्षेत्र-विस्तार केवल भक्तिकाल की सीमा तक ही सीमित है, इसलिए इस क्षेत्र के भीतर आने वाले कुछ और साधकों की साधना का परिचय यहाँ दिया जाता है। ऐसे साधकों मे सूरदास सर्वप्रथम माने जा सकते है।

गोस्वामी जी के शिष्य बाबा बेनीमाधवदास ने 'गोसाईं चरित्र लिखा' तथा उनके दूसरे शिष्य महात्मा रघुवरदास जी ने 'तुलसी चरित' लिखा ‡। इन दोनों चरित्रों मे गोस्वामी जी का जन्म सवत् १५५४ दिया गया है। बाबा बेनी माधवदास की पुस्तक मे श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि भी दी गयी है †। सूरदास जी का जन्म संवत् १५४० के आसपास का माना जाता है $। संवत् १५९० मे गोस्वामी जी ने अपना घर छोड़ा *। जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका तथा बदरीनारायण की यात्रा करने के लिए उन्होंने देशभ्रमण किया और इस कार्य मे उन्हें १९ वर्ष से अधिक लगे §। अन्त में गोस्वामी जी चित्रकूट मे आ कर बहुत दिनो तक रहे और वहीं सवत् १६१६ मे सूरदास जी उनसे मिलने चित्रकूट आये थे। रामचरितमानस की रचना संवत् १६३१ मे अयोध्या मे आरम्भ की गयी और २ वर्ष ७ महीने मे ग्रथ समाप्त हुआ। किष्किंधाकांड काशी में लिखा गया। गोस्वामी जी देश भर मे एक बड़े महात्मा की तरह अपने जीवनकाल मे ही प्रसिद्ध हो गये थे ×।

जन्म संवतों के आधार पर सूरदास जी गोस्वामी तुलसीदास जी से चौदह-पद्रह वर्ष आयु मे बडे थे। इस तरह तुलसीतर हिन्दी के रामभक्त कवियों मे सूर का स्थान प्रायः सर्वप्रथम मान लिया जा सकता है। सूरदास जी अग्रज होते हुए भी गोस्वामी जी से मिलने चित्रकूट गये। इससे गोस्वामी जी की भक्ति-साधना का महत्त्व निश्चित ही व्यक्त होता है। सूर और तुलमी दोनों एक-दूसरे से प्रभावित हुए होंगे इसमें भी सन्देह नही है। इन

---

‡ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् १९९३ सस्करण, पृष्ठ १०३। † वही, पृष्ठ १०४। $ वही, पृष्ठ १२७। * वही, पृष्ठ १०६। § वही, पृष्ठ १०६। × वही, पृष्ठ १०६।

सब महात्माओं मे से एक भी एकाग्रही नहीं था। इनकी उपासना में इनके युग तक विकसित सब उपासना-पद्धतियों के उपादेय तत्त्व मिलते है। इन सब सतों ने चारों तरफ से सत्य और पवित्रता का सग्रह कर लिया था तथा असत्य और अपवित्रता का परित्याग कर दिया था। इसी पद्धति के आधार पर सूर की समन्वय साधना मे कृष्ण की प्रधानता रहते हुए भी राम, विष्णु, शिव इत्यादि देवता संगृहीत हो गये है। राम और विष्णु को कृष्णभक्ति शाखा मे भी महत्त्व अधिक दिया गया है, क्योंकि राम और कृष्ण दोनों विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

महात्मा सूरदास जी का निर्वाण सवत् १६२० के आसपास माना जाता है। रामचरितमानस की रचना सवत् १६३३ या ३४ तक पूर्ण हो गयी होगी। आचार्य वल्लभ के कहने पर सत सूरदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर 'सूरसागर' के पदों की रचना की। श्रीमद्भागवत मे राम-जन्म की कथा नवम स्कध मे है। महात्मा सूरदास ने भी नवम स्कन्ध मे रामावतार की कथा के आधार पर गेय पदों की रचना की है। रामावतार के ये पद नवम स्कध की पद सख्या १५ से पद सख्या १७२ तक है। राम के राज्याभिषेक तक की घटनाएँ इन पदो मे वर्णित है। दशम स्कन्ध के पद १९८ और १९९ मे भी राम की बडी सारगर्भित चर्चा है। उस पर बाद मे प्रकाश डाला जाएगा।

सूरदास जी ने सूरसागर मे राम और कृष्ण की अभेदोपासना के आधार पर उपासना की है इसमे कोई सन्देह नही। नवम स्कन्ध मे तो श्रीमद्भागवत की योजना का अनुसरण करते हुए सूरदास जी ने रामावतार का वर्णन किया है; पर अन्यत्र भी उन्होंने राम को अपने हृदय से दूर नही होने दिया है। नवम स्कन्ध के पद १५ से १७२ तक के १५८ पदों को छोड़ कर भी सूरसागर मे प्राय. ९८ पदों मे राम की चर्चा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो जाती है ‡।

रामचरितमानस के दूसरे, पाँचवे और छठे सोपान के आधार, क्रम से विमल-विज्ञान-वैराग्य, विमल-ज्ञान और विमल-विज्ञान है और पहले, तीसरे तथा चौथे सोपान के आधार, क्रम से विमल सन्तोष, विमल वैराग्य और विशुद्ध सन्तोष है। उसका अंतिम सातवाँ सोपान अविरल हरिभक्ति पर आधारित है।

‡ सूरसागर, पदसख्या ३, ११, १३, १८, २५, २६, २८, ३४ से ३६ तक, ३९, ४३, ५४, ५७, ५९, ६१, ६६, ७१, ८९, ९०, ९२, ९४, १०५, ११९, १२३, १३२, १३५, १४५, १५१, १५८, १७६, १७८ से १८० तक, १८२, १८८, १९३, २१५, २१९, २३२, २३३, २३५, २५५, २६३, २६४, २९६, २९७, ३०६, ३०८, ३१०, ३११, ३१८, ३३०, ३४०, ३४६, ३५१, ३७९, ४२१, ४२२, ८१६, ८१७, ८३९, ९२०, ११८६, १५९९, १६०१, १८३१, ३४१०, ३४३३, ३४३४, ३४४६, ३६९९, ३७४९, ३७५१, ३७५३, ३७५७, ३७८१, ३७८६, ३८४७, ३८८१, ३९०१, ३९७९, ४०१६, ४१३३, ४२७९, ४४३१, ४४५७, ४६२७, ४७१२, ४८२९, ४८३३, ४९३४; परिशिष्ट १–पद सख्या २, ३, १३६, १३७; परिशिष्ट २–पद सख्या २०५ और २४०।

सूरदास जी का भक्ति-सिद्धान्त भी चतुःश्लोकी भागवत के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए ज्ञान, विज्ञान तथा भक्ति के समन्वय के आधार पर निर्मित है ।

प्रथम ज्ञान, विज्ञानक द्वितियमत तृतिय भक्ति कौ भाव
सूरदास सोई समष्टि करि, व्यष्टि दृष्टि मन लाव ‡

ज्ञानमत ब्रह्म के अद्वैत को मानता है । ज्ञानमत की अभिव्यक्ति "पहिले हौ ही हो तब एक । अमल, अकल, अज, भेदबिर्वजित सुनि बिधि बिमल बिबेक" से होती है† । ज्ञानमत विमल विवेक के द्वारा ब्रह्म के एक, अमल, अकल, अज और भेद-विर्वजित रूप को देखता है । विज्ञानमत समत्व दर्शी है । वह बहुत्व मे समत्व का दर्शन करता है । उसकी अभिव्यक्ति "सो हौं एक अनेक भाँति करि सोभित नानाभेष" के रूप मे होती है $ ।

विज्ञानमत त्रिगुण तथा पचमहाभूतो के विस्तार को माया का प्रपच मानता है और इन सब के भीतर ब्रह्म का ही दर्शन करता है । त्रिगुण और पचमहाभूतों के विस्तार को परिणाम और परिवर्तन से बाध्य हो कर परिणमित और परिवर्तित होते हुए देख कर विज्ञानमत इस प्रक्रिया मे ब्रह्म के अपरिणमित और अपरिर्वतित अस्तित्व का दर्शन करता है । मणियों और उनको ग्रथित रखने वाले सूत्र की तरह वह मायाप्रपच और ब्रह्म को देखता है । उसके अनुसार शरीर और जीव का सम्बन्ध मशक और जल के सम्बन्ध की तरह है * ।

भक्तिमत इसी अज, अद्वैत, सर्वव्यापी तथा निर्गुण ब्रह्म की सगुण लीला का गान करता है । इस मत की अभिव्यक्ति "सोई जस सनकादिक गावत । नेति-नेति कहि मानि" के रूप मे होती है । ब्रह्म को अनन्त कह कर और मान कर भी भक्ति मत उसकी सगुण लीला का गान करता है § । इस भक्ति का रस गूँगे के मीठे फल के आस्वाद के रस की तरह है । वह हृदय को अनुभूत होता है; पर व्यक्त नहीं किया जा सकता । वह साधारण स्वाद नही; स्वादराज 'परमस्वाद' है । उससे 'अमित तोष' उत्पन्न होता है । मन और वाणी के लिए वह अगम और अगोचर है । उसे वही जानता है जिसने उसे प्राप्त कर लिया है । इसीलिए सूरदास जी ने कहा है—

अबिगत-गति कछु कहत न आवै ।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालब कित धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै × ।

अनत को वाणी व्यक्त नही कर सकती । उसे रूप, रेखा, गुण, जाति और तर्क अपनी सीमा में नही ला सकते । साधारण मनुष्य का मन निरालब हो कर किसका ध्यान करेगा । रूप, रेखा, गुण और प्रकारों को अपने सम्मुख देखने वाला मन परमात्मा के सगुण रूप का आलब चाहता है । इसीलिए सूर ने 'सगुन-पद' गाये । अतएव भागवत के चतु.श्लोकी सिद्धान्त के आधार पर सगुण ब्रह्म के व्यष्टि ध्यान के भीतर ज्ञान का अद्वैत,

‡ सूरसागर, पद सख्या ३८१ । † वही । $ वही । * सूरसागर, पद ३८१ । § वही ।
× सूरसागर, पद २ ।

विज्ञान की समत्वगत, स्वार्थों के प्रति अनासक्ति तथा ब्रह्म की सर्वव्यापकता और भक्ति का अनत आनन्दमय रसास्वाद, सब एक समष्टि मे रहते है। "सूरदास सोई समष्टि करि, व्यष्टि दृष्टि मन लाव" मे सूर की साधना का यही अनुभूत्यात्मक भक्ति पक्ष है‡। अतः ज्ञानमत, विज्ञानमत और भक्तिमत मे सूर को भक्ति ही प्रिय है। उनकी भक्ति मे त्रिमत-समष्टि है। उनके व्यष्टि कृष्ण का ध्यान त्रिमत का समाहित रूप है। चिन्तन और अनुभूति की इसी सरसता को ले कर सूर ने उस एक, अनादि अनाम, अज तथा सर्वगत के सगुण रूप-माधुरी मे अपनी दृष्टि तथा मन को लीन कर दिया है। सर्वत्व और समत्व के इसी महाभाव की सरसता को ले कर उन्होने रामकृष्णैक्य की मधुर साधना की है। यद्यपि उस साधना मे कृष्ण प्रमुख है पर वे राम के ही दूसरे रूप है; कोई अन्य नही। इस बात की ओर सूरसागर के उपलब्ध पाँच हज़ार दो सौ छह पदों मे सूर ने साधकों का मन, बडी कोमल भाव-पद्धति के द्वारा, सैकड़ों बार आकृष्ट किया है।

सूरदास जी ने 'सूरसागर' की रचना के लिए 'श्रीमद्भागवत' को आधारमात्र बनाया है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार ही 'सूरसागर' भी बारह स्कन्धों में विभाजित है। उसमे वर्णित कथाक्रम भी श्रीमद्भागवत के क्रम का ही अनुसरण करता है; पर पद की गेय शैली के भावात्मक प्रवाह मे सूर का भावुक हृदय जगह-जगह पर बह गया है। इन पदो मे कई जगह इतिवृत्तात्मकता भी आ गयी है। जहाँ की शैली इतिवृत्तात्मक है वहाँ सूर ने श्रीमद्भागवत के घटनावर्णन की इतिवृत्तात्मकता का अनुसरण किया है। ऐसे स्थलों पर उन्होंने "कहे कछुक गुरु कृपा ते श्रीभागवतऽनुसार†" "सूर कह्यौ भागवतऽनुसार$" "सुक जैसै नृप कौ समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ*", "व्यास जु कह्यौ पुरानमैं, सूर कह्यौ सो गाइ§" तथा "याबिधि भयौ बुद्ध अवतार सूर कह्यौ भागवतनुसार×" इत्यादि ढगों से पदों की समाप्ति करके अपने द्वारा श्रीमद्भागवत की इतिवृत्तात्मक शैली के अनुसरण की सूचना दी है।

जिन पदों मे श्रीमद्भागवत की इतिवृत्तात्मकता नही है, उनमें सूर का भाव-प्रवाह तरगित हो उठा है तथा उन पदों की समाप्ति में श्रीमद्भागवत का हवाला न हो कर भावतरग की उच्चतम सीमा ही चित्रित हुई है। "हा जगदीस! राखि इहिं अवसर, प्रगट पुकारि कह्यौ। सूरदास उमगे दोउ नैना, सिन्धु-प्रवाह बह्यौ+" इत्यादि पदान्त सूर के भावात्मक मौलिक पदों के लक्षण है।

उपर्युक्त नियम के अनुसार जब हम सूरसागर के नवम स्कध के रामावतार सम्बन्धी पदों का परीक्षण करते हैं, तो यह ज्ञात होता है कि रामावतार से सबद्ध प्रथम पद को छोड़ शेष एक सौ सत्तावन पद भावात्मक है।

---

‡ सूरसागर, पद संख्या ३८१। † वही, पद सख्या ३७९। $ वही, पद सख्या ४०१। * वही, पद संख्या ४४६। § वही, पद सख्या १७९३। × वही, पद सख्या ४९३३। + वही, पद संख्या २४७।

विष्णु के पारिषद जय और विजय ब्राह्मण के द्वारा अभिशप्त हुए। वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप मे अवतीर्ण हुए। वे दोनों क्रम से वराह और नृसिंह के द्वारा मारे गये। वे ही रावण और कुंभकर्ण के रूप मे पुनः अवतीर्ण हुए। उनके वध के लिए दशरथ के घर मे राम अवतरित हुए। रामावतार से संबद्ध, सूरसागर के प्रथम पद मे इन घटनाओं की इतिवृत्तात्मिका सूचना श्रीमद्भागवत के अनुसार दी गयी है। इसका हवाला देते हुए सूर ने पदान्त में कहा है, "नृप सौ ज्यौ सुकदेव सुनायौ। सूरदास त्यौही कहि गायौ ‡।"

श्रीमद्भागवत के नवम स्कध के दसवें अध्याय मे राम के अवतार से ले कर राज्याभिषेक तक की घटनाएँ कुल पचपन श्लोकों मे प्रायः इतिवृत्तात्मक ढग से ही सक्षेप मे वर्णित है। यह इतिवृत्त सूर के हृदय मे भाव तरगों मे परिवर्तित हो कर एक सौ अट्ठावन पदों मे प्रवाहित हुआ है। बालकांड की घटनाएँ पन्द्रह पदों में, अयोध्याकाड की छब्बीस पदों मे, अरण्य की बारह पदों मे, किष्किधा की छह पदो मे, सुन्दरकाड की बत्तीस पदों मे, लका की अट्ठावन तथा उत्तर की नौ पदो मे, प्रायः सर्वत्र भावात्मक चित्रों मे अंकित की गयी है। गोस्वामी जी की गीतावली मे तीन सौ अट्ठाईस पद है तथा सूर के रामावतार वर्णन मे एक सौ अट्ठावन। अतः सूर की इस राम-भावात्मिका प्रलयावस्था को तुलसी की रामरस की तन्मयता के सम्मुख जब हम प्रस्तुत करते है तो दोनों अपने-अपने सौन्दर्य और माधुर्य की अनत परिणति को सँजोये हुए हमें एक ही सात्त्विक शक्ति से अपनी ओर आकर्षित करती हैं। अथा सूर जगत् की ओर से अपनी आँखों को विश्रान्ति दे कर पवित्र और मधुर प्रेम की अनत मधुरिमा मे लीन हो गया था, तो अपनी दोनों आँखों की दर्शनशक्ति को अनत बना कर तुलसी भी अनत भाव के महामाधुर्य मे लीन हो गया था। अनतदर्शी इन दोनों साधकों में तारतम्य खोजना समय और शक्ति का अपव्यय ही होगा। आलोचक की ऐसी प्रवृत्ति सहृदयता की प्रतिगामिनी ही होती है।

राम के प्रथम जन्मोत्सव के दिन सूर ने दशरथ के आँगन की भीड़ को अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लिया है। उनके अनुसार 'स्याम-सरीर' राम भू भार उतारने के लिए प्रकट हुए है। अयोध्या के निवासी आनद की तन्मयता मे 'फूले फिर' रहे हैं। हँस-हँस कर वे एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे है। उनकी आँखों से आनदाश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। देवता, देवराज तथा ऋषि लोग आकाश से इस दृश्य को देख कर आनद-विभोर हो उठे हैं। 'दयालु त्रिभुवन नाथ' ने दर्शन दे कर सबकी पीड़ा हर ली है। इस आनद की तन्मयता में राजा दशरथ ने याचकों को दान दे कर अपना घर ही खाली कर दिया है †। आनंदातिरेक के अनुभावों की कितनी सुन्दर योजना रससिद्ध सूर ने की है। जब अनत पृथ्वी पर उतर आया हैं, तब उसको पा कर धरती आनदातिरेक मे क्यों न डूब जाए, स्वर्ग भी सीमा के अपने बन्धन को तोड़ कर क्यों न आनंद की अनंतता का अनुभव करने लगे। इसीलिए सूर ने स्वर्ग और पृथ्वी दोनों को अनंत आनद की उपलब्धि की दशा में विभोर होते हुए देखा

‡ सूरसागर, पद संख्या ४५९। † सूरसागर, पद सख्या ४६०।

है । स्वर्ग और पृथ्वी, दोनों का रक्षक आज धरती पर उतर आया है, इसीलिए सूर ने उन दोनों मे अनंत उल्लास की तरगों का दर्शन किया है ।

सर्वेश का अवतरण मंगल भी अनंतशक्ति के धरातल पर होता है । जब अयोध्या मे सर्वेश अवतीर्ण हो गया है तब तो वह विश्व की राजधानी बन गयी; इसीलिए आज दशरथ के दरबार में देश-देश से टीका आया है । आनद मे मग्न हो कर सब लोग डोल रहे है। किसी को अपने शरीर का भी ज्ञान नही है । विश्व की रक्षा करने वाला रणधीर रामचन्द्र जब अवतीर्ण हो गया है, तब उसके लिए हृदय-हृदय से आशीर्वाद क्यों न फूट पड़े ‡ ।

अंधे सूर की सौन्दर्यभावना बड़े मार्के की है । उसने दशरथ के कनकमय आँगन मे माता-पिता के सम्मुख फूल के पेड़ों की छाया मे, फूलों के नीचे लाल 'पनहियाँ' पहने हुए धनुपबाण ले कर चार अनुपम बालकों को खेलते देखा है । धवल शील वाले ये चार बालक उसे चार हसों की तरह दिखाई पड़े है । हस की धवलता के स्थान पर उनमे परमोज्ज्वल शील है तथा हस का विवेक प्राप्त करके वे आत्मस्थ परमहस भी है। वे तो रघुकुल को कान्ति प्रदान करने आये है, इसीलिए सब लोगो को वे आनद की निधि के समान दिखाई पडते हैं । सूरदास के ये राम, बाँह पकड़ कर भक्त का उद्धार करते है, उसके जीवन-नाटक को वे सफल निर्वहण की ओर ले जाते है † ।

सूर के वे चारो बालक अनुपम है । वे शक्ति, शील और सौन्दर्य के अनत कोष हैं । वे कठोर और मृदु दोनों है । वे धर्म, अर्थ और मोक्ष की निवासभूमि है । छोटे-छोटे धनुष-बाण ले कर घूमते हुए इन बालकों की शोभा अनिर्वचनीय है । सुन्दर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तथा कमलनयन राम सुकुमारता की पराकाष्ठा है । उनके स्निग्ध कुतल और आकर्षक पीताबर विश्व को मोह लेते है । उनकी बाण-लीला को देखने नारद तथा तैतीस करोड देवता नित्य आते है । इन बालकों की बाण-लीला को देख कर शिव को सकोच होता है; क्योंकि उनके भक्त, पर अविवेकी, राक्षस उसी कला से मारे जाएँगे । यह बाण-लीला इन्द्र को आनद प्रदान कर रही है; क्योंकि इसकी परिणत कला से इन्द्र के शत्रु दैत्य मारे जाएँगे । ब्रह्मा को इस बाण-लीला से सुख और दुख दोनों समान रूप से मिल रहे है; क्योकि सुर और असुर दोनों की उन्होंने सृष्टि की है । इस बाण-लीला को देवताओ के सुख का कारण समझ कर वे सुखी हो रहे है और राक्षसों के विनाश का कारण समझ कर दुखी हो रहे हैं । चारों बालको के अचूक सधान को देख कर दिति अत्यन्त दुर्बल हो गयी है तथा अदिति हृष्टचित्त । अंधे सूर ने शक्ति, शील और सौन्दर्य की इस मौलिक झाँकी को इसीलिए सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है कि उसकी अनुभूति सच्ची और मौलिक है $ ।

सूरदास के प्रभु राम का 'पतित-उधारन-बिरद' तो विश्वविश्रुत है । अहिल्या का उद्धार उसके लिए कोई कठिन काम नही है * । सूर की सीता अपना मन राम से बाँध

‡ सूरसागर, पद सख्या ४६२ । † वही, पद सख्या ४६३ । $ वही, पद संख्या ४६४ ।
* सूरसागर, पदसख्या ४६६ ।

लेती है। लेकिन उसे एक अदेशा है। वह यह कि किशोर राम धनुष कैसे तोडेगे। उसके इस उत्पीडक सदेह को दूर करने के लिए राम ने उंगलियों की नोक से ही धनुष को तोड़ दिया और उनके तेज के सूर्य के सामने सब राजा लोग तारों की तरह लुप्तश्री हो गये ‡।

सूर ने ककण-मोचन के समय सीता और राम के बड़े कोमल दाम्पत्य का अकन किया है। सीता के हाथ का स्पर्श करके राम स्नेह के आवेश में मग्न हो गये। सात्विक अनुभाव का कंप उनके हाथो मे पैदा हो गया। वे कंकण नहीं छोड़ सके। जुआ खेलने के समय भी उनके हृदय की कोमलता सीता को विजय दिला देती है। राम हार जाते है। सूर ने भी पृथ्वी की पुत्री सीता और अनंत राम के विवाह-महोत्सव के समय जनकपुर के आनद को अपरिसीम ही अनुभव किया है †।

राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न जब सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ नव-परिणय के मगलमय कोमल वेश से अयोध्या मे प्रवेश करते है, तब अवधपुरी का सुख भी असीम हो जाता है। सुर-नर-मुनि सब मुदित हो जाते है; पर सूर तो उस सुख पर निछावर ही हो जाता है $।

वात्सल्य के भीतर आने वाला वियोग तो दशरथ को पा कर यों ही धन्य हो गया था; पर सूर के दशरथ मे उस वियोग को और भी स्वाभाविक और मार्मिक अंकन प्राप्त हुआ है। वे कम से कम एक दिन के लिए भी राम को रोक लेना चाहते है। चार प्रहर रोक कर राम के मीठे वचन वे सुनना चाहते है। उन्हें इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि राम से बिछुड कर प्राण शरीर से भी बिछुड जाएँगे। राम के दुर्लभ दर्शन को वे कम से कम एक दिन के लिए और सुलभ बना लेना चाहते है *।

सूर के राम ने सीता को वन जाने से रोकते हुए जनकपुर जाने की सलाह दी और कहा कि पति की आज्ञा मानना ही सच्चा पातिव्रत है। उनका उत्तर सीता के हृदय की कोमलता और कोमल कर्तव्य-निष्ठा को व्यक्त करता है। सूर की सीता ने कहा है कि आपका रूप देख कर ही मैं अपने जन्म को सफल मानती हूँ। तुम्हारे चरणकमलों के पास रह कर ही मैं पातिव्रत का पालन करना उचित समझती हूँ। अपने सब सुखों को छोड़ कर मै आपके साथ वन की विपत्तियों को भी अपनी सखियों की तरह अपने साथ रख सकती हूँ §।

सूर के राम भी लक्ष्मण को अयोध्या मे ही छोड़ना चाहते है। यह जान कर सूर के लक्ष्मण की आँखे जल से भर गयी। वे कुछ न बोल सके। राम के चरणों मे लिपट जाने के सिवा उन्हे और कुछ न सूझा। अन्तर्यामी राम ने लक्ष्मण की प्रीति की गुरुता को समझ कर उन्हे भी साथ ले लिया ×।

सूर की ग्राम-वधुएँ जब राम, लक्ष्मण और सीता की त्रिमूर्ति को वन-पथ पर देखती हैं, तो उनके त्रिविध ताप नष्ट हो जाते है। जब उन्हे सीताराम और लक्ष्मण की

---

‡ सूरसागर, पद सख्या ४६७। † वही, पद सख्या ४६९। $ वही, पद सख्या ४७३। * वही, पदसख्या ४७७। § सूरसागर, पद सख्या ४७८-४७९। × वही, पद सख्या ४८१।

स्थिति का पता चलता है, तब वे नेत्रों से अश्रु की वर्षा करने लगती है और उन्हे अतिथि की तरह अपने घर ले जाना चाहती है। कितना स्वाभाविक और कोमल वर्णन है । अनन्त पवित्रता के सम्मुख विश्व-हृदय पवित्र हो कर एक अटूट बन्धन मे उससे बँध जाना चाहता है । विश्व-हृदय सीताराम और लक्ष्मण में त्रिलोक की शोभा का दर्शन करके नर-नारी के भीतर उमड़ पड़ा है । अपने-अपने गाँवो और घरों को छोड़ कर वे सब बहुत दूर तक उन लोगों के साथ-साथ चलते है और बिछुडने के समय उन्हे बडा कष्ट होता है । ऐसे राम को सूरदास ने अपना स्वामी मान लिया है ‡ ।

सत्य के लिए सूर के राम ने अपनी भुजा दशरथ से छुडा ली, पिता के सबल स्नेह-बन्धन को तृण की तरह उन्होंने तोड़ डाला और अपने हृदय को निष्ठुर बना कर वन-पथ पर बढ गये । यह समाचार पा कर दशरथ ने प्राणों को तुरन्त त्याग दिया । अयोध्या के सब लोगो ने जीवन की इच्छा छोड दी । राम की स्मृति की ज्वाला उनके हृदय को झुलसाने लगी । ऐसा लगा मानो आग पी रहे हो । पशु और पक्षियो ने तृण और कण छोड़ दिया । बालको ने माता का दूध तक पीना छोड दिया । सबने राम के बिना जीवन को मिथ्या समझ लिया † ।

सूर की कौसल्या तथा उनके भरत दोनों सजीव चरित्र-निर्मिति के बडे अच्छे उदाहरण है। कौसल्या विलाप करती हुई कहती है —कोई जा कर राम को रोके। जब तक भरत अयोध्या लौट न आएँ तब तक के लिए राम रुक जाएँ । भरत भी जब आते है तो यही कहते है—माता कैकेयी ने यह क्या किया । मैं तो त्रिभुवनपति राम का सेवक हूँ । सिह की बलि को कुत्ता कैसे खा सकता है । मैं अयोध्या मे जल भी न पिऊँगा तथा माता का मुख भी नही देखूंगा । राघव से बिछुडने से तो वन की आग मे जल मरना अच्छा है $ ।

भरत के समान सात्विक शील वाले व्यक्ति की उस ग्लानि से सूर सर्वथा परिचित है, जो उसे किसी पाप से सम्बद्ध हो जाने पर होती है । राम के समान मर्यादा पुरुषोत्तम को भरत के कारण वन-वन भटकना पडे, इससे बढ़ कर दूसरा पाप भरत अपने लिए समझते ही नही । राज्य उन्हे आग की तरह लग रहा था । वे कहते है—'इस तरह की आग मे पड कर कौन जी सका ।' पश्चात्ताप की जो आग उनके भीतर उत्पन्न हो गयी है उससे उनके प्राण सकट मे है । सूरदास जी ने अपने भरत और शत्रुघ्न की दशा का वर्णन इस सकटकालीन स्थिति मे किया है । उन्होंने लिखा है—दोनों भाई धरती पर इस तरह लोट रहे थे मानो उन्होंने शरीर को जला देने वाला कोई भयानक विष पी लिया हो * ।

सूरदास जी के भरत का जीवन और अस्तित्व, तुलसी के भरत के समान ही, राममय है । गोस्वामी जी को अपने भरत को प्रस्तुत करने के लिए 'मानस' में पर्याप्त स्थान और अवकाश मिला है । सूर को कुल एक सौ अट्ठावन पदों मे पूरी भावात्मक

‡ सूरसागर, पद सख्या ४८७ से ४८९ तक । † वही, पद संख्या ४९० । $ वही, पद सख्या ४९१ । * वही, पद सख्या ४९२ ।

रामायण प्रस्तुत करना है। सूर ने 'मानस' के हृदय को पूर्णतः अंकित कर लिया है। उसका कोई स्पन्दन सूर के हृदय से अननुभूत नही रह पाया है।

अपना राममय हृदय व्यक्त करते हुए सूर के भरत ने कहा है—सेवक को राज्य और स्वामी को वन, विधाता ने यह उलटी बात कब लिख दी। जिस तरह चकोर चन्द्रमा के प्रेम मे डूबा रहता है उसी तरह हम भी राम के मुख-कमल को देख कर जीते थे। अब राम के अभाव मे हमारा अयोध्या से क्या नाता रह गया ‡।

गोस्वामी जी के 'मानस' में राम को दशरथ की मृत्यु का समाचार वसिष्ठ ने दिया। वृद्ध पिता की मृत्यु का समाचार औचित्य की दृष्टि से वृद्ध गुरु ने दिया। उसका वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है—

> कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥
> नृप कर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥
> मरन हेतु निज नेहु विचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी॥
> कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी †॥

मुनिवेश मे अनासक्त वृत्ति से रहने वाले मर्यादापुरुषोत्तम के भीतर आवेश के सयम मे भी एक नियन्त्रित क्षोभ का चित्र राम के भीतर गोस्वामी जी ने अंकित किया है। 'दुसह दुख पावा' और 'भे अतिविकल' में क्षोभ नियन्त्रित ही है। राम के अतिरिक्त जितने लोग हैं उनके विलाप का चित्र प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी जी ने 'बिलपत लषन, सीय, सब रानी' कहा है। इसमे शोक का आवेग नियन्त्रित न रह कर विलाप के रूप मे फूट पड़ा है।

इसी अवस्था का चित्रण जब भावुक सूर करने लगते है तब सब नियन्त्रण और मर्यादाएँ टूट जाती है। भरत को मुडितकेस देख कर उनके राम विह्वल हो कर उन्हे भावावेश के कारण कठ से लगा लेते है, पिता की मृत्यु का समाचार पा कर मुरझा जाते है और ज़मीन पर गिर पड़ते है। प्रेम मे मग्न राम की आँखों से जल की धारा प्रवाहित होने लगती है, और शोक उनके हृदय मे समा नही सकता। सीता पृथ्वी पर शोक की पीड़ा से लोटने लगती हैं। समझाने पर भी उन्हें धीरज नही होता $।

गोस्वामी जी के चित्र मे मुनि-धर्म की मर्यादा शोक में भी आवेश पर कुछ नियन्त्रण रखती है, पर सूर की भावुकता किसी बन्धन को नही स्वीकार करती। शोक मे वह उन्मुक्त हो कर बह पड़ती है।

अपने परिवार और समग्र विश्व के लिए राम के नेत्रों में अश्रुजल का दर्शन करके सूर राम पर निछावर हो जाते है *। सूरदास ने राम को अपना प्रभु इसलिए भी बना लिया है कि वे एकपत्नीव्रत है §।

---

‡ सूरसागर, पद सख्या ४९३। † रामचरित मानस, अयोध्या कांड, दोहा २४५ के बाद।
$ सूरसागर, पद संख्या ४९६। * सूरसागर, पद संख्या ४९९। § वही, पद संख्या ५००।

· चरण की आराधना करने से भगवान् 'अति सुगम' हो जाता है। सीता ने चरण की आराधना की और उसके लिए राम मृग के पीछे-पीछे दौड़े। जीव के भीतर की अनन्त पवित्रता, अनन्त पवित्र भगवान् को भी अपने वश मे कर लेती है। यह सिद्धान्त सूर को अत्यन्त प्रिय है ‡।

सीता-हरण के बाद राम के वियोग की गुरुता को देख कर सूर को भी आश्चर्य हुआ है। उन्होंने कहा है—जगद्गुरु राम की गति अद्भुत है। विचार अपनी सीमा के भीतर उस गति को बाँध नही सकता। अनत राम भी कामवश हो कर करुणा से इस प्रकार पीडित हो सकते है, यह बात कल्पना में भी नही आ सकती; पर राम में देखी अवश्य जाती है। सूर इसी को देख कर विस्मयान्वित होते है†।

सूर भी लक्ष्मण को शेष का अवतार मानते हैं। क्योंकि जब सीता के वियोग से व्याकुल हो कर राम आवेश मे सहारा पाने के लिए लक्ष्मण के हृदय से लग जाते है, उस चित्र को प्रस्तुत करने के लिए सूरदास जी ने कहा है—

लगत सेप-उर बिलखि जगत गुरु $।

भक्त के प्रेम के वश मे हो कर भगवान् अपनी महिमा को भी भूल जाता है। सूर के हृदय ने इस भावात्मक सत्य का अनुभव कर लिया है *।

राम मे कर्तव्य-निष्ठा और अपार कृपा का दर्शन सूर ने भी किया है। जटायु को आहत अवस्था मे राम-राम कहते हुए जब सूर के राम सुनते है, तब अपनी विपत्ति भूल कर जटायु की ओर दौड़ पडते है। राम के इस स्वभाव को व्यक्त करते हुए सूर ने कहा है—कृपानिधान नाम हित धाये, अपनी बिपत्ति बिसारि§।

सूर के दूर-दृष्टि सपाती ने जांबवान, अगद और हनुमान के समक्ष अशोक वाटिका की वियोगिनी सीता का बडा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। संपाती ने कहा—"हरिण से बिछुडी हुई हरिणी की तरह चकित हो कर वह चारो ओर देखती रहती है। विरह का सताप उनके भीतर उत्पन्न हो गया है। वृक्ष के नीचे दुःख में मग्न हो कर वह अकेली खडी है। उनके वस्त्र मलिन तथा केश जटिल हो गये है। उनकी विपत्ति का वर्णन मैं नही कर सकता। नेत्रो में जल भर-भर के वे लम्बी सासे लेती रहती है। कभी-कभी गिर कर पृथ्वी को पकड़ लेती है। नीच निशाचर की दुष्टता की उन्हे बड़ी चिन्ता है। उन्होंने केवल रामनाम को अपना आश्रय बना लिया है×। निस्तब्धता, अनन्यता, कृषता, संतप्तता, चिन्ता तथा प्रेम की पीड़ा का यह सवलित चित्र बड़ा मार्मिक है। इस चित्र मे भक्त ने अपने को मिटा कर भगवान के अखड प्रेम की साधना की है।

सीता के इस सत्य-प्रेम की साधना का मुक्तकठ से यशोगान करते हुए सूर अघाते नही। सूर के हनुमान को प्रथम प्रयास में जब सीता नही मिलती, तब उन्हे बहुत धक्का

‡ सूरसागर, पद सख्या ५०२ । † वही, पद सख्या ५०६ । $ वही। * वही, पद सख्या ५०७। § वही, पद सख्या ५०९। × वही, पद सख्या ५१७।

लगता है। वे अनुमान करने लगते है कि सीता ने प्रेम की पीड़ा के कारण अपना शरीर ही छोड़ दिया होगा। दुर्बल, दीन, क्षीण सीता को राम का नाम जपती हुई पा कर हनुमान झुके हुए सिर से उनकी वन्दना करना चाहते थे। अंत मे इसी रूप में सीता अशोक वाटिका मे मिली। वहाँ राक्षसियाँ सीता को रावण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रही थी। उनके उत्तर मे सूर की सीता ने कहा है—"रावण के मुख को तो मै तभी देख सकती हूँ जब वे सिर रक्त की नदी मे कट कर स्नान करते रहे। इस शरीर को अग्नि पा सकते है या राम; तीसरा कोई नहीं।" सूर की सीता को अपने पातिव्रत पर विश्वास है, वह पातिव्रत जो पति को पत्नी से अलग नही होने देता ‡।

आदर्श की पवित्रता के प्रति जागरूक सूर ने पतिव्रता सीता के सत्य और शील की बड़ी मार्मिक रुझान से उपासना की है। सूर की राक्षसी रावण से कहती है—"सीता तो मेरे शब्दों को सुनने के लिए मेरी तरफ उन्मुख तक नही होती। धर्मराज के मन, वाणी और शरीर चाहे अपवित्र हो जाएँ, विस्मयजनक सिन्धु के गभीर हृदय मे चाहे विस्मय का मोक्ष उत्पन्न हो जाए, अचला चाहे चलने लगे, चचल ग्रह-नक्षत्र चाहे थक कर खडे हो जाएँ, विश्व के चिरजीवी † चाहे मर जाएँ; पर रघुनाथ के प्रताप से सीता का सत्य और पातिव्रत नही टल सकता। ऐसी स्त्री का तुमने क्यों हरण किया? मन, वाणी और कर्म से उनका सत्यभाव राजा राम को छोड कर किसी दूसरे को अपने भीतर स्थान नही दे सकता। उनके क्रोध से तुम भस्म हो जाओगे। सीता की प्राप्ति की इच्छा छोड़ दो। इस कुमार्ग पर तुम्हारी कौन रक्षा करेगा?" राक्षसी का उत्तर देते हुए सूर के रावण ने कहा है—"सीता यदि सत्य से विचलित हो जाए तो नारायण रक्षा किस वस्तु की करेगा। वह तो सत्य की ही रक्षा करता रहता है। इसी सत्य की रक्षा करने के लिए मेरे समान महापापी को वह क्रोध करके तार देता है। सीता मेरी माता है रघुनन्दन मेरे स्वामी है और मै उनके द्वार का प्रहरी। सीता और राम के मिलन के बिना मुझे कौन पार उतार सकता है $।"

सत्य की यही उपासना है, जिसकी साधना करने के लिए श्रीमद्भागवत की इतिवृत्तात्मिका सक्षिप्त शैली को छोड़ कर रामावतार वर्णन के लिए, सूर हृदय की पवित्र और वेगवती गगा की लहरों से खेलने लगे है।

सूर की सीता में बली रावण के सम्मुख भी वही सत्य का तेज है। उस तेज के सम्मुख त्रिलोक-विजयी रावण नगण्य और अवस्तु हो कर धूल मे मिला हुआ-सा प्रतीत होने लगता है *।

सूर के भी इस राम-साहित्य मे हरि और हर की समन्वित उपासना-पद्धति है। त्रिजटा से वार्तालाप के बीच मे सूर की सीता कहती है कि वह दिन कब आएगा, जब रावण को मार कर राम उसके दसों सिरो को शिव को चढा देंगे। यहाँ राम को सीता

‡ सूरसागर, पद संख्या ५२१। † अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम। $ सूरसागर, पद संख्या ५२२। * वही, पद सख्या ५२३।

शिव के उपासक की तरह प्रस्तुत करती है तथा उनके सत्य के भास्वर तेज की उपासना सूर भी कर लेते है‡।

सूर की सीता त्रिजटा से कहती है—"मैने राम के चरणों में अपना चित्त दे दिया है; मन, वाणी और कर्म से मैंनें ऐसा आचरण किया है कि उसके परिणाम में राम का मिलन फिर से होगा ही। अचल सुमेरु चाहे डोलने लगे, शेष का अडिग मस्तक चाहे कंपित होने लगे, वासरपति चाहे पश्चिम में उदय होने लगे, तब भी मधुर मूर्ति राम का प्रेम मैं नही छोड़ सकती† ।" अन्धे सूर की वाणी सत्य के इस मधुर रूप का स्वाद पा कर मुखर हो गयी है।

सूर की सीता मे भी यह विशेषता है कि उसका राम-प्रेम सकीर्ण न हो कर राम के ही समान उदार है। सुख और दुख दोनों समय उसे लक्ष्मण, कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा का पवित्र स्मरण होता रहता है। उसका राम-प्रेम मिलन और वियोग दोनो समय परिवार के प्रेम को साथ ले कर चलता है यही स्वभाव राम का भी है$ ।

राम के चरणों के प्रताप से ही सब कुछ होता है यह सिद्धान्त सूर को भी प्रिय है। राम के चरणो के प्रताप से लका जली, राम की चरणपादुका सिर पर रहने के कारण ही भरत भरत हो सके, राम के पद-प्रताप से ही हनुमान सीता को खोज सके, रघुपति के चरण-प्रताप का ही देवता लोग यशोगान करते है, उन्ही चरणो को पकड कर विभीषण लका के राजा हो जाते है, उन्ही चरणो की धूल ले कर हनुमान शत्रुओ के रक्त मे स्नान करते है और उन चरणो की धूल से ही अहिल्या का उद्धार हो गया * ।

शरणागत की रक्षा का भाव सूर के राम में भी है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर विलाप करते हुए सूर के राम कहते हैं, "यदि मैं अपने प्राण छोड दूँ तो सीता भी शरीर त्याग देगी। परन्तु विभीषण के भविष्य की चिन्ता मेरे प्राणों को सकट मे डाल रही है।" सूर के राम भी अपना सब कुछ, यहाँ तक प्राण भी दे सकते है; पर शरणागत की रक्षा का भाव नही छोड़ सकते। उन्हे वह प्राणों से भी अधिक प्रिय है§ ।

सूर ने अपने प्रभु राम की कृतज्ञता के भाव को भी बडे मौलिक ढग से व्यक्त किया है। लक्ष्मण के लिए विलाप करते हुए वे हनुमान से कहते है कि मुझ पर तुम्हारे अनंत आभार है। उन्हें मैं तभी व्यक्त कर सकता हूँ, जब कि मेरा हर रोम जीभ हो जाए×।

सूर की सुमित्रा भी सत्य की कठोर परीक्षा मे खरी उतरी हैं। हनुमान से अपने पुत्र लक्ष्मण के आहत होने का समाचार पा कर कहती है, "राम के काम आ कर लक्ष्मण धन्य हो गये। शूर यदि जीता है तो जग में उसे यश प्राप्त करना चाहिए और मरे तो वीरता से मर कर स्वर्ग का राज्य भोगना चाहिए। अपार धैर्य है सुमित्रा का+।

‡ सूरसागर, पद सख्या ५२५। † वही, पद सख्या ५२६। $ वही, पद सख्या ५२७, ५३१, ५३२, ५३४। * वही, पद सख्या ४८५, ५४२, ५४६, ५६३, ५६७, ५९१, ५९९। § वही, पद संख्या ५९०। × वही, पद सख्या ५९१। + सूरसागर, पद सख्या ५९५।

सूर की कौसल्या तो यह समाचार पाते ही वात्सल्य से बाध्य हो कर अपना सिर पीटने लगी। निस्तब्धता ने उन्हें अवाक् कर दिया ‡। पारिवारिक प्रेम की विश्वरक्षिका यह गगा-धारा संतों ने अनतधा बना कर प्रवाहित की थी। उन धाराओं के ये ही नमूने है। जो प्रेम पहले परिवार मे पुष्ट न होगा वह विश्व की रक्षा कैसे कर सकेगा।

सूर की सुमित्रा मे इतना धैर्य है कि अपने दुख को भूल कर वह कौसल्या को बडी तत्परता से सम्हालती है और कहती है कि शस्त्र-धारण करने पर प्राणों का मोह क्यों होना चाहिए। भाई के लिए यदि लक्ष्मण काम आया तो उससे धन्य और कौन हो सकता है †।

सुमित्रा के इस पावन धैर्य और रक्षक साहस का पुरस्कार कौसल्या देती हैं। हनुमान से कौसल्या कहती है कि राम से कह देना कि लौटेंगे तो लक्ष्मण के साथ, अन्यथा नही। उनके चरणों के स्नेह के कारण उसने राज-काज तथा माता का स्नेह छोड़ दिया। ऐसे भाई को छोड़ कर जीना धिक्कार है। लक्ष्मण और वैदेही के साथ राम यदि सकुशल लौटे तो आ कर अयोध्या का राज्य करे; अन्यथा लक्ष्मण पर स्वय निछावर हो जाएँ $। बलिदानपूर्ण पारिवारिक स्नेह के लिए जो जागरूकता अंधे सूर मे है, उसी के कारण उसके शब्द-भाव बोझिल हो गये है।

पारिवारिक प्रेम की अनुपम झाँकी सूर ने रामावतार-वर्णन मे प्रस्तुत की है। उसकी कौसल्या जब कहती है कि बिना लक्ष्मण के राम वापस आये तो मुझे लज्जित होना पड़ेगा। इस तरह लौटने की बिलकुल आवश्यकता नही। इस पर सूर की सुमित्रा कहती है कि सेवक यदि युद्ध में मारा जाता है, तब भी स्वामी तो घर लौटता ही है। राम से कह देना कि जब से तुम गये हो तब से भरत ने सब भोगों को तिलाजलि दे दी है। तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा से उसने अपने हृदय में दु.खों के समूहों को पाल रखा है। राम से कहना कि वे अवश्य शीघ्र लौटें *।

हृदय के इस सौन्दर्य की आलोचना करने के समय मुखर वाणी भी मूक हो जाती है। इस सौन्दर्य की थाह लगाने की शक्ति शब्दों में कहाँ से आ सकती है।

लक्ष्मण के जागने पर राम के भीतर जो उत्साह फूट पड़ता है, उसमें उनकी समन्वयात्मिक शिव-भक्ति पुनः जागृत हो उठती है और उसी को अपना सबल बना कर वे दुष्टों के वध के द्वारा देव, द्विज और विभीषण के समान सतों की रक्षा का सकल्प करते है §।

इसी के बाद सूर ने अपने गेय पद मे एक सबल हृदयद्रावक रूपक का प्रयोग किया है। उन्होंने कहा है कि सीता के विरहोच्छ्वास के समीर से प्रेरित हो कर राम की प्रचंड क्रोधाग्नि ने रावण के कुल और कुभकर्ण के वन रूपी शरीर को इस तरह क्षण भर मे भस्म कर दिया, जिस तरह ज्वाला वस्त्रों को तत्काल भस्म कर देती है ×।

---

‡ सूरसागर, पद सख्या ५९५। † वही, पद सख्या ५९६। $ वही, पद सख्या ५९७। * वही, पद संख्या ५९८। § वही, पद सख्या ६०१। × वही, पद सख्या ६०२।

सूर की कौसल्या राम और लक्ष्मण, अपने दो अनमोल मोतियों को प्राप्त करने के लिए कौए से शकुन विचारती है। सुनते ही मगलमय कौआ हरी डाल पर उड कर बैठ गया और मंगल की सूचना दी। कौसल्या ने आँचल मे गाँठ लगा ली। उनका दुःख दूर हो गया। सुख ने उनके हृदय मे प्रवेश किया। वह कौए से कहती है—"मैं जब तक जिऊँगी, जीवन भर तेरा नाम निरन्तर जपती रहूँगी। दोना भर-भ के दही-भात तुझे दूँगी और भाइयों के बीच मे तुझे बिठाऊँगी। तेरे मगलमय इंगित का इस बार यदि मगलमय परिचय मिला और अपने बच्चों को भर आँख मैं देख सकी तो तुम्हारी चोच और पखों को सोने के पानी से मढवा दूँगी ‡।" कितना पावन और स्वाभाविक जीवन सूर ने अपने हृदय से निकाल कर विश्व के सामने रख दिया है। सत्य के इसी निश्छल और नैसर्गिक रूप की उपासना भक्तों ने अपने हृदय की पवित्रता मे की है। सत्य के मधुमय साक्षात्कार की यही उनकी प्रक्रिया है।

सूर के राम के हृदय मे अपनी जन्मभूमि के लिए जो पावन-प्रेम है वह भी अनत मधुर हो कर व्यक्त हुआ है। सुग्रीव और विभीषण इत्यादि को अयोध्या को दिखाते हुए उन्होंने कहा—"पृथ्वी पर अयोध्या नाम का यह नगर धन्य है। वनो, पर्वतों, नदियों और सरोवरो से सजी हुई यह भूमि परम मनोहर है। अपनी प्रकृति का रहस्य खोलते हुए मैं तुमसे कह रहा हूँ कि मैं सुरपुर मे नहीं रहना चाहता। यहाँ के निवासियों को देख कर मेरे हृदय मे आनद समा नही पाता। यदि ब्रह्मा मुझे सकोच मे डाल कर बाध्य न करे, तो मैं बैकुठ न जाऊँ। ब्रह्मा के आग्रह से सूने वैकुठ को बसाने के लिए ही मै जाता हूँ †।" जन्मभूमि का कितना निश्छल प्रेम है, वह प्रेम जो परमात्मा को भी बाँध कर धन्य हो गया है।

परमात्मा की इस अतुल सफलता का साक्षात्कार करके उसके लिए जयध्वनि से अयोध्या गूँज उठी है। उस अनिर्वचनीय आनद की अभिव्यक्ति केवल इस जयध्वनि से ही हो सकती है। जयघोष के अतिरिक्त कोई शब्द नही है जो उस अनत आनन्द को व्यक्त कर सके। उसी आनन्द मे अपने हृदय को लीन करके सूर ने कहा है "जै-जै-जै सूर, न सब्द आन $" यह 'जै' शब्द ही सब कुछ है, अन्य शब्द हृदय के भाव को व्यक्त करने के लिए मिलता ही नहीं। इस 'जय' शब्द मे विश्व-हृदय पर राम के प्रेम-विजय का अनत शक्तिवान प्रेम-मत्र है।

अयोध्या के निवासियों ने सीता, राम और लक्ष्मण को देख कर सुख के सिन्धु मे स्नान कर लिया। भरत का सुख तो अनिर्वचनीय और अनत था। सीता, राम और लक्ष्मण को हृदय की आँखो से देख कर सूरदास ने भी अंतर्नयन शीतल कर लिये * :

सूर ने अपने राम को उनके परिवार और विश्व के प्रत्येक प्राणी के हृदय के सिहासन पर अभिषिक्त कर दिया है।

---

‡ सूरसागर, वही, पद सख्या ६०८। † वही, पद संख्या ६०९। $ वही, पद संख्या ६१०।
* वही, पद सख्या ६१२।

रामावतार वर्णन का सूर का अन्तिम पद विनयपत्रिका के पद के समान अत्यन्त मधुर है। राम राजा हो गये। अब बड़े व्यस्त है। सूर दर्शन कैसे पाएँ। अपनी प्रार्थना उनके सामने कैसे रखे। कोई अनुकूल समय मिलता ही नही। धीरोदात्त नायक को सब लोग घेरे रहते है। रात बीतने को एक प्रहर बाकी रहता है तभी सूर दौड कर जाते है। उस समय भगवान् को सुकुमार नीद से जगाने मे सकोच होता है। सूर्य के उदय होते ही ब्रह्मा, रुद्र तथा देवताओ और मुनियों की अपार भीड वहाँ लग जाती है। सूर को स्थान ही नही मिलता। दिन के मध्य मे राजसभा के विसर्जन के समय सेनापतियों की भीड़ देख कर सूरदास लौट आते है। नहाते, खाते और विश्राम लेते हुए राजा राम को सूर का कोमल हृदय कष्ट नही देना चाहता। सध्या के समय नारद और तुबुरु यशोगान करते रहते है। अब हार कर अपना मामला कृपानिधि राम पर ही सूर छोड देते हैं। वे कहते है कि इन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो की धारा मे मेरी गिनती कैसे की जा सकती है। वे राम से कहते है कि आप कहे तो एक उपाय अपने उद्धार का आपको कह कर समझा दूँ। आप सूर के प्रभु है। 'पतित-उधारन' आपका नाम है। मै आपसे मिलने का कोई अनुकूल समय न पा सका, इसीलिए यह पत्र आपके पास भेज दे रहा हूँ ‡। अपनी आत्मा को अतीत मे भेज कर सूर ने राम की कितनी सुन्दर भावात्मिका उपासना की है।

कितना स्वाभाविक वर्णन है राजा की व्यस्तता का और अपनी नगण्यता का। मिलने का समय जब किसी प्रकार भी सभव न हो सका, तब रुक्का ही भेज दिया गया।

इस प्रक्रिया के द्वारा सूर ने राम की अभेदोपासना की है। दशम सर्ग मे दो बडे कोमल स्थल है जहाँ कृष्ण ही राम हो गये है। बाल कृष्ण को माता सुला रही है। वह कहानी कहने लगती है। बच्चा हुँकारी भरने लगता है। माता कहती है—"रघु के वश मे दशरथ एक राजा थे। उनके चार पुत्र प्रकट हुए। उनमे मुख्य राम थे। उनकी पत्नी सुन्दरी सीता थी। पिता की आज्ञा से घर छोड कर वे वन चले गये। उनके छोटे भाई और सीता भी साथ गये। उदार राजीवलोचन सुवर्ण मृग के पीछे गये। इसी बीच मे रावण सीता को चुरा ले गया।" इतना सुनते ही नदनदन की नीद उचट गयी। वे बोल उठे—लक्ष्मण! धनुष लाओ, धनुष लाओ। माता ने समझा बच्चे को कुछ हो गया †।

एक दिन माता ने बच्चे को सुलाने के लिए फिर वही कहानी कही "रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे। उनका विवाह जनक-पुत्री सीता से हुआ था। पिता के कहने से राजधानी छोड़ कर ये लोग पचवटी के वन मे रहने लगे। अभिमानी राक्षस ने वहाँ सीता को चुरा लिया।" बालक इतना सुनते ही तुरन्त उठ कर कहने लगा—"लक्ष्मण, धनुष दो"। यशोदा डर गयी कि बालक को कुछ हो गया $।

इस तरह बड़े कोमल ढग मे महात्मा सूर ने राम-कृष्ण की अभेदोपासना यत्र-तत्र की है। उनका सूरसागर जीवन के इसी समन्वयात्मक प्रबन्ध से भरा पडा है। सूरसागर

‡ सूरसागर, पद सख्या ६१६। † वही, पद सख्या ८१६। $ वही, पद सख्या ८१७।

मे कृष्ण का प्रथम महत्त्व है; पर श्रीमद्भागवत के आनुषगिक कथानक के रूप में रामोपासना भी कम महत्त्वपूर्ण ढग से चित्रित नही हुई है ।

मगलमय की परममगलमयी प्रेमोपासना की अनन्त लहरे सूरसागर मे तरगित हो रही हैं।

सूरदास जी के बाद स्वामी अग्रदास का नाम लिया जा सकता है। इनका उल्लेख पहले किया गया है। सवत् १६३२ के आस-पास इनका समय माना जाता है । संवत् १६३१ मे गोस्वामी जी ने रामचरित मानस का साक्षात्कार करके उसे लिखना आरम्भ किया था । "सम्वत् सोरह सौ इकतीसा । करौ कथा हरि पद धरि सीसा । नौमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।" से यह बात स्पष्टत: सिद्ध है । अत अग्रदास जी तथा तुलसीदास जी समसामयिक ही सिद्ध होते हैं। स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनके चार ग्रथ (१) हितोपदेश उपरखाणाँ बावनी (२) ध्यानमजरी (३) रामध्यान-मजरी तथा (४) कुडलियाँ है ‡ । इनके अतिरिक्त (१) अष्टयाम और (२) पदावली ग्रथ भी इनके माने जाते है † । रामभक्ति साधक के नाते अग्रदास जी की साहित्यिक साधना भी महत्त्वपूर्ण है । इनके "कुडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा । तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा । मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए । मुख पकज के निकट मनो अलि-छौना आए ।" से इनके भीतर एक उन्नत प्रकार की सौन्दर्य-भावना परिलक्षित होती है । यद्यपि सौन्दर्य चित्रण की यह शैली परम्परा-पोषित है तथापि कवि के रुझान की गवाही तो इससे निश्चित ही मिल जाती है । इसके अतिरिक्त भक्त की तन्मयता भी एक और वस्तु है जो इस सौन्दर्य-वर्णन के द्वारा दृष्टिगोचर होती है । बिना तन्मयता के इस तरह के वर्णन की ओर इतना सुन्दर झुकाव कवि का हो ही नही सकता ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा उद्धृत, स्वामी अग्रदास जी का एक पद भी जीवनदर्शन और अध्यात्मदर्शन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । वह निम्नांकित है :

> पहरे राम तुम्हारे सोवत । मै मतिमद अध नहिं जोवत ।
> अपमारग मारग नहि जान्यो । इन्द्री पोषि पुरुषारथ मान्यो ।
> औरनि के बल अनत प्रकार । अगर दास के राम अधार $ ।।

इस पद मे मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शो का अपने को सेवक मानता हुआ भी अग्रदास जी का भक्तहृदय अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के लिए बडे निश्छल भाव से कह उठता है कि आदर्शो का सच्चा पहरेदार तो हमे होना चाहिए था, पर हम आदर्श के सच्चे रक्षक नही सिद्ध हुए । हमारी ज्ञान की आँखे बन्द है इसलिए मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शों का सच्चा मार्ग हमें नही दिखाई पडता । अज्ञान के अन्धकार ने हमारी आँखों को अन्धा बना दिया है और इसलिए हमारी बुद्धि मन्द पड गयी है । इस पृथ्वी पर आदर्शहीनता को

‡ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४६ । † भागवत सप्रदाय, पृष्ठ २७८ । $ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४६ ।

ही हम आदर्श समझ बठे । कुमार्ग ही हमे सन्मार्ग की तरह दिखाई पडा और हम उसी पर चल पड़े । इन्द्रियों को पालने-पोसने मे ही हमने जीवन के अतिम लक्ष्य का दर्शन किया । पर अब हमे यह ज्ञात हो गया है कि दूसरे मनुष्य तो अपार और अनत वस्तुओ को अलग-अलग अपनी शक्ति अनुसार पहचानते है, पर अग्रदास को तो राम को ही अपना आधार बनाना होगा ।

इस पद की पक्तियों मे आदर्शहीनता और आदर्श का विवेक अग्रदास जी के साधक के भीतर निश्चित ही दिखाई पडता है और यह भी दिखाई पडता है कि जीवन की दुर्बलताओ को त्याग कर यह साधक रामभक्त, मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्शों का सच्चा और जागरूक पहरेदार बन जाना चाहता है । अग्रदास जी का व्यक्तित्व था भी ऐसा ही ।

स्वामी अग्रदास जी के बाद, क्रमानुसार नाभादास जी का उल्लेख किया जा सकता है । पहले बतलाया जा चुका है कि नाभादास जी अग्रदास जी के शिष्य थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'ये सवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित थे ‡ ।' इनका भक्तमाल सवत् १६४२ के बाद बना । अत: इस ग्रन्थ का समय रामचरित मानस के ग्यारह वर्ष बाद आता है । तुलसीदास जी के विषय मे नाभादास जी ने अपने भक्तमाल मे निम्नाकित छप्पय लिखा है :

> त्रेता काव्य-निबध करी सत कोटि रमायन ।
> इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन ।
> अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी ।
> राम-चरन-रसमत्त रहत अह निसि व्रतधारी ।
> ससार अपार के पार को सुगम रूप-नौका लियो ।
> कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो ।

'लीला के विस्तार' के भीतर भक्तो के स्वान्त:सुख का दर्शन करके नाभादास जी ने जीवन-दर्शन के परमोच्च रहस्य की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा है । मर्यादा पुरुषोत्तम के लीला-विस्तार के साथ भक्तों के सुख के विस्तार को देख कर नाभादास जी ने अपने द्वारा की हुई गोस्वामी जी की इस प्रशस्ति मे इस बात की पुष्टि की है कि मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन मे आदर्शों की ऊँचाई का साक्षात्कार करके भक्तों का हृदय प्रफुल्लित होता है । नाभादासकृत गोस्वामी जी की इस प्रशस्ति में भक्त नाभादास का भी वही स्वान्त:सुख व्यक्त हो रहा है, जिसका अनुभव लीला-विस्तार के भीतर उन्होंने किया है ।

'राम-चरन-रसमत्त-रहत अहनिसि व्रतधारी' के भीतर गोस्वामी जी के 'रामचरन' के रस से मतवाला बना रहने का रात-दिन का व्रत देख कर नाभादास जी ने अपने भीतर भी इस अखंड व्रत की स्थिति की सूचना अनजान मे ही दे दी है । 'शूर एव विजानाति शूरस्य हि विचेष्टितम्' के अनुसार यह बात बिलकुल सिद्ध हो जाती है कि राम के चरणों के

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४७ ।

रस मे निरन्तर सराबोर रहने वाला, भक्त नाभादास स्वभावत: अपनी इसी रससिक्त दृष्टि से, गोस्वामी जी के भीतर अखड आवेग से प्रवाहित होने वाली रामरस की धारा को देखने की स्वभावसिद्ध क्षमता, अपने भीतर अवश्य रखता है ।

कलि के कुटिल जीवों की कुटिलता के पारावार को लॉघ कर अनत जीवन की निश्छल सीमा के भीतर पहुँच जाने की अपार शक्ति, ससार के साधक को देने के लिए ही भक्त नाभादास जी ने रूप को सुगम नौका के रूप मे स्वीकार किया है। सगुणोपासना के सम्बन्ध मे अपनी इसी धारणा के अनुसार नाभादास जी ने गोस्वामी जी के जीवन-सिद्धान्त और लक्ष्य का मूल्याकन किया है । जीवन के कलुष को मिटा कर समाप्त कर देने वाला, मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन के द्वारा व्यक्त हुआ, परमोच्च जीवन-आदर्श रूप के आधार मे ही अभिव्यक्त होता है । जीवन को, विकास की पूर्णता तक पहुँचा देने वाली यह प्रक्रिया सगुणोपासना की भक्ति के भीतर ही सम्भव है । सगुण जीवन की सब अनुभूतियो को राममय बना देने वाली यह भक्ति-पद्धति सगुण उपासना के क्षेत्र मे ही व्यवहृत होती है । इसी पद्धति को अपना स्वीकृत मापदण्ड बना कर भक्त नाभादास जी ने गोस्वामी जी का मूल्याकन किया है ।

अत· पूर्ण आदर्शों के जीवनदर्शन के द्वारा नर को नारायण बना देने वाले अध्यात्म-दर्शन की ओर नाभादास जी ने भी अपनी विशिष्टाद्वैती रामभक्ति को निरन्तर उन्मुख रखा है ।

रामचरित सम्बन्धी इनके पदों का एक छोटा-सा सग्रह भी मिला है‡ । नाभादास जी के दो अप्टयाम भी मिलते हैं । उनमे से एक ब्रजभाषा गद्य मे तथा दूसरा रामचरित मानस की दोहा-चौपाइयों की पद्धति पर लिखा गया है ।

ब्रजभाषा गद्य-अष्टयाम का उदाहरण इस प्रकार है—"तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वसिप्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए । फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए । फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेन्द्र नाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए† ।"

ब्रजभाषा के इस अष्टयाम के द्वारा भी राम के विनम्र शील की भावना ही, नाभादास जी की व्यक्त होती है ।

दोहा-चौपाइयों की शैली का नमूना इस प्रकार है—

अवधपुरी की शोभा जैसी । कहि नहि सकहि शेष श्रुति तैसी ।।
रचित कोट कलधौत सुहावन । बिविध रग मति अति मनभावन ।।
चहुँ दिसि विपिन प्रमोद अनूपा । चतुर बीस जोजन रस रूपा ।।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि । मनिमय तीरथ परम सुहावनि$ ।।

---

‡ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४८ । † आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १२१ । $ वही, पृष्ठ १२१-१२२ ।

अयोध्या के प्रति कवि के इस अनुराग के भीतर से अवतारी राम के प्रति भी उनका अनुराग व्यजित होता है। पुरी की जिस शोभा को शेष और श्रुतियाँ भी नही कह सकते, वह राम के प्रभाव से ही तो अयोध्या को प्राप्त है? इसी भावना के द्वारा कवि की बुद्धि और उनका मन अयोध्या के सौन्दर्य को अपनी कल्पना मे देख कर तृप्त हो जाता है। अयोध्या को चारों ओर से घेरे हुए प्रमोदोद्यान भक्त नाभादास जी को चौबीस योजन तक रसरूप प्रतीत होते है।

इस तरह नाभादास जी ने हिन्दी के माध्यम से राम-रस की धारा को पर्याप्त बल प्रदान किया है।

क्रमानुसार प्राणचन्द चौहान नाभादाम जी के बाद आते है। गोस्वामी जी के मानस की सृष्टि के छत्तीस वर्ष बाद सवत् १६६७ मे प्राणचन्द चौहान जी ने रामायण महानाटक लिखा। इनके इस ग्रन्थ की शैली नाट्य शैली की समग्र आवश्यकताओं को साथ ले कर नही चली है। केवल सवाद के तत्त्व को ले कर ही प्राणचन्द जी ने अपने इस प्रयास को नाटक का नाम दिया है।

अपने इस महानाटक के आरम्भ मे चौहान जी ने भगवान् राम के निर्गुण-सगुण रूप का ही ध्यान किया है—

जो सारद माता करु दाया। वरनौ आदि पुरुष की माया॥
जेहि माया कह मुनि जगमूला। ब्रह्मा रहे कमल के फूला॥
निकसि न सक माया कर बाँधा। देषहु कमलनाल के राधा॥
आदि पुरुष बरनों केहि भाँती। चाँद सुरज तहँ दिवस न राती॥
निरगुन रूप करे सिव ध्याना। चार बेद गुन जोरि बषाना॥
तीनो गुन जानै ससारा। सिरजै पालै भजन हारा‡॥

इस तरह निर्गुण-सगुण राम का ध्यान करके चौहान जी ने अपना यह महानाटक लिखा है। अपने 'निरगुन रूप करै सिव ध्याना' के द्वारा गोस्वामी जी के शिव से चौहान जी कुछ दूर हो गये-से प्रतीत होते है, क्योंकि गोस्वामी जी के शिव तो 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानद परेस पराना। पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ। रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ†' के अनुसार सगुण-निर्गुण राम का ही ध्यान करते है। 'सकर सहज सरूप सभारा। लागि समाधि अखंड अपारा'$ मे साख्य-योग दर्शन की समाधि और उसके पूर्व की ध्यानावस्था की चर्चा है। 'सहज सरूप सभारा' मे प्रकृति से अनासक्त निर्गुण पुरुष के ध्यान की बात कही गयी है और 'लागि समाधि अखड अपारा मे' योग की निर्गुण समाधि की अवस्था की ओर सकेत है। पर गोस्वामी जी के शकर दोनों तरह के ध्यानो मे मग्न होते हैं। उनका एक ध्यान आदर्शों के आधारभूत रूप का ध्यान है और दूसरा ध्यान निर्गुण सच्चिदानन्द का। गोस्वामी जी इन दोनो प्रकार के ध्यानों को आनन्द की समाधि का पूर्वरूप मानते हैं, पर उनका अधिक झुकाव उसी ध्यान और

‡ रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १२२। † बालकांड, दोहा २२१।
$ वही, दोहा ६२ के बाद।

समाधि की ओर है जिसमें रूपानन्द की ही अनुभूति होती है और मन स्वार्थों के ऊपर उठ कर अहं के बोध को खो देता है। मन की इसी राममय परिणति को गोस्वामी जी अधिक महत्त्व देते है।

'चार वेद गुन जोरि बखाना। तीनों गुन जानै ससारा। सिरजै पाले भजन हारा' ‡ मे चौहान जी गोस्वामी जी की धारणा के साथ ही खड़े हुए दिखाई पडते है।

प्राणचन्द चौहान के बाद हृदय राम का उल्लेख किया जा सकता है। 'हृदयराम पजाव के रहने वाले और कृष्णदास के पुत्र थे †'। मानस की रचना के ३९ वर्ष बाद, गोस्वामी जी के साकेतवास के ही वर्ष, सवत् १६८० मे सस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर इन्होंने भाषा मे हनुमन्नाटक की रचना की।

गोस्वामी जी ने अपने युग तक प्रचलित और सब पद्धतियो मे राम-साहित्य की सृष्टि की। केवल नाटक की शैली को आधार बना कर उन्होने अपना कोई ग्रन्थ नही प्रस्तुत किया। नाटक की शैली को अपना कर गोस्वामी जी के युग मे ही राम सम्बन्धी कई नाटक लिखे गये। उनमे से हृदयराम का हनुमन्नाटक सबसे प्रसिद्ध है।

अपने इस नाटक मे हृदयराम ने शक्ति और शील की बड़ी मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। शक्ति, शील और सौन्दर्य की भावना यदि राम-साहित्य के इस साधक मे न होती तो सस्कृत का आधार मिलने पर भी वह इतना सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी मे न प्रस्तुत कर सका होता।

शक्ति की भावना की व्यजना से सम्बन्ध रखने वाला एक छद निम्नांकित है—

सातो सिंधु, सातों लोक, सातों ऋषि है ससोक,
सातो रबि-घोरे थोरे देखे न डरात मै।
सातो दीप सातों ईति काप्योई करत और
सातो मत रातदिन प्रान है न गात मैं।
सातो चिरजीव बरराइ उठे बार-बार,
सातो सुर हाय-हाय होत दिनरात मैं।
सातहूँ पताल काल सबद कराल, राम,
भेदे सात ताल, चाल परी सात-सात मे $।

बालि के विरुद्ध अपनी शक्ति के प्रयोग की सफलता का निश्चय सुग्रीव के भीतर उत्पन्न करने के लिए भगवान् राम ने जब सप्त तालो को एक साथ ही काट डाला, उसी की ध्वनि का वर्णन करते हुए, हृदयराम ने अपने हनुमन्नाटक मे त्रिलोक के भीतर रहने वाले समस्त चराचर के भीतर उस ध्वनि से उत्पन्न हुए आतक का बड़ा ही सुन्दर वर्णन इस कवित्त मे किया है। राम की शक्ति की अनतव्यापिनी प्रभुता की झाँकी बड़ी सफलतापूर्वक

‡ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सवत् १९९३ संस्करण, पृष्ठ १२२। † वही। $ वही, पृष्ठ १२४।

कवि ने यहाँ प्रस्तुत की है। अनत की इस शक्ति के लिए कवि के भीतर इस छंद मे पूज्यभाव अवश्य व्यजित होता है।

लक्ष्मण के शील से प्रभावित हो कर हृदयराम का यह छद भी प्राय मौलिक-सा ही प्रतीत होने लगता है—

जानकी को मुख न बिलोक्यो ताते कुडल,
न जानत हौ, बीर पायँ छुवै रघुराइ के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते ककन न देखे बोल कह्यो सतभाइ के।
पायँन के परिबे को जाते दास लक्ष्मन,
याते पहिचानत है भूषन जे पायँ के।
बिछुआ है एई, अरु झाँझ है एई जुग,
नूपुर हैं तेई राम जानत जराइ के‡।

सीताहरण के बाद किष्किधा मे सीता के आभूषणो की पहचान करने के समय लक्ष्मण की इस स्थिति को यद्यपि वाल्मीकि से प्रारम्भ करके हृदयराम तक के कई कवियों ने व्यक्त किया है तथापि हृदयराम जी ने अपनी मौलिकता की रक्षा कर ही ली है। सीता के केवल चरणो का दर्शन करने वाले लक्ष्मण के शील की भावना कवियों ने बराबर की है, पर शपथ के रूप मे लक्ष्मण के शील की पवित्रता की जो पावन आकुलता हृदयराम ने व्यजित की है वैसी अन्यत्र प्राय. नहीं ही देखने को मिलती।

वियोगकाल मे रावण की अशोक वाटिका मे रहने वाली बन्दिनी सीता के शील की भी बडी मार्मिक व्यजना हृदयराम ने की है। सीता का समाचार ले कर हनुमान के लौट आने के बाद का दृश्य है। उसका वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

एहो हनू, कह्यौ श्री रघुबीर कछू सुधि है सिय की छिति मांही ?
है प्रभु लक कलक बिना सुबसै तह रावन बाग की छांही।
जीवति है ? कहिबेई को नाथ, सु क्यो न मरी हमतें बिछुराही ?
प्रान बसे पदपकज मे जम आवत है पर पावत नाही†।

राम के वियोग के समय हृदयराम की सीता केवल कहने मात्र को जीवित हैं। उनके प्राणो को सहारा देने वाला राम के चरण-कमलों का ध्यान है। उन्ही चरण-कमलों मे निवास करने वाले प्राणों को यमराज नही पा सकता, इसीलिए सीता जीवित है। राम के अनुपम शील की उपासिका सीता केवल इसीलिए जीवित है कि उनका दर्शन उसे फिर से मिल जाए। यदि दर्शन की आशा न होती तो वह प्राणो को त्याग देती। जिस भक्ति-मय प्रेम की दृष्टि मे प्राणो का मोह भी छूट जाता है वह धन्य है। ऐसे ही पावन प्रेम के प्रति हृदयराम का हृदय तन्मय हो कर झुका हुआ है, इसीलिए सीता का इतना गौरवमय और सुन्दर चित्र वे अकित कर सके है।

---

‡ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १२३। † वही, पृष्ठ १२४।

हृदयराम के बाद केशवदास का क्रमानुसार स्थान हो सकता है। गोस्वामी जी के समकालीन ही केशवदास थे। इनका जन्म-संवत् १६१२ और मृत्यु-संवत् १६७४ के आसपास माना जाता है। इनकी 'रामचन्द्रिका' अपने युग की प्रसिद्ध कृतियों में से है। यद्यपि केशव को भक्त कवियों मे स्थान नही मिल सकता तथापि राम-साहित्य के स्रष्टा के रूप मे केशव का स्थान निश्चित ही महत्त्वपूर्ण हो गया है।

'रामचन्द्रिका' के निर्माण मे इस कवि ने प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव, कादम्बरी और नैषध की कई पंक्तियों का अनुवाद करके उनका उपयोग कर लिया है। तथापि इतना तो अवश्य ही कहना पड़ेगा कि कवि की रुचि का परिचय इन ग्रंथों की पंक्तियों के चुनाव से ही मिल जाता है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही इन पंक्तियों का अनूदित चयन केशवदास ने रामचन्द्रिका मे किया है।

जीवनदर्शन को दृष्टि मे रख कर केशवदास का अध्ययन किया जाए तो यह पता चलता है कि वे अपने युग की रामभक्ति शाखा के साधकों की प्रवृत्ति के अनुसार ही आदर्शवादी साधक है।

रामचन्द्रिका के मंगलाचरण मे ही केशव के गणेश, दु:ख और विपत्तियों को तो दूर करते ही है, पर साथ ही साथ वे लोकमंगल विधान के कार्य को कलुषनाश के द्वारा भी करते है। पापों के नाश के भीतर से ही आदर्शों का बीज अंकुरित होने लगता है‡। आदर्श का यही अनंत विकास केशवदास ने रामभक्ति के साधक के भीतर देखा है। राम की वन्दना के भीतर ही रूप, गुण, भक्ति और नाम के आधार पर, श्लेष की सहायता से उन्होंने अणिमा, गरिमा, महिमा और मुक्ति के साथ आत्मा की प्रफुल्लता, उसके गौरव, महिमामय महत्त्व तथा स्वार्थ से मुक्ति का चित्र अपने भीतर अंकित कर लिया है। 'रूपदेहि अणिमाहि' से उनका लक्ष्य केवल अणिमा की योग-सिद्धि ही नही है, वरन् दुःख के भार से मुक्त हुई आत्मा की वह तरल पवित्रता भी है जिसका अनुभव कर लेने के बाद जीव का भार हल्का हो जाता है तथा अपने सब कलुषो के अभाव मे वह अपने को अति सूक्ष्म और कलुषों की स्थूलता से मुक्त अनुभव करने लग जाता है। राम के रूप के साथ इतनी पवित्रता जुड़ी हुई है कि उसका दर्शन कर लेने पर जीव सब स्वार्थों की स्थूलता को त्याग कर वासना के अभाव मे अति सूक्ष्म हो जाता है। पिपीलिका मार्ग से भी योग सम्प्रदाय के भीतर प्राय: इसी सत्य का बोध कराया जाता है। जब जीव स्वार्थों की स्थूलता को त्याग कर चिउँटी की तरह सूक्ष्म हो जाता है तभी बिना बाधा के वह जीवन की ऊँचाई पर, हृदय की उन्नतावस्था तक पहुँच जाता है।

'गुण देहि गरिमाहि' मे राम के गुणो के गौरव की अनुभूति के बाद क्षुद्रता को त्याग कर जीव के गौरवमय हो जाने का स्पष्ट संकेत है। राम के नि:स्वार्थ शील का अनंत गौरव रामभक्त को भी उसी गौरव की ऊँचाई तक पहुँचा देने की क्षमता रखता है। यही उसका

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश पहला, छन्द १।

गुण है। राम के शील का यही गुण भक्त के भीतर अनत गौरवमय राम को जगा देता है और भक्त स्वय गरिमामय हो जाता है।

'भक्ति देहि महिमाहिं' के भीतर भी महामहिम राम की भक्ति की महिमा का ही स्वरूप बताया गया है। गुणो के गौरव के साथ ही राम का उदार शील अपने भीतर विश्वमगल को देखता हुआ महान् या महत्तम बना रहता है। इस शील के कारण ही राम महत्तम है, मर्यादा पुरुषोत्तम है। राम के इस उदार शील की भावना ही रामभक्ति है। गोस्वामी जी का भी यही सिद्धान्त है। इसी की व्यजना 'तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परि है' की भावना के भीतर भी होती है। स्वार्थों की ओर से जब मन फिर पडता है तभी भक्त को यह अनुभव होने लगता है कि भगवान् ने उसे अपना लिया। जीवन के आदर्शो का यही विश्वमगल विधायक रूप भक्त की महिमा का विधान करता रहता है। इन्ही सब तथ्यो की सूचना केशव ने 'भक्ति देहि महिमाहिं' के द्वारा दी है। स्वार्थो से मुक्त हुई आत्मा जब सूक्ष्मता की अणिमा-शक्ति को प्राप्त कर लेती है तब वह गौरवमयी हो जाती है। उसकी लघुता नष्ट हो जाती है और वह महान् हो कर महिमामयी हो जाती है। इसके बाद की अवस्था ही मुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था की सूचना देने के लिए केशवदास ने 'नाम देहि मुक्ति' कहा है। राम के रूप से भी बढ कर काम उनका नाम करता है। रूप और नाम के महत्त्व को समझाने के लिए गोस्वामी जी ने भी नाम को अधिक व्यापक या अनत क्षेत्र मे उद्धार-कार्य करते हुए देखा है। 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई' के द्वारा गोस्वामी जी ने इसी सत्य की ओर सकेत किया है‡। नाम की इसी अनतता का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य का सीमित स्वार्थो से बद्ध, सीमित अह अनत हो जाता है और वह 'अह ब्रह्मास्मि'† कह उठता है। अपनी इसी अनतता का ज्ञान कर लेने के बाद जीव ब्रह्म हो जाता है। वह सीमित स्वार्थो की सीमा को लाँघ कर मुक्त हो जाता है$।

एक छद के एक छोटे से टुकड़े के द्वारा केशवदास इतने व्यापक सत्य की ओर सकेत करने की क्षमता रखते है। जीवन-दर्शन की इस उच्चतम ऊँचाई को ही अध्यात्म-दर्शन कहते है। यही उच्चतम जीवन केशव का लक्ष्य है। इसी की सिद्धि और इसी के प्रचार के लिए उन्होने रामचन्द्रिका लिखी है। इस उच्चतम जीवन-दर्शन के संकेत रामचन्द्रिका मे भरे पड़े हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी शृगारी साहित्य-साधना से ऊब कर ही केशव ने रामचन्द्रिका लिख कर आत्मतुष्टि का अनुभव किया है।

अपनी सनाढ्य जाति का परिचय देते हुए भी कवि के सामने से 'शुद्ध सुभाव' का जीवन-दर्शन लुप्त नही होने पाता; सनाढ्यों मे इस 'शुद्ध सुभाव' का वह दर्शन करता है। शास्त्रों के चिन्तन के द्वारा साधुमत तक पहुँच जाने की सम्भावना का इगित भी केशव ने अपने पूर्वज काशीनाथ के द्वारा, शास्त्र-चिन्तन के मार्ग से इस साधुमत की प्राप्ति का उल्लेख किया है*।

---

‡ बालकाड, दोहा ३१ के पहले। † बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय १, ब्राह्मण ४, कण्डिका १०। $ रामचन्द्रिका, प्रकाश १ छन्द ३। * वही, छन्द ४।

'रामचन्द्र की चन्द्रिका' का केशवदास के जीवन मे एक विशिष्ट महत्त्व है, क्योकि इस चन्द्रिका के अवतार के बारे मे केशवदास खास ढग से सूचना देते है। उनके अनुसार यह साधारण ग्रथ नही, अपितु उनकी आत्मा के भीतर मे इसका अवतार हुआ है। संवत् १६१२ मे ससार मे जन्म लेने वाले साधक ने लम्बे अनुभव के भीतर से अपनी आयु के छियालिसवे वर्ष मे सवत् १६५८ में इस चन्द्रिका के आलोक को अपनी आत्मा के भीतर से प्रकाशित किया था। रामचन्द्रिका अनुभव-प्रसूत थी। युग की सहज प्रवृत्ति के कारण अलकारप्रियता का दर्शन होना रामचन्द्रिका मे स्वाभाविक है, पर काव्य के प्रकृत धर्म, उसकी आत्मा रस की भी कमी इस चन्द्रिका मे नही है। चन्द्रिका का कोमल आलोक हृदय की अनुभूतियाँ भी बड़े कोमल ढग से प्रसारित करता है।

ग्रथ-रचना का कारण देते हुए केशव का साधक अपने भीतर की अशान्ति का परिचय देता है। आत्मा के विकास की भूख उसके भीतर है। वाल्मीकि मुनि का स्वप्न मे प्राप्त दर्शन कवि को सुन्दर प्रतीत होता है। उस चारुता मे सौन्दर्यानुभूति की कवि की सहज बुभुक्षा की प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो जाती है।

आदिकवि को स्वप्न मे देख कर इस साधक का तड़पता हुआ हृदय ऋषि से 'सुख-सारू' ‡ प्राप्त करने का मार्ग ही तो पूछता है ? परमानन्दमयी आत्मसिद्धि की प्रेरणा से प्रेरित हो कर ही केशव ने इस चन्द्रिका के आलोक मे अपने हृदय को आलोकित कर लिया है।

केशवदास की रामचन्द्रिका अपने मूल मे ही आत्मप्राप्ति का सन्देश देती है। उन्होने ऋषि से जब 'सुखसार' को प्राप्त करने का मार्ग पूछा है, तब उनकी भावना का आदिकवि उन्हे 'सीधी-रीधी' के महामत्र की ओर बढ जाने का सकेत देता है। यह सिद्धि और ऋद्धि और कुछ नही है, इसमे आत्मसिद्धि और आत्मविकास के बीजमत्र निहित है। इन मत्रों को दे कर ही आदिकवि सत्य के प्रकाश के केन्द्र तारक-मत्र 'राम नाम' की ओर राम-चन्द्रिका के साधक को ले जाते है। सम्पूर्ण जगत् को आत्मा का क्रीडामय सहजानन्द प्रदान करने वाले राम की विश्वमगल विधायिनी रक्षाशक्ति को अपनी आत्मा के भीतर स्थान दे कर विश्ववेदना के शाश्वत प्रकाश मे आत्मदर्शन कर लेने का सदेश ही केशव ने अपनी भावना के भीतर प्राप्त किया है। आत्मा के अखड विकास की अनन्तता की जिस प्राप्ति के बीज को ले कर आदि कवि ने रामायण का निर्माण किया †, वही आत्मविकास का बीज केशव का भी प्रेरक मत्र है, इसमे सन्देह के लिए कोई स्थान नही बच रहता।

अपने स्वप्न ही मे जब केशव आदि कवि से पूछते है कि दुःख कैसे टलेगा, तब वाल्मीकि यही सन्देश देते है कि हरि स्वय तुम्हारी आत्मा के भीतर की अशांति को हर लेगा। हरि शब्द की व्युत्पत्ति को केशव के आदिकवि ने केवल 'हरि जू हरिहै$' के चार शब्दों मे बडी कुशलता से व्यक्त कर दिया है। जगत् की शरण का विधान करने वाले

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १ छन्द ७। † वाल्मीकि रामायण, बालकांड, सर्ग १, श्लोक २।
$ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छद ११।

राम के चरित्र का वर्णों मे वर्णन करने का आदेश केशव के आदिकवि ने उन्हें दिया है। इस तरह विश्वमगल विधान की योजना का, मानव के शील के उच्चतम विकास की योजना का चित्र आचार्य केशव की भावना के भीतर भी स्पष्टतः दिखाई पड रहा है।

केशव की रामचन्द्रिका हृदय-प्रसूत है। अलकार के सौन्दर्य से आकृष्ट होने वाला युगवाणी को भी अलकृत करके उसके द्वारा आत्मविकास का सन्देश देता है। केशव के अलकारों का यही रहस्य है। उनकी आत्मा मे बैठ कर राम उनकी वाणी को माध्यम बना कर स्वय व्यक्त हुए है, इसमे तनिक भी सन्देह नही है। रामचन्द्रिका मे इस सत्य की घोषणा कवि की वाणी ने कई बार की है।

'मुनिपति यह आदेश दे अब ही भये अदृष्ट, केशवदास तही कर्यो रामचन्द्र जू इष्ट ‡' के द्वारा अपने हृदय मे राम के अनन्तशील को बिठा लेने का स्पष्ट सकेत केशव का कवि देता है। राम को ही अपनी इष्ट वस्तु बना कर उनकी यश-चन्द्रिका की धवलिमा से जगत् के हृदय को प्रक्षालित कर देना केशव का अभीष्ट है। केशवदास ने अपनी मति को भूतनया सीता बना कर रामचन्द्र के चरणो की उपासना की है। उन्होने अपने लोचनो को 'रामचन्द्रपद पद्म' का भ्रमर बना दिया है †।

केशव राम की पूर्णता को सगुण-निर्गुण ध्यान के भीतर देखते है। राम के जगत्-प्रशसित धवल यश का हस जो मुनियो के पवित्र हृदय मे बराबर क्रीडा करता रहता है और जिसके आधार राम की, नीलमेघ और नीलाकाश की-सी श्यामता को सतो ने अपनी आँखों का अजन बना लिया है, उसी की प्रशसा केशव जी ने भी रामचन्द्रिका मे की है। सुन्दरतम यश और उसके आधार, सुन्दरतम रूप की उपासना ही केशव का अभीष्ट है। उनके राम कालत्रयदर्शी है, तथा निर्गुण होते उन्हे देरी नही लगती। 'कालत्रय दरशी निर्गुण-परशी होत बिलब न लागै' के द्वारा राम के सहज निर्गुण रूप की भावना केशव ने की है। इसी सगुण-निर्गुण का गुणगान करके अपने पुरातन पापों को भगा देने की योजना बना कर केशव ने रामचन्द्रिका को पृथ्वी पर अवतरित किया है। इस ग्रथ के अवतार ने उन्हे निश्चित ही आत्मसन्तोष और आत्मानन्द प्रदान किया है $।

केशव ने राम की ज्योति को, एकरूप हो कर, अभेद के वायुमडल में स्वच्छद हो कर, जगत् पर छायी हुई देखा है *। 'सूरज कुल' मे शुभद शील का दर्शन करने के लिए उनकी आँखे निरन्तर जागरूक रहती है, इसीलिए जीवन के पवित्रतम आदर्शो के आधार पर ही दशरथ को उन्होने 'शुभ-सूरज कुल-कलश' के रूप मे देखा है। दशरथ पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के भीतर भी विश्वमगल विधायक शील का दर्शन ही केशव का मनोवांछित अभीष्ट है। अयोध्या को वे 'यशधाम' के रूप में तथा पुरवासियों को अघओघ-विनाशी' शील से विभूषित देखते है §। विश्वामित्र की पवित्रता की ओर उनका ध्यान है। ऋषि के वशित्व की ऊँचाई पर विकसित हुई उनकी स्वार्थहीनता का दर्शन

‡ रामचन्द्रिका प्रकाश १ छद १८। † वही, छद १९। $ वही, छद २०। * वही, छंद २१। § वही, छद, २२–२३।

करना केशव नही भूलते‡ । विश्वामित्र के शिष्यों को भी शील की तेजस्विता से आलोकित होते हुए वे देखते है । पवित्र अयोध्या की तपोमयी स्थिति उनकी कल्पना के भीतर से हटने नही पाती† । उनके विश्वामित्र अयोध्या के पशु-पक्षियों तथा नर-नारियों को 'रामचन्द्र गुन गनत' देख कर मुग्ध हो जाते है$ ।

'नागर नगर अपार महा मोह तम मित्र से । तृष्णालता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से'* के द्वारा राम के शील के प्रभाव मे उत्पन्न, अयोध्या के भद्र पुरुषो की भद्रता का वर्णन करके केशव ने अपनी आदर्शप्रियता और रामभक्ति का पर्याप्त परिचय दिया है ।

यद्यपि अपने वर्णन की सामग्री के रूप मे केशव ने संस्कृत के साहित्य-ग्रन्थो की भाव-छाया स्वीकार कर ली है तथापि उनका वर्णन अनुभूतिशून्य नही है । अपने आनन्द को अभिव्यक्ति प्रदान करने मे यदि अपने पूर्वजो की भाव-छाया से ही उन्हे संतोष मिला है तो उन्होने उनकी छाया का आश्रय ले लेने मे अपना कोई अपमान अनुभव नही किया है । अपनी पूर्वपरम्परा को कई जगह प्राय: अविकल रूप मे ले कर भी उन्होने अपने व्यक्तित्व की रक्षा बराबर की है । उधार लेने की अपनी प्रवृत्ति के भीतर भी केशव ने अपनी निजी सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा को रक्षित रख लिया है । कर्म-सौन्दर्य और रूप-सौन्दर्य की अपनी मौलिक भावना की प्रेरणा से प्रेरित हो कर उसके अनुकूल जो सामग्री उनको अपने पूर्वज साहित्य-साधको मे मिली उसे ले लेने का लोभ वे संवरण न कर सके ।

उच्चतम जीवनदर्शन और अध्यात्मदर्शन के आधार पर केशव की रामचन्द्रिका का अध्ययन करने से हमे कवि के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का एक विराट् परिवेश दृष्टिगोचर होता है । केशव भी अपने शिव को राम के आदर्शो के उपासक के रूप मे प्रस्तुत करते है । राम के आदर्शो के कारण ही महादेव उस अनन्त शीलवाले राम का ध्यान निरन्तर किया करते है । ब्रह्मा राम के उन्ही गुणो को देखते रहते है, सरस्वती उन्ही के गुणो की गिनती करती रहती है, शेष अपने सहस्र मुखो से उन्ही के गुणो का वर्णन करते है, पर अंत नही पा सकते§ ।

केशव के वाल्मीकि स्वप्न मे उनसे कहते है—तुझे भले-बुरे का ज्ञान नही है । तू निरर्थक चर्चा करता और सुनता रहता है । जब तक तू रामदेव की चर्चा न करेगा तब तक तुझे देवलोक न प्राप्त हो सकेगा । मानव जीवन का यही उच्चतम विकास है और यह विकास राम के परमोच्च शील के चिन्तन से ही प्राप्त होता है× ।

इसी राम के शील की चर्चा करते हुए केशवदास के वाल्मीकि ने कहा है—'राम एक बार बोल कर उसे नहीं बदलते । वे इतने बडे दानी है कि जिसे एक बार दे देते है, उसे फिर से माँगने की आवश्यकता नही पडती । जिस शत्रु को वे एक बार पराजित कर लेते है वह अपना सिर कभी नही उठाता । मरे हुए शत्रु के प्रति वे वैरभाव नही रखते । राम का क्रोध कभी निरर्थक नही होता । एक बार शत्रु का सामना कर लेने पर वे उसे

---

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छंद २४ । † वही, छंद ३८ । $ वही, छंद ४४ । * वही, छंद ५० । § वही, छंद १४-१५ । × वही छंद १६ ।

पीठ नही दिखाते। वे अपने वैयक्तिक जीवन के भीतर लोक-जीवन के आदर्शो को कभी नही छोडते। उनके दान, सत्य, सम्मान और सुयश सब दिशाओं मे व्याप्त हो जाते है; क्योकि उनके इन सब गुणों का उपयोग विश्व भर के मगल-विधान के लिए होता रहता है राम का मन, लोभ, मोह, मद और काम के वश मे कभी नही होता। अवतारो मे श्रेष्ठ यही श्रीराम परब्रह्म है‡।'

केशवदास के वाल्मीकि के ये शब्द इस बात की प्रत्यक्ष गवाही देते है कि उनकी उपासना इन्ही आदर्शो की उपासना है। उनके चारो दशरथ-पुत्र सुन्दर मति और सुन्दर चित्त वाले आदर्श-प्रिय व्यवित है। उनके राम पृथ्वी पर आदर्शो की शीतल ज्योत्स्ना का आलोक फैलाने वाले भुवचन्द्र है। उनके भरत अपने आदर्शो के आभूषणों के कारण भारत की भूमि के भूषण है तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी विश्व की पीड़ा को शान्त करके विश्व-मगल विधायक 'दीह दानवदल दूषण' है†।

सरयू के वर्णन मे केशव उस नदी के पावन जल मे जीवन की पवित्रता को उत्पन्न करने की शक्ति का दर्शन करते है। उनकी सरयू 'शुद्ध गति' देने वाली, 'ऊरधफल' फलने वाली, जीवन के उच्चतम परिणामो की जन्मदात्री और पतित शील वालो के भीतर पावन विचार उत्पन्न करने की क्षमता रखती है $।

जीवन के आदर्शो का दर्शन करने वाले केशव का कवि पडितो को गुणो से सुशोभित, क्षत्रियो को धर्मप्रवर, वैश्यों को सत्य सहित तथा शूद्रों को ब्राह्मणो के पवित्र शील के प्रेमी के रूप मे देखता है *। जीवन के आदर्शो का यह उपासक कवि हरिश्चन्द्र के जगद्वन्द्य सत्यप्रेम को नही भूलता§। इसी हरिश्चन्द्र की याद दिला कर केशव के विश्वामित्र उनके दशरथ को 'सनातन सत्य' की उपासना करने की राय देते है और मोह छोड़ कर राम को यज्ञ-रक्षा के लिए वन भेज देने का उपदेश देते है×। केशव के वसिष्ठ, विश्वामित्र को आदर्श राजा और आदर्श मित्र की तरह देखते है। उनके 'अमित चरित्र' को वे 'रामचन्द्रमय' मानते है+। इस छंद की गवाही से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि राम का उच्चतम जीवन-आदर्श केशव की उपासना का विषय था और विश्व भर मे उन्ही आदर्शो की उपासना वे प्रत्येक व्यक्ति के शील मे करना चाहते थे। विश्वमगल विधायक शील के भीतर केशव ने लोभ, क्षोभ, मोह, गर्व, काम, कामना और यहाँ तक कि निद्रा, भूख, प्यास, त्रास और सब वासनाओं के अभाव का दर्शन किया है⚜। इन सब पर विजय प्राप्त करके विश्वमगल विधायक शील विश्वमगल विधान के कार्य मे लगा रहता है।

आश्रमों की सभ्यता का वही वातावरण केशव को मुग्ध करता है, जिसमे सत्साहित्य का अध्ययन होता रहता है, सिह और हरिण एक साथ रहते है, जहाँ किसी को दुख नही

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छद १७। † वही, छद २१-२२। $ वही, छद २६-२७। * वही, छद ४३। § वही, प्रकाश २, छद २१। × वही, छद २२। + वही, छंद २५। ⚜ वही, छद २८।

दिया जाता तथा सबके सुख का प्रबन्ध किया जाता है। जिस वातावरण मे दीनों को दण्ड नही दिया जाता, पर गर्व के लिए दण्ड और भेद की अवश्य व्यवस्था होती है, वैसा ही ऋषि-आश्रम केशव जी को अपनी ओर आकृष्ट करता है‡। ब्राह्मण के आदर्श शील के विरोधी राक्षसों के संहार मे, संहर्ता के आदर्श-शील की विभूति का दर्शन करके केशव मुग्ध होते हैं†।

रामचन्द्रिका अपने नाम से ही शील की अविरल उपासना का संकेत देती है और इस ग्रन्थ मे प्रारम्भ से ले कर अंत तक विराट् शील की उपासना ही हुई है। केशव के परशुराम पर भी राम के विनम्र और पवित्र शील का ऐसा प्रभाव पडता है कि वे उन्हें 'शील-समुद्र' मान लेते है$।

जीवन के समग्र आदर्शो के प्रति केशव पूर्ण जागरूक दिखाई पडते है। चन्द्रिका के नवे प्रकाश मे वन-गमन के समय उनके राम ने पिता के प्रति पुत्र के धर्म पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। पति के प्रति नारी के कर्तव्य तथा विधवा स्त्रियों के धर्म का भी, अपनी माता कौशल्या के समक्ष, उन्होने बडा सुन्दर विवेचन किया है।

व्यक्ति के शील के भीतर देशप्रेम और राष्ट्रप्रेम का भी बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। 'भारत-भूमि' की केशव ने कई बार चर्चा की है और इस चर्चा के भीतर इस भूमि के लिए उनकी रक्षा-भावना स्पष्टत. दृष्टिगोचर होती है तथा उनके राम और लक्ष्मण 'भारत भूमि' की रक्षा मे प्रवृत्त दिखाई पडते है*। 'भारत खड' को राजा के रूप मे भी केशवदास ने देखा है§। उनके भरत 'भारत-भुव-भूषन' है×। इन साक्ष्यो से यह सिद्ध हो जाता है कि केशव के भीतर एक अखण्ड राष्ट्र के रूप मे भारत की कल्पना थी और इस राष्ट्र का शृंगार वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के समान आदर्श वीरो के द्वारा, सपन्न होते हुए देखना चाहते थे। 'कवि प्रिया' मे भी ओरछा-नरेश भारतिचद को केशव ने 'भरथखड-मडन' कहा है तथा रसातल में जाते हुए देश की उनके द्वारा रक्षा की बात कही है+। 'कविप्रिया' के पहले ही प्रभाव में केशव ने दूसरे ओरछा-नरेश भारती शाह को भरतखड भूषण कहा है❋।

दाम्पत्य जीवन की पवित्रता के चित्र का, केशव जी ने सीता और राम के सयोग और वियोग की स्थितियो मे, बडा ही सुन्दर अकन किया है। केशव जी के इन अंकनो में विश्व के शील की रक्षा की उनकी भावना स्पष्टत. परिलक्षित होती है और इस बात में तनिक भी सन्देह नही रह जाता कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की योजना केशव की कल्पना के भीतर अपने निश्चित और स्पष्ट रूप मे विद्यमान थी। वर्णाश्रम विभाजन के आधार पर बने हुए आदर्श समाज की बडी पवित्र कल्पना केशव जी के मस्तिष्क मे जागरूक हो कर बैठी हुई थी। सामन्तयुगीन समाज की जितनी पवित्र,

---

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश ३, छंद २-३। † वही, छंद ९। $ वही, प्रकाश ७, छद २७। * वही, प्रकाश १४, छद ३८। § वही, प्रकाश २०, छद ३०। × वही, प्रकाश १, छद २२। + कविप्रिया, प्रभाव १, छद १९। ❋ वही, छद ३७।

सुन्दर और सूक्ष्म कल्पना सभव हो सकती है उसका एक स्पष्ट चित्र केशव जी ने अपनी प्रतिभा से देख लिया था।

शुक्रनीति के आधार पर केशवदास ने रामचन्द्रिका मे राजनीति का वर्णन किया है। आदर्श के विकास-क्रम की दृष्टि से रावण के मन्त्री महोदर ने उसे शुक्रनीति के आधार पर चार प्रकार के राजाओं के लक्षण बताये है। शुक्रनीति के अनुसार एक तरह का राजा केवल ऐहिक और भौतिक उन्नति पर विश्वास करता है और राजा बेन की तरह अपने को ही ईश्वर मानता है। हरिश्चन्द्र की तरह दूसरे प्रकार का राजा केवल परलोक की ही सिद्धि करता है। इस लोक की उन्नति की उसे विशेष चिन्ता नही रहती। विदेह के समान तीसरे तरह के राजा को केशव जी आदर्श मानते है, जो ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्रकार की सिद्धियो को अपनी साधना का लक्ष्य बनाता है। शील की दृष्टि से त्रिशकु की तरह चौथे प्रकार के राजा हीनतम होते है जो ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियो को नष्ट कर देते है ‡।

शुक्रनीति के अनुसार ही केशव ने रावण के मत्री महोदर के द्वारा चार प्रकार के मत्रियो के लक्षण प्रस्तुत किये है। शील-विकास की दृष्टि से ही मत्रियो के भी शुक्राचार्य के द्वारा प्रदर्शित चार प्रकार केशव भी स्वीकार करते है। एक प्रकार का मत्री अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए राजा के कार्य को नष्ट कर देता है। दूसरे प्रकार का मत्री राजा के कार्य की सिद्धि के लिए अपने स्वार्थो की बलि दे देता है। तीसरे प्रकार का मत्री अपने स्वार्थो की सिद्धि के साथ राजा के स्वार्थ की भी सिद्धि करता चलता है। आदर्श की दृष्टि से सबसे हीनतम आदर्श वाला चौथे प्रकार का मत्री अपना और अपने स्वामी का भी लक्ष्य नष्ट कर डालता है †।

व्यक्ति और समाज के आदर्शमय विकास के लिए केशवदास चार वर्ण, चार आश्रम तथा चार पुरुषार्थो को आवश्यक समझते है। उनके अनुसार समाज का चार वर्णो मे विभाजन करने वाला सिद्धान्त ही समाज-विज्ञान का उच्चतम सिद्धान्त है। व्यक्ति के शील के उच्चतम विकासक्रम मे चार आश्रम तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार पुरुषार्थो के समुचित सन्तुलन को केशवदास आवश्यक मानते है। अर्थ और काम को धर्मबुद्धि के द्वारा सचालित करके स्वार्थ को परमार्थ तक पहुँचा देने के क्रम मे ही उन्होंने मुक्ति के विकास का दर्शन किया है $।

शील की दृष्टि से केशवदास ने राजा, युवराज, पुरोहित, मत्री और मित्र के आदर्श रूप का दर्शन कुछ दोषों के अभाव की भावना के भीतर किया है। काम, कुटिलता, कृपणता, कृतघ्नता और शत्रुभाव ही वे दोष है जिनका सर्वथा अभाव केशवदास समाज के उपर्युक्त व्यक्तियो मे देखना चाहते है। राजा, युवराज, पुरोहित और मत्री—ये सामन्त-युगीन समाज के चार प्रमुख स्तम्भ हैं। 'मित्र' के भीतर पूरा समाज ही आ जाता है। इस

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १७, छद २० से २२ तक। † वही, प्रकाश १७, छद २५।
$ वही, प्रकाश १८, छंद ८।

तरह प्रत्येक व्यक्ति से सवद्ध पूरे समाज के आदर्शरूप को केशव नि स्वार्थता, निश्छलता, उदारता, कृतज्ञता और मैत्रीभाव के वातावरण मे प्रकाशित देखना चाहते है‡ ।

केशवदास की जागरूक दृष्टि ने रामचन्द्रिका मे मनुष्य के जीवन के भीतर उत्पन्न होने वाले सब कष्टो को, बाल्यावस्था से ले कर वृद्धावस्था तक देख लिया है । अपनी विरक्ति मे उनके राम. जीवन का यही सिहावलोकन करते है । काम, क्रोध, मोह, लोभ और अभिमान मे जलते हुए मानवमन का दर्शन केशव जी के राम ने किया है और इन सबका कारण, उन्होने हृदयकमल मे तृष्णारूपिणी भ्रमरी के निवास को ही माना है† ।

कष्ट के निवारण का उपाय भी केशवदास ने रामचन्द्रिका मे बताया है । अभिमान को छोड कर जो विश्व भर मे अपने को देखने लगता है उसे अभेद-दर्शन प्राप्त हो जाता है और वह जगत् के सन्तापो से अस्पृष्ट हो जाता है । परम्परा-पुष्ट इस अद्वैतवादी सिद्धान्त को केशवदास ने भी स्वीकार किया है$ । अत: जीवन के पूर्ण विकास का ऐसा कोई पक्ष नही है जिसके लिए केशवदास जागरूक न हो ।

केशवदास के अध्यात्मदर्शन और साधना-सिद्धान्त पर दृक्पात करने पर यह ज्ञात होता है कि वे अभेदवादी तथा समन्वयात्मिका प्रवृत्ति के साधक है । हरि और हर का जो समन्वय गोस्वामी जी ने किया है वही उनका भी अभीष्ट है* । ब्रह्मानन्द की अभेद-भावना मे तल्लीनता पर भी उनका विश्वास है । पूर्णपुरुष परमात्मा ससार की रक्षा करता रहता है । रक्षा का यह सिद्धान्त केशव को भी मान्य है§ । सर्वव्यापी अनन्त पुरुष की आदिशक्ति ही जगन्माता सीता के रूप मे अवतरित होती है । परम्परा से चले आये हुए इस सिद्धान्त को वे भी मानते है× ।

अवतारी ब्रह्म के पुरुषोत्तम और शीलमय दर्शन को केशव भी पावन मानते है+ । ब्रह्म की पूर्ण ज्योति का ज्ञान और उसका अनुभव प्राप्त करके जीव भी ब्रह्म के समान हो हो जाता है । केशव भी इस स्थिति को स्वीकार करते है ✢ । असख्य शीलवान् व्यक्तियों के कष्टो को दूर करने के लिए ही निर्गुण सगुण हो जाता है । इस सिद्धान्त को श्लेष के बडे सुन्दर आवरण से केशव ने व्यक्त किया है¶ ।

अनन्त जब अनन्तशील को ले कर अवतरित होता है, तब उसके दर्शनमात्र से ससार के जीवों के मन पवित्र हो जाते है और उनकी सब स्वार्थमयी कामनाएँ शान्त हो जाती है । इस सिद्धान्त को रामचन्द्रिका के छठवे प्रकाश मे केशवदास ने व्यक्त किया है । वे इस सिद्धान्त को स्वीकार करते है कि जिस शक्ति को योगी अपनी समाधि मे भी नही देख सकता, जो रुद्र के 'चित्त-समुद्र' मे निवास करती है, जिसका वर्णन ब्रह्मा भी नही

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १८, छद ९ । † वही, प्रकाश २४, छद १ से २० तक । $ वही, प्रकाश २५, छद १८ । * वही, प्रकाश ३, छद २ । § वही, प्रकाश ४, छद १४ और १५ । × वही, प्रकाश ४, छद २८ । + वही, प्रकाश ५, छद ५ । ✢ वही, प्रकाश ५, छद २२ । ¶ वही, प्रकाश ५, छद ४२ ।

कर सकते, जो अनादि और अनन्त ज्योति रूप, रग और रेखाओं की सीमा को लाँघ जाती है, वही मूर्तिमती हो कर सगुण हो जाती है ‡ । केशवदास अपनी भावना के भीतर इस बात को स्पष्टतः देख लेते है कि अनन्त शीलवती सीता को अपनी पुत्री के रूप मे प्राप्त करने के कारण ही, 'अखिल भुवनभर्ता', ब्रह्म, रुद्र इत्यादि को जन्म देने वाले, अग-जग के भीतर सुन्दर हो कर बैठे हुए राम को अपने जामाता के रूप मे जनक प्राप्त कर सके † ।

केशवदास के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम पूर्णपुरुष होता है और अपने रूप और गुणो के कारण वह शत्रु को भी अपनी ओर आकृष्ट करके मुग्ध कर लेता है $ । साधना के क्षेत्र मे समन्वयवादी केशव ने राम और परशुराम को शकर के उपासक की तरह चित्रित किया है । अविकारी शील मे ही लोकमगल विधान की शक्ति होती है । वह हर तरह से सन्तुष्ट रहता है । इसी सन्तोष का दर्शन करके मगलमय शिव भी सन्तुष्ट होता है । केशवदास के सामने विराट् जीवन की यह परमोच्च परिणति बिलकुल स्पष्ट है । वे भी तुलसी इत्यादि की परम्परा मे राम और परशुराम को नारायण का अवतार मान कर उन दोनों के प्रति पूज्यभाव और अभेद बुद्धि रखते है ।

केशवदास जी भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते है कि अवतारी ब्रह्म के भीतर शत्रु-मित्रभाव का द्वद्व नही रहता * । जीवन के विकास को स्वार्थमयी वासना काट देती है। इस सिद्धान्त को भी वे स्वीकार करते है § । अध्यात्मदर्शन के आधार पर वे ईश्वर की मायाशक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को मुग्ध और परिचालित होता हुआ देखते है । ब्रह्म के इसी जगत्-शासन-सिद्धान्त के अनुसार उनकी गंगा भरत को, कैकेयी के निर्दोषत्व से परिचित कराती है । केशवदास जी इस सत्य के प्रति भी जागरूक है कि अभेद दर्शन की श्रेष्ठ विद्या ही ज्ञान बन कर जीव को सच्चा और अहैतुक आनन्द प्रदान करती है ।

भक्ति साधना के भीतर भक्त के दैन्य का सिद्धान्त केशव भी स्वीकार करते है । उनके अनुसार यह दैन्य निरभिमानता की पवित्रता से सब पापो को भस्म कर देता है × । सेतुबध के प्रकरण मे उन्होंने राम की शिवभक्ति का बडा कोमल चित्र प्रस्तुत किया है तथा भवसागर मे जीव के जहाज का उन्हे मल्लाह माना है + । रघुनायक के व्यापक रूप को उन्होंने जल और स्थल के सम्पूर्ण प्रसार पर व्याप्त देखा है ⚘ । और राम को नारायण से भी अधिक महत्त्व दिया है ¶ । ब्रह्मा और विष्णु से भी अधिक महत्त्व रुद्र को केशव के रावण ने प्रदान किया है ‡⊕ ।

केशवदास के अनुसार केवल राम ही काम के लायक है । बाकी सब व्यर्थ है ‡‡ । उनके अनुसार अनन्त शक्तिवान् भी मर्यादा को भग नही करता । ब्रह्मा के नाग-पाश मे

---

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश ६, छद १७ और १८ । † वही, प्रकाश ६, छद २७ । $ वही, प्रकाश ७, छद १४ । * वही, प्रकाश ७, छंद ४४ से ४६ तक । § वही, प्रकाश ७, छंद ५० । × वही, प्रकाश १५, छद २४ । + वही, प्रकाश १५, छंद ३४-३५ । ⚘ वही, प्रकाश १५, छद ३७ । ¶ वही, प्रकाश १६, छंद ३१ । ‡⊕ वही, प्रकाश १६, छद १० । ‡‡ वही, प्रकाश १६, छद २५ ।

बँधे हुए राम की इसी दृष्टि से केशव ने कल्पना की है ‡। उन्होंने अति निर्गुणता के भीतर भी सगुणता का दर्शन किया है† । अवतारी राम को उन्होंने आदर्शों के प्रति निरन्तर जागरूक दिखलाया है $ ।

लक्ष्मण को शक्ति लगने के बाद राम के क्रोध के द्वारा, केशव ने अनन्त की अनन्त शक्ति का विकास उनके भीतर चित्रित किया है । राम की अनन्त शक्ति की उपासना की उनकी भावना इस स्थिति मे व्यजित हो जाती है * । उन्होंने भी वानरो को देवताओं की सगुण परिणति के रूप मे तथा रघुनाथ राम को जगन्नाथ के रूप मे देखा है § । केवल भाग्यवाद को केशवदास हेय मानते है × । उन्होने राम को योगीश शिव के स्वामी की तरह तथा सीता को योगमाया की तरह देखा है+ ।

केशवदास के राम भी अन्तर्यामी, निर्गुण, सगुण, ज्योति स्वरूप, अनिर्वचनीय, असीम, अनादि, अनन्त और अरूप है । गुण और गण वाले सब वही है । एक होते हुए भी वे अनेक रूप धारण कर सकते है । रजोगुण भी उन्ही का रूप है, जिसमे जगत् की सृष्टि ब्रह्मा किया करता है । उसी राम का सत्वरूप जगत् की रक्षा करता रहता है । उसी को जगत् विष्णु कहता है । उसी का तमोगुण रूप शिव बन कर जगत् का सहार करता है । वही ससार है और ससार उसी मे है । जब वह ससार को मर्यादाविहीन देखता है तब सगुण हो कर उसे मर्यादित कर जाता है । कच्छप, मीन, बाराह, नृसिह वामन; परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि, सब उसी के रूप है । उनके 'श्री रघुवर' 'गननायक' है ✢ ।

त्रिवेणी को केशवदास भी ब्रह्म का द्रवरूप शरीर मानते है¶ । अत. उनके अनुसार भी उसके स्पर्श से अनन्त जन्मों के कलुषो का नाश हो जाता है । सत्य के रूप मे ब्रह्म की उपासना भी उनका अभीष्ट है ‡⊕ । लक्ष्मण को वे भी शेषावतार मानते है ‡‡ । केशवदास के राम भी आदिदेव और सर्वज्ञाता है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और चन्द्र इत्यादि सब उन्ही के अशावतार है । ब्रह्म से ले कर परमाणु तक अज, अनन्त रघुबर को ही वे व्याप्त देखते है ‡† वैदिक विधियुक्त आनुष्ठानिक क्रियाओ की ओर उनका झुकाव था ‡$ ।

केशवदास नर-रूप शीलवान् ब्राह्मण को नारायण का रूप मानते थे ‡* । वाणी, मन और शरीर की पवित्रता पर उनका ध्यान था ‡§ । सत्य की उपासना भी उनकी जागरूक दृष्टि से ओझल नही होती ‡× ।

---

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश १७, छद १३ । † वही, प्रकाश १७, छद ४३ । $ वही, प्रकाश १७, छद ४६ । * वही, प्रकाश १७, छद ४९ । § वही, प्रकाश १८, छद ११ । × वही, प्रकाश १८, छद १० । + वही, प्रकाश २०, छद १२ । ✢ वही, प्रकाश २०, छद १५ से २४ तक । ¶ वही, प्रकाश २०, छद ३३ । ‡⊕ वही, प्रकाश २०, छद ४९ । ‡‡ वही, प्रकाश २० छद ५२ । ‡† वही, प्रकाश २०, छद ५४–५५ । ‡$ वही, प्रकाश २१, छद ३ । ‡* वही, प्रकाश २१ छद ५ । ‡§ वही, प्रकाश ६, छंद ५२ । ‡× वही, प्रकाश ६, छद ५१ ।

श्रद्धापूर्वक अपने हाथ से दिये हुए दान को केशव सात्विक मानते हैं, आलस्य के कारण दूसरे के हाथ से भेजे हुए दान को वे राजस मानते है तथा हीन विधान से दिये हुए दान को तामस। विनयपूर्ण शील का जीवन-दर्शन, इस तरह, केशवदास की दृष्टि मे बराबर बना रहता था। केशव के अनुसार दान, पहले अपने आश्रितों को, उसके बाद नगर के लोगो को, नगर के लोगो के बाद देश के लोगो को और शक्ति के अनुसार अवशेष विदेशियो को देना चाहिए ‡। यहाँ भी जीवनदर्शन के भीतर मनुष्य के हृदय के स्वाभाविक और उत्तरोत्तर विकास पर केशव का ध्यान केन्द्रित है।

ब्राह्मण के घर मे जा कर विधियुक्त और श्रद्धापूर्वक दिये गये दान को केशव जी उत्तम दान मानते है। केशव के अनुसार, ब्राह्मण को घर पर बुला कर दिया हुआ दान मध्यम है तथा माँगने पर, अपनी कृपा करने की अहमन्यता को ध्यान मे रख कर दिया हुआ दान 'अति हीन' है†। यहाँ भी उत्तम दान मे शील की उच्चतम विनम्रता की ओर केशव का ध्यान बराबर बना हुआ है।

सद्भावना और कर्तव्यबुद्धि के आदेश से दिये हुए दान को केशवदास दक्षिणदान मानते है, तथा दुर्भावना और स्वार्थबुद्धि से दिये हुए दान को वे वाम दान कहते है। दुष्ट दानी को वे आँखों से देखना भी नही चाहते। उनका यह सिद्धान्त है कि सात्विक दान से मनुष्य के हृदय मे विश्वमगल विधान की पवित्र भावना का विकास हो जाता है और परमात्मा भी उसके वश मे हो जाता है। ऐसा व्यक्ति तो तत्वत: नारायण ही हो जाता है। अनन्त प्रकार के दानों के भीतर उन्होंने भूदान यज्ञ को श्रेष्ठ माना है $।

केशवदास के अनुसार जीव जब लोभ, मद, मोह और काम के वश में हो जाता है, तब वह अपने सहज रूप को भूल जाता है, वह दुर्बल हो कर इन्हीं भीतरी शत्रुओं से शासित होता रहता है*। उनके अनुसार मुक्ति रूपिणी नगरी के द्वार के चार कुशल रक्षक है, वे है—(१) साधुओं की सगति (२) समता की भावना (३) सतोष और (४) विवेक§।

केशव इस जगत् को अज्ञान के अधकार से घिरे हुए चक्रव्यूह की तरह मानते है। इसमे प्रवेश करके निष्कलक बाहर निकल जाने वाले को वे साधु मानते है। विषयो के भीतर बैठे हुए भी जो उनसे अनासक्त रहते है, उन्ही की द्वन्द्वविहीन समता केशवदास को सुन्दर प्रतीत होती है। वासनाओं से अनासक्त रह कर जो सुख और दुख से प्रभावित नहीं होता, वही परमोच्च आनन्द मे मग्न होता है और इसी स्थिति को केशवदास सतोष कहते है। पूर्णता और अपूर्णता के बोध, आत्मा के हित और अहित के ज्ञान तथा पूर्णता की ओर बढ़ने वाली जागरूक अन्तर्दृष्टि को वे विचार या विवेक कहते है×।

सत्सग, समत्व, सन्तोष और विवेक मे से एक की भी सिद्धि हो जाने से नारायणत्व की प्राप्ति को केशवदास सम्भव मानते है। ब्रह्म की अनन्त शक्ति के भीतर निरीहता और

---

‡ रामचन्द्रिका प्रकाश २१, छन्द ३ से ७ तक। † वही, प्रकाश ३, छद ९। $ वही, प्रकाश, २१, छद ११ से १३ तक। * वही, प्रकाश २५, छंद ३। § वही, प्रकाश २५ छद ९। × रामचन्द्रिका, प्रकाश २५, छंद १० से १३ तक।

निरंजनता के साथ वे इच्छा की स्थिति स्वीकार करके ब्रह्म मे माया की स्थिति स्वीकार कर लेते है। इसी स्वीकृति के कारण वे विशिष्टाद्वैत के चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म को मान लेते है। अवतार तभी सम्भव और सत्य हो सकता है‡। कर्म और हृदय की शुद्धि के भीतर जिसका मन स्वार्थो से अनासक्त हो जाता है, वही केशव के अनुसार जीवन्मुक्त होता है। अहभाव से मुक्ति को ही वे सच्ची मुक्ति मानते है। विवेक के द्वारा गुण-दोषों से अनासक्त हो जाने वाले व्यक्ति को वे जीवन्मुक्त कहते है†। जिसका मन राम के चरणों मे लीन हो जाता है वही वासनाओ से अनासक्त होता है। मृत्यु उसे छू नही सकती। अनन्त आनन्द उसी के भीतर उदित होता है। अत केशवदास के अनुसार भक्ति ही मुक्तिदायिनी है। अनन्त आनन्द का उदय उसी के भीतर होता है। हठयोग की प्राणायाम इत्यादि विधियो को वे भक्ति के साधन की तरह स्वीकार करते है$।

निर्गुण उपासना को केशवदास एक ऐसी अद्भुत अग्नि की तरह स्वीकार करते है, जिसमे शुभाशुभ वासनाएँ भस्म हो जाती है॰। राग और द्वेष मे मुक्त आत्मा को धर्म और अधर्म नही छू सकते। ऐसी आत्माओ के भीतर केशव हर्ष और शोक का अभाव मानते है§।

सब दृश्यो को झूठा समझने वाला ही केशवदास के अनुसार महात्यागी है। सब भोगो को स्वीकार करके भी जो उनसे अनासक्त रह सकता है उसी को केशव महाभोगी कहते है। भोग जिन पर राज्य करने लगे, वह भोगो का दास होता है। जो भोगो को अपने नियन्त्रण मे रख कर, उनसे अनासक्त रह कर, अपने पास रखता है, वही भोगों का शासक, उनका राजा तथा महाभोगी होता है। भोग और योग को इस तरह अपने साथ रखने वाला ही केशवदास के अनुसार राम को प्राप्त कर सकता है। अत केशवदास के अनुसार विवेक, सत्य, करुणा, निग्रह, आदर्श जीवन की कथाओ का अपने भीतर सग्रह, साधुओं का सग्रह, हृदय मे योग, शरीर के स्वाभाविक धर्मो का योग जिनके साथ है वे गृहस्थ जीवन और ऋषि जीवन को सदा अपने साथ रखते है। राम के नाम को केशवदास सब गुणों का उद्गम स्थान मानते है×। वे जीव और ब्रह्म की एकता का अद्वैतवादी सिद्धान्त भी मानते है+। सीता के जीवन की अनत पवित्रता को अनत शक्ति बन कर उनके भीतर बैठी हुई, केशवदास ने देखा है*। इस तरह उनकी 'रामचन्द्रिका' भी, जीवनदर्शन को पराकोटि पर ले जा कर, अध्यात्म दर्शन की आत्मनिष्ठता की अनासक्ति तक पहुँचा देती है।

'रामचन्द्रिका' के पहले प्रकाश मे मगलाचरण और राम के जीवन का आरम्भ है। दूसरे प्रकाश मे विश्वामित्र आ कर राम को यज्ञरक्षा के लिए ले गये है। तीसरे प्रकाश मे

---

‡ वही, प्रकाश २५, छद १४-१५। † वही, प्रकाश २५, छद १७ से १९ तक। $ वही, प्रकाश २५, छद २१ से २३ तक। ॰ वही, प्रकाश २५, छद २९ से ३३ तक। § वही, प्रकाश २५, छद ३५। × वही, प्रकाश २५ छद ३६ से ४० तक। + वही, प्रकाश ३७, छद ११। * वही, प्रकाश ३९, छद १०।

यज्ञरक्षा हुई है और सीता-स्वयवर का समाचार मिला है। चौथे प्रकाश में रावण, बाणासुर तथा सब राजाओ की धनुर्भंग मे असमर्थता की चर्चा है। पाँचवें प्रकाश मे अहल्या का उद्धार तथा धनुर्भंग है। छठवे प्रकाश मे रामविवाह है। सातवे प्रकाश मे परशुराम के मानभंग का प्रकरण है। आठवें प्रकाश मे अयोध्या आगमन तथा नवे प्रकाश मे सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन है। दसवे प्रकाश मे दशरथ की मृत्यु, भरत का चित्रकूट से राम की पादुका के साथ वापस आना तथा नदिग्राम मे उनका निवास वर्णित है। ग्यारहवे मे शूर्पणखा दडित हुई है। बारहवे प्रकाश मे खर इत्यादि का वध तथा सीताहरण हुआ है। तेरहवे प्रकाश मे बालिवध, हनुमान् का लका जाना और अक्षवध के बाद ब्रह्मपाश मे इद्रजीत के द्वारा उनका बाँधा जाना वर्णित है। चौदहवे प्रकाश मे लका-दहन मे ले कर समुद्र तट तक राम के आने की घटनाएँ है। पन्द्रहवे प्रकाश मे विभीषण राम के पास आते हैं और सेतु-निर्माण होता है। सोलहवे प्रकाश मे अगद-रावण सवाद तथा रावण के मुकुटों को ले कर अगद के उड जाने की चर्चा है। सत्रहवे मे सजीवनी के प्रयोग से लक्ष्मण की रक्षा तक की घटनाएँ वर्णित है। अट्ठारहवे प्रकाश मे कुभकर्ण और मेघनाद का वध हुआ है। उन्नीसवे प्रकाश मे रावण-वध तथा बीसवे प्रकाश मे प्रयाग मे भरद्वाज के आश्रम तक राम आये हैं। इक्कीसवे प्रकाश मे भरद्वाज ऋषि ने राम से दान-विधि की चर्चा की है तथा नदिग्राम मे आ कर राम भरत से मिलते है। बाईसवे प्रकाश मे अयोध्या मे आ कर राम अपने हृदय के अपार स्नेह के साथ नागरिकों और माताओं मे मिलते है।

इस तरह आदर्शप्रियता का वातावरण 'रामचन्द्रिका' मे आद्योपान्त बना रहता है। तेईसवे प्रकाश मे राम स्वय राज्यश्री की निन्दा करते है। चौबीसवें प्रकाश मे मर्यादा पुरुषोत्तम की पावन विरक्ति का वर्णन है। पच्चीसवे प्रकाश मे वसिष्ठ ने राम को जीव के उद्धार के उपाय बताये है। छब्बीसवें प्रकाश में राम-नाम का तत्त्व समझाया गया है। गोस्वामी जी के 'चहुँजुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेखि नहिं आन उपाऊ' ‡। 'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम-नाम अवलबन एकू' † और 'कलियुग केवल हरि-गुन गाहा। गावत नर पावहि भवथाहा।। कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार रामगुन गाना।। सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं। सोइ भव तर कछु ससय नाहिं। नामप्रताप प्रगट कलि माहि $।।' का पूरा चित्र केशव के 'जब सब वेद पुराण नसैहै। जप तप तीरथ हू मिटि जैहै। द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारे। तब जग केवल नाम उधारे' * मे मिलता है। सत्ताईसवे प्रकाश मे राज्याभिषेक के बाद ब्रह्मा इत्यादि के द्वारा की गयी राम की स्तुतियाँ है। इन सब स्तुतियों मे मर्यादा पुरुषोत्तम के महामानवत्व और परमोच्च देवत्व पर एक साथ ही प्रकाश पडता है। अट्ठाईसवे प्रकाश मे रामराज्य का वर्णन है। यहाँ भी वही मर्यादा पुरुषोत्तमत्व अपने परमोच्च शिखर पर पहुँचा हुआ दिखाई पडता है। उन्तीसवे प्रकाश मे राम के चौगान का खेल तथा शृगारशाला, मत्रशाला और

‡ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २२ के पहले। † वही, दोहा २७ के पहले।
$ वही, उत्तरकांड, दोहा १०३ से पहले। * रामचन्द्रिका, प्रकाश २६, छद ८।

जलशाला मे राम का वर्णन है। रगमहल की ओर सीता के साथ जाते हुए राम की सगुणता और निर्गुणता का बडा सुन्दर और सक्षिप्त परिचय 'जाके रूप न रेख, गुण जानत वेद न गाथ। रगमहल रघुनाथ गे राजश्री के साथ' द्वारा दिया है‡। तीसवे प्रकाश मे रगमहल, सगीत और शयन इत्यादि का वर्णन है। एकतीसवे प्रकाश मे सीता और उनकी दासियो का वर्णन है। बत्तीसवे प्रकाश मे उपवन वर्णन तथा राम की जलक्रीडा का वर्णन है। तैंतीसवे प्रकाश मे ब्रह्मा के द्वारा राम की प्रार्थना, शम्बूक-वध, सीता-परित्याग और लवकुश-जन्म का वर्णन है। इस प्रकाश मे राम के मर्यादा पुरुषोत्तमत्व के गौरव पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। चौतीसवे प्रकाश मे लवणासुर के वध इत्यादि से सम्बद्ध घटनाएँ है। पैंतीसवे प्रकाश मे अश्वमेध यज्ञ तथा लव-शत्रुघ्न युद्ध का वर्णन है। छत्तीसवाँ प्रकाश पैंतीसवे की घटनाओ का विकास मात्र प्रस्तुत करता है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इत्यादि के पराजय के बाद भरत और अगद इत्यादि वाल्मीकि के आश्रम मे बालको से युद्ध करने जाते है! सैंतीसवें प्रकाश मे भरत पराजय का वर्णन है। अडतीसवे प्रकाश मे अगद-लव के युद्ध का वर्णन तथा राम का आश्रम मे आना तथा लव-कुश के द्वारा, उस दिन के युद्ध मे भी, सफलता-प्राप्ति का वर्णन है। उन्तालिसवे प्रकाश मे सीता-राम मिलन, यज्ञ-पूर्ति और पुत्रों मे राज्य के विभाजन का वर्णन है। 'रामचन्द्रिका' यही पूरी हो जाती है मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन के पूर्ण चित्र को प्रस्तुत करके।

इस प्रकाश के अन्त मे राम ने अपने पुत्रो और भतीजो को मर्यादा का उपदेश देते हुए कहा है—

> राजश्री वश कैसहूँ होहु न उर अवदात,
> जैसे तैसे आपु वश ताकहूँ कीजै तात†।

इस तरह मर्यादा पुरुषोत्तम अपने जीवन की पावन अनासक्ति को अपने पुत्रों को दे कर उन्हें लोकमगल विधान के निस्स्वार्थमय कार्य मे लगा देते है।

इस ग्रथ को सम्पूर्ण करते हुए केशवदास ने कहा है—

'अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय। विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय। लहै सुभुक्ति लोक लोक अन्त मुक्ति होहि ताहि। कहै सुनै पढै गुनै जु रामचद्र चन्द्रिकाहि $।'

इस तरह लोकमगल-विधान करने वाले, पूर्णपुरुष, मर्यादा पुरुषोत्तम के शील की उपासना के आधार पर केशव ने रामचन्द्रिका के रूप मे एक पावन भक्तिग्रथ को पृथ्वी पर अवतरित कर लिया है। अपने इस ग्रथ की सहायता मे, प्रत्येक मनुष्य के भीतर, पुरुषोत्तम के शील का विकास, केशवदास ने देखना चाहा है।

आचार्य केशव के बाद खानखाना रहीम का क्रम, साधना की दृष्टि से रखा जा सकता है। अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म लगभग सम्वत् १६१३ मे तथा मृत्यु ७० वर्ष

‡ रामचन्द्रिका, प्रकाश २९, छद ४५। † चन्द्रिका प्रकाश ३९, छद ३६। $ वही, प्रकाश ३९, छद ३९।

की आयु मे सम्वत् १६८३ मे हुई थी। मुसलमान होते हुए भी तुलसी के समसामयिक उदार हृदय रहीम रामभक्ति की ओर झुके हुए थे।

मुगलो के शासनकाल मे धार्मिक समन्वय के लिए युग आ चुका था। भाषा, भाव तथा विचार और शैलियो का समन्वय हो चला था। उसी समन्वयात्मक काल की एक विभूति रहीम भी थे। इनमे उपर्युक्त सब गुण मिलते है। रहीम की कृष्ण-भक्ति तो प्रसिद्ध ही है। वे राम, भक्त भी थे। उनका मनचकोर एक ओर 'निसि-बासर', 'कृष्णचन्द्र की ओर लगा रहता था‡ तो दूसरी ओर वे 'खल-दानव-बन-जान प्रिय रघुबीर' का भी ध्यान करते थे।

बरवै नायिका भेद मे मगलाचरण करते हुए रहीम जी ने लिखा है—"बदौ देवि सरदवा, पद कर जोरि। बरनत काव्य बरैवा, लगै न खोरि'†। अपने 'बरवै' के मगलाचरणो मे तो रहीम जी ऋद्धि-सिद्धि के पति गणेश की वन्दना करते है, मन दृढ करके 'बृषभानु कुँवरि' के 'प्रान-अधार' नन्दकुमार का स्मरण करते है, 'चराचर नायक' सूर्य का भजन करते है, 'सोच, बिमोचन गिरिजा ईस त्रिलोचन' का ध्यान करते है और 'बिपद-बिदारन सुवन समीर' हनुमान का स्मरण करते है*। गोस्वामी जी के साथ उनकी जनश्रुत मैत्री ही रहीम की रामभक्ति का कारण हो सकती है।

नीति और शील की पवित्रता के उपासक रहीम पवित्र रसिकता के भी उपासक थे। आचार्य वल्लभ के मार्गनिर्देशन मे जो निश्छल और पवित्र प्रेम-रस मधुर हो कर कृष्णभक्ति मे पुनः अवतीर्ण हुआ और आध्यात्मिक प्रणय के सिद्ध तथा परम रसिक कलाकार सूर जिस प्रेम-साधना के रस-सिद्ध शिल्पी बने, उसमे रहीम का भी कोमल रसिकता-सम्पन्न हृदय प्रभावित हुआ। वे भी लीलाप्रिय के महारस की लहरों मे तरगित होने लगे। राधा-कृष्ण का परमपावन निश्छल प्रेम उनके हृदय मे अनुराग की लाली बन कर समा गया। हृदय की यही अवस्था रहीम की काव्यसाधना के भीतर कविता के मधुर माध्यम के द्वारा राधा-कृष्णमयी हो कर उनके ग्रथो मे अभिव्यजित हो गयी है।

हृदय की इसी विश्वव्यापिनी प्रेमात्मिका अवस्था ने महात्मा रहीम को जाति, कुल धर्म और देश की सीमा के ऊपर उठा लिया था। इसी हृदय ने उन्हें विश्वरूप राधा-कृष्ण के प्रेम को सौप दिया था। इसी प्रेम की अवस्था ने उन्हे मर्यादा पुरुषोत्तम विश्वप्रेमी राम का भी सेवक बना दिया था।

'बरवै' के १०५ छदो मे लगभग ४८ बार किसी न किसी नाम से नन्दकिशोर का स्नेहात्मक और श्रृगारात्मक ध्यान किया गया है। मदनाष्टक' के आठ छद मदनमोहन कृष्ण के श्रृगार के लिए तो रहीम ने लिखे है पर अन्य फुटकल छदों और पदो मे भी उन्होंने कृष्ण का श्रृगारात्मक ध्यान किया है§। उनकी 'रास पचाध्यायी' भी कृष्णभक्ति से सबद्ध ग्रथ है।

---

‡ रहिमन विलास, दोहावली, दोहा १। † वही, बरवै, छद ५। $ वही, बरवै नायिका भेद, छद २। * वही, बरवै, छद १ से ५ तक। § वही, पृष्ठ ६८ से ७२ तक।

नीति के दोहे लिखने वाले रहीम शील के अन्तर्द्रष्टा है। उनकी १८२ दोहों वाली 'नगर शोभा' शीर्षक वर्णनात्मिका रचना मे ब्राह्मण के पवित्र शील के प्रति उनका पूज्यभाव स्पष्ट दिखाई पडता है "उत्तम जाति है ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय। परम पाप पल मे हरत, परसत वाके पाय ‡" मे सच्चाई के प्रति रहीम के उदार हृदय का स्वाभाविक अनुराग स्पष्टत: दिखाई पड़ता है।

उदार हृदय के भीतर समग्र सच्चाइयाँ आ कर बस जाती है। रहीम जी का जीवन इसी तरह का था। आदर्शमय जीवन ही राममय जीवन है। रहीम का जीवन करुणामय आदर्श जीवन था और अपने नीति के दोहो मे रहीम जी ने राममय आदर्शों की ही उपासना की है। आदर्शों की उपासना मे राममय जीवन-दर्शन के प्रति रहीम की जागरूकता की गवाही उनकी रचनाओ से स्पष्टत मिल जाती है।

रघुनाथ राम को भी वे इसीलिए चाहते है कि सत्य के लिए राम ने अपने जीवन के चौदह वर्ष वनो के यातनापूर्ण वातावरण मे बिताये। पर रहीम की दृष्टि मे भरत का शील अधिक महत्त्वपूर्ण है। पिता की आज्ञा मान कर राम ने तो राज्य को त्याग दिया; पर उसी आज्ञा का अनुसरण करके भरत ने राज्य करने के कार्य को अपने लिए अनुचित समझा और राम के एक कर्मचारी सेवक की तरह ही उनके राज्य की रक्षा की। इसीलिए रहीम कहते है कि गुरुओ की कितनी भी बडी आज्ञा का अनुसरण नही करना चाहिए, यदि वह अनुचित हो।

शील के कलाकार रहीम एक ओर तो भरत को राम से अधिक यशस्वी मानते है; पर दूसरी ओर राम के कार्य को अनुचित नही कहते। राम का राज्य छोड देना अनुचित नही था; पर यदि भरत राज्य करते तो उनकी यह प्रवृत्ति अनुचित होती। जीवन-सौन्दर्य के मर्म को समझने वाले भरत ने राज्य नहीं किया। इसी कारण उनके जीवन का सौन्दर्य राम के जीवन-सौन्दर्य से अधिक आकर्षक हो गया †।

त्याग पवित्र है। पिता के सत्य के लिए राम ने राज्य त्याग कर पवित्र जीवन के आदर्श की स्थापना की। आसक्त भोग अपवित्र है। आसक्ति से कैकेयी ने यह राज्य-भोग भरत के लिए माँगा था, इसीलिए इस अधर्म की ओर न जा कर भरत ने भी त्याग के आदर्श की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की। इसीलिए वे रहीम को राम से भी अधिक आकर्षक प्रतीत हुए।

रहीम इस बात को पूरी तरह से हृदय और मस्तिष्क से ग्रहण कर चुके है कि राम सत्य से ही मिलता है, क्योंकि उसने अपने को एकमात्र सत्यानुरोधी बना लिया था। सदा सत्य जीवन से जगत् की बातें सिद्ध नही होती और झूठ मे राम नही मिलता। राम और जग दोनों की सिद्धि एक साथ करना, रहीम के अनुसार बड़ा कठिन काम है ‡। लेकिन रहीम का यह विश्वास है कि भवसागर की नाव अपने गन्तव्य को प्राप्त कर

---

‡ रहिमन विलास, दोहावली, नगरशोभा, दोहा ३। † वही, दोहावली, छंद ६। $ वही, छंद ७।

लेती है यदि मनुष्य राम की शरण में चला जाए। राम ने सत्य की साधना के द्वारा अपनी भवसागर की नाव को लक्ष्य तक पहुँचा दिया था। आदर्श पुरुष का लक्ष्य यश का ब्रह्मानन्द होता है, सासारिक सुख का विषयानन्द नही। अत. वह यश सिद्धि ही करता है तथा सांसारिक सुखों से अनासक्त रह जाता है। उनकी चिन्ता सच्चे कर्मयोगी को नही होती। सच्चा कर्मयोगी केवल कर्तव्य की पूर्ति को ही अपना जीवन और यश समझता है।

स्वार्थो के प्रति आसक्ति ही जीवन मे संघर्ष उत्पन्न करती है। वही भव को दुस्तर सागर बना देती है। राम स्वार्थो से अनासक्त है। उनकी शरणागति का स्वरूप स्वार्थो से अनासक्ति ही है। शरणागत शरण देने वाले के शील को अपना शील बना लेता है। शरण देने वाला इतना महान् होता है कि शरणागत उसके आकर्षण से प्रभावित हुए बिना रह ही नही सकता। इसी प्रक्रिया के अनुसार रहीम स्वीकार करते है कि स्वार्थो मे अनासक्त राम की शरण मे जा कर मनुष्य स्वार्थों से अनासक्त हो जाता है। अनासक्ति की इस नौका पर चढ कर मनुष्य आसक्ति-स्वरूप भव को पार कर जाता है। इस भव को पार करने के लिए और कोई दूसरा उपाय नही है‡।

रघुवीर राम के आदर्शो ने खानखाना को बहुत प्रभावित किया था। रघुवीर राम दुखियों का सहायक था। रघुवीर राम ने अपने नारायण रूप से दुखी गजेन्द्र की रक्षा ग्राह से की थी। अपने पूरे जीवनकाल मे रघुवीर राम ने गाढे दिनों मे पडे हुए लोगो की सहायता की थी। बढे हुए दिनों के लिए तो तमाम मित्र मिलते है; पर गाढ़े दिनों के मित्र रघुवीर राम ही हो सकते है। रघुवीर राम की भक्ति से रहीम को गाढे दिनों मे कभी सहारा मिला होगा; इसीलिए उन्होंने इस तरह की चर्चा की है†।

साधारण मनुष्य और पुरुषोत्तम राम में अन्तर बतलाते हुए रहीम ने कहा है — "साधारण आदमी दुखी के दुख को सुन कर हँसी करता है दुखी का मन और अधीर हो जाता है, पर पुरुषोत्तम रघुवीर तो कही हुई पीडा को सुनता है और सुन-सुन कर उन पीडाओ को दूर करता है।" राम का शील रहीम के लिए जीवन का सहारा था। राम को अपना आश्रय बना कर रहीम भी आदर्श की दृष्टि से राम बन गये थे$।

पवित्र राम के चरणों की पवित्र धूल से अहल्या तर गयी थी। यह बात रहीम के हृदय मे बडे मधुर आलोक में बैठी हुई थी। हृदय के इस माधुर्य को व्यक्त करने के लिए रहीम ने लिखा है—"गजराज बार-बार पृथ्वी की धूल को उठा-उठा कर अपने सिर पर इसलिए रखता है कि शायद कभी वह धूल मिल जाए, जिससे गौतम की पत्नी अहल्या तर गयी*।" राम के पवित्र शील के आलोक मे रहीम का शील भी पवित्र हो गया था। कहा जाता है कि एक बार एक स्त्री ने रहीम से उन्ही के समान पुत्र माँगा। स्त्री की इस प्रवृत्ति का कारण वासना थी। रहीम ने अपना मस्तक उसके आँचल में रख कर कहा,

---

‡ रहिमन विलास, दोहावली, छद ५०। † वही, छद ७३। $ वही, छद १०२।
* वही, छद ११२।

आज से मैं ही आपका पुत्र हूँ। रघुनाथ के आदर्शों से प्रभावित साधक के लिए यह कोई बड़ी बात नही थी। राम के इसी पवित्र शील की आत्मानुभूति को व्यक्त करते हुए रहीम ने कहा है—"मुनि की पत्नी पत्थर थी, बन्दर लोग पशु थे, गुह चाडाल जातियों मे से था। राम ने अपने पवित्र हृदय की पवित्रता दे कर तीनो को तार दिया। पत्थर की कठोरता और जडता, बन्दरो का पशुत्व और चाण्डाल जातियो का दुष्ट स्वभाव मुझमे भी है। राम मुझे भी तार देगा ‡।" रहीम का वह विश्वास अचल हो चुका था। राम की पावन शक्ति को वे अपने जीवन मे अनुभव कर चुके थे। उन्होंने कहा है—"काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर से भरा हुआ आदमी यदि धोखे मे भी राम का नाम ले ले तो उसे पूर्ण और परम गति अवश्य प्राप्त हो जाएगी †।" राम की अतुल पावन शक्ति की जो अनुभूति रहीम को हो गयी थी, उसकी व्यजना उनके इन शब्दो मे हो जाती है। राम से मन लगा कर उसे उन्होंने वश मे कर लिया था। तभी तो उन्होने कहा है—"मन लगाने पर नारायण भी वश में हो जाता है $।"

रहीम के अनुसार उपासना उसी की सार्थक है जो राम के नाम के साथ सबद्ध आदर्शों की सार्थकता को समझ कर उन आदर्शों को अपने जीवन मे उतार कर उपासना करता है। आखिर उपासना का अर्थ भी तो समीप पहुँचना है। जो राम के आदर्शों के समीप न पहुँच सकेगा, उसकी रामोपासना निरर्थक है। उससे किसी भी प्रकार के अर्थ की सिद्धि नही होती। जो राम के नाम को ठीक तरह से नही समझता और केवल उपाधियों मे व्यस्त रहता है, वह अपने जीवन को व्यर्थ नष्ट करके शील के पतन के कारण अपने को यम को सौंप देता है। उसे मृत्यु घसीट कर ले जाती है; राम की अमरता, उनका अमर यश उसका वरण नही करता *।

राम के आदर्शों की पवित्र शक्ति को, उनके ईश्वरत्व को रहीम पहचान चुके थे। रहीम ने यह समझ लिया था कि राम के आदर्शो की ओर जाने से ही नर की क्षुद्रता मिटती है, वह नारायण का रूप प्राप्त कर सकता है। इसीलिए उन्होंने अपने जीवन के पर्याप्त अश को नर के लिए खर्च कर दिया। यह सब इसीलिए कि वह नारायण बन जाए। रहीम स्वय नारायण बने, सब धर्मो के सत्याश से अपने शील का शृंगार करके, उन्होने दूसरो को भी नारायण बनाने का प्रयास किया। एकपत्नीव्रत राम से उन्होंने वासना पर विजय प्राप्त करने का स्वभाव प्राप्त किया तथा दानी राम के स्वभाव को आत्मसात् करके वे दानी बन गये। राम के लिए उन्होने कहा है—"माँगने पर सब लोग नाही कर देते है। विपत्ति मे साथी का साथ भी सब लोग छोड देते है; लेकिन रघुनाथ तो माँगने से पहले ही दे देता है और एक बार जिसे स्वीकार कर लेता है, उसका साथ कभी नही छोड़ता §।" जो आदमी रघुनाथ के इस शील को प्राप्त कर लेता है वह रघुनाथ हो जाता है। इसी पूर्णपुरुष रघुनाथ की प्राप्ति की ओर अपने मन को मोडते हुए रहीम ने उससे कहा है—

‡ रहिमन विलास, दोहावली, छंद १५१। † वही, छद २०३। $ वही, छद २२२। * वही, छद २४५-२४६। § वही, छद १५०।

भज मन राम सियापति, रघु-कुल-ईस।
दीन बन्धु दुख टारन, कौसलधीस‡।

रहीम के बाद रामभक्त कवियों के अनुक्रम मे सेनापति रखे जा सकते है। सेनापति का जन्म सवत् १६४६ के आसपास माना जाता है†।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, 'कवित्त रत्नाकर' के कवित्तकार सेनापति भी रामभक्त कवि है। 'सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी, सब कवि कान दे सुनत कविताई है$' से इनकी रामभक्ति स्पष्टत व्यक्त हो रही है। 'चिता अनुचित तजि, धीरज उचित सेनापति ह्वै सुचित राजाराम जस गाइये'* को पढ कर तो सेनापति के रामभक्त होने मे कोई सन्देह ही नही रह जाता। राम के साथ ही विष्णु के ही अवतार कृष्ण की भी भक्ति सेनापति ने की थी। 'हरिजन पुजनि मे वृदावन कुजनि मे'§ निवास करने की उनकी इच्छा से यही प्रतीत होता है कि अपने उदार हृदय से सेनापति ने राम और कृष्ण दोनों की अभेदोपासना की थी।

'सवत सत्रह से छ मैं सेइ सियापति पाइ। सेनापति कविता सजी, सज्जन सजौ सहाइ'× से इनकी सीताराम की भक्ति पुन. व्यजित होती है। 'कवित्त रत्नाकर' की चौथी और पाँचवी तरगे क्रम से रामायण वर्णन और रामरसायन वर्णन प्रस्तुत करती है। इनके द्वारा तो सेनापति ने अपनी रामभक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की ही है; इनके अतिरिक्त पहली तरग 'श्लेष वर्णन' के छ्यानबे कवित्तो मे से लगभग सोलह-सत्रह कवित्तों मे सेनापति की रामभक्ति अभिव्यक्त हुई है। 'शृगार वर्णन' और 'ऋतु वर्णन' की दो तरंगो से राम के मर्यादित जीवन को स्पर्श करने मे सेनापति ने भी अनौचित्य का अनुभव कर कवित्त-रत्नाकर की उपर्युक्त दो तरगो से मर्यादापुरुषोत्तम के जीवन को अस्पृष्ट ही रखा है।

इसमे कोई सन्देह नही कि सेनापति के हृदय मे राम के लिए सच्ची भक्ति थी और सेनापति ने सच्चे हृदय से आत्मनिवेदन करके अपना सब कुछ राम को, और उन सबका कारण भी राम को ही माना था। यदि ऐसी बात न होती तो सेनापति की रामभक्ति से संबद्ध कविता मे मौलिकता न उत्पन्न हो सकती। सेनापति के युग मे रामभक्ति के आकाश मे तुलसी का चन्द्रोदय हो चुका था और उस पूर्णचन्द्र के सम्मुख सेनापति एक साधारण तारक के समान ही प्रतीत होते है; पर पूर्णचन्द्र की उपस्थिति मे आकाश अपने वक्ष पर चन्द्रमा के साथ केवल उन्हीं तारकों को धारण करता है जो कान्तिमान् होते है। इसी नियम के अनुसार भक्ति के आकाश मे पूर्णचन्द्र तुलसी के रहते हुए भी सेनापति एक उज्ज्वल नक्षत्र की तरह दिखाई पडते है, ऐसे नक्षत्र की तरह जो पूर्णकान्तिमान् तारापति के सम्मुख भी अपने मौलिक व्यक्तित्व मे स्वतन्त्र रहता है।

---

‡ रहिमन विलास, दोहावली, बरवै छद ९१। † आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८८। $ कवित्त रत्नाकर, पहली तरग, कवित्त ५। * कवित्त रत्नाकर, पाँचवी तरग, कवित्त ३२। § कवित्त रत्नाकर, परिशिष्ट, कवित्त ७। × कवित्त रत्नाकर, पाँचवी तरग, कवित्त ८६।

मर्यादा पुरुषोत्तम के भव्य तथा महामहिम व्यक्तित्व का, हृदय की आँखो मे दर्शन करके सेनापति का कवि पहले उनके चरणो की वन्दना नही करता। उसकी सर्जनात्मिका सर्वग्राहिणी प्रतिभा के नयन राम के चरणों के नीचे रहने वाली चरणपादुका का दर्शन करने के लिए बडी कोमलता से झुक जाते है। जो पादुका भरत के आदर्श-प्रेमी प्राणो की रक्षिका बन कर अयोध्या की रानी बनी थी और एक उदार सपत्नी की तरह राम की राज्यलक्ष्मी को प्रिय के भावी आगमन की सूचना देने अयोध्या आयी थी उसी चरणपादुका को 'रामायण वर्णन' के मंगलाचरण मे सेनापति ने नम्र और विह्वल हृदय से नमस्कार किया है। यह चरणपादुका जब विश्वाधिपति नारायण के चरणो की है, तब उसका निर्माण कल्पतरु के सारभाग मे न हो कर और किस लकड़ी से हो सकता है! और कोई लकडी उसके योग्य नही हो सकती। विश्व भर की कामनाओ की पूर्ति करने वाले विश्वपालक नारायण के चरणो मे अनत शक्ति है; अत. उसके लिए चरणपादुका सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले कल्पतरु की लकड़ी से ही बनायी जानी चाहिए और उसके लिए शिल्पी का कार्य भी वही कर सकता है जो विश्व भर का निर्माण करने वाला है। अत. सेनापति ने राम के चरणो की पादुका का निर्माता स्वय ब्रह्मा को बनाया है। अनत जब अवतारी होता है तब अलौकिक रीति से उसके जीवन के समग्र उपादानों और उपकरणों का विधान हो जाता है, पर उस रहस्य को कोई जान नही पाता। भक्ति के सम्प्रदाय इस बात को निरन्तर दुहराते है। देवता स्वय मानव रूप मे आ कर अनत की उस नर प्रतिकृति की सेवा करते है। अत कल्पतरु की लकडी से विधाता ने यह पादुका स्वय बनायी है। सोने के काम पर, सब कामनाओ को साकार करने वाली चिन्तामणि ही उस पादुका पर जडी जाने के योग्य है और सेनापति ने उस ओर सकेत भी किया है। नारायण के पैरो मे गगा का निवास है और यह पादुका भी उनके चरणो की सेवा करती है; अत दोनो को सेनापति की कल्पना के नयन सखी की तरह देखते है। यह पादुका उन चरणों की है, जो विश्व के स्वामी है अत. यह पादुका भी विश्व की स्वामिनी है। इसी की सहायता से सेनापति को भक्त और कवि बन जाने मे सफलता प्राप्त हुई है।

राम के चरणों की इसी पादुका ने देवताओं के उत्पीडक राक्षसो को दड दिया है, अनत आदर्शो के केन्द्र के चरणों की इसी पादुका को मस्तक मे लगा कर भरत ने अपने मस्तक को परमोच्च शोभा से आलोकित कर लिया है, हृदय मे उस आदर्श की भावमयी उपासना करके। जो व्यक्ति अपने सीमित अभिमान का विसर्जन करके अनत के पवित्र चरणो की पादुका पर अपना मस्तक रख देगा वह स्वय अनत आदर्शो का केन्द्र हो जाएगा, अनत हो जाएगा। उसके भीतर के, स्वार्थ से सबद्ध सब कलुष नष्ट हो जाएँगे। अनत के अनत आदर्शो को चिन्तन के पथ से जो बुद्धि मे उतार लेते है और अनुभूति के मार्ग से जिनके हृदय अनत के आदर्शगत सौन्दर्य की माधुरी मे लीन हो जाते है, उनके सीमित अह का विसर्जन हो जाता है और उसी स्थान पर अनत बैठ जाता है। ऐसे उपासको के भीतर कलुष कहाँ से अवशिष्ट रह सकता है। परन्तु यह अभिमान-शून्यता तब प्राप्त हो सकेगी जब राम की चरणपादुका के नीचे मनुष्य का मस्तक झुक कर समा जाएगा।

सेनापति भी गोस्वामी जी के 'राम तें अधिक राम कर दासा' ‡ सिद्धान्त को स्वीकार करते है। इस चरणपादुका के सम्मुख वे इसलिए भी झुक गये है कि वह राम के चरणो की दासी है · "प्रभु पाइ की सुख दैनी है †"।

अनत के अनत आदर्शों को ही अपने हृदय और मस्तिष्क की आँखो के समक्ष रख कर सेनापति ने राम की उपासना की है। सहज प्रकृति से वे राम की तरफ़ झुके हुए है; इसीलिए रामभक्ति को उनकी वाणी का सहज सुन्दर परिधान प्राप्त हो गया है।

चरणो की दासी पादुका को अपने हृदय की भक्ति अर्पित करके सेनापति राम के चरणों के सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हुए है। राम के चरणों के सौन्दर्य मे मग्न हुए सिद्धों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है—'जिस तरह कमल में भ्रमर लीन हो जाता है उसी तरह सिद्धों के हृदयो के भ्रमर राम के चरण कमलों मे ध्यान की निश्चल मूकता के साथ लीन हो जाते हैं। निर्गुण ज्योति के ध्यान के स्थान पर सगुण के सुन्दर चरण-कमलों मे लीन हो जाने वाली तन्मयता का दर्शन ही सिद्ध योगियों के हृदय भ्रमरों के भीतर सेनापति ने किया है। योग सम्प्रदाय की निर्गुण उपासना के भीतर, इसी प्रक्रिया से, सगुणोपासक भक्तों ने सगुण ब्रह्म के अनत सौन्दर्य की झाँकी के आकर्षण को स्वीकार कर लिया है। यह स्वीकृति बौद्धिक न हो कर अनुभूतिमय तन्मयता की सहज समाधि है। इसी समाधि के सौन्दर्य का दर्शन सेनापति को हुआ है। देव नदी के अमृतमय जल के मकरन्द का कोष विष्णु के चरणो मे है, अतः राम के चरण-कमलो मे भी विश्वरक्षक गगाजल के इस मकरन्दकोष का साक्षात्कार सेनापति ने किया है $।

विश्वमंगल विधायक के चरण जहाँ पडेंगे वहीं अनत सुखों की सृष्टि हो जाएगी। सेनापति के विश्वमगल विधायक राम के चरण भी 'सब सुखसाज' है। वे आदर्श देव और आदर्श राजा है। इसलिए उनके चरण सब देवताओ और राजाओं के मस्तकों की शोभा बढाने वाले मुकुट की तरह है, 'सुर-राजन के सिरताज' है *।

व्यक्ति से सम्बद्ध मगलभावना को विश्व से सम्बद्ध करके मनुष्य के हृदय को विश्व-हृदय बना कर जो आनन्दमयी सक्रिय मुक्ति राम ने प्रदान की वह बेजोड थी; इसीलिए उनके चरण सेनापति को 'मगल मुकुति रूप कद के भाजन' की तरह दिखाई पडे। इसी धरती पर स्वर्ग के उतरे हुए जीवन का साकार रूप राम के चरण एक तरफ़ सेनापति को धरती पर बहने वाली सरयू की धारा मे 'सरजूबिहारी' की तरह दिखाई पडते है तो दूसरी तरफ ज्ञान की पवित्र साधना की नदी के शीतल रूप मे बहते हुए 'ऋषिनारी तापहारी' की तरह भी दृष्टिगोचर होते हैं। 'मतिमद सेनापति' को उन चरणों ने ज्ञान-दान भी किया और उसका हित-साधन भी उन्हीं चरणों की कृपा से हुआ §।

विश्वरक्षक नारायण के अवतार राम के चरण एक तरफ लोकजीवन का स्वाथ सिद्ध करते हुए विश्व के 'भरन' है तो दूसरी ओर सनकादि के 'सरन' भी है। परम ज्ञानियों

‡ रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा १२० से पहले। † रामायण वर्णन, मगलाचरण कवित्त १। $ वही, कवित्त २। * वही, कवित्त २। § वही, कवित्त २।

को भी उन चरणों में झुक कर ज्ञान की प्राप्ति होती है। उन्हें ज्ञान के लिए भी उन्हीं चरणों मे जाना पड़ता है। अतः राम और उनके चरणों को सेनापति ने भुक्ति और मुक्ति दोनों के समन्वित केन्द्र की तरह देखा है। भारतीय भक्ति-साधना केवल मुक्ति की रचना मे कभी नही गयी। भोग और मोक्ष दोनों की समन्वित-साधना करके उसने भोग मे भी योग का दर्शन कर लिया। जब राम कण-कण-व्यापी है तब जीवन का वैध अनुभव भी योग है यदि 'घट-घट व्यापी राम' का उसमे दर्शन किया जा सके‡।

विश्वमगल विधान के जितने आवश्यक उपादान है, उन सबमे युक्त रामचन्द्र को सेनापति ने देखा है। विश्वमगल-विधान उसी व्यक्तित्व से सम्भव है, जिसके द्वारा सामान्य शील की उच्चतम साधना से वह परिवार आलोकित हो गया हो, जिसमे उसने जन्म लिया। जब तक कोई व्यक्ति परिवार का श्रेष्ठ व्यक्ति पहले न हो ले, तब तक वह विश्व-श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। परिवारश्रेष्ठ हो कर व्यक्ति अपने भीतर विश्वश्रेष्ठ होने की सम्भावना उत्पन्न कर लेता है। विश्वश्रेष्ठ शील वाले व्यक्तियो के परिवार मे जन्म लेने वाला व्यक्ति परिवारश्रेष्ठ होने के साथ-साथ ही विश्वश्रेष्ठ भी हो जाता है। विश्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का परिवार रघुवश था। सेनापति के राम 'रघुबरवस भूषित है'। विश्वश्रेष्ठ शील को धारण करने वाले रघुवर लोगो के वश को अपने उच्चतम शील से उन्होने और अधिक विभूषित करके विश्वश्रेष्ठ शील वाले व्यक्ति का स्थान प्राप्त कर लिया था†।

सेनापति के अनुसार लोकमगल-विधायक को भक्तवत्सल होना चाहिए। भक्त का अपना कोई स्वार्थ नही रहता। वह अनत आदर्शो के केन्द्र, भगवान्, मे अपने को खो देता है। राम विश्व-मगल विधायक हैं। भक्त इसी विश्वमगल विधायक के हाथो बिक जाता है। वह विश्वमगल विधायक का उपासक होता है; इसीलिए उसके रग मे सराबोर हो कर स्वय विश्वमगल विधायक हो जाता है। इस विश्वमगल विधायक को भगवान् अपने हृदय मे रखता है। उसकी भक्तवत्सलता विश्वमगल विधान का एक रूप है$।

सेनापति ने विश्वमगल-विधायक राम को 'भव-खडन' भी कहा है। विश्वमगल-विधायक वैयक्तिक स्वार्थो के ऊपर उठ कर अपने को विश्व के स्वार्थो मे लीन कर देता है। वह पहले अपने भव को खडित कर लेता है और अपने शील के प्रकाश मे भक्त के भव को भी खंडित कर देता है, उसके स्वार्थ और अभिमान को समाप्त करके। आसक्तियों के ऊपर उठे हुए राम का ध्यान करने वाला साधक भी आसक्तियो के ऊपर उठ जाता है और उसका भव खडित हो जाता है*।

सेनापति के राम 'मुनि-जन-मानस हस' है। विश्वमगल-विधायक का शील इतना उज्ज्वल होता है कि मुनिलोग भी उसे अपने मानस का उज्ज्वल हस बना लेते है। वे भी अपने को उस धवल आदर्श के सम्मुख हीन अनुभव करके उस विवेकपूर्ण आदर्श को अपने मानस का हंस बना कर उसकी उपासना करते हैं§।

---

‡ रामायण वर्णन कवित्त २। † वही, कवित्त ३। $ वही, कवित्त ३। * वही, कवित्त ३। § वही, कवित्त ३।

विश्वमगल विधायक का शील सबके लिए अमृत बन जाता है । घर या बाहर, हर जगह वह अमृतमय हो कर ही रहता है । जो राम सेनापति को 'मुनिजनमानस हस' की तरह दिखाई पडता है, वही 'बिहित सीता-मुख-मडन' की तरह भी दिखाई देता है । सीता भी तो विश्वमगल विधायक के अनत शील पर निछावर हो कर उसी अनतशील की सिद्धि अपने भीतर भी प्राप्त कर चुकी थी । उसके मुख का शृगार करने वाला राम उसके मुख की ज्योति था । उनकी पवित्रता सीता के मुख पर प्रकाश बन कर दमक रही थी । सीता का शृगार राम के पवित्र शील से चमक उठा था । मर्यादा पुरुषोत्तम के सुन्दरतम शील का ध्यान सीता के मुख पर सौन्दर्य बन कर चमक रहा था । इतने पर भी राम जब अपने प्रेम से सधे हुए हाथों मे उसके मुख का शृगार करते थे तब उन पवित्र हाथो का स्पर्श पा कर उसके मुख की शोभा अनत हो जाती थी ‡ ।

सेनापति के विश्वमगल विधायक राम 'त्रिभुवन-पालन-धीर है' । विश्वमगल विधायक, त्रिभुवन के सब प्राणियो का पालन करता है तथा इस कार्य के लिए मन को अपनी चचलता छोड कर धैर्य की निश्चल समाधि मे डूब जाना पडता है । तभी वह वैयक्तिक स्वार्थो के ऊपर उठ कर विश्व के स्वार्थ मे लीन होता है । राम का शील इसी तरह का था † ।

सेनापति का ध्यान राम की उस सात्त्विक शक्ति पर भी केन्द्रित है जो त्रिलोक विजयी रावण के मद को भी धूल की तरह उडा सकी । सात्त्विक शक्ति विश्व के उत्पीडकों को उत्पीडित करती है । इसीलिए रावण की तामसी शक्ति और उसके अभिमान को राम ने अपनी सात्त्विक शक्ति की विश्वरक्षिका वृत्ति से चूर-चूर कर दिया $ ।

सेनापति ने राम की सम्पूर्ण मर्यादाओ की सौन्दर्यमयी भावनाओं से अपने हृदय को सजा लिया है । उनके राम जब उदित होते है तब विभीषण के समान लोगो के भाग्य बन कर ही वे उदित होते है । राम का एकमात्र 'धेय निज-परिजन-रजन' ही है । राम का निजी परिजन विश्वरक्षा के आलोक को देख कर आनदित होता है । विश्वरक्षा के कार्य से उसका रजन होता है । विभीषण के समान परिजनों का भाग्य तो तभी उदित होता है जब राम अपने विश्वरक्षा के कार्य मे सफल होते है । इसीलिए अपने ऐसे परिजनों का रक्षण और रजन राम नित्य किया करते है । यह रक्षण और रजन उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य होता है । उन्होने जीवन भर यही किया था । उनके इसी शील से प्रभावित हो कर 'सुरपति, नरपति तथा भुजगपति' के साथ सेनापति भी अपनी भावना के भीतर राम के चरणों की वन्दना कर लेते है । वे अपने राम को 'राजाधिराज' तथा 'बिस्वमगलकरन' रूप मे देखते है । रामभक्ति की मर्यादावादी परपरा के एक उज्ज्वल घटक सेनापति जी भी है; इसीलिए मर्यादापूर्ण, पूर्णपुरुष राम के विश्वमगल-विधायक रूप का ही उन्होने दर्शन किया है । विश्वमगल विधायक राम के 'वज्रादपि कठोर' तथा 'कुसुमादपि मृदु' व्यक्तित्व पर सेनापति का ध्यान पूर्णत: केन्द्रित है * ।

---

‡ रामायणवर्णन, कवित्त ३ । † वही, कवित्त ३ । $ वही, कवित्त ३ । * वही, कवित्त ३ ।

निराली मौलिकता को साथ ले कर सेनापति ने अपने उपास्य की वन्दना की है। पहले उनकी चरणपादुका पर वह झुकता है, तब चरणो को नमस्कार करता है। अन मे अपने उपास्य का बडे नम्र भाव से दर्शन करता है।

अपने इस सान्त और अनत उपास्य की इयत्ता का वर्णन करती हुई सेनापति की वाणी मौन हो जाती है। पहले तो वे राम की मुसकान को करोडो चन्द्र के प्रकाश मे भी धवल, शीतल तथा दीप्तिमान कह लेते हैं, उनके तेज को करोड़ो सूर्यो से भी अधिक प्रभावशाली स्वीकार करते है, उनकी शक्ति को करोडो कामदेवों से भी अधिक बताते है, उनकी दानशक्ति को करोडो कामधेनुओ से भी अधिक अनुभव करते है; पर अत मे हार कर बैठ जाते है। वे कहने लगते है कि यह सब वर्णन झूठा हो गया। राम के लिए और अधिक उपमानो की आवश्यकता है। मुझे कोई ऐसी उक्ति और युक्ति बता दे जिससे त्रिलोक नायक राजाराम का मैं वर्णन कर सकूँ ‡।

गोस्वामी जी की तरह ही सेनापति भी इसी सिद्धान्त को मानते है तथा इसी भाव-दशा का उन्होने भी अनुभव किया है कि जब अनिर्वचनीय अनत, सान्त हो जाता है तब भी वह अनिर्वचनीय और अनत ही रह जाता है, उसे पूर्णत जान लेना असभव-सा ही प्रतीत होता रहता है। गोस्वामी जी को भी मानस के पग-पग पर यही अनुभव हुआ है। धनुष भग के समय राम और लक्ष्मण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वे भी कहते हैं—

"कोटिकाम-उपमा लघु सोऊ" † करोडों कामदेवों का समाहित रूप उपमान की तरह लाया जा सकता है; पर वह भी राम और लक्ष्मण के सौदर्य का वर्णन नही कर सकता; उस अनन्त सौदर्य के सामने नगण्य प्रतीत होने लगता है। अन्त मे उस सौदर्य के प्रभाव मे अपने हृदय की अनुभूति की दशा की ओर इगित करने के लिए वे यही कह देते है— "भावत हृदय जात नहि बरनी" $ कि राम-लक्ष्मण का सौदर्य हृदय को तो अच्छा लगता है पर उसका वर्णन नही किया जा सकता।

राम को रिझा लेने का आवेग सेनापति के भीतर हृदय का बन्धन लाँघ जाना चाहता है, पर वह आवेग बाडव ज्वाला की तरह प्रेम के उमडे हुए समुद्र के तल मे ही रह जाता है। इस मनोदशा की ओर स्पष्ट इगित मिल जाता है, जब वे कहते है —"जिसका वर्णन करते हुए ब्रह्मा भी थक जाता है और उसके रहस्य को नही समझ पाता उसे किस प्रयास से रिझाया जा सकता है। ऐसी दशा मे तो यही अच्छा है कि मौन हो कर ही बैठ जाया जाए * ।" पर कवि के हृदय की दशा बडी विचित्र है। वह राम के सौदर्य का वर्णन किये बिना रह भी तो नही सकता। वह कहता है—'वाणी को प्राप्त करके बोलने की शक्ति रहते हुए, यदि राम का यशोगान न किया जाए तब भी मन अकुलाता है।' § वह सोचने लगता है कि लोग सूर्य को जलता हुआ दीपक अर्पित नही करते। कोई दीपक उसे आलोकित नही करता। इसलिए दीपक प्रस्तुत करके बिना जलाये जल को अर्पित कर सूर्य

‡ रामायण वर्णन, कवित्त ४। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा २४२ के बाद।
$ वही। * कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ५। § वही।

को अपने हृदय के भाव अर्पित कर दिये जाते है, इसी तरह वाणी की सीमा के भीतर सीमित उपायो से त्रिलोक-तिलक राम को रिझाने का उपाय किया जाए‡। राम को रिझाने का यह आवेग सेनापति के हृदय मे अपने सहज रूप मे उत्पन्न हुआ है, अतएव उसे व्यक्त करने वाली वाणी भी सहज सुन्दर और शैली मौलिक हो गयी है।

सेनापति ने भी रामकथा की एक परम्परा का निर्देश किया है। गोस्वामी जी रामकथा के आदि आचार्य शिव को मानते है। गोस्वामी जी की आचार्य-परम्परा क्रमशः शिव-उमा तथा शिव-कागभुशुडि, याज्ञवल्क्य और भरद्वाज की है†। सेनापति जी की आचार्य-परम्परा मे क्रमशः ब्रह्मा, नारद तथा बाल्मीकि है$। गोस्वामी जी भी 'रामायन सत कोटि अपारा' कह कर 'रामकथा कै मिति जग नाही' का सिद्धान्त ही स्वीकार करते है*। उनके शिव भी गिरिजा से 'रामचरित सत कोटि अपारा' ही कहते है§। सेनापति भी 'सख्या सत कोटि जाकी कहत प्रबीने है'× के द्वारा उसी सत्य का समर्थन करते है। इस अनतता के सम्मुख अपनी असमर्थता की सूचना देते हुए सेनापति कहते है 'एती राम-कथा ताहि कैसे कै बखानै नर, जातै ए बिमल बुद्धि बानी के बिहीने है"+ रामकथा लिखने के लिए विमल वाणी और विमल बुद्धि की आवश्यकता असदिग्ध है। गोस्वामी जी ने भी 'विमल कथाकर कीन्ह अरंभा"✤ कह कर रामचरित के मानस के लिए 'सुमति भूमि"¶ की आवश्यकता की चर्चा की है तथा इस कथा को समझने के लिए 'बिमल बिचार' को आवश्यक माना है‡⊕। इसीलिए रामकथा के सम्मुख अपना मस्तक झुका कर सेनापति उस अनतता के शरणागत बन जाते है। वह अनतता कैसे सीमा मे बँध सकती है। इस परिस्थिति मे सेनापति ने कहा है कि उस अनत क्रम को प्रणाम करके केवल कुछ प्रकरणों से सम्बन्ध रखने वाले छन्दों की ही सृष्टि कर रहा हूँ: "सेनापति यातै यथा-क्रम कौ प्रनाम करि, काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने है‡‡।"

सेनापति के राम महाबली, वीर, धीर, धर्म की धुरा को धारण करने वाले, दानवों की सेनाओ का नाश करने वाले, कलि के कलुष के विध्वसक, देवताओ द्विजों तथा दीनो की पीड़ा के सहारक, विश्व भर मे अभिराम, वैदिक तथा लौकिक साहित्य मे प्रसिद्ध महाराजमणि, सुखधाम, तेजराशि पूर्ण पुरुष ब्रह्म के पूर्णावतार है‡†।

दशरथ के चारों कुमारो की अनत शक्ति, उनके अनत शील तथा अनत सौंदर्य का दर्शन भी सेनापति ने अपने मानस चक्षुओं से किया है। उन्हे वे चार कुमार, साम, दाम,

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ५। † रामचरितमानस, बालकाड, दोहा २९ के बाद। $ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ६। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३२ के बाद। § रामचरितमानस, उत्तरकाड, दोहा ५१ के बाद। × कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ६। + वही। ✤ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ३४ के बाद। ¶ वही, दोहा ३५ के बाद। ‡⊕ वही, दोहा ३३। ‡‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ६। ‡† वही, कवित्त ७।

दण्ड और भेद के चारों उपायो; भूमि, पशु, विद्या तथा धन की चार सपत्तियों; धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के चार पुरुपार्थो; ऋग्, यजु:, साम तथा अथर्व वेद के इन चार प्रकारो; क्षीर, मधु, लवण और जल के चार समुद्रों; इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा यम इन चार दिक्पालों के समाहित रूप की तरह दिखाई पडते है‡ ।

राम के तेज और प्रतापयुक्त व्यक्तित्व के बडे अनुपम चित्र सेनापति ने प्रस्तुत किए है। उनके अनुसार यदि मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन ये पाँच सुरतरुओं का सौदर्य वसन्त और कामदेव का समाहित माधुर्य, पूर्णिमा के बीते हुए तथा आगे आने वाले सब पूर्णचन्द्रो की एकीकृत कान्ति, इन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, वरुण, वायु, कुबेर, सोम, ब्रह्मा और अनन्त की पुजीभूत दीप्ति तथा बारहो सूर्यो का आलोक यदि एक स्थान मे एकत्रित किया जा सके तब राम के तेज, प्रताप तथा सौदर्य युक्त व्यक्तित्व का थोड़ा-सा आभास मात्र दिया जा सकता है† ।

विश्व-मगल-विधायक राम के लोकरक्षक भुजों मे भी अपूर्व शक्ति, शील और सौदर्य का दर्शन सेनापति ने किया है। धनुष और बाण को धारण करने वाले उन भुजों की तुलना मे किसके भुज ठहर सकते है। सेनापति के राम के दोनो भुज शक्ति के कोष है। उनमे सीता के समान साध्वी पत्नी के लिए शिरोपधान बनता है। वे परम कृपालु है तथा दिक्पालो की भी रक्षा करते है। वे स्वर्ग और पाताल लोको की रक्षा करके उनके लिए विशाल आधार-स्तम्भ बने रहते है । सम्पूर्ण विश्व की पीडा को नष्ट करने की क्षमता उनमे है। सम्पूर्ण विश्व के मनों की कामनाओं को पूर्ण करने की उनमे शक्ति है। समर मे सज्जित हो कर वे विश्व भर पर नियत्रण रखते है$ ।

अपने इस विश्वव्यापी रक्षाविधान के कार्यो से सेनापति के राम भी सान्त और अनन्त दोनो प्रतीत होते है। सीतास्वयवर के समय जब जनक की सभा की कान्ति देव सभा की कान्ति को भी पराजित कर रही थी, जहाँ विश्व भर के राजा और स्वर्ग के सब देवता उपस्थित थे, इसी सभा मे राम के आते ही सुर और असुर सबकी कान्ति छिप गयी। सब लिखित चित्र की तरह हो कर राम को ही देखने लगे। 'तेजपुजधारी' राम रूपी सूर्य के उदित होते ही कोई दूसरा तेज और अधकार बाकी न रह गया। इस विश्वव्यापी तेज के परिवेश में अपने राम को रख कर सेनापति ने उन्हे लौकिक और अलौकिक शक्तियो के मूल केन्द्र के रूप मे अनुभव किया है*।

सेनापति के राम मे अपार ईशित्व शक्ति है। जनक की सभा मे इन्द्र तथा पृथ्वी के सब राजा, यौवन, कुल, भुजबल तथा सम्पत्ति के गर्व से गर्वित हो कर बैठे हुए थे। राम के आते ही अनजान मे उन सब का अभिमान दूर हो गया और वे सब अपने सिहासनों से उतर कर नीचे खडे हो गए। इस ईशित्व शक्ति के कारण सेनापति के राम भी नरभूप होते हुए विश्वनियन्ता परमात्मा की छाया भी अपने साथ निरन्तर बनाये रखते है§ ।

---

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ८ । † वही, कवित्त ९ । $ वही, कवित्त १० । * वही, कवित्त ११ । § वही, कवित्त १२ ।

जब सेनापति के राम धनुष चढ़ाने के लिए प्रस्तुत होते है तब अगणित देवता, सिद्ध तथा चारण उनके प्रभाव से खिच कर स्वत: चले आते है। प्रभाव की उसी समाधि मे चारण लोग उनका यशोगान करने लगते है। राम का यह अनत व्यापी प्रभाव उन्हे नर और नारायण की एक अलौकिक समाहित शक्ति से सम्पन्न करके विश्व के सामने प्रस्तुत करता है। सेनापति का हृदय नर-नारायण की इसी समाहित सौन्दर्य-झाँकी का दर्शन राम के व्यक्तित्व मे करता है‡।

अपने राम के भीतर सौन्दर्य और शक्ति के अतुलित सन्तुलन का दर्शन सेनापति ने किया है। धनुर्भंग की तैयारी मे उनके 'दीरघ, प्रचड, महापीन, जुगभुजदड' सर्पराज शेष के समान सेनापति जी को दिखाई पडते है। उनके विशाल लोचन और राजदीप्ति से दीप्त भाल की शोभा के समुख रति-पति भी लज्जित हो जाता है। मत्त गजराज की गति से जब चाप चढाने के लिए सेनापति के राम आगे बढते है तब दसों दिक्पालों के स्वामी की तरह दिखाई पड़ते है†।

अपने भक्ति-प्रवण हृदय मे सेनापति जी ने राम की शक्ति उनके शील तथा सौन्दर्य के बडे सजीव चित्रों का दर्शन किया है। उनके 'दशरथ सुत' ने अपने समर्थ हाथो मे पिनाक को खीचने के लिए उठा लिया, तब विश्व भर में खलबली मच गयी। ब्रह्मा के मुख सूख गये। उन्होंने कच्छप, शेष, दिग्गजों, पृथ्वी तथा सुमेरु—सब दिशाओं मे विश्व की समग्र शक्तियों के हृदयों मे साहस का सचार किया। पृथ्वी को लुढक न पड़ने की चेतावनी दी, मेरु को न डगमगाने के लिए आगाह किया तथा कच्छप और शेष को पृथ्वी का भार योग्यता से सँभालने का आदेश दिया। राम के इस अनत प्रभाव का अनुभव करके सेनापति कहते है कि ऐसी स्थिति मे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो कर राम की विरुदावली क्यो न गाए। सेनापति के ये भावसिक्त शब्द हृदय प्रसूत है। राम के विश्वरक्षक प्रभाव को हृदय से अनुभव करके सेनापति भावविभोर हो गये है। उनका 'रामायण वर्णन' इसी भाव-समाधि का परिणाम है$।

यद्यपि सेनापति की पूर्व परम्परा मे इस प्रकार के वर्णनों का अभाव नही है, तथापि सेनापति ने राम के प्रभाव का हृदय से अनुभव करके उस प्रभाव को अभिव्यक्ति दी है; इसीलिए ये चित्र पुराने होते हुए भी सेनापति की अनुभूति के भीतर से नये सस्करण का रूप ले कर अकित हुए है। प्राचीन शब्द चित्रों के अनुवाद मात्र न रह कर ये चित्र उनके परिमार्जित और सस्कृत प्रतिरूप है।

धनुष के टूटने का वर्णन भी परम्परा प्राप्त वर्णनों की अपेक्षा अधिक चित्रात्मक है। जब अपने 'उद्दड चड भुजदड' मे उस प्रबल धनुष को भर के रामने उसे खीचा, तब राम के उद्दड, चड भुजदडों की प्रबलता को वह पिनाक नही सह सका और टूट गया। उसके टूटते ही दिगतो के दिग्गज व्याकुल हो कर लुढक पड़े। विष्णु का हृदय काँप उठा,

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त १३। † वही, कवित्त १४।
$ वही, कवित्त १५।

घबराहट के कारण उनके हृदय का धैर्य छूट गया। अचल ध्रुव भी काँप उठे, सुमेरु पृथ्वी मे धँस कर विलीन हो गया। शेष की आँखो के सामने अँधकार छा गया। वह तत्क्षण पृथ्वी मे चिपक गया और सिद्धों ने राम की बुद्धि तथा उनके बल की प्रशसा की।

राम की प्रबल शक्ति के आतक से स्वभावत: आतकित और सहज पराजित विश्व शक्तियो की आतकित स्तब्धता और नगण्यता के बडे प्रभावशाली शब्द-चित्र इस वर्णन मे है। इसमे परम्परा के चित्रो को सेनापति ने अपनी उद्भाविका शक्ति का योग दे कर और अधिक प्रभावशाली बना दिया है‡।

सेनापति ने सीता के प्रेम के पवित्र आवेग के चित्र भी अपनी मौलिक भावनाशक्ति से बडा आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया है। राम के चरणो को देखने के बहाने केवल नेत्रो से ही उसने प्रिय की वन्दना की, उनके वक्ष को केवल देख कर नेत्र मात्र मे अलिगन कर लिया तथा उनके मुखचन्द्र के सौन्दर्य को देखा और आनन्द के उस केन्द्र को अपनी आँखो मे सम्हाल कर रख लिया। जब सेनापति की सीता ने राम को अपने नेत्रो मे बन्द कर एक क्षण के ध्यान मे विलीन हुई तो प्रेम की समाधि की उस पवित्रता के भीतर सेनापति ने राम के एक पत्नीव्रत के पवित्र बीज का, सीता के मगलमय पातिव्रत का तथा सीता के द्वारा राम को तन मन अर्पण की पावनता की सीमा का दर्शन किया और कहा है कि जयमाला पहनाने के बहाने त्रैलोक्य के सौन्दर्य को राई नमक बना कर सीता ने राम के सौन्दर्य पर निछावर कर दिया†।

सेनापति के भक्त-हृदय ने अत्यन्त पावन और अनंत आकर्षक सौन्दर्य का दर्शन राम मे किया है और उसकी ओर सम्पूर्ण विश्व को भक्ति से आकर्षित होते हुए देखा है। सीता के सौन्दर्य का भी पवित्र और भव्य आकर्षण. भक्तिप्रवण हृदय से सेनापति ने अनुभव किया है। और कहा है कि विश्व, राम के सौन्दर्य की ओर खिचता है तथा राम का पवित्र हृदय सीता के सौन्दर्य से आकृष्ट होता है। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट कर देती है कि राम की पवित्रता का अपनी ओर आकर्षित करने वाला सीता का सौन्दर्य परम पावन तथा त्रैलोक्य के सौन्दर्य को पराहत करने वाला है। इस पावन सौन्दर्य के प्रभाव से प्रभावित हो कर सेनापति ने विनोद और श्रद्धा से सिक्त शब्दों के द्वारा यहाँ तक कह दिया है कि सीता के जिस सौन्दर्य पर देवसुन्दरियो का सौन्दर्य निछावर हो गया उसी के प्रताप से राम एक पत्नी व्रती हो सके। यह उनके वशित्व की बडाई नही, सीता के सौन्दर्य की गरिमा का प्रभाव है। इन दो पवित्र आत्माओ की पवित्रता का मूल्याकन बडे कोमल और रसभरे शब्दो मे सेनापति ने अपने हृदय के निर्णय के द्वारा किया है$।

राम के भीतर अपार शक्ति के साथ अनत धैर्य और सयम की जो कोमलता थी उसकी ओर भी भक्त सेनापति का हृदय श्रद्धात्मक स्नेह के साथ आकर्षित हुआ है। परशुराम की उद्दडता तथा राम की स्नेहसिक्त सहिष्णुता मे जिस सुन्दर सामजस्य की शोभा सेनापति

---

‡ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन कवित्त १९। † वही, कवित्त १८। $ वही, कवित्त २३।

ने देखी उससे वे मुग्ध हो गये । परशुराम की उद्दडता पर किसी भी शक्तिशाली व्यक्ति को क्रोध हो जाता, पर राम के धैर्य के महासागर मे परशुराम की उद्दडता क्रोध की एक रेखा भी न उत्पन्न कर सकी; उस महासागर को क्षुब्ध करने का तो प्रश्न ही नही था। राम की इस गौरवपूर्ण धैर्यशालिता से प्रभावित हो कर सेनापति ने कहा है—राम तो वज्र को भी चूर-चूर कर सकते है। महाकाल का भी सहार कर सकते है। प्रलयाग्नि को भी जला कर भस्म कर सकते है। झझा के पवमान को भी बाँध कर उसके अभिमान को नष्ट कर सकते है। वे स्थल को जल और जल को स्थल बना सकते है। मेरु और मदर पर्वतों को चूर्ण कर के धूल मे परिणत कर सकते है। दानवो की तमाम सेनाओं को तहस-नहस कर डालते है। पर ब्राह्मण परशुराम को आदर देने के लिए उन्होंने अपनी अनत शक्ति का सवरण कर लिया और परशुराम के क्रोध से तनिक भी विचलित न हुए ‡।

राम के विश्वमगल विधायकत्व और मर्यादा पुरुषोत्तमत्व से सेनापति पूरी तरह प्रभावित ै। उन्होने राम के शील के भीतर दो बातो का दर्शन निरतर किया है। एक इसका कि राम विश्व को सुधारने के लिए पृथ्वी पर स्वय उतर आये थे तथा इसका भी कि काम की आसक्ति के प्रसार को भी मानव हृदय के भीतर रोक देने के लिए अपना धाम छोड़ कर राम धरती पर अवतीर्ण हो गये थे। स्वर्ग के अपने राज्य को धरती के लिए उन्होने जब छोड़ दिया तब पिता का धरती का राज्य उन्हे किस तरह आकर्षित कर सकता है। वे तो केवल अपने दासों की इच्छाओ को पूर्ण करने के लिए पृथ्वी पर उतर आये थे। राम के पृथ्वी पर के राज्य का यही सहज स्वरूप है कि वे निरभिमान दासों की इच्छाओ को पूर्ण करने के लिए सिहासन को छोड़ कर वन मे निवास कर सकते है। सेनापति ने कहा है कि उनके पृथ्वी के राज्यादर्श को और अधिक सुन्दर ढग से कैसे व्यक्त किया जा सकता है। वह आदर्श तो स्वयं सुन्दर है; उसे सजा कर व्यक्त करने की आवश्यकता नही है। उनके जीवन का मौन व्याख्यान अभिव्यक्ति के लिए वाणी की अपेक्षा ही नही रखता। उनका जीवन मौन हो कर भी मुखर है। वह सब पर अनायास ही अपने आलोक को फैलाता रहता है। सेनापति ने कहा है कि इतने सुन्दर आदर्श शील को सामने पा कर चुप भी तो नही रहा जा सकता; इसीलिए सज्जनों के कानों तक राम के मधुर आदर्शो की मधुर वाणी को पहुँचाने के लिए सेनापति केवल इतना ही कहता है कि उदारशील देवो की उद्दडशील राक्षसो से रक्षा करने के लिए नारायण नर हो गया और दशरथ के महल को छोड कर पैदल ही वनों के पथों का पथिक बन गया †।

मारीचवध के समय भी राम की शक्ति की बडी ओजमयी उद्भावना सेनापति ने की है। इस समय भी सेनापति के भक्त हृदय ने सीमा मे अवतरित हुए असीम के भीतर अनत शक्ति का दर्शन किया है। उन्होने कहा है कि मारीचमृग को देख कर राम ने सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण को दे दिया। वीर रघुपति ने क्रोध के प्रचड वेग से धनुष हाथो

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त २८। † कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त २९।

मे ले लिया। अभियान के पथ पर राम के पैर पड़ते ही पृथ्वी की दशा ही दयनीय हो गयी। क्रोध के समय सेनापति के राम के पद-चाप को पृथ्वी कैसे सह सकती है। वीर राम के पद-चाप से पृथ्वी काँप उठी। समुद्र का जल अपनी मर्यादा के बाहर छलक पड़ा। सब पर्वत डोलने लगे। पाताल तक इस पदचाप का भार पहुँचा और इसे न सह सकने के कारण सर्पराज शेष भाग खड़े हुए। कच्छप ने हठ करके उस कठिन भार को जब अपनी पीठ पर साधना चाहा तो उसकी पीठ चटक कर टूट गयी। राम के अनत क्रोध और उनकी शक्ति के इस विश्वव्यापी आतक का दर्शन सेनापति जी ने अपनी भक्ति रंजित आँखो से किया है‡।

औचित्य का पल्ला पकड कर कुछ आलोचक कह सकते है कि सेनापति ने वीर रस की घिसी-पिटी लीक ही पीटी है, वीर रस का उनका वर्णन उचित नही हुआ है। एक साधारण से राक्षस को मारने के लिए इतने क्रोध की क्या आवश्यकता थी, जिससे सारी पृथ्वी काँप उठी। साधारण तौर से देखने पर ऐसा ही प्रतीत होगा। पर ध्यान से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि मारीच स्वय इस क्रोध का लक्ष्य नही था। इस क्रोध का लक्ष्य विश्वविजेता रावण और उसका यह कुचक्र था। मारीच तो इस षड्यन्त्रपूर्ण योजना का अग मात्र था। जिस रावण के क्रोध से विश्व काँप उठता था उसी रावण को लक्ष्य करके राम का यह विश्वव्यापी क्रोध उत्पन्न हुआ था। राम ने अपनी शक्ति की एक विराट् अभिव्यक्ति उसके सम्मुख की थी। यह पहला अवसर था जब कि रावण रामके इतने निकट आया था। इसलिए अपने शक्तिमय रूप का अविर्भाव करके राम ने रावण को विश्वोत्पीडनसे विरत करने का ओजमय प्रयत्न किया था। एक तरह से सेनापति के अनुसार राम का यह विश्वव्यापी क्रोध रावण के लिए अनत के शक्तिमय रूप का दर्शन था।

इस दृष्टिकोण की सार्थकता तब प्रतीत होती है जब हम सेनापति के रावण के शील का विवेचन करते है। सेनापति ने भी रावण को राम के तामसी भक्त की तरह देख कर सतोष अनुभव किया है। उन्होने भी यही कहा है कि रावण ने अपनी राम-भक्ति और रति को हृदय मे छिपा रखा था। अपने तमोगुणी स्वभाव के कारण वह भगवान् से मैत्रीभाव से नही मिल सकता था, इसीलिए शत्रुभाव से अपने को राम के भावमय ध्यान मे मग्न कर देने के लिए उसने यह वृहत् योजना बनायी थी। राम-लक्ष्मण को धोखे मे डाल कर सुवर्णमृग की माया की सर्जना के द्वारा वह राघव की जाया के छाया-शरीर को चुरा सका†।

सच्ची सीता के हरण के सिद्धान्त को न मान कर सेनापति जी ने छाया-सीता के हरण का सिद्धान्त ही स्वीकार किया है। मर्यादावादी भक्त और कलाकार होने के कारण सेनापति भी सीता के पातिव्रत की रक्षा चाहते है, इसीलिए उन्होने भी रावण के द्वारा सच्ची सीता के हरण को न स्वीकार करके छाया सीता के हरण के सिद्धान्त को ही स्वीकार किया है।

---

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन कवित्त २०। † वही, कवित्त ३१।

अपनें 'रामायण वर्णन' मे सेनापति ने इस वर्णन के कुल छिहत्तर कवित्तों के द्वारा रामायण के उन्ही कथासूत्रो और घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे राम के शील सौदर्य और शक्ति का प्रभाव व्यक्त होता है और उनके पूर्णजीवन पर ओज, माधुर्य तथा सौदर्य युक्त प्रकाश पडता है। अपनी इस सक्षिप्त योजना के द्वारा उन्होंने अपने भक्तिपूर्ण भावो की सुमनांजलि राम के चरणो मे अर्पित की है। इन छिहत्तर छन्दों के सब रस सेनापति की रामभक्ति के ओज, माधुर्य और सौदर्य से आप्लावित है। सेनापति के हनुमान लका जाते समय रामबाण की तीव्र गति से यात्रा करते है। राम के चरण छू कर तथा उन्ही की शक्ति से ओज सम्पन्न हो जाने के कारण ही उनमे यह शक्ति उत्पन्न हुई। राम के चरणो के स्पर्श से ही सेनापति के हनुमान मे तेज का आविर्भाव हुआ है। अनत शक्तिवान् राम के चरणसेवक मे भी अनन्त शक्ति आ जाती है। इस बात को हनुमान इत्यादि के व्यक्तित्व की आलोचना करते हुए सेनापति ने निरन्तर ध्यान मे रखा है। इसी के कारण हनुमान के द्वारा लकादहन का दृश्य बडा आतकमय चित्रित हुआ है। उसकी विभीषिका इतनी भयानक है कि राक्षसो का उद्दड तथा कठोर साहस भी उसके सम्मुख नगण्य-सा प्रतीत होने लगता है ‡।

सेनापति का भक्त हृदय राम को निरन्तर परम कृपालु तथा विश्वरक्षक के रूप मे देखता है। राम की दयावीरता और दानवीरता के बड़े मार्मिक चित्र सेनापति ने प्रस्तुत किये हैं। विभीषण मे राम का जो सम्बन्ध-सूत्र स्थापित हुआ था उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है—जिससे कोई पूर्व परिचय न था, जो सहायता करने न आ कर सहायता माँगनें ही आया था, प्रथमदर्शन के समय जब शत्रु के भाई के रूप मे यह परिचित कराया गया और एक क्षण मे ही झुक कर जब उसने राम के चरणो की वन्दना की तभी केवल पाँच क्षणो मे ही राम ने उसे दशो दिशाओ का स्वामी बना दिया। उनकी इस दया वीरता और दानवीरता का वर्णन शब्द कैसे कर सकते है †।

इसी दान-वीरता का एक और चित्र प्रस्तुत करते हुए सेनापति ने कहा है—रावण के भाई विभीषण ने उस मदाध का साथ छोड कर जब राम की शरणागति स्वीकार की तब मिलते ही राम ने अपूर्व दान वीरता का परिचय दिया। उन दुर्जन-दलन और दीन-बन्धु ने विभीषण के भय का दान रावण को दे दिया और रावण की लका का दान विभीषण को दे दिया। एक ही दान मे सत्यप्रतिज्ञ राम ने दो दानों के सत्य का अवतरण कर लिया। उनकी दान-वीरता का वर्णन कौन कर सकता है $।

मनुष्य के शील के भीतर जिन गुणो के कारण मानवता विकसित हो कर नारायण-त्व को प्राप्त कर लेती है वे सब गुण मर्यादापुरुषोत्तम राम मे थे। भक्त उन्ही गुणों का दर्शन भगवान् मे करके आत्मविभोर होता है। भक्तों का यही स्वभाव सेनापति मे भी है। राम के शील के विश्व-मगल-विधायक सब गुणों का साक्षात्कार सेनापति के हृदय और प्रतिभा की आँखों ने किया है।

---

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ३१ से ३८ तक। † वही, कवित्त ३९। $ वही, कवित्त ४०।

राम के भीतर शील और सौंदर्य की झाँकियाँ तो सेनापति ने देखी ही है; पर अपने राम के अनुकूल ही उन्होंने उनमे अनन्त शक्ति की बड़ी ओज-भरी तीव्रता का दर्शन किया है। उनके राम जितने ही अधिक कोमल, दीन-बन्धु और विश्वमंगल विधायक है, उतना ही प्रचंड उनका क्रोध भी है। सेनापति की दृष्टि में राम की वीरता अपने अपूर्व शक्तिमान् ओज के साथ निरन्तर झूलती रहती है। राम मे प्रभाव प्राप्त करके जब राम-दूत ने लंकादहन का भयानक कांड सुवर्णपुरी के ऊपर रच डाला तब भी व्याज मे राम की ही शक्ति की व्यंजना की गयी थी और अन्य घटनाओं मे भी राम की अनन्त शक्ति ही साक्षात् दृष्टिगोचर होती है। मारीच-वध उसका एक नमूना है। दूसरा स्थल समुद्र नियन्त्रण की घटना है। उसका वर्णन करते हुए सेनापति ने कहा है—राम के बाणों की प्रचंड आग का वर्णन नही किया जा सकता। उस आग की विश्व तापिनी ज्वाला अनिर्वचनीय है। क्रोध करके राम सिन्धुराज को जिस तरह नियन्त्रण मे लाये वह स्थिति शब्दो के द्वारा अभिव्यक्ति नही प्राप्त कर सकती। राम की बाणाग्नि से निकला हुआ ज्वाला-जाल पाताल तक प्रविष्ट हो गया। पाताल मे आग लग गयी। उन ज्वालाओं ने आकाश को आत्मसात् कर लिया। सूर्य भी उन्ही मे विलीन हो गया। बडे-बडे भयानक जलजन्तु भी तडफडा कर मूर्छित हो गये। देवताओं मे नदी-पति की रक्षा का प्रश्न ले कर हाहाकार मच गया। कोई ऐसी शक्ति नही थी जो राम की बाणाग्नि को व्यर्थ करके नदी-नायक को बचा सकती। जिस तरह जल-बिन्दु तप्त तवे पर छनछनाकर जल जाता है उसी तरह तप्त कमठ-पृष्ठ पर समुद्र का जल जला चला जा रहा था‡।

सेनापति के राम के हृदय मे विश्वमंगल विधान की पवित्र आकांक्षा बडी तीव्र और दुर्दमनीय है। विश्व के पीड़ितो के लिए जितनी कोमल दयालुता उनके हृदय मे है उतनी ही कठोर निर्दयता विश्व के पीड़को के लिए उनके भीतर है। विश्व के उत्पीड़कों को नियंत्रित करके विश्वमंगल विधान की उनकी प्रवृत्ति के पथ पर जो गति-विघातक की तरह आ कर अड़ जाता है उसके लिए राम का क्रोध अपना अपरिसीम भयानक रूप धारण कर लेता है। विश्वोत्पीडक रावण के लिए जो दंडविधान होने वाला था उसके पथ मे समुद्र गतिविघातक की तरह उपस्थित हुआ था। इस गतिविघातको दूर कर पथ देने के लिए राम के द्वारा प्रार्थित होने पर भी जब समुद्र नही पसीजा तब उसके लिए भी जो दंडविधान हुआ वह बहुत ही भयानक था। उसी की विभीषिका का वर्णन करते हुए सेनापति ने आगे और कहा है कि अपने शत्रु-शासक बाणो से राम ने जब अग्नि की वर्षा आरम्भ कर दी तब आग की ज्वाला आकाश मे न समा सकी। महामत्स्य भी घबरा कर दीन हो गया। बहुत से जलचर जीवहीन हो कर चुरने लगे। जल देव वरुण हाथमल कर पछताने लगे। वे कहने लगे—अभिमानी नदीपति ने आरम्भ मे ही राम की विनम्र प्रार्थना न सुनी। अब तो पता नही कौन-सा उत्पात और कब हो जाए। रावण की राजधानी लंका भयभीत हो गयी है। जल के प्रज्ज्वलित होते चले जाने मे जलधि धूलि का कोष बनता चला जा रहा है†।

---

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ४१। † वही, कवित्त ४२।

राम की बाणाग्नि बडी विषम है। उसके आगे पारावार का गर्व भी चूर हो गया। उस जलराशि के तापमान का वर्णन कैसे किया जा सकता है जहाँ से उठी हुई ज्वाला से आकाश तक जल गया है और सूर्य जिसमे विलीन हो गया है। जो जल-जन्तु बडवानल को छोड कर शीतल जल की ओर आ गये थे उन्हे बाणाग्नि से जलते हुए समुद्र मे अब बड़वानल ही शीतल मालूम पड़ रहा है और वे उसी ओर भाग कर चले जा रहे है। जल उबल रहा है, सूर्य तक उस ताप से विचलित हो कर तडफडा रहे है। समुद्र का जल ज्वालाओं से ढँक गया है। मछलियाँ और कछुए उछल पड़ते है। शेष का हृदय कम्पित दिखाई पड़ रहा है। लपटो के लगने से पर्वत प्रज्ज्वलित हो गये है और चटक-चटक कर उनके पत्थर फूट रहे है। विद्याधर लोग राम की विजय-कामना करके उनका यशोगान कर रहे है। समुद्र को चारों ओर से घेर कर ज्वालाएँ जला रही है। उन ज्वालाओ से घबरा कर प्रचड बाड़वाग्नि तक समुद्र को छोड कर भाग जाना चाह रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राम के बाणों की प्रबल और प्रचड अग्नि पाताल को फोड कर प्रकट हुई है†।

इन सब वर्णनो मे सेनापति की मौलिकता स्पष्टत. झलकती है और यह भी अनुभव होता है कि कवि का हृदय शौर्य की भावना में बिलकुल तन्मय हो गया है और राम के इस पावन शौर्य के माध्यम से उसने उनके लिए अपने हृदय मे श्रद्धात्मक प्रेम की पद्धति बना ली है। राम की इसी भक्ति के प्रवाह मे उसका हृदय 'कवित्तरत्नाकर' के हर छद मे उन्मुक्त हो कर बह पड़ा है।

अन्त में समुद्र शरणागत हो जाता है और राम उसके बन्धन की आज्ञा देते है। यहाँ राम के प्रभाव का फिर एक भव्य चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। बाणाग्नि के शान्त होते ही ब्रह्मा स्वय वेद-पाठ करने लगते हैं, इन्द्र राम की प्रार्थना करने लगते है, समुद्र स्वयं अपने तटों पर ऋतु के अनुकूल पुष्पों की वर्षा करता है, मगलमय स्वरो मे सगीत की वर्षा होने लगती है, अर्धनारीश्वर स्वय आनदमत्त हो कर वहाँ आ जाते है और नारद तथा सरस्वती की वीणाओं की स्वर-माधुरी विश्व भर के मन को मुग्ध कर लेती है। इसी स्वस्त्ययन समारम्भ के मध्य मे राम ने समुद्र पर सेतु निर्माण की आज्ञा दी। वानरों के द्वारा सेतु-निर्माण की चर्चा करते हुए सेनापति ने कहा है कि राम के चरणो की धूल का स्पर्श करके सब वानर वज्राग हो गये थे; इसीलिए उन्होंने पर्वतों को उखाड-उखाड कर समुद्र को पाट दिया‡।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार अनत और अद्वैत ब्रह्म माया विशिष्ट हो कर नर होने पर भी अनत शक्तिवान् ही रहता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार सेनापति ने भी अपने अवतारी राम को अनतशक्ति सम्पन्न नर के रूप में अकित किया है। उनके अनुसार राम का प्रताप अद्भुत है। वेद उनके यश का गान करने का प्रयत्न करते है, पर उन्हे पूरी सफलता नही मिलती। राम की शक्ति से समुद्र का जल भी स्थल के रूप मे परिणत हो जाता है।

---

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ४३–४४। † वही, कवित्त ४५ और ४७।

जलनिधि की अनत जलराशि राम की बाणाग्नि मे तेल के समान जलने लगती है। जिन पर्वतो की जडे पाताल तक पहुँची हुई है ऐसे पर्वत भी राम के प्रताप से समुद्र के जल के ऊपर रुई के फूल की तरह तैरने लगे। अत. सेनापति का अनत शक्तिमान्, नर रूपी नारायण, अपनी अनंत शक्तियों के कोष के साथ उनकी भक्ति का आलबन बना हुआ है। उसका अनत प्रभाव इतना अमोघ है कि उसके वरद हाथो की छाया मे वानर तक निर्भय हो कर काल को भी चुनौती देते है। राम के इसी स्वामित्व की छाया मे अगद अपने को अनत शक्तिमान् अनुभव करने लगते है। वे वज्र को धूल बना सकते है, मेरु को चूर्ण कर सकते है तथा सूर्यो को धूल मे मिला सकते है‡।

अगद के भीतर राम के इसी अनत प्रभाव की व्यजना करने के लिए सेनापति ने लिखा है कि शत्रु-दल के बीच, क्रोधित हो कर, जब अगद ने अपना पैर जोर से पृथ्वी पर पटका तो शेष का अनत बल फूल की तरह नगण्य हो गया, पर्वत धूल-धूल हो गये, दिग्गज भी धूल मे मिल गये तथा पाताल के सप्त आवरण एक क्षण मे पापड़ की तरह फूट गये। राम के प्रभाव को हृदय मे सम्हाल कर अपने पद-चाप से जब अगद ने विश्व को कम्पित कर दिया, तब दश शीश ने उनके पैरों को अपने मस्तकों पर पडे हुए से अनुभव किया और शिवके वरदान का उसका अभिमान लुप्त हो गया। अनत शक्तिमान् राम के सेवक की तरह जब अगद ने अपने को अनुभव किया तब उनके भीतर भी राम की अनत शक्ति आ कर बैठ गयी। उनके पैरो के भार से कच्छप व्याकुल हो उठा। शेष, धरा के भार-धारण का अपना काम छोड कर भाग खड़े हुए। उस भार से दब कर पाताल के सप्तावरण एक ही आवरण स्तर के रूप मे परिणत हो गये।

इन वर्णनो मे अत्युक्ति और अतिशयोक्ति का आभास दिखाई पड सकता है; पर जब इस प्रभाव के पीछे अनत शक्ति के हाथों का दर्शन हो जाए तो अतिशयोक्ति के लिए कोई स्थान नही रह जाता। अनत शक्तिमान् राम क्या नही कर सकता। उसके प्रभाव के लिए विश्व मे कोई कार्य दुष्कर नही है। इस अनत शक्ति की अनुभूति करके सेनापति ने उसकी व्यजना भी घटनाओं के अनत मापदड पर रख कर ही की है। बिना किसी योजना के हृदय की भक्ति का यह प्रभाव अनत को अनत रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए अनजान मे सेनापति के हृदय मे प्रवाहित हो गया है†।

अनन्त सत्य और अनन्त पवित्रता का प्रभाव राम के आदर्श शील का प्रभाव है। राम और लक्ष्मण मे पवित्रता की वह अनन्त शक्ति है जिसके विरुद्ध शूलधर शिव को भी सफलता नही मिल सकती। देवता, सिद्ध और विद्याधर सब उस अनन्त पवित्रता के चारण है। वे सब राम और लक्ष्मण की वन्दना करते है। सेनापति के अगद के अनुसार रावण तभी जीवित रह सकता है जब कि वह इस पवित्रता का हृदय से उपासक बन जाए और सीता को वापस करके अपने विश्वोत्पीडक शील मे परिवर्तन कर ले। विश्वोत्पीडक शक्ति

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ४९ और ५२। † वही, कवित्त ५३ से ५५ तक।

का सहारा लेने वाला व्यक्ति तभी सुरक्षित रह सकता है जब अपनी अपवित्रता को राम की पवित्रता मे परिवर्तित कर ले; अन्यथा राम की अनन्त पवित्र शक्ति उसका नाश कर देगी‡।

सेनापति के अनुसार राम-रावण का युद्ध अनन्त आदर्श और अभिमान के समुद्र के बीच का युद्ध था। राम अनन्त पवित्रता के प्रतीक थे और रावण मदान्धता का महा सागर था। इनका युद्ध अनन्त सात्त्विकता और अनत तमोगुण के बीच का भयानक सघर्ष था। राम की सात्त्विकता की शक्ति से देवशील प्रोत्साहित हो रहा था और रावण के तमोगुण से निशाचरो का तमोगुण तरगित हो रहा था†।

इस युद्ध के अंत मे तमोगुण का महासागर सूख कर गतप्राण हो गया। उसके श्मशान पर सत्त्वगुण का पवित्र आलोक उदित हुआ और विश्वभर पर छा गया। विश्व का भय त्रस्त हो गया और विश्व को छोड़ कर भाग गया तथा देवराज के दरबार मे नगाड़े बजने लगे। मगलमय शकर ने अत्याचार के उसी श्मशान मे विश्व मगल विधायक राम का स्वागत किया। सेनापति की भक्ति साधना मे शक्ति-शील और सौन्दर्य की उपासना की यही शब्दमयी प्रक्रिया है$।

इसी प्रक्रिया मे कवि ने सीता की अग्नि परीक्षा की झाँकी देखी है। उसकी सीता का यहाँ का चित्र एक शक्तिमती मानवी का चित्र है। वह अपने परम पावन पातिव्रत के शील की पवित्रता की शक्ति के कारण प्रचड पावक मे प्रवेश के समय भय से छू तक नही जाती। उसके सत्य के समक्ष अग्नि भी शीतल हो गया तथा दर्शक देवताओ की सभा भाव-विभोर हो कर अपना अस्तित्व तक भूल जाती है। सेनापति की सीता का तेज आग मे तप कर सुवर्ण की कान्ति को भी लज्जित कर देता है*।

अत्याचार पर विजय प्राप्त करके सीता की अनुपम पवित्रता के साथ पुष्पक पर सेनापति के राम का तेज ऐसा प्रभावशाली है कि उस पर करोड़ों इन्द्र और सूर्यो का तेज निछावर किया जा सकता है। इसी पवित्रता को सेनापति ने निश्छल भाव से अपना हृदय अर्पित कर दिया है। चौदहों भुवनो को जिस विश्व मगल विधायक ने आनन्द मे मग्न कर दिया उसे हृदय अर्पित कर देना स्वाभाविक ही है। इसीलिए सेनापति के समान सवेदन-शील भक्त ने अपना हृदय राम को दे दिया§।

हृदय के इसी पवित्र आनद को मापदण्ड बना कर सेनापति ने भक्त के हृदय की गहराई की थाह लगायी है। स्वार्थ के ऊपर उठ कर जो हृदय भजन के रस मे डूब जाए, विश्व रूप भगवान् की सेवा मे जो अपने स्वार्थों को खो दे, वही सेनापति के अनुसार भक्त है। अपने स्वार्थो की दुनिया को विवेक के प्रकाश मे जो स्वप्न समझ ले वही सच्चा भक्त है। भक्त विश्वरूप भगवान् की सेवा के बल को अपना बल समझता है। वह

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, छद ५६। † वही, छद ५८। $ वही, कवित्त ६६। * कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ६७। § वही, कवित्त ६८।

विश्वरूप भगवान् की सेवा करता है और सारा विश्व उसकी सेवा करता है। भक्त रूपी भगवान् की सेवा करके सब लोगों को अपनी-अपनी वाछित वस्तु प्राप्त हो जाती है। सेनापति भजन के इस अद्भुत प्रभाव को जानते है। इस भजन के भीतर तन और मन का जो अर्पण होता है, भगवान् की सेवा मे लय होता है उसका माधुर्य सेनापति के अनुसार अनिर्वचनीय होता है। उन्होने कहा है कि भजन के इस रस को हनुमान ने अनुभव कर लिया था; इसीलिए भजन करने के योग्य शरीर रहने के समय तक ही उन्होंने अपने जीवन की अवधि भगवान् मे माँग ली ‡।

अवतारी राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व पर सेनापति रीझ गये है। इस रूप के प्रति उन्हे अपार श्रद्धा है, पर दूसरे अवतारों के रूपों को भी वे सम्मान देते है। जाम्बवान या जामवन्त की चर्चा करते हुए सेनापति जी ने कहा है—'जिस समय वामन बलि को छल रहे थे उस समय जामवन्त ने उनकी परिक्रमा की। जामदग्नि परशुराम का दर्शन भी उन्होने किया। लकाधिप का अभिमान चूर करने वाले राम के भी दास हुए। उन्होने अपनी कन्या जामवन्ती का विवाह कृष्ण से करके उन्हे भी सम्मानित किया। इसी तरह जामवन्त और अवतारों से भी मिले, परन्तु सीतापति के सेवक के रूप मे ही वे अधिक प्रसिद्ध हुए। सीतापति के व्यक्तित्व के इस आकर्षण का अनुभव मैंने भी किया, इसीलिए उन्ही गुणधाम का मैंने अधिक यशोगान किया है।' अतएव सब अवतारों के प्रति सेनापति भक्ति को ले कर उन्मुख हुए; पर मर्यादापुरुषोत्तम के मर्यादित रूप-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य की अनुभूति में उनका भक्ति-प्रवण हृदय पूर्णत लीन हो गया †।

अयोध्या नगरी की मुक्ति के सम्बन्ध मे सेनापति की अनुभूति बडी अद्भुत और स्नेहसिक्त है। उन्होने कहा है—"विश्व मे अनेक राजा हुए तथा बहुत-सी राजधानियाँ भी बनी, पर राजाराम को पति की तरह पा कर जिस अनुपम सोहाग को अयोध्या ने प्राप्त किया उसकी तुलना तो किसी दूसरी राजधानी और राजा के प्रेम से नही की जा सकती। अयोध्या और राजाराम के प्रेम का नियम ही दूसरा था। अपने जीवन भर अयोध्या राजाराम की भुजाओं की छाया मे रही। उसने किसी दूसरे राजा के ध्यान को अपने हृदय मे स्थान नही दिया। अन्त समय मे पृथ्वी पर की अपनी लीला समाप्त करके राम अयोध्या को भी अपने साथ लेते गये और त्रिलोक के उस नायक ने इन चौदहों भुवनों मे अनेक देव-लोकों के दिव्य समूहो को छोड कर अयोध्या को एक शाश्वत दिव्य धाम की तरह पन्द्रहवाँ भुवन बनाया और स्वर्ग लोको मे उसी के साथ रहने लगे।" यह कितनी मधुर अनुभूति है जिसमे राम के प्रेम मे मग्न चेतन ही शाश्वत राम के साथ रहने का अधिकार मुक्ति की अवस्था मे नही प्राप्त करते वरन् जड पुरी भी अपने पति राम के साथ अनंतकाल तक निवास करने के लिए दिव्य लोकों मे चली जाती है और भव-बन्धन मे मुक्त हो जाती है। यद्यपि यह अनुभूति परम्परागत है; क्योंकि जडता मे भी भारतीय साधक हृदय ने चिन्मय का मानवरूप वेदो के समय से ही देखा है; पर सेनापति ने

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ६९। † वही कवित्त ७०।

अयोध्या के हृदय में अपने पति राम के लिए जिस मधुर प्रेम का दर्शन किया है, वह बडा ही आकर्षक है। अयोध्या और राम के शाश्वत मधुर भाव की यह अनुभूति प्रेमालोक से सिंच कर पावन गौरव की अनतता के शृगार से सज्जित हो गयी है

सेनापति की सवेदनशील अनुभूति ने अयोध्या और राम के मधुर भाव का दर्शन तो इस रूप मे किया; पर राम के हृदय मे जगत् मे रहने वाली अपनी प्रजा के लिए, जो प्रेम था उसकी भी अन्तिम परिणति की बडी ही भव्य और मधुर अनुभूति सेनापति ने प्राप्त की है। उन्होने कहा है—"अयोध्या मे रहने वाले सब लोंगो की सब कामनाएँ पूरी हो गयी! अपने परम ऐश्वर्यवान् स्वामी की भुजाओं की छाया मे ही वे बढे। अनाथों की तरह स्वामियों की भीड में उन्हे स्वप्न मे भी नही भटकना पडा। इन्द्र और यमराज से भी वे नही डरते थे।" ऐश्वर्यवान् देवराज और शक्तिमान् काल की शक्ति के बाहर वे चले गये थे। राजा राम अनत ऐश्वर्यवान् और अनत शक्तिमान् है। उनका सहारा ले लेने पर साधक अन्य दूसरी शक्तियो की पहुँच के बाहर हो जाता है:—"राम ने अपने जिन प्रेमियों को जगत् मे कारण वश छोड़ दिया उन्हे अमर बना दिया और बाकी लोगों को अपने साथ लेते गये और उन्हे शाश्वत काल तक अपने साथ रहने की मुक्ति दे दी। साकेत मे रहने वाले जीव ही सच्चे सनाथ है और केवल राजा राम की स्वामिता ही सच्ची स्वामिता है।" हनुमान्, विभीषण और परशुराम अमर माने जाते है। इन्हीं की ओर सेनापति ने इशारा करने के लिए कहा है कि राजा राम ने जिन लोगो को यहाँ रख दिया उन्हे अमर बना दिया। स्वामी के हृदय मे सेवक के लिए जो वात्सल्य रहना चाहिए उसकी बडी मधुर अनुभूति सेनापति के भक्त हृदय ने अपने उपास्य राम के शील के भीतर की है†।

इसी राम के लिए सेनापति के भीतर अनन्य भक्ति है। उन्होंने कहा है—"राम तो सब राजाओ के राजा है। उनका राज्य जगत् पर निरतर स्थिर रहता है। पीडाओं को नष्ट करने वाले वे परम समर्थ और बलवान वीर है। कोई देवता या देवेश उनकी बराबरी नही कर सकता। सूर्य के उदय होने पर कोई दूसरा तारा अपने प्रकाश की कैसे रक्षा कर सकता है। उनके सहारे को छोड कर दूसरे का आश्रय स्वीकार करना अमृत के समुद्र को छोड कर कूओं का सहारा लेने के समान है। जो चौदहो भुवनो का राजा है, जिसके सहारे पर रहने से मनुष्य दु:खों से बच जाता है, चित्त जिसकी ओर स्वत: ही आकृष्ट हो जाता है, वही राजा राम मेरा सहायक है।" इसी सर्वशक्तिमान् राम के चरणो मे सेनापति ने अपने अनन्य हृदय को अर्पित कर दिया है$।

राम की यह कथा जिस पद्धति से कविता बन जाती है उसकी प्रक्रिया भी बडी सरल और पवित्र है। सेनापति ने बडे सहजभाव से इस काव्यकला-दर्शन को प्रस्तुत किया है। राम के पवित्र और धवल शील का आलोक निर्दोष और सूर्य की ज्योति की तरह भास्वान है। ऐसा शील जब कवि के हृदय मे कविता बनने लगता है तब उसके लिए

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ७१। † वही, कवित्त ७२।
$ वही, कवित्त ७३।

किसी सजावट की आवश्यकता नहीं पड़ती। परमसुन्दर तो स्वयं सहज सुन्दर है। उसे सजाने के लिए किसी वस्तु की क्या आवश्यकता। राम का सुन्दर शील कवि के हृदय में पहुँच कर जब कविता बन जाता है, तब शील के उस काव्यमय रूपान्तर में दोष रह ही नहीं सकता। वह कविता सहज सौन्दर्य की अनुभूति से विभूषित रहती है। खरदूषण के तमोगुण का विनाश करने वाला शील जिस कविता का विषय बन जाएगा वह कविता सत्त्व के तेज से दीप्तिमती सुन्दरी का रूप धारण कर लेगी। उसके अक्षर अक्षर में सत्त्व के तेजोवान परमाणु बैठे होगे। उसके अक्षर में दूषण की सभावना कहाँ से हो सकती है‡।

राम-नाम के अनत महत्त्व की पहचान भी सेनापति ने थोड़े ही शब्दों में बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त कर दी है। उनके अनुसार राम के नाम को शिव अपनी नवनिधियो के समान समझते है। विभूति धारण करने वाला दिगम्बर शिव राम-नाम के प्रभाव से नवनिधियो का स्वामी होता है। इसी नाम के प्रभाव से हनुमान् अष्टसिद्धियों पर पूर्णाधिकार रखता है। राम के नाम ने ही विभीषण को समृद्धि दी। वाल्मीकि ने भी इसी नाम का यशोगान किया। ब्रह्मा ने भी इसी नाम को अपना सहारा बनाया। आदर्श शील का प्रचार करने वाले वेदों के लक्ष्य भी वे ही आदर्श है जो राम के नाम के साथ सम्बद्ध है। जप और यज्ञ को सौन्दर्य तभी प्राप्त होता है जब जप और यज्ञ करने वालो के भीतर राम के नाम के साथ जुड़े हुए आदर्श शील की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण सनकादि ऋषियो ने शीलवान राम के इस नाम को अपने हृदयो मे बिठा लिया है। राम का यह नाम अमृत के समान है। इस नाम मे बैठे हुए शील की सिद्धि जो प्राप्त कर लेता है उसका यश राम के ही यश की तरह अमर हो जाता है। इस नाम मे भोग और मोक्ष दोनो प्राप्त होते है। राम के जीवन मे भोग और योग दोनो एक साथ निवास करते थे; इसीलिए उनके नाम के स्मरण मे आदर्श भोग और योग मनुष्य के शील बन जाते है। परम मगल के उद्गम इस नाम को सेनापति ने पहचान लिया है। राम का नाम सेनापति के अनुसार कामनाओ की पूर्ति के लिए कामधेनु के समान है। इस पवित्र शक्ति की सिद्धि के बाद कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रह जाती। राम के शील मे विरोध विश्रान्त हो गया था। राम अजातशत्रु थे। उनके व्यक्तित्व मे शान्ति सिद्ध हो चुकी थी; इसीलिए उनके शील की स्मृति शान्तिदायिनी है, उनका नाम जिह्वा का विश्राम है, वह नाम विश्व के समग्र पूर्ण धर्मो का केन्द्र है। मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम की इसी अमोघ शक्ति को सेनापति ने पहचान लिया था†।

राम की कहानी स्वर्गीय जीवन की कहानी है। इस स्वर्गीय कहानी को सेनापति ने मर्म तक पहचान लिया था। राम की कहानी मे गगा की धारा की पवित्रता है। रामकथा की इस गगा-धारा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतार लाने के लिए अनेक लोगों ने शील की साधना की। इस गगा की धारा के मधुर रस का स्वाद लव और कुश ले चुके थे। राम के

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ७८। † वही, कवित्त ७५।

शील से वे परिचित थे, इसीलिए मुक्त हृदय और मुक्तकठ से शील के सौन्दर्य के रस का उन्होंने यशोगान किया। सतो को राम-कहानी की इस गगा के सौन्दर्य और माधुर्य ने मोह लिया था। इस गगा-धारा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतार लाने के लिए देवताओ ने पवित्र साधनाओ के प्रयत्न किये। इस राम-कहानी का प्रत्येक वर्ण उज्ज्वल और मधुर है। देवताओ की शील-साधना से प्रसन्न हो कर अनत शीलवान परमात्मा पृथ्वी के राजा के रूप मे उतर आया। उसकी कहानी की गगा जब धरणी पर उतर आयी तब पृथ्वी शीतल हो गयी। सेनापति ने राम-कहानी की इस गगाधारा मे ऐसी पवित्रता का दर्शन किया है जो किसी तीर्थ मे सभव नही है। स्वर्गीय जीवन को पृथ्वी पर उतार लेने की पवित्र प्रक्रिया का दर्शन सेनापति ने निश्चित ही कर लिया था और वे उस स्वर्गीय जीवन के सौन्दर्य को राम के शील मे अनुभव करके मुग्ध हो गये थे‡।

'रामायण वर्णन' मे सेनापति ने जीवन की प्रबधात्मकता के भीतर राम के शील का विकास देख कर उस अनत पवित्रता पर उन्होंने अपने को निछावर कर दिया है। 'कवित्त रत्नाकर' की पाँचवी तरग 'रामरसायन-वर्णन' है। यह तरग रामभक्ति के स्फुट छदों का सग्रह है तथा इसमे कृष्ण और विष्णु की प्रशस्तियों के भी छन्द है। छियासी छन्दो मे से सोलह छन्दो मे देवनदी गगा की प्रशस्ति है। कुछ छन्दो मे शिव की भी प्रशस्तियाँ है।

इस 'रामरसायन वर्णन' मे राम के उन्ही सगुण और निर्गुण रूपो के ध्यान के स्फुट चित्र तथा भक्तवत्सल राम के सौन्दर्य, शील और शक्ति के प्रभावो की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस तरग के मगलाचरण मे सेनापति ने सगुण-निर्गुण राम की वन्दना की है। अपनी मौलिक उद्भावना से वन्दना की अभिव्यक्ति करते हुए उनके कवि ने कहा है—"सेनापति उस राम की वन्दना बार-बार करता है जिसने जीव, ज्ञान, प्राण, तन, मन और मति दे कर इस अनत रचना वाले जगत् को देखने की शक्ति दी। आँखो से देखने पर उसका अनुपम विश्वरूप दिखाई पड़ता है, पर बुद्धि से विचार करने पर वह निराकार और निराधार प्रतीत होता है। उस राम का तेज, नीचे, ऊपर, आकाश मे, दसों दिशाओ मे तथा प्रत्येक हृदय मे व्याप्त हो रहा है। वही तेज तीनो लोकों का आधार है। वह राम, पूर्ण पुरुष, इन्द्रियो का स्वामी तथा गुणो का उद्गम स्थान है।" परमात्मा की सगुणता को दृष्टि का परिणाम तथा निर्गुणता को चिन्तन का परिणाम मान कर सेनापति ने प्राय. मौलिक उपस्थापना ही की है†।

चौथी तरग की भक्तिधारा के ही स्फुट रत्न इस पाँचवी तरग मे किचित् परिवर्तित छाया मे सगृहीत किये गये है। यहाँ भी सेनापति के राम की वन्दना सनकादि करते है। वेद चारण बन कर उसी का यशोगान करते है। शेष, रवि, शशी और पवन सेवा करके उसी को रिझाना चाहते है। उसी रघुवीर को सेनापति अधीर हो कर अपनी पीडा सुनाना चाहते है और अन्य लोगो को भी यही परामर्श देते है। उनके अनुसार बन्धुओ की भीड

‡ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरग, रामायण वर्णन, कवित्त ७६। वही, कवित्त १।

के आगे तो मौन रह जाना ही श्रेयस्कर है। श्यामवर्ण, 'सारंगधनु' को धारण करने वाले राम के बिना कोई दूसरा भव-पीड़ा से मुक्ति नही दे सकता‡।

सेनापति का अभिमानी साधक 'मानधन' है। वह तो केवल 'कपटविहीन, परवीन, जगत-भरन, जनरजन, बारिद-बरन, दारिद-हरन' राम के सामने ही अभिमान छोड़ कर झुकता है। राम का-सा शील जहाँ हो, सेनापति वही झुकेगा, अन्यत्र नही। वह कभी चिन्ता नही करता, मन को दुर्बल नही बनाता। वह, निरन्तर राम की भक्ति के घने आनंद में डूबा रहता है। वह 'आदर के भूखे' सूखे वृक्ष से भी अधिक रूखे स्वभाव वाले, परपीड़क दुर्जनों से सहायता के लिए एक शब्द भी नहीं कहता। भक्ति के भीतर उत्पन्न होने वाला भगवान् के प्रति यह अटल विश्वास भक्त को एक अपूर्व शक्ति प्रदान करता रहता है। यह शक्ति सेनापति मे स्पष्टतः परिलक्षित होती है†।

विश्वासपूर्ण भक्ति से ओत-प्रोत बड़े निश्छल शब्दों मे सेनापति ने राम को पुकारा है और प्रेमपूर्ण उलाहने भी दिये है। उन्होंने राम से कहा है—"तुम दयासिन्धु और दीनबन्धु हो। तुम अपने सम्मान को कैसे भूल जाते हो। तुम्ही हमारे धन हो। तुम्ही से मैंने प्रेम की प्रतिज्ञा कर ली है। किसी दूसरे से हमारा मन नही मानता। मैं तो निरन्तर तुम्हारा ही स्मरण करता रहता हूँ। तुम्ही से हमारा वश चलता है। दूसरा कोई सहायक मुझे नही सूझता; इसी से व्याकुल हो कर हम तुम्हारे चरणों पर लोट जाते है। तुम चाहे मानो या न मानो तुम्हे जो रुचे वही करो, हम तो पुकार तुम्ही से करेगे।" अनन्यता मे रहने वाला विश्वास इसी तरह निश्छल हो कर भगवान् को अपना केन्द्र बना लेता है और उसी के प्रेम मे लीन हो जाता है$।

सेनापति के 'सियकत भगवत राम' की 'महिमा अनंत' है। लक्ष्मी उसकी पत्नी है सरस्वती उसकी जिह्वा है वह महामाया का भी पति है। सूर्य और चन्द्र उसके सुन्दर नेत्र है। ब्रह्मा उसके पुत्र, शिव उसके नाती चार दिक्पाल उसकी चार भुजाएँ हैं। वह शेष की सुख शय्या पर सोता है। उसका तेज त्रिलोक पर छाया हुआ है। अनंत नारायण ही सेनापति के अनुसार राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं*।

भारतीय भक्ति-क्रान्ति के भीतर एक बलिष्ठ आशावाद को जन्म मिला था। भगवान् की अनत शक्ति भक्त को निरन्तर सहायता देती रहती है। यदि निश्छल हो कर वह भगवान् की ओर चला जाए तो उसके सब अपराध क्षमा कर दिये जाते है। महा पापी भी पाप मुक्त हो कर भगवान् के पथ पर पुण्यात्मा हो जाता है। इसी विश्वास और आशा की व्यजना सेनापति ने भी बड़े मौलिक ढंग से की है। उन्होंने राम से कहा है—"कुपथ को छोड़ कर बिभीषण इत्यादि तुम्हारे रास्ते पर चले आये और तुमने उन सबको तार दिया। उन्होंने मनचाहा काम कर लिया। सन्मार्ग को छोड़ कर ऋषि पत्नी वन मे कुमार्ग पर चली गयी। उसे भी तुमने तार दिया और उसके

---

‡ कवित्त रत्नाकर, पाँचवीं तरंग, रामरसायन वर्णन, कवित्त ३। † वही, कवित्त ४।
$ वही, कवित्त ५। * वही, कवित्त ६।

किसी दोष पर ध्यान न दिया। तुम कुमार्ग गामियों को ही तारते हो यह जान कर हमने सन्मार्ग को छोड़ दिया है और कुमार्ग पर ही चल रहे है, यह समझ कर कि तुम हमे भी तार दोगे। हम अपार कल्मष के भार से भरे हुए है। जब तुम अपने मार्ग के सब लोगो को तार देते हो तब हम भी तो तुम्हारे पथ पर तरने के लिए ही पड़ गये है। हमे भी तार दो।" यह निश्छल आत्म-निवेदन और शरणागति का भाव अपार आशा और विश्वास को साथ ले कर ही चलता है। यही विश्वास भक्त का बल बनता है‡।

विष्णु, राम और कृष्ण के अभेद का दर्शन करते हुए सेनापति ने इन पूर्ण पुरुषों मे मर्यादा की पवित्र निश्छलता का अनुभव किया है। व्याजस्तुति अलंकार के सहारे विष्णु राम और कृष्ण के भीतर के अभेद के प्रति अपनी भक्ति की व्यजना करते हुए सेनापति ने बड़े कोमल और सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होने कहा है—"जो धीवर का सखा, वन्य जातियो का स्नेही, गिद्ध का बन्धु और शबरी का मेहमान है, जो पांडवो का दूत और अर्जुन का सारथी है, जो पादाघात का दड पा कर भी निर्लज्ज हो कर ब्राह्मण के चरण-चिह्न को अपने हृदय पर धारण करता है, जो व्याध के अपराध की चिन्ता नही करता, जो मूर्ख कुत्ते की भी शिकायत सुनता है, जो बलि का द्वारपाल है, उसी 'अवगुनी' की सेवा करने के लिए सेनापति तरसता है। उसके समान मूर्ख कौन होगा।" सेनापति के ये शब्द, विष्णु, राम और कृष्ण की निन्दा करते हुए प्रतीत होते है, पर वस्तुत. इन शब्दों को सहारा बना कर सेनापति ने उन पूर्ण पुरुषो की बड़ी मधुर स्तुति की है। इस समन्वयोन्मुखी स्तुति में आदर्श और विश्वमंगल विधायक निश्छल शील की उपासना है†।

सेनापति की भक्ति मे विश्वास पूर्ण अनुभूति का अपार बल है। राम का कृपापात्र हो जाने का अपार विश्वास सेनापति के भीतर है। उसी विश्वास के साथ वह कलियुग को डाँटते हुए कहता है—"महाराज रामचन्द्र मुझे अच्छी तरह पहचानते है। लक्ष्मण कुमार से मेरा प्रेम है इसीलिए महारानी जानकी भी मुझे जानती है और लक्ष्मण कुमार के समान ही मुझे माननी है। 'बड़ी सरकार' के हृदय मे मेरे लिए कृपा पूर्ण स्नेह को जान कर विभीषण और हनुमान भी अभिमान छोड़ कर मुझे सम्मान देते है। हे कलियुग! काल भी मुझे अपमानित नही कर सकता। तू अपना प्रभाव मुझ पर डालने के प्रयत्न कर रहा है। तेरे समान मूढ़ मति, कायर और गँवार कौन होगा। मैं निश्चित ही राजा रामचन्द्र जी के दरबार का जूता उठाने वाला सेवक हूँ। मुझ पर तेरा प्रभाव कैसे पड सकता है$।"

एक तरफ़ राम के लिए इतना विनम्र शरणागति का सेवाभाव और दूसरी तरफ़ मदान्ध बलवान कलियुग के लिए इतनी ओजभरी फटकार के लिए शक्तिपूर्ण साहस। भक्ति के भीतर पलने वाले दैन्य मे यही पवित्र ओज रहता है। भक्त के हृदय मे अनौचित्य के लिए पवित्र और शक्तिमान क्षोभ तथा आदर्शो के सम्मुख श्रद्धा से झुक जाने

‡ कवित्त रत्नाकर, पाँचवी तरंग, रामरसायन वर्णन, कवित्त ७। † वही, कवित्त १९।
$ वही कवित्त २३।

वाला दैन्य—ये दोनों साथ-साथ ही रहते हैं। वह राक्षस के तामसी शील को भस्म करने वाली शक्ति और भगवान् के सात्त्विक शील के सामने दैन्य की विनम्रता से झुक जाने वाली भक्ति को अपने व्यक्तित्व मे एक साथ ही विकसित करता रहता है। शक्ति और भक्ति के इस जोड़े मे कार्य-कारण सम्बन्ध होता है। भक्ति के विकास के अनुपात के साथ भक्त के हृदय मे भगवान् की सात्त्विक शक्ति भी बढ़ती जाती है।

सेनापति की उपरि निर्दिष्ट भक्ति की व्यजना से यह स्पष्टत. परिलक्षित होता है कि राम का सान्निध्य उन्हे प्राप्त हो गया था और राम लक्ष्मण तथा सीता के अनंत पवित्र शील की अनुभूति उन्होंने प्राप्त कर ली थी। राम-सिद्धि आखिर यही तो है। यदि भक्त शील की इस सिद्धि को प्राप्त करले तो उसने राम को प्राप्त कर लिया। यद्यपि धार्मिक साधना के भीतर सगुण साक्षात्कार का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है तथापि यदि राम-के शील की सिद्धि भी साधक कर ले तो वह राम तुल्य हो जाता है। सेनापति जी ने राम लक्ष्मण तथा सीता की पवित्रता की सिद्धि प्राप्त कर ली थी, इसीलिए उन्हे त्रिमूर्ति का सान्निध्य अनुभूत हो रहा था। इसमे कोई सन्देह नही कि कर्मब्रह्म की पवित्रता की साधना सेनापति जी ने अपने जीवन के विकास-क्रम मे पूरी कर ली थी। इस पवित्र जीवन का स्वाद उन्हे मिल चुका था। यदि इस पवित्रता का अनुभव करके इसका अनुवर्तन वे जीवन में न करते होते तो उनके शब्दों में इतनी शक्ति न पैदा होती। 'कवित्त रत्नाकर' के भीतर भक्तिपूर्ण शब्दों मे जो शक्ति है वह सेनापति की रामभक्ति तथा उनके जीवन की राममय परिणति की स्पष्ट गवाही देती है।

राम की उपासना के साथ रामभक्तों की उपासना भी आवश्यक है। इसी तरह की उपासना से रामभक्ति पूर्ण होती है। यह सिद्धान्त स्वामी रामानन्द जी ने स्थिर किया था। इसकी चर्चा इसी ग्रथ के प्रथम अध्याय मे की गयी है। इसी के आधार पर गोस्वामी जी ने रामभक्त हनुमान इत्यादि की भी उपासना की है। 'हनुमान बाहुक' इसी उपासना का अग है। वाल्मीकि के हनुमान् के शब्द 'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबल. राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित: ‡' भी राम के साथ रामभक्तों के ध्यान के महत्त्व को रामभक्ति की सिद्धि के पथ पर स्वीकार करते है। इसी परम्परा मे सम्वत् १६९६ मे, गोस्वामी जी के 'साकेतवाम' के सोलह वर्ष बाद रायमल्ल पाडे ने हनुमच्चरित लिखा†। गोस्वामी जी के बाद और कई लोगों के रामायग ग्रंथ है पर रामचरित मानस के सर्वागपूर्ण सौष्ठव के सामने उन्हे प्रसिद्धि न मिल सकी। स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'विक्रम की १९वी और वीसवी शताब्दी में अयोध्या के महन्त बाबा रामचरणदास, बाबा रघुनाथदास, रीवां के महाराज रघुराज सिह आदि ने रामचरित सम्बन्धी विस्तृत रचनाएँ कीं जो सर्वप्रिय हुई $।

---

‡ वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाड, सर्ग ४२, श्लोक ३३। † आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १३९ सवत् २०१४ सस्करण। $ वही, पृ० १३९।

बाबा रामचरणदास 'स्वसुखी' रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक थे। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने इस स्वसुखी शाखा के विषय में रामभक्ति के खोजी विद्वानों को सतर्क रहने का परामर्श दिया है। शुक्ल जी के अनुसार इस शाखा ने उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दी में कृष्णभक्ति के माधुर्य भाव से होड लगाने के लिए रामभक्ति को शृगार प्रधान ऐसे साँचे मे ढाल दिया कि वाल्मीकि के द्वारा प्रारम्भ की हुई आदर्शप्रधान रामोपासना के लिए यह शाखा कलक सी दिखायी पड़ने लगी। इस शाखा ने राम को अपना पति मान कर उन्हे 'लालसाहब' की उपाधि दे डाली। सोलह शृगार करके राम की पत्नी बन कर इस सम्प्रदाय के साधकों ने अपने को सीता की सपत्नी कहना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि कबीर ने भी अपने को राम जी की बहुरिया कहा है तथापि वह केवल आध्यात्मिक प्रेम का मधुर सकेतमात्र है। इस स्वसुखी शाखा वालों ने तो कृष्णभक्ति के माधुर्यभाव को भी मात कर दिया। "रामचरण-दास जी ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक नवीन कल्पित ग्रथ, प्राचीन बता कर, अपनी शाखा मे फैलाये, जैसे लोमश-सहिता, हनुमत्सहिता, अमररामायण, भुशुडिरामायण, महारामायण (५ अध्याय) कोशलखंड, राम नवरत्न, महारासोत्सव सटीक (सं० १९०४, प्रिटिग प्रेस, लखनऊ मे छपा ‡)।"

'कोशलखड' में राम की रासलीला, विहार आदि के अनेक अश्लीलवृत्त कल्पित किये गये है और कहा गया है कि रासलीला तो वास्तव मे राम ने की थी। रामावतार मे ९९ रास वे कर चुके थे। एक ही शेष था, जिसके लिए उन्हें फिर कृष्ण रूप में अवतार लेना पड़ा †।"

इस शाखा के प्रति आचार्य शुक्ल जी ने बडा क्षोभ व्यक्त किया है और उनका क्षोभ कुछ अश तक स्वाभाविक भी है।। उनके अनुसार राम के मर्यादित अवतार के भीतर गोपीकृष्ण के माधुर्यभाव की पवित्रता को विकृत करके जोड़ लेना और गड़बड़ झाला मचाना उचित नही प्रतीत होता। वाल्मीकि तथा उनसे भी प्राचीन युगों से चले आते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम के स्वरूप को विकृत करने की अनधिकृत चेष्टा करना महापाप है। ऐसे साधको ने गोपी-कृष्ण के माधुर्यभाव को भी ठीक नही समझा और अपनी नासमझी के कारण उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन को भी विकृत कर लिया।

आचार्य शुक्ल के अनुसार चिरान, छपरा के जीवाराम जी की 'तत्सुखी' शाखा ने पति-पत्नी भाव के स्थान पर 'सखीभाव' का रग चढा कर रामभक्ति के पवित्र रूप को और अधिक अश्लील और विकृत बना डाला। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार, 'इस सखीभाव की उपासना का खूब प्रचार लक्ष्मण किला (अयोध्या) वाले युगलानन्य शरण ने किया $।' आचार्य शुक्ल ने यह सूचना, अपने साहित्य के इतिहास के द्वारा दी है कि रीवा नरेश रघुराज सिह युगलानन्य शरण को बहुत मानते थे और इन्ही की सम्मति से उन्होंने चित्रकूट में प्रमोदवन आदि कई स्थान बनवाये *'। इस तरह चित्रकूट वृन्दावन बन गया। परन्तु

‡ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास, पृष्ठ० १४१, सवत् २०१४ संस्करण। † वही।
$ वही। * वही।

यह हर्ष की बात है कि यह रहस्यात्मक प्रचार सीमित ही है। गोस्वामी जी के सूर्य के तेज के सामने यह अंधकार कभी भी घनीभूत नही हो सका; प्रत्युत यह सम्प्रदाय भी उनसे आलोकित हो कर अधिकांशत. उज्ज्वल ही बना रहा। मर्यादित रामभक्ति शाखा की अतीत परम्परा जो रसिक सम्प्रदाय से प्राचीन प्रतीत होती है और प्राय. है भी, ऋग्वेद से आरम्भ हो कर रसिक सम्प्रदाय के आविर्भाव के पूर्व तक और अद्यतन काल तक भी अपने मर्यादित स्वभाव को बडी ही सफलतापूर्वक अक्षुण्ण बनाये रख सकी है। मर्यादोपासना की इतनी लबी परम्परा के बाद माधुर्यभाव की रसिकोपासना राम के जीवन के आदर्शों के परिवर्तन का इतिहास निर्मित नही करती वरन् उस युग के कुछ साधकों के हृदयों की प्रवृत्ति का चित्र अवश्य प्रस्तुत करती है।

मर्यादा के आदर्शों से हटी हुई इस उपासना को देख कर क्षोभ व्यक्त करने की अपरिहार्य आवश्यकता नही है। मनुष्य के हृदय मे जितनी वासनाएँ है उन सबको कालक्रम से वह परमात्मा को अर्पित करता चला आया है। कबीर ने परमात्मा के पतिरूप और मातारूप तथा पिता और बन्धुरूपों का ध्यान किया है। रसिक सम्प्रदाय के साधक राम की पत्नी बन कर उसी रूप मे रहने लगे। कुछ साधक सीता की सखी बन कर राम की सेवा मे लीन हो गये। आत्मनिवेदन के सच्चे भाव मे उन्नीसवी शताब्दी के रामोपासक कुछ साधको ने राम की उपासना उसी भाव-साधना मे आरभ कर दी, जिस भाव-समाधि से कृष्णोपासक साधक आत्मविलोपन कर कृष्ण के माधुर्यभाव मे विभोर हो गये थे। सर्वभाव की उपासना के भीतर पत्नीभाव या सखीभाव की उपासना भी स्थान पा सकती है।

अनासक्त परमात्मा किसी भाव से आसक्त नही होता; पर भक्त अपने हृदय का जो भाव उसे अर्पित करता है वह भाव वह अवश्य स्वीकार कर लेता है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥" 'जो जिस भाव को ले कर मेरे पास आते है उनके उसी भाव को मैं स्वीकार कर लेता हूँ। अपने हर कार्य से मनुष्य मेरे ही पथ का अनुसरण कर रहे है‡' गीता मे भगवान् की यह उक्ति भक्त के सर्वभाव की उपासना का समर्थन करती है। अनेक प्रकार के मनुष्य अपने हृदय की प्रवृत्ति के अनुसार अनेक प्रकार से उपासना करते है और परमात्मा उन सब प्रकार के अर्पणों को स्वीकार कर लेता है। रसिक सम्प्रदाय की उपासना का भी यही रहस्य है। अपने हृदय के जिन-जिन भावों को ले कर ससार का मनुष्य स्वार्थ मे जगत् की ओर प्रवृत्त होता है; उन्ही भावो से परमात्मा की ओर निःस्वार्थ से प्रवृत्त हो कर वह शरणागत भक्त हो जाता है। भक्ति का यही रहस्य है। स्वार्थ मनुष्य की प्रवृत्तियों को वासनामयी और निःस्वार्थ उन्हे उपासनामयी बनाता रहता है। पहले से जीव ससारी रहता है और दूसरे से आध्यात्मिक सोपानो पर वह आरूढ होने लगता है। निःस्वार्थ सिद्धि जब उसे प्राप्त हो जाती है, तब वह अनत प्रिय का दर्शन प्राप्त कर लेता है। भक्ति के क्षेत्र की मुक्ति का यही स्वरूप है।

---

‡ गीता, अध्याय ४, श्लोक ११।

कृष्ण भक्ति शाखा के आचार्यों ने नायिका आश्रय की दृष्टि से मधुरा रति के तीन भेद बताये है (१) साधारणी—आत्मतर्पणैकतात्पर्या—जिसमें अपनी ही तृप्ति मुख्य है—जैसे कुब्जा का प्रेम। यह रति प्रेमावस्था तक जाती है। (२) समञ्जसा—उभयनिष्ठा रति—जिसमे अपना सुख और कृष्ण का सुख समान रूप से अपेक्षित है—जैसे रुक्मिणी को रति। यह अनुराग अवस्था तक जाती है। (३) समर्था—केवल कृष्णार्थ-जैसे गोपियो की रति। यह महाभाव अवस्था तक जाती है। रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय मे इन्ही को क्रम से (१) स्वसुखी (२) चित्सुखी और (३) तत्सुखी नाम से अभिहित किया गया है जो वस्तुत. और भावत. कृष्णभक्ति की उपर्युक्त रतियो से अभिन्न है ‡।

इन रतियो में और गीता के 'चतुर्विधा: भजन्ते मा जना: सुकृतिनोऽर्जुन आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ''—'हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी—ये चार प्रकार के सुकृती लोग मेरी उपासना करते है' मे कुछ साम्य अवश्य है। भगवान् ने स्वसुखी आर्त और अर्थार्थी लोगों को भी ईश्वरोन्मुख होने के कारण सुकृती कहा है †।

रामभक्ति शाखा मे जो सम्प्रदाय रसिक लोगों के लिए प्रचारित हो कर स्वसुखी, चित्सुखी और तत्सुखी नाम से अभिहित हुए उनके प्रवर्तक साधक सच्चे महात्मा थे और उन्होने अपने हृदय के मधुर भावो को भगवान् को अर्पित किया था तथा साधारण प्रेमी जीवो के लिए भी उन्होने उपासना का सहज रूप प्रदर्शित किया था।

समग्र उपासनाएँ अपने मौलिक रूप मे अनंतगामिनी होती है। उनके प्रवर्तक साधक महान् होते हैं। वे चराचर के अन्त.स्थ भावों मे परमात्मा के अस्तित्व का दर्शन करते रहते है। उपासना के क्षेत्र मे घोर स्वार्थी लोगो के कारण अन्धकार का युग आता है। ऐसा युग मर्यादित या रसिक दोनों उपासना-क्षेत्रों मे आ सकता है और आता है।

रसिक सम्प्रदाय के साधकों ने मर्यादा और अनासक्ति को ध्यान से ओझल नहीं होने दिया है। शृंगार रस के महाभावत्व की महिमा को प्रस्तुत करने वाली स्वामी अग्रदास की अग्रत: प्रस्तुत: कुडलिया उपर्युक्त दृष्टि से मननीय है :—

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहिं सोई अधिकारी जग मे।।
कचन कामिनी देखि हलाहल जानत तन मे।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय-प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनदा।।
नहिं अग्र सम संत के सर लायक जग माहिं।
रस शृंगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहिं।।

सीता और राम की रति जगद्रक्षिका है। उस रति की आत्मविलोपिका पवित्रता जगत् भर की रक्षा करती है। इसी पवित्र महाभाव के 'पिय-प्यारी-रस-सिधु' मे आनंद

‡ भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' लिखित 'राम-भक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना', पृष्ठ ३०।
† गीता, अध्याय ७, श्लोक १६।

से मग्न हो कर रसिक सप्रदाय के सतो ने कचन और कामिनी को हलाहल की तरह अनुभव किया था तथा जगत् के द्वन्द्वात्मक भोगो को रोग के समान अनुभव करके त्याग दिया था। ऐसे अनासक्त हृदय जो विश्वरक्षा-विधान मे अपने को खो कर सीता-राम के महाभाव की उपासना कर रहे थे, वन्दनीय है। यह मर्यादित मधुर भाव गोस्वामी जी की उपासना मे भी स्थान पा सका था। पर अपने सब अगो और उपागो को ले कर जब सीता-रामोपासना उन्नीसवी शताब्दी मे राधा-कृष्णोपासना के रूप मे परिणत हो गयी, तब मर्यादा प्रेमी स्वर्गीय आचार्य शुक्ल का सात्विक क्षोभ भी उसके प्रति स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

रीति काल के शृंगारी कहलाने वाले आचार्यों ने भी शृगार के लक्षण-लक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए राधा-कृष्ण की रति के चित्रों का उपयोग किया। सीता-राम के जीवन के मर्यादित रूप को उन्होंने धक्का नहीं देना चाहा; पर उसी युग के भक्तो के कुछ सम्प्रदायो को सीता-राम को राधा-कृष्ण का रूप देते हुए देख कर आचार्य शुक्ल के आलोचक की विवेचनात्मिका लेखनी उग्र हो उठी। समाज की मर्यादाओ के भग हो जाने की सभावना से रसिक सम्प्रदाय की रामभक्ति शाखा के साधको के प्रति आचार्य शुक्ल का क्षोभ उद्दीप्त हो उठा था; पर जैसा कि ऊपर बताया गया है हृदय के सब भावो को ईश्वरोन्मुख कर लेना ही मनुष्य का पूर्ण विकास है। जीव का अनन्त विकास ईश्वरोन्मुख हो जाने पर ही होता है। इसी सत्य को अर्जुन को समझाते हुए भगवान् ने कहा था—"तमेव शरण गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात्परा शान्ति स्थान प्राप्स्यसि शाश्वत"—'अपने हृदय के सब भावो को ले कर ईश्वर की शरण मे चले जाओ। उसी की कृपा मे तुम्हे पराशान्ति, उच्चतम सन्तोष और शाश्वत स्थान प्राप्त होगा‡।' यह शाश्वत स्थान ही मनुष्य का अनन्त विकास है। अनन्त आदर्शों की उसकी उपलब्धि ही यह शाश्वत स्थान है। मनुष्य के हृदय की शृगार-भावना की भगवान् को अर्पित कराके उसके शृगार को विश्व-प्रेम और विश्व वेदना के रूप मे परिवर्तित कर लेने का रामभक्ति शाखा के रसिक सप्रदाय का उपक्रम स्तुत्य है और वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक अध्ययन के लिए इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त उपयुक्त है। राधाकृष्ण की उपासना ने भी समाज को ऊर्ध्वमुखी प्रेरणा दी है और रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय ने भी। उपासना के विभिन्न पथो से विभिन्न प्रकृति के साधकों के लिए ऊर्ध्वगामिनी प्रवृत्ति प्राप्त होती है। पतित होने वाला हृदय तो मर्यादा के दृश्य सामने रहते हुए भी पतित होगा। उसकी रक्षा परमात्मा भी नही कर सकता।

सस्कृत तथा हिन्दी मे भी रसिकोपासना का साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है। प्रथम अध्याय मे रामभक्ति के सस्कृत ग्रथो की चर्चा है। यहाँ भी कुछ अवशेष दिया जा रहा है।

(१) श्री विश्वभरोपनिषद् अथर्ववेदीय है। इसमे शाण्डिल्य मुनि और महाशभु के प्रश्नोत्तर में रामभक्ति के रहस्य समझाये गये है। इसमे सगुण-निर्गुण राम अयोध्या मे रासलीला करने वाले माने गये है†।

---

‡ गीता, अध्याय १८, श्लोक ६२। † विश्वभरोपनिषद् ५।

(२) श्री राम रहस्योपनिषद् मे साकेत पुरी से अनंत वैकुण्ठों के उद्गम का रहस्य निर्दिष्ट किया गया है ‡ ।

(३) श्री हनुमत्सहिता मे हनुमान अगस्त्य सवाद के द्वारा भगवान् राम की रास-लीला, जलविहार, सीता के शरीर से अट्ठारह हजार एक सौ आठ सखियो की सृष्टि तथा रस प्रकरण का वर्णन है। इसमे कुल साठ श्लोक है ।

(४) श्री शिवसहिता बीस अध्यायो का विशाल ग्रथ है। इसमे शिव-पार्वती-सवाद तथा अगस्त्य-हनुमान सवादों के द्वारा साधु-समागम की महिमा, श्रीराम के अनेक गुणों और विभूतियों का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन, वन-केलि का वर्णन तथा रास-विलास की वही भव्यता वर्णित है जो कृष्ण की रासलीला मे मिलती है। उससे सम्पूर्ण चराचर मुग्ध हो गया है। इसमे 'मान', 'मनुहार' तथा प्रेम-प्रसग के वर्णनो मे सीता राम के श्रृगार के अनुपम चित्र है। इस ग्रथ के अनुसार 'अन्तर्दृष्टि के खुल जाने पर सारा ब्रह्मांण्ड ही अयोध्या सा प्रतीत होने लगता है और वहाँ अशोक वन मे रस-स्थान मे नित्य लीला विहार मे मग्न श्री सीता-राम के दर्शन होते है † ।' यह सगुण रसिकोपासना की अनत-निर्गुणोपासना की झाँकी है ।

(५) श्री लोमशसहिता केवल पद्रहवें से बाइसवे अध्याय तक प्राप्त है। इसमे पिप्पलाद-लोमश सवाद के द्वारा 'कोटिकंदर्पलावण्य रसमूर्ति भगवान् श्रीराम का सीता जी के साथ और सीता जी की अनेक सखियों के साथ नानाविध रासविलास का वर्णन है। यूथेश्वरियों में चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली जी, ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियाँ है। इनमें चद्रकला की प्रमुखता है $ ।' अन्त मे युगल-मिलन महोत्सव का वर्णन है। 'इस सहिता के अतिम भाग मे ऋषि ने बार-बार मना किया है कि जो लोग रुक्षज्ञानी है, शुष्क हृदय है, महामूढता वश कुतर्क करने वाले और रस खडन करने वाले है, निन्दक है, रस की कथा मे लौकिक विषय-वासना की दुर्गन्ध लाते है, ऐसे पुण्य हीनों को रास्य-रहस्य की यह कथा और चरित्र कभी नही सुनाना चाहिए * ।' वे लोग धन्य है जिनके हृदयों ने सासारिक रस को छोड़ कर आध्यात्मिक रस की अभिव्यक्ति मे अपने को खो दिया। अपना श्रृगार भूल कर भगवान् के श्रृगार मे मग्न हो गये ।

(६) बृहद् ब्रह्म सहिता मे दस अध्याय है। वैष्णव मधुर-साधन का यह आधार-ग्रथ राधाकृष्ण और सीताराम की युगल उपासना का पक्षपाती है § ।

(७) श्री अगस्त्य संहिता मे तैंतीस अध्याय और पत्रात्मक एक सौ एकतीस पृष्ठ है। यह श्री वैष्णवों का परमादरणीय ग्रथ है। इसमें अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद के द्वारा

---

‡ सत्यनाम प्रेस, मैदागिन, काशी से सवत् १९८२ मे मुद्रित । † श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' लिखित रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृष्ठ १४८। $ वही। * वही। § वृहद् ब्रह्मसहिता, अध्याय ७, श्लोक ५९ ।

वर्णाश्रम धर्म का वणन तथा रामसंत्र के उपासनात्मक रहस्यों का उल्लेख है। इसके बाद इक्कीसवे अध्याय तक ब्रह्मविद्या का निरूपण है। तदनन्तर उपासना-विधियाँ हैं। इस ग्रंथ मे सर्वत्र सीताराम की आलिंगित युगलमूर्ति का ध्यान है। "अन्योन्याश्लिष्टहृद् बाहुनेत्र पश्यन्तमादरात्" के समान आश्लेप युक्त मूर्ति का ध्यान इस ग्रथ में "सर्व मनत्करविधायक" माना गया है‡।

(८) श्री वाल्मीकि सहिता में कुल पाँच अध्याय है†। यह रामानंदी वैष्णवों का मान्य ग्रथ है। इसमे भी साम्प्रदायिक उपासना पद्धतियों का बृहस्पति के द्वारा सब मुनियों को उपदेश दिया गया है। इसमे राम ने हनुमान से कहा है कि मेरे भक्त ऊर्ध्व पुण्ड्र मे श्री नही धारण करते और सीता के भक्त बीच में बिन्दु श्री लगाते है$।

(९) शुक सहिता मे राम, पुरुषोत्तम और सनातन ब्रह्म दोनो है। इस ग्रथ के अनुसार राधा-कृष्ण उनके शरीर से प्रकट हो कर पुन: उसी मे विलीन हो जाते है। चित्रकूट ही में भगवान् रामचन्द्र ने सीता को वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, विभिन्न वनोपवन एव विहार स्थलो को प्रकट करके राधा-कृष्ण की नित्य रासलीला का दर्शन कराया और पुन: यह दृश्य भगवान् राम के शरीर मे प्रविष्ट हो गया तथा कृष्ण राम में और राधा सीता मे अन्तर्हित हो गयी। इस ग्रथ के अनुसार चित्रकूट मे नित्य सीताराम का रास-विलास होता रहता है। इस रास मे करोड़ो ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपनी शक्तियों के साथ गोपी रूप मे रूपान्तरित हो कर सम्मिलित होते हैं। साठ हजार दडकारण्य वासी ऋषि, काल और श्रुतियाँ सब गोपी रूप धारण करके नृत्य करते हैं। सीता की अभिलाषा-पूर्ति के लिए दिव्य चित्रकूट की रचना हुई। सीता की इच्छा पूर्ति के लिए ही विश्वनिर्माता राम ने साकेत लोक के अंश से दिव्य गोलोक की सृष्टि की। सरयू से यमुना, मणिपर्वत से गोवर्धन, कल्पवृक्ष से वशीवट, दशरथ से नन्द, कौसल्या से यशोदा, लीला के सब सहायक गोप, जानकी से राधा, अशोकवन की देवी से वृन्दा तथा रामचन्द्र कृष्ण हो कर रासलीला करते है। इस ग्रंथ के अनुसार सीताराम राधाकृष्णमय और राधाकृष्ण सीताराममय हैं और उनकी अनंत रासलीला नित्य, अखड और अनंत आकर्षणमय है। सीताराम का यह अनंत मधुरभाव ही अनत विश्व की सृष्टि और स्थिति का कारण है। प्रलयावस्था में भी यह अव्यक्त रासलीला अखंड चलती रहती है। इस प्रकार शुकसहिता भी रामभक्ति मे अनत के मधुर श्रृंगार की अवतारणा करती है।

(१०) श्री वसिष्ठसहिता में दिव्य अयोध्या का वर्णन है। इस ग्रंथ के अनुसार वैकुंठ सबके ऊपर है। उसके ऊपर गोलोक और गोलोक के मध्य मे साकेत लोक है। साकेत लोक के पूर्व में मिथिला, दक्षिण मे चित्रकूट, पश्चिम मे वृन्दावन और उत्तर में महावैकुठ मे चौबीस अवतारों के कारण, रामचरित के मुख्याचार्य सृष्टिकर्ता श्रीमन्नारायण अपने पार्षदों के साथ रहते है। इस संहिता के अनुसार सप्त आवरणों से वेष्टित साकेतलोक में

‡ अगस्त्यसहिता, अध्याय २२। † आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, अहमदावाद (गुजरात) में वि. सवत् १९७८ मे छपी। $ वाल्मीकिसहिता, अध्याय ४, श्लोक २३।

श्रृंगारवन, विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदबवन, कामवन तथा नागकेसर वन—ये बारह वन है। उसी मे चारो दिशाओं मे शंगार पर्वत, मणिपर्वत, लीलापर्वत तथा मुक्ता पर्वत चार शक्तियों से अधिष्ठित है।

वसिष्ठसहिता के अनुसार, प्रमोदवन इत्यादि दिव्य सृष्टियों तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि के आदिकारण परात्पर ब्रह्म रामचन्द्र सीता के साथ इस वन मे नित्य विहार करते हैं।

(११) सदाशिवसहिता नाममहिमा का प्रतिपादन करने वाला ग्रंथ है‡।

(१२) श्री महासभुसंहिता भी राममंत्र के प्रभाव-विस्तार का विवेचन करती है†

(१३) हिरण्यगर्भ सहिता $। (१४) महा सदाशिव सहिता * तथा (१५) ब्रह्म-सहिता § :—तेरहवें मे राम का अद्वैत चिंतन, चौदहवें मे सीताराम मत्र, महान् गुरु हनुमान् तथा सीताराम के प्रति मुक्तिदायक सख्य भाव और पन्द्रहवें मे राम के पूर्णावतार का महत्त्व वर्णित है।

(१६), (१७), (१८), (१९) :—"पुराणसहिता, आलमंदार सहिता, बृहत्सदाशिव सहिता तथा सनत्कुमार सहिता श्री राधाकृष्ण की लीलाओं के सम्बन्ध मे होते हुए भी श्री सीताराम की मधुर उपासना को हृदयगम करने के लिए परम उपयोगी हैं×।"

(२०) रामस्तवराज सनत्कुमार सहिता का एक अंश है। इस महिमामय स्तोत्र में निन्नानवे श्लोक है। इस स्तोत्र का हरिदास कृत भाष्य वैष्णव साधना के प्रमुख आधार-ग्रंथों में माना जाता है। रसिक-सम्प्रदाय की उपासना का भी यह आधार ग्रंथ है। इसमे सगुण-निर्गुण राम की उपासना है। इस स्तोत्र के तिरपनवे श्लोक में राम को "प्रेमदा मनोहर-गुणग्राम"—'युवतियों के मन को हर लेने वाले गुणों का समूह' कह कर नमस्कार किया गया है। इसकी टीका में हरिदास जी ने लिखा है—"पुंसामपि स्त्रीभावेन श्रीरामभजनमुपपद्यते किमुत स्त्रीणाम्? न रामरूपादीना केवल स्त्रीपुरुषाणामेव दृष्टिचित्तापहारकत्वमुपद्यते, किन्तु स्थावरजंगमात्मकस्य सर्वजगतोऽपि"—'यह निश्चित है कि पुरुष भी सुन्दर राम की उपासना स्त्रीभाव से करने लगता है, फिर स्त्रियों का तो कुछ कहना ही नही। राम का सर्वतोमुख सौन्दर्य केवल स्त्रीपुरुषों की ही दृष्टि और चित्त को आकर्षित नहीं करता वरन् उससे संपूर्ण स्थावरजगम जगत् आकृष्ट हो जाता है। रामस्तवराज के राम अनत सौन्दर्य के केन्द्र, सर्वात्मा, सर्वगत, निरजन, निरीह, निरामय, नित्य, ध्रुव, निर्विषय, भानुकुलप्रदीप, भवरोगवैद्य, सर्वाधिप, समरांगधीर, सत्य, चिदानन्दमय, शिव, शान्तिमय, शरण्य तथा सनातन ब्रह्म हैं। वे कुत्सित वासनाओं को नष्ट करने वाले "कुमारवैद्य है+"।

---

‡ स्वामी रामचरणदास 'करुणासिधु' का 'रामनवरत्न सार सग्रह' द्रष्टव्य। † वही, गोकुल प्रेस, अयोध्या, सं० १९८५, सस्करण, पृष्ठ ११। $ वही, पृष्ठ ४१। * वही, पृष्ठ ५७ से ५९ तक। § वही, पृष्ठ २६। × श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' लिखित 'रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना' पृष्ठ १५७। + रामस्तव राज, श्लोक ५४ से ५८ तक।

वे नारायण, निर्मल, आदिदेव, जगदेकनाथ, आदित्यवर्ण, विश्वस्रष्टा, राजेंद्र, ईश, रघुवंशनाथ, अचिन्त्य, अव्यक्त अनंतमूर्ति, ज्योतिर्मय, अशेषससारविहारहीन, परिपूर्णकाम, कलानिधि, कलुषनाशक तथा परमपवित्र परात्पर ब्रह्म हैं‡। इसी विश्वरूप राम की प्रार्थना रामस्तवराज में की गयी है। रसिक संप्रदाय के अर्वाचीन विकास की दृष्टि से हरिदास का भाष्य अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(२१) श्री जानकी स्तवराज अगस्त्यसहिता में उन्हत्तर श्लोकों का जानकी स्तोत्र है। विश्वरूप रामकी शोभा के सर्वथा अनुकूल सौन्दर्य का चित्रण इस स्तोत्र मे है तथा राम-भक्ति की सिद्धि के लिए सीता के चरणों की सेवा इसमे आवश्यक मानी गयी है।

(२२) श्री जानकी गीत के प्रणेता गालवाश्रम, गलता के पीठाधीश्वर श्री हर्याचार्य है। वह ग्रथ रसिकसप्रदाय का गीतगोविन्द है। इसमें छह सर्गो में क्रम से वसन्तवर्णन, सीता का प्रणय-कलह, राम के द्वारा कोप-शान्ति के लिए उपायों का चिन्तन, चन्द्रकला की सहायता से कोप शान्ति, जलक्रीडा तथा रासलीला का भव्य और मधुर वर्णन है†।

(२३) प्रमुख आलवार सन्त शठकोप मुनि की ग्यारह सौ तेरह आर्याओं वाली सहस्र गीति मे भी लक्ष्मी नारायण की भक्ति की आर्याओं मे एक-दो आर्याएँ सीताराम की मधुर भक्ति की भी है$।

(२४) गलता गद्दी के स्वामी मधुराचार्य ने वाल्मीकीय रामायण की शृंगारात्मिका व्याख्या की है। मधुराचार्य ने सती स्त्री के पवित्रभाव को ही रामोपासना के उपयुक्त माना है। ससार-बीज को जीर्ण करने वाले भगवान् राम को उन्होंने 'जार' माना है। उपासकों का पालन करने वाला राम ही उनके अनुसार 'उपपति' है। मधुराचार्य ने वाल्मीकीय रामायण को रसिक सम्प्रदाय का आधार ग्रथ माना है।

(२५) आनदरामायण रसिक सम्प्रदाय का एक प्रमुख ग्रंथ है। बारह हज़ार दो सौ बावन श्लोकों और नौ काडों का यह ग्रंथ पन्द्रहवी शताब्दी का माना जाता है। सारकाण्ड, यात्राकांड, यागकांड, विलासकाड, जन्मकाड, विवाहकाड, राज्यकांड, मनोहरकाड तथा पूर्णकांड, आनदरामायण के नौ कांड है। प्रथम में रामजन्म से सीताहरण तक, दूसरे में राम की तीर्थयात्रा, तीसरे मे रामाश्वमेध, चौथे में विलास, पाँचवें में लव-कुश का जन्म तथा राम की सेना से युद्ध, छठवें मे आठ पुत्रों का विवाह, सातवें मे विजय यात्राएँ है तथा सोलह हज़ार एक सौ आठ स्त्रियों को कृष्णावतार मे पत्नीभाव का वरदान है। रसकांड के इक्कीसवें सर्ग मे राम का ताम्बूल-रस उनकी एक दासी पी जाती है और उसे राधा होने का वरदान मिलता है। आठवें मे रामोपासना विधि है तथा पूर्णकांड में कुश का अभिषेक और रामादि का स्वर्गारोहण है।

---

‡ रामस्तव राज, श्लोक ६४ से ६७ तक। † रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृष्ठ १६१। $ सहस्रगीति श्लोक २ श्लोक ३ और १०—गलता कुंज, प्रयाग-घाट मथुरा द्वारा प्रकाशित।

आनदरामायण में एक पत्नीव्रती राम ही चित्रित हुए है। अतः विलासकांड में देवपत्नियों को गोपीरूप मे अवतीर्ण होने का तथा गुणवती और पिंगला को क्रमशः सत्यभामा और कुब्जा होने का वरदान मिलता है। इस रामायण मे भी राम के भीतर अनत आकर्षण वाले सौन्दर्य का तथा उनके असीम वशित्व का चित्रण किया गया है।

(२६) श्री रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ मे तीन लाख पचास हजार श्लोक वाले महारामायण की सूचना दी है। इसकी एक खडित प्रति पाँच सर्गो और दो सौ बहत्तर श्लोको वाली प्राप्त है‡। इसमे राम के चरणचिह्न, रामभक्ति की प्राप्ति के उपाय, रामभक्तों के लक्षण, धनुषबाण धारण की विधि, परात्परतम ब्रह्मराम, एकमात्र सखीभाव से उपासना की सभावना, सीता की आह्लादिनी इत्यादि तैंतीस शक्तियाँ तथा उनमें से प्रत्येक की एक-एक सहस्र उपशक्तियाँ वर्णित हैं। इसमे भी राम की रासलीला का वर्णन है। 'हिन्दुत्व' मे 'महारामायण' की निन्नानवे रासलीलाओं की चर्चा है।

(२७) आदिरामायण† मे राम की सखियों इत्यादि का वर्णन है। कामिल बुल्के के अनुसार इडिया ऑफ़िस मे प्राप्त 'चित्रकूट माहात्म्य' इसी का अश है$। इस माहात्म्य मे चित्रकूट के सातानक वन के एक सरोवर का वर्णन है जिसके मध्य मे बने हुए मडप मे वेदिका पर राम, सीता तथा उनकी सखियों की शाश्वत रासलीला की चर्चा है।

(२८) छत्तीस हजार श्लोकों मे वसिष्ठ-अरुन्धती सवादात्मक 'रामायण मणिरत्न' की चर्चा भी रामदास गौड के 'हिन्दुत्व' मे है। इसके विषय, मिथिला तथा अयोध्या मे राम के वसन्तोत्सव है।

(२९) 'हिन्दुत्व' के अनुसार मैन्द-कौरव सवादात्मक 'मैन्दरामायण' में बावन हज़ार श्लोक है। इसका मुख्य विषय जनकपुर की वाटिका में सीता राम का लीला-विलास है।

(३०) 'हिन्दुत्व' ने सुतीक्ष्ण के 'मजुलरामायण' मे राम के द्वारा शबरी को दिये गये नवधा भक्ति, रागमयी प्रीति तथा पराभक्ति के उपदेश का उल्लेख किया है। सवृत-रामायण, लोमशरामायण, अगस्त्यरामायण, रामायण महामाला, सौहार्द रामायण, सौर्य-रामायण, चान्द्ररामायण, स्वायभुव रामायण, सुब्रह्मण्य रामायण, सुवर्चस रामायण, देव रामायण, श्रपण रामायण, दुरत रामायण तथा चपूरामायण की चर्चा भी 'हिन्दुत्व' में है।

(३१) छत्तीस हज़ार श्लोकों वाला भुशुडिरामायण भी रसिकसम्प्रदाय का प्रमुख ग्रथ है*। इसमे भी राधा को जानकी का अश और कृष्ण को राम का अश माना गया है।

(३२) महाकवि हनुमान का महानाटक या हनुमन्नाटक रसिक सप्रदाय का प्रिय ग्रथ है§। इसके द्वितीय अंक मे राम-जानकी विलास के बड़े भव्य तथा रसिक चित्र है×।

‡ जानकीजीवनदास कृत भाषातिलक के साथ अयोध्या से वि० सं० १९८५ में प्रकाशित।
† हस्तलिखित प्रति मणिपर्वत, अयोध्या में है। $ रामकथा, पृष्ठ १७१, अनुच्छेद १९०।
* हस्तलिखित प्रति श्रावणकुंज, अध्योध्या मे प्राप्त। § गिरीश प्रिंटिंग वर्क्स, कलकत्ता, सन् १९३९ तथा वैभव-मुद्रण-यत्रालय, बबई, संस्करण १९८१। × हनुमन्नाटक, अक २, श्लोक ४५ से ५२ तक।

इसमे मानव मनोविज्ञान के नग्न काम-चित्र अंकित हुए है और यह बात व्यक्त की गयी है कि जो विलास राम ने सीता के साथ किया वह त्रिभुवन मे त्रिकाल मे भी सभव नही‡।

(३३) जयदेव का सात अको वाला प्रसन्नराघव नाटक बारहवी या तेरहवी शताब्दी का माना जाता है। इसके भी दूसरे अक मे जनकपुर की वाटिका मे सीताराम के प्रथम दर्शन तथा शृंगारसिक्त आकर्षण के रमणीय चित्र हैं। भवभूति के 'उत्तररामचरित' तथा 'महावीरचरित' नाटको के सीता-राम के मधुर शृंगार इस बात को स्पष्टतः परिलक्षित करते है कि मधुरोपासना का इतिहास आठवी शताब्दी से आरभ किया जा सकता है। यों तो ईसा पूर्व के वाल्मीकीय रामायण के युग से भी यह इतिहास आरभ किया जा सकता है।

(३४) तेरहवी शताब्दी के जैन कवि हस्तिवल्लभ का 'मैथिलीकल्याण' नाटक भी राम-सीता के रसमय शृंगार की सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

(३५) चौदहवी शताब्दी के साकल्यमल्ल के 'उदारराघव' महाकाव्य में सीताराम के वन-विलास मे मधुरशृंगार की आकर्षक शोभा के भव्य चित्र अंकित है। इसके अट्ठारह सर्गो मे से नौ सर्ग ही उपलब्ध है।

(३६) कुमारदास के जानकीहरण मे राम-सीता के सभोग शृगार के सुन्दर चित्र अंकित किये गये है।

(३७) सत्योपाख्यान मे राम विष्णु के लक्ष्मण शेष के भरत सुदर्शन के तथा शत्रुघ्न शंख के अवतार हैं। इसमे भी राम-सीता के जलविहार, वनविहार, सीता की मानलीला तथा होलिकोत्सव इत्यादि के सरस सुन्दर वर्णन हैं। इस ग्रथ मे लीला चिन्तन से पापनाश और विमलभक्ति की प्राप्ति का परिणाम निर्दिष्ट है।

(३८) वृहद् कौशलखड राम-जानकी के विलास को अंकित करने वाला व्यास-रचित, सूत-शौनक-सवादात्मक अपूर्व ग्रथ है। इसकी 'रसवर्धिनी' टीका पडित रामवल्लभा-शरण ने लिखी है। इसे केवल अंतरंग प्रचार के लिए लाहौर के सेठ रोशनलाल अग्रवाल और रामप्रियाशरण ने प्रकाशित कराया है। अबाछित प्रभाव ग्रहण करने वाले सर्वसाधारण लोगों मे इसका प्रचार नही किया जाता। इस ग्रथ मे सूत ने शौनक को राम-जानकी (प्रिया-प्रीतम) की लीला का भेद समझाया है। इसमे युगल ध्यान, जल-विहार, मृगया-विहार, सखाओं के रस-विहार, देवकन्याओं, गोपकन्याओं, नाग कन्याओं, गधर्वकन्याओं तथा राजकन्याओ के साथ भगवान् के रास-विहार तथा विवाह के बाद देवकन्याओं, गंधर्व-कन्याओं, किन्नर कन्याओं, विद्याधर कन्याओं, सिद्धकुमारियों, राजकुमारियों, साध्यकुमारियों, गुह्यक कन्याओ, यक्षकुमारियों तथा नागकुमारियों के साथ राम की रासलीलाओ के बडे अनुपम तथा रम्य चित्र इस ग्रथ मे अंकित किये गये है। रसिकोपासक इस ग्रथ को "वेदवत् पूज्य एवं परम गुह्य मानते है। श्री हनुमत् निवास के सतत प्रिया-प्रीतम की अष्टयाम

‡ हनुमन्नाटक, अक २, श्लोक ६०।

सेवा मे परायण, अनन्योपासक, मधुररस के परमरसिक एवं रसज्ञ मर्मज्ञ महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से यह दुर्लभ ग्रथ उपलब्ध हुआ है ‡ ।"

(३९) मधुराचार्य द्वारा रचित 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' का सार्थक नाम ही रसिक सम्प्रदाय का सम्मान प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है । 'शिवसहिता' की 'रसबोधिनी' टीका मे पं० रामवल्लभ शरण ने इसके कुछ श्लोक उद्धृत किये है । उनका छायानुवाद इस तरह है :—'परमहस यतीन्द्रमुख्य ऋषिलोग विमोहवश राम को देख कर जब नारी हो गये, जब वे राक्षस लोग मुग्ध हो गये तब उस रसराजमूर्ति को देख लेने पर साधारण पुरुष और स्त्रियो की क्या बात । उनका मुग्ध होना तो स्वाभाविक ही है । कोटि कन्दर्प के समान कान्ति वाले मेघश्याम राम जब वृक्षों और पक्षियों को देखते हैं तो वे सब भी प्रेमविभोर हो जाते है । एक बार सुवर्ण की कान्ति के सामन चमकने वाली शिला पर अपने अद्‌भुत और सुरम्य रूप को देख कर राम भी मुग्ध हो गय और सीता के समान उनके हृदय मे भी उस रूप का आलिगन कर लेने की इच्छा जाग पड़ी और वे सोचने लगे कि जो परम मनोहर रूप मुझे भी मोह लेता है वह कितना विस्मयकारक है। मुझे तो ऐसा लगता है कि प्रिया का भाग्य ही अप्रतिम गौरवशाली है, क्योंकि उसे इस रूप का दुर्लभ और दृढ आलिंगन प्राप्त होता है । लतिकाओ के समान जड वस्तुओ को मोह लेने वाले अपने मनोज सुन्दर आकर्षक रूप को देख कर जब स्वय रघुनदन ही मुग्ध हो गये, तब उन प्रमदाओं की क्या बात जिनके हृदय मे मन्मथ का निवास स्वभावत. ही रहता है ।' इस तरह 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' रसिक सम्प्रदाय का रसानुभूति मय ग्रथ है । अब तक यह ग्रथ अपने अविकल रूप मे प्राप्त नही है ।

(४०) रामलिगामृत की रचना सोलह सौ आठ ईस्वी में काशी के अद्वैत नामक कवि ने की थी। इसकी हस्तलिपि इडिया ऑफिस पुस्तकालय, लदन मे है † । तुलसी के युग के इस कवि ने मानस की कथा के प्राय: अनुसार ही इस ग्रथ की रचना की थी । इस ग्रथ के अट्ठारह सर्गो मे रस-तत्त्व, घटना-तत्त्व अध्यात्म तत्त्व और समन्वय तत्त्व का सुन्दर सन्निवेश है ।

(४१) श्री सुन्दरमणि सदर्भ के प्रणेता मधुराचार्य जी थे । रामावत रसिक सम्प्रदाय का यह हृदय-रूप सिद्धान्त ग्रथ है । मधुराचार्य, परमहस रामचरण तथा स्वामी युगलानन्द शरण इस सम्प्रदाय के रससिद्ध रसिक और आचार्य दोनों थे । इन्होंने सम्प्रदाय को सिद्धान्त-पुष्ट करके प्रमाण-सिद्ध कोटि में पहुँचा दिया । मधुराचार्य जी ने सम्प्रदाय को प्रमाणपुष्ट करने के लिए छह विशाल सदर्भ ग्रथो की रचना की थी । उनमें से 'सुन्दरमणि सदर्भ' सपूर्ण तथा 'वैदिकमणि सदर्भ' कुछ अश प्राप्त है । शेष अब तक प्राप्त नहीं हो सके है । 'सुन्दरमणि सदर्भ' एक तरह से वाल्मीकीय रामायण का शृगारमय भाष्य है । इस ग्रंथ का मगलाचरण छायानुवाद के रूप मे इस तरह है—

'अयोध्या के मध्य में, प्रमोदशुभ्र वन में उदय होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाले रत्नों के समूहों से चमकने वाले दिव्य महामण्डप के नीचे अपार आनंद के वातावरण में

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ १७१ । † इंडिया ऑफिस सूची, संख्या ३९२० ।

अति दिव्य और कोमल रमणीय आकृति वाली वनिताओं के समूहों से नित्य सेवित तथा रासोल्लास के सुख से प्रफुल्लित सीता के साथ विहार करने वाले राम की मैं वन्दना करता हूँ'। यह मंगलाचरण ही 'सुन्दरमणि सदर्भ' के मधुरभाव के प्रकाशकेन्द्र की तरह है।

'सुन्दर मणि संदर्भ' मे मधुराचार्य जी ने राम में 'परत्व' और 'सौलभ्य' गुणो की स्थिति का विवेचन किया है। परत्व मे उनकी अनंत महानता और सौलभ्य मे अनंत उदारता है। वाल्मीकीय रामायण को मधुराचार्य ने 'निरतिशय निर्दोष नित्य रसमय' माना है। 'सुन्दरमणि सदर्भ' में सीता का स्थान सर्वप्रमुख है। इसीलिए इसकी आत्मा के मूल में शृंगार और सपूर्ण शाखा प्रशाखाएँ भी शृंगारात्मिका हो गयी है। इस सदर्भ ग्रंथ के अनुसार राम पूर्णावतार तथा अन्य अवतार अंशात्मक है। स्वकीया भाव की उपासना मधुराचार्य को अभीष्ट है; क्योंकि उसमे मर्यादा, परिवार-सेवा तथा प्रच्छन्न रति का मधुर बलिदानात्मक आत्मविलोपन का भाव रहता है। परकीया की रति मे मधुराचार्य किसी सौन्दर्य का दर्शन नही करते। वह रति उनके अनुसार अति नग्न और रस-हीन रहती है। स्वकीया की रति प्रच्छन्न, अनभिव्यक्त तथा पति के परिवार भर की सेवा के माधुर्य मे सिक्त रहती है। अतः भक्त को भगवान् की स्वकीया बन जाने मे ही मधुराचार्य रति का पूर्ण परिपाक स्वीकार करते है‡। उनके अनुसार 'जारत्व' ससार-बीज को नष्ट करने वाला भाव तथा 'उपपतित्व' प्रच्छन्न रूप से प्रीतिप्रदातृत्व है$। स्वकीया का पति भी अपना प्रेम संयत और मूक रख कर ही भीतर ही भीतर आत्मा की अनिर्वचनीय गहराई के भीतर मे प्रदान करता रहता है। इसीलिए मधुराचार्य भगवत्प्रीति को शृंगाररस की स्वार्थमयी जागतिक भूमिका पर न अनुभव करके दिव्य आनद रस के रूप मे अनुभव करते है। उनके अनुसार शरीर-सुख घृणित वस्तु है। मर्यादा के लिए आत्मबलिदान को मधुराचार्य जी ने शृंगारात्मिका भक्ति का प्राण माना है। श्रुतियो मे वर्णित 'सच्चिदानन्द' का 'आनद' तत्त्व ही रसभक्ति की रति मे मिलने वाला परमप्रीति रूप, ब्रह्मावगाही आनंद है$। मधुराचार्य के द्वारा प्रतिपादित शृंगारात्मिका भगवत्प्रीति मे शरीरभाव की विश्रान्ति तथा मन की अनंत मधुरात्मिका पवित्र परिणति है। रामायण के सब पात्रों को मधुराचार्य जी ने स्वकीया कामिनी की तरह तथा भगवान् को कान्त की तरह अपने 'सुन्दरमणि सदर्भ' ग्रंथ मे चित्रित किया है।

मधुराचार्य ने 'सुन्दरमणि सदर्भ' मे राम के विश्वमोहन सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहा है कि कृष्ण तो वशीवादन के द्वारा केवल नारियो को मुग्ध कर सके पर राम ने तो केवल अपने रूप से सिद्ध मुनियों तथा चराचर जगत् को मोह लिया और सब नारी ही कर उनकी सेवा करना चाहते थे‡। मधुराचार्य ने मर्यादावादियों को 'लोकवेदकिंकर' कहा है और कहा कि मर्यादा का ढिंढोरा पीटने वाले लोक और वेद के दास ये मर्यादावादी मधुर-रस के बलिदानमय आनद को नही समझ सकते।

---

‡ सुन्दरमणि संदर्भ, पृष्ठ ३९-४०। † वही, पृष्ठ ४४। $ वही, पृष्ठ ५९।
* सुन्दरमणि संदर्भ पृ० १०६।

मधुराचार्य के अनुसार अयोध्या के कामद, केलि, कल्हार, कला, कौशिक, कौमुद, कौभ, कौशेय, कालिक, तालिक, सिद्ध, साध्य, सुमिद्ध, दीर्घ, शौक, सौरभ, शांभव, श्री सदन, बार्हस्पत्य, वसिष्ठ, शाण्डिल्य, कात्यायन, गणेश्वर आदि अनेक वनों मे राम सीता के साथ विहार करते है। चन्द्रा, चन्द्रकला, चाद्री, चन्द्रकान्ता आदि सीता की सहस्रों सखियाँ है। ये सब रूप, वय तथा सौदर्य मे सीता के समान है। इनसे कम गुणवाली दासियाँ है। इनके सौ गण हैं। गणमुख्य सखियों के नाम से गणो के नाम रखे गये है। शान्ता गण, कृष्णागण, धृतिगण, प्रकीर्तिगण, ज्ञानागण, ऋतिदागण, विशारदागण, बुधागण भाववेत्रीगण इत्यादि कुछ गणों के नाम है‡।

इस नारीरत्नसमूह के भीतर रह कर भी राम एक पत्नीव्रत है। इसका रहस्य अपने पिता जनक को समझाते हुए सीता ने कहा है—राम के रसात्मक व्यक्तित्व की प्राणात्मिका शक्ति मैं ही हूँ और मैं ही उनकी मधुरात्मिका सेवा के लिए शुद्ध सत्त्वरूपा तथा विकाररहित सखियों का रूप धारण कर लेती हूँ†।

मधुराचार्य के अनुसार लौकिक जीवन के स्वरूप का मूल्याकन करने के लिए ही लोकमर्यादा का नियम लागू होता है। असीम ब्रह्म राम के आनदात्मक, अनत मधुर रस के महाभाव को लौकिक मर्यादा की दृष्टि नही समझ सकती। सीमा का व्याकरण असीम पर लागू नही हो सकता। वह इस व्याकरण-नियम से नही पहचाना जा सकता। अनंत विश्व के हृदय मे रमण करने वाले पति के लिए सीमा वाले पति के क्रीडाभाव का व्याकरण कैसे अनुकूल और मूल्य-मापक हो सकता है$।

अतः वाल्मीकि के रामायण को सहारा बना कर लिखा गया यह सदर्भ ग्रथ सीमा के भीतर असीम के शाश्वत शृंगार का ही भव्य रहस्य प्रस्तुत करता है। ऐसे ही प्रयासों से रसिक साधना के मार्ग के भ्रम तथा पतनभय नष्ट हो जाते है।

(४२) मधुराचार्य जी का तेरह उल्लास वाला 'रामतत्त्व प्रकाश' भी रसिकोपासना का आधार ग्रथ है। इसमे भी शाश्वत माधुर्य रसरास की महिमा गायी गयी है। इस ग्रथ पर अखिलेश्वरदास की 'उद्योता' टीका भी है। इसमे रामजानकी के अखड सयोग-शृंगार का प्रतिपादन किया गया है और सगुण राम ही अनंत निर्गुण राम की तरह प्रतिपादित हुए है। सीताराम का सगुण-निर्गुण अनिर्वचनीय विभुत्व ही 'रामतत्त्वप्रकाश' मे प्रतिपादित किया गया है।

(४३) श्रीरामनवरत्नसार सग्रह परमहंस स्वामी रामचरणदास 'करुणासिंधु' द्वारा सगृहीत नौ अध्यायों वाला ग्रथ है। पडित रामवल्लभाशरण की 'रत्नप्रभा' इस ग्रंथ की टीका है। अन्यान्य शास्त्रों के उद्धरणों को बडी योग्यता से रामचरण दास ने विषय-क्रम से जमा कर इस सुन्दर ग्रथ का प्रणयन किया है। रसिकोपासना के मूलभूत आधारों, पक्षों और अगोपागो को पुष्ट बना कर समझाने के लिए हनुमन्नाटक, वाराह पुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म

---

‡ सुन्दरमणि संदर्भ पृ० १०६ † वही, पृष्ठ ४३२-३३। $ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'मधुराचार्य और उनका संदर्भ' शीर्षक निबन्ध।

रामायण, नृसिंहपुराण, ब्रह्मयामल, काशीखंड, सनत्कुमारसहिता, हिरण्यगर्भसंहिता, महाशंभुसंहिता, अध्यात्म रामायण, भरद्वाज सहिता, हनुमत्संहिता, अगस्त्य संहिता इत्यादि ग्रथों की सहायता स्वामी रामचरणदास ने ली है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस ग्रथ मे एक ही राघव के रूप मे कृष्ण का रूप मिला कर प्रदर्शित किया गया है। यहाँ राम की रासलीला मे राधा तथा चद्रावली, गोपकन्याएँ, गोपबाल, गोकुल, वसुदेव तथा हनुमान् इत्यादि सब एक साथ सम्मिलित हैं‡। अभेदोपासना की बडी दिव्य झाँकी रामचरण दास जी ने अपने ग्रथ मे इस रामकृष्णैक्य के द्वारा प्रस्तुत की है। इस मधुर रस की ब्राह्मी उपासना के द्वारा सतों ने ससार के मिठास की आसक्ति को समाप्त करके परमात्मा की भक्ति का मधुमय आस्वाद प्राप्त किया था। "नखसिख सीताराम छवि जब लगि हृदय न बास। 'रामचरण' सब साधना तब लगि लखब निरास†।" रामचरणदास जी का यह दोहा उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है। राम जानकी के अनत श्रृंगार का दर्शन करके ये संत जीवन के आसक्तिमय श्रृंगार को भूल गये थे।

(४४) 'श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश'$ स्वामी युगलानन्द शरण द्वारा सगृहीत ग्रथ है। इस सग्रह ग्रंथ में दो सौ अट्ठारह पृष्ठों मे श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, संहिता, तंत्र, नाटक, रहस्य और रामायण इत्यादि ग्रथों से सामग्री सगृहीत करके नाम-रहस्य पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। रसिकोपासना के प्रतिष्ठित आचार्य युगलानन्द-शरण का यह ग्रथ रसिक सम्प्रदाय के तथा सामान्य उपासकों के भीतर भी इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके कई सस्करण हो चुके है। युगलानन्द शरण ने अपने को सीताराम के 'नाममहा-रस' का 'मीन' बना लिया था।

(४५) श्री हरिहर प्रसाद के 'रामतत्त्व भास्कर' के पूर्वार्द्ध में परमतखंडन तथा स्वमत स्थापन है। परार्द्ध मे राम का 'परत्व' तथा 'अन्य-श्रेष्ठत्व' सिद्ध किया गया है। नामतत्त्व पर प्रकाश डालते हुए ग्रथकार ने विष्णु, नारायण, हरि, गोविन्द, वासुदेव, जगन्नाथ, कृष्ण तथा राम आदि नामों का रहस्य बड़े प्रभावशाली ढंग से समझाया है*।

(४६) श्री सरयूदास का 'उपासनात्रय सिद्धान्त' भी रामोपासना के क्षेत्र में बडा सम्मानित और महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। अनेक ग्रथों और शास्त्रों के आधार पर लिखा गया यह ग्रथ उपासकों के समक्ष उपासना की अतीत परम्परा का अच्छा परिचय प्रस्तुत करता है§। इसमे रामानुजीय नारायणोपासना, वृन्दावन की पद्धति वाली कृष्णो-पासना तथा अयोध्यासप्रदाय की रामोपासना का रहस्य सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रथ, ग्रथकार की निश्छल समन्वय बुद्धि का बडा पवित्र दृष्टिकोण उपासकों के समक्ष रख कर उन्हें भी समन्वय भावना की स्वस्थ प्रेरणा देता है। इस ग्रथ मे रामानंद राम के, अनतानंद ब्रह्मा के, सुरसुरानंद नारद के, सुखानंद शकर के, नरहर्यानंद सनत्कुमार के,

---

‡ श्रीराम नवरत्न, पृष्ठ २६। † वही, अन्तिम अध्याय के आरम्भ में। $ लखनऊ स्टीम प्रेस से सन् १९२५ में मुद्रित। * लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद से सं० १९७२ में मुद्रित। § प्रकाशक—छोटेलाल लक्ष्मीचन्द अयोध्या।

योगानंद कपिल के, पीयानद मनु के, कबीर प्रह्लाद के, भावानंद जनक के, सेना भीष्म के, गालवानद शुकदेव के तथा रमादास या रैदास यमराज के अवतार माने गये है और पद्मावती लक्ष्मी का अवतार मानी गयी है‡। इस ग्रथ ने राधा को सीता का तथा कृष्ण को राम का अश माना है। इसके अनुसार राम जब रासलीला करते है तब कृष्ण का स्वभाव धारण कर लेते है और सीता राधा की प्रकृति पर आ जाती हैं तथा सारा गोलोक उतर कर रास में सम्मिलित हो जाता है। उपासनात्रय सिद्धात के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव राम के आवेशावतार है।

(४७) श्री रामपटल मे वैष्णवों के आचार-विचार, पच सस्कार, दस लक्षण, मुद्रा जपविधि, षोडशोपचार पूजापद्धति, नाम सस्कार, तिलक धारण आदि का विस्तृत विवरण है। चारो वैष्णवमतों की भक्ति साधना की सम्पूर्ण प्रक्रिया और विधा का इस ग्रथ मे विवरण है†।

रामभक्ति के मधुर भाव से सबद्ध खण्डकाव्य भी है। तेरहवीं शताब्दी के वेदान्त देशिक का हस सन्देश या हसदूत, रुद्र वाचस्पति का दो सौ अट्ठासी छन्दात्मक भ्रमर दूत वासुदेव का भ्रमरसदेश, कपिदूत, सत्रहवी शताब्दी के वेकटाचार्य का छह सौ छन्दों वाला कोकिल सदेश, कृष्णचद्र तर्कालिकार का चद्रदूत इत्यादि ग्रथ रामभक्ति के मधुरभाव के दूत काव्य है।

जयदेव का रामगीतगोविन्द, हरिशकर और प्रभाकर के गीतराघव, हर्याचार्य की जानकीगीता, हरिनाथ का रामविलास, विश्वनाथ सिह जू का अट्ठारहवी शताब्दी का सगीत-रघुनन्दन, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का राघवविलास, सोमेश्वर का रामशतक, मुद्गलभट्ट का समार्याशतक, कृष्णेनु का आर्यारामायण इत्यादि रामोपासना के मधुर भाव के गीतकाव्य है।

हिन्दी साहित्य के परिवेश मे भी रसिकभक्ति से संबद्ध रामकाव्यों की सख्या बहुत बड़ी है। आठ प्रहरों की उपासना से संबद्ध अष्टयाम साहित्य की रचना भी पर्याप्तमात्रा मे हुई है। अष्टयामी उपासना आज भी अयोध्या के राममदिरों मे होती है। सबसे पहला (१) अष्टयाम श्रीकृष्णदास पयहारी के शिष्य श्री अग्रस्वामी का है$।

(२) अदग्रस्वामी के अनुसार (१) सुलोचनमणि, (२) सुभद्रमणि, (३) सुचन्द्रमणि, (४) जयसेनमणि, (५) बलिष्ठमणि, (६) शुभशीलमणि, (७) अनगमणि और (८) रसकेतुमणि, आठो मन्त्रियों के ये आठ पुत्र राम के समान शील और सौदर्य वाले उनके आठ सखा हैं। (१) श्री लक्ष्मणा जी, (२) श्री श्यामला जी, (३) श्री हमी जी, (४) श्री सुगभा जी, (५) श्री वशध्वजा जी, (६) श्री चित्ररेखा जी, (७) श्री तेजोरूपा जी तथा (८) श्री इन्दिरावली जी—राम की ये आठ सखियाँ हैं। सेवा कार्य के प्रकार के

‡ उपासनात्रय सिद्धान्त, पृष्ठ १२०। † प्रकाशन संवत् १९७९, मुद्रक आनद प्रेस बनारस, प्रकाशक—छोटेलाल लक्ष्मीचद, अयोध्या। $ अँमावा-टेकारी राजराजेश्वरी श्रीमती रानी भुवनेश्वरी कुँवरि द्वारा चैत्र शुक्ला षष्ठी, सवत् १९९५ में प्रकाशित।

अनुसार ये पुरुषरूप भी धारण कर लेती हैं। (१) निगमा जी, (२) सुरसा जी, (३) वाग्मी जी, (४) शास्त्रज्ञा जी, (५) बहुमंगला जी, (६) भोगज्ञा जी, (७) धर्मशीला जी तथा (८) विचित्रा जी—राम की ये शाश्वतकालीन दासियाँ हैं।

अशोकवन मे विशाल कल्पवृक्ष के नीचे मणिमय मण्डप में चार द्वार वाले विशाल मदिर की रत्नवेदी के मध्य मे सिंहासन है। उसके मध्य में रत्नकमल की पखड़ियों पर राम परिवार के चौबीस सदस्यों के आवास कुज है। कर्णिका मे सीताराम, आठ सखियो तथा भरत इत्यादि के द्वारा सेवित होते है।

लक्ष्मणा, श्यामला, हमी, सुगमा, निगमा, सुरसा, वाग्मी तथा शास्त्रज्ञा के कार्य, क्रम से, ताम्बूल सेवा, गन्धमोदक, चन्दनलेप, चन्द्रवासक, चामरसेवा, वस्त्रक, पादाब्जसेवा तथा वाद्यमगल है। बहुमंगला, भोगज्ञा, धर्मशीला के कार्य, क्रम से, वार्तालाप, गायन तथा पादसेवा और नित्य शयाह्निक सेवा हैं। मधुरभाव का उपासक राम के इसी मधुमय जीवन के विराट् माधुर्य का ध्यान करता है।

अदग्रस्वामी के अनुसार (१) स्नान, (२) नासाग्रमुक्ता, (३) नील कौशेयवस्त्र, (४) सुवर्णसूत्र से सुशोभित वेणी, (५) अगराग, (६) कांची से सुशोभित नीवी, (७) मणिमाला, (८) कर्णभूषण, (९) हाथ का कमल, (१०) तांबूल, (११) सिंदूर तिलक, (१२) चिबुक पर की कस्तूरी, (१३) अजन, (१४) ककण, (१५) महावर तथा (१६) नूपुर—ये सीता के सोलह शृंगार है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि इस शृगार से शरीर का प्रसाधन आदर्श और पूर्ण हो जाता है।

(३) स्वामी अग्रदास की 'ध्यानमंजरी' में उपर्युक्त ऐश्वर्य के परिवेश में करोड़ों सूर्यो को लज्जित करने वाला सच्चिदानद राम का, सुन्दरता की सीमा सीता के साथ प्रस्फुटित होने वाला सौन्दर्य वर्णित है। इस युगल स्वरूप की शोभा के वर्णन के लिए अग्रदास जी को कोई उपमा नही मिलती। सब उपमाएँ सीमित सौंदर्य वाली हैं। उनका अनंत रूप सीता-राम में प्रकट हुआ है। स्वामी अग्रदास के अनुसार इस ध्यान से ब्रह्मा और शिव भी अपने को पवित्र करते हैं। इस ध्यान से साधक का जन्म सफल हो जाता है। बिना रसिक भक्त के यह ध्यान किसी के भीतर स्वप्न मे भी जागृत नहीं हो सकता।

(४) नाभादास जी के रामाष्टयाम मे (१) शृंगार, (२) विहार, (३) तमाल, (४) रसाल, (५) चपक, (६) चन्दन, (७) पारिजात, (८) अशोक, (९) विचित्र, (१०) कदब, (११) अनग तथा (१२) नागकेसर वनों के सुवर्णमणिमय, प्रासादों और सरयू के मणिमय घाटों सुवर्णमय परकोटों, नगमय गोपुरों की दिव्य अद्भुत ज्योति का वर्णन है। राम परिवार की चहल-पहल तथा अन्तःपुर के अनिर्वचनीय सौभाग्य और ऐश्वर्य के बीच 'नेह निबाहनहार' राम के शृंगार का वर्णन भी नाभादास जी ने किया है†।

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, लेखक भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', पृष्ठ १९४।
† वही, पृष्ठ १९७।

अन्त:पुर मे नाभादास जी की उद्‌भावना में आयी हुई राम की सखियाँ सेवा के समय उनकी छवि को देख कर सनाथ हो जाती है‡ । भोजन के समय भी सीता-राम के अपार स्नेह की धारा युगल छवि से फूटी पड़ती है। नाभादास जी ने क्षुधा तृप्ति के बहाने प्रेमक्षुधा की अतृप्ति का चित्र ही अंकित किया है† । नाभादास जी ने राम के अत.पुर के नृत्य-संगीत तथा शयन शोभा के सम्मुख इन्द्रपुरी के ऐश्वर्य को भी रसहीन अनुभव किया है$ ।

(५) महात्मा बाल अली जी ने एक सौ अड़तालीस बेजोड़ दोहों मे 'नेह प्रकाश' की रचना की है । यह रसिक सम्प्रदाय की रामभक्ति का अद्‌भुत ग्रथ है। इसे नायिका प्रधान एक खडकाव्य की शोभा प्राप्त है। वेद वेदान्त के गूढ सिद्धान्तो की आत्मा, शक्ति समूहों के स्वामी राम की आह्लादिनी शक्ति की तरह सीता का चित्रण इस काव्य मे हुआ है* । सीताराम का प्रेमाद्वैत और आत्माद्वैत इस गथ मे चित्रित किया गया है । इसके अतिरिक्त सखियों की नामावली और सेवा, सखी और दासी का भेद, राम का प्रेमालाप, रस-विलास, प्रेमविलास, रूपविलास, सखियों द्वारा सीताराम के परस्पर प्रेम का उन दोनो को बारी-बारी से निवेदन, सीता-सौन्दर्य वर्णन तथा सीता प्रभाव वर्णन इत्यादि विषय भी 'नेह प्रकाश' के द्वारा आलोकित किये गये है। सीता के प्रति भक्त की भक्ति का आलोक इस ग्रथ मे प्रधान हो गया है । योग, यज्ञ, तप, नियम और व्रत को छोड़ कर सीता के चरणों की धूल की सेवा ही बाल अली जी के अनुसार भक्त का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए । सब सुकृत मिल कर भी सीता के चरणों की धूल की सेवा की समता नही प्राप्त कर सकते । बाल अली ने राम की इसी आह्लादिनी शक्ति की भक्ति से अपने हृदय का शृंगार कर लिया है ।

(६) अली जी का दूसरा ग्रथ 'सिद्धान्त तत्त्व दीपिका' है। इसके छत्तीस प्रकाश है और जीवन के प्रबधो को प्रतीक बना कर इस ग्रथ मे रामभक्ति के सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है । राजाविश्वकाय की कन्या प्रभावती पति रूप में 'परमभजनीय' को प्राप्त करती है । इस प्राप्ति के पथ पर बाधा रूपिणी 'सुसंभ्रमा' उसे 'विश्वप्रपंच' के प्रेम की ओर घसीट ले जाती है । 'परमभजनीय' को मन से वरण कर लेने वाली प्रभावती 'कृपावती' की सहायता से पुन: 'परम भजनीय' की ओर उन्मुख होती है और 'विश्वप्रपच' के माया-जाल से छुटकारा पा जाती है। अन्त में साधना की सिद्धि के रूप में प्रभावती 'परम-भजनीय' राम को प्राप्त कर लेती है । इसी प्रतीकात्मिका कथा के भीतर रसिक भक्ति का सम्पूर्ण सिद्धान्त यथास्थान विवेचित हुआ है§ ।

(७) महात्मा बाल अली का तीसरा ग्रथ 'ध्यान मजरी' रसिक सप्रदाय के आधार ग्रंथों में मुख्यस्थान प्राप्त कर चुका है× । संवत् सत्रह सौ छब्बीस, फाल्गुन शुक्ल पचमी को

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, लेखक भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', पृष्ठ १९७ । † वही, पृष्ठ १९८ । $ वही । * रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २०१ । § वही, पृष्ठ १९७ से पृष्ठ २०१ तक । × ई० सन् १९०८ में जैन प्रेस, लखनऊ मे मुद्रित, प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मी चन्द, बम्बई वाले ।

यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस ग्रंथ में कुल दो सौ तिहत्तर छन्द है; पर हैं सब के सब सर्वथा बेजोड़। राम की शुद्ध सच्चिदानन्दमयी शोभा का तथा सीता के अनिर्वचनीय अनत पवित्र सौन्दर्य का भव्य वर्णन इस ग्रंथ मे है ‡।

(८) कृपा निवास की चालीस पदों और उन्तीस पृष्ठो वाली 'लगन पचीसी' रामप्रेम की मधुर पीड़ा का बड़ा अनोखा ग्रंथ है। यह पुस्तिका सवत् १९५७ मे लिखी गयी †। उर्दू शैली की स्वाभाविकता इस लेखक की मौलिक प्रवृत्ति मालूम पड़ती है। 'इश्क की कहानी' को वह इश्क की जबान मे बड़ी मीठी पीड़ा के साथ कहता है। उनका 'दरदी दिल' 'दिलदार दरश बिन' दीवाना हो गया है। वह 'पर हाथ विक गया है'। 'रामसजन की सूरति' देख कर वह खो गया है। उसको तो 'बेदरदी सो लगन लगी है'। उसने इस लगन से उठते-बैठते, दिन और रात के लिए दर्द मोल ले लिया है। उसका बोलना, देखना सब दर्द भरा है। दर्द का अनुभव करके वह मुसकाता है। उसने दर्द की फकीरी मेखला पहन ली है, अब उसे सुख कहाँ से हो। यदि यह दर्द मिट जाए तो उसका दिल दो कौडी के मोल भी न बिके। उसके लिए तो 'दरदहि भरे कुशलात' है। दर्द ही उसका धन है और दर्द ही उसका जीवन। 'निगोड़ी लगन' उसके 'पैंडे' पड गयी है। ऐसे 'नेही जन' का न्याय कौन कर सकता है। उसका मन 'लगन के फदे मे' बँधा हुआ है। वह प्रेम के कारागार मे बदी हो गया है। उसके 'दृग' 'पीतम' के सौन्दर्य पर अटक गये। प्रिय को मन सौप कर वह उसके हाथ बिक गया। प्रिय उसका सिर काट कर गेंद खेल ले तो वह अपना भाग्य सराहेगा। जब प्यारे का नेह मिल गया तो लाज का दाग उस पर क्यों पडे। लाल-रतन जब उसने पा लिया तो कौडी के मोल के प्राण भी दे देने पड़ें तो घाटा क्या है। उसके दिल पर लगन की चोट लग गयी है। वह दीवाना फकीर हो गया है। वह 'इश्क अमल' का 'दो प्याला' पी लेता है और 'आठ पहर मस्ताना' हो कर घूमता रहता है। लगन की ग़रीबी ने उसके गर्व को समाप्त कर दिया है। उसकी मति हार मान कर दीन हो गयी है। सुख और दुख की इच्छाओं को वह भूल गया है। काम, क्रोध, मद और मोह सब विस्मृत हो गये है। कुल के काज और लाज अब वह छोड चुका है। वह अपने दिल की पीड़ा मे डूब कर कर्म, योग और भोग के ऊपर उठ चुका है। वह जने-जने से प्रेम न कर एक के प्यार में डूब गया है। वह दूसरों से मिले हुए आदर को विष और प्रिय की फटकार को अमृत समझता है। घर पर दौड कर आये हुए लोगों से वह नही मिलता; पर प्रीतम के द्वार पर जा कर उसे पुकारता है। राम-सिया के लिए उसने तन, मन, धन सब हार दिये है। उसके भीतर "दिन रतियाँ राम की बतियाँ लगी है।" वह तो राम से मिलना ही नही चाहता; प्रेम की इस पीडा मे डूब कर ही रहना चाहता है। उसे तो पीड़ा मे ही सब कुछ मिलता है, मिलन मे क्या प्राप्त होना है। जब दिल दिलदार से मिल गया तब मिलन मे और अधिक क्या मिलेगा। जब लाखों को खाक की

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २१० से २१५ तक। † प्रकाशक—सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल, बंबई वाले। सन् १९०१ में लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे मुद्रित।

तरह छोड़ कर उसने अपने मन को पाक बना लिया तब अब दूसरी कौन-सी इच्छा उसके भीतर उत्पन्न हो सकती है, जब वह राम का आशिक हो गया तो दुनिया की अब किस वस्तु से प्रेम करे‡। इस तरह प्रेम की पीडा का यह अनुपम गुलदस्ता है। लगन पचीसी के शब्दो में हृदय मे प्रेम का घाव पैदा कर देने वाली मधुर तीक्ष्णता है। अपनी जगह पर कृपा निवास की 'प्रेम पचीसी' अनुपम है।

(९) 'अनन्य चिंतामणि' कृपानिवास का दूसरा ग्रंथ है: रसिकसंप्रदाय का यह सर्वांग सम्पूर्ण सिद्धान्त ग्रंथ है। योग, ज्ञान, वैराग्य और प्रेम की सैद्धान्तिक विवेचना के भीतर इसमे मधुर उपासना का सर्वोपरि महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। बाकी सब उपासनाएँ मधुर उपासना की परिचारिकाओं की तरह उपयोगी मानी गयी हैं। इस ग्रंथ के अनुसार मधुर रसात्मिका भक्ति के गुरु हनुमान माने गये हैं। इस ग्रंथ मे छह प्रकार की अनन्यता की चर्चा है। नाम, वेश, इष्ट, वाक्, प्रसाद और वृत्ति की अनन्यताएँ यहाँ विवेचित की गयी हैं†।'

(१०) 'रामरसामृत सिंधु' सोलह प्रवाहों वाला, कृपानिवास जी का तीसरा ग्रंथ है। प्रत्येक प्रवाह का विभाजन विभिन्न तरंगों में हुआ है। इस ग्रंथ के अनुसार योगमाया के प्रभाव से सब देवता सखी हो कर चित्रकूट की रासलीला मे सम्मिलित हुए थे। यहाँ भी मधुरोपासना के गुरु हनुमान् ही माने गये है। कृपानिवास द्वारा रचित, रामरस के अमृत का यह समुद्र अद्भुत है$।

(११) 'रास पद्धति' कृपानिवास का, पचपन पृष्ठों और एक सौ पचास पदो का चौथा ग्रंथ है*। 'राम-रस-रग' का भावात्मक साक्षात्कार कृपानिवास ने अवश्य किया था; अन्यथा उनके शब्दो मे इतनी मधुर शक्ति न उत्पन्न हो सकती। रास के शोभालोक से आपूरित 'जानकी वल्लभ' कृपानिवास की आँखों से कभी ओझल नहीं होते। वह उन्मुक्त हृदय से कह उठता है—"निरखि छबि अटकि रहे दृग मेरे'। वह 'राम रसिक' को पुकार कर कहता है—"अब सुधि लीजै बिरहन की"। राम रसिक ने उसके मन को हर लिया हैं और रमणीभाव से उसने अपने हृदय को उस रसिक को लुटा दिया है। उसके "उरमे उठत रैन दिन हूकै" और 'राम रसिक' को अपनी कूकें सुनाने के लिए उसकी विरहिणी आत्मा पुकार उठती है। "हेली रसिक साँवरे चोर" ने उसके मन को हर लिया है और वह "राम छैला के फेल मे" बुरी तरह मे फँस गया है। जानकी वल्लभ की युगल छबि को देख कर वह फूला नही समाता§।

(१२) 'भावना पचीसी' कृपानिवास की पाँचवी रचना है। इसमे जानकी की सखियों और मधुरोपासनामय उनके कार्य, राम की सखियों और उनकी मधुरोपासनामय

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २१५ से २१९ तक। † वही, पृष्ठ २२०। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २२०–२२१। * देशोपकारक प्रेस, लखनऊ मे सन् १९१० मे मुद्रित, प्रकाशक, सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद। § रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २२१ से २२४ तक।

राम की सेवा तथा हृदयगम्य मानस-मधुरोपासना की सुन्दर तरंगों का यह ग्रंथ मधुर संग्रह है। साधना और सिद्धान्त का यह मधुर ग्रंथ रसिक भक्त के हृदय का सुन्दर परिचय देता है। कृपानिवास का हृदय सीता की अष्ट सखियों की आत्मा मे अपनी आत्मा को एकाकार परिणत कर "सिय लाल की रहस-माधुरी" की क्रीडा मे खो जाना चाहता है। इन सखियों की आत्मा मे प्रविष्ट हो कर वह राम के 'महल' मे 'सहल' प्रवेश पा जाना चाहता है, अपने हृदय मे राम के प्रेम रहस्य की माधुरी को स्फुरित करके। इसी तरह राम की आठ मुख्य सखियों की प्रीति प्राप्त करके उनकी रसात्मिका साधना के द्वारा कृपानिवास राम के महल का निवास तथा उनके महल की माधुरी का पान अपने लिए प्राप्त कर लेना चाहते हैं। यह सब रसमयी साधना हृदय के भीतर ही हो रही है‡।

(१३) 'पदावली' कृपानिवास जी की छठवी उपलब्ध रचना है†। इसमे चार सौ पद है तथा जागरण से ले कर शयन तक की राम की दिनचर्या के मधुर चित्र हृदय प्रसून है। भगवान् राम के जीवन के माधुर्य की भावना मे कृपानिवास को अपने "प्राणों के लिए पारसनिधि' प्राप्त होती है। प्रातःकाल नीद से उठे हुए राम को इस साधक का हृदय शयनसुख के लिए बधाई देता है। तुरत जागे हुए राम की शोभा में वह अनिर्वचनीय आकर्षण का अनुभव करता है। उस "रगभरी जोडी" को वह चिरजीवी होने का आशीर्वाद देता है। किशोरी सीता और किशोर राम को रग मदिर मे सदा विहार करने की अपनी आकांक्षा का पवित्र वरदान-सा देता है। राम और सीता सुख के रस मे जितना अधिक सरसेंगे उतना ही अधिक कृपानिवास को अपने नयन और प्राणों का सर्वस्व महासुख प्राप्त होगा। इस महासुख को कृपानिवास राम के "महल का टहल" मानते है और शाश्वत काल के लिए वे इस टहल को अपने लिए प्राप्त कर लेना चाहते हैं। वे अपनी सुमति को राम की इस "खास टहल" मे हमेशा के लिए लगा देना चाहते हैं। राम के सुख-ऐश्वर्य का ध्यान ही भक्त अपनी शक्ति के द्वारा की गयी राम की भावनात्मिका टहल समझता है और इस टहल मे सदा के लिए खो जाना चाहता है। राम और सीता की "नवल तरुनाई" का ध्यान उसे जगत् के द्वन्द्वों, उसकी वासनाओं से मुक्ति दे देता है। राम और सीता के मिलन को प्रेमाद्वैत की परिणति की पवित्रता मे जब वह देखता है, तब उसके नयन निहाल हो जाते है। सीता और राम के हृदय मे जो प्रेम का अद्वैत बैठा हुआ है उसे देख लेने पर हृदय मे वासना का द्वैत कैसे अवशिष्ट रह सकता है। भक्त इसी अद्वैत की परिणति की कामना करता है। इसीलिए वह "युगल-रस की रति" को गाता है। कृपानिवास इस बात का अनुभव करते है कि "सिय-पिय-सुख" मे अनत प्रेम का निवास है और इस अनत प्रेम का भाव हृदय मे अनुभव करके भक्त का हृदय भी प्रेम की अनन्तता का आत्मविलोपक भाव प्राप्त कर लेता है, वह राम की 'अलबेली अली' बन जाता है तथा उसमे कलुष के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। कृपानिवास की आँखें जब एक बार इस अनत प्रेम और

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २२४ से २२६ तक। † प्रकाशक—सेठ छोटेलाल, लक्ष्मीचद, बम्बई वाले।

सौंदर्य का दर्शन कर लेती है, तब 'मोडने से भी नहीं मुडती', उनमें से वह सौंदर्य एक क्षण के लिए भी नही टलता। यह छवि जिसकी आँखों मे समा जाती है, उससे 'काम डरने लगता है'। उसकी क्षुद्रता का प्रभाव इस तरह के अनत के साधक पर कैसे पड सकता है। उसकी 'सपत्ति की राशि तो अनंत विलासी के अनंत प्रेम से समृद्ध है'। उस पर क्षुद्रता का प्रभाव कैसे पड सकता है। उसके मन ने इस अनत प्रेम के विलास को देख कर अपनी अनत 'सफलता प्राप्त कर ली', अब वह खडित सफलता की ओर नही आकृष्ट हो सकता। इस सभावना को सदा के लिए समाप्त करना ही कृपानिवास का लक्ष्य है; इसीलिए सीता-राम के समान अनत प्रेम के विलासी दपति को उन्होने सदा के लिए 'अपने नयनो मे पिरो लिया ‡'। कृपानिवास जी 'इश्क के दर्द' की उर्दू शैली तथा 'प्रेम की पीर' की हिन्दी शैली पर समान अधिकार रखते थे। उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं मे उनका हृदय निर्बाध गति से प्रेम की धारा प्रवाहित कर रहा था।

(१४) 'सिद्धान्त मुक्तावली' स्वामी जनकराजकिशोरीशरण 'श्री रसिक अली' का रसिकोपासक सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है†। इस ग्रथ मे केवल बावन पृष्ठ और एक सौ सत्तावन दोहों, सोरठों मे रसिकोपासना की प्राय. सब मान्य बाते सजा कर रख दी गयी है। रसिक अली के अनुसार रसिकोपासना की तुलना मे ज्ञान और योग व्यर्थ है। उनके अनुसार रसमयी भक्ति पावन गगा की धारा है और ज्ञान तथा योग सूखे गड्ढे। पुरुष राम के अद्‌भुत सौंदर्य को देख कर दडकारण्य के पुरुष ऋषियों के मुग्ध हो जाने की घटना की विचित्रता के आधार पर 'रामरूप की अनिर्वचनीय मोहकता को जनकराज किशोरी शरण ने भी स्वीकार किया है। उन्होने कहा है कि विष पिलाने वाली पूतना पर कृष्ण के सौन्दर्य का कोई प्रभाव नही पडा; पर राम के मोहक सौन्दर्य से आकर्षित हो कर शत्रु की भी बहिन शूर्पणखा ने उनसे प्रेम का प्रस्ताव किया। खरदूषण भी मुग्ध हो कर उनसे युद्ध नही करना चाहते थे; पर वीरधर्म का निर्वाह करने के लिए ही उन्होने युद्ध किया। जनकराज किशोरी शरण ने कहा है कि जब सौन्दर्य निधि राम भी सीता के सौन्दर्य से मुग्ध हो गये तो सीता के सौंदर्य का वर्णन कैसे किया जाए। ऐसे सीता-राम के पावन प्रेम को ही वे जीव की मुक्ति मानते है। साख्यदर्शन के सिद्धान्तों का सहारा ले कर उन्होने कहा है कि प्रकृति तथा उसके तत्त्वों मे उलझा हुआ जीव अपने आत्म रूप को न पहचान कर परमात्मा राम से अलग हो गया। रसिक उपासना की पद्धति से सीताराम के प्रेम को प्राप्त करके वह अपने मूल रूप को पहचान लेता है।

भक्ति के शरणागति-धर्म को 'रसिक अली' तीन प्रकार का मानते हैं—(१) साधन (२) भाव और (३) प्रेम। साधन के भीतर वे (१) श्रद्धा, (२) विश्वास और (३) सत्सग को स्वीकार करते है। भजन की प्रक्रिया के लिए वे (१) धारणा, (२) निष्ठा और (३) अभंग रुचि को आवश्यक मानते हैं। साधक के लिए सब अनर्थों-अनावश्यक चितनों—

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २२६ से २३४ तक। † प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद, बंबई वाले। जैन प्रेस, लखनऊ मे १९०७ मे मुद्रित।

के परित्याग को वे अनिवार्य मानते है। (१) क्रियारभ के आनद (२) मार्ग के कष्टों की सहिष्णुता तथा (३) आलस्य के अभाव को वे श्रद्धा के अनुभाव मानते हैं। उसके अनुसार मनुष्य का हृदय जब श्रद्धा की सम्पत्ति से भर जाता है तब राम रूपी वस्तु की चाह उत्पन्न हो जाती है। जब मन लौकिक वस्तुओं को देख और सुन कर उनकी ओर आकृष्ट नही होता तथा परमात्मदर्शन ही उसका शास्त्र बन जाता है और इस परमात्मादर्शन को, सुनते ही, अपने चित्त मे वह सच्चाई से ग्रहण कर लेता है तब उसके भीतर भक्ति पथ का स्वाभाविक 'विश्वास' उत्पन्न हो जाता है‡। रसिक अली के इसी विश्वास का समकक्ष 'विश्वास' गोस्वामी जी की "भवानीशङ्करौवन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ" पक्ति में मिलने वाला मंगलमय शिवस्वरूप विश्वास है†।

जिस उपास्य का स्नेह हृदय मे उत्पन्न हो जाए यदि वही परीक्षा के लिए कई प्रकार के कष्ट दे और फिर भी उपासक का मन उस इष्ट का परित्याग न करें तब वह रसिक अली के अनुसार निष्ठावान् साधक हो जाता है। रसिक अली जी के अनुसार सात्विक आग्रह पूर्ण स्नेह ही 'निष्ठा' का अनुभाव है$। वे यह स्वीकार करते है कि इसी निष्ठा के उत्पन्न हो जाने पर सीता-राम की उपलब्धि साधक को निश्चय ही हो जाती है। भगवान् के दर्शन और स्पर्श से जब सुख बढ़ने लगे और उनके अदर्शन से जब वियोग जन्य पीडा का अनुभव साधक को होने लगे तब उसके भीतर भगवान् के प्रति 'रुचि' उत्पन्न हो जाती है। रुचि-सिद्ध साधक, अली जी के अनुसार, 'रघुबर' को अपने से दूर कभी नही रखता। अली जी यह मानते है कि 'भाव भक्ति' स्वभावगत 'रुचि' के बाद उत्पन्न होती है। भाव-भक्ति के वे नौ लक्षण मानते है—(१) क्षमा, (२) विरक्ति (३) अमानता, (४) समय का सदुपयोग, (५) मिलन की आशा की डोरी मे चित्त का बँध जाना, (६) मिलन की उत्कठा, (७) प्रिय के गुण कीर्तन के प्रति आसक्ति, (८) प्रिय के स्थान मे निवास करना ही रुचिकर प्रतीत होना तथा (९) प्रिय की नामावली से स्नेह। उनके अनुसार ऐसा ही व्यक्ति 'सिय रघुनदन' के मिलन का अधिकारी होता है। अनेक विघ्नों के होते हुए भी जब 'प्रीति की रीति' न छूटे और आसक्ति नित्य नयी हो कर बढ़ती जाए तब रसिक अली के अनुसार प्रेम की अवस्था प्राप्त होती है *।

राम को देख कर जिनका चित्त द्रवित हो जाता है, जो अपने तन और धन को राम से अलग नही मानते और राम से अलग होने पर वियोग की पीडा का अनुभव करते है उन्हें राम का 'सुलक्षण स्नेह' सिद्ध हो जाता है। 'सिय रघुबर' के लिए सहा हुआ दुःख जिनके के लिए सुख हो जाता है तथा बिना सीताराम के सम्बन्ध से मिला हुआ सुख, दुख हो जाता है वे रसिक अली के अनुसार राम के 'अनुराग' के सिद्ध अनुरागी है। उनकी संगति से अनुराग प्राप्त कर लेने का परामर्श रसिक अली जी देते है। जिसके भीतर प्रणय के ये लक्षण उत्पन्न हो जाते है उन्हें राम की सख्यता प्राप्त हो जाती है§।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २३७। † रामचरित मानस, बालकांड, मगलाचरण, श्लोक २। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २३७। * वही। § रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २३७।

रसिक अली जी उपासना के दो प्रकार मानते है : (१) पहली ऐश्वर्याशया उपासना है तथा (२) दूसरी माधुर्याशया। रुचि के अनुसार साधक को अपना पथ निश्चित करना चाहिए। 'द्विभुज परात्पर रामसिय' को गोलोक में रासलीला-रत देखने वाले ऐश्वर्याश्रयी उपासक है ‡। अवध के रासक्षेत्र में लीला के रग से अनुरजित राम-सीता का ध्यान करने वाले माधुर्याश्रयी उपासक है। माधुर्याश्रयी साधक चारों भाइयों का मिथिला मे रग-रास भी ध्यानगम्य करते है †।

(१५) रसिक अली ने 'अन्दोल रहस्य दीपिका' की भी रचना की है $। यह कुल सोलह पृष्ठों का ग्रथ माधुर्य का बड़ा भव्य रगस्थल है। राम-सीता की, सखियों के साथ, झूला-लीला का वर्णन करने मे, अली जी का हृदय भी उन्हीं के साथ झूल उठा है। इस 'ललित लीला' मे रसिक अली ने 'लालसिय' का 'त्रिगुन मायापार' साक्षात्कार किया है। अली जी ने कहा है कि पुरुष भाव वाला हृदय इस निस्त्रिगुणात्मिका लीला का रहस्य नही समझ सकता; अली-हृदय के भाव को साथ ले कर ही इसका साक्षात्कार किया जा सकता है। 'पुरुष तहँ पहुँचे नही केवल अली अधिकार।' रसिक अली 'दिन रैन' जीवन भर इसी ध्यान की आवृत्ति करते रहते है। "बिनु जुगल रस लीला लखे" उनके हृदय को क्षण-पल भर भी किस तरह चैन मिल सकता है। भगवान् के रसरग से शक्ति प्राप्त करके भक्तों ने दुनियाबी रसरग की आसक्ति को इसी प्रक्रिया से पराजित कर दिया था *।

(१६) रामचरणदास 'करुणा सिन्धु' का 'पचशतक' (१) विवेक, (२) वैराग्य, (३) उपासना, (४) विरह तथा (५) नाम के पाँच शतकों का अद्भुत संग्रह है। यह शृगारोपासना का आधार ग्रथ तथा सप्रदाय मे सार्वत्रिक प्रतिष्ठा प्राप्त ग्रथ है। चिंतनगत सिद्धान्तों तथा हृदय की रसिक साधना की अनुभूतियों का सुन्दर समारोह इस ग्रंथ मे देखने को मिलता है। 'हिय लगे राम बिरह सर' का अनुभव राम के इस दास ने किया है। राम के मिले बिना उसका 'बिरह अनल' नही उतरता। राम चरण का हृदय 'बिरह-अन्ध' हो गया है। उसे 'तन-धाम-धन' कुछ नहीं दिखाई पड़ता। उसका विरह बहरा हो हो गया है। उसे 'कर्म-धर्म-श्रुति टेर' नही सुनाई देती। उसकी आत्मा 'प्रभु बिरह' के शृगार से सौभाग्यवती रहती है। 'ज्ञान, ध्यान, जप, जोग, तप' के शृंगार के रहते हुए भी 'राम बिरह' के बिना उसकी आत्मा अपने को विधवा समझती है। वह राम को जल बना कर अपने को मीन बना लेता है, राम को दीपक बना कर स्वय पतग बन जाता है, वह रामरूपी सूत्रधार के हाथ की कठपुतली बन के नाचना चाहता है, रामरूपी मेघ के लिए वह चातक बन जाना चाहता है तथा 'रामलला' के बिना 'बसन्त-फूल-सुख' उसके लिए 'अगिन लूक सम' हो जाता है §।

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २३७। † वही, पृष्ठ २३८। $ जैन प्रेस, लखनऊ में मुद्रित, मुद्रण-सन् १९०७। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २४०। § रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २४१–४२।

(१७) रामचरण दास की 'रसमालिका ‡' रसिकोपासना की रसानुभूति का हृदय-ग्रंथ है। इसमे उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास ने दास्य रस को प्रकट तथा शृगार रस को गुप्त रख दिया। यही चोट उनके दिल मे रह गयी। दाम्पत्य के अद्वैत रस को दास्य के विभक्त रस के कारण वे न प्राप्त कर सके। इसीलिए वे अग्रस्वामी के रस-शरीर को धारण करके राम के दाम्पत्याद्वैत को प्राप्त कर सके और अपने 'मानस' की शृगारात्मिका टीका लिख कर उन्होंने रास-रस के आनद का अनुभव किया †। रामचरण दास को अपने पति के नाम का उच्चारण करने के समय वही संकोच होता है जो पत्नी को पति का नाम लेने के समय होता है। इस ग्रथ में भी सिद्धान्त, सीमा-राम शोभा वर्णन, वन विहार, वसन्त विहार, सखियों का नृत्य, शृगार, नृत्य विहार, जल-क्रीडा तथा हिंडोला इन्यादि का वर्णन है। लीला वर्णन में रामचरण जी ने भी यही कहा है कि जग को छोड कर इस लीला को देख राम की सखी बन जाने से भुवन-भय नष्ट हो जाता है ।

(१८) रामचरण दास जी की 'अष्टयाम पूजाविधि' अगस्त्य संहिता के मूल श्लोकों का पद्यमय भाष्य है *। इसमें भी सखियो और सीता का शृगार, राम का शृगार, सखियों द्वारा सीता और राम का शृगार, आरती तथा शयन इत्यादि वर्णित है।

(१९) जीवाराम 'जुगल प्रिया' की 'युगल प्रिया पदावली' एक सौ सात पदों का सग्रह है। (२०) 'शृगार रहस्य दीपिका' और (२१) 'अष्टयाम' की रचना भी युगल प्रिया जी ने की है। 'पदावली' मे माधुर्य और ऐश्वर्य का भव्य वर्णन है। राम-सीता के शृगार मे उलझा हुआ भक्त का रसमत्त हृदय इस ग्रथ के प्रत्येक पद में अनावृत हो गया है। राम-सीता के शृगार का ध्यान करके यह साधक भी 'सब मन काम' भूल गया है। मिथिला में सीताराम के शृंगार वर्णन में कवि ने हृदय मे छिपे हुए सब रसिक भावों को राम-सीता के रसरग को अर्पित कर दिया है §। सीता-राम के मधुर रसरंग का प्रवाह भक्त के हृदय में पहुँच कर पावन आवेश वन गया है और इस पदावली के रसरंग के चित्रों में अंकित हो उठा है। पदावली के रससिक्त शब्दचित्र इस बात की गवाही देते है कि युगल प्रिया जी ने अपने हृदय के कुंज मे वस्त्र, आभूषण, वाद्य, सगीत, आलिंगन, पुष्प, रंग, अबीर, गुलाल, वीणा, नृत्य, गान, मेवा तथा फूलो के शृंगार-सभार के बीच, सीता-राम और उनकी सखियों के साथ फाग खेल लिया है तब दूसरों के भीतर उसी पावन आवेश को उत्पन्न करने के लिए शब्दब्रह्म की आनंदात्मिका मधुरा शक्ति को उसे सौप कर अभिव्यक्ति प्रदान किया है ×।

‡ प्रकाशक-श्री भरत शरण जी (श्री विश्वंभर प्रसाद जी माथुर, भूतपूर्व प्रोफेसर गवर्नमेंट कालेज, अजमेर)। † रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २४१–४२। $ वही, पृष्ठ २४७। * प्रकाशक सेठ छोटेलाल, लक्ष्मीचन्द, बम्बई वाले, सन् १९०१, लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित। § 'राम-भक्ति-साहित्य में मधुर उपासना', पृष्ठ २५५। × वही, पृष्ठ २५९।

(२२) युगलानन्यशरण 'हेमलता' का 'उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास ‡' तीन सौ पंचानवे दोहों का, पावन उत्कठा की स्निग्ध मणियों का कोष है। रसिकोपासना का हृदयरहस्य, इस ग्रथ मे मधुर-मुखर हो उठा है। इसमें नामोत्कंठा, रूपोत्कठा, गुणोत्कठा, धामोत्कठा तथा लीलोत्कठा क्रम से व्यक्त हुई है। सीताराम के नाम, रूप, गुण, धाम और लीला के माधुर्य मे इस साधक का हृदय उत्कठित हो कर लीन हो गया है। 'नाम सुख सागर' की 'महामधुरता' को उसकी रसना ने चख लिया है। उस महामधुर रस के आस्वाद के सामने वह भुक्ति और मुक्ति की अभिलाषा को तृण और धूल के समान मानता है। वह 'नाम-लगन' के लिए अपने 'अतर' मे 'लोभ' उत्पन्न करना चाहता है—ऐसा लोभ जिसके आवेश मे एक क्षण के भी नाम-वियोग से वह शरीर छोड़ देगा, जिस तरह मीन जल के वियोग के कारण। इसी तरह राम के रूप की शोभा के जल से वह अपने 'कलंक' को धो लेना चाहता है और राम के प्रत्येक अंग के लावण्य को देख कर वह युगों को निमेष के समान बिता देना अपना अभीष्ट बना लेता है। राम के नाम, रूप, गुण, धाम और लीला के सौन्दर्य को युगलानन्यशरण ने द्वद्वविनिर्मुक्त हृदय से पान किया है।

(२३) 'अर्थपचक †' युगलानन्यशरण का दूसरा ग्रथ है। इसके विषय है (१) जीवस्वरूप विवेचन (२) ईश्वरस्वरूप विवेचन (३) उपाय तथा संबध-भावना विवेचन (४) फल तथा पुरुषार्थ तत्त्व विवेचन तथा (५) विरोधी विवेचन और कालक्षेप विवेचन है। इन पाँच आधारों पर युगल उपासना का महत्त्व इस ग्रथ मे सक्षेप में प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रंथ मे भी 'परमप्रमोद की अथाह उमगो' को ले कर साधक का हृदय 'सतत टहल-सुधा-निधि' की कामना करता है। वह अपने सब 'भोगों को प्रभु-अनुकूल' अनुभव करता है और युगल स्वरूप के सौन्दर्य में मग्न हो कर 'तत्सुख-सुखी' रहता है। "यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा तद्यपि पति-पत्नी सुख रूपा।। याहिमाहि अति प्रीति प्रकासे। निराबरन प्रीतम रस भासे" इस साधक का सिद्धान्त है। वह सब सम्बन्धों को अनुपम मानते हुए भी पति-पत्नी भाव को सुखरूप मानता है; क्योंकि केवल इसी भाव मे अतिशय प्रीति के प्रकाश मे प्रीतम का रस निरावरण हो कर अनुभूत होता है। इस साधक को यह अनुभव हो रहा है कि प्रिय के वियोग मे उठने वाला हाहाकर नित्य हृदय मे रहता है और उसके प्रभाव से नयनों से नीर की वर्षा होती रहती है। खान, पान तथा मान को छोड़ कर उसका हृदय 'निशिदिन नाह-मिलन-अनुराग' मे लीन रहता है। उसने 'स्वर्ग मोक्ष अभिलाष' को विस्मृत करके 'केवल ललन मिलन पन' धारण कर लिया है। उसने इस तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है कि चौबीस तत्त्वों के शरीर को छोड़ कर अनुरागी साधक प्रभु को हृदय से समझ लेता है। सियाराम से मिलन की अभिलाषा के कारण वह माया और गुणों की गति को अनायास ही नष्ट कर देता है। ऐसा साधक सुषुम्णा द्वार से प्राणों को निकाल कर

---

‡ सवत् १९७२, भाद्रशुक्ल अष्टमी भौमवार को रचना पूर्ण हुई। प्रकाशक—पुस्तकभंडार, लहेरियासराय (दरभंगा)। † मुद्रक, सेठ वशीधर लड़ी वाले, रामायण प्रेस लिमिटेड, अयोध्या, प्रकाशक—रामबहादुर शरण, मुजफ्फरपुर।

ब्रह्मरन्ध्र खोल कर 'खरारी' के धाम चला जाता है। अर्चिरादि पथों का जानकार ऐसा साधक झीने रविमंडल को अनायास ही भेद डालता है। प्रकृति के आवरण को उतार कर यह साधक प्रेम के रंग में डूबी हुई विरजा नदी का दर्शन कर लेता है। इस अनुराग का दर्शन करके जगत् के समस्त संस्कार उसे छोड़ने को बाध्य हो जाते हैं। कारण शरीर की वासनाओं से मुक्त हो कर वह अमल अमानव पद का स्पर्श पा लेता है और उसके भीतर महाप्रेम का शुद्ध सागर तरंगें मारने लगता है। यहाँ उसे त्रिगुण रहित शरीर प्राप्त हो जाता है। वह विरज, भव्य तथा दिव्य आनंद में प्रविष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह राम के उस 'सदा प्रकास सुचि सुन्दर रूप' का अधिकारी हो जाता है, जिसे देख कर 'अमित पुरंदर लज्जित' हो जाते हैं। 'सियवर' के 'सोहावन रूप प्रकास' की छवि से आलोकित हो कर प्रिय के 'मणिसोपान द्वार' का स्नेह प्राप्त कर लेता है। यहाँ से वह 'अदेह हर्ष' को ले कर आगे बढ़ता है और युगल छवि की अनुपम शोभा का दर्शन प्राप्त करके शाश्वत आनंद में लीन रहता है। योग और भक्ति का बड़ा सुन्दर सामंजस्य 'अर्थ-पंचक' में स्थापित किया गया है। यहाँ भक्ति साधनात्मिका हो गयी है‡।

(२४) 'श्री जानकी सनेह हुलास शतक' युगलानन्यशरण का तीसरा ग्रंथ है। इस ग्रंथ में राम से अधिक जानकी को महत्त्व दिया गया है। इसके अनुसार अपना नाम करोड़ों बार सुन कर राम उतने प्रसन्न नहीं होते जितना सीता का नाम एक बार ही सुन कर वे सन्तुष्ट होते हैं। जो संसार के 'अनेक अरसों' को छोड़ कर 'रस-राज-रस' में डूब जाते हैं उनके लिए केवल जानकीवल्लभ नाम ही सहारा बनता है और यह सहारा युगला-नन्यशरण सीता की प्रसन्नता का परिणाम समझते हैं†।

(२५) 'संतमुख प्रकाशिका पदावली$' युगलानन्यशरण जी के पदों का संग्रह है। सूफ़ियों की मँजी हुई उर्दू शैली में इस पदावली में इश्क का दर्द व्यक्त हुआ है। पैरों में नूपुर और भक्ति के गेय पदों में नेह का नूपुर बाँध कर यह साधक पराप्रीति से नाच उठा है। वह सीतावर से 'रहस-भावना' माँग चुका है। उसे दर्द है और वह यह अनुभव करता है कि 'बेदरदी' संसार उसका 'दरद' किसी प्रकार नहीं जान सकता। उसका वियोग वही जानता है और उसे व्यक्त करने के लिए उसके पास शब्द है। 'अचल दरद' से उसका हृदय दग्ध हो चुका है। पदावली के बहुत से पद बेजोड़ हैं*। स्वामी युगलानन्य शरण ने सीताराम के मधुर शृंगार की भावना में अपने को खो दिया है। उसकी आँखों ने "सब में परिपूरन राम न तिलभर खाली" के रहस्य को देख लिया है। उसकी अनुभूति के भीतर राम के विलास, प्रकाश और रूप से सब विश्व उज्ज्वल दिखलाई देता है। इस मन के भीतर 'छैल छबीले' राम से 'मिलन का मनोरथ छन-छन' जाग उठता है। उसकी आँखें प्रिय को देखने के लिए 'दरद दिवानी' हैं। उनको प्रिय की 'लाली तन, मन, बन और

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २६५ से २६७ तक। † रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २६८-२६९। $ सन् १९१७ में लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस से मुद्रित। * रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृष्ठ २७० से २७२ तक।

पर्वतों' मे फैली हुई दिखाई पडती है। इस लाली के अद्वैत में उसकी आत्मा विषमता को खो कर 'सुचि समता' के समग्र सुखों से सज कर उसी में निवास करती है ‡। रस के इस माधुर्य का अनुभव करने वाला उसका हृदय कह उठता है : "नगारा नेह का नित बाजत आठो याम।" हृदय मे बजते हुए प्रेम के इस नगारे की अनाहत ध्वनि वह अपने हृदय के कानों से सुन कर रसमग्न हो जाता है। यही रस उसका सुख है, उसका यश है। इस रस को छोड़ उसके व्यक्तित्व मे कुछ भी शेष नही रह गया है। इस नेह के सगीत के सरगम 'केकी, कोकिल, बीन के सुधामय स्वर से अधिक मधुर' है। उसकी लगन रघुवीर से लग गयी है; इसीलिए वह अपने 'घायल दिल' से 'सरयू नीर निरखता' हुआ अपना समय काटता है।

नारी के हृदय का स्वभाव अपना कर युगलानन्यशरण जी राम की सखी हेमलता जी में अपने को अन्तर्भावित कर चुके है। वे राम को उलाहना देते है कि मेरे लिए तूने अपना स्वभाव ही बदल लिया। तू तो सब जीवों को उनके गुणों और गतियों की चिन्ता किये बिना दया के दृगों से देखता है। मै तो तेरी हूँ और तूही मेरा पति है, इस दृढ प्रतीति से मेरी 'छाती छक' चुकी है। उसके भीतर यश और जाति की भावना स्थान नही पाती, रुचती ही नही; फिर तू मुझे क्यों नही अपनाता, मेरे लिए अपना सर्वजनवत्सल स्वभाव तू कैसे भूल गया †।

इस पुरुष साधक ने अपने हृदय को नारी बना कर 'रसीले लाला' से प्रीति लगा ली है। वह प्रिय को अपने प्राणों से पहचान चुका है, जान चुका है और विरहिणी की 'रतिरुचिरीति' को अपन हृदय मे पालता रहता है। उसके चित्त मे निरतर अथाह चाह बढ रही है। विपरीत जगत् उसे नही रुचता। उसने नीति-अनीति सब छोड दी है। किसी के साथ उसका रग नही जुड़ता। यह प्रबल प्रतीति उसके भीतर बढ़ चुकी है कि प्रिय मिलेगा। वह इस बात को अनुभव कर चुका है कि "अब हम भई सोहागिनी साँची।" 'विषयों की विभूति की वासना' वह भूल गया है। कच्ची 'जगमति' उसके भीतर नष्ट हो चुकी है। राम के रग मे रँग कर यह साधक विरह की दर्दभरी आकुलता का अनुभव करता है और उसके अग शिथिल रहने लगे हैं। 'बेहोश देवानी' हो कर वह औचक उठ जाता है और 'पिय पिय' कह कर बिलख उठता है। इस रग मे डूब कर वह 'ललन ललित गुन' गाता रहता है। 'पिय गुन से घायल' उसकी आत्मा प्रौढ़ा नायिका की स्थिति प्राप्त कर चुकी है। प्रीतम रस का स्वाद वह प्राप्त कर चुकी है। वह अपने प्रेम को छिपाने के लिए मौन हो गयी है। उसे अपनी रसमयी दशा का वर्णन करने में अपार शर्म और संकोच का अनुभव होता है। इसी तरह के रससिक्त पद युगलानन्यशरण की 'संतसुख प्रकाशिका पदावली' में है। इन पदो मे सत का नवनीत कोमल हृदय जगन्मोहन, परम सुन्दर राम की विरहाग्नि में जल उठा है। उसकी दशा विचित्र हो गयी है। सब ऋतुओं में व्याप्त राम के

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २६९। † रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २७०।

रूप को देख कर उसका हृदय हार जाता है। वर्षा की बूँदों मे बैठा हुआ राम जब उसकी आँखो को दिखलाई पड़ जाता है, तब उसकी आँखों मे विरह जल का प्रवाह उमड पड़ता है। बादल के गरजने मे, बिजली के चमकने मे, मयूर की केका मे, चारों तरफ वह राम को देख कर 'सियपिय' के विरह की 'अकथ और अपार वेदना' मे डूब जाता है। वर्षाऋतु "पल पल पिय मदु मधुर मोहनी मूरति हित" उसे ललचाती है। यह ऋतु रस की वर्षा करती है और हेमलता की विरहिणी के हृदय मे 'हाय' बस जाती है। मन्द-मन्द गर्जन करने वाले बादल उसके प्रिय का 'गुणगान' करके उसके यश को प्रकट करते हैं। चपला चमक कर अपने 'दिलदाह' को दिखा देती है तो हेमलता जी को दूना दर्द प्राप्त हो जाता है। युगलानन्यशरण जी ने हेमलता की आत्मा मे प्रविष्ट हो कर अनन्त व्यापी घनश्याम रघुनदन की शोभा का कोमल साक्षात्कार किया था और प्रेमिका के हृदय मे प्रिय के मधुमय प्रेम के जितने प्रकार के आवेग उत्पन्न होते है उन सबको अपने हृदय मे अनुभव करके प्रियतम रामघनश्याम को अर्पित कर दिया है। भक्तों के हृदय की यह रसमयी साधना धन्य थी जिसमे जगदानद ब्रह्मानद के रूप मे परिणत हो गया था‡।

(२६) 'श्री सीता-राम नाम परत्व पदावली†' भी स्वामी युगलानन्यशरण जी के नाम-सबध सिद्धान्तो का अनुपम तथा मधुर कोष है। इस कोष मे नाम की अनत शक्तिमत्ता अपनी अनत माधुरी के साथ व्यक्त हुई है। इसमे 'नाम-नेम' से 'प्रेम-छेम' की उत्पत्ति का रसमय सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। 'नाम नेम' ही हेमलता जी के प्रेम को 'हेम झलक' प्रदान करता है। नाम-रटन से वियोग की आहे उत्पन्न होती है और उनमे 'मोह-पटलकाई' फट जाती है। इसी 'नाम नेम' से 'अटल-पद मे प्रवेश' सभव है। इसी के द्वारा 'जटिल-जीवन-घन' के भीतर से मधुमय प्रेम की उज्ज्वल ज्योति उदित होती है। इसी के प्रभाव से मन और बुद्धि की चचल गति रुद्ध हो जाती है, हृदय 'नूर पूर' हो जाता है और 'हजूर के रहस्य के लाखों पवित्र रूप' आँखे देख लेती है। 'नाम-नेम' से प्रिय की परम प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, मन और बुद्धि की चचलता भूल जाती हैं, जगत् के शूल शान्त हो जाते हैं और प्रिय के प्रेम का 'संतत सरस स्वाद' मिलने लगता है।

'रामनाम का मधुर सुरस' जो लोग पी लेते है उन्हे राम पति रूप मे मिल जाता है। 'युग-युग' तक 'प्रभापुज सयुत' उसका जीवन सरस हो जाता है। निश्छल प्रेम की पवित्रता हृदय को आलोकित कर रोम-रोम को प्रभापुज से प्रदीप्त कर देती है। महात्माओ के शरीर का यह तेज अनादि काल से लोक विख्यात है। इस आत्म तेज और देहोद्दीप्ति का सर्जन युगलानन्यशरण 'श्री हेमलता जी' ने अपने व्यक्तित्व मे कर लिया था। आत्मानुभूति के सत्य से आलोकित महात्मा युगलानन्यशरण के शब्दो मे सत्य का सहज आकर्षण है। भगवान् राम के 'सद्‌विलास' का आलोक, खास प्रकाश है। उसकी 'सुछबि' की छटा जब भक्त के भीतर-बाहर छा जाती है तब उसे 'ललाम लहरों के लय' मे 'आश' भी

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २७१-२७२। † प्रकाशक—लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, समय—कार्तिक शुक्ल १९६९ विक्रम।

'खास' हो कर अनुपम अनुभावित होता है‡। उस ललित ललाम राम की लाली से जब सारा विश्व भक्त को आलोकित अनुभूत होने लगता है तब आम जगत् उसे खास राम की तरह प्रतीत होने लगता है। 'निज प्रभुमय देखहि जगत'† की अवस्था उसमे उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था मे उसे 'युगल रूप' नित्य निकट ही शोभित होते हुए दिखाई देता है। यही अवस्था 'सीय राम मय सब जग'$ की अनुभूति की अवस्था है जो महात्मा युगलानन्यशरण को प्राप्त हो गयी थी। उसने नाम का 'जाम' पी लिया है। वह नाम विश्व भर मे समाया हुआ है, इसलिए नाम मे खो कर वह विश्व का हो गया। उसे न अपना खयाल है न अपनी तकलीफों का। उसने अपने को नाम के स्वाद मे खो दिया है। वह 'नाम रटन रस का रसिया' हो गया है। 'नाम सुख' ही उसका 'प्रान अधार' हो गया है। वह अगुन सगुन युग रूप' को ऐसे सौन्दर्य के आवरण से सजा हुआ देखता है जो 'अलेख और अनिर्वचनीय है। उसने राम-नाम के 'विमल बरन' को 'हिय हरन हार' बना लिया है। राम-नाम के विमल वर्णो के हारने उसके हृदय को हर लिया और उसका हृदय हार बन गया *। नाम के जपने से ही परात्पर ब्रह्म राम उसे मिला और उसकी 'अकथ छबि से छक' कर उसका हृदय 'अटल' प्रेमी हो गया। नाम स्मरण से उसे 'रग-रस' मिलता है और उसका हृदय राम के सरस सौन्दर्य और दिव्य गध से युक्त हो कर पूर्णानन्द से खिल उठा है। वह निरन्तर रामरस ही पीता है। इस रस की 'मदहोशी के जोश मे छक कर' उसकी मति राम की पराप्रीति मे डूब गयी है। उसका यह प्रेम 'विमल विराग' सच्चा और शुद्ध शौक है। 'प्यार से सज कर' वह 'मत्रसार राम नाम का उच्चारण करता रहता है। 'अपने पिया का नाम' उसे 'अनुपम रगभरा' दिखाई देता है। इसे छोड़ किसी दूसरी वस्तु के लिए उसका प्यार नही बढ़ता। यही उसके हृदय को 'छन छन हरता' रहता है। यह नाम ही हर वस्तु की शोभा है। 'रग ला नाम' स्मरण करते हुए उसकी मति नाम के सौन्दर्य भार से दब गयी है। 'प्रिय-पीयूष' की माधुरी को नाम के प्याले से पी कर वह सब रसो से विरक्त हो गयी है§। 'जानकी जीवन' के नाम रस की विह्वलता से व्याकुल हो कर नूतन आनद और मगलमय जीवनदान करने वाले राम को उसकी मति ने प्राप्त कर लिया है। अब उसकी राते सरस हो गयी है। उसकी अज्ञान निशा प्रिय के प्रेम से आलोकित हो कर ज्ञानानन्द से मधुर सयोग का अनुभव कर रही है। प्रेम के माधुर्य का सहज शृगार प्राप्त करके युगलानन्य शरण के हृदय ने नाम को अनिर्वचनीय स्वाद के कोमलतम आवरण से सिक्त पाया है और इस महात्मा की प्यासी आत्मा 'प्रीतम के पुनीत रस' से 'निहाल' हो गयी है×।

(२७) 'श्री प्रेमपरत्व प्रभा दोहावली+' महात्मा युगलानन्य शरण के द्वारा लिखे गये, पर-प्रेम के सर्वोच्च और सर्वतेजोभिभावी आलोक को प्रसारित करने वाले दोहों का

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २७३। † रामचरितमानस, उत्तर कांड, दोहा ११२। $ रामचरितमानस, बालकाड, दोहा ७ के बाद। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना पृष्ठ २७३। § वही, पृष्ठ २७३–२७६ तक। × वही, पृष्ठ २७६। + नवम्बर २२, सन् १९१६ मे चर्च मिशन प्रेस, गोरखपुर में मुद्रित।

संग्रह है। यह संग्रह लवकुश शरण ने किया है। इस संग्रह के आरम्भ में अग्रत: प्रस्तुत गुरु परम्परा मिलती है :—

श्री जीवाराम—'युगल प्रिया' जी।

श्री युगलानन्यशरण जी—'हेमलता जी'

श्री जानकीवर शरण—'प्रीतिलता जी'

श्री रामवल्लभा शरण—'युगल विहारी जी ‡'

'प्रेम परत्व प्रभा दोहावली' मे भी शैली का वही मूफ़ियाना ढंग है। प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति करने वाले इन दोहो मे भी वही कोमलता शब्दों में है जो हमे महात्मा युगलानन्य शरण के और ग्रथो मे अनुभूत होती है। इस दोहावली में विरह ज्वर, अष्टयाम उपासना तथा रूप-सुषमा अभिव्यक्त हुई है। यहाँ भी 'विरह' की चोट महात्मा के 'अन्तर' मे लग गयी है, जिसके कारण उसे 'प्रभु मुख' प्रत्यक्ष प्राप्त हो रहा है। 'रैन दिन' उसके भीतर किसकी पीड़ा है वह किसे बताए। 'सिया बर के विना दिल दरद बूझन हार' भी तो कोई नही है। श्याम का स्मरण कर करके उसका विरहिणी रूप 'पल पल करक' रहा है। उसी पीडा मे वह 'हर हमेश मद मस्त' है। इस पीड़ा का 'महान् ज्ञान' उसे गुरु से प्राप्त हो गया है। 'जब दरद उठता है, तब उसका तन हरद बराबर जरद' हो उठता है। 'देखे बिना, बियोग ज्वर ज्वाल' से उसके 'सब अग जले' जा रहे हैं। 'जुगल अग छवि' जब उसे देखने को मिले तब उसके 'दृग शीतल' हो। उसकी 'दशा दिवानी' हो गयी है, 'रात-दिन बहकते बैन' बोलता है तथा अपने 'छन-छन टपकत नैन' साथ लिये 'होम बिना' घूमता फिरता है†।

'जाति पाँति कुल वेद पथ' को छोड़ कर यह विरहिणी अनियम, नियमों के बन्धन से मुक्त हो कर 'निसदिन पिय के कर विक' चुकी है। 'प्रीतम प्रेम' से बाध्य हो कर वह रुक न सकी। वह 'प्रभु दरवाजे' सो गयी है। 'सिय बर हाथन' विक जाने के बाद उसे होनी की चिन्ता नही। वह कहती है, 'होनी होय सो होय'। प्रभु के द्वार को छोड इस साधक का विरहिणी रूप इधर-उधर कही नही झाँकता।

सिद्धों की सिद्धाई उसे 'सहस शूली' की तरह, हजारों शूलियो की तरह पीड़ा देती है। उससे प्रिय को भूल कर सिद्धि का अभिमान जो जाग पड़ता है। यह अभिमान प्रेमी को कहाँ प्रिय होता है। वह तो अपने को भूल कर प्रिय-प्रेम के अद्वैत मे मस्त हो जाना चाहता है। इसीलिए 'जहान वितान' को, ससार के मडल बद्ध प्रपच को छोड़ कर वह 'नाम के अमल' से मतवाला हो जाता है।

अष्टयाम की सेवा मे भी इसी तरह की भावमयी अष्टयामिनी उपासना है। 'रूप सुषमा' भी सरस हृदय की मनोहारिणी सौन्दर्य-भावना की उच्चतम परिणति है। अनत युगल की शोभा का यह रससिद्ध महात्मा अपने को मनोहर युगल के अग-अग की शोभा पर निछावर कर चुका है। इस आत्म-विसर्जन योग ने उसकी 'चपल चाह' का 'चूरन' बना

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २७६। † वही, पृष्ठ २७७–२७८।

डाला है और काम के अधकार को उसके हृदय से निर्वासित कर दिया है। 'नित्य निरमल नेह' की आकाक्षा को ले कर वह परमसुन्दर युगल छवि मे लीन हो गया है। वह 'राममहल' मे प्रवेश पा चुका है, अब दुनिया के 'बाजार' में नही आएगा। इस परम सुन्दर का नाम ही उसके लिए 'मुख्य' है शेष सब 'गौण'। इसी मुख्य की माधुरी मे लीन हो कर वह कोमलतम मुक्ति का अनुभव करता रहता है ‡।

(२८) 'श्री युगलविनोद विलास' 'श्रीराम नवरत्न सार-संग्रह' के पचम अध्याय का हिन्दी अनुवाद है। दोनो ग्रथ स्वामी रामचरण दास 'करुणा सिधु' द्वारा निर्मित हैं। द्वितीय, सस्कृत का सग्रह-ग्रथ और प्रथम उसके पाँचवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद। 'किसोर किसोरी के विनोद और विलास के बडे कोमलतम रस-सिक्त चित्र इस ग्रथ मे है। जल-केलि और रासलीला के मधुर तरगों ने एक अनिर्वचनीय शोभावाली 'ब्रह्मरैन' की सृष्टि कर दी है। यह क्रीडा 'सकल जीव' के भीतर की परमानन्दमयी अवस्था है। राम की सखियों की चर्चा करते हुए रामचरण दास जी ने कहा है कि मैंने केवल गण नायिकाओं के नाम गिनाये है। इनमे से प्रत्येक के अनुशासन मे दो-दो हजार किंकरियाँ रहती है। यह रास लीला महारसोत्सव का एक अनुपम सभार है, जिसमें राग, रागिनियाँ, स्वर, ताल इत्यादि सब सखी रूप धारण करके किसोर राम के साथ नृत्य कर रहे है †।

(२९) 'उभय प्रबोधक रामायण $' महात्मा बनादास की रचना है। इन महात्मा मे मर्यादा की उपासना-तरगिणी के गभीर तल मे रसिकोपासना निमग्न रहती है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, नामस्मरण और पवित्र जीवन की मर्यादाओ के ये प्रचारक है। पर हृदय के गुप्ततम तल में उन्होंने अपने भीतर मधुरा रति को स्वीकार किया है, अन्यथा व्यक्ततः ये दास्यभाव के उपासक है। मूलखड, गुणखड, नामखड, अयोध्याखड, विपिनखड, बिहारखड ज्ञानखंड और शान्तिखड इनके ग्रथ के सात कांडों के नाम है। बिहारखड मे वन से लौटने के बाद राम जनकपुर एक बार और जाते है और काशी नरेश के अतिथि भी, वापसी यात्रा मे रहते हैं। यहाँ काशी नरेश के द्वारा किया हुआ सत्कार बड़ा भावमय और मधुर चित्रित हुआ है।

पुष्पवाटिका का प्रसग बनादास जी ने बड़ी मधुरता से अकित किया है। मृगो, पक्षियों और विटपों की ओर सीता देखती भर है पर आँखों में राम की मूर्ति समा गयी है। उस मूर्ति पर से उसका ध्यान तनिक भी नहीं हटता। तरुओ और लताओं के नाम सखियों से पूछती हुई वह अधिक समय तक वाटिका मे ही रुकी रह जाती है, प्रिय के वियोग को कुछ और देर तक टाल देने के लिए। बनादास जी कहते है कि राम के वाम कर से धोखे से फूल भूमि पर गिर गये, पूजा के योग्य नही रह गये, इस तरह दूसरे फूलों को चुनने मे व्यस्त राम ने सीता के भाव को समझ कर दर्शन की अवधि को लम्बी बना दिया। अन्तर्यामी राम सदा अपने सब जनों की रुचि रखते है *। राम के सौन्दर्य मे बना

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २७८ से २८३ तक। † वही, पृष्ठ २८४ से २८६ तक। $ दिसम्बर सन् १८९२ इस्वी में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ मे मुद्रित। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २८७।

दास जी ने 'कैवल्य' का दर्शन किया है। इस महात्मा को भी सीता के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए 'टटोलने' पर भी उपमा नही मिलती। 'नृप की किशोरी' उनसे 'अधिक' हो जाती है। इसीलिए 'कहनी' को छोड़ कर वह सीता के आदर्शों के अनुसार अपनी 'रहनी' को बदल कर उनके 'चरणों पर कुर्बान' हो जाता है; क्योंकि सीता के सौन्दर्य का वर्णन करने के समय 'वचन के ज्ञान की झलकी' अन्धीकृत हो कर अपना सम्मान खो देती है‡।

(३०) 'सीतारामझूला विलास †' श्री रसरंग मणि का एक सुन्दर तथा अल्पकाय ग्रथमणि है। इसमे २५ झूले के तथा ५ नौका विहार और जलविहार के पद है। इन चित्रों की शोभा रसरग मणि के हृदयागार को 'छल' कर उसमे निवास कर गयी है$।

(३१) 'श्रीरामनाम यश विलास श्री रामरूप यशविलास *' भी रसरंग मणि जी की रचना है। शरणागति, दास्य और माधुर्य के बड़े सुन्दर चित्र इस ग्रथ में अकित है। सर्वभाव की उपासना रसरग जी मे दृष्टिगोचर होती है।

(३२) 'श्री सरयू रसरग लहरी तथा अवध पचक'—इस ग्रथ में रसरंग मणि का हृदय सरयू की शोभा तथा अवध के ऐश्वर्य मे लीन हो गया है। सरयू के तट पर झाऊ की झाडियों मे कवि ने ऋद्धि, सिद्धि, भुक्ति और मुक्ति के झुडों को झूलते हुए देखा है§।

(३३) 'श्री सीताराम शोभावली प्रेम पदावली×'—रसरगमणि का यह ग्रथ अस्सी पष्ठों मे पूरा हुआ है। शोभा वर्णन का बड़ा उच्च और ललित स्तर इस ग्रथ ने प्रस्तुत किया है। सीताराम की शोभा पर, उनके हिंदोल विहार पर वासनाओं की बलि दे कर रसरगमणि ने अपना तन, मन निछावर कर दिया है। 'रसिक बर हरि' ने उसका मन हर लिया है, 'रूपधनी बीर' उसके 'उर' मे 'बर जोरी बस गया है।' प्रेम मे डूब कर उस युगल छवि के अमृत को रसरग के प्यासे हृदय ने पी लिया है। राम के मुखचद्र के लिए उसकी आँखे चकोरी बन गयी हैं+।

(३४) 'श्री रामशत बन्दना' मे रसरंगमणि का हृदय अपने प्रेम को राममय बना कर उनकी भक्ति मे लीन हो गया है। उसका मन रघुनन्दन के मन्दहास के पाश में बद्ध हो गया है, उनके 'जुलुफ जजीरन मे' जकड गया है✤।

(३५) 'श्री रामरसरग विलास' मे कुल १८५ कवित्तों मे रसरंग मणि ने सीताराम की मधुर उपासना के सब उपादानों को एकत्र निचोड़ कर रख लिया है। मगलाचरण, इष्ट वदना, गुरुवदना, आचार्य वन्दना, रामनाम का यश, राम का रूपरस, राम की

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २९०। † प्रकाशक, छोटेलाल लक्ष्मीचद, सन् १८९९ मे जैन प्रेस, लखनऊ मे मुद्रित। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २९१। * पडित घासीराम के देशोपकारक प्रेस, लखनऊ, में सवत् १९६५ में मुद्रित। § रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ २९३। + देशोपकारक प्रेस, लखनऊ में सन् १९०२ में मुद्रित। × रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ २९४ से ३०१ तक। ✤ वही, पृष्ठ ३०३।

कृपाभिलाषा, रामायण की कथा, राम के प्रति अनन्यता, राम का माधुर्य, पुनः नाम प्रभाव, राम का नखशिख वर्णन, श्री सीता का गुण-प्रभाव-वर्णन इत्यादि विषय इस ग्रथ मे सजे हुए है ‡। इस ग्रथ मे भी रसरग ने अपने 'हृदय की शैया पर समतुल्य युगल को बसा लिया है।' 'कनक भवन मे प्रिया-प्रीतम की झाँकी' पर उसने अपने को वार दिया है †।

(३६) 'रामझाँकी विलास $' की छोटी-सी काया मे रसरगमणि ने राम के जन्म से ले कर राज्याभिषेक तक की सुन्दर झाँकियो को बडी कोमल आकृतियों मे अकित कर लिया है। इस ग्रथ मे भी उन्होंने अपने 'बुद्धिकमल के बोध के बीच मे विश्व-बीर राम की बिमल, बाँकी झाँकियों' को बसा लिया है *।

(३७) 'सियबर केलि पदावली §' ज्ञाना अली सहचरी जी की चार सौ आठ पदो की रचना है। सहचरी जी मे ज्ञान और प्रेम का गरिमापूर्ण कोमल आलोक अपने सम्पूर्ण माधुर्य के साथ निवास कर रहा है। 'लाडली-लाल' के यश की इस गायिका ने अपने को 'लाडिली जी' की चेरी बना दिया था। सीता की आठ मुख्य सखियों मे से ज्ञाना एक है। उन्ही की सहचरी ज्ञाना अली ने अपने को बना लिया था। ज्ञाना जी ने अपनी माता का नाम चन्द्रकान्ति, पिता का नाम राजा शत्रुजित तथा बडी बहिन का नाम चारुशिला बताया है। अपने नाम के अक्षरों की सार्थकता सिद्ध करते हुए ज्ञाना जी ने 'ज्ञा' का अर्थ गोप्य-रस और 'ना' का अर्थ निश्चय बताया है। रसिकों के गोप्य मधुर रस को निश्चय पूर्वक स्वीकार करके ज्ञाना जी ने उस रस को छक कर पी लिया। 'ज्ञाना ज्ञान न जान कछु' कह कर उन्होंने ज्ञान को गौणता प्रदान कर दी है। केवल 'जनकलली' के प्रिय को ही 'ज्ञान, अखण्ड, अनादि, अज' समझ कर उन्हीं के प्रेम को अपने हृदय मे ज्ञाना जी ने धारण कर लिया और जनक लली की आत्मा बन कर मिथिला को 'नैहर' तथा अवध को 'सासुर' मान लिया। इन्ही दो स्थानों मे ज्ञाना जी बारी-बारी से रहा करती थी। गुरु की कृपा से उन्होने 'विश्वमूर्ति, विश्वनिवास अज, अखड, श्रीराम को अपना 'वर' बना कर उन्ही को अपने 'ज्ञान का प्रकाश' मान लिया ×। ज्ञाना अली का यह विश्वास है कि 'सियचरण उपासी' हो जाने से ही 'पिय छबि प्यास' मिट सकती है। सीता अनादि और अनत शक्ति है, जिसका यशोगान नवरस, छह शास्त्र, चार वेद, अट्ठारह पुराण तथा चौदह विद्याएँ करती है +। 'सियवर केलि पदावली' मे ज्ञाना अली ने 'लाड़िली जी' की 'लगन' मे अपने को खो दिया है और सीताराम के मधुरभाव मे तन्मय हो गयी है। षट्ऋतुओं, बारह महीनो तथा अन्य प्रकार के हास-विलास और हिन्दोलोत्सवों की बडी कोमल माधुरी के बीच मे ज्ञाना जी ने 'लाल-लाड़िली' के मधुररस का अनुभव किया है। उन्होने मूक

---

‡ हितचिंतक प्रेस, रामघाट, बनारस, मे सवत् १९६७ में मुद्रित। † रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३०४-३०५। $ सवत् १९६६ विक्रम, ज्येष्ठ शुक्ल पचमी को यह ग्रथ पूरा हुआ। * रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३०६। § नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, मे सन् १९१४ ई० में मुद्रित। × रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३०७-३०८। + वही, पृष्ठ ३०९।

हो कर 'दम्पति बिलासरस' का पान किया है; क्योंकि वह अनिर्वचनीय रस कहा कैसे जा सकता है। 'रूपमाधुरी, गुणकथन, अभिरामयुगल नाम', अवध के निवास तथा 'मिथिला की कथा' को ज्ञाना अली जी ने अपने 'जीवन का विश्राम' बना लिया था ‡।

(३८) 'जानकी नौरत्न माणिक्य †' रामसखे जी की रचना है। इसमे कुल ३७ पद है। दानलीला के बारह पद और कवितावली में पच्चीस कवित्त है। 'दशरथ कुमार' के मधुर शृंगार का दर्शन कर रामसखे भी अपने को भूल गये है। इन्होंने भी 'गोलोक लीला को चित्रकूट' मे उतरी हुई देखा है। चित्रकूट की सुषमा को देख कर रामसखे का मन योगस्थ हो जाता है। राम के जीवन के जिस विलास प्रसार को रसिक सम्प्रदाय ने अपनी अनुभूति का विषय बनाया है उसके सपूर्णपरिवेश की ओर बडे कोमल ओर मधुर इंगित रामसखे ने दिये है। 'अवध कुँवर' के समग्र 'छविधन' को रामसखे ने अपने 'मन के परम कुटीर मे गोप्य' कर रखा था। 'दम्पति के सुन्दर-छवि वदन' को निहार कर यह साधक उस सौन्दर्य पर बलि हो गया था। रामसखे हर दृष्टि से रसिक सप्रदाय के उज्ज्वलतम साधकों मे से है तथा अपनी अनुभूति को वाणी देने के लिए वागर्थ की बड़ी सिद्ध प्रतिपत्ति इनमे दृष्टिगोचर होती है $।

(३९) 'नृत्य राघव मिलन *' भी रामसखे की एक परम सशक्त रचना है। इसका सर्जन चैत्र शुक्ल तृतीया सवत् १८०४ को हुआ। सब रसो के बीजों का वपन इस ग्रथ में साधक रामसखे ने किया है। इस ग्रंथ का कलेवर १५० दोहो, १५६ चौपाइयो तथा २० कवित्तों से संघटित किया गया है। इसमे भक्ति का स्वरूप, शरणागत धर्म, नाम, रूप, गुण, प्रभाव, धाम, परत्व, अवध प्रमोदवन, माधुर्य लीला रामावरण, अवधावरण जीव-ईश्वर-सम्बन्ध, नर्म सखाओं के रहस्य, रसिक साधको के लक्षण तथा रसिकों की अनन्य रीति इत्यादि प्रस्तुत किये गये है§। चित्त सन्तोष का महाधन, रघुवर लीला मे मग्नता, अनन्य रसिको से मिलने का लोभ और उनकी सेवा मे मन को लीन कर देना, सखा या सखी भाव की आसक्ति, मधुर-चरित्र-गान, सर्व कर्म त्याग, रघुपति छवि की आसक्ति, राम की अनन्य भक्ति, जागतिक सम्बन्धो का विसर्जन, जगत्-स्रष्टा के रूप मे राम का ध्यान, समता की साधना, हर्ष-('शोक') राहित्य, ब्रह्मलोक को भी तृणवत् समझना, अरसिक नृप और रक दोनो का त्याग एक गुदडी का सहारा, तुलसीमाला ही आभूषण, श्रीराम को अर्पित किये हुए चदन का तीन ऊर्ध्व रेखाओं वाला तिलक, बीच की रेखा लाल उसके नीचे हल्दी का बिन्दु, तिलक के दोनों पार्श्वों मे भवो के ऊपर उठी हुई चन्दन की ललाट पर्यन्त महीन रेखाएँ, भुजाओं पर हल्दी मे डुबा कर छापी गयी धनुष बाण और राम नाम की मुद्राएं,

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३२२। † डायमड जुबली प्रेस, कानपुर मे सन् १८९९ मे मुद्रित। $ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३२२ से ३२७ तक। * प्रथम सस्करण की द्वितीयावृत्ति सन् १८९६ मे नवलकिशोर प्रेस लखनऊ म मुद्रित। एक सस्करण के प्रकाशक बबई के सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द। अप्रैल १८९७ मे लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे मुद्रित। § रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३२८।

शरीर पर पीत वस्त्र, कान मे रामषडक्षर मंत्र तथा इसी का औरों को उपदेश देना रामसखे के अनुसार रसिक का लक्षण है। उनके अनुसार रसिक को दयावान्, मधुरभाषी, त्यागी, विवेकी, रामनाम का अनन्यव्रती होना चाहिए। उन्होंने कहा है कि रसिक को कोपीन और कमडल धारण करना चाहिए तथा प्रमोदवन के कुजो मे विचरण करते रहना चाहिए। राघव की रासलीला का वर्णन करते हुए जो रसिक माधुर्य के आवेश मे डूब जाए, रास लीला के ग्रथों मे ही मन को मग्न किये रहे और प्रेम मे लीन हो कर औरों को भी रासलीला का मधुर वर्णन सुनाए, जो अहर्निश मनसा, वाचा, कर्मणा रासलीला के अलौकिक रस का ही अनुभव करता रहे राम और सीता के रूपों को देख कर निछावर हो जाए वही सब रसो के बीच रास-रस के शृगार को अनुभव करने वाला सच्चा रसिक, रामसखे के अनुसार है। रामसखे के अनुसार ज्ञान और वैराग्य के सूर्य का उदय होने पर उसी प्रकाश मे भक्ति का दर्शन होता है और रघुपति का मिलन-सुख प्राप्त होता है‡।

जो लोग राम के रूप के बिना और कुछ नही देखते, छबि की आसक्ति मे डूबे हुए एक पल के लिए भी राघव से नही बिछुडते, सुन्दर नर-नारियों को देख कर राम-सीता के अपार वियोग मे डूब जाते है, राजकुमारों के सुन्दर वेश मे घोड़ो पर सवार हो कर आते हुए राम को अपने ध्यान मे निरतर देखते रहते है, उन्ही को रामसखे अनन्य सुख के अनुरागी मानते है†।

कोयल की कूक और मयूरो के नर्तन जिनके मन को राम की छवि के सरोवर का मीन बना देते है, अरुण और पीत रगों को देख कर जो लोग विकार रहित हो कर 'अवध-विहारी' की स्मृति मे खो जाते है; नग-जटित नूपुरो को देख कर 'अवध-लाल' का रूप जिनके मन मे चुभ जाता है, सिन्धु, सुगन्ध और राग की ध्वनि का साक्षात्कार करके जो लोग अपने नयनों मे राम को बिठा लेते है, सावन के घन, बिजली की तड़प और शरद के चंद्र से जिनका चित्त रघुनन्दन के विरह मे सराबोर हो जाता है, फूलों और वसन्त की शोभा को देख कर जिनके हृदय मे राम प्रेम की मजरियाँ झूम उठती है, वे ही राम-सखे के अनुसार राम के प्रगाढ प्रेम के अनन्य रसिक है$।

राम सखे के अनुसार ऐसा अनन्य रसिक किसी भी योनि में हो, सुरपूज्य होता है। देवता भी उसके उच्छिष्ट की कामना करते है। ऐसे रसिकों के उच्छिष्ट के प्रताप से बिना जप-तप के ही जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। रामसखे जी के अनुसार वह शबरी की अनन्य रसिकता का ही प्रभाव था, जिसकी कोमलता से बाध्य हो कर रघुनाथ राम ने मुनियों का साथ छोड़ कर उसके जूठे फल खा लिये*।

राम के नर्म सखाओं का वर्णन करते हुए रामसखे जी ने कहा है कि नृप कुमार राम के चरित जिन्हें भाते हैं वे ही उनके नर्मसखा हो सकते है। रास-माधुरी मे डूबा हुआ मन ही नर्म-सखा पद की प्राप्ति कर सकता है। ये नर्म-सखा राम-रस में छक कर प्रमोद

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३३०–३३१। † वही, पृष्ठ ३३१।
$ वही, पृष्ठ ३३१–३२। * वही, पृष्ठ ३३२।

वन में रस-छन्दों की सृष्टि करते रहते हैं। जीव और ईश्वर दोनों को अपने ही भीत पा कर ये नित्य 'द्वैतमत' की ही चर्चा और उसी का समर्थन करते रहते है ‡ ।

इस तरह विश्व की प्रत्येक सुन्दर वस्तु मे राम के सौदर्य का दर्शन कराने वाला, रामसखे का 'नृत्य राघव मिलन' एक सशक्त, चुस्त, प्राजल तथा कला संवलित ग्रथ है। रसिक सप्रदाय का यह परम मान्य ग्रथ रामसखे की कीर्ति को अमर बनाये रखने के लिए पर्याप्त है।

(४०) 'सीतायन' रामप्रियाशरण 'प्रेमकली' जी का ग्रथ है। इसके दो काड प्रकाशित है—पहला बालकाड और दूसरा मधुर मालकाड †। रहस्य प्रमोदवन, श्री जानकी-घाट, अयोध्या, मे सीतायन की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है। इस प्रति मे बालकाड मधुरकांड, जयमालकाड, रसमालकाड, सुखमालकाड, रसालकाड और चन्द्रिकाकाड के इन सात खडों का विस्तार छह सौ चौतीस पृष्ठो मे है $ ।

प्रेमकली जी के सीतायन की सीता अनुपम सुन्दरी तथा तीस मजरियों के द्वारा सेवित होती रहती है। उसका पार वेद भी नहीं पाते, वे नेति नेति कह कर रह जाते हैं और प्रफुल्लित चित्त से जनक के भाग्य को सराहते हैं। सीता के छमछम छननन' बजते हुए नूपुरों की ध्वनि मे प्रेमकली जी का मन मग्न हो गया है। चार प्रकार की सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य और सालोक्य मुक्तियो का अवतार चार सुताओ के रूप मे जनक के घर मे हो गया है। रानियाँ जब इन रूपो को देखती है तब उन्हे जगत् भूल जाता है। प्रेमकली जी के अनुसार जिनके हृदय और आँखो मे ये चार कन्याएँ बस गयी है, उनके लिए ब्रह्मात्मक सुख नगण्य हो गया है। जिस सीता के अश से अमित रमा और रति उत्पन्न होती है, अमित उमा, शारदा और शची जिसके शरीर की काति से फूट-फूट कर प्रकट होती रहती है, वही सीता माता-पिता की भृकुटि के इशारे पर, उनकी इच्छा के अनुसार उनकी सेवा मे निरतर लगी रहती है * । मूल प्रकृति जिस सीता का अश है, जगत् जिसकी भृकुटि का विलास है, विधि, हरि और हर जिसके गुणो के सहारे सर्जन, पालन और सहार के कार्य करते रहते है, जिस सीता के चरणकमल के चिह्नों से अनत अवतार होते रहते है, मत्स्यावतार से ले कर समस्त अवतार जिसकी लीला के अग है, वही सीता जनक और सुनयना की गोदी मे समा गयी है और उनकी चुटकी के ताल पर नाच कर उन्हे रिझाता रहती है। वही अनत महिमामयी कभी अपना प्रतिबिम्ब देख कर नाचती है, कभी लडखडा कर गिर पडती है; क्योकि उसे अभी चलना नही आता। प्रेमकली की इसी सीता की राधा आह्लादिनी शक्ति है। यही सीता करोडों रतियों की रास-आचार्या है, इसी की शोभा से रूप, गुण और शील के अमित सौन्दर्य प्रकट होते रहते है, इसके विमल अगो को देख कर गौराग बाल रवि भी लज्जित हो जाता है, इसी ने नद-नदन के साथ गो लोक मे

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३३५। † प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद, बंबई वाले। प्रकाशन, सन् १८९७। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३३६। * वही, पृष्ठ ३३७।

विविध रासलीलाएँ की तथा ब्रजगोपियाँ, रमा, शारदा और शची सब इसी के अश मे उत्पन्न होती है। सीता का यही भव्यरूप प्रेमकली जी की उपासना का केन्द्र है ‡। 'कुँअरि-कुँअर' की इसी 'महाछवि' मे प्रेमकली ने अपने मन को खो दिया है। प्रेमकली जी के श्रीराम परमपुरुष है। सीता और उनमे अभेद सम्बन्ध है। प्रेमकली की सीता के शब्द 'हमते उनते नहि कछु भेदा। रूपभेद पुनि तत्त्व अभेदा' पिता जनक को इसी सत्य का परिचय देते है † ।

साकेत धाम का वर्णन भी सप्रदाय की मान्यताओ के आधार पर प्रकृति पार गोलोक के हृदय प्रदेश मे उसे अवस्थित करके किया गया है।

अनादि राम, अनादि सीता, अनादि अवध, अनादि मिथिला, अनादि जनक, अनादि दशरथ तथा अनादि लीला के ध्यान मे प्रेमकली जी मग्न रहते थे। उनके पररूप सीता-राम, भक्तो के साथ विहार करते रहते है। वे श्याम गौर युगल, भक्तों के आधार और शरण है। प्रेमकली जी की 'सिया उर्मिला', 'नेह' और 'प्रेम' है। वे नियम पूर्वक आठों याम एक साथ रहती है। इस नियम का व्यतिक्रम नही होता $ ।

श्री काष्ठजिह्वा स्वामी के भी कुछ ग्रथ है, जिनका रसिकोपासना से सम्बन्ध है। वे है—श्री जानकीमगल श्री राममगल, भूषण रहस्य, हनुमत बिन्दु, श्यामलगन, श्यामसुधा, जानकी बिन्दु तथा कृष्ण सहस्र परिचर्या इत्यादि। इन नामो से पता चलता है कि रामावत और कृष्णावत सप्रदाय के महात्माओं ने अपरिहार्य रूप से राम और कृष्ण की अभेदोपासना की थी * ।

(४१) 'वृहद् उपासना रहस्य §' प्रेमलता जी की सर्जना है। इसमे भी रसिक सप्रदाय की सब मान्यताएँ बडे मधुर और सशक्त ढग से प्रस्तुत की गयी है। यह ग्रथ बडा सारगर्भित और उपासना के परमोच्च और परमगुह्य मर्म को स्पर्श करता है। इसमें भी नाम, रूप, धाम, उपासक, उपासना, पचसस्कार, सम्बन्ध महत्त्व, रासकुज और गुह्य प्रसगों पर बडी मार्मिक बाते कही गयी है। प्रेमलता जी ने सूचित किया है कि हनुमान, चारुशिला सखी के रूप में तथा शिव सुशीला सखी के रूप मे भगवान् राम की उपासना करते है। बाहर से व्यक्ततः दास और सखा भाव से तथा अन्तर्हृदय से पत्नीभाव से ये दोनो भक्त उपासना करते है।

रूप प्रसग मे भी बड़ी मर्म की बाते प्रेमलता जी ने अवतरित की है। राम ही अकेला पुरुष है, बाकी सब शरीरधारी नारी है। सब मे वही राम रमण करता है, इसीलिए उसे आत्माराम कहते है। हम सब लोग सीता की शक्ति है। इसीलिए हम सबके पति श्रीराम ही हैं। अपने को पुरुष मानना ही भ्रम है। सबके भीतर सीता की ही शक्ति समायी हुई है। प्रेमलता जी के अनुसार इस तरह का विवेक जिसे प्राप्त हो गया हो वही

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३३७। † वही, पृष्ठ ३३८। $ वही, पृष्ठ ३३९। * वही, पृष्ठ ३३९। § वही, पृष्ठ ३४०।

आत्मज्ञानी है। ज्ञान की इस अवतारणा को अनुभव कर लेने के बाद रसिक संप्रदाय की उपासना का रहस्य समझ मे आ जाता है तथा रसिकोपासना मे अनौचित्य का लेश भी नही दिखाई देता।

रसिकोपासना का रहस्य समझाते हुए प्रेमलता जी ने कहा है—विश्व ही विलास निकुज है। इसमे जो यथार्थ नाटक हो रहा है वह बड़ा मोहक है। इसके नित्य और अनित्य प्रसार के बीच मे प्रत्येक क्षण मे नवीनता है। सृष्टि और विनाश, प्रभात और सध्या इस रंगमच पर प्रत्येक क्षण मे होते रहते हैं। सीता ने अपनी शक्ति से विद्यामाया और अविद्या माया की सृष्टि की। यह केवल लीला के लिए ही हुआ ‡।

अविद्यामाया नराकार और नारीरूप मोहक जड वन के रूप में विस्तृत हो गयी। इन नर-नारियो मे कोई भेद नही। ये सब रूप जड अविद्या माया के ही विस्तार हैं। इसी मोहक जड वन के विस्तार मे प्रविष्ट हो कर विद्यामाया अविद्या के आवरण में विलीन हो गयी—अपने को भूल गयी। जडता के साथ खो कर उसने अपने चैतन्य को भी खो दिया। जडता की रूप-सीमा के भीतर बद्ध हो कर उसका सीमित अह जड माया के जाल मे फँस गया। विवश हो कर मोहमद जन्य अपने कर्मो का फल वह भोगने लगा। यह विद्यामाया भाग्य से कभी जब जडता के ऊपर उठती है तब शक्ति रूपिणी सीता को सन्मुख पा कर उसी का भजन कर मुक्त हो जाती है। अविद्या-ग्रस्त अहकार सीमित हो कर सीता के अनन्त चरणो के ध्यान से विमुख हो स्वर्ग और नरक की शृखलाओं में बारी-बारी से जकडा जाता है और जन्म-मृत्यु के चक्र पर घूमता रहता है। इसी सर्व-शक्तिमती, सर्वेश्वरी, जनरक्षिका, जनसुखदात्री, समर्था, आह्लादिनी, शक्ति-शील-गुण की खान, स्वतन्त्र, सकल-घट-वासिनी सीता के चरणों के ध्यान मे प्रेमलता जी मग्न है†।

प्रेमलता जी की सीता राम ब्रह्म के प्राणों का आधार है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपने पुरुष भाव को अज्ञान समझ कर नारी भाव से सीता की सखी बन कर उसके चरणों की सेवा करते है तथा पुरुष भाव के अज्ञान के लिए सीता से क्षमा याचना करते है। यही सीता, रामरूप हो कर प्रकट होती है और युगल रूप से विहार कर जगत् के लिए आदर्श की सृष्टि कर जाती है। उसमें और राम में अनेक सम्बन्ध हैं। यही अनादि सीता-राम 'जनक दुलारी' और 'दशरथ सुत' हो कर प्रकट होते हैं। इसीलिए इन सशक्त युगल-चरणों मे 'प्रेमलता' ने अपने को बाँध दिया है§।

प्रेमलता जी के द्वारा प्रस्तुत किया गया साकेत धाम का प्रसंग भी बड़ा सारगर्भित और मार्मिक है। गोलोक के हृदय मे स्थित उस धाम में कर्म, धर्म, तप, ध्यान, योग, यज्ञ, जप, ज्ञान, पूजा, पाठ, जादू, टोना, तीर्थ, व्रत, मौन साधना, जन्म, मरण, रोग, वियोग, पाप, पुण्य, अहकार, काम, प्राकृत विषयों के विहार, हठ, शठता, अविचार, रोष, कपट, दभ, पाखंड, दोष, नानामत, शठता, वेश, राग, विराग, ईर्ष्या, द्वेष, जाति, वर्ण, आश्रम,

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३४१। † वही, पृष्ठ ३४१। § वही, पृष्ठ ३४२–३४३।

वेद, पुराण, चन्द्र, सूर्य, पंचतत्त्व, दुःख तथा द्वंद्व का नाम तक नहीं है। वह केवल 'सिय-सिय-वर-केलि-प्रधान' लोक है। वह स्वतः उद्भासित अनिर्वचनीय आनद का अनुपम सौन्दर्य युक्त धाम है‡।

प्रेमलता जी की भावना का युगलोपासक वही है जिसके भीतर धाम के उपर्युक्त सब लक्षण हों। युगलोपासक, मन, कर्म और वाणी के सब विकारों को छोड़ कर 'सियराम' की उपासना करता है। इन उपासकों मे भरत 'चन्द्रकला' सखी तथा लक्ष्मण 'लक्ष्मणा' सखी के रूप मे उपासना करते है। सखी भाव से 'जनक दुलारी' की सेवा करने से, प्रेमलता जी के अनुसार, राम-पति की उपलब्धि होती है†।

प्रेमलता जी के अनुसार भजन, भाव, रति, भक्ति और ध्यान, उपासक के पाँच सस्कार है। इनसे संस्कृत हो कर वह राम-पति को प्राप्त करता है। वात्सल्य, शृंगार, शान्त, सख्य और दास्य भावो की परिणति रसिक भाव में ही, प्रेमलता जी के अनुसार होती है$।

प्रेमलता जी ने बड़ी रोचक और सशक्त-मधुर शैली मे विश्व-कुज के भीतर विश्व रूप सीता राम के शृंगार का दर्शन किया है और उस विराट् रासलीला की तरफ सब लोगों के मन को आकर्षित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

(४१) 'रघुराज विलास*' महाराजा रघुराज सिह का ग्रथ है। इस ग्रंथ में राम और कृष्ण के सावन के झूलोत्सव तथा अन्य विहार-विलासों का वर्णन है। यह ग्रथ भी हृदय प्रसूत है और प्रकृतिमाधुरी का नैसर्गिक शोभा-सुषम सभार है। प्रकृति के परिवर्तित होते हुए रगीन अंचलो पर सीता राम के विलास की बड़ी मधुर झाँकियाँ इस ग्रथ मे मिलती है। मानव और मनुष्येतर प्रकृति की उभय सुषमाएँ इस ग्रथ मे अनुपम सौन्दर्य के शृंगार से मूर्तिमती हो गयी है। इस कवि की कल्पना की जनकपुर की ललनाएँ रघुवर राम के अनत सौन्दर्य का पान कर रही हैं और उनके साथ कवि का हृदय भी उस भाव-सौन्दर्य की समाधि का अधिकारी हो गया है। 'जनक कशोरी-अवध किशोर' उसके लिए 'सरस सनेह सरस सर-सावन' हो गये है। सावन का महीना युगल किशोरी-किशोर को इसी रस मे डुबा कर कवि को भी ब्रह्मानन्द में डुबा जाता है। रघुराज सिह के 'रघुबर' की मनोहर आँखें जिस पर एक बार भी पड़ गयी वह अपने को भूल जाता है। इस 'सलोने सियावर' की शोभा पर निछावर हो कर जनकपुर की ललनाएँ 'फ़क़ीरनी' बन गयी है। इस तरह पावस और वसन्त मे 'मध्य सखि मंगलहि निरखि रघुनन्दनहिं बारहिं बार रघुराज बलिहार' हो गये हैं। इस माधुर्य का वर्णन करते हुए रघुराजसिंह का कोमल-कान्त हृदय जयदेव की कोमलकान्त पदावली की रस-धारा को आत्मसात् करके 'रघुवर विलास मे' निर्बाध प्रवाहित हो रहा है§।

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३४३। † वही, पृष्ठ ३४६। $ वही। * नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में मुद्रित। मुद्रण वर्ष सन् १९२४। § रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक।

(४२) 'भजन रत्नावली ‡' के रचयिता अयोध्या के पंडित रामनारायण दास है। इस भजन रत्नकोष मे भक्त हृदय की अनुपम निधियाँ अपने सहज प्रकाश में आलोकित हो रही है। 'जनक-राजलाडिली' की ललित शोभा तथा 'घनश्याम राम' के 'सुघट सुशील' युक्त सौन्दर्यावरण का साक्षात्कार करके भक्त रामनारायण धन्य हो गये हैं। अनत सौन्दर्य की अनुभूति मे समाधिस्थ हो कर वह भक्त हृदय 'सिया रघुबर' के चरणों में लीन हो गया है। यह ग्रथ अपनी पवित्र साधना-दृष्टि के कारण रसिकोपासकों की रस-साधना का एक विशिष्ट केन्द्र-बिन्दु बन गया है†।

(४३) 'शृगार प्रदीप $' श्री हरिहर प्रसाद की रचना है। यह केवल ११६ पदों के शरीर मे उपलब्ध होने वाला ग्रथ दोहे और पदों का मणिप्रबाल हार है। हरिहर प्रसाद ने भी 'श्यामल गौर किशोर बयस दोउ' युगल 'सियसियबल्लभ' को अपने 'जानहु की जान' बना लिया है। हरिहर प्रसाद के अनुसार इस अनन्य युगल अनंत के 'रहस्य-सुख-रस को' देवताओं की मति भी नही पहचान सकती। वेद और पुराण भी उसकी गहराई और व्यापकता को खोज-खोज कर थक जाते है। हरिहर प्रसाद के राम का स्मरण 'विधि और हरि-हर' भी 'सब काम त्याग' कर करते रहते है; पर वे ही राम, सीता के नाम का स्मरण निरन्तर करते रहते हैं। उनकी यह सीता 'रानिन मे महारानी' है। उसे इन्द्राणी और ब्रह्माणी भी कर जोड़ कर एकटक देखती रहती है। पार्वती उसके लिए पान लगाती है और रमा पान खिलाती है। आठों सिद्धियाँ कर जोड़ उसके सामने खड़ी रहती हैं। नव निधियाँ उसके हाथों बिक गयी है। करोड़ों ब्रह्माडों का ऐश्वर्य उसके रोम-रोम मे उलझा हुआ है। जो माया एक ही घाट पर सबको पानी पिलाती है वह भी बार-बार उसका सम्मान करके उसकी करुणा की भिक्षा चाहती है। वह घट-घट व्यापिनी है तथा उसके बिना पत्ता भी नही हिल सकता। जगत् के प्राणों मे निवास करने वाली वही रामप्रिया संत जनों की इष्ट देवता है। इस तरह की भव्य भावना सीता की अनंत शक्ति की हरिहर प्रसाद ने की है। हरिहर प्रसाद की सौन्दर्य भावना ने 'सिय रघुबर' को अतंत सौन्दर्य के परिवेश के बीच मे देखा है। उनके अनुसार रति और रतिपति के अभिमान को भग करने वाले 'सिय-सियवल्लभ' का भक्त काम के आक्रमण से कैसे प्रभावित हो सकता है। हरिहर प्रसाद के अनुसार अनत शील, शक्ति और सौन्दर्यवती सीता और अनत शक्ति, शील और सौन्दर्य युक्त राम के योग से ही राम की रामता का निर्माण होता है; इसीलिए उसके समक्ष कलिकाल का झकोरा टिक ही नही सकता। राम चरण के अनुसार सोलहों शृगारों की शोभा सीता के निसर्ग सुन्दर अंगों में स्वत: निवास करती है। उसके निसर्ग सुरभित अंगों को देख कर गध लगाने वाली दंग रह जाती है। सीता के नीलकमल के समान नेत्रों को देख कर अजन लगाने वाली अंजन लगाना भूल जाती है। 'पिय के सनेह

‡ प्रकाशक सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले। प्रकाशन तिथि दिसम्बर सन् १८९९।
† रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३५५ से ३५८ तक। $ नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, में सन् १८८६ में मुद्रित।

भरे सिय के नित चिक्कन कच' देख कर तेल लगाने वाली सखी को यह सदेह हो जाता है कि तेल लगा हुआ है। पान की लाली से अधिक लाली सखियों को सीता के ओठों मे दिखाई पड़ती है। सीता के चरणों की 'लहलह लहकत लाली' को देख कर नाउन महावर लिए हुए भी नही लगा पाती। वह सोचती है कि फिर वह उस नैसर्गिक लाली की शोभा को न देख सकेगी। सीता के चरणों को धोने की आवश्यकता नही है। वे पावन चरण स्वतः ही गगा तरग के समान उज्ज्वल है। वे केवल जनकी पवित्र उमंगों से धोये जा सकते है। इसी सुन्दर जोड़ी पर हरिहर प्रसाद ने अपने 'तन-धन-प्राण' निछावर कर दिये है। उन्होंने कहा है—"सांख्य योग वेदात को छाँड़ि छाँड़ि सब जग। चरण शरण सिय ह्वै रहहु करि मन माँह उमग।" इस तरह हरिहर प्रसाद के मन की उमंगे युगल किशोर के अनत सौदर्य की बड़ी कोमल भावना की समाधि प्राप्त कर सकी है‡।

(४४) 'सियाराम चरण चंद्रिका†' के स्रष्टा कविराज लछिमन है। युगल चरण के माहात्म्य का बड़ा भव्य साक्षात्कार इस ग्रथ मे हुआ है। अनत विश्व अपने अनंत रूपों से उन चरणों का झुक कर अभिषेक करता रहता है। सीता राम के धवलकांति से परिवेष्टित चरणकमलों पर श्वेत पद्मासना सरस्वती का कविराज को दर्शन होता है। वे सुरंग चरण-कमल उन्हे योग बल की कला से आलोकित तथा उनके तलवे भुवन के भूषण की तरह दिखाई पड़ते है। अमृत और गगा के आवास उन चरणों के नखो मे कविराज को मंजु मोती की लड़ियो की तरल तरगें दिखाई देती है। जो प्रभा कविराज को 'रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्बुज' पर दिखाई देती है, वह दान, कीर्ति, विद्युत् के घन भार, अपार महासागर, अनत रत्नराशि तथा पारस के पर्वत में भी नही दिखाई देती। उन चरणकमलों पर देव वधूटियाँ लाजाञ्जलियों की वर्षा करती है, किन्नरियाँ आनदमग्न हो कर उन चरणों की शोभा का मगलगान करती है, शची और शारदा उन चरणकमलों का पराग अपने मस्तकों पर लगाती है, नागपत्नियाँ, अन्य देवियाँ तथा दिगगनाएँ उन चरणकमलो मे झुक कर प्रणाम करती है, श्रद्धा से उन चरणों में लीन हो जाती है और अभयवर प्राप्त करती हैं। भक्तों के प्राण और जगत् के आधार ये चरणकमल कविराज को अपनी भक्ति मे तन्मय कर चुके है$।

(४५) 'रामचंद्र विलास*' नवलसिह 'श्रीशरण' युगल अली की सर्जना है। इसमे बारह अध्याय है। उनमे राम की बारात से ले कर अयोध्या आगमन और पुनः मिथिला गमन तक की घटनाएँ बड़े विलास संभार के साथ वर्णित है। रसभोगी युगल 'पिय प्यारी' को युगल अली ने भी अपनी 'दृग निधि' बना लिया है। सीता के अगों की सुषमा भी युगल अली के 'हिय-नैन' में 'निसि-वासर सनी' हुई है§।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३५८ से ३६१ तक। † जैन प्रेस लखनऊ में मार्च सन् १८९८ मे मुद्रित। प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद, बबई वाले। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३६२। * संवत् १९०७ मे झाँसी मे लिखित। श्री हनुमत् निवास, अयोध्या के महात्मा रामकिशोर शरण के निजी पुस्तकालय मे एक खंडित हस्तलिखित प्रति सुरक्षित। § रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३६३-३६४।

(४६) 'भावनामृत कादम्बिनी ‡' युगल अली की रचना है। इस ग्रथ मे केवल पचपन पन्ने है। 'सिय-लाल' के रस भरे शृगार का अपने हृदय की आँखों से साक्षात्कार करके युगल मंजरी जी का हृदय भी विवश हो गया है। प्रिय को न देखने के कारण युगल अली जी का जीवन भार हो गया है। वे प्रिय के 'अलसाते सुदृग' और 'मदन मुभाते बैन' देखना और सुनना चाहते है। उनके 'रसिक हीय दृग सग, यार झूम' कर सदा के लिए बस गये है। उस दिन की शोभा, युगल अली जी को कभी नही भूलती, जिसने दण्डकारण्य के मुनिजनों को भी स्त्री बनने को बाध्य किया। 'श्री नृपराज कुमार' के 'दीरघ दृग' युगल अली जी को 'घायल' कर चुके है। उनकी जगन्मोहिनी शोभा को वे कभी नही भूलते †।

(४७) 'समय-रस-वर्धिनी $' सियाअलीकृत कवित्त सवैयों मे कुल पचानबे पन्नो का ग्रथ है। इसमे नाम माहात्म्य, मिथिला माहात्म्य और सीता-सौन्दर्य का वर्णन है *।

(४८) 'नित्य रासलीला §' भी सिया अली की रचना है। कवित्त दोहे और चौपाइयो मे लिखे हुए इस ग्रथ मे कुल इकतालीस पन्ने है। सिया अली जी ने भी केलिरस मे डूबे हुए रंगीले सिया-लाल की छबि को अपने हृदय पर धारण कर लिया है। सीताराम को अपने नयनो मे विठा कर सियाअली ने उनके अनत सुन्दर शृगार का दर्शन किया है। यह ग्रथ ज्येष्ठ बदी १, सवत् १९२९ मे लिखा गया।

(४९) श्याम सखे की पदावली चार सौ पैंतालीस पदों का एक बृहत् संग्रह है ×। रामायण की सम्पूर्ण घटनाएँ समस्त राग-रागिनियों मे इस ग्रथ मे आबद्ध है। इस रसिक भक्त ने भी 'सिय राम नवीना' को अपने दृगों मे बसा लिया है। वह घनश्याम राम की बाँकी चितवनों पर बिना मोल बिक गया है। श्याम सखे का ध्यान भी सीता और सीता-पति के शृगार-रहस्य की अनतता पर टिका हुआ है—वह अननता जिसे जानने के अधिकारी शिव और सनकादि ही हो सकते है। गेद खेलने के समय की युगल माधुरी को अपने हृदय की आँखों से देख कर श्याम सखे यह अभिलाषा करते है कि वह युगलमूर्ति तनिक उनकी ओर भी देख कर मुसकाये।

सगुणोपासना का यह रसिक साधक निर्गुणोपासना के भी रसिक गीत गाता है। नैहर के पाँचों यार बैरी हो गये हैं। नायिका ससुराल में जा कर सैंया के साथ उनकी प्यारी बन कर रहना चाहती है। पचीसों सखियों ने साथ छोड दिया, पिया-पिया की रट लगी हुई है। सुहाग तो मिल ही गया है। इस बार ससुराल जा कर उसे फिर नैहर की जतसारी मे आटा न पीसना पडेगा।

नायिका से 'सैंया की अटरिया' पर चढ़ा नहीं जाता। दस और पाँच थान का उसका लहँगा है। उसमे बीस और पाँच लड़ियाँ मोतियो की लगी हुई है। पिया की अटारी

---

‡ हस्तलिखित प्रति हनुमत् निवास, अयोध्या मे सुरक्षित। † रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३६४। $ हस्तलिखित प्रति हनुमत् निवास, अयोध्या, मे प्राप्त। * रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३६५। § हनुमत् निवास, अयोध्या मे प्राप्त। × सन् १९३८ ईस्वी मे प्रकाशित। प्रकाशक; सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द।

बडी ऊँची है। उसकी कमर कसक उठती है। पर उसके हृदय मे रस की विवशता और उल्लास है वह सैयाँ से यारी तो जोड़ के ही रहेगी।

नायिका कहती है—अटारी पर कैसे चढ़ूँ। तिमजले पर लाल की अटारी है, सैयाँ की सेज पर जाने मे लज्जा भी है। पाँच सखियाँ बैर पडी है। उनको देख कर भय लगता है। मैं अभी बारी सुहागिनी हूँ। खडी-खड़ी पछता रही हूँ।

इस तरह पच महाभूत तथा साख्य के पच्चीस तत्त्व, दस इन्द्रियाँ, त्रिलोक की दुर्गमता इत्यादि आत्मा के पथ के बाधक है। परमात्मा से मिलने नही देते। पच महाभूत, पच ज्ञानेन्द्रियाॅ, पच कर्मेन्द्रियाॅ, पच तन्मात्राएँ, महत्, अङ्कार, मन, बुद्धि और चैतन्य ये सब त्रिलोक की ओर ही जीव को खीचते है। त्रिलोकातीत के तिमंजले पर नही जाने देते इसी से आत्मा अपने प्रिय परमात्मा से नहीं मिल पाती।

अपनी रसिक प्रक्रिया से निर्गुन उपासना के प्रेमगीतों को बड़े सरस ढग से श्याम सखे जी ने गाया है‡।

(५०) 'श्री सीताराम शृगार रस†' जानकी घाट, अयोध्या के महन्त महावीर दास, उपनाम जन महाराजदास की कृति है। 'महारामायण' के आधार पर इस लघुकाय ग्रथ का प्रणयन दोहे और चौपाइयों मे हुआ है। इसमे युगल दम्पति का परत्व, चरण-चिह्न, दिव्य साकेत धाम, दिव्य लीला विहार और प्रणय निवेदन अकित है। महाराज दास की छन्द· साधना सिद्ध हो चुकी है। सधे हुए छन्दो के निर्बाध प्रवाह मे भाषा बड़ी शक्तिमती बन पड़ी है।

जिस तरह कामियों को नारी, प्यासे को जल, भौरों को फूल, कमल को सूर्य, मुनियों को ज्ञान, रकों को निधि, कोयल को वसत, माताओ को पुत्र, सम्बन्धियों को गोत्र-प्रेम, हस को मानस, पतग को दीपक, कुरग को राग, भुजग को मणि, पावक को घृतं, नीर को क्षीर, प्राण-को शरीर, पलक को नयन, मोर को घन-रव, चातक को स्वाति-जल, पातकी को पाप, सती को शिव, रति को कामदेव प्रिय होता है, उसी तरह जन महाराज को 'सिया-कोसिला कुमार प्रिय है' $।

(५१) 'रामप्रेम मंजरी *' भी महाराज दास के पदों का सग्रह है। गुरु हुजूरी जी की वन्दना, गोस्वामी जी की वन्दना, सरयू की वन्दना, अन्तर्गृही की परिक्रमा, सरयू की बधाई, हनुमान् जन्म की बधाई, सीताराम के युगल सौन्दर्य का ध्यान तथा लीला-रस इस ग्रंथ के विषय है।

इस ग्रथ के पदों मे भी वही प्रेम की तन्मयता व्यक्त हुई है। कवि के लिए 'सिया छबि, नयना सुखकारी' है। उसके रूप को देख कर रति भी मन मार कर बैठ जाती है।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३६८ से ३७४ तक। † राजपाली प्रेस, मुट्ठीगंज इलाहाबाद, से सन् १९१५ में मुद्रित। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३७४-३७५। * देशोपकारक यत्रालय मे सन् १९०७ मे मुद्रित।

प्रेम से सिक्त सीताराम की युगलमाधुरी को कवि ने अपने प्राणो और नयनों मे बिठा लिया है। युगल छवि का नख सिख दर्शन पा कर उसके ज्ञान का नयन खुल गया है। युगल छबि के चितवन से उसके हृदय मे प्रेमामृत भर गया है। उसके हृदय के दो ही फल है—राम और सीता। वे दोनों प्रेमरस मे पक कर उसके हृदय मे आनद बन कर छा गये है। 'अलबेले कुँवरों' की 'परम प्रकाशित छबि' उसके नयनों के लिए 'मेला' बन गयी है। इस रंग से उसके नयन भर गये है‡।

(५२) 'युगलोत्कठ प्रकाशिका†' जयपुर चन्देली के श्री सीतारामशरण 'शुभशीला' जी की रचना है। इसमें आरभ में दोहे और बाद में गेय पद है। शुभशीला जी ने 'परिकरि युत श्री स्वामिनी' की वन्दना की है। 'पद पंकज देखे बिना' उनके क्षण-पल कल्प के समान वीतते है और 'श्री स्वामिनी' जी को सीतावर के साथ देखना चाहते हैं। 'नृपनन्दिनी' के दर्शन के बिना उनका चित्त व्याकुल रहता है तनिक भी नही सम्हलता। अपने पुरुपत्व को भूल कर वे सीता की सखी 'शुभ शीला' हो गये है। सीता को देखे बिना वे उदास हो गये है 'असन बसन कुल कान' सब उन्होंने 'तज' दिया है। उनके विरह की आग बढ गयी है। तप्त उच्छ्वास शरीर और आत्मा को तपा रहे है। 'नयन-नीर टपकते' हुए उस विरहाग्नि के लिए घी का काम कर रहा है। विरहाग्नि बढती चली जा रही है। "को जानै यह पीर।" वे घर मे, बाहर, वनों मे फिरते है। चित्त कही नही शान्त होता। जी घबराता है। दुख नहीं सहा जाता। घर के एकान्त स्थान मे नयन बन्द करके बैठ जाते है। रूप-दर्शन होने लगता है। नयन खुलते ही वह दर्शन समाप्त हो जाता है। विरह का विलाप फिर जारी। चित्त को सहारा देने के लिए भगवान् की लीला करते है। 'प्रिय-प्रीतम की कान्ति' हृदय को कुछ शीतल कर देती है। फिर भी चित नही मानता। विरह-ज्वाला जोर पकड़ लेती है। 'श्यामल-गौर किशोर' का दर्शन 'घन-विजुली' की तरह प्रत्यक्ष हो उठता है। प्रिय के बदन की माधुरी गरज उठती है। वचनामृत युक्त वह माधुरी हृदय मे पीड़ा उत्पन्न कर देती है। मिलन का नीर बरसने लगे तो विरह की आग बुझे। "हे बिधु-बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम! कब दिखाइहो बिधु-बदन, पद-पकज अभिराम।" आँखे चकोर हो गयी है। मन भ्रमर हो गया है। रसना नाम रूपी मेघ के लिए चातक बन गयी है। "कब देखे प्रीतम-प्रिया, सुख बिलास के धाम।" क्या वह दिन होगा, जब 'प्रिय-प्रीतम' को एक साथ भाव-सहित उसी तरह देखूँगा जिस तरह चकोर चन्द्रमा को देखता है। 'पद-पकज की माधुरी' मे 'मन मधुकर' हो कर लीन हो गया है। मिलन के बिना व्याकुल रहता है। विरह की व्यथा से शरीर क्षीण हो गया है। "हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम। चातक सम गति हो रही, सुनिए करुणाधाम॥" दृगो में

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३७५ से ३७७ तक। † रहस्य प्रमोद भवन, जयपुर मंदिर, अयोध्या से दूसरी बार सवत् १९९४ मे प्रकाशित। प्रकाशक—राजकिशोरीवर शरण—परमानन्द। प्रथम, संस्करण के प्रकाशक, सीतारामशरण भगवान प्रसाद। प्रथम सस्करण का शीर्षक 'रसिक उर हार'।

'छबीली छबि' बस गयी है—समुद्र के जल मे मीन की तरह । तुम परम प्रवीण हो। उस छवि को विलग न करना। हे रघुवीर ! जिस तरह 'प्रीतम नीर' से बिछुड़ कर मीन के हृदय मे पीडा होती है, उसी तरह की मेरी दशा देख कर मुझ पर कृपा करे। जगत् मे मधुरता को देखते ही, मुन्दरियो और सुन्दरों के रूपों के देखते ही तुम्हारे 'अनूप रूप' को देखने की भूख जाग पडती है और बिना देखे तन व्याकुल हो जाता है। अपना 'अनूप रूप' दिखा कर नयनों को सनाथ कीजिए। रहते हुए भी आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। प्रिया को अपना साथ दीजिए। 'कोकिल की मृदु कुहुक' सुन कर हृदय मे हूक उठती है। सिसक-सिसक कर हाथ मीजती रहती हूँ। चूक क्षमा कर दर्शन दीजिए। हम तो सब अवगुणों से भरी हुई है और तुम गुणों की खान हो। अपने गुणो की माला हमारे हृदय पर डाल कर आप अपने ही गुणों से रीझिए ‡।

आध्यात्मिक विरह की व्यथा हृदय के बन्धन खोल कर सरलवाणी के परिधान में 'शुभशीला' जी की लेखनी मे उतर आयी है। वे कहते है—मयूरी को नाचते देख कर मुझे तुम्हारा वियोग सताने लगता है। केकी का नीलकठ और उसके तन की नील 'सुद्युति' (सुन्दर कान्ति) देख कर मुझे तुम्हारे सुन्दर श्याम भुजों का भ्रम हो जाता है। 'हे नृप राज किशोर तुम यह भ्रम कब' मिटाओगे। मेरे नयन तुम युगल 'गौर श्याम चित चोर' को परस्पर गल-बाही दिये हुए कब देखेगे। जगत् मे हम 'नृप तनया' को 'प्राकृत राजकुमार' के साथ देखते है। इस लौकिक व्यवहार की तरह आप हमसे कभी मिलेंगे ?

आध्यात्मिक व्यथा के कोमल ताप मे तपते हुए 'शुभ शीला' जी ने कहा है—सब जग अपने मित्रो के साथ दिन रैन सुख भोग रहा है; पर हमको प्रतिदिन बढता हुआ दु ख ही मिलता है। 'छिनपल कबहुँ न चैन।' हे करुणाअयन सीते, हमसे एक भी प्रयत्न नहीं करते बनता, केवल तुम्हारे कृपा-कटाक्ष के लिए हमने चातक की-सी टेक कर ली है। मेरे जी की आशा के लिए प्रिय के साथ तुम्हारा दर्शन ही स्वाती की बूँद है। जब तक इस घट मे साँस है, तब तक क्या हमारी यह आशा आप कभी पूरी कर देंगी ? कृपा करके यह वरदान भी दीजिए कि जब तक इस तन में प्राण है, तब तक यह मन अभिमान को छोड़ कर 'प्राण नाथ' के साथ तुम्हारा नाम रटता रहे। चाहे चातक की रट घट जाए, पर मेरा 'नेह' न घटे। मैं अपने को तुम्हारे 'चरण-कमल-मकरंद' की भ्रमरी बना कर रखूँ।

'शुभ-शीला' जी कहते है—ज्यो-ज्यों तुम्हारा स्नेह बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों विरह मुझे अधिक से अधिक तपाता जा रहा है। तपे हुए सोने की तरह मेरी यह देह निर्मल होती जा रही है। ये काम, क्रोध, मद, लोभ जग से ही नेह करते है। तुम्हारे स्नेह के ये शत्रु अब मेरे शरीर को छू भी नही सकते †।

परम सुन्दर युगल मूर्ति के स्वर्गीय प्रेम की वर्षा का अपने हृदय मे अनुभव करके 'शुभ शीला' जी कहते है—तुम्हारी 'अरुण प्रीति' की 'छबि की घटा' मुझे अपने हृदय की अट्टालिका पर दिखलाई पड़ रही है। आँसुओं की झडी लग गयी है। मेरा रोम-रोम भीग

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३७८-३७९। † वही, पृष्ठ ३७९-३८०।

गया है। मै शिथिल हो गयी हूँ, चल नही सकती, शीतल श्वास का समीर मेरे शरीर को कँपा कर व्याकुल कर रहा है। हे रघुबीर, आप शीघ्र मिलिए।

'शुभ शीला' जी जब विविध प्रकार के नग जड़ित आभूषणों को देखते है तब उनकी विरह व्यथा बढ़ने लगती है 'देखि चढ़त है पीर'। यह कामना जागृत होने लगती है कि 'सुन्दर श्याम शरीर' को अपने हाथों से ऐसे आभूषणों को कब पहनाऊँगा। इसी तरह बहुमूल्य वस्त्र देख कर उनका मन धैर्य खो देता है और सोचने लगते है कि यह मणि-जड़ित चीर 'प्रिय प्रीतम के' योग्य है। उनके 'सुन्दर कमनीय' पुष्प से भी अधिक कोमल शरीर पर रुचि के साथ सम्हाल-सम्हाल कर मैं इन वस्त्रों को कब पहनाऊँगा।

इसी तरह रामसीता के शरीर-प्रसाधन और उनकी ललित क्रीड़ाओं का विवरण देते हुए उन तमाम शोभाओं का अपने नेत्रों से साक्षात्कार करने की बडी कोमल और सरस कामना शुभ शीला जी ने की है। रसिक सप्रदाय के विभिन्न साधकों ने रामसीता की जिस रसमयी दिनचर्या की भावना की है उसकी सम्पूर्ण झाँकियों का विवरण देते हुए 'शुभ शीला' जी ने उन सब का साक्षात्कार करने की बड़ी मधुर उत्कण्ठा अपने सहज सरस तथा कोमल शब्दों मे व्यक्त की है। 'श्याम सलौना' उनके चित्त को हर ले गया है। उस सलोने का 'रूप अद्भुत' और हर तरह से 'अनूप' है। वह 'कोशलेश सुत सुजनों का खिलौना' है। वह छवि देखे बिना उनका जी अकुलाता है; पर पिता और गुरुजनों के डर से वे उस रूप को नही देख सकते ‡।

जगत् की मर्यादाओ और बन्धनों को तोड़ लेने के बाद जो मन अनत का साक्षात्कार करता है, वही शुभ शीला जी को प्राप्त है। 'प्रिय मीत मिलन को' उनका हृदय उल्लसित होता रहता है। 'अवध कुँवर' के बिना उन्हे और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। 'सचराचर व्यापक सुखदायी श्याम' उनके 'रोमरोम' में समा गया है। वह 'प्यारा छबीला' जिस तरह कृपाशील तथा गुणों और शक्तियों का केन्द्र हो गया उस तरह न कोई हुआ है न होने वाला है। 'शुभ शीला' जी की रसिक भावना भक्ति की आदर्शमयी पवित्रता और सरसता के मणिकाचन योग से धन्य हो गयी है†।

(५३) 'वैष्णव विनोद $' काशी के बाबू गयाप्रसाद, उपनाम वैष्णवदास के एक सौ पाँच पदों का सग्रह, सीताराम और राधा कृष्ण के जीवन के सरस पक्षों को बड़ी मार्मिक सौन्दर्य भावना के परिवेश में प्रस्तुत करता है। सीताराम के विश्व मोहन सौन्दर्य को वैष्णवदास ने अपने हृदय की कोमलता के भीतर अनुभव किया है। उनके उन परम सुन्दर के हिन्दोलोत्सव को आकाश के देवता देखते हैं और सुमन वृष्टि की झड़ी लगा देते है। राम के 'मेघ स्याम सम बदन' की शोभा का वर्णन करने मे वैष्णव दास जी अपने को अक्षम पाते है। अपनी लम्बी आयु की माला बना कर आयु के क्षणों के भक्ति-सुरभित पुष्पों की माला उन्होंने सीता राम को पहना दी है।

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३८० से ३८४ तक। † वही, पृष्ठ ३८४।
$ भारत जीवन प्रेस काशी से सन् १९०३ में मुद्रित।

(५४) 'वृहत् पद-विनोद ‡' रसदेव कवि की रचना है। रसदेव का हृदय भी रसिक साधना के मर्म को पहचानता है। राम के अनत सौन्दर्य की भावना इस कवि का हृदय भी सहज सुन्दर भापा मे व्यक्त कर सका है। 'राम की अभिराम छबि' को आठों याम देखते हुए रस देव भी 'सतकाम के मुख मसी मल' देते है। अनत राम की अनत शोभा का साक्षात्कार जो हृदय कर रहा हो उसे करोडो कामदेव भी प्रभावित नही कर सकते। 'जानकी-जान की छबि' को देख कर रसदेव ने 'आन की आस' छोड दी है†। 'रामलला की छबि' उसके मन में खटक रही है। इस शोभा को रसदेव ने छक कर पी लिया अब करोडों काम उसे इस पवित्र पथ से नही भटका सकते। उस युगल छवि पर रसदेव ने करोड़ों कामदेवों तथा अपने तन-मन-धन सब वार दिये है। इसी प्रक्रिया से रसिकोपासक अपनी पवित्रता को हृदय की कोमलता के पुट मे साथ कर सुरक्षित बना लेता है $।

(५५) 'विनय चालीसी *' के कुल चालीस दोहों की रचना रूप-सरस जी ने की है। ये अपने को राम की दासी मानते है और 'रघुबर प्यारी लाडली' और 'लाडलि प्यारे राम' के सौन्दर्य और पावन प्रेम की भावना मे रूप सरस जी ने अपने को खो दिया है। गल बाँही दिये हुए सीताराम के जिस सौन्दर्य का साक्षात्कार इन्होने किया है, उसे देख कर 'कोटिचन्द्र' की 'जगमगी छबि' और 'कोटिकाम' की शोभा लज्जित हो जाती है। पवित्र हृदयरस से प्रसूत ये चालीस दोहे ही रूप सरस जी को अमर बना देने के लिए पर्याप्त है§।

(५६) 'झूलन बिहार-सग्रहावली ×' कृपानिवास के द्वारा किया गया झूलनोत्सव सम्बन्धी पदों का सग्रह है। कई रसिकोपासक सतों की रचनाएँ इस सग्रह मे सगृहीत है। रसिक निवास, रसिक अली, रामसखे, रसभामिनी, रसिक विहारिणी, युगलप्रिया तथा सरयूसखी इत्यादि के झूलनविहार के पद इस ग्रथ मे संकलित है। सावन मे पावस की शीतलता और हरियाली से सिक्त और समृद्ध हो कर प्रकृति का जो सरस मनोहारी रूप सज धज कर निखरता है उसकी समग्र सुषमा से भगवान् के झूलनोत्सव की मादकता का विधान रसिक साधकों के कला सुषम हृदय ने किया है। रसिक महात्माओ के सुकोमल हृदयों में तरंगित होने वाले भावहिन्दोल एक स्थान मे सगृहीत हो कर अनंत माधुर्य की अपार कमनीयता की सृष्टि-राशि का इस संग्रह में सर्जन कर सके है। संतों के लीला-रसलोलुप हृदयों ने युगल सुन्दर के झूलनोत्सव के मध्य-गत शोभासंभार पर विश्व की

‡ प्रकाशक छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले। प्रकाशन वर्ष, सन् १९०८। † रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३८५। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३८६-३८७। * ओरिएंटल प्रेस, अयोध्या मे सन् १९३२ मे मुद्रित। टीकाकार—राजकिशोरीवर शरण (परमानन्द)। § रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३८७-३८८। × प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद, बंबई वाले। डायमंड जुबली प्रेस कानपुर मे सन् १८९८ में मुद्रित।

सुषमा को निछावर करके स्वय भी उसी शोभापारावार मे विलीन हो गये थे। यही तरंगित होता हुआ सुपमा जलनिधि 'झूलन बिहार सग्रहावली' मे अपनी अनत तरलता को प्रसारित करता हुआ दृष्टिगोचर होना है। अनत सुन्दर राम, असीम सौन्दर्यमयी सीता, परम रमणीय अयोध्या, अपार सुषमावती सरयू तथा सीता और राम पर निछावर होने वाली अयोध्या की प्रजा जो सौन्दर्य और पावनता को भी सुन्दर और पावन बना सकती थी, किशोर-किशोरी का अनत ऐश्वर्य—ये सब मिल कर रसिकोपासक सतों के पावन हृदयों के अनत सुन्दर हिंदोलों पर झूल रहे हैं। बाह्य प्रकृति के पावस से सतों के हृदयो मे भी पावस उमड़ पडा है और अनत की असीम शोभा उस पावस के हिन्दोल पर झूल उठी है‡।

(५७) 'सियाराम पचीसी†' सहादत गज, पुराना चौक, लखनऊ के मदारीलाल वैश्य की रचना है। इसमे नाम के अनुसार केवल पच्चीस कवित्त और सवैये है। एक ही समस्या 'सिया सोने की अँगूठी, राम नीलम नगीना है।' पर पच्चीस सरस गेय कवित्त सवैयों की रचना हुई है। इस समस्या को आधार बना कर सिया-राम का बडा सरस स्मरण इन छन्दो मे हुआ है। कवि का हृदय निश्चित ही सिया-राम के सौन्दर्य की अनुभूति पा सका है; अन्यथा पचीसी के छन्द 'रुचि रुचि बनी जोड़ी' से सौन्दर्य का इतना आकर्षक प्रभाव कैसे उत्पन्न कर सकते$।

(५८) 'भजन रसमाल'—मझौली राज्य के गोपालपुर कस्बे मे रानी हरियाली जी का मदिर है। उस मदिर के महंत हरिचरणदास ने इस ग्रथ की रचना की। यह ग्रथ सवत् १९४७, भाद्रपद कृष्ण दशमी रविवार को पूरा हुआ। हरिचरणदास मझौली के पैकवली मौजे के पवहारी धाम के महत सीतारामदास के छोटे शिष्य थे। रसिक सप्रदाय का यह ग्रथ भी सरस अनुभूति का सुन्दर सरोवर है। झूले पर झूलती हुई 'युगल जोरी' की शोभा को इस साधक ने भी अपने हृदय मे बसा लिया है। झूलते हुए 'पीतम-प्रिया' के 'दृग कोर' को अपनी ओर मोड़ लेने की उत्कंठा इस साधक मे है। सावन की इस रहस्यमयी छवि मे वह 'निसिदिन' भूला हुआ रहना चाहता है। हरिचरणदास झूलते हुए युगलकिशोर के उन चरणो को प्रतिदिन अपने हृदय के भीतर देखते रहते है, जिनके पृथ्वी पर उतर आने से 'भुवन' का 'भाग' खुल गया।

राम के व्याह की झाँकी के भीतर भी हरिचरण चामरग्राही सेवक बन कर शरण पा जाते है। नीद से उठे हुए राम के उनीदे नैन अपनी दास्य भावना के भीतर देख कर हरिचरण उनके कमलमुख स्वय धोने लगते हैं। भावना के इस चित्र मे साधक हरिचरण को जो सुख मिलता है उसका वर्णन शेष अपने सहस्र मुखों से भी नहीं कर सकता। 'नृप लाल लली' के ऐश्वर्यमय सुन्दर जोड़े को इस साधक ने अपने मन मे बसा लिया है।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३८८ से ३९३ तक। † प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, बबई वाले। अक्तूबर सन् १९०६ में रामा प्रिंटिंग प्रेस, फैजाबाद मे मुद्रित। $ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३९४-९५।

शरद पूर्णिमा की रात्रि मे उमड़ी हुई चन्द्रिका के पारावार मे इस जोडी के अमृतमय सौन्दर्य को देख कर हरिचरण अपार आनद के उल्लास मे डूब जाते है। वसन्तोत्सव के मादक वायुमडल से घिरे हुए आनदमग्न युगलकिशोर की शोभा की भावना करके भी हरिचरण खो जाते है। राम की जो 'निकाई हरिचरण' के हृदय पर छा गयी है उसे देख कर सैंकड़ों कामदेवों की समाहित शोभा का घमड भी चूर हो रहा है, उन युगल किशोर के 'मुख की लुनाई' से करोड़ों चन्द्रों की छवि छटक रही है‡।

(५९) 'राम प्रिया-विलास' किन्ही रामप्रिया जी की रचना है। गेय पदों का यह सग्रह भी बड़ा सुन्दर और हृदयग्राही है। 'राघव प्यारे' और 'किशोरी' की वसन्त लीला, अनत माधुर्य से ओतप्रोत करके रामप्रिया जी ने प्रस्तुत की है।

अपनी दास्य भावना के भीतर अपने को राम की दासी की तरह प्रस्तुत करते हुए रामप्रिया जी ने कहा है—मैं आपको पंखा झलूँगी, आपके लिए मालाएँ बनाऊँगी, आपको वस्त्र और आभूषण पहनाऊँगी, पान का बीड़ा लगा कर दूँगी, आपके 'पगपकज' दबाऊँगी तथा 'चारु चामर' चला कर आपकी दासी कहलाऊँगी। मै अन्यत्र कही नही जाऊँगी, न तो अपनी दीनता किसी को सुनाऊँगी। मेरा सिर किसी के सामने न झुकेगा। हे राजाओं के राजा, महाराज राघवेन्द्र राम! आपकी कही जाने पर अब मैं किसी दूसरे की नही हो सकती।

वह कहते है—मुझे तो दर्शन का लोभ हो गया है। कोई यदि मुझे कुछ उपाय बता सकता तो ठीक होता। 'इश्क दशा' को तो कोई 'आशिक' ही जानता है, जो इश्क के रग से लाल हो गया हो। 'पिया की सेज अलख अगोचर' है। उससे क्यों कर मिलना हो सकता है। रामप्रिया को तो 'रघुकुल भूषन' ही राह दिखाने वाला चाहिए†।

(६०) 'भक्त प्रमोदिनी $' के रचनाकार अयोध्या के पडित रामलोटन मिश्र है। पडित जी ने भी 'राजकुमार' को दृगो के बीच मे बसा लिया है। 'दिलदार, रघुवशी, दशरथ के लाल' का जादू उन पर भी चल गया है। दर्शन के लिए उनके दोनो नयन तरस गये हैं। बिना दर्शन उनका जी नही मानता। प्रभु की बाट वे जोहते रहते है। वे 'प्रेम-रस बोरा गीत' गाते रहते है और सुन-सुन कर 'बिरह झकझोरा' देता रहता है। 'रघुपति' ही इस विपत्ति को हर सकता है। 'सियराम' को अपना 'रखवार' बना कर वे अपने 'साँवलिया' के 'अवध की डगर' पर ही बस गये है*।

(६१) 'सीताराम-नखशिख-वर्णन' प्रेमसखी की कृति है। अलंकार विधान और विशेषत: उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा के सहारे सीताराम के सौन्दर्य का वर्णन यहाँ साहित्यिक परपराओं का अनुसरण मात्र करता है। यह अनुसृति शैलीमात्र की है। उपमानों की

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ३९५ से ३९८ तक। † वही, पृष्ठ ३९८। $ आफताब प्रिंटिग प्रेस, फैजाबाद मे सन् १९२३ मे मुद्रित। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ३९८-३९९।

उद्भावनाएँ प्राय: मौलिक है। इस अलकार विधान मे भी रूपरस का कवि का लालच अवश्य ही व्यक्त होता है। रूप-रस की अनुभूति न होती तो उपमानो को खोजने की कोमल व्यग्रता भी क्यों होती। सीता के चरणों की दस अँगुलियों को ब्रह्मा के चार मस्तकों, शिव के पाँच मस्तको तथा अपने एक मस्तक की भाग्य स्थली के रूप मे देखना निश्चित ही प्रेमसखी की नवीन उद्भावना है और इस कल्पना के माध्यम से भक्ति की भी बडी कोमल व्यजना हो जाती है। किशोरी-किशोर के सहज मन्द मुसकान और अनूप रूप माधुरी को देख-देख कर प्रेमसखी उस पर अपने प्राण निछावर कर देते है और अपने 'अनेक जनम के अखिल अघ' निर्मूल कर लेते है। प्रेमसखी के अनुसार वे ही 'बडभागी' है जिन्हे 'सिय छबि प्रिय' लगी है। जो लोग अन्यत्र चित्त देते है वे 'परम अभागी' है। 'सिया जू' की साडी की चर्चा करते हुए प्रेमसखी कहते है कि उस साड़ी को भाग्यों का भाग्य और सुषमा-सौभाग्य प्राप्त है जिसे कृपा करके 'सीता जू' ने 'निज तन' पर धारण कर लिया है। सीता के इसी अनुपम सौन्दर्य पर प्रेमसखी 'बार-बार बलिहारी' है। गलबाही दिये हुए 'नील पीत पट' वाले सियाराम को प्रेमसखी ने अपना जीवन बना लिया है‡।

(६२) 'फूल बँगला' मे मोदलता जी ने 'स्वामिनी' और 'राघो सरकार' का 'सुमन शृगार' प्रस्तुत किया है। 'युगल शोभा' से मादलता जी ने अपने नयन रँग लिये है। 'श्री प्रिया जी' और 'अवध बिहारी' जी की नख-शिख शोभा देख लेने के बाद जिस भाव का अनुभव मजुलता जी करते है उसे व्यक्त नही कर सकते। 'भाव बखान बनै ना'। उनके नयन बिना देखे मानते नही। रूप-सुधा-रस' का 'चसका' उन्हे लग गया है। 'मुख-सरोज-मकरन्द पान' करके उनका 'मन-मधुकर मस्ताना' हो गया है। उस मस्ताने मन के रहस्य को 'सुजान राम प्रिय' बिना दूसरा कोई नही जान सकता†।

(६३) 'सीताराम सयोग पदावली $' परम भक्त श्री बैजनाथ कुरमी के हृदय की मधुर भक्ति की तरगो से आप्लावित रचना है। भक्त बैजनाथ रामचरित मानस के टिप्पणीकार तथा गोस्वामी जी के सब ग्रथों के भावार्थकार थे। ये मानस के सिद्ध कथा वाचक भी थे। 'घनश्याम' और 'सिय स्वामिनी' के सयोग शृंगार की बड़ी कोमल झाँकियाँ कवि के हृदय से पदावली के रूप मे साक्षात्कृत हो उठी है। 'श्याम, अनूप, भूप लालन' के 'मुखचद' की माधुरी को देख कर बैजनाथ की भावना की नारी 'देह गेह की सुध' भूल गयी है। इस भक्त ने ऐसे लोक का भावना की है जो 'जानकी नाथ के हाथों बिकाते' सकोच नही करता। यह लोक नर-नारी-उभय-लोक' है। राम की 'मृदु कटि पर पीत पट' की शोभा बैजनाथ के लिए अनिर्वचनीय हो जाती है। इस भक्त की आँखो ने राम की माधुरी को देख लिया है और फलत: इसके हृदय पर 'कहर' टूट पड़ा है। इसे 'तन मन की सुधि' नही रहती। 'आठों याम रामगुण' गाता रहता है। यह 'राघो जी' के अग-अग की माधुरी पर बलि हो गया है। रघुनन्दन को इसने जीवन और प्राण का आधार बना

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ४०० से ४०२ तक। † वही, पृष्ठ ४०२ से ४०४ तक। $ जुलाई सन् १८८० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ मे मुद्रित।

लिया है। 'रामसिय' की वसन्त लीला का अनुभव करके 'सुर-नर-मुनि' सब मोहित हो गये है। उस माधुरी के प्रभाव से कोई भी नही बच सका है।

'दोनों लालो' के हिन्दोलोत्सव की छबि पर भी बैजनाथ निछावर हुए हैं। युगल किशोर के हिन्दोलोत्सव के समय के सौन्दर्य पर बैजनाथ ने करोड़ों 'रति युत काम' देवों को वार दिया है।

'लाल' के बिना उनका मन धैर्य नही धारण कर सकता। जो श्याम से मिला सके वही 'उर की तपनि हर' सकता है। 'इश्क' की गभीर पोडा उन्हे अब अधिक समय तक नही भा रही है। 'रघुबीर' को बिना देखे धैर्य नही। 'बिरह शर' लग गया है। प्रिय ने दर्शन दे दिया। बैजनाथ अब उस पर बलि हो गया है। उसके नयन प्रिय की छबि को पी लेना चाहते है। उस माधुरी को पी-पी कर भी वे नही अघाते।

अत: 'सीताराम-सयोग पदावली' भक्त-हृदय की मदाकिनी-धारा है जिसमे त्रिलोक पावनी शक्ति है‡। विश्व रक्षक राम की मधुर उपासना मे जो भक्त-हृदय अपने को खो सकता है वही स्वर्ग की गगा को पृथ्वी के उद्धार के लिए अपनी अनुचरी बना सकता है।

(६४) 'श्रीराम विलास' के कुल चालीस पृष्ठो के कलेवर मे चौगडवा, जिला बस्ती के ठाकुर मथुरा प्रसाद सिह ने दोहे-चौपाइयो' मे रामचरित मानस की घटनाओं का एक सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस ग्रथ का आरम्भ सवत् १९६४, चैत्र शुक्ल रामनवमी को हुआ। इस ग्रथ मे कवि ने 'सहित हुलास रामगुण' का वर्णन किया है। मथुरा प्रसाद ने राम के चरणों के अडतालीस चिह्नों को सुजनों के लिए 'सुख-सुभ-दायक' माना है। राम की चितवन मे अमृत की वर्षा को कवि ने माधुर्य के रूप मे उत्प्रेक्षित किया है। 'युगल यार' को बिना देखे तरसते हुए नयनों की भावना मथुरा प्रसाद जी ने भी की है। 'यार' के विरह की असह्य वेदना की अनुभूति इस साधक को भी है।

जनकपुर की स्त्रियो ने राम से कहा—यद्यपि हम अविवेकी है जातिहीन है, और 'सब भाँति गँवारी' है तथापि आप प्रीतम से बिछुड कर जगत् के सब सुख हम लोगों के लिए दुख मे बदल जाएँगे। इसके उत्तर मे मथुरा प्रसाद के राम ने कहा है—प्राणी चाहे ज्ञानी हो या अज्ञानी हो वह मुझसे जब किसी भी प्रकार की प्रीति कर लेता है तब मैं उसकी रक्षा आँखो की पुतलियों की तरह करता हूँ। मैं उसके अवगुणों की तरफ नही देखता; केवल उसके गुणों को ही देखता हूँ। मुझ पर निछावर हो जाने वाले नेहियों के प्रति इस तरह का वर्ताव करने की मुझे बान पड़ गयी है। प्रेम से मुझ पर बलि हो कर ही मुझे कोई पा सकता है। मुझे पाने का कोई दूसरा उपाय नही है। ससार मे मेरे जितने प्रेमी हैं, जिनका यश चारो ओर फैला हुआ है, उनमें भी खोजने पर अवगुणों का कोई न कोई अपवाद अवश्य मिल जाएगा। पर मैं उनके अवगुणों की ओर दृष्टि भी नही ले जाता।

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ४०४ से ४१० तक।

कई तरह के प्रिय-प्रेमियों की चर्चा करते हुए मथुरा प्रसाद के राम, जनकपुर की नारियों से कहते है—अपने प्रेमी कंज को दिनेश जलाता है। विधु के लिए तरसते हुए चकोर के लिए चन्द्र के मन मे कोई प्रेम नही रहता। फणी मणि के लिए बलि हा जाता है; पर मणि की शोभा वियोग काल मे भी दीप्तिमती ही रह जाती है। वियोग का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ता। चातक और मोर के हृदय मे जलद के लिए कितना अपार प्रेम रहता है, पर मेघ उन पर वज्र और पत्थर ही गिराता है। मीन की प्रीति से जल कभी खिन्न हुआ ? मीन बलि हो जाता है—प्रेम की वेदी पर, परन्तु नीर प्रसन्न और अप्रभावित। दीपक अपने प्रेमी शलभ को सहारिणी ज्वाला ही देता है। एक तो एक के लिए अपना बलिदान दे देता है, पर एक उस एक की ओर देखता तक नही। हे सिद्धि इत्यादि राजकुमारियो, हमारा प्रेम ऐसा नही है। अपने प्रेमी की प्रीति का स्मरण मैं एक क्षण के लिए भी भग नही करता। मै अपने प्रेमी को इतना महान् बना देता हूँ कि शिव और ब्रह्मा की पक्तियाँ उसके सम्मुख नतमस्तक हो जाती है। त्रैलोक्य मे मैं उसकी पूजा करवाता हूँ। उसकी बड़ाई मै कहाँ तक बताऊँ। मैं स्वय उसे शीश नवाता हूँ। वह करोड़ो 'कसूर' करे उसका स्नेह मैं कभी नही छोडता। राज्य, त्रिभुवन की समस्त सम्पत्ति अनुज, तनय, सीता तथा मेरा अपना शरीर भी मुझे इतना प्रिय नही है, जितना प्रिय, मुझे अपना प्रेमी होता है। मैं अनत दुखों को सह सकता हूँ, पर मित्र को नही छोड सकता।

मथुरा प्रसाद ने अपने रघुबीर के इस मधुर भाव को त्याग और बलिदान की आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित करके अनत कमनीयता के परिवेश मे मँजो कर प्रस्तुत किया है‡। रूप-सौन्दर्य और हाव-भाव के विलासों के भी बड़े उच्चकोटि के कलाकार मथुरा प्रसाद जी हैं।

(६५) 'रम्य पदावली' के लगभग चार सौ पदों के सग्रह में कोविद कवि ने 'जनकनदिनी-रघुनदन' के मधुर जीवन की रम्य झाँकियाँ प्रस्तुत की है। कोविद कवि ने राम-सिया के हिंदोल-कमल का अपने मन को मधुकर बना दिया है। इस कवि का भी रसिकोपासक साधकों मे प्रमुख स्थान है†।

(६६) 'भक्तमनरजनी$' के अपने वृहत् गीत संग्रह मे *प्रेमसखी* ने अपने भक्त हृदय के सम्पूर्ण आनद को उँडेल दिया है। अपने हृदय के माधुर्य से राम को रिझाने की अपनी इस प्रक्रिया मे प्रेमसखी जी ने बडे मधुरगीतो के पुष्प 'रसिक बिहारी रामचन्द्र' के चरणों मे अर्पित किये है। 'प्रेम का सुधारस' इन गीतों मे लबालब भरा हुआ है। इस 'मधुर मधुर रस' को पी कर प्रेमसखी जी अघा गये है। रसिकोपासको के बीच इस मधुर प्रयत्न को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है*।

(६७) 'महारासोत्सव अर्थात् सीताराम रहस्य§' श्री हनुमत्सहिता का अवधी गद्य में अनुवाद है। अवध मडल के उन्नाव जिले की हसनगज तहसील मे औरासी नाम का

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ४१० से ४१५ तक। † वही, पृष्ठ ४१५-४१६। $ प्रकाशक—सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द। सन् १९०१ मे जैन प्रेस, लखनऊ मे मुद्रित। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ४१७। § लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे सन् १९०४ ई० में मुद्रित।

एक गाँव है। महारासोत्सव के रचनाकार अंबिका प्रसाद दैवज्ञ इसी ग्राम के निवासी थे। रसिक सप्रदाय का यह गद्य साहित्य अनोखा है। बीच-बीच में इस अनुवाद मे दोहे का प्रयोग भी हुआ है। इस ग्रंथ मे उज्ज्वला, कांचनी, चित्रा, चित्ररेखा, सुधामुखी, हसी, प्रशसा, कमला, विशदाक्षी, सुदर्शका, चद्रानना, चद्रकला, माधुर्यशालिनी, वरा, कर्पूरांकी तथा वरारोहा—ये सोलह रसोत्सुका सखियाँ है।

मैथिली रघुनदन की सेवा करने वाली सखियाँ भी सख्या में सोलह है। उनके नाम है—शोभना, शुभदा, शाता सतोषा, सुखदा, सती, चारुस्मिता, चारुरूपा, चार्वंगी, चारुलोचना, हेमा, क्षेमा, क्षेमदात्री, धात्री, धीरा तथा धरा। वह कमलाकार क्षेत्र, जिसके मध्य मे सीता-राम का अनत ऐश्वर्ययुक्त लीला धाम है उसके सोलह दलों पर ये सखियाँ निवास करती है। इस कमलाकार भूमि के अन्य बारह दलों पर क्षीरोद्भवा, भद्ररूपा, भद्रचारु, भद्रदा, भावावर्जिता, विद्युल्लता, पद्मनेत्रा, पावनी, हंसगामिनी, रमणीया, प्रेमदात्री, कुकुमागी तथा रसोत्सुका का निवास है। अन्य बारह उपदलों पर महार्हा, मालवी, माल्या, कामदा, काममोहिनी, रति, क्षिति, नतिवती प्रेमदा, कुशला, कला तथा लीला निवास करती है। ये चौबीसों अनत राम के महाभाव मे निमग्न हो कर उनकी सेवा करती रहती है तथा उनकी ओर निर्निमेष देखती रहती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य आठ दलो पर अनत माधुर्यपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त आठ कुज है। प्रथम 'वेष कुज' मे विलासिनी सखी सीता-राम का शृगार करती है। इसकी भी भक्तितन्मयावस्था है। 'मालती कुज' मे सागानन्दा सखी रहती है। यह भी सीता-राम के आनन्द का विधान करती है और स्वय आनंदावस्था मे रहती है। नित्यानन्द मे मग्न रहने वाली वृन्दा 'केलिकुज' मे निवास करती है। यह सीताराम की क्रीडाओ का विधान करती है। नित्या सखी का 'सुखद कुंज' सीताराम के आनदानुभव का कुंज है। यह सखी भी उनके आनन्द के सभार जुटाती रहती है और स्वय भी उनके प्रेमानद मे मग्न रहती है‡।

'हिन्दोलकुज' प्रेम प्रदर्शिनी सखी का कुज है। इस कुज मे जनकनन्दिनी और रघुनंदन को इस सखी से अनत प्रेम की भेंट प्राप्त होती है। सेवा और प्रेम की अनंत मधुर मूर्ति यह सखी है।

'सुन्दर दोल' कुंज मे वसत रगिनी सखी का आवास है। यहाँ वसन्त के अनत शोभासंभार से सीता और राघव की यह सखी उपासना करके युगल किशोर की मधुरोपासना के आनद में मग्न होती है।

'भोजन कुज' सदानुमोदिनी सखी का निवास स्थल है। यह सखी सब सखियों के साथ, वसत की शोभा से मडित अपने कुंज मे मैथिली-राघव को छह रसों और छप्पन प्रकार वाले भोजनों से तृप्त करती है। राघव-मैथिली को इस सेवा से मोदित करके यह सखी अनत मधुर रस मे निमग्न हो जाती है।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ४१७ से ४१९।

'चारु कुज' मदन मजरी सखी का कुंज है। यह राघव-मैथिली का शयनकुज है। यही मदन मजरी शयनसेवा करती है।

कुजों के इन आठ दलों के उपकोणों में वल्लियाँ और वृक्ष शोभित है। माधवी चपा, मल्लिका, पुन्नाग, चमेली, लवगलतिका, आँवला तथा तुलसी इत्यादि वृक्ष तथा लताएँ इन उपकोणों को अपने सौरभ और पुष्पों मे सज्जित करती रहती है। इन उपकोणों मे वीणा वादिका वीणावती, वशी वादिका सुगधिका, सगीत के सप्त स्वरों की सिद्धि मे सुशोभित खजनाक्षी खँजरी लिये हुए, गान कलावती मृदग के साथ तथा सारग लोचनी नाम की सखी सारंगी के साथ रामसीता की सेवा मे प्रस्तुत रहती है। सुख दायिनी सुखस्पर्शवती है। यह अपने सुखस्पर्श से युगल किशोर की सेवा करती रहती है।

इस कमल के मध्य मे सब मणियों से निर्मित भवन मे कोटि चन्द्र, सूर्य और अग्नि के तेज को पराहत करने वाला, चिंतामणि के मन को भी मुग्ध करने वाला. मत्र पवित्र, अकलुष, दीप्तिमान सिहासन है। ओंकार सहित सब बीजों का इसमे निवास है। अनंत शक्ति के केन्द्र इस सिहासन पर युगल किशोर आसीन हैं। यहाँ भी सब सखियाँ उनकी सेवा करती रहती है ‡।

इसी रासेश्वर राघव का ध्यान, गुरु की कृपा से, रसिकोपासक प्राप्त करते हैं। रासेश्वर का यह आनदात्मक रूप सघर्षों की शान्ति का आदन भाव स्थल है। रसिकोपासकों के अनुसार यह स्थूल जगत् भी रामचन्द्र की प्रभा और सीता के प्रभाव से नितान्त प्रकाशित हो कर परम पावन है। इस भाव समाधि को आधे पल के लिए भी प्राप्त करके रसिक भक्त भव-बधन से मुक्त हो जाता है †।

(६८) 'भावना अष्टयाम $' सीताराम शरण' राम रसरग मणि की रचना है। यह ग्रथ सीताराम की आठोंयाम की मानसी पूजा है। इस मानसी पूजा मे 'सिया युत श्यामल राम सुजान' का रत्नसिहासन पर ध्यान किया गया है। सीताराम के सौन्दर्य का वर्णन इस ध्यान में 'सुलच्छन लाल' की शोभा से हो रहा है। भरत और शत्रुघ्न दाहिने बाएँ चँवर चला रहे है तथा 'मारुत लाल' हनुमान पखा कर रहे है।

शयन शोभा के ध्यान मे 'रसरग विहारी राम शयन' कर रहे हैं। उनके वाम भाग में 'रसिकराज बल्लभा जी शयन कर' रही है। भक्ति और भक्त दोनों 'दिव्य विग्रहों की चरण-सेवा' करते हैं। 'श्री युगल के नयन पकज निद्रा से मुद्रित' होते हैं। 'श्री युगल कृपा' की इसी शोभा को मन से रख कर भक्त अपने को धन्य मानते हैं। भगवान् के शयनकक्ष के एक भाग मे मन्द ध्वनि से विहाग गाते हुए 'सेवानुरागी साधक श्री भक्ति पद पंकजों को साष्टाग प्रणाम कर' निद्रा मे युगल किशोर के स्वप्न के 'सुख सिन्धु मे मग्न' होते है *।

---

‡ रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ४१९–४२०। † वही, पृष्ठ ४२०। $ प्रकाशक दुर्गाप्रसाद। सवत् १९६१ मे चन्द्रप्रभा प्रेस (काशी) मे मुद्रित। * रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृष्ठ ४२१।

मधुरोपासना का यही स्वरूप है। जगत् के आदर्शों के लिए जीवन का बलिदान देने वाले मर्यादापुरुषोत्तम के दुःख-सवेदना-युक्त जीवन के प्रति कृतज्ञ हो कर भक्त हृदय उनके विलास के शृंगारमय जीवन में मग्न हुआ है। मनुष्य के हृदय की विश्ववेदना के लिए अनंत अवकाश मर्यादोपासना में तथा उसके शृंगार को अनत सौन्दर्य प्रदान करने वाले विश्व प्रेम के लिए असीम विस्तार मधुरोपासना में है। सजग हो कर दोनों साधनाओं के द्वारा मनुष्य अपने को धन्य और परम पूजनीय बना सकता है।

उपासना के क्षेत्र मे मर्यादा और शृंगार दोनों प्रकार की उपासनाओं के द्वारा सतों ने मानव के रागात्मक अस्तित्व को परम सुन्दर बना देने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। मर्यादापुरुषोत्तम के उपासक गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के बलिदानपूर्ण जीवन को ही मुख्यतः चित्रित किया है। मधुरोपासक संतों ने उनके जीवन के शृगारात्मक पक्ष को अधिक गौरव प्रदान किया है। पर दोनों उपासनाएँ मनुष्य को उसके अनत विकास की ओर ले जाती है। मधुरोपासक सतों पर कई बार अश्लीलता का आरोप लगाया गया है, पर अश्लीलता सिद्ध साधकों के भीतर नही है। मार्ग का अन्वेषण करने वाले कुछ गुमराह साधकों की चूक को सम्पूर्ण साधना के इतिहास का आधार नही बनाना चाहिए। मधुरोपासना की साधना के क्षेत्र मे भी हृदय की रसमन्दाकिनी ही मुख्यतः प्रवाहित हुई है। उसी मन्दाकिनी का साक्षात्कार कराने का प्रयत्न इस ग्रथ मे किया गया है। लेखक का विश्वास है कि यह साधना भी मनुष्य के हृदय के मधुरभाव का अनंत शृगार कर सकेगी; क्योंकि इसमे स्वयं जगदम्बा सीता ही अनत सखियों के रूप मे अपने अनत प्रिय राम की अनतमुखी सेवा में अनुक्षण लीन है‡।

मार्गशीर्ष, कृष्णा नवमी, मगलवार,
विक्रम संवत् २०१६।

---

‡ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ १७६–१७७। इसी ग्रथ का पृष्ठ-४७२, अनुच्छेद-२।

परिशिष्ट—१

सन्दर्भ तथा सहायक ग्रन्थों की अनुक्रमणिका

१. रामचरित मानस
२. रामलला नहछू
३ वैराग्य सदीपिनी
४ बरवै रामायण
५. पार्वती मगल
६. जानकी मंगल
७. रामाज्ञा प्रश्न
८ दोहावली
९. कवितावली
१०. गीतावली
११. श्रीकृष्ण गीतावली
१२. विनय पत्रिका
१३. इडियन थीइज्म : डॉ. निकॉल मैकनिकॉल
१४. ऐन आउट लाइन ऑफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया : डा. फार्कुहर
१५. कल्याण : उपनिषद् अक
१६. तुलसीदर्शन : डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र
१७. भागवत सम्प्रदाय : डॉ बलदेव उपाध्याय
१८. श्रीमद्भगवद्गीता
१९. कुमारसभव : कालिदास
२० अथर्ववेदीय रामपूर्वतापनीय उपनिषद्
२१. अथर्ववेदीय रामोत्तर तापनीयोपनिषद्
२२. अथर्ववेदीय सीतोपनिषद्
२३ वाल्मीकि रामायण
२४. न्यायकोष : महामहोपाध्याय भीमाचार्य झलकीकर
२५. दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास : एफ़्. एच्. ग्राउज़
२६. श्री भाष्य : आचार्य रामानुज
२७. महाभारत : व्यासकृत

२८. डिक्शनरी ऑफ थॉट्स : ट्रॉयनएड्वर्ड्स
२९. वैष्णविज्म्, शैविज्म् एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टेम्स (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडोआर्यन रिसर्च मे) : सर आर जी भण्डारकर
३०. भक्तिमार्ग : (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स मे) सर आर. जी. भण्डारकर
३१. ड्रैविडियन्स (साउथ इडिया) : एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स मे।
३२. वेदिक माइथॉलॉजी : मैक्डानेल
३३. रिलीजन ऑफ दि वेद : ब्लूमफील्ड
३४. रिलजन्स ऑफ इडिया · हॉप्किन्स
३५. रिलीजन्स ऑफ़ इडिया : बार्थ
३६. भगवद्गीता : गार्व
३७. लाइफ ऑफ रामानुज · ए गोविन्दाचार्य
३८. वेदान्त सूत्रज् विथ रामानुजज् कमेटरी : सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, भाग ४८
३९. सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट (भाग २४ की भूमिका) : थिबॉट
४०. भगवद्गीता विथ रामानुजज् कमेटरी · ए. गोविन्दाचार्य
४१ दि टीचिंग्ज़ ऑफ वेदान्त एकॉर्डिग टू रामानुज : वी. ए सुकथनकर
४२. यतीन्द्र मत दीपिका · ए गोविन्दाचार्य
४३. दि लाइफ एण्ड टीचिग ऑफ़ श्री माधवाचार्यर : सी. एम पद्मनाभाचार
४४. दि भगवद्गीता विथ श्री माधवाचार्यज् कमेटरी : सुब्बाराव
४५. ग्रियर्सन के द्वारा, इडियन ऐंटीक्वेरी, भाग २२ पृ. २२५ पर सूचित अन्य ग्रथ
४६. दि पोएम्स ऑफ तुकाराम : फ्रेजर और मराठे
४७ राइज़ ऑफ़ दि मराठा पावर चेप्टर ८
४८. ज्ञानेश्वर ['इडियन इटरप्रेटर' (मद्रास) क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी] जुलाई १९१४ अंक
४९. नामदेव ,, ,, ,, ,, अप्रैल १९१३ अक
५०. तुकाराम ,, ,, ,, ,, अप्रैल १९१२ अक
५१. मराठा पोएट्स ,, ,, ,, ,, जनवरी १९१३ अक
५२. लॉर्ड गौराग : एस्. के. घोष (कलकत्ता : पत्रिका ऑफ़िस)
५३. हिस्ट्री ऑफ बेंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर : डी. सी. सेन (कलकत्ता यूनिवर्सिटी)
५४. चैतन्यज् पिल्ग्रिमेजेज़ एण्ड टीचिंग्ज़ : जदुनाथ सरकार
५५. कबीर एण्ड दि कबीर पन्थ : जी. एच्. वेस्टकॉट (कानपुर मिशन प्रेस)
५६. कबीर्स बीजक : प्रेमचन्द (कलकत्ता बैप्टिस्ट मिशन प्रेस)
५७. दि आदिग्रंथ : ई. ट्रम्प, लन्दन, (अल्लेन एण्ड को)
५८. दि सिख रिलीजन : एम. ए. मैकॉलिफ़ (ऑक्सफ़ोर्ड क्लैरेंडन प्रेस)
५९. दि तिरुवाशगम् ऑफ़ माणिक्क वाशगर : जी. यू. पोप ,, ,,

६०. तन्त्र ऑफ दि ग्रेट लिबरेशन (महानिर्वाण तन्त्र) : अर्थर ऐव्हेलॉन (लन्दन)
६१. हिम्स टु दि गॉडेस : अर्थर एण्ड ऐलेन ऐव्हेलॉन (लन्दन)
६२. प्रिन्सिपल्स ऑफ तन्त्र : ,, ,,
६३. सम ऑल्टरनेटिव्ह्ज़ टु जीज़ज़ क्राइस्ट : जे. एल. जॉन्स्टन (लागमैन्स, ग्रीन एण्ड क.)
६४. नारद पांचरात्र
६५. नारद भक्तिसूत्र
६६. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र
६७. श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण
६८. हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु
६९ भगवद्भक्ति-रसायन
७०. वैष्णवमताब्जभास्कर
७१, श्रीराम पटल
७२ रामार्चन चन्द्रिका
७३ आह्निक सूत्रावली
७४. कुलार्णव तन्त्र
७५ अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णविज़्म इन साउथ इंडिया : के. आयगार
७६. अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट : राम चौधरी
७७. रामानन्द टु रामतीर्थ : जी. ए. नैटेसन
७८. अध्यात्म रामायण
७९. योगवासिष्ठ
८०. रघुवंश : कालिदास
८१. उत्तरराम चरित · भवभूति
८२. भुशुंडि रामायण
८३. अगस्त्य सुतीक्ष्ण संवाद
८४. गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
८५. तुलसीदास : राम बहोरी शुक्ल
८६. तुलसीदास : डॉ. माता प्रसाद गुप्त
८७. भक्तमाल
८८. मूलगोसाईं चरित
८९. भक्ति कल्ट इन एन्शिएंट इंडिया : भगवत्कुमार गोस्वामी
९०. वैष्णवधर्म नो सक्षिप्त इतिहास : दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री
९१. डॉ. बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन
९२. भक्ति रहस्य : गोपीनाथ कविराज : कल्याण का हिन्दू सस्कृति अंक, पृष्ठ ४३६ से ४४४ तक
९३. दीक्षा रहस्य : ,, ,, ,, वर्ष १५, अंक ४
९४. हिम्स ऑफ दि आलवार्स (हेरिटेज ऑफ़ इंडिया सिरीज़, कलकत्ता)

९५. नम्मालवार (नेटेसन, मद्रास)
९६. इन्ट्रोडक्शन टु दि पाचरात्र एण्ड दि अहिर्बुध्न्य संहिता (अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, १९१६)
९७. रेन ऑफ़ रियैलिज्म इन इडियन फिलॉसफ़ी : नागराज शर्मा : मद्रास
९८. श्री मध्व : लाइफ एण्ड टीचिग्स : मद्रास
९९. श्रीवल्लभाचार्य : भाई मनीलाल पारेख : श्रीभागवत धर्म मिशन, राजकोट १९४३
१००. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : दीनदयालु गुप्त
१०१. पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट ऑफ बेंगाल : मनीन्द्रमोहन बोस : कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९३०
१०२. ऑब्स्क्योर रिलीजस सेक्ट्स ऑफ बेंगाल : डॉ. एस. दास गुप्त (कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९४०)
१०३ वैष्णव लिटरेचर ऑफ़ मेडीव्हल बेंगाल (सी डी सेन, कलकत्ता १९१७)
१०४. दि चैतर्न्य मूव्हमेन्ट : एम. टी. केन्नेडी (दि रिलीजस लाइफ़ ऑफ इडिया सिरीज़, कलकत्ता, १९२५)
१०५ श्री गौडीय वैष्णव साहित्य (बगला) : हरिदास दास, हरिबोल कुटीर नवद्वीप।
१०६. फिलॉसफी ऑफ़ दि वैष्णव रिलीजन, लाहौर, १९२३
१०७. चैतन्य चरितावली (५ भाग) : प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, गीताप्रेस, गोरखपुर
१०८ अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव फेथ एण्ड मूव्हमेंट इन बेंगाल : एस. के. डे, जेनेरल प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, कलकत्ता
१०९ भक्ति विनोद : जैवधर्म (बगला) श्री सनातन गौडीय मठ, कलकत्ता
११० मॉडर्न बुद्धिज्म एण्ड इट्स फॉलोअर्स इन ओरीसा : नगेन्द्र नाथ बसु, कलकत्ता, १९११
१११ मेडीव्हल वैष्णविज्म इन ओरीसा, कलकत्ता १९४०
११२. उत्कल साहित्य मे पच सखा : जनवाणी पत्रिका, काशी, १९५० अप्रेल : प्रो. चितरंजन दास
११३. शंकरदेव ए स्टडी : हरमोहन दास
११४. असम के ब्रजबुलि साहित्य का दार्शनिक स्वरूप : सम्मेलन पत्रिका-भाग ३० सं. ६-७ और ११-१२
११५. मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र : आर. डी. रानडे, पूना १९३३
११६. वारकरीज़ दि फ़ोरमोस्ट वैष्णव सेक्ट ऑफ़ महाराष्ट्र : इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली, भाग १५, सन् १९३९
११७. योगसूत्र : पतजलि
११८. कलि सतरणोपनिषद्
११९. रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना : श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

परिशिष्ट–२

सन्दर्भ सूची